गुरुकुल ... ...
पु परिग्रहण ...
दयानन्द महिला ...
915

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

का

जीवनचरित्र

जिसको

रामबिलास शारदा

म्युनिसिपलकमिश्नर अजमेर

व पूर्व प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान

ने

सुबुद्धि मास्टर आत्मारामजी की सहायता

से बनाकर निज व्यय से

प्रकाशित किया

... भवानीलाल ...
पुस्तकालय ...

वैदिक यन्त्रालय अजमेर

इसकी रजिस्टरी कराई गई है

संवत् १९६१

प्रथम वार १०००

मूल्य १॥)
डाकव्यय ।)

महर्षि दयानन्द सरस्वती
का
जीवन चरित्र

ले० राम बिलास शारदा

प्रकाशक
मै० वैदिक यन्त्रालय अजमेर

1904.

अनेक महर्षि [illegible] सुने या देखे हों और उनके अनेक गुणों का जो साधारण [illegible] अन्वेषण किया है, परन्तु जब मैंने देखा कि उस महर्षि को परलोक [illegible] आज १७ वर्ष व्यतीत होगये और आर्य्यसमाज के [illegible] नागरी में [illegible] निकाला जिससे वह लाभ जो [illegible] गुणों का [illegible] पढ़ने से होता न होने के अतिरिक्त अनेक हानियें हुई हैं क्योंकि आर्य्यवीर पं० लेखरामजी के अकस्मात् बलिदान होजाने से उर्दू जीवनचरित्र जैसा चाहिये था वैसा नहीं निकल सका और जिन त्रुटियों को देख कुछ आपापंथी लोगोंने अपने निजविचारोंको फैलानेका अच्छा अवसर देख ऋषि चरित्र का चित्र अपने मन माने ढंग पर खेंचा ऐसी दशा में मैंने सिद्धान्त रक्षार्थ यही उचित समझा कि ऋषिचरित्र को उसके शुद्ध स्वरूप में सर्व साधारण के सन्मुख रखदूं ताकि वे बनावटी चित्रों से धोखा न खावें। यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं ललित भाषा नहीं लिख सकूंगा और न ही ऋषि के भावों को भले प्रकार दर्शा सकूंगा परन्तु फिर भी यह विचार कर कि स्वामी का जीवन आखिर स्वर्ण ही है अपनी चमक बतलाये विना नहीं रहेगा, क्या हुआ यदि सुडोल ढांचे में सर्व्व साधारण के सन्मुख न रक्खा गया, मैंने यह पुस्तक पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित्र व दयानन्ददिग्विजयार्क आदि ग्रंथों के सहारे से निर्माण की है, आशा है कि पाठकगण मेरी भूल चूक को क्षमा करेंगे और मेरे असली तात्पर्य को ग्रहण करेंगे!

इस ग्रन्थ के बनाने में मुझे मास्टर आत्मारामजी के अतिरिक्त पं० बदरीदत्तजी ने बहुत सहायता दी है और बाबू ब्रह्मानन्दजी व पं० रामजीलालजी ने भी समय २ पर अपनी शुभसम्मति प्रदान की है, मैं इन सब महाशयों का बड़ा आभारी हूं।

पुस्तकालय
अधि० संख्या ... 651 ...
विषय ... 5-A-16 ...
दिनांक ...

रामविलास शारदा
अजमेर

सन् 1904

विषय सूची

उपोद्घात

पृष्ठ

भारतवर्ष के प्रामाणिक इतिहास का अभाव ... ...
सच्चे इतिहास के लिये ... ...
इतिहास के दो भाग वैदिक और अवैदिक ... ...
वैदिक समय के लक्षण ... ...
अन्य इतिहासों में भी दो समय सर्वदेशीय हैं ... ...
जाति की सभ्यता का कारण ज्ञान १०
ज्ञान का इतिहास ... ...
सत्य विद्या का नाम वेद ... ...
वेद सर्वदेशीय है १३
मनुष्य जाति के पितरों का एक देश में रहना १४
आदि सृष्टि अमैथुनीय होती है १६
आदि आर्यों का गृह तिब्बत में था १७
भारतवर्ष के वैदिक समय के नियम १७
वैदिकसमय में जीव, ईश्वर व प्रकृति का ज्ञान १८
जीवित जाग्रत आर्य्यजाति १८
प्राणिमात्र से प्रेम और परोपकार १९
वैदिक समय का महत्व २२
महाभारत युद्ध के कारण ४२
विषयासक्त वाममार्ग ४३
इतिहासवेत्ताओं की छलांग ४४
वाममार्ग का बुद्धमत से पूर्व होने का ऐतिहासिक प्रमाण ५०
तंत्रमत का स्वरूप बदलना ५१
वाममार्ग और चार्वाक में भेद ५१
चार्वाक से पूर्व शैव और शाक्त मतों का बीज ... ...
चार्वाक का वेदों से विमुख होने का कारण महीधर की टीका आदि
चार्वाक का स्थानापन्न बौद्ध व जैनमत ... ...
बौद्धमत व जैनमत वास्तव में एक है ५४

	पृष्ठ
चार्वाक व बौद्धमत	५६
महाशय आर. सी.	५९
बौद्धमत के दोष	६०
बौद्धमत से सब मनुष्यपूजा सीखी ...	६१
बौद्धमत से मूर्तिपूजा का आरम्भ	६१
गौतम बुद्ध ने कोई पुस्तक नहीं रची	६३
बुद्ध के जीवन पर एक दृष्टि	६४
कुमारिलाचार्य्य का शंकर के लिये सड़क बांधना	६८
शंकर का मूर्तिपूजाखण्डन करना	६९
शंकराचार्य्य के जीवन पर एक दृष्टि	७०
शङ्कर स्वामी के मायावाद का फल	७२
कल्पित पुराण घड़ना वामियों ने सिखाया	७६
पौराणिक समय के यौवन का वर्णन	७६
ब्राह्मणों का जैनियों का शिष्य बनना	७७
शाक्तों के मन्दिर	७८
वाममार्ग की गुफायें	७८
वैष्णवमत और उसकी शाखा	७९
ब्रह्मसमाज और वेदार्थ की कुंजी	८८
आदित्य ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द का आगमन	८९
ऋषि तथा आप्तशब्द की मीमांसा	९१
कल्पपर्य्यन्त मुक्ति, विधवा विवाह अथवा नियोग नयेसिद्धान्त नहीं...	९७
ऋषिदयानन्दकृत दश नियमों की अपूर्व व्याख्या	९८
प्रामाणिक जीवनचरित्र पर आशंकाएं और उनका उत्तर... ...	१२२
ए. ओ. ह्युम साहिब का पत्र	१२५
आर्य्यसमाजों के नायक कौन हैं	१३४

जीवनचरित ।

	पृष्ठ
स्वामीजी का जन्मस्थान, नाम व कुल ... यज्ञोपवीत	१
शिवरात्रि का व्रत ...	२
शिवलिङ्ग पर चूहा	३
छोटी बहिन की मृत्यु	५
दुःख सागरसे पार उतरने का विचार	„
चचा का देहान्त	६
अमरफल की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प	„
घर त्यागने का विचार, ...	„
विवाह व काशी जाने का विचार	७
घर से निकल जाना	८
साधु ठगों की संगत	९
शुद्ध चेतन ब्रह्मचारी बनना, ...	„
भूतकाभय व वैरागियोंका फन्दा	„
सिद्धपुर की यात्रा	१०
जान पहचान वाले वैरागी से भेट	„
स्वामीजी के पिता का आगमन	„
पहरे में से भागना	११
चेतन मठ को जाना	„
सच्चिदानन्द परमहंस से भेट	„
पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास धारण करना और दयानन्द सरस्वती नाम पाना	१२
योगानन्द स्वामी से योग सीखना	„
कृष्णशास्त्री से व्याकरण पढ़ना	१३
वेद का पढ़ना	„
आबू पर योगाभ्यास करना	„
हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर जाना	१३
टिहरी में मांसाहारियों से घृणा	१४
तंत्र ग्रन्थों का अवलोकन, हिमालय पर महात्माओं की खोज में भ्रमण	१५

मठ का महन्त बनाने [illegible]

गंगा में मुर्दे की परीक्षा [illegible]

नौकिये के पेट में [illegible]

नर्मदा नदी के स्रोत की खोज व रीछ का सामना ... २१

मथुरा के स्वामी विरजानन्दजी से पढ़ना २३

गुरुजी का लाठी मारना २५

गुरुदक्षिणा अर्थात् वैदिकधर्म प्रचार की प्रतिज्ञा २६

आगरे में उपदेश २७

पञ्चदशी ग्रन्थ में अश्रद्धा ... ... ,,

संध्या की पुस्तक बनाना २८

न्योली क्रिया करना मूर्तिपूजा का खण्डन ... ... ,,

वेदों की खोज में भ्रमण ... ... ,,

ग्वालियर महाराज के विरुद्ध भागवतका खण्डन व पण्डितों का शास्त्रार्थ से पलायन २९

करोली व जैपुर जाना व पौराणिकों व जैनगुरु को परास्त करना ... ३०

अचरौल के ठाकुर को उपदेश कर मद्य मांस छुड़ाना ,,

कृष्णगढ़, अजमेर व पुष्कर जाना व कंठियें तुड़वाना ३२

पादरियों से शास्त्रार्थ ३३

कमिश्नर से मिलना ३५

कर्नल ब्रुक से गोरक्षा पर बात चीत ३५

कृष्णगढ़ व जैपुर जाना ३७

जैपुर में राजमहलों में जाना ३८

आगरा दर्बार व मथुरा में गुरुजी से अन्तिम मिलाप ३९

हरिद्वार के कुम्भ पर प्रचार व सर्वस्व त्याग ४०

गंगातट पर नग्न रह कर भ्रमण ४५

कर्णवास में शास्त्रार्थ व मूर्तियों का गंगा में फेंका जाना ४६

एक ठाकुर का स्वामीजी पर तलवार उठाना ४८

रात्रीको घातकों का आक्रमण ४९

चाशनी, ताहरपुर अनूपशहरमें उपदेश ५०

[illegible] ... ५१
[illegible] ... ५२
संसार को [illegible] छुड़ाने आया हूं ... ,,
रामघाट व अ[illegible]पदेश ५३
जलेसर में २० मन्दिरों की मूर्तियों को नदी में डलवाना ५४
अंगदशास्त्री से शास्त्रार्थ ... ... ,,
पीलीभीत में शास्त्रार्थ ५७
शहबाज़पुर जाना ५८
व्याकरण के सूर्यके अस्त होने के समाचार सुनना ... ... ,,
ककोड़े के मेले पर प्रचार ... ... ,,
नरोली व कर्मफल ५९
कायमगंज में प्रचार ६०
फर्रुखाबाद में प्रचार व शास्त्रार्थ ६०
कन्नोज में धर्म्मोपदेश ६७
महादेव की बटिया से मसाला पीसना ६९
कानपुर में शास्त्रार्थ ७१
मूर्तियों का गंगामें फेकाजाना ७४
थेनस साहब का स्वामीजी की जीत का पत्र ७५
रामनगर व बनारस में प्रचार ७५
काशीशास्त्रार्थ व उस पर छः बार चढ़ाई ७६
काशी में आर्यसमाज का स्थापन होना ८३
राजा शिवप्रसाद की टेढीचाल ... ... ,,
प्रयाग के कुम्भ पर प्रचार ८४
मिरज़ापुर में प्रचार ८५
डुमरांव आरा व पटनेमें उपदेश ८६
मुंगेर व भागलपुर में उपदेश ८८
कलकत्ते में प्रचार ९०
पं० महेशचन्द्र का खण्डन ९२
शास्त्रार्थ हुगली ९५

	पृष्ठ
आर्य्यसन्मार्गसन्दर्शनी सभा कलकत्ता ...	९६
छपरे में शास्त्रार्थ ...	९९
आरा व डुमरांव जाना ...	९९
मिरजापुर व कानपुर जाना ...	१००
फर्रुखाबाद, अलीगढ़ व मथुरागमन	१००
वृन्दावन में ब्रह्मोत्सव पर मूर्त्तिपूजा खण्डन	१०१
मूर्त्तिपूजा खण्डन	१०१
प्रयाग में परदे का खण्डन	१०३
जबलपुर व पंचवटी में उपदेश	१०४
बम्बई में आर्य्यसमाज स्थापित करना	"
बल्लभाचार्य से शास्त्रार्थ व स्वामीजीको विष दिलानेका उद्योग ...	१०५
काठियावाड़ में परिभ्रमण	१०९
राजकोट व अहमदाबाद में प्रचार	११०
आर्य्यसमाज के पहले नियम	१११
कमलनयन आचार्य्य से शास्त्रार्थ	११४
पूना में प्रचार	११८
राजाओं की अवनति का कारण	११९
पं० रामलाल से शास्त्रार्थ	१२०
सन् १८८७ के दहली दरबार में उपदेश	१२२
सत्यधर्मप्रचार मेला चांदापुर	१२५
लुधियाने पधारना	१२५
लाहोर में प्रचार	१२६
अमृतसर में स्वामीजी का पहुंचना	१३०
४० हिन्दूविद्यार्थियों का ईसाई होते २ बचाना	१३३
गुरदासपुर में वैदिकधर्मप्रचार	१३३
जलंधर व फीरोज़पुर में वैदिकधर्म प्रचार	१३४
रावलपिण्डी में वैदिकधर्म प्रचार	१३५
झेलम में वैदिकधर्म प्रचार	१३७
गुजरात (पंजाब) में प्रचार	१३८

			पृष्ठ
वज़ीराबाद व गुजरानवाले [illegible] प्रचार	...	...	१३९
मुलतान में प्रचार	...	...	१४०
रुड़की में प्रचार	...	...	१४१
अलीगढ़ व मेरठ	...	...	१४२
दिल्ली अजमेर व पुष्कर में प्रचार	...	...	१४५
नसीराबाद व जयपुर में प्रचार	...	...	१४६
रिवाड़ी, दिल्ली, मेरठ हरिद्वार व देहरादून में प्रचार	...	...	१४७
मुरादाबाद, बदायूं में प्रचार	...	...	१४८
बरेली, शाहजहांपुर में धर्मप्रचार	...	...	१४९
लखनऊ, फरुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद, मिरजापुर, दानापुर, मैनपुरी में प्रचार			१५०
मेरठ व मुजफ्फरनगर में प्रचार	...	...	१५१
देहरादून, मेरठ, आगरा व अजमेर में प्रचार	...	...	१५२
मसूदा में धर्म्मप्रचार	...	...	१५३
रियासत रायपुर में प्रचार	...	...	१५४
ब्यावर व रियासत बनेड़ा	...	...	१५५
चित्तौड़ में प्रचार	...	...	१५५
बम्बई में प्रचार	...	...	१५६
खण्डवा, इन्दौर, रतलाम, उदयपुर में प्रचार	...	...	१५७
स्वीकार पत्र	...	...	१५९
रियासत शाहपुरे में प्रचार	...	...	१६३
जोधपुर में वैदिक धर्म्म प्रचार व विषप्रयोग	...	...	१६५
अजमेर व स्वामीजी का देहान्त	...	...	१७३
स्वामीजी के गुणों का परिचय	...	...	१७७
स्वामीजी की मृत्यु पर समाचारपत्रों का शोक	...	...	१७९
महर्षि के जीवन पर एक दृष्टि	...	...	१९७
मृत्युञ्जय की मृत्यु पर यूरोप व अमेरिका के प्रतिनिधि का संशय मिटाना			२१०
महर्षि के उद्देश्य पर अमेरिका के एक विद्वान् की निष्पक्ष सम्मति	...		२१२
एंड्रोजैकसन डेविस की सम्मति	...	...	२१३
आर्य्यसमाज ही महर्षि का स्मारक है	...	...	२१५

	पृष्ठ
स्वामीजी का उद्देश्य ...	२१९
महर्षि की ग्रन्थरचना व वैदिक शिक्षा ...	२२१
सब से प्रथम संसार को वेदोक्त शिक्षा ...	२२४
तीन पदार्थ अनादि हैं ...	२३०
शब्द, अर्थ और सम्बन्ध रूपी वेद ईश्वरोक्त है	२३२
सत्यार्थप्रकाश पर एक दृष्टि	२५४
महर्षि विरचित शेष ग्रन्थ	२८४
एक अपूर्व ग्रन्थ महर्षि रचने वाले थे	२८६
स्वामीजी का पत्र व्यवहार रामा बाई से	२९७
थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ	३०९
लाला शादीरामजी	३५३
पण्डित सुन्दरलालजी	३५४
मुन्शी समर्थदान	३५५
पण्डित भीमसेन	३६१
मानपत्र	३६५
स्वामी विरजानन्दजी का जीवन चरित्र	३६७

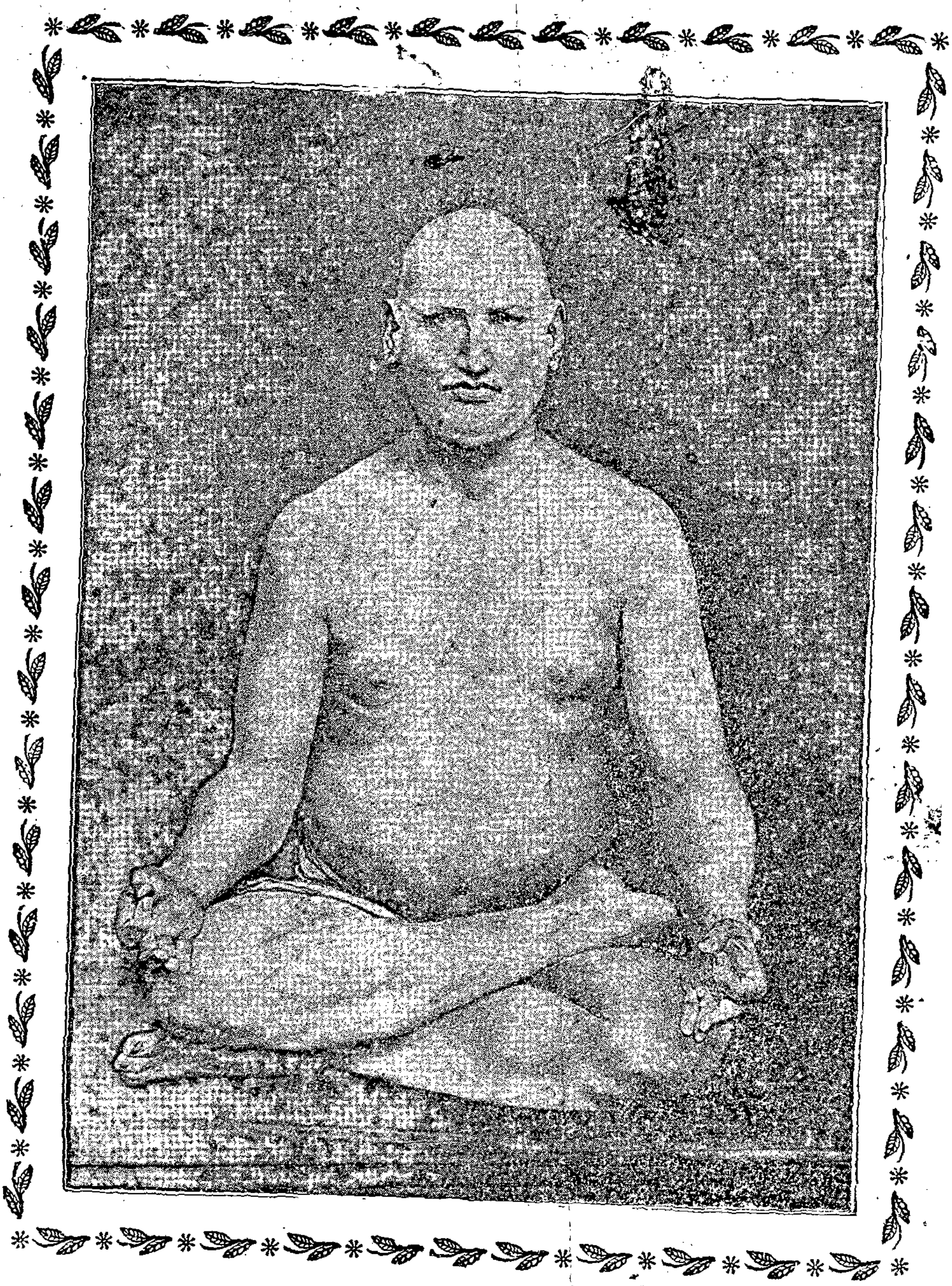

आर्य्यसमाज प्रवर्तक आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्दर्षिः
ध्यानावस्थितः

ओ३म्

महर्षि दयानन्द के जीवनचरित्र का उपोद्घात

(मास्टर आत्माराम जी लिखित)

भारतवर्ष के प्रामाणिक इतिहास का अभाव।

पूर्व इस के कि हम महर्षि दयानन्द का आगमन दर्शावें यह दर्शाना अति आवश्यक है कि वह देश जिस में वह उत्पन्न हुये प्राचीन समय में किस दशा में था और उस देश में आदि सृष्टि से किस प्रकार के मनुष्य वास करते थे उनका नाम क्या था और उन्होंने लौकिक और पारलौकिक उन्नति किन साधनों द्वारा सम्पादन की थी ? फिर उस देश में क्या २ विकार उत्पन्न हुये और किन दशाओं ने उस देश को आन घेरा और उस समय जब कि ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया देश की अवस्था क्या थी और देश को ऐसे ऋषि की क्या आवश्यकता थी और ऋषि ने देश की काया पलटाने में क्या २ काम किये ? यह सर्व वृत्तान्त दो भागों में विभक्त किया जासक्ता है ।

☞ (१) ऋषि दयानन्द से पूर्व का भारतवर्ष ।

☞ (२) ऋषि दयानन्द से पश्चात् का भारतवर्ष ।

यदि इस समय भूगोल पर कोई भी प्रामाणिक भारतवर्ष का पूर्ण इतिहास उपस्थित होता तो हम प्रथमभाग अर्थात् "ऋषि दयानन्द से पूर्व के भारतवर्ष" की दशा जानने के विषय में उस इतिहास का नाम लिख देते अथवा उसका अनुवाद कर देते परन्तु जितने भारत के इतिहास नाना भाषाओं में उपस्थित हैं उन में यवनों के आक्रमण से लेकर श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के राज्य पर्य्यन्त का वृत्तान्त क्रमबद्ध मिलता है। आदि सृष्टि से लेकर

पृथ्वीराज के समय का क्रमबद्ध लेख किसी भी इतिहास में उत्तमता से दर्शाया नहीं गया इसलिये वर्त्तमान इतिहासों में से किसी को भारतवर्ष के प्रामाणिक पूर्ण इतिहास का नाम हम दे नहीं सक्ते। भारत के प्राचीन इतिहास के अभाव को अनुभव करने वाले कई पुरुषों ने अपनी लेखनी उठाई और पूर्ति के लिये यत्नवान् हुए परन्तु शोक का विषय है कि वे प्राचीन इतिहास में सत्य वृत्तान्त दर्शा न सके, किन्तु कल्पनाओं और अयुक्त वार्ताओं से उस इतिहास को पूर्ण करके सर्व साधारण के सन्मुख ला खड़ा किया। विदेशियों को छोड़कर हम इस समय स्वदेशीय लेखक आर. सी. दत्त * का वर्णन करते हैं जिन्होंने कि अंग्रेज़ी भाषा में "प्राचीनभारतवर्ष की उन्नति का इतिहास" नामी पुस्तक रच कर उस न्यूनता को पूर्ण करने का यथाशक्ति यत्न किया है। यह और बात है कि महाशय आर. सी. दत्त का पुस्तक कई पाठशालाओं में पढ़ाया जाता हो। यह हो सक्ता है कि यूरोप आदि देशनिवासी कई पुरुषों ने उसकी प्रशंसा की हो, परन्तु इस इतिहास को कोई जिज्ञासु प्राचीनभारतवर्ष की उन्नति का प्रामाणिक इतिहास नहीं कह सक्ता। इस इतिहास ने न्यूनता को पूर्ण करने के स्थान में लोगों को नये भ्रम में डाल दिया है। इतिहास की वह शृङ्खला जिसको अटूट कहते हैं इस ने तोड़ दिखाई, अपनी कपोलकल्पना के अनुसार इस में ऐसे लेख भर दिये कि जिनको पढ़कर जिज्ञासु को ग्लानि आती है। दृष्टान्त की रीति से हम कह सक्ते हैं कि महाशय आर. सी. दत्त के इतिहास में निम्नलिखित दूषण विद्यमान हैं:—

(१) यह रामचन्द्र को अर्जुन से पश्चात् बतलाता है और आर्यों का लंका को विजय करना महाभारत के युद्ध के बहुत पश्चात् दर्शाता है। बुद्धिमान् और पण्डित लोग जानते हैं कि महाराजा रामचन्द्र जी अर्जुन से बहुत ही पूर्व हो चुके हैं न कि पीछे और महाभारत का युद्ध रावण के युद्ध से बहुत पीछे का है इसलिये यह इतिहास क्रम की शृङ्खला को तोड़ रहा है।

(२) मेक्समयुलर आदि विदेशियों ने डार्विन आदि महाशयों के कपोलकल्पित सिद्धान्त की पुष्टि में यह लिखा है कि ऋग्वेद में पहले अग्नि आदि भौतिक पदार्थों का वर्णन है समाप्ति पर जाकर आत्मा और परमात्मा आदि उच्च और कठिन विषयों का वर्णन आता है, जिस से वह लिखते हैं कि यह

* रोमेशचन्द्रदत्त का नाम ही आर. सी. दत्त है

सिद्ध होता है कि मनुष्य पहिले जङ्गली थे फिर क्रमशः सभ्य हुये, ऐसी कपोलकल्पना को स्वीकार करते हुए दत्त महाशय ने ऋग्वेद को "इवोल्यूशन" की "थ्यूरी" (*Theory*) का मानो साक्षी ठहराया है और तनिक भी विचार से काम नहीं लिया यदि मेक्समूलर और उन के अनुयायी दत्त महाशय ने कभी ऋग्वेद विचारपूर्वक पढ़ा होता तो ऐसी असंगत बात न लिखते क्योंकि ऋग्वेद के पहिले मंडल पहिले अध्याय और पहिले सूक्त का यह नवां मन्त्र है-

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये"

इस में अग्ने शब्द से परमात्मा का बोध कराया गया और मन्त्र में उसको पिता की उपमा दी गई है जब कि एक ही सूक्त में अग्नि और परमात्मा दोनों विषय उपस्थित हैं तो फिर आर. सी. दत्त महाशय किस प्रकार साहस कर सक्ते हैं कि ऋग्वेद के अन्त में जाकर परमात्मा आदि गूढ़ विषयों का वर्णन मिलता है। इसलिये ऋग्वेद को जो उन्होंने मेक्समूलर आदि के कथनानुसार "इवोल्यूशन" (*Evolution*) का पोषक माना है वह सिद्ध नहीं हो सक्ता। ऋग्वेद मण्डल प्रथम सूक्त १६४ का यह २० वां मन्त्र है :-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते"

इस मन्त्र में ईश्वर जीव और प्रकृति का जिस उत्तमता से निरूपण और भेद किया गया है वह सिद्ध करता है कि केवल उन्नत से उन्नत पुरुष ही इस को समझ सक्ता है। जब पहले ही मण्डल में ऐसे महान् और उच्च दार्शनिक विचार उपस्थित हैं तो फिर विदेशीयों का यह लेख कि ऋग्वेद की समाप्ति पर ही उच्च विचार पाये जाते हैं सर्वथा निर्मूल है "भारतवर्ष हमें क्या शिक्षा दे सक्ता है ? इस नाम की पुस्तक में स्वयं मेक्समूलर ऋग्वेद के पहिले मण्डल के सूक्त १६४ का ४६ वां मन्त्र अद्वितीय परमात्मा के महत्व का बोधक दर्शाते हैं। क्या मेक्समूलर महाशय के लेख में परस्पर विरोध नहीं है? एक स्थल पर तो यह लिखना कि ऋग्वेद के अन्त में ईश्वर सम्बन्धी उच्च भावों का वर्णन है और दूसरे स्थल पर स्वयं ही दर्शाना कि ऋग्वेद के पहिले मण्डल में ही अद्वितीय ब्रह्म का कथन है।

(३) भारतवर्ष का एक बालक भी जानता है कि चारों वेद इकट्ठे हैं

परन्तु दत्त महाशय ने ऋग्वेद को वास्तविक वेद माना है और यजुः, साम, अथर्व को नया वेद दर्शाया है।

(४) और विचित्र बात सुनिये अर्जुन, रामचन्द्रादि पुरुषों के माता पिता आदि के नाम भी पण्डित और विद्वान् लोग जानते हैं। जो २ उन्होंने काम किये किसी से छिपे हुये नहीं हैं, यह ठीक है कि रामायण और महाभारत में अत्युक्ति दोष बहुत हैं परन्तु इतिहासवेत्ता का कर्त्तव्य यह है कि वह अत्युक्ति के आवरण को भेद करके यथार्थ स्वरूप का दर्शन करावे, किन्तु महाशय दत्त ने ऐसा नहीं किया। विदेशियों की कपोलकल्पनानुसार रामचन्द्र और अर्जुन को कल्पित पुरुष लिखदिया है। क्या विचित्र लीला है कि लिखने तो बैठे इतिहास परन्तु इतिहास वालों को ही निर्मूल कर दिया। यदि कोई आर्य्य पुरुष इङ्गलिस्तान का इतिहास लिखे और उसमें दर्शावे कि "एलफ्रेड दी ग्रेट" कोई पुरुष विशेष नहीं हुआ किन्तु कल्पना मात्र है तो हम नहीं जानते कि यूरोप आदि देशों में उसके इतिहास को विद्वान् किस दृष्टि से देखेंगे? विदेशीय यदि लिखें कि रामचन्द्र, सीता आदि कोई विशेष पुरुष स्त्री नहीं हुये तो हम उनकी अज्ञानता पर हंसते हुये उन्हें क्षमा कर सक्ते हैं परन्तु दत्त महाशय स्वदेशीय हो कर यदि विदेशियों की कपोलकल्पना को प्रामाणिक मानें तो कोई भी स्वदेशीय जिज्ञासु उनको क्षमा नहीं कर सक्ता किन्तु उनका खण्डन करेगा। इस समय हमारा उद्देश्य महाशय दत्त के इतिहास की समालोचना करने का नहीं है किन्तु हमने स्थालीपुलाक न्याय से दर्शा दिया कि आजकल जो प्रसिद्ध ग्रन्थ प्राचीन भारत के इतिहास के नाम से प्रसिद्ध हैं वे कदापि सच्चे अथवा प्रामाणिक इतिहास की संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सक्ते॥

सच्चे इतिहास के लिये सामग्री विद्यमान है।

यह सत्य है कि इस समय प्राचीन भारतवर्ष का कोई भी प्रामाणिक क्रमबद्ध इतिहास बना बनाया नहीं मिलता, परन्तु इस से कोई यह न समझ ले कि प्राचीन भारत के इतिहास लिखने के लिये सामग्री भी लोप हो गई, नहीं कदापि नहीं, संस्कृत पुस्तकों के भंडार भरे हुये हैं जिन से कि प्राचीन भारत के इतिहास की सामग्री संकलन की जा सकती है, परन्तु लेखक का काम निष्पक्ष होकर इस सामग्री को उपयोग में लाने का है। मेक्सम्युलर आदि विदेशियों ने प्राचीन

भारतवर्ष के विषय में जो २ सम्मति प्रकाश की हैं उनका मूल यही सामग्री है जो कि संस्कृत पुस्तकों में नाना स्थल पर मिलती है परन्तु विदेशियों ने पक्षपात से रहित हो कर इस सामग्री से काम नहीं लिया। एक पुस्तक में लिखा है कि चन्द्रमा की ओर एक पादरी और उसकी भार्या देख रहे थे पुरुष ने स्त्री से कहा कि प्रिये ! देखो तो चन्द्रमा में वह गिर्जा बना हुआ है और उस के निकट तू और मैं खड़े हुये हैं, उस ने भी तथास्तु कह दिया। चर्खा कातने वाली बुढ़िया से पूछो कि चांद में क्या है तो वह उत्तर देगी कि मुझ सरीखी एक बुढ़िया चर्खा कात रही है। हम यह नहीं कहते कि विदेशियों को प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्धी सामग्री मिलती नहीं, परन्तु हम यह कहते हैं कि विदेशीय लोग इस सामग्री से चांद में गिर्जा निकालने का यत्न करते हैं मेक्समुलर को यदि यह पक्ष न होता कि डार्विन का "एवोल्यूशन" (*Evolution*) ऋग्वेद से सिद्ध करना है तो वह क्यों ऐसा लेख लिखता कि ऋग्वेद के अन्त में ही ईश्वर का वर्णन है उससे पूर्व कहीं पर नहीं। दत्त महाशय का यह पक्ष था कि सीता कोई विशेष स्त्री नहीं इसलिये उन्हों ने सीता के अर्थ हल के लिख दिये, इतिहास में पुरुष विशेष वाचक शब्द रूढि होते हैं न कि यौगिक इसलिये रामायण में सीता के अर्थ हल के नहीं हो सक्ते। हां वेद में शब्द रूढि नहीं होते प्रत्युत यौगिक होते हैं परन्तु इन इतिहास लेखकों की उलटी चाल है वेद में इन्द्र, विष्णु आदि यौगिक शब्दों को रूढि जानकर इन्होंने पुरुष विशेष बतलाया है जहां कि पुरुष विशेष का अर्थ घट नहीं सक्ता। अच्छा हम मेक्समूलर और उनके अनुयायी दत्त आदि महाशयों से पूछते हैं कि इन्द्र, विष्णु किस के पुत्र थे ? उनकी माता का नाम क्या था, उन्होंने कब विवाह किया ? उनके सन्तान क्या हुई ? ये महाशय कदापि इन प्रश्नों के उत्तर दे नहीं सक्ते। जब कि यह ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं तो इनका इतिहास मिलेगा कहां से ? आश्चर्यमय लीला तो यह है कि जो रामायण आदि में ऐतिहासिक पुरुष हैं उनको यह कल्पित पुरुष बतलाते हैं हां यदि कोई हम से पूछे कि रामचन्द्र के पिता माता का क्या नाम था, उसने कहां शिक्षा पाई, किस से विवाह किया, किस प्रकार जीवन व्यतीत किया ? तो हम इन प्रश्नों के उत्तर दे सक्ते हैं। क्योंकि हम उनको पुरुष विशेष मानते हैं। आर.

सी. दत्त एक स्थल पर लिखते हैं कि सीता को जो रावण लेगया उसके अर्थ यह हैं कि हल को एक असभ्य पुरुष लेगया अर्थात् कृषि विद्या लंका में गई इस बात को पढ़ते हुये हमें आश्चर्य होता है कि न जाने इन इतिहास के लेखकों ने किन नियमों पर चल कर इतिहास लिखने का साहस किया था ?

ग्रन्थकर्त्ता यदि पक्षपात को तज कर इतिहास लिखे तो वह अपना और संसार का उपकार कर सक्ता है जिन्होंने पक्षपात से रहित होकर पुस्तक रचे हैं उन के लेख युक्ति और प्रमाण के अनुकूल होने से सत्य ही निश्चित होते हैं, किन्तु पक्षपाती लोगों की रचना का पोल थोड़े ही काल में खुल जाता है ॥

भारत के प्राचीन इतिहास के मुख्य दो ही भाग हैं एक वैदिक और दूसरा अवैदिक।

विदेशीयों ने भारत के इतिहास को मोम का पुतला बना दिया है जिधर चाहते हैं उधर खैंच कर लेजाते हैं बहुत उस में वैदिक, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, बुद्ध व पौराणिक इत्यादि समयविभाग कल्पना कर लेते हैं अर्थात् वे बतलाते हैं कि भारत के इतिहास के निम्नलिखित समय थेः—

(१) वैदिक समय (२) ब्राह्मण ग्रन्थों का समय (३) उपनिषदों का समय (४) सूत्र ग्रन्थों का समय (५) बौद्धमत का समय (६) पुराणों का समय और कई आर. सी. दत्त के सदृश भारत के प्राचीन इतिहास को निम्नलिखित रीति पर विभक्त करते हैं:—

(१) वैदिक समय (२) राजवृद्धि का समय जिसके अन्तर्गत उपनिषदें हैं (३) विद्यावृद्धि का समय जिसके अन्तर्गत दर्शनशास्त्र हैं (४) बौद्धमत का समय (५) पौराणिक समय; परन्तु यथार्थ रीति से देखा जावे तो प्रतीत होगा कि भारतवर्ष के इतिहास के दो ही मुख्य भाग हो सक्ते हैं एक वैदिक समय दूसरा अवैदिक समय, आगे वैदिक समय का व्यौरा दर्शाया जा सक्ता है और उसी रीति पर अवैदिक समय का भी व्यौरा हो सकता है ।

एक मनुष्य के शरीर के अंग उपांग को हम उस से पृथक् नहीं कह सकते। शाखा वृक्ष से भिन्न नहीं हो सक्ती, इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषदें, उपवेद, ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन इत्यादि सब वेद के उपवेद, अंग, उपांग व्याख्यान कहलाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सारे ग्रन्थ वेदों से पीछे बनाये गये, परंतु

यह वेद की व्याख्या उसके मंत्रों के व्याख्यान और उसकी विद्याओं के विस्तार करने वाले हैं इनका उद्देश्य वेदों के महत्व को स्थापित करना है यह वेदों के रक्षक और अनुचर हैं इन सब को यदि शाखा की उपमा दें तो वेद इन का मूल है, इसलिये इतिहास की रीति से वैदिक समय से उस समय का अभिप्राय लिया जा सकता है जिस में कि वेदानुकूल और वेद की व्याख्यारूप ग्रन्थ चाहे वह उपनिषद् हों वा सूत्र बनते रहे। जो लोग समझते हैं कि ब्राह्मण, उपनिषद्, व्याकरण, दर्शन, स्मृति आदि ग्रन्थ स्वतन्त्र हैं, वेदों के व्याख्यान नहीं, वे भ्रम में पड़े हुये हैं। ब्रह्म नाम वेद का है और जो वेद की व्याख्या करे उस ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण है। महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों का काम वेद मंत्रों के आशय को समझकर संज्ञा नियत करना है और जब कोई ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़े तो वह उस में पाता है कि वेद मंत्रों की प्रतीक रख कर उनका व्याख्यान किया हुआ है इसलिये ब्राह्मण ग्रन्थों का आशय वेद की व्याख्या करने का है। विदेशीय लोग जो यह कल्पना करते हैं कि जब ब्राह्मण ग्रन्थ बने उस समय आर्य्य लोग वेदों के ज्ञान से बढ़ कर उच्च अवस्था को प्राप्त होगये यह सर्वथा निर्मूल है। उपनिषद् के अर्थ रहस्य अर्थात् गूढ़ आशय के हैं चारों वेदों का गूढ़ आशय ओ३म् परमेश्वर की प्राप्ति कराने का है इसलिये यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय उपनिषद् कहलाता है जिसमें कि ब्रह्मविद्या का विशेष निरूपण है और वेदों के अनेक मंत्र जो ब्रह्मविद्या के विधायक हैं वे यथार्थ में उपनिषद् संज्ञक हैं उपनिषदों का मूल यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही है और शेष नौ उपनिषदें उसकी व्याख्या रूप हैं।

आयुर्वेद-जो कि ऋग्वेद का उपवेद है उसका अभिप्राय वैद्यकविद्या के उन नियमों की व्याख्या करने का है जो कि वेदों में पाये जाते हैं।

धनुर्वेद-जोकि यजुर्वेद का उपवेद है उसका अभिप्राय उन नियमों और साधनों की व्याख्या करने का है जो कि युद्धसम्बन्धी वेदों में मिलते हैं।

गान्धर्व वेद-सामवेद का उपवेद है इसका अभिप्राय वैदिक गानविद्या की व्याख्या करने का है।

अर्थवेद-अथर्ववेद का उपवेद है इसका उद्देश्य नानाप्रकार के कला कौशल और विमान आदि यान तथा शिल्प विद्या के नियमों की जोकि वेदों में मिलते हैं व्याख्या करने का है।

व्याकरण शास्त्र कह रहा है कि मैं वैदिक शब्दों का चौकीदार हूं। ज्योतिष, निरुक्त, छन्द आदि शास्त्र एक स्वर से अपने आपको वेदों का अंग कह रहे हैं। दर्शन शास्त्र बड़े गौरव से यह मानते हैं कि हम वेदों के तुच्छ व्याख्यान होने से उपांग हैं। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र "प्रमाणं परमं श्रुतिः" की जयध्वनि करते हुये वेद की ओर सब मनुष्यों को लिये जा रहे हैं। कौन निष्पन्न मनुष्य ऐसा है जो यह कह सके कि जिस समय दर्शनशास्त्र बने उस समय वेदों से बढ़ कर आर्यों ने उन्नति कर ली थी; वेद सत्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक हैं, सत्य के ऊपर कोई क्या उन्नति कर सक्ता है ? यदि ऋग्वेद ने दर्शाया है अग्नि उष्ण है तो क्या वैशेषिक दर्शन उसकी पुष्टि नहीं करता ? क्या वैशेषिक दर्शन वेद से निराला कोई सिद्धान्त प्रचार करता है ? क्या योगदर्शन में कोई ऐसी विद्या है जिसका कि मूल अथवा बीज चारों वेदों में न हो ? जब यह बात नहीं है तो फिर विदेशीय इतिहासवेत्ताओं की यह कल्पना कि वैदिक समय से उपनिषद् का समय बढ़िया था और उपनिषद् के समय से दर्शन शास्त्रों का समय उच्च था क्या सर्वथा निर्मूल नहीं है ? क्या वर्तमान समय में सरकारी कचहरियों में जो हाईकोर्ट के लेख (फैसलों) से कार्यवाही होती है तो इससे कोई यह कल्पना कर सक्ता है कि हाईकोर्ट के जजों के निश्चय "पिनेल कोड" (*Penal code*) से अतिरिक्त हैं और हाईकोर्ट के जजों के अवधारण का समय "पीनेल कोड" के समय से उच्च है, नहीं प्रत्युत प्रत्येक बुद्धिमान् यह जानता है कि "हाईकोर्ट" के जज "पिनेलकोड" को उपयोग में लाते हुये विवाद सम्बन्धी अपने अवधारण रूप लेख प्रकाशित करते हैं और जिस समय में कि "पिनेलकोड" वर्तमान होरही है उसी समय में यह जजों के निश्चय प्रामाणिक माने जारहे हैं। वास्तव में जजों के यह निश्चय "पिनेल कोड" के व्याख्यान रूप हैं।

वैदिक समय के लक्षण।

जब तक सूर्य्य विद्यमान रहता है और लोग उस से काम लेते हैं तब तक सूर्य का समय है जब दीपक जल जाय और लोग दीपक से काम लेने लग जावें वह समय दीपक का है। जब से अंग्रेजों ने भारतवर्ष में "पिनेलकोड" को राज्य व्यवस्था पुस्तक माना है और जब तक अंग्रेज़ इस पुस्तक को ऐसा ही मानते चले जायंगे तब तक "पिनेलकोड" का समय कहलायगा। इसी प्रकार जब तक प्राचीन आर्य्य वेद

को आदर्शज्ञान मानते हुये उसके अनुसार व्यवहार करते रहे और जबतक अपने व्याख्यानों में उसके विरुद्ध आशय को प्रकट नहीं करते रहे तबतक का समय इतिहास के अन्दर "वैदिक समय" कहलाता रहा, जब आर्य्यजाति ने वेद के आदर्श को तज कर अपना आचार उसके विपरीत प्रारम्भ कर उसके स्थान में तंत्रमत, बुद्धमत, शंकरमत, पौराणिकमत, स्थापन कर लिया तो हम कह सक्ते हैं कि अवैदिक समय का आरम्भ हुआ। वैदिक समय को यदि सूर्य की उपमा दें तो अवैदिक समय को हम दीपक की उपमा दे सक्ते हैं। जब मनुष्य दीपक को बुझा कर फिर सूर्य से काम लेने लग जाते हैं उस समय कह सक्ते हैं कि फिर सूर्य का समय होगया, इसी प्रकार जब आर्य्य जाति वेद से विमुख हो गई तब अवैदिक समय का आरम्भ हुआ जब आर्य्य जाति फिर अवैदिक ग्रन्थों को छोड़ कर वैदिक आचरण करने के लिये वैदिक आदर्श की शरण लेगी तो हम कहेंगे कि पुनः वैदिक समय का आरम्भ होगा।

इतिहास में भी दो समय सर्वदेशीय हैं

पृथ्वी के नाना देशों के इतिहास में हम दो समयों के उदाहरण पाते हैं, इनको ही इतिहासवेत्ता डार्क एज *Dark age* (अन्धकार का समय) और एन लाइटेन्ड एज *Enlightened age* (प्रकाश का समय) बतलाते हैं, जब जातियां कुकर्म से पीड़ित होकर दीनता को प्राप्त हो जाती हैं उस समय का इतिहास अन्धकार का इतिहास कहलाता है जिस समय जातियां सर्व प्रकार की उन्नति में प्रवृत होती हैं उस समय का इतिहास प्रकाश का इतिहास कहलाता है इसके अतिरिक्त सृष्टिक्रम के अनुसार मनुष्य की दो ही दशा हो सक्ती हैं--स्वास्थ्य की और रोग की, अर्थात् उन्नति की और अधोगति की, उन्नति की दशा सृष्टि नियम के अनुसार (*Natural or Vedic*) आचार व्यवहार का परिणाम होती है और अधोगति की दशा सृष्टिक्रम के विरुद्ध (*Un natural or unvedic*) आचार व्यवहार का फल होती है वा यों कहो कि उत्तम अवस्था स्वाभाविक (*Natural*) अवस्था कहला सक्ती है और अधम अवस्था कृत्रिम (*Artificial.*) अवस्था कहलाने के योग्य है। हमें इस स्थल पर स्वाभाविक और कृत्रिम को समझने की आवश्यकता है। स्वाभाविक अवस्था में मनुष्य सृष्टि के नियमों के अनुकूल जिन नियमों को कि उन्होंने स्वयं नहीं बनाया आचरण करते हैं और कृत्रिम अवस्था में उन नियमों पर

चलते हैं जिनमें कि उनकी बनावट भी सम्मिलित है। कृत्रिम दशा यद्यपि स्वाभाविक दशा के कैसी ही विपरीत क्यों न हो परन्तु उस में स्वाभाविक दशा का अंश तो अवश्य ही विद्यमान रहता है। यथा-वृक्ष यदि स्वाभाविक वस्तु है तो चौकी कृत्रिम है चौकी में काष्ठ विद्यमान है जो कि स्वाभाविक बना था किन्तु उस काष्ठ को विकृत करने से विशेष दशा उस काष्ठ की बनाई गई है इसी बात को हम एक और दृष्टान्त से सिद्ध कर सक्ते हैं सूर्य स्वाभाविक है और दीपक कृत्रिम दीपक में अग्नि अंश सूर्य का ही है परन्तु दीपक की ज्योति परिमित और धूंए से रहित नहीं हो सक्ती, सूर्य की ज्योति महान् और रोग से सर्वथा रहित होती है इस लिये सूर्य में काम करने वाला उन्नति को प्राप्त होता है परन्तु दीपक में काम करने वाला उसके विपरीत अधोगति को जा रहा है।

तन्त्रमत, बुद्धमत, शङ्करमत, पौराणिकमत; ये सब कृत्रिम हैं और दीपक के समय हैं। इन सब को हम अवैदिकमत कह सक्ते हैं। इन सब में तेज का अंश विद्यमान है परन्तु धूंए से ये सर्वथा रहित नहीं हैं इसलिये जब आर्य जाति वैदिक समय में थी तब इनका प्रादुर्भाव न था। जब इन अवैदिक समयों का आरम्भ हुआ तो कुछ अंश में वैदिक समय रहा और अधिक करके अवैदिक समय वर्त्तमान होगया। यदि वैदिक समय में आर्यजाति सब प्रकार की उन्नति के शिखर पर थी तो अवैदिक समय में यह पाताल की ओर गिरने लगी यहां तक कि रसातल तक पहुंच गई। आर्य लोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान और सत्य विद्या मानते हैं और सत्य विद्या सूर्य की नाईं कृत्रिम नहीं होती। जब तक आर्य जाति वेद के स्वाभाविक सूर्य के प्रकाश की सहायता से अपना आचार व्यवहार करती रही तब तक यह उन्नतिशील रही, जब यह अवैदिक दशा में आगई तब यह अधोगति को प्राप्त होती गई।

> किसी जाति की उन्नति अथवा सभ्यता का मुख्य कारण ज्ञान है।

मिस्टर 'बकल' से लेकर मिस्टर दत्त पर्यन्त कई महाशयों ने विशेष जातियों की सभ्यता के इतिहास लिखे हैं इन इतिहासों में यह दर्शाया गया है कि जब कोई विशेष जाति उन्नति की दशा में होती है तब उस जाति में साइन्स '*Science*'(ज्ञानकाण्ड) और आर्ट्स (*Arts*) (कर्मकाण्ड) का प्रचार

होता है और लौकिक उन्नति के यही दो मुख्य साधन हैं। पारलौकिक उन्नति के साधन उपासना और ब्रह्म ज्ञान होते हैं, जिनका गौण रीति से वर्णन इस प्रकार के प्रचलित इतिहासों में मिलता है। हमें इस समय यह विवाद करना नहीं है कि किसी जाति की उन्नति के सम्पूर्ण साधन कितने हो सक्ते हैं। यदि एक सहस्र नियम भी किसी मनुष्यजाति की उन्नति के साधन माने जांय तो भी उन में मुख्य एक साधन शिरोमणि हो सक्ता है उस शिरोमणि साधन का नाम पश्चिमीय भाषा में साइन्स और हमारी परिभाषा में ज्ञान है अथवा सत्य विद्या आर्ट्स (कर्मकाण्ड) ज्ञान के विना नहीं हो सक्ता। उपासना ज्ञान के विना नहीं की जा सक्ती। सभा अथवा समाज की व्यवस्था विना ज्ञान के नहीं हो सकती। आयुर्वेद धनुर्वेद इत्यादि नाना प्रकार के उपयोगी साधन जो कि उन्नति के सोपान हैं विना ज्ञान जीवित नहीं रह सक्ते, अतः सार यह है कि किसी जाति की उन्नति का मुख्य कारण सत्यविद्या अथवा ज्ञान ही है।

ज्ञान का इतिहास

ज्ञान क्या है? यह प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है, इस के उत्तर में हम कह सक्ते हैं कि ज्ञान शब्दार्थ के सम्बन्ध का नाम है। ज्ञान की मीमांसा करते हुये हमें शब्दों और उन के अर्थों की ओर जाना पड़ता है, जहां शब्द है वहां ज्ञान है क्योंकि शब्द किसी अर्थ के बोधक होते हैं और शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध ही का नाम ज्ञान है।

इस विषय की पुष्टि न केवल ऋषि मुनियों के वचनों और शास्त्रों द्वारा ही हो रही है बल्कि मेक्समूलर से विदेशीय भी इस विषय में हम से सहमत हैं। जब यह बात है तो हमें सोचना है कि शब्द और उन के अर्थों का इतिहास क्या है? क्योंकि ज्ञान का इतिहास वास्तव में शब्द और अर्थ का इतिहास हो सक्ता है, जब हम इस प्रश्न के निर्णय के लिये प्रस्तुत होते हैं कि ज्ञान कहां से आया तो हमें प्रथम यह सोचना चाहिये कि ज्ञान कृत्रिम है अथवा अकृत्रिम? यदि यह कृत्रिम है तो मनुष्य इसको बना सक्ता है और किसी मनुष्यने ही स्वयं उत्पन्न किया होगा? यदि यह कृत्रिम नहीं तो यह ईश्वर की ओर से हो सक्ता है। सर्वशास्त्रकार मानते हैं कि ज्ञान कृत्रिम नहीं। मेक्समूलर ने "साइन्सआफ लेंग्वेज" *The Science of Language* नामी पुस्तक प्रथमभागमें इस बात को स्वीकार किया

है कि शब्द और अर्थ अथवा ज्ञान कृत्रिम नहीं। प्रत्येक बुद्धिमान् स्वयं विचार सक्ता है कि ज्ञान विना माता पिता अथवा गुरु से सीखे कभी प्राप्त नहीं होता और वे माता पिता आदि इसी प्रकार पूर्वज लोगों से सीखते आये हैं। पूर्वज लोगों ने आदि सृष्टि के ऋषियों से सीखा होगा। उन ऋषियों ने आदि सृष्टि के समय ईश्वर से ही निस्सन्देह धारण किया होगा, इस विषय में अमेरिका के एक विद्वान् डाक्टर ट्रूल एम. डी. इस प्रकार कहते हैं:-

"यद्यपि हमारे पिता पितामह प्राचीन समय से एक अथवा अनेक भाषा सम्भाषण करते हुये मर गये परन्तु कोई भाषा हमारे दायभाग में नहीं आ सक्ती। कभी भी कोई उदाहरण एक बच्चे का ऐसा नहीं मिला कि जिसको विना पढ़ाये पढ़ना आगया हो, चाहे उसके माता पिता आयु भर पढ़ते रहे हों। बच्चे विना सिखाये बोल भी नहीं सक्ते। यद्यपि उनके माता पिता और उनके अनेक पितृगण अनेक वर्षों से बोलते और सुनते चले आये हैं। भाषा सीखने के लिये बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है और इस बात को हम तब ही अनुभव कर सक्ते हैं जबकि हमें किसी भाषा के सीखने का अवसर मिले। "प्रोफ़ेसर वीनरमेन" इस बात को सत्य मानते हैं कि सभ्य जातियों के बच्चे यदि जंगल में पाले जांय और मनुष्य का उन से मेल जोल न रहे तो ऐसी दशा में वे एक दूसरों के साथ बातचीत भी नहीं कर सकेंगे उन युवा और छोटी आयु वाले लोगों के विषय में बहुत कुछ कहा जाता है जो कि जंगलों में जंगलीदशा में जीवन व्यतीत करते हुये पाये गये हैं और ऐसे दृष्टान्त समय २ पर गत शताब्दि तक जर्मनी, फ्रान्स, इंगलेण्ड और रूस में मिलते रहे हैं इन सब के विषय में कहा जाता है कि वे जंगली पशुओं की सी बोली बोलते थे जिनके कि साथ वे मेल जोल करते रहे, परन्तु उनमें से एक भी ऐसा न पाया गया जो कि मनुष्य के सदृश बात चीत कर सक्ता हो"।

यदि हम वर्त्तमान उन्नति का इतिहास खोजना आरम्भ करें तो भी हम उसी स्थल पर पहुंच जाते हैं। इस समय भारतवर्ष अंग्रेजों से ज्ञान को जोकि उन्नति का मूल है धारण कर रहा है अंग्रेजों ने इसी ज्ञान को रोम वालों से धारण किया था, रोम वालों ने यवन लोगोंसे, यवनोंने मिस्रियों, अर्बियों, ईरानियों से, ईरानियों ने प्राचीन भारतनिवासियों से और प्राचीन भारतवासियों ने इस ज्ञान को किसी

अन्य देशवासियों से नहीं ग्रहण किया था किन्तु ऋषि मुनियों से और उन ऋषि मुनियों ने वेदों से । वेद ज्ञान का दूसरा नाम है और वेद अर्थात् आदि ज्ञान ऋषियों ने परमात्मा से ही ग्रहण किया था अतः सत्य ज्ञान की योनि परमात्मा है ।

सत्य विद्या ही का नाम वेद है ।

जिसको सत्यविद्या कहते हैं उसी का नाम वेद है । सर्व शास्त्रकार इस बात को जानते हैं "ठाकुर साहब गोंडाल" † ने "आर्य्य आयुर्वेद का इतिहास" नामी पुस्तक में इस बात की पुष्टि की है, मेक्समुलर भी इस बात को इसी प्रकार स्वीकार करता है । ※

"वेद के अर्थ क्या हैं ? उस के अर्थ विद्या के हैं,,

वेद की विशेषता यही है कि यह सत्यविद्या है । वेद में कोई बात झूठ नहीं है वेद का एक २ वाक्य बुद्धिपूर्वक है और जो २ बात बुद्धिपूर्वक होती है वह सत्य होती है ।

वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता महर्षि कणाद जी वेद की इस विशेषता को इस प्रकार वर्णन कर रहे हैं जिस से सिद्ध होता है कि वेद में कदापि "मिथालोजी" *Mythology* (मिथ्या कहानियां) नहीं हैं जैसा कि पश्चिम के अनेक महाशय कल्पना कर रहे हैं । न कोई वेद में बच्चों की बिलबिलाहट है और न गंवार लोगों की लीला, जैसा कि मेक्समुलर आदि लिख रहे हैं । महर्षि कणादजी का वह वाक्य यह है:—

"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" ॥ (वै० अध्या० ५ आ० २ सू० १)

"ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥"

(अर्थ) वेद में जो वाक्यकृति अर्थात् शब्दार्थ का सम्बन्ध है वह बुद्धिपूर्वक है । ब्राह्मणग्रन्थ में संज्ञा कर्म (परिभाषा) की सिद्धि का लिंग (चिन्ह) है ॥

महर्षि कणाद के इस दूसरे सूत्र से पाया गया कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों का काम वैदिक आशय के अनुसार विशेष करके परिभाषा स्थिर करने का है अतएव वेद के अर्थ सत्यज्ञान के सर्वसम्मत हैं और सत् ज्ञान

---

† *History of Aryan medicine by Thakur Sahib Sir Raja Bhagwant Singhji M. D. of Gondal*

※ *Physical Religion by F. Maxmuller P. 56*

अथवा वेद ईश्वर की ओर से ही मनुष्यजाति के प्रथम पितरों को हृदय में शब्दार्थ के स्वरूप में प्रेरणा द्वारा मिला था यह बुद्धिमान् स्वीकार करते हैं।

वेद सर्वदेशीय हैं एक मनुष्य यदि दुशाला पहिनले अथवा मलमल ओढले दोनों दशाओं में उसके स्वरूप में भेद नहीं आजाता। ज्ञान का स्वाभाविक वस्त्र वह वाणी है जो कि वैदिक शब्दों के रूप में विराजमान है परन्तु यदि कोई इन शब्दों को आगे पीछे करके कोई विकृत भाषा बनाले तो भी ज्ञान के स्वरूप को वह बदल नहीं सक्ता। तरु शब्द वृक्ष का वाचक है उसको बिगाड़ कर कोई "ट्री" बनाले तो बना सक्ता है परन्तु वृक्ष के ज्ञान में कोई भेद नहीं आ सक्ता। हां इतना है कि उत्तम शब्द द्वारा सुगमता से ज्ञान उपलब्ध हो सक्ता है, विकृत शब्द द्वारा कठिनता से चिरकाल में वही ज्ञान प्राप्त हो सक्ता है। वेदों के शब्द और अर्थ सर्वदेशीय हैं, सर्वभाषाओं में वैदिकशब्द व्यापक हो रहे हैं। पृथ्वी के सर्व ज्ञानकांड में वैदिकज्ञान विराजमान है। जिन जातियों ने पूर्वकाल में उन्नति की थी उन्हों ने वेद के आश्रित होकर ही की। जो वर्त्तमान समय में उन्नति हो रही है वह भी वेद के आश्रय से ही उन्नत है। भावी काल में जो उन्नति होगी वह भी वेद का आश्रय लेकर ही होगी। वैदिकज्ञान सर्व देशों के लिये है, वैदिकज्ञान के अनुसार आचार व्यवहार करने वाले किसी एक देश में नहीं हो सक्ते किन्तु सर्वदेशों में रह सक्ते हैं। वेद जब सत्ज्ञान का नाम है तो निस्सन्देह मनुष्य मात्र के लिये है। जहां २ मनुष्य हैं उसको वेद की आवश्यकता है। स्वाभाविक पदार्थ कभी एकदेशीय नहीं होते। सूर्य किस देश का है? पवन किस देश का है? यही उत्तर दोगे कि यह सर्वदेशीय हैं इसी प्रकार वेद अथवा सत्यज्ञान सर्वदेशीय और सर्वहितकारी है।

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः"

यह वेद वचन बतला रहा है कि वेद किसी एक पुरुष अथवा एक जाति के लिये नहीं किन्तु मनुष्यमात्र के लिये ज्ञान सूर्यवत् है।

मनुष्य जाति के पितर आदि समय में इकट्ठे एक देश में रहते थे। भारतवर्ष में जो इस समय आर्यजाति पाई जाती है इन के आदि पितर भारतवर्ष में नहीं रहते थे परंच त्रिविष्टप (तिब्बत) के उच्चस्थल के रहनेवाले थे, न केवल

यही, परंच पृथ्वी के सम्पूर्ण देशवासियों के आदि पितरों का आदिगृह तिब्बत ही था। जब तिब्बत देश में मनुष्य संख्या अधिक हो गई तो जिस प्रकार आजकल इंगलिस्तान आदि देशों से निकल २ कर लोग आस्ट्रेलिया आदि देशों में जा बसे हैं उसी प्रकार उन आदि आर्यों की सन्तान भारतवर्ष अपगानस्थान (अफ़ग़ानिस्तान) आर्यस्थान (ईरान) चीन, हरिवर्ष (यूरोप) पाताल (अमेरिका) अजपत देश (इजिप्ट) पालीस्थान (पेलेस्टाइन) आर्यवाहा (अरब) यवन (यूनान) शर्मन देश (जर्मनी) पवित्र खंड (स्विटजरलेंड) धनमार्ग (डेनमार्क) सुयोधन (स्वीडन) नारावज (नार्वे) आर्यखंड * (आयरलेंड) आदि स्थलों पर बसी और अपने साथ वेद और वैदिक आचरणों को लेगई।

भारतवर्षीय वर्तमान आर्यों के पितर जब अपने भाइयों से बिछड़ कर इस देश में बसने को आये तो उससमय इस देश में पहिले से और कोई मनुष्य पाये न जाते थे उन्होंने ही आदि सृष्टि के समय से इस देश को आन कर बसाया परन्तु इस विषय में "मेक्सम्युलर" "लेथब्रिज" (*Lethbridge*) "हन्टर" और "दत्त" आदि महाशयों ने कल्पनाओं के पुल बांध कर खड़े कर दिये हैं और जहां तहां अपनी पुस्तकों में लिख रहे हैं कि उससमय दस्युजाति भारतभूमि में विराजमान थी, मेक्सम्युलर महाशय को यह जानना चाहिये कि आर्य, दस्यु यह दो जातियां गुण, कर्म, स्वभाव से सर्वदेशीय हैं। धर्मात्मा पुरुषों का नाम सर्वदेशों में आर्य और दुष्ट पुरुषों का नाम सर्व स्थानों में दस्यु है परन्तु मेक्सम्युलर ऐसा क्यों मानें? उनको तो इस बात के सिद्ध करने का पक्ष लग रहा है कि भारतवर्षीय आर्य दस्यु लोगों से लड़े और उन्होंने अत्यन्त क्रूरता की। उन्हें तो यह सिद्ध करना है कि भारत के प्राचीन पितृगण क्रूर थे, परन्तु किसी ने सच कहा है कि जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले, सच अन्त को निकल ही आता है। यदि मेक्सम्युलर इस बात पर दृढ़ होते तो कभी कहीं पर ऐसा न कहते कि आदि सृष्टि के समय थोड़े ही मनुष्य उत्पन्न हुये थे और धीरे २ बढ़ते गये प्रत्युत ऐसा लिखते कि आदि सृष्टि के समय ही सर्वदेशों में मनुष्य उत्पन्न

* इन शब्दों की मीमांसा के लिये निम्नलिखित पुस्तकें देखो
(1) *Bible in India* (2) *Science of Language Vol* I (3) *Asiatic Researches*

होगये और वर्तमान समय की तरह उनकी संख्या थी । आर्यावर्त्तीय प्राचीन आर्यों को क्रूर सिद्ध करने के लिये उन्होंने यह घडन्त की कि भारतवर्ष में पहिले से ही आर्यजाति से भिन्न एक स्वतन्त्रजाति दस्यु नाम से विराजमान थी परन्तु जब स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देने लगे कि आदिसृष्टि के समय पर अनन्त पुरुष हुए थे अथवा अनेक तो उस समय इस बात को भूल गये । हम उनका परस्पर विरोध उन्हीं के शब्दों से दर्शाना चाहते हैं वह लिखते हैं कि :—

"हमें इस बात के चिन्तन करने का अधिकार है कि करोड़ों मनुष्यों के होजाने से पहिले थोड़े ही मनुष्य थे आजकल हमें बतलाया जाता है कि यह कभी नहीं होसक्ता कि पहिलीपहल एक ही मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, एक समय था जबकि थोड़े ही आदि पुरुष और थोडी ही आदि स्त्रियां उत्पन्न हुई थीं * । मेक्सम्युलर मरण पर्य्यन्त इस बात को मानते रहे हैं और उनके लेखों से यह बात पाई जाती है कि "वह मनुष्य जाति का आदिगृह ऐशिया (*Asia*) में किसी स्थल पर मानते हैं" जब यह बात है तो हम विस्मित हैं कि मेक्सम्युलर के किस लेख को सच्चा और किस को झूठा समझें? यदि उनकी यह बात सत्य है कि आदि सृष्टि में अनेक पुरुष हुये नकि अनन्त और साथ ही ऐशिया के किसी स्थल पर मनुष्य जाति का गृह था तो हम नहीं समझते कि फिर उनकी और उनके सहयोगियों की यह कल्पना कैसे ठहर सक्ती है कि आर्यों के भारतवर्ष में आने से पूर्व ही एक दस्यु नाम की जाति यहां रहती थी इसलिये मेक्सम्युलर आदि महाशयों की यह कल्पना निर्मूल है कि भारतवर्ष में आर्यों के आने से पूर्व कोई बसता था ।

आदि सृष्टि अमैथुनी होती है ।

"तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च" ॥५॥
(वै० द० अ० ४ आ० २ सू० ५)

इसकी व्याख्या गोतम जी ने प्रशस्तपाद में इसप्रकार की है:—

तत्रायोनिजमनपेक्षितशुक्रशोणितं देवर्षीणां शरीरं धर्मविशेष-सहितेभ्योऽणुभ्यो जायते" ।

इन वचनों में अमैथुनी सृष्टि का यह निवचन किया है कि जो सृष्टि रजवीर्य

* *Chips from a German Workshop Vol I P. 237 Essay on "Classification of mankind" by F. Maxmuller*

के संयोग के विना हो । यजुर्वेद के पुरुषसूक्त से यह बात सिद्ध होती है कि आदि में ईश्वर ने ही मनुष्य ऋषि आदि रचे, यथा " तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये" ॥ यजु० अ० ३१ मं० ९

बुद्धिमान् पुरुष भी अपने विचार से इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं मदरास हाईकोर्ट के † जज टी. एल. स्ट्रेन्ज महाशय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २७ पर इस बात को स्वीकार किया है कि आदिसृष्टि अमैथुनी होती है और इस अमैथुनी सृष्टि में उत्तम सुडौल शरीर बनते हैं ।

आदि आर्यों का गृह तिब्बत में था ।

"हारमोनिया" नामी पुस्तक के भाग ५ में अमेरिका के विद्वान् डेविस जरमनी के प्रोफेसर ओकन '*Oaken*' की साक्षी सहित इस बात को प्रतिपादन करते हैं कि यतः हिमालय सब से ऊंचा पहाड़ है इस लिये आदिसृष्टि हिमालय के निकट ही कहीं पर हुई होगी । हिमालय के निकटवर्त्ती देश को इस लिये आदि आर्यों का गृह बतलाया जाता है कि जिस समय यह पृथिवी बनकर तयार हुई होगी उस समय पहिला स्थल जो इसपर प्रकाशित हुआ होगा वह वही हो सक्ता है जो इस समय सब से ऊंचा पहाड़ है इसलिये उस ऊंचे पहाड़ के निकट के स्थान ही मनुष्य के रहने के योग्य होंगे ।

भारतवर्ष के वैदिक समय के नियमों का वर्णन ।

जो आर्य्य कि तिब्बत से आनकर इस देश में बसे वे अपने साथ वेद और वैदिक आचरण लाये और अपने पुरुषार्थ द्वारा उन्होंने न केवल इस देश को ही बसाया किन्तु कई द्वीप द्वीपान्तरों को भी आबाद किया और विजय किया । उन्में जो दुष्ट कर्म के कर्ता होते थे वे उनकी आर्य जाती (नेशन) से पतित हो जाने के कारण दस्यु कहलाते थे और जो दस्युकुलोत्पन्न श्रेष्ठ आचार करते थे उनको वे आर्य बना लेते थे उनकी लौकिक और पारलौकिक उन्नति का मूल वेद था और वेद के उपदेश के अनुसार उन्होंने यत्न करते हुये आर्यावर्त को जगद्गुरु और पृथ्वी के चक्रवर्ति राज्य का केन्द्र बना दिया था । इस समय हम मोटे २ कुछ

† *The Developement of creation on the Earth P. 27 by Thomas Lumisden Strange, late Judge of the High Court Madras (Trubner & Co. London.)*

नियम लिखते हैं जिनको कि मानने और जिनके अनुसार आचरण करने से उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि की थी ।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २० ॥

वैदिक समय में जीव ईश्वर और प्रकृति का ज्ञान था ।

इस वेदवचन के अनुसार वे आर्य मानते थे कि ईश्वर जीव प्रकृति तीन अनादि सत्ता हैं और यह कि जीव और परमात्मा दोनों चेतन हैं जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता हुआ प्रकृति के भोगों को प्राप्त होता है और ईश्वर कर्मों के फलों को न भोगता हुआ सर्वत्र व्यापक होरहा और जीव के कर्मों का फल देरहा है आर्य लोग जानते थे कि जीव के कर्मों का फलप्रदाता और सृष्टि का निमित्त कारण अनादि पूजनीय एक परमात्मा है इस सिद्धान्त को आधार बनाकर वेदों के उपदेशानुसार जो कि वास्तव में ईश्वर की आज्ञा है उन्होंने सामाजिकव्यवस्था, वर्णाश्रमव्यवस्था, यज्ञ, कला कौशल आदि महान् धर्म कार्यों को सिद्ध कर दिखाया था ।

उस समय आर्य्य जाति जीवित जाग्रत थी ।

कौन नहीं जानता कि ज्ञान कर्म आदि का आधार ईश्वर से उतरकर मनुष्यसमाज (नेशन) अथवा जाति होती है आर्यों को वेद का उपदेश इस विषय में बतला रहा था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मिलकर आर्यजाति को बनाते हैं और इस जाति में वही प्रविष्ट हो सक्ता है जो वर्णधर्म (*Duty*) पर आरूढ हो (देखो ऋग्वेद मं० १ सूक्त ५१ मंत्र ८) जो वर्णधर्म (*Duty*) के योग्य नहीं है और जो कमाकर निर्वाह नहीं करना चाहता केवल लूट मार से पेट भरता है वह अधर्मात्मा मनुष्य दस्यु है । पूर्वोक्त जाति (नेशन) के चार भाग आपस में ऐसे मिले जुले रहते थे मानों कि एक शरीर के चार अंग हैं। सुख, दुःख, हानि, लाभ, हर्ष, शोक, सब में यह चारों वर्ण एक थे । ब्राह्मण का मुख्य काम सब को उपदेश तथा शिक्षा देना था, क्षत्रिय का काम सब के लिये युद्ध करना और न्याय द्वारा सब की रक्षा करना था, वैश्य का काम सब के लिये कमाना और सब को धन

बांटना था, शूद्र का काम सब की सेवा करना था, चारों वर्णों के इस निकट सम्बन्ध को वे लोग वर्णव्यवस्था* कहते थे। उनको यजुर्वेद के ३१ अध्याय का ग्यारहवां मंत्र बतला रहा था कि वर्णव्यवस्था तब ही पूर्ण उन्नत अवस्था में समझनी चाहिये जबकि प्रत्येक वर्ण अपने आप को आर्यजाति रूपी एक महान् शरीर का एक २ अंग अनुभव करने लग जावे ॥

प्राणिमात्र से प्रेम और परोपकार।

आर्य लोग यजुर्वेद अध्याय ३६ के मंत्र १८ की शिक्षानुसार हृदय से चाहते थे कि हम पृथ्वी भर के सर्व मनुष्यों और प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें और वे सम्पूर्ण मनुष्य तथा प्राणी हमको मित्रवत् जानें। प्रेम का राज्य सर्वत्र फैले और सर्व मनुष्यजाति आनन्द मंगल से जीवन व्यतीत करे, इस वेद वचन के अनुसार वह न केवल मनुष्यमात्र से ही प्रेम करते थे परंच पशु पक्षी की भी हिंसा नहीं करते थे प्रेम की महिमा का पूर्णता से उनको वैदिक उपदेश मिल रहा था फिर क्यों न वे प्रेममय और दयावान् होते।

सत्य

वर्णाश्रमव्यवस्था का स्थिर और जीवित रखना कुछ तुच्छ और साधारण काम नहीं परंच परम धर्म है, आर्य्यजाति के सहस्रों लोगों को एकमत होकर विचरना और सबको भ्रातृभाव से देखना, मिलकर एक दूसरे की रक्षा करना, मिलकर व्यवहार करना, मिलकर भोगों की सामग्री को प्राप्त होना, मिलकर विद्या की वृद्धि करना, मिलकर दुष्टों को दण्ड देना, मिलकर गुरुकुल में विद्या का दान देना, मिलकर संवाद करने और मिलकर एक दूसरे को मोक्षधाम तक लेजाना यह सब परम धर्म के कार्य हैं। मनुष्यों को मिलाने और इकट्ठे करने का यदि पहिला साधन प्रेम है तो इस प्रेम और संगति की रक्षा करने वाला दूसरा साधन सत्य है। यदि व्यवहार में सत्य नहीं, यदि वाणी में सत्य नहीं, यदि मन में सत्य नहीं तो समाज नष्ट भ्रष्ट होजाता है। सत्याचरण सभा, जाति, समाज, व्यवस्था आदि की स्थिति का दूसरा साधन है और इन साधनों पर आर्य लोग ऐसे आरूढ़ थे कि चाहो सर्वस्व नष्ट होजाय परन्तु प्रेम और सत्य को वह छोड़ नहीं

---

* व्यवस्था शब्द के यौगिक अर्थ *Organization* के भी हैं।

सक्ते थे। इन साधनों को छोड़ने वाला सुसाइटी की हिंसा करता है, हिंसा जैसे महान् पातक का भागी वह पुरुष होता है जो प्रेमपूर्वक सत्य व्यवहार नहीं करता, वही अहिंसा की सिद्धि करता है वही सुसाइटी को स्थिर रखता है जो प्रेम तथा सत्य पर आरूढ़ है। उन प्राचीन आर्यों ने सच पूछो तो प्रेम और सत्य का व्रत धारण किया हुआ था और यही कारण है कि वे अभय होकर जीवन व्यतीत करते थे; सुसाइटी की अवस्था ऐसी उत्तम बना ली थी कि उनको मोक्षरूपी जीवन फल के प्राप्त करने का अवसर पूर्णता से मिलता था। उन परोपकारी आर्यों को यह भले प्रकार विदित था कि समस्त व्यवहारों की सिद्धि के लिये सत्यव्रत होना आवश्यक है, उनको यजुर्वेद अध्याय प्रथम का पांचवां मंत्र सत्य के व्रत धारण करने का उपदेश दे रहा था। यदि हम उन नियमों को केवल गिनाते हुये चले जांय जोकि प्राचीन आर्य्यों ने वेद से धारण किये हुये थे तो एक ग्रन्थ में उनकी विस्तारपूर्वक सूची आसक्ती है, पुरुषार्थ को प्रारब्ध से उत्तम मानना, पंच महायज्ञों का करना, नाना प्रकार के कला यंत्रों का निर्माण करना, आश्रमों को मोक्षधाम का मार्ग बनाना, ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान से पूरित होकर आत्मा में निराकार ब्रह्म का दर्शन करते हुये मुक्ति पाजाना उनके महान् जीवन के उद्देश्य होते थे मनुष्य को जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त मुक्ति पाने के लिये जो २ साधन करने चाहियें उनका ज्ञान चारों वेदों में दिया हुआ है। सांसारिक और आत्मिक उन्नति मनुष्य इनके अनुसार पूर्णता से कर सक्ता है। ऋषि, मुनि वेदों को सर्व सत्यविद्याओं का भण्डार मानते आये हैं, विदेशीय विद्वान् जिन्होंने कि वेदों को स्थूलदृष्टि से पक्षपात रखते हुये देखा है वे भी वेदों में नाना विद्याओं के होने की साक्षी दे रहे हैं हम संक्षेप रीति से विदेशियों की साक्षी इस विषय में लिखकर फिर "वैदिक समय का वर्णन" करेंगे।

"कपड़े बुनने का वर्णन ऋग्वेद († २, ३, ६) में है, और नाना पेटा उसी विधि पर बुनना बतलाया गया है जैसा कि वर्त्तमान समय में होता है, बढ़ई का काम लोग उत्तमता से जानते थे और ऋग्वेद (३, ५३, १९) में गाड़ियों

† (विवरण) पहिला अङ्क मंडल का, दूसरा सूक्त का और तीसरा मंत्र का बोधक समझो।

और रथों के बनाने का विधान है। लोहे, सोने और अन्य धातुओं के उपयोग में लाने की विद्या उत्तमता से विद्यमान थी" ॥

"ऋग्वेद (५, ६, ५) में लोहार के काम की विधि पाई जाती है और ऋग्वेद (६,३,४) में सुनारों के लिये सोना पिघलाने का विधान है। ऋग्वेद के मण्डल १ सूक्त १४० मन्त्र १० तथा मण्डल २ सूक्त ३९ मन्त्र ४ में और मण्डल ४ सूक्त ५३ मन्त्र २ में योद्धा के लिये कवच(ज़िरहबक्तर) पहिन कर जाने का विधान है। ऋग्वेद मण्डल २ सूक्त ३४ मन्त्र ३ में सुनहरी खोदों का वर्णन है और ऋग्वेद मंडल ४ सूक्त ३४ मन्त्र ६ में कन्धों और भुजाओं के लिये कवच पहिनने का विधान है। छठे मंडल के सूक्त ४६ मन्त्र ११ में तीरों के नोकदार परों का वर्णन है और इसी सूक्त के २६ व २९ मन्त्रों में संग्राम के लिये रथों और ढालों का वर्णन है। मंडल २ सूक्त ४१ के मन्त्र ५ में उत्तम मकान बनाने का विधान है"।

"मंडल ४ सूक्त ४ के मन्त्र १ में राजपुरुषों के हाथियों पर सवार होने का विधान है, ऋग्वेद मंडल ४ के सूक्त ५७ के पहिले आठ मंत्रों में विस्तारपूर्वक कृषिविद्या का उत्तम विधान है और ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त १०१ के तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें मंत्रों में कूए और हल की सामग्री बनाने तथा बीज बोने इत्यादि कृषिविद्या का विधान है। मंडल १० सूक्त २५ के मंत्र ४ में कूए बनाने की विद्या है और मंडल १० सूक्त ९३ के १३ मंत्र में कूए से पानी निकाल कर खेतों में सिंचन करने की विद्या है। मंडल १० सूक्त ९९ के मन्त्र ४ में नहरों से खेतों में पानी पहुंचाने का विधान मिलता है मंडल ५ सूक्त २७ के मंत्र २ में सोने का सिक्का बरतने का विधान पाया जाता है और मंडल १ सूक्त २५ के मन्त्र ७ से समुद्रों में जहाज़ चलाने की विद्या है। मंडल ४ सूक्त ५५ के मन्त्र ६ में धन उपार्जन करने के लिये विदेशों में जलयात्रा करके जाने की विधि है" ॥

इस प्रकार विदेशियों के उद्धृत वाक्य आर.सी.दत्त ने अपने इतिहास के अध्याय दूसरे तथा तीसरे में संकलन कर दिये हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वेदों में नाना विद्याओं का विधान विदेशीय भी स्वीकार करते हैं।

वैदिक समय का महत्व ।

वेदों की विद्याओं को गिनाना इस समय हमारा काम नहीं है, इसलिये हम इस विषय पर अधिक लेख करने की आवश्यक्ता नहीं समझते अब हम दर्शाना चाहते हैं कि वैदिकज्ञान को आदर्श मानने वाले आर्य्यों ने कैसी विचित्र और अनुपम उन्नति की थी। आदर्श को देखकर जो पुरुष घर को आदर्शरूपी चित्र के अनुसार बनाता है वह स्तुति के योग्य है। सम्पूर्ण ज्ञान, उपासना और विज्ञान काण्ड का चित्र (नक़्शा) मानो वेद है पर जिन पुरुषों ने इस चित्र पर दृष्टि रखते हुये इस के अनुसार शारीरिक और आत्मिक उन्नतिरूपी गृह बनाये मनुष्य जाति में उनकी महिमा महान् रहेगी। ईश्वररचित बीज को लेकर जो किसान हल चलाकर खेत बोता और सहस्रों मन अनाज उत्पन्न करके राजा और प्रजा का पेट भरता है उसका पुरुषार्थ सराहनीय है इसी तरह पर वेदों से नाना विद्याओं के बीज लेकर चारों वर्णों के स्त्री पुरुषों ने उनका विस्तार किया और उस विस्तार का फ़ोटो पुस्तकाकार में आने वाले मनुष्यों के लिये छोड़ गये। वैदिक समय एक मनोहर उद्यान के सदृश हमारे ज्ञान नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हो रहा है। इस बाग़ का एक२ वृक्ष सुन्दर सुगन्धि देता हुआ आकाश से बातें कर रहा है इस उद्यान के सुन्दर लहलहाते पत्ते मीठे फल और रंग बिरंगे फूल व्याकुल हृदय को शान्ति और नवजीवन प्रदान करने वाले हैं। इस उद्यान के एक कोने में कई एक ब्रह्मर्षि जीवन्मुक्त बैठे हुये ब्रह्मविद्या के पुस्तक रच रहे हैं जिनका कि नाम उपनिषद् है। इन उपनिषदों को पढ़ने से दग्धहृदय शान्ति को प्राप्त होते हैं, शोक और भय के समुद्र से पार होने के लिये आत्मा नवीन बल धारण करता है।

"दारा शिकोह" और "शोपनहार" से विद्वान् और महान् पुरुष उनकी महिमा गाते हुये नहीं थकते। प्राचीन ब्राह्मणों के यह पुस्तक जो कि उन्होंने वैदिक समय में वेद के आश्रय से लिखे आजतक ब्रह्मविद्या के शिरोमणि और अनुपम पुस्तक हैं। क्या पृथिवी पर कोई पुस्तक धर्म विषय में ऐसा विद्यमान है जो इन उपनिषदों का लग्गा खा सके। मेक्सम्युलर और शोपनहार तथा स्वदेशीय और विदेशीय सम्पूर्ण विद्वान् एकस्वर से कह रहे हैं कि

ब्रह्मविद्या के अनुपम ग्रन्थ उपनिषद् हैं । काम से कारीगर की महानता का अनुभव होता है। जब हम कहते हैं कि यह गृह अत्यन्त सुन्दर बना है तो इससे यह भी पाया जाता है कि इसका बनाने वाला भी अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान था । जब पृथिवी के विद्वान् इस समय इस बात को अङ्गीकार करते हैं कि ब्रह्मविद्या में उपनिषदें अनुपम हैं तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे ऋषि जिन्हों ने ९ उपनिषदें * यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय की व्याख्या में लिखीं वे सचमुच जीवन्मुक्त और अनुपम पुरुष थे। कोई यह न समझ ले कि वे ऋषि जिन्होंने कि उपनिषदें लिखीं केवल अन्धे भगत ही थे और पदार्थविद्या तथा नाना प्रकार की सांसारिक विद्याओं से शून्य थे। वे चारों वेदों के विद्वान् सम्पूर्ण शास्त्रों के वेत्ता और कलाकौशल और नाना प्रकार के यंत्रादि बनाने में प्रवीण थे और जहां सम्पूर्ण सांसारिक विद्या जाकर समाप्त होती है वहां ब्रह्म विद्या का आरम्भ होता है इसलिये वे सर्वविद्यानिधान थे कठोपनिषद् में जो नाड़ियों की गणना दृष्टान्त देने की रीति से ऋषि ने की है उसको पढ़कर कई विद्वान् ऋषि के आयुर्वेद से विज्ञ होने का निश्चय करते हैं। महात्मा नारद जी का जो वर्णन आता है वह बतलाता है कि नारद जी चारों वेदों के जानने वाले और शस्त्रविद्या, आयुर्वैदिकविद्या तथा नाना प्रकार के कलाकौशल में प्रवीण होकर गुरुकुल से निकले थे परन्तु शोक-समुद्र के पार होना चाहते थे इसलिये वह ब्रह्मवेत्ता ऋषि की शरण में गये, जिसने उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश और ब्रह्म के साक्षात् करने की विधि दर्शाई। जिस तरह आजकल "एनसाइकलोपीडिया" (*Encyclopedia*) में जिस विद्या का वर्णन होता है उसका सारगर्भित इतिहास भी पहिले दिया जाता है इसी प्रकार ब्रह्मविद्या के इतिहास को भली प्रकार मुण्डक उपनिषद् के पहिले वचनों में दर्शाया गया है। कठ उपनिषद् में यम ऋषि ने जब नचि-

* (विवरण) उपनिषदें १० हैं (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) ऐतरेय (८) तैत्तिरीय (९) छान्दोग्य और (१०) बृहदारण्यक । ईशोपनिषद् वास्तव में यजुर्वेद का ४० वां अध्याय है केवल एक दो शब्द बदले हुये हैं इसलिये यदि ईशोपनिषद् को यजुर्वेद का ४० वां अध्याय कहें तो उचित है शेष ९ उपनिषदें उस ब्रह्मविद्या का निरूपण करने वाली हैं जो कि यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में बीजवत् है ।

केता को कहा है कि सुन्दर नानाप्रकार सुरीले बाजे, शीघ्र गमन करने वाली गाड़ियां और नाना प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य्य की सामग्री को जो कि वहां पर गिनाई गई हैं तू मुझ से मांगले परन्तु ऐसा कठिन प्रश्न न कर, ऋषि के इन वचनों से दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो यह कि ब्रह्मविद्या महान् कठिन विद्या है द्वितीय इतिहास वेत्ता इन वचनों से यह आशय निकाल सक्ता है कि जिस समय में यम ऋषि नचिकेता को सांसारिक पदार्थों की यह नामावलि सुना रहा है उस समय में वर्त्तमान अमेरिका से अधिक नहीं तो उसके समान भौतिक ऐश्वर्य्य इस भारतभूमि में गृहस्थियों के यहां अवश्य उपस्थित होगा जिसको कि नचिकेता प्रत्यक्ष देख सकता होगा। यदि कोई भूगोलविद्या (*Geography*) को इन उपनिषदों से संकलन करना चाहे तो कर सक्ता है इस प्रकार का दृष्टान्त कि जिस प्रकार यात्री पूछते २ गान्धार पहुंच जाता है बतला रहा है कि गान्धार में प्राचीन आर्यों का आना जाना था नदियों के समुद्र में गिरने और नाम रूप के छोड़ने के कई दृष्टान्त भूपृष्ठविद्या के उदाहरण हैं। खाये हुये अन्न से क्या २ धातु बनते हैं और भौतिकमन अन्न से पुष्ट होता है यह वे वैद्यक की सूक्ष्म बातें हैं जिन तक कि वर्त्तमान समय के घमंडी पश्चिमी वैद्यों का अभी गमन भी नहीं हुआ। युद्ध के अलंकार, रथों के दृष्टान्त, हवन का वर्णन इत्यादि बातें बतलाती हैं कि उपनिषद्वेत्ता ऋषियों के समय में आर्य्यों ने वेदों से ये सब बातें कर्म द्वारा सिद्ध करली थीं। बिजली को विद्वान् दो प्रकार की मानते हैं इसको प्रश्नोपनिषद् में प्राण और रयि के नाम से दर्शाया है। वे ऋषि कि जिन्होंने इन उपनिषदों को सम्पादन किया उनकी विद्या और महत्व का अनुभव करना आजकल के इन्द्रियाराम और स्थूलदर्शी पुरुषों से कोसों दूर है। एक उपनिषद् बतलाती है कि जिसको ब्रह्मज्ञान होजाता है उसके हृदय की गांठ अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती है, उसके सर्वसंशय निवृत्त होजाते और वह अमृत होजाता है। क्या इस समय पृथ्वी पर कोई विद्वान् ऐसा उपस्थित है जोकि सर्व विद्याओं को निर्भ्रान्त जानता हो अर्थात् सर्वसंशयों से रहित हो, यही उत्तर मिलेगा कि विना पूर्ण योगी और पूर्ण ऋषि के कौन हो सक्ता है? ऐसा ऋषि यदि आजकल हमारे सामने हो तो हम आश्चर्य के सागर में डूब जाते हैं; परन्तु उस समय भी महान् विद्वान् मंत्रदृष्टा और ब्रह्मवेत्ता ऋषियों के आगे जिज्ञासु नम्र भाव से झुकते थे। मुंडक उपनिषद् के अन्त में वह ऋषि

जिसको ब्रह्मज्ञान होगया है अपने मुख से कह रहा है कि "नमः ऋषिभ्यः" अर्थात् ऋषियों को नमस्कार हो, आजकल के एक दो विद्या के विषयों को ही कठिनता से जानते हैं परन्तु वैदिक समय में ऐसी उन्नति पर आर्य्य जाति पहुंच गई थी कि उसमें अनेक जीवनमुक्त ब्रह्मवेत्ता सर्व विद्याओं के निधान ऋषि महर्षि होते थे ।

वैदिक समय में यदि केवल ९ उपनिषदें ही बनी होतीं तौ भी इस समय को हम अनुपम कह सक्ते थे परन्तु अनेक विद्याओं में ऐसे २ ही अनुपम पुस्तक इस समय में बने कि जिनकी तुलना हो नहीं सक्ती ।

आओ हम ब्राह्मण ग्रंथों की ओर दृष्टि दें जो कि ऋषियों के वेदों पर सार रूप से व्याख्यान हैं. ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ, यह चार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं इनका मुख्य उद्देश्य कणादजी के कथनानुसार नाना विद्याओं और कर्मों की परिभाषा रचने का है परिभाषा बनाना कोई सहज काम नहीं है, "कारलायल" (*Carlyle*)सरीखे विद्वानों के विषय में पश्चिमी विद्वान् कहते हैं कि भाषा उनके आगे हाथ बांधे खड़ी रहती थी परन्तु अंग्रेज़ी भाषा ऐसी विस्तृत न थी कि जिसके द्वारा "कारलायल" अपने भाव प्रगट करसक्ता इसलिये उसको नवीन शब्द घड़ने पड़ते थे "वेविस्टर" (*webester*) महाशय जिन्होंने कि अंग्रेज़ी भाषा का कोश रचा है ऐसे विद्वान् थे मानों कि विद्या के सागर से पार होकर आये हैं, परन्तु "कारलायल" और "वेविस्टर" आदि पुरुषों से कहीं बढ़कर वे ऋषि विद्वान् और महान् अनुभवी होंगे जिन्होंने कर्मकाण्ड की सिद्धि के लिये परिभाषा छांटी और वेदमंत्रों के गूढ़ आशय को सृष्टि के अन्दर समाधि द्वारा अनुभव करते हुये शब्दों के अनेक अर्थ प्रगट किये जो कि कपोलकल्पित नहीं परन्तु सत्य२ हैं । उन सरीखा विद्वान् इस समय पृथ्वी पर कोई दृष्टि नहीं पड़ता अनेक विद्याओं के व्याख्यान इन्हों ने सारगर्भित रीति से इन ग्रन्थों में किये हैं कि जिनको पढ़कर मनुष्य चकित हो जाता है और उनके विषय में स्वाभाविक ही कह उठता है कि जिन्होंने ये ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यानरूप रचे, वे विद्या के समुद्र होंगे ।

वैदिकसमय के महत्व का अनुभव कराने वाले ब्राह्मणग्रन्थ पृथ्वी के विद्वानों की बुद्धियों को चकित कर रहे हैं ।

अष्टाध्यायी जिसको महर्षि पाणिनि ने बनाया है व्याकरणशास्त्र का एक अनुपम स्तम्भ है "गोल्डस्टूकर" और कई विद्वान् एक स्वर से कह रहे हैं कि पाणिनि सदृश वैयाकरण को आज तक पृथ्वी ने जन्म नहीं दिया।

"गोल्डस्टूकर" महाशय ने दर्शाया है कि वेद के शब्दों के अर्थ जानने के लिये अष्टाध्यायी आवश्यक साधन है और जिस समय यह ग्रन्थ रचागया उस समय लिपि (लिखने) की रीति आर्य जाति में विद्यमान थी। वैदिक और लौकिक सम्पूर्ण शब्दों का व्याकरण बनाना और फिर थोड़े ही सूत्रों में उसको समाप्त कर देना ऐसा काम है कि मानों समुद्र को घड़े में भरदेना है "यूक्लिड" (*Euclid*) की रचना पर बुद्धिमान् आश्चर्य करते हैं परन्तु पाणिनि की अष्टाध्यायी देख कर वे यह रचना भूल जाते हैं। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं कि व्याकरणशास्त्र का मूल बोधक यजुर्वेद के १७ वें अध्याय का ९१ मंत्र है जो कि इस प्रकार है:—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽअस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२॥ आविवेश ॥
(यजु० अ० १७ मं० ९१)

महाभाष्य (आ० १ पा० १ अ० १) में अति उत्तम रीति से दर्शाया गया है कि किस प्रकार व्याकरणशास्त्र के सम्पूर्ण अङ्गों का इसमें उपदेश किया गया है उसको दोहराना हम यहां पर अनुचित समझते हैं इस मंत्र से पाणिनि से पूर्व अनेक ऋषियों ने व्याकरणशास्त्र बनाया था जिनके कि नाम आदरपूर्वक अष्टाध्यायी में आते हैं जैसा कि शाकल आदि परन्तु उन सब ऋषियों के आशय को संकलन कर सारगर्भित रीति से संसार के सामने रखना परमयोगी पाणिनि का ही काम था। यह वैदिक वर्ण आश्रम मर्यादा की उत्तमता ही थी कि जिसके प्रताप से पाणिनि सरीखे मेधावी ऋषियों को आर्यावर्त्त में जन्म लेकर वैदिक समय के महत्व को अमर कर जाने का निमित्त मिलता था।

पाणिनि महर्षि की अष्टाध्यायी की उत्तमता दर्शाने और उस पर होनेवाली शंकाओं को निवारण करने के लिये महर्षि पतञ्जलिजी ने महाभाष्य रचा है हमारे सामने एक से एक ऋषि बढ़िया आरहा है। किसमें यह सामर्थ्य है कि एक ऋषि को दूसरे से छोटा कह सके सारे ही प्रथम श्रेणी के ऋषि हैं

पतञ्जलिजी की ओर जब दृष्टि करते हैं तो आश्चर्य से सांस बन्द हो जाता है एक अकेला विद्वान् और तीन अनुपम पुस्तकों को रचे, महाभाष्य, योगशास्त्र और चरकशास्त्र। एक पुरुष और उसके आगे शब्दविद्या, योगविद्या और चिकित्साविद्या हाथ बांधे खड़ी हो, फिर यही नहीं कि तीनों ग्रन्थ एक ही शैली के हों योगदर्शन सूत्रों में रचता है महाभाष्य व्याख्यानरूप है चरकशास्त्र को केवल सम्पादन ही किया है आजकल जो लोग कहा करते हैं कि योगी कोई भी परोपकार का काम नहीं कर सक्ते उनको पतञ्जलिजी की ओर देखना चाहिये, तीन पुस्तक परोपकारार्थ लिख कर अपने आप को अमर करगये ॥

वैदिक शब्दों के बल को दर्शाने वाले ग्रन्थ निघन्टु और निरुक्त हैं जिनको कि महर्षि यास्कजी ने रचा है, वर्त्तमान समय में जो "फिलालोजी" (*Philology*) विद्या का दीपक यूरोप में प्रकाशित हो रहा है उसकी क्या सामर्थ्य है कि निरुक्त का लग्गा खा सके। बंगाल के शिरोमणि पंडित सत्यव्रतसामाश्रमी ने निरुक्तालोचन नामी ग्रन्थ प्रकाशित करके निरुक्त की अनुपम महिमा का बोधन कराया है, शब्द विद्या में निरुक्त न केवल अनुपम रचना की पुस्तक ही है परंच वेदों की कुंजी है। एक लोहे के सन्दूक के अन्दर रत्न भरे पड़े हैं परन्तु कुंजी उसकी नहीं मिलती यदि सन्दूक तोड़ते हैं तो रत्न टूटते हैं यदि नहीं खोलते तो रत्न मिल नहीं सक्ते ऐसी दशा में यदि कुंजी मिल जाय तो सम्पूर्ण व्याकुलता दूर हो जाती है। इस समय वेदार्थ लोग मनमानी रीति से कर रहे हैं इस लिये उनको वेदों के रत्न प्राप्त नहीं होते परन्तु प्राचीन आर्य निरुक्तरूपी यौगिक कुंजी से चारों 'वेदों' को खोलकर उसमें से अर्थ रूपी रत्न निकालते थे, यही कारण था कि जिस समय यास्काचार्य सदृश महात्मा भारतवर्ष में विराजमान थे उस समय लोग प्राणों से प्यारा वेद को समझते थे। आज यद्यपि वे ऋषि नहीं रहे तथापि वे अपनी कुंजी हमें दे गये हैं और जिन लोगों ने उनकी इस यौगिक कुंजी से वेदार्थ किये हैं उन्होंने वेदों जैसे रत्नों की झोलियें भर ली हैं। सच्चे फिलालोजी के गुरु पृथ्वी पर महर्षि यास्क हो गये हैं जिनके कि सदृश आजकल दूसरा मिलना दुर्लभ है ॥

पिंगलाचार्यजी ने छन्द विषयक पिंगल सूत्र रचे हैं, गायनविद्या

की फिलासोफी और श्लोक रचने का विद्यालय इसको यदि कहे तो उचित है, जिन सप्त स्वरों का विधान पिंगलजी ने किया है उनकी महिमा करते हुये "हन्टर साहिब" (*W. W. Hunter*) एक स्थल पर लिखते हैं कि यही सात स्वर गायन विद्याका मूल हैं और यही सात स्वर आर्यावर्त्त से निकल कर सर्व देशों में पहुंचे हैं। गन्धर्व विद्या ऐसी रसीली है कि सांप से भयंकर प्राणियों को भी मोहित करलेती है, जिन्होंने इस विद्या को सिद्ध किया और उसके नियम वेद मंत्रों की सहायता से बनाये उनकी महिमा पृथ्वी के गन्धर्व गण यदि एक स्वर से गाकर प्रकाशित करना चाहें तो भी कठिनता से कर सक्ते हैं।

चार आश्रम और चार वर्ण के सम्पूर्ण धर्म (*Duties*) दर्शाने वाले राज विद्या और राजनीति के संस्थापक दीवानी, फौजदारी, माल के विभाग करने वाले सम्पूर्ण मनुष्यजाति के हितकारी वैदिक मर्यादा में पृथ्वी को चलाने वाले महर्षि मनुजी पर हमारी ज्ञान दृष्टि पड़ती है।

महर्षि मनुजी ने जो धर्म उपदेश दिये उनके आशय को लेकर महर्षि भृगु जी ने श्लोक बनाये और उसको संसार में मानवधर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति के नाम से प्रख्यात किया। ब्रह्मचारियों को किस प्रकार भिक्षा वृत्ति से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करते हुये वेदों का अभ्यास करना चाहिये यह वही लोग जान सक्ते हैं जिन को कि मनुस्मृति पढ़ने का अवकाश मिला है।

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्" ॥

इस वाक्य में उस द्विज ब्रह्मचारी को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की आज्ञा है जो चार, तीन, दो अथवा एक वेद सांगोपांग* पढ़ कर आवै, वैदिक समय में आर्यों को यह नियम दर्शाता है कि उस समय आर्यों की विद्या सभा (यूनीवर्सिटी) की उच्च से उच्च "टैक्स्टबुक" वेद थे, चारों वर्णों के गृहस्थों को किस प्रकार और क्या २ आजीविका करनी चाहिये ? विवाहित स्त्री पुरुष किस प्रकार बरताव करें ? विधवा का नियोग और पुनर्विवाह किस प्रकार हो ? बारह प्रकार के पुत्र और आठ प्रकार के विवाह क्या हैं ? वानप्रस्थ संन्यास किस प्रकार लेना चाहिये ? इन सम्पूर्ण उच्च विषयों की ऐसी विस्तार पूर्वक व्याख्या की है मानो की मनु जी सम्पूर्ण पृथ्वी के नाना प्रकार के मनुष्यों मे से

*मुन्डक उपनिषद् में वेद के छः अंगो का वर्णन किया हुआ है मालूम होता है कि प्राचीन समय में आर्य लोग वेदों को यथाक्रम अर्थात् अंग उपांग सहित पढ़ते थे।

होकर उनके गुण कर्म स्वभावों को स्मरण रखते हुए उन के हितार्थ शास्त्र निर्माण कर रहे हैं। राजधर्म का व्याख्यान ऐसा उत्तम और अनुपम है कि आजतक सम्पूर्ण पृथ्वी के राजे महाराजे उसी को जीवन में चरितार्थ करके दर्शा रहे हैं, राजनीति, युद्ध के कर्म, राजसभा, जल स्थल पर महसूल की विधि, परिषद् स्थापना (*Cabinet or Executive Committee*) आदि विषयों को अत्युत्तमता से दर्शाया है फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान "जिकालियट" (*Jacolliot*) महाशय अपनी पुस्तक में मनुजी की अनुपम महिमा के गीत गाते हुये दर्शा रहे हैं कि इस मनुस्मृति के अनुवाद यूनान मिश्र और रोमन राज में वर्ते जाते थे, रोमन कानून के नियमों को मनु श्लोकों के संग २ लिखकर उस पुस्तक में इस विद्वान् ने सिद्ध कर दिखाया है कि सम्पूर्ण उन्नति जातियों के कानूनदानों के आदि गुरु महर्षि मनु ही हैं।

मनुस्मृति का निम्नलिखित वाक्य वैदिक समय के महत्व को दर्शा रहा है॥

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वे मानवाः" ॥

इतिहासवेत्ता इस वाक्य से न केवल यही सीखता है कि आर्यावर्त्त एक शिरोमणि देश था जिसमें कि चारों वर्ण बाह्य शत्रुओं से निर्भय होकर उच्च से उच्च उन्नति के शिखर पर थे परन्तु उसको निश्चित रीति से पता लगता है कि आर्यावर्त्तीय लोगों का सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों के साथ क्या सम्बन्ध था, यह श्लोक बतलाता है कि "पृथ्वी के सर्व मनुष्य आर्यावर्त्त निवासी अग्रजन पुरुषों से आन कर अपने २ योग्य चरित्र और नाना विद्याओं को सीखें" इस से पाया जाता है कि महर्षि मनु के समय में आर्यावर्त्त पृथ्वी का विद्यालय और प्राचीन आर्य लोग जगत् के गुरु थे वैदिक समय के इस गौरव को अनुभव करते हुए उक्त महाशय इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

"मैं अपने ज्ञान नेत्रों से भारतवर्ष को अपना राज शास्त्र, अपने संस्कार, अपनी नीति, अपना धर्म मिश्र, ईरान, यूनान, और रोम को देते हुये देख रहा हूं कि पुराने भारतवर्ष के महत्व का अनुभव करने के लिये वह सम्पूर्ण विद्या जो वर्त्तमान समय में यूरोप में सीखी जाती है किसी काम नहीं आसक्ती, पुराने आर्यावर्त्त के महत्व को अनुभव करने के लिये हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जैसे कि एक बालक नई रीति से शिक्षा धारण करता है" इस से बढ़कर वैदिक समय की महिमा और क्या हो सक्ती है।

रामायण के कर्त्ता महाकवि वाल्मीकिजी हुये हैं जिस मधुर कविता में उन्होंने यह ग्रन्थ रचा है उसकी कविजन अत्यन्त प्रशंसा करते हैं "ग्रीफिथ" साहिब को रामायण की कविता ने ऐसा मोहित किया कि उन्होंने यूरोप निवासियों तक इस कविता का रस पहुंचाने के लिये अंग्रेज़ी कविता में इसका अनुवाद किया है, रामायण न केवल महाराजा रामचन्द्रजी के क्षात्रधर्म को दरशाता है, प्रत्युत आर्यों के परिवारों में धार्मिक जीवन का अनुभव कराता है, सेनाओं का वर्णन ऐसी उत्तम रीति से इसमें किया गया है मानो कि पढ़ने वाला युद्ध भूमि में बिठलाया जा रहा है। रामचन्द्र का लंका से अयोध्या में पुष्पक विमान में बैठकर एक दिन के अन्दर ही पहुंच जाने का वर्णन पढ़ते हुये इतिहासवेत्ता को वैदिक समय के शिल्पियों की महिमा का दृश्य मिलता है। वर्त्तमान पश्चिमीय शिल्प विद्या की उन्नति के दो स्तम्भ रेल और तार हैं और इसीकारण पश्चिमीय उन्नति अनेक छिद्र रखती हुई भी ऐसे घमण्ड को प्राप्त होरही है कि अपने साथ किसी की तुलना नहीं करती परन्तु जिन्होंने पुष्पक विमान बनाये थे वे शिल्पी कैसे महान् होंगे उनका अनुभव बुद्धिमान ही कर सक्ते हैं, यदि रामायण में विना इस विमान के और किसी वस्तु का वर्णन न होता तो भी यह पुस्तक वैदिक समय के शिल्पियों के महत्व को दर्शाने के लिये अनुपम था परन्तु इस में नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों का ब्योरा पाया जाता है जिसके पाठ करने से यूरोप और अमेरिका के "डिनामाइट" तुच्छ प्रतीत होते हैं इस ग्रन्थ द्वारा प्राचीन समय की यात्रा कराने वाले महान् कवि वाल्मीकिजी के उपकार को हम भूल नहीं सक्ते।

वैदिक समयरूपी उद्यान में भ्रमण करते हुये हमें कई ऋषियों की एक मण्डली दिखाई देती है इस मण्डली का उद्देश्य वेदविद्या के गम्भीर विषयों को युक्ति द्वारा सिद्ध करके मन के संशयों को निवृत्त करने का है, इन ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में उन महान् विषयों को युक्ति से सिद्धकर दिखाया है कि जिसको वर्त्तमान यूरोप के विद्वान् भी युक्ति से सिद्ध करने का साहस नहीं कर सक्ते वर्तमान यूरोप और अमेरिका की दार्शनिकदशा, प्रसिद्ध विद्वान् "लैंग" साहिब की पुस्तक * के पाठ करने से भली प्रकार विदित हो सक्ती है इस

* "*The problems of the future.*" *By S. Laing, 1894 London*

पुस्तक का नाम "भावीकाल के लिये प्रश्न" है और ग्रन्थकर्त्ता इसमें दर्शाता है कि वर्तमान पश्चिमीय विद्वान् इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं इस लिये वह आशा करते हैं कि भावीकाल के महान विद्वान् अपनी महान् विद्या के बल से इन प्रश्नों का अपने लिये उत्तर देसकेंगे, आओ हम "लैंग" महाशय के शब्दों में ही उन प्रश्नों की सूची सुनें जिनका वर्तमान यूरोप और अमेरिका के विद्वान् यथार्थ रीति से उत्तर दे नहीं सक्के ॥

" इस ग्रन्थ में मैं भावीकाल के प्रश्नों का ब्योरा यथाशक्ति दूंगा जो प्रश्न कि आजकल उठाये गये हैं परन्तु जिन्का यथार्थ उत्तर नहीं मिला और उत्तर के लिये उत्कट अभिलाषा हो रही है इन में से कई तो पदार्थ विद्या सम्बन्धी हैं जैसे कि पृथ्वी कब से बनी? सूर्य और तारागण की बनावट और प्रकृति का अन्तिम स्वरूप क्या है? गति किसे कहते हैं? आदि सृष्टि में देहधारी कैसे उत्पन्न हुये? मनुष्य जाति कब से है?

"लैंग" ने जितने प्रश्न उठाये हैं वे सब प्रकृति और दर्शन सम्बन्धी ही है, इन प्रश्नों के उत्तर सांख्यशास्त्र ज्योतिश्शास्त्र और सूर्य्यसिद्धान्त में महान् अनुभवी तीव्र बुद्धि वाले ऋषियों ने इस उत्तमता से दिये हैं कि संशय नाम को न रह जावे। यह प्रश्न प्रत्येक समय में विद्वानों के सामने आते हैं परन्तु प्राचीन आर्य्य ऋषि वेद के आश्रित होकर इनका यथार्थ उत्तर देते रहे और परोपकारार्थ पुस्तकों में भी लिख गये, वर्त्तमान यूरोप के विद्वानों की सामर्थ्य कहां कि विना वेद अथवा वैदिक ऋषियों की सहायता के इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर पा सकें। लैंग महाशय ने जितने यह प्रश्न लिखे हैं वे सब विशेषकर प्राकृत पदार्थ सम्बन्धी ही हैं, यदि इन प्रश्नों में आत्मा और परमात्मा आदि अन्य सूक्ष्म विषय भी मिलादें तो भी उनका उत्तर ऋषियों के ग्रन्थों से मिल सक्ता है। पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त के कर्त्ता जैमिनि, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल और व्यास सम्पूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने के लिये वैदिक समय में विचरते हुये दृष्टि पड़ते हैं। लोग वर्त्तमान यूरोप को उन्नति के शिखर पर दर्शाते हैं जो कि इन कठिन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सक्ता, परन्तु दर्शन शास्त्रों के छः ऋषि प्रकृति आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नों को छः भागों में बांट कर जो उत्तर दे गये हैं उन ऋषियों को हम किस उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ समझें,

आजकल हमारी बुद्धि उस वैदिक समय रूपी हिमालय की ओर देखती हुई डगमगा जाती है।

आयुर्वेद सम्बन्धी दो मुख्य शास्त्र हैं जिनका नाम सुश्रुत और चरक है, सुश्रुत के निर्माणकर्त्ता महर्षि धन्वन्तरि जी हैं, सुश्रुत का अनुवाद अरब, इटली और जर्मनी की भाषाओं में होचुका है और चरक जिसको कि चरक महर्षि ने निर्माण किया और पतञ्जलि ऋषि ने सम्पादन किया है उसका अनुवाद भी अरबी भाषा में होचुका है और हन्टर साहिब के वचनानुसार प्राचीन यूरुप के वैद्यों की पुस्तकों में उसके वचन उद्धृतरूप से मिलते हैं रसायनविद्या (*Chemistry*)वनस्पतिविद्या (*Botany*) जंगमविद्या (*Zoology*) खनविद्या (*Minerology*) शरीर तंत्रविद्या (*Physiology*) शल्यविद्या (*Surgery*) कायचिकित्सा (*Medicine*) पदार्थविद्या (*Phisical Science*) अगाद अथवा विष निवारक विद्याओं (*Antidotes*) का पूर्णविस्तार से इन दो ग्रन्थों में वर्णन पाया जाता है।

शल्यविद्या का वर्णन करते हुये डाक्टर 'रायल' लिखते हैं कि "आर्यों की "*Surgery* (शल्यविद्या) के अन्तर्गत छेदन, भेदन, लेखन सीवन आदि क्रिया थीं और ये सर्व क्रिया नानाप्रकार के शस्त्रों से की जाती थीं जिनका व्यौरा इस प्रकार से है—यंत्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, शृङ्ग, अलाबु और जलायुका।

राजा सिकन्दर जब इस देश में आया तब सांप के विष निवारण करने वाले दो वैद्यों को आर्य्यावर्त से लेगया और यूनान के महान् पुरुष हारूंउलरशीद ने मानक और सुलेह नामी दो आर्य्य वैद्यों को अपनी चिकित्सा के लिये रक्खा हुआ था। ठाकुर साहिब राणा भगवन्तसिंहजी "आर्य आयुर्वेद के इतिहास" नामी पुस्तक में लिखते हैं कि वर्त्तमान यूरोप की वैद्यक में शिर के छेदन और सीवन का एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता जबकि भोज प्रबन्ध नामी ग्रन्थ से पाया जाता है कि दो वैद्यों ने महाराजा भोज का शिर छेदन करके फिर सी दिया था।

क्लोरोफार्म सरीखी एक औषध प्राचीन आर्य्यलोग छेदन कर्म के समय उपयोग में लाया करते थे जिसका कि नाम उक्त ठाकुर साहब ने संमोहनी लिखा है और दूसरी औषध जिससे कि रोगी को चेतन करते थे उसका नाम

संजीवनी बतलाते हैं। सुश्रुत ग्रन्थ के पाठ करने से यह विदित होता है कि उस समय पृथ्वी पर आयुर्वेद शास्त्र के प्रचारार्थ इस देश के वैद्य जाया करते थे, वैद्य खन्नीलालजी शास्त्री अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मांसभक्षणनिषेध" में इस विषय पर इस प्रकार लिखते हैं:-

"चरक का मनन करने से यह अच्छे प्रकार से विदित हुआ है कि भगवान् आत्रेय एक स्थान पर ही सकल व्याख्यानों को नहीं सुनाते थे किन्तु देश देशान्तरों में जाते थे, शिष्य और सकल सामग्री उनके संग रहती थी, कभी कहीं और कभी कहीं ठहरते और अपने सकल कार्य्यों का आरम्भ किया करते थे, इसलिये उन्होंने अपने शिष्यों को यह भी उपदेश किया कि अमुक२ देश वासी अमुक२ भोजन किया करते थे ॥ यथाः—

बाल्हीकाः पल्लवाश्चीनाः सुलीका यवनाः शकाः।
माषगोधूममार्द्वी शास्त्रवैश्वानरोचिताः ॥
क्षीर सात्म्यास्तथा प्रत्था मत्स्यसात्म्याश्च सैन्धवाः।
अश्मकावर्तकानां तु तैलाम्लं सात्म्यमुच्यते ॥
शाकमूलफलं सात्म्यं विद्यान् मलयवासिनाम्।
सात्म्यं दक्षिणतः पेपामंथश्चोत्तरपश्चिमे।
मध्यदेशे भवेत्सात्म्यं यवगोधूमगोरसाः।

(चरक ६ चिकित्सक स्थान अध्याय ३०)

भगवान् चरक कहते हैं कि बाह्लीक, पल्लव, चीन, सुलीक, यवन और शक देश के रहनेवाले उर्द, गेहूं, अंगूर को खाकर तृप्ति करते हैं इस से उनको यह भोजन अधिक हित है ये पुरुष शास्त्रविद्या में अत्यन्त चतुर हैं और शिल्प कला आदि को अच्छी प्रकार जानते हैं ॥

बाह्लीक बलख बुखारे का नाम है, पल्लव पुराने फारिस देश का नाम है, चीन को आप जानते हो जो एक अत्यन्त प्रसिद्ध देश है और जिसकी मनुष्य संख्या भारतवर्ष से भी दूनी है, सुलीक एक देश भारत के पश्चिम उत्तर में था, यवन देश यूनान देश का नाम है, शक देश तिब्बत और तातार का नाम है, प्राच्य देश अर्थात् ब्रह्मा देश में जिसको बरमा कहते हैं, इस में मनुष्य दूध ही विशेषकर खाया करते थे, सैन्धव जिसको सिन्ध कहते हैं मछली खाकर

वृत्ति करते थे, अश्मक और आवर्तक इन दो देशों में तेल और अम्ल पदार्थ अधिक खाये जाते थे, मलय पर्वत के वासी केवल मूल और फल ही खाकर जिया करते थे; दक्षिण के लोग यवागू (खिचड़ी) खाते थे, उत्तर और पश्चिम अर्थात् कश्मीर आदि देश चांवल ही खाकर वृत्ति करते थे, मध्य देश में गेहूं और दूध मुख्य भोजन था।

इस प्रमाण से सब को यह सिद्ध होने में कुछ भी सन्देह नहीं दीखता कि सिंध को छोड़कर अनुमान सकल एशिया अर्थात् जम्बूद्वीप मांस भक्षी नहीं था ”

इतिहासवेत्ता इससे न केवल यही सिद्ध कर सक्ता है कि सिन्ध को छोड़कर भारतवर्ष तथा जम्बूद्वीप के अन्य देश और यूनान मांस भक्षण नहीं करते थे प्रत्युत वह यह भी देखता है कि चीन, ईरान, तुर्किस्तान, यवन आदि देशों में वेद शास्त्रों तथा कलाकौशल का प्रचार भी भारतवर्ष के सदृश अति उत्तम रीति पर था।

सुश्रुत में पहिले ही मेडीकेल कांग्रेस (*Medical Congress*) का वर्णन मिलता है और एक स्थल पर सुश्रुत में जहां गर्भ का रूप दर्शाया है कि प्रथम मास में क्या स्वरूप होता है वहां पर धन्वन्तरि जी ने अनेक वैद्यों के नाम उन्की सम्मति प्रकाश करने के लिये लिखकर फिर अन्त में अपनी सम्मति प्रकाश की है जिससे स्पष्ट पाया जाता है कि धन्वन्तरि जी से पहिले अनेक वैद्य उस वैदिक समय में होचुके थे।

“ठाकुर साहब गोन्डाल” लिखते हैं कि आयुर्वेद का मूल अन्य शास्त्रों के समान वेद में ही मिलता है यथाः—

“ऋग्वेद मंडल २ सूक्त ७ मंत्र १६ में आयुर्वेद का विधान है। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११७ मंत्र १३ में च्यवन अवलेह जैसी पुष्टिकारक औषधियों का विधान है ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११६ मंत्र १५ में शल्यविद्या (सर्जरी) का तथा टूटी हुई टांग के स्थान में लोहे की कृत्रिम टांग लगाने की विद्या है, ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११६ मंत्र १६ में अंधों के लिये कृत्रिम आंखें लगाने की विद्या दर्शाई गई है” आयुर्वेद शास्त्र जो कि सम्पूर्ण लौकिक विद्याओं की अमूल्य खान है उसके महत्व को सर्व देशों के विद्वान् स्वीकार करते हैं।

वैदिक समय से लेकर आज तक पृथ्वी के सम्पूर्ण वैद्यों के गुरु वास्तव में पूर्ण विद्वान् परम योगी धन्वन्तरि और परम मेधावी महर्षि चरक ही रहे हैं ।

वैदिक समय का एक महत्व यही प्रतीत होता है कि इसका एक २ ऋषि अपने २ विषय में जगत् गुरु ही रहा है ।

आज कल वे लोग जिन्होंने इनसे ही सीखकर बनस्पतिविद्या, शल्य-विद्या, पदार्थविद्या, रसायन विद्याओं में थोड़ी सी उन्नति की है अपने आप को महान् उन्नत बतलाते हैं तो उस समय के इन वैदिक ऋषियों को जिन्होंने कि इन से बढ़कर और भी कई विद्याओं में वेद के आश्रय से पूर्ण उन्नति की थी किससे उपमा दें ?

इस उद्यान की यात्रा करने वालो ! ज़रा सुनो तो सही कि सामने से कैसे मीठे राग की ध्वनि आरही है, वह देखो ऋषि नारदजी अपनी बीना बजारहे हैं, यात्रा की सारी थकावट इस मनमोहनी वीणा को सुनते ही दूर होजाती है आओ तो देखें गन्धर्ववेद के कौन आचार्य सामवेद का गायन कर रहे हैं ? शिष्यगण बैठे हुये हैं सामवेद का गायन महर्षि नारदजी उनको वीणा द्वारा सुना रहे हैं किसी शिष्य के हाथ में तानपूरा यंत्र है और कोई वादित्र बजा रहा है कोई जलतरंग लिये बैठा है, नारद संहिता का ग्रन्थ सब के सामने धरा हुआ है, इस आर्ष ग्रन्थ में "स्वर, राग, रागनी, समय, ताल, ग्राम, तान आदि की विद्या सम्पूर्ण वर्णन की हुई है । जिस समय सर्व शिष्यगण महा-वामदेवगान का आलाप करते हैं उस समय मन शान्ति धारण को करता हुआ ईश्वर के प्रेम में लीन हो जाता और पृथ्वी पर गायनविद्या के आचार्य्य महर्षि नारदजी का धन्यवाद करता है ।

जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारी दृष्टि एक कलाभवन पर पड़ती है इसके अन्दर जाते ही विचित्र रचना दीख रही है, अर्थवेद के एक आचार्य महर्षि विश्वकर्मा नाना प्रकार के विमान और कला यंत्र बनाने की विधि बतला रहे हैं, इस कला भवन के एक कोणे में श्रीकृष्ण से विद्वान् रणभूमि में रथ चलाने की विधि दर्शा रहे हैं, कहीं नल से विद्वान पाक विद्या में नियुक्त हो रहे हैं, मय से कई इन्जीनियर बिल्लौरी महल बनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वराहमिहिर से शिष्यगण और शुक्रनीति के निर्माणकर्त्ता नाना प्रकार के कोट (किले) सड़कें, पुलें बांधने के करतब यहां से ही सीख रहे हैं, कई शिल्पीजन "अशवत्री"

नामी जहाज़ बना रहे हैं, अर्थवेद के इतिहास की ओर जब दृष्टि करते हैं तब मुण्डक उपनिषद् बतलाती है कि अर्थवेद तथा ब्रह्मविद्या के प्रथम गुरु महर्षि ब्रह्माजी हुये हैं जिन्हों ने कि मनुष्यजाति को अर्थ और परमार्थ के उत्तम रत्नों से सुभूषित कर दिया था ॥

प्राचीन आर्यों की विद्या का एक और ज्योतिस्तम्भ है जिसका नाम ज्योतिष् शास्त्र है, इसके मुख्य ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त आदि हैं, सूर्यसिद्धान्त आदि में गणित विद्या, बीजगणित (*Algebra*) रेखागणित (*Euclid*) भूगोल (*Geography*) खगोल (*Astronomy*) और भूगर्भविद्या (*Geology*) का वर्णन है ॥ पृथ्वी को बने कितने वर्ष हो चुके हैं? ऐसे २ महान् प्रश्नों का उत्तर ज्योतिष्शास्त्र से मिल सक्ता है "कोलब्रुक" (*Colebrook*) से विद्वान् इसकी प्रशंसा कर रहे हैं और जहां तक जिज्ञासुओं ने खोज की है वहां तक यही पता लगता है कि सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिषविद्या में सब के गुरु हैं। ज्योतिष्शास्त्र का मूलवेद है इसको भली प्रकार पं० बालगंगाधर तिलक की प्रसिद्ध पुस्तक* दर्शा रही है, तिलक महाशय इस पुस्तक में ऐसा लिखते हैं कि:—

" ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८५ मंत्र १३ में अर्जुनी और अघा दो नक्षत्रों का वर्णन है और इसी सूक्त में साधारण रीति से नक्षत्रविद्या चन्द्र की गति का विधान है और दर्शाया है कि ऋतुओं के परिवर्तन का कारण सूर्य है। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ में ऋतुओं का फिर वर्णन मिलता है और इसी सूक्त के ४८ मंत्र में वर्ष के दिनों का ब्यौरा है और निरुक्त(७–२४) के अनुसार अयन का वर्णन है मध्यवर्ती मास का वर्णन ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २५ मंत्र८ में मिलता है और ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २४ मंत्र ८ में राशि मार्ग का वर्णन है और ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ४१ मंत्र ४ तथा मंडल १० सूक्त ८५ मंत्र १ और मंडल ५ सूक्त ४५ मंत्र ७ व ८ इसी राशि मार्ग का वर्णन करते हैं तथा ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ मंत्र ११ भी इसी राशि विद्या का विधान करता है" (देखो पृष्ठ १५८)

" प्रोफेसर 'लडविग' (*Professor Ludwig*) ऋग्वेद के मंडल १ सूक्त ११० मंत्र २ तथा मंडल १० सूक्त ८६ के मंत्र ४ में अयन (*Ecliptic*) का

* " *The Orion or researches into the antiquity of the Vedas* " *by Bal Gangadhar Tilak B. A. L. L. B. Poona* (1893) *p. p.* 157-197

व्यास (*Equator*) की ओर सरकना तथा पृथ्वी की कीली (*Axis*) का वर्णन बतलाते हैं "

" यह अब सर्वसम्मति से माना जाता है कि सप्तर्षि तारों का वर्णन ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २४ मंत्र १० में मिलता है ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त ४० में सूर्य ग्रहण का वर्णन है और इसी सूक्त के मंत्र ५ के यह शब्दः— "भुवनान्यदीधयुः" सूर्य ग्रहण के बोधक हैं और इस से अगले मंत्र में यह शब्द आते हैं " तुरीयेण ब्रह्मणाविन्दद्त्रिः " में " तुरीयेण ब्रह्मणा " इसके अर्थ यह करता हूं कि तुरीय द्वारा. सिद्धान्तशिरोमणि (११-१५) में एक यंत्र का नाम तुरीय (*Quadrant*) है और इसी प्रकार का कोई यंत्र अवलोकनार्थ होगा ब्रह्म शब्द के अर्थ मंत्र के हैं तथा ज्ञान अथवा ज्ञान के साधन के, ऋग्वेद मंडल २ सूक्त २ मंत्र ७ में यह शब्द क्रिया के अर्थ में आता है इस लिये उक्त शब्दों के अर्थ तुरी द्वारा के हुये ॥ ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १०५ मंत्र १० में पांच ग्रहों (*Planets*) का विधान है और ऋग्वेद मंडल ३ सूक्त ३२ मंत्र २ तथा मंडल ९ सूक्त ४६ मंत्र ४ में शुक्र और मन्थन का वर्णन है "

" ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १२३ में वेन ग्रह का वर्णन है और इसी ग्रह को पश्चिमी विद्वान् 'विनस' (*Venus*) कहते हैं ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६१ का १३ मंत्र जो निम्न लिखित है ज्योतिषविद्या में हमें बहुत कुछ उच्च शिक्षा देता है "**सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् । श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥**"

"इसमें अलंकार की रीति से ऋभवस् को वर्ष की तीन ऋतुएं बतलाया गया है इससे पहिले ग्यारहवें मंत्र में बतलाया गया है कि "यहां उन्होंने बारह दिन विश्राम किया, फिर चक्कर नया आरम्भ हुआ और पृथ्वी ने नये फल उत्पन्न किये, नदियां बह रही हैं वृक्ष पहाड़ों पर लग रहे हैं और पानी समुद्रों में भर रहा है" और अब हम तेरहवें मंत्र का अर्थ करते हैं बारह दिन के विश्राम से ऋभवस् उठे और प्रश्न करने लगे कि किसने हमको जगाया है सूर्य उत्तर देता है कि श्वान ने, चांद के वर्ष में यदि १२ दिन जोड़े जावें तब वह सौर वर्ष होजाता है, इसलिये ऋभवस् अर्थात् ऋतुओं के १२ दिन के विश्राम करने का भेद खुलगया और श्वान से अभिप्राय "डोगस्टार" (*Dog star or Canis Major*) से

है। इस श्वान तारे के वर्णन से वसन्त ऋतु का बोधन होता है इसी प्रकार पंडित तिलक जी ने कई ज्योतिष् विद्या के शब्दों के नाम मूलवेद मंत्रों में दिखाये हैं जिससे पता लगता है कि ज्योतिश्शास्त्र वेद मंत्रों का व्याख्यान रूप ही है ॥

महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण में फल्गुनी, प्रोष्ठपद आदि कई नक्षत्रों का वर्णन किया है जिससे भी पाया जाता है कि यह शब्द आर्ष ग्रन्थों में आये हैं। मनुजी ने नक्षत्र नाम वाली कन्या से विवाह का निषेध किया है जिससे विदित होता है कि प्राचीन समय में ज्योतिश्शास्त्र का बहुत प्रचार था। बनारस के पण्डित बापूदेव शास्त्री जी इसी प्राचीन गणितविद्या के बल से वर्त्तमान "केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी" (*Cambridge University*) के कठिन से कठिन गणित सम्बन्धी प्रश्नों का प्राचीन सुगम शैली पर उत्तर देने के कारण इस समय में प्रसिद्ध होचुके हैं "हन्टर" साहिब लिखते हैं कि "ब्राह्मण ज्योतिषियों की महिमा जब जगत् में फैली तब उन्की पुस्तकें अर्बी भाषा में अनुवाद की गईं और इसी प्रकार यूरोप में पहुंची। सन् १७०२ ई० में जब कि फ्रान्स के एक महान् ज्योतिषी "डिलाहायर" (*De la Hire,*) ने तारों की एक नामावलि भेजी थी तो उस समय जयपुर के महाराजा जयसिंहजी ने अशुद्धियां निकाली थीं"

बनारस, जयपुर, उज्जैन, श्रीनगर आदि अनेक स्थानों पर प्राचीन समय में ज्योतिष् के गृह बने हुये थे, आज कल केवल बनारस में मान मन्दिर प्राचीन ज्योतिष् के महत्व को खंडरात के रूप में बोधन करा रहा है। यद्यपि ज्योतिष् गृह और यंत्र इस समय लुप्त होरहे हैं तथापि सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष शास्त्र अपनी अनुपम ज्योति से जाज्वल्यमान हैं और अपने प्रकाश से वैदिक समय के महत्व की ओर पृथ्वी के ज्योतिषियों को आकर्षण कर रहे हैं॥

आज कल "लायल" सरीखे पश्चिमीय विद्वानों ने भूगर्भविद्या में आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया है परन्तु अभी वर्त्तमान भूगर्भवेत्ताओं की दशा सूर्यसिद्धान्तादि और मनुस्मृति आदि शास्त्रों के ऋषियों के सन्मुख बहुत ही न्यून है। जिस उच्च अवस्था तक कि भूगर्भविद्या पहुंच सक्ती है और पृथ्वी की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, की व्यवस्था लगाना जो इस्का अन्तिम उद्देश्य होसक्ता है वहां तक प्राचीन ऋषियों ने इस विद्या को वेद मंत्रों की

सहायता से पहुंचा दिया था जिसका कि समझना भी आजकल के विद्वानों के लिये कठिन होरहा है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय श्लोक ५२, ५७ तथा अध्याय ३ श्लोक ३०४ के विषय में स्ट्रेन्ज * साहिब ऐसा लिखते हैं:—

"पृथ्वी के मन्वन्तरों का सिद्धान्त निस्सन्देह उस दृश्य से बहुत मिलता है जिस्का कि ज्ञान हमें अभी यूरोप में हुआ है अर्थात् यह कि पृथ्वी के कई भाग विशेष समय पर चिरकाल बरफ से ढप कर बन्जर होजाते हैं और फिर किसी समय के पश्चात् हरे भरे होने लगते हैं ॥ प्राचीन आर्य्य लोग कहां से इस ज्ञान को धारण करते थे? यह निश्चय करना हमारे लिये कठिन है पर उन्होंने मन्वन्तरों का जो ब्योरा बांधा है उसके चिन्ह इस समय हमें ज्ञान द्वारा प्रतीत होने लगे हैं" ॥

यूरोप का विद्वान् स्ट्रेन्ज अपनी पुस्तक में भूगर्भविद्या का वर्णन करता हुआ प्राचीन आर्य्यों के मन्वन्तरों के सिद्धान्त की प्रशंसा करता और आश्चर्य होता है कि आर्य्यों ने ऐसा उच्च ज्ञान "जिआलोजी" का कहां से धारण किया? आर्य्यों ने यह ज्ञान वेद से धारण किया था और इसी के बल से लौकिक और पारलौकिक सब प्रश्नों के यथार्थ उत्तर दिये थे। सन् १८८८ में आर्य्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्रीमान पं० गुरुदत्तजी एम. ए. ने दर्शाया था कि ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १८ के ३ मंत्र में जो कल्प शब्द आता है यथा :- " सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।"

उस कल्प की वर्षों में गिनती अथर्व काण्ड ८ अनुवाक १ सूक्त २ के मन्त्र २१ में जो निम्न लिखित है दर्शाई हुई है:—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः । इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनुमन्यन्तामहृणीयमानाः २१ ॥"

इसका अभिप्राय यह है कि दशलाख पर्य्यन्त शून्य देने के पश्चात् २,३, ४, का योग करने से कल्प के वर्षों की गणना को जानो यथा:—

४३२०००००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष कल्प की संज्ञा है उस व्याख्यान में श्रीमान् पं० गुरुदत्त जी ने सूर्य्यसिद्धान्त आदि की महिमा वर्ण-

The Development Of Creation on the Earth P. 68 and 108 by T. L. Strange

मान पश्चिमी ज्योतिश्शास्त्रों पर दिखाते हुये सिद्ध किया था कि ज्योतिश्शास्त्र के मूल विधायक कई मंत्र वेदों में मिलते हैं। *

यद्यपि इस वैदिक समय के अनुपम महत्त्व को दर्शाने वाले कई आर्ष ग्रन्थ और हैं परन्तु हम उनकी ओर स्थानाभाव के कारण न जाते हुये इतिहास सागररूपी महाभारत ग्रन्थ की ओर आते हैं यह ग्रन्थ महर्षि व्यास का बनाया हुआ है इस में यद्यपि बहुत कुछ पीछे से मिलाया गया है परन्तु इतिहासवेत्ताओं के लिये सत्य का इससे ग्रहण करना बहुत कठिन नहीं है वैदिक क्षत्रियों के धर्म युद्ध, राजनीति, सेना, राजसभाओं का वर्णन शस्त्र अस्त्र विद्या का ब्यौरा इसमें भली प्रकार मिलता है, यह ग्रन्थ दर्शाता है कि श्रीमान् महाराजा स्वयम्भू से लेकर महाराजा युधिष्ठिर पर्य्यन्त अनेक चक्रवर्ती सार्वभौम राजे इस देश में हो चुके हैं मनुस्मृति में भी स्वयम्भू आदि अनेक चक्रवर्ती राजों के नाम मिलते हैं।

मैत्री उपनिषद् नामी ग्रन्थ में सत्रह चक्रवर्ती राजों के नाम दिये हुये हैं महाभारत से निश्चय होता है कि स्वयंभू राजा से लेकर पांडव पर्य्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती सार्व भौम राज रहा है और जब कि वैदिक समय का अन्त महाभारत के युद्ध के साथ होता है उस समय भी युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में चीन के राजा भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, यूरोप देश का बिडालाक्ष, यूनान और ईरान का राजा शल्य आये थे और महाभारत के युद्ध में भी सहायता देते रहे जिस तरह कि वैदिक समय के ऋषियों के सदृश कोई विद्वान आज उप-

---

*(विवरण) उक्त मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—शतं=१००, ते=वे, अयुतं=दशसहस्र, हायनान्=समय, द्वे=दो, युगे=मिले, त्रीणि=तीन, चत्वारि=चार, कृण्मः=करते हैं।

अर्थात् वे शत दशसहस्र दो तीन चार मिलाकर समय करते हैं।

विद्युत और अग्नि के वेत्ता, सभ्यगण उनको मानें अहश अर्थात् कल्प वा ब्रह्मदिन ॥ २१ ॥

इस से पूर्व के २० वें मंत्र का आशय इस प्रकार है:-

"ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्रि दोनों से तुझको मैं धारण करता हूं जो तेरे हिंसा करने वाले शत्रु हैं उन से तेरी रक्षा हो" ॥ २० ॥

इससे अगले २२ वें मंत्र में हेमन्त, वसंत, ग्रीष्म, और वर्षा ऋतुओं का वर्णन है और उन में औषधियों के सेवन का विधान है ॥ २२ ॥

स्थित नहीं है उसी प्रकार इस समय पृथ्वी पर कोई भी चक्रवर्ती सार्वभौम महाराजा दृष्ट नहीं पड़ता जिससे कि इन अनेक चक्रवर्ती राजों को उपमा दे सकें जिस प्रकार कि आज कल ऋषियों के विद्यासिद्धान्त समझने कठिन हो रहे हैं उसी प्रकार वैदिक समय के इन राजों के क्षात्र धर्म का अनुभव करना कठिन हो रहा है।

यह ग्रन्थ महाभारत न केवल क्षत्रिय वीरों के इतिहास का वर्णन करता है परंच यह आर्य उन्नति तथा सभ्यता को भी भली भांति दर्शाता है। यह बतलाता है कि आर्य जाति "सोसाइटी" (*Society or Nation*) एक हृष्ट पुष्ट पुरुष के सदृश है जो कि धर्मात्माओं को अपने साथ मिला सक्ती और दुष्टों को अपने से पृथक् कर सक्ती है और यही सोसाइटी के जीवन के मुख्य चिन्ह हैं। एक उपनिषद् में इसी प्रकार का दृष्टान्त आता है जिससे पाया जाता है कि जाबालि के पुत्र सत्यकाम को किस प्रकार जन्म जाति की अपेक्षा न करते हुये गुण कर्मानुसार ब्राह्मण बनाया था। उपनिषद् बतलाती है कि किस प्रकार ब्रह्मवादिनी गार्गी देवी विद्यासभा की प्रधान बनाई गई थी इस में भी अनेक इतिहास इस प्रकार के पाये जाते हैं जिन से विदित होता है कि आर्य्यों की सभ्यता कैसी उच्च थी, स्त्री पुरुषों के अधिकार, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषय में एक समान थे, नियोग की उत्तम मर्यादा उपस्थित थी, चारों वर्ण परस्पर विश्वास, परस्पर प्रेम करते हुये धार्मिक जीवन से युक्त थे और वैदिक सूर्य की सहायता से लौकिक और पारलौकिक उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे थे॥

प्रथम भाग समाप्त हुआ॥

ओ३म्

दूसरा भाग ॥

भारत के इतिहास में अवैदिक समय का वर्णन आरम्भ होता है ॥

प्रथम { वाममार्ग ने भारत की अधोगति की भूमिका बांधी ॥ }

महाभारत के युद्ध के कारण क्या थे ?

सृष्टि के आदि से लेकर पांच सहस्र वर्ष से पूर्व समय पर्यंत आर्य्यों का सार्वभौम चक्रवर्त्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था अन्य देश में मांडलिक राजा रहते थे परन्तु यहां महाभारत के घोर युद्ध ने जिसको पांच सहस्र वर्ष हुये हैं न केवल इस चक्रवर्त्ती राज्य का ही नाश कर दिया प्रत्युत वैदिक समय को भी इतिहास में से लोप कर दिखाया। क्षत्रिय वीर ही इस युद्ध में मारे नहीं गये किन्तु अनेक ऋषि मुनि और विद्या के स्तम्भ भी काम आये, चारों वर्णों की व्यवस्था नष्ट हो गई। इतिहास ने इस बात को सिद्ध कर दिखाया है कि ईश्वर किसी महान् से महान् और तुच्छ से तुच्छ मनुष्य के अपराध क्षमा नहीं करता और इसी हेतु से जब २ मनुष्य अपने कुकर्मों द्वारा अधोगति की सामग्री एकत्र करते हैं तो उनको उन्नति रूपी हिमालय के शिखर से रसातल का मुंह अवश्य देखना पड़ता है। यह महाभारत का युद्ध केवल द्रौपदी और दुर्योधन के बखेड़ से ही उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु आर्यजाति में इस युद्ध से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ईर्षा, द्वेष, आलस्य, विषयासक्ति, प्रमाद और अभिमान के अंकुर बोये जा चुके थे, जो पकते२ यहां तक बढ़े कि विना गिरे रह नहीं सक्ते थे

चारों वर्ण विषयासक्ति, आलस्य और अभिमान की ओर सरकते हुये जा रहे थे और जब दुर्योधन ने जन्म लिया तो इस महान् जाति को इसके द्वारा अपना सर्वस्व नाश करने का मानो निमित्त मिलगया। दुर्योधन सच पूछो तो चारों वर्णों के उन कुकर्मों का फल था जिनका कि बीज आर्य्य जाति में बोया जा चुका था ॥

विदेशीय इतिहास बतलाता है कि यूरोप में जब रोमन राज्य का सत्यानाश हुआ तब विषयासक्ति और अभिमान ही कारण हुये थे, यूनान का राज्य जब नष्ट हुआ तब परस्पर का द्वेष ही मुख्य कारण था, मुगलों के राज्य के नाशक विषयासक्ति, आलस्य और द्वेष ही हुये हैं, आर्य जाति जब इन रोगों से ग्रस्त होगई तो उसके नाश में क्या सन्देह था? जिस तरह रोग शरीर की मृत्यु के कारण होते हैं इसी प्रकार जातियों की व्यवस्था की मृत्यु कराने वाले रोग ईर्षा द्वेष अभिमान और विषयासक्ति ही हैं ॥

विषयासक्त होना ही मानो वाममार्ग है

जब २ कोई उन्नत देश गिरता है तब उसके प्रथम गिराने वाला वाममार्ग ही होता है। वाममार्ग कुटिल मार्ग का नाम है यह इन्द्रिय रूपी घोड़ों को खुले जंगल में बे लगाम दौड़ना सिखाता है, विषयों में तद्रूप होजाना इसका जीवनोद्देश्य है और येन केन प्रकार से विषयासक्ति की सामग्री एकत्र करना इसका कर्त्तव्य है महाभारत के युद्ध ने वीर क्षत्रिय धनपति वैश्य और ब्रह्मर्षियों की समाप्ति कर दी थी और जो रहगये थे वे जब मर चुके तो भारत में कोई भी ऋषि श्रेणी का उपदेशक न रहा, वैदिक प्रकाश की परम्परा के स्थान में विषयासक्ति की अन्धपरम्परा चलने लगी। जो अपने तईं ब्राह्मण कहलाने लगे उनमें से बहुतसे लोगों ने कपट से शिव, भैरव, पार्वती आदि महान् पुरुष स्त्रियों के नाम से मनमाने श्लोक चैन उड़ाने के लिये घड़ लिये और मांस खाने के बहाने से हवन यज्ञों के निमित्त पशु बध कराने लगे जैसा कि आज कल आप लड्डू खाने के लिये ठाकुरजी को भोग लगाते हैं और यहां तक बढ़ गये कि मनुष्य को भी काटने लगे, स्वर्ग का ठेका नामधारी ब्राह्मणों ने लेने के लिये मृतक श्राद्ध का ढोंग रचा और गुप्त स्थलों पर भैरवीचक्र रचकर मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन इन पांच मकारों में प्रवृत्त होने लगे ॥

आज कल इतिहासवेत्ता आर्य समय की समाप्ति करते हुये छलांग मार कर बौद्ध-मत पर आजाते हैं।

विदेशीय और उनके अनुयायी स्वदेशीय इतिहासों में यही चाल देखने में आती है कि ज्योंही उन्होंने आर्य समय की समाप्ति की त्योंही बौद्ध मत पर आन कूदे, इन इतिहासों में वर्णन आता है कि बौद्ध ने ब्राह्मणों के यज्ञों में हिंसा की लीला देखकर उनका खण्डन किया था, परन्तु यह कोई नहीं जतलाता कि यज्ञों में पशु का मांस कब से पड़ना आरम्भ हुआ। इस आशंका को निवारण करने के लिये दो उपाय यह इतिहासवेत्ता * करते हैं।

(१) बुद्ध को कपिल जी का सहचारी बतलाते और कपिल को बुद्ध सदृश नास्तिक ठहराते हैं ॥

(२) प्राचीन आर्यों पर मांस खाने और हवन में मांस डालने का दोष आरोपण करते हैं ॥

यदि विदेशीय और स्वदेशीय इतिहासवेत्ताओं की यह दोनों बातें सत्य सिद्ध होजातीं तो फिर हमको उनपर आशंका करने का कोई अधिकार नहीं था। आओ हम सुनें कि इन दो विषयों के सम्बन्ध में यह क्या२ युक्तियें सुनाते हैं।

बुद्ध को कपिल का सहचारी दर्शाने के लिये वे यह युक्ति देते हैं कि बुद्ध भी नास्तिक था, कपिल भी नास्तिक था, बुद्ध का उद्देश्य अहिंसा का प्रचार करना था और कपिल के सांख्य शास्त्र का पहिले सूत्र का उद्देश्य भी मनुष्य जाति के तीनों ताप निवारण करने का है। हम कहते हैं कि :—

(१) कपिल नास्तिक नहीं था, यदि होता तो उसका सांख्य शास्त्र वेदों का एक उपाङ्ग कैसे गिना जाता, वेद जब आस्तिकपन की शिक्षा देते हैं तो उसका उपाङ्ग किस प्रकार नास्तिकपन का निरूपण कर सक्ता है? क्या शाखा मूल से विरुद्ध गुण कभी रखसक्ती है? क्या गली सड़ी अंगुली जो अपने विष से शरीर में विष फैलावे काटी नहीं जाती? इसलिये जो कपिल को नास्तिक कहते हैं वे उसके शास्त्र की शैली को ही नहीं समझते।

(२) महर्षि कपिल ने प्रथम अध्याय के १९ सूत्र में:-

(क) नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ईश्वर के सत् स्वरूप का वर्णन किया है।

* *"See Ancient India" By R. C. Dutta*

(ख) अध्याय २ के प्रथम सूत्र में मुक्ति के साधन निरूपण करते हैं और दूसरे सूत्र में बतलाते हैं कि अनेक जन्म में जब पूरा वैराग्य होजावे तब मुक्ति होती है । कपिल जी को नास्तिक बतलाने वालों से कोई पूछे कि जब वह योगशास्त्र की तरह वैराग्य को मुक्ति अर्थात् ईश्वरप्राप्ति का साधन दर्शाते हैं फिर नास्तिक हैं वा आस्तिक ?

(ग) पहिले अध्याय के पहिले सूत्र में जो तीन तापों से निवृत्ति कही है वही तो मुक्ति है परन्तु इसको इतिहासवेत्ता नहीं विचारते, हां इसमें सन्देह नहीं कि नास्तिकों के प्रश्नों को जो कहते हैं कि ईश्वर सिद्ध नहीं होता वह पूर्वपक्ष में लिख कर सारे ऋषियों की शैली पर खण्डन करते हैं, वह पूर्व पक्ष कपिल जी का नहीं हो सक्ता, यदि माना जाय तो ऐसे विद्वान् फ़िलासोफ़र की रचना में परस्पर विरोध का दोष आवेगा एक स्थल पर तो वह ईश्वर का वर्णन करे फिर मुक्ति अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति का साधन दर्शाये और फिर ईश्वर से ही विमुख हो जाय, कदापि नहीं। हमारा इस समय में यह उद्देश्य नहीं कि कपिल के सांख्यशास्त्र की आलोचना करें ।

(घ) "स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ॥ ५६ ॥
ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ ५७ ॥" (सांख्यदर्शन अ० ३)

सांख्यशास्त्र के अध्याय ३ के ५५ सूत्र में लिखा है कि "कार्य्यपन होने पर भी उस प्रकृति के साथ ईश्वर का योग है क्योंकि प्रकृति परवश है" और इससे अगले ५६ सूत्र में जो हमने ऊपर लिख दिया है यह दर्शाया है कि:—

" जिसके प्रकृति वश में है सो (हि) अर्थात् निश्चय करके सर्वज्ञाता और सर्वकर्त्ता है " और फिर ५७ सूत्र में लिखते हैं कि:—

" ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध होती है " इन वाक्यों को पढ़कर कौन विचार शील ऐसा है जो यह न माने कि सांख्यशास्त्र के कर्त्ता महर्षि कपिलजी ईश्वरवादी और पूर्ण आस्तिक थे ॥

(ङ) श्रीकृष्णजी आस्तिक थे उन्होंने गीता के अध्याय १० में कपिल जी को योगी और आस्तिकों का सर्दार माना है यथाः—

सिद्धानां कपिलो मुनिः (गीता अ० १०)

तथा गीता के दूसरे अध्याय में श्रीकृष्णजी के ये वचन हैं:—

सांख्ययोगौ पृथग् बाला प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकं सांख्यं च योगश्च यः पश्यति स पश्यति ॥ (गीता अ० २)

अर्थ—सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र को बुद्धिहीन भिन्न भिन्न आशय वाला मानते हैं पण्डित लोग नहीं, सांख्य और योगदर्शन का आशय जो एक अर्थात् अविरुद्ध समझता है वही पण्डित है ॥

बौद्ध मत के प्रचारक को कपिलजी का सहचारी दर्शाने के लिये वर्त्तमान पश्चिमीय इतिहासवेत्ता कोई भी ऐतिहासिक अथवा युक्ति प्रमाण नहीं देते प्रत्युत हमने सिद्ध कर दिया कि कपिल जी बौद्ध के समय से कई सहस्र वर्ष पूर्व हो चुके हैं। कपिल जी के सांख्यशास्त्र का वर्णन कृष्णजी ने गीता में किया है जिससे पाया जाता है कि महाभारत के युद्ध से पूर्व ही कपिल जी होचुके हैं इसलिये कपिल जी बुद्ध के सहचारी भी सिद्ध नहीं होते ॥

अब हम इन इतिहास वेत्ताओं के दूसरे पक्ष का कि प्राचीन आर्य मांस खाते और हवन यज्ञ में पशु मार कर डालते थे खण्डन करने के लिये आन्दोलन करते हैं इनके पास इस बात के सिद्ध करने का यही प्रमाण है कि वेद मन्त्रों में ऐसा विधान पाया जाता है इसलिये प्रथम हम वेद मंत्रों को ही लेंगे।

प्रमाण (१) ऋग्वेद के प्रथम मंडल सूक्त प्रथम का यह चौथा मंत्र है।

"अग्नेयं यज्ञमध्वरं०" इसमें बतलाया गया है कि यज्ञ हिंसा से रहित होता है—

"(अध्वरं) हिंसाधर्मादिदोषरहितं ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधो निपातः" । निरु० १ । ८

(२) **ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ऋ० मं० १ सू० १६२ मं० १२ ॥**

पदार्थः-(ये) (वाजिनम्) बहूनि वाजा अन्नादीनि यस्मिन् तमाहारम् (परिपश्यन्ति) सर्वतः प्रेक्षन्ते (पक्वम्) पाकेन सम्यक् संस्कृतम् (ये) (ईम्) जलम् । ईमिति उदकना० निघं० १ । १२ (आहुः) कथयन्ति (सुरभिः) सुगन्धः (निः) (हर) (इति) (ये) (च) (अर्वतः) प्राप्तस्य (मांसभिक्षाम्)

मांसस्य भिक्षामलाभम् (उपासते) (उतो) (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभिगत उद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) व्याप्नोतु प्राप्नोतु ॥

इसका भावार्थ यह है कि "जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना पकाना उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़ कर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं"।

"मांसऽभिक्षामुपासते०" इन शब्दों से मांस भक्षण का निषेध स्पष्ट ही है।

(३) "पशून् पाहि" (यजुः अ० १ मं० १) हे मनुष्य! तू भैंस, गाय, बकरी, हिरन, ऊंट, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं की रक्षा कर अर्थात् इनको मत मार।

(४) "इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।" यजु० अ० ३६ मं० ८ हमारे द्विपद अर्थात् पक्षी आदि और चतुष्पद अर्थात् गौ आदि प्राणियों के लिये सुख होवे ॥

(५) "मा हिंसीरेकशफं पशुम्" (यजु० अ० १३ मं० ४८) हे मनुष्य! एक खुर वाले पशुओं अर्थात् घोड़े गधे आदि की हिंसा मत कर।

(६) घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः (यजु० अ० १३ मं० ४९)-घी की दाता रक्षा के योग्य गाय को मत मार।

(७) इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् मा हिंसीः (यजु० अ० १३ मं० ५०) दो पग वाले मनुष्य पक्षी आदि, चतुष्पाद अर्थात् गौ आदि पशु और "ऊर्णायुम्" (भेड़ बकरी आदि) की हिंसा मत कर।

(८) "य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥ २३ ॥"
(अथर्व वेद का० ८ अनु० २ सू० ६ मं० २३)

अर्थ-जो कच्चे मांस को खाता है और जो किसी पुरुष से मोल लेकर अथवा किसी से बनवाकर खाता है और जो अण्डों को खाता है राजा उनको यहां से नाश करदे ॥

क्या यह वेद के प्रमाण नहीं बतला रहे कि मेक्सम्युलर और उनके अनुयायी आर. सी. दत्त, राजेन्द्रलाल मित्र आदि महाशयों ने विना विचारे मांस

भक्षण और पशुबध का दोष प्राचीन धर्मात्मा आर्य्यों के शिर मढ़ दिया है ॥

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३३६ के ३२ से लेकर ३८ तक श्लोकों में चक्रवर्ती महाराजा वसु के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है जिसमें कपिल मेधातिथि आदि महर्षि विद्यमान थे उसमें कहीं भी किसी पशु को मार कर उसका मांस हवन में नहीं डाला गया ॥

"सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् । कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः" ॥ (महा० शान्तिपर्व मोक्षधर्म)

(अर्थ)—यज्ञ आदि सब उत्तम कार्मों में धर्मात्मा मनुजी ने अहिंसा को ही धर्म कहा है स्वार्थी लोग मांस खाने के लोभ से यज्ञ में वा उससे पृथक् पशुओं की हिंसा करते हैं ॥

इस प्रमाण से वाममार्ग का आरम्भिक इतिहास विदित हो सक्ता है साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि मनुस्मृति में यज्ञ आदि सब कामों में हिंसा वर्जित है । वैशेषिक दर्शन में कणादजी हिंसा के अर्थ दुष्ट बतलाते हुये दुष्टभोजन अर्थात् मांसभक्षण का निषेध करते हैं, योगशास्त्र में अहिंसा को पहिला यम दर्शाया गया है, चरक सुश्रुत में जैसे मूत्र विष्ठा आदि पदार्थों के गुण दर्शाये हैं वैसे ही मांसों के गुण दर्शाये हैं किन्तु मांस का विधान आर्यों के खाने के लिये कहीं पर भी नहीं मिलता परंच उससे यह तो सिद्ध होता है कि पूर्वकाल में सिन्ध देश को छोड़कर एशिया के किसी देश में मांस नहीं खाते थे ।

योगदर्शन अथवा वैशेषिकशास्त्र वेद के उपांग कहलाते हुये जब मांस भक्षण का निषेध करते हैं तो क्या वेद का सिद्धान्त उनके विपरीत हो सक्ता है? कोई कह सक्ता है कि किसी और वेद मंत्र से कदाचित् मांस खाना निकल आवे परन्तु ऐसी कल्पना वेद जैसे बुद्धिपूर्वक परमशास्त्र में करनी सर्वथा निर्मूल है । क्या वेद से सत्यशास्त्र में परस्पर विरोध है ? कदापि नहीं । इसलिये कहीं पर भी वेद और आर्ष ग्रन्थों में मांस खाने का विधान नहीं है और न प्राचीन आर्य यज्ञ में पशुबध करते थे ॥

महाभारत अनुशासन पर्व के अध्याय ११५ में शूरवीर भीष्म पितामह ने महाराज युधिष्ठिरजी से जो इस विषय में संवाद किया है वह प्रत्येक इतिहास वेत्ता के पढ़ने योग्य है उसमें से एक वाक्य सेनापति भीष्मजी का इस स्थल पर हम भी लिखते हैं:—

"ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते !
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥"

अर्थ-सम्पूर्ण ऋषि ब्राह्मण और विद्वान् सर्व सम्मति से वेद और दर्शन शास्त्रों के प्रमाण द्वारा अहिंसा को धर्म का लक्षण बतलाते हुये अहिंसा की प्रशंसा करते हैं।

ब्राह्मणग्रन्थों में जो अश्वमेध, गोमेध, नरमेध शब्द आते हैं उनके यथार्थ अर्थों को छिपाकर वाममार्गियों ने अनर्थ कर दिये। परन्तु इन शब्दों के अर्थ उन ब्राह्मण ग्रन्थों में ही दिये हुये हैं जिससे विदित होता है कि अश्वमेध आदि शब्दों से हिंसा सिद्ध नहीं होसकती यथा–

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। अन्नꣳ हि गौः ॥ अग्निर्वा अश्वः।
आज्यं मेधः ॥ (शतपथब्राह्मणे)

राजा को राष्ट्र का प्रबन्ध करना अथवा अग्नि में घी को होम करना अश्वमेध है। अन्न पृथ्वी इन्द्रिय आदि को पवित्र रखना गोमेध है, जब मनुष्य मरजाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध है, क्योंकि यजुर्वेद के ४० अध्याय के एक मंत्र में लिखा है कि:—

"भस्मान्तꣳ शरीरम्" (यजु० अ० ४० मं०१५)

मृतक शरीर को भली प्रकार जलाकर भस्म करदेना चाहिये ॥

हम ऊपर महाराजा वसुजी के अश्वमेध का महाभारत से दृष्टान्त दे चुके हैं कि उनके अश्वमेध यज्ञ में कहीं भी किसी पशु की हिंसा नहीं हुई, राजशासन के महत्व के प्रकाश करने के लिये ही वसु जी ने अश्वमेध यज्ञ किया था और उस समय निस्सन्देह अश्व के अर्थ राष्ट्र वा राज्य के लिये जाते थे। जिस तरह कोई मनुष्य भले मानस के अर्थ दुष्ट कर दे अथवा चूहड़ों (भङ्गी) को मेहतर शब्द से पुकारे, ठीक उसी प्रकार वाममार्गियों ने यज्ञ जिससे कि हिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है इसके अर्थ लोगों में पशुवध के प्रचार करने आरम्भ कर दिये, परन्तु शतपथ में यज्ञ के अर्थ कर्म के हैं और मनु आदि धर्मशास्त्रों में यज्ञ से कर्म के ही अर्थ लिये गये हैं। क्या जब हम कहते हैं कि गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ करे तो कोई इसके यह अर्थ कभी मान सक्ता है कि वह पांच प्रकार की हिंसा करे? कदापि नहीं, किन्तु प्रत्येक विद्वान्

इस से पांच प्रकार के कर्मों का ज्ञान ग्रहण करते हैं। निरुक्त में यज्ञ के अर्थ सङ्गतिकरण, देवपूजा और दान तीनों किये हैं परन्तु हिंसा के कहीं नहीं और न किसी सत् शास्त्र में यज्ञ और हिंसा का कोई सम्बन्ध दर्शाया हुआ है। मैक्समूलर ने एक स्थल * पर स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि यज्ञ शब्द के अर्थ आर्ष ग्रन्थों में कुर्बानी अर्थात् पशुबध के नहीं हैं प्रत्युत कर्म के हैं, परन्तु आश्चर्य है तो यह कि मैक्समूलर यह भी मानता जाता है कि यज्ञ शब्द के अर्थ कर्म के हैं और फिर प्राचीन आर्यों पर पशुबध का दोष लगाने से भी नहीं चूकता! पक्षपात से रहित इतिहासवेत्ता के लिये उक्त प्रमाणों को देखकर यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं है कि वैदिक आर्य मांस नहीं खाते और न यज्ञ में किसी पशु अथवा मनुष्य को मारकर डालते थे॥

अब इतिहास का अन्दोलन करने वाला मान सक्ता है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् वाममार्ग अपने यौवन पर आगया और जो झूठ ग्रन्थ इन लोगों ने रचे उनका नाम तंत्र ग्रन्थ हुआ इन्हीं वाममार्गियों के प्रचार को रोकने के लिये बुद्ध ने काम किया और अहिंसा धर्म्म का प्रचार करते हुये पशुबध का खण्डन किया।

तंत्र मत अथवा वाममार्ग के बुद्ध मत से पूर्व होने में एक ऐतिहासिक प्रमाण

आनन्दगिरि ने जो शंकर जी का जीवनचरित्र लिखा है उसके पांचवें प्रकरण में यह लिखा है कि "जब लोग वेद से हीन होगये तंत्र का प्रचार हुआ, वेदार्थ हीन होगये, भस्म आदि लगाने लगे और कलियुग के तीन सहस्र वर्ष बीत जाने पर जब वे धर्म कर्म से नष्ट होगये तब फिर अद्वैत अर्थ के चिन्तन करने वाले सत्धर्म के परायण हुए।"

इतिहास की गुप्त शृङ्खला ढूंढने वाले के लिये इन वचनों से बहुत कुछ निकल सक्ता है इसमें आनन्दगिरि दर्शाता है कि जब लोग वेद से हीन हुये तब उन्होंने तंत्र का प्रचार किया और फिर धर्म कर्म से नष्ट होगये तो अद्वैतमत अर्थात् शंकरमत हुआ, धर्म कर्म से नष्ट हुये पुरुषों से आनन्दगिरि का अभिप्राय उन पुरुषों से प्रतीत होता है जो बौद्धमत में प्रवृत्त हो चुके थे, अन्त में जाकर इस में शंकर का भी समय दर्शाया है कि कलियुग के तीन सहस्र वर्ष बीत जाने पर

* *Physical Religion by F. Maxmuller.*

शंकरमत स्थापन्न हुआ, पश्चिमीय इतिहासवेत्ताओं को इस से शंकर के समय का निश्चय कर लेना चाहिये ।

इस प्रमाण से भी उसी विषय की जो कि हमने शास्त्र की रीति से सिद्ध किया था पुष्टि हो गई अर्थात् यह ऐतिहासिक प्रमाण दर्शाता है कि शंकर से पूर्व तन्त्र का प्रचार होचुका है बौद्धमत का नाम कदापि तन्त्रमत हो नहीं सक्ता, क्योंकि बौद्ध का मत अहिंसा और तन्त्रमत हिंसा की शिक्षा देता है और बौद्धमत से तन्त्रमत पीछे भी हो नहीं सक्ता इसलिये निस्सन्देह यही सिद्ध होता है कि शंकर ने अपने से पूर्व बौद्धमत का खंडन किया बौद्धमत ने अपने से पूर्व उत्पन्न हुये तन्त्रमत का खण्डन किया और तन्त्रमत ने भारतवर्ष की अधोगति का बीज बोया ॥

तन्त्रमत स्वरूप बदलता है ।

तन्त्रमत जिसका परम उद्देश्य विषयासक्ति का प्रचार करना था उसने सत्य, न्याय, प्रेम इत्यादि वैदिक धर्म के चिन्हों को भी भारत के चार वर्णों के मनुष्यों से लुप्त कर दिये, दयालु ब्राह्मण पशुवध करने लगे और हवन में सुगन्धित घृत आदि पदार्थ डालने के स्थान में दुर्गन्ध युक्त मांस डालने से रोगों को बढ़ाने लगे । ब्राह्मणों ने शिव आदि उत्तम पुरुषों के नाम से कल्पित ग्रन्थ मांस की सिद्धि के लिये रचने आरम्भ किये और चतुर्वर्णों को छल की शिक्षा देनी आरम्भ की । नरमेध के बहाने से मनुष्यों तक के वध होने लगे जब इस प्रकार घोर पाप का राज होगया तो उस समय बृहस्पति नामी एक पुरुष खड़ा हुआ जिसने तंत्रमत के खण्डन के लिये यथाशक्ति काम करना आरम्भ किया ।

चारवाक* आभाणक, बौद्ध अथवा जैन मत का प्रचार भारत में आरम्भ होता है ॥

वाम मार्ग और चारवाक में भेद

वाममार्ग ने यदि वेद और वैदिक शिक्षाओं को छींके पर धर दिया था तो चारवाक ने उसको उतारा नहीं किन्तु वाममार्ग के बाह्य स्वरूप को इसने सुधार दिया यदि पहिले वाम-मार्ग अंधा था तो इसने उसको बुद्धि की आंखे लगा दीं, यदि पहिले वाममार्ग

* *Materialism* चारवाकमत

बे लगाम दौड़ रहा था तो इसने उसके मुंह में युक्ति की लगाम डाल दी यदि पहिले वह मर्य्यादा रहित था तो इसने मर्य्यादा स्थापन करदी। वाममार्ग का स्वरूप बहुत ही भयंकर और घिनोना था इसने उसको मोहनी बना दिया, वाममार्ग जीव ईश्वर आदि के विचार को छोड़ कर विषयों में प्रधावित हुआ था, चारवाक ने भी जीव ईश्वर के विचार को छोड़दिया, वाममार्गी ब्राह्मणों के पशुबध और मृतकश्राद्ध का बुद्धि से खण्डन करते हुये विषयों में जीवन व्यतीत करने की यह शिक्षा दीः—

"जगत का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं, जगत् ऐसा ही स्वभाव से चला आ रहा है, जब तक जीवे सुख से जीवे ऋण उठाए और घी पीवे, देह भस्म हो जाना है आवागमन फिर किस का होगा." *

यद्यपि चारवाक ने वाममार्ग की बाहरी भ्रष्टलीला का खण्डन किया परन्तु वाममार्ग के आन्तरीय वास्तविक स्वरूप को वह पलट न सका। पशुओं की हिंसा को इस ने रोका किन्तु मनुष्य की हिंसा का सूक्ष्म रीति से प्रचार कर दिया। ऋण लेकर चैन उड़ाओ इस वचन ने आर्य्यजाति के व्यवहार को अशुद्ध कर दिया। दुःख देने का नाम हिंसा है इसलिये ऋण लेकर यदि किसी को न दिया जावे तो इस से भी उस मनुष्य को कष्ट पहुंचेगा। चारवाक की एक शाखा आभाणक मत के नाम से फैली परन्तु उसका उद्देश्य चारवाक से भिन्न न था ॥

चारवाक से पूर्व शैव और शाक्त मतों का बीज बोया गया था ॥

वाममार्ग के पीछे शैव और शाक्त दो पौराणिक मतों का बीज भारत में बोया गया। नास्तिक चारवाक मत के श्लोकों में जहां वाममार्ग की लीला का खण्डन मिलता है वहां शैव लोगों की भ्रान्त लीला का भी खण्डन

* सर मोनियर विलियमस् ने "सर्वदर्शन संग्रह" नामी पुस्तक में से चारवाक मत के विषय को उद्धृत किया है यथाः—

" *No recompense for acts; let life be spent, in merriment; let a man borrow money and live at ease and feast on melted butter.*"

See 'Buddhism' by Sir Monier Williams K. C. I. E. London 1889 *pp*. 9

पाया जाता है, जिस से इतिहासवेत्ता के लिये यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं कि चारवाक की उत्पत्ति से पूर्व शैव और उसके सहचारी शाक्त मत का बीज बोया जा चुका था। बृहस्पति चारवाकमतप्रचारक कहता है कि–

"त्रिदण्ड और भस्म का लगाना बुद्धिरहित पुरुषों ने जीविका बना ली है" त्रिदण्ड और भस्म शैव मत वाले लगाते हैं इसलिये पाया जाता है कि शैवमत चारवाक से पूर्व विद्यमान था। शङ्कराचार्य्य के माध्व जीवनचरित्र से भी विदित होता है कि उन्हों ने वामाचारी और भस्म लगाने वाले शैव मत के आचार्य्यों से शास्त्रार्थ कर के उन को पराजित किया था, इस से भी वाममार्ग और शैवमत की विद्यमानता शङ्करस्वामी से पूर्व प्रकट होती है। शैवमत ने यद्यपि भस्म का शरीर पर लगाना धर्म मान लिया था परन्तु अभीतक इस ने शिव की मूर्त्ति नहीं बनाई थी, क्योंकि इतिहासवेत्ता क्या पश्चिमीय और क्या स्वदेशीय इस बात को निश्चित रीति से मानते हैं कि मूर्त्तिपूजा की शिक्षा बौद्धमत वालों से भारतवर्ष में फैली है, मेक्समुलर और आर. सी. दत्त आदि महाशयों ने इस विषय को बहुत पुष्ट किया है॥

शाक्तमत शैवमत का सहचारी था *। शैवमत ने यदि शिवजी का माहात्म्य घड़ा और भस्म लगाने की लीला रची और वाममार्ग की गौण रीति से सहायता की तो शाक्तमत ने शिवजी की स्त्री शक्ति वा देवी की लीला कपोलकल्पित लिखी और उसका माहात्म्य रचा। देवी भागवत शाक्तों ने बनाया है, देवी भागवत के बनाने वाले का काम वाममार्ग की शिक्षाओं को सर्वसाधारण में उपन्यास की रीति पर पहुंचाने का प्रतीत होता है, देवीभागवत के सृष्टि विषय

*मतों की परम्परा इस प्रकार चलीः–

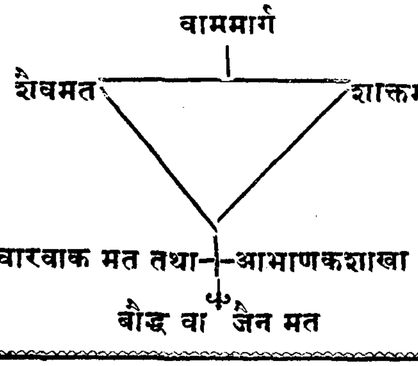

में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु, देवी ने जीवन किये और उन्होंने अपनी भगिनियों से विवाह कर लिया इत्यादि अनेक बातें वाममार्ग लीला की पोषक हैं ॥

चारवाक के वेदों से विमुख होने का कारण महीधर वामी की टीका तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रक्षिप्त वचन थे।

वाममार्ग भारत के सामाजिक जीवन की जड़ काटने के लिये हिंसारत तो हुआ ही था, परन्तु शेष चार यमों को भी इसने नष्ट करते हुये आर्य्यजाति के सामाजिक बल को सर्वथा क्षीण करदिया, पांच यमों के स्थान में पंचमकार रच लिये अहिंसा के स्थान में हिंसा और सत्य के स्थान में असत्य का यहांतक प्रचार किया कि प्रसिद्ध महात्माओं के नाम से जाली ग्रन्थ बनाने आरम्भ कर दिये और मन माने पुस्तक रचने में असत् की भ्रष्ट शिक्षा आर्य्यसन्तान को प्रथम इसने ही दी, मुर्दों का तर्पण और श्राद्ध अथवा दश-गात्र लीला इसने रचाई और इस आडम्बर से मांसभक्षण का प्रचार वाममार्ग करने लगा, ब्राह्मण ग्रन्थों में वामलीला के पोषक वचन घड़ कर मिला दिये, ब्रह्मचर्य्य जो कि तीसरा यम था उसके स्थान में व्यभिचार फैला दिया और जिस प्रकार स्वार्थी लोग चांद में चरखा सिद्ध करने का यत्न करते हैं उसी प्रकार महीधर वामी ने वेदों में से वाममार्ग सिद्ध करने के लिये युक्ति और शास्त्रशून्य टीका घर घसीटी। देश में इस टीका के प्रचार होने से बहुत से लोगों को वेदों से घृणा हो गई। जिन लोगों को इस प्रकार वेदों से घृणा हुई वह चारवाक मतानुयायी बने इसलिये यदि वामी महीधर वेदों के अनर्थ न करता तो बृहस्पति को चारवाक मत खड़ा करना न पड़ता ॥

चारवाक का स्थाना-पन्न बौद्ध अथवा जैन मत बना।

वाममार्ग के गिराने के लिये चारवाक कुछ काम कर चुका था कि इतने में गौतम बुद्ध वाममार्ग को और भी गिराने तथा नष्ट करने के लिये भारत में उत्पन्न हुए।

योगशास्त्र के पांच यमों को जिनको कि प्राचीन वैदिक आर्य्य जाति अथवा सामाजिक जीवन के उत्तम साधन मानते थे प्रचार करना तथा अष्टांगयोग की शिक्षा देना महात्मा बुद्ध के जीवन का उद्देश्य हुआ ॥

बौद्ध मत और जैन मत वास्तव में एक ही हैं।

(१) यदि अमरकोष ग्रन्थ को देखें जो कि एक जैन पण्डित का बनाया हुआ है उसमें बौद्ध और जैन पर्यायवाची शब्द दिखाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है

कि बौद्ध और जैन एक ही हैं ॥

(२) मौनियर विलयमस् महाशय "बुद्धइज़म" नामी पुस्तक के पृष्ठ ११ पर लिखते हैं कि "एक मत की दो शाखावत् बौद्ध और जैन हैं"

(३) परलोक, पुनर्जन्म, जीवात्मा, अहिंसादि सिद्धान्त बौद्ध और जैन दोनों एक समान मानते हैं इसलिये यह एक ही हैं ॥

(४) श्रीमच्छङ्करदिग्विजय सर्ग प्रथम पृष्ठ २८ श्लोक ९५ के पाठ से विदित होता है कि बौद्ध और जैन एक ही थे ॥

(देखो विद्यारण्य स्वामिकृत ग्रन्थ पूना आनन्दाश्रम मुद्रित)

महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेश आखेट (शिकार) करने वाले मनुष्यों को बुद्ध ने एक स्थल पर अहिंसा की महिमा दर्शाई और अहिंसा के ११ लाभ श्रवण कराये यथाः—

(१) वह सब प्राणियों पर दया करता है जो अहिंसा करने वाला होता है।

(२) उसका शरीर स्वस्थ रहता है ॥

(३) उसको शान्ति से निद्रा आती है ॥

(४) पढ़ते समय उस का मन एकाग्र रहता है ॥

(५) बुरे २ स्वप्न उसको नहीं आते ॥

(६) देव अर्थात् सूर्यादि पदार्थ उसको कल्याणकारी प्रतीत होते हैं और मनुष्य उस से प्रेम करते हैं ॥

(७) विषवाले प्राणियों से वह पीडित नहीं होता।

(८) युद्ध के अत्याचार से वह बच जाता है।

(९) पानी अथवा अग्नि उसको पीड़ा देने का निमित्त नहीं बनते।

(१०) जहां कहीं वह रहे वह अपने प्रयोजन को सिद्ध कर सकता है ॥

(११) मरने पर ब्रह्मलोक (ब्रह्मदर्शन) पाता है ॥ *

विवरणः— इस ११ वें उपदेश से यह विदित होता है कि महात्मा

* *Texts from the Buddhists Cannon, commonly known as Dhammapada with accompanying narratives translated from the Chinese, by Samuel Beal, Professor of Chinese University College, London, Trubner, 1878.*

बौद्ध ईश्वर वादी थे, शोक का विषय यह है कि बुद्ध के चेलों ने नास्तिकपन फैला दिया ।

बुद्धमत का इतिहास बतलाता है कि बुद्ध के यह वचन सुनकर शिकारी पुरुष स्त्रियों ने शिकार करना छोड़ दिया और उसके अनुयायी बन गये ॥

एक स्थल* पर लिखा है कि एक राजा की माता रोगिणी थी, जब औषध से कुछ लाभ न हुआ तो वामी लोगों ने कहा कि नाना प्रकार के १०० पशुओं के शिर तथा एक मनुष्य का बालक बलिदान दिया जावे राजा ने हाथी घोड़े, बैल, भेड़ें, मंगाई और उन के आर्तनाद (चीख) से बुद्ध का दयालु हृदय हिल गया जिस से राजा के सन्मुख आनकर बुद्ध ने अहिंसा पर व्याख्यान दिया, जिससे राजा ने पशुवध का दुष्ट कर्म त्याग दिया ॥

एक पुस्तक† में लिखा है कि राजा बिम्बसार जो हवन में पशु मार कर उनका मांस डालता था बुद्ध के उपदेश से इतना दृढ़ होगया कि उसने अपने राज्य में डंका बजा दिया कि यज्ञ के लिये कोई हिंसा तथा कोई मांस भक्षण न करे ॥

एक अन्य पुस्तक‡ में आचार विषयक बुद्ध के उपदेश लिखे हैं जिन में बार २ अहिंसा सत्य, अस्तेय आदि धर्म के लक्षणों का बुद्ध ने वामी लोगों को उपदेश दिया है । महाशय आर.सी.दत्त अपने इतिहास के पृष्ठ १५९ पर लिखते हैं कि:—

"आचार और अहिंसा यह दो बातें बुद्ध ने खोज की थीं और यही बुद्धमत का सार है"

चारवाक और बौद्ध मत का भेद

बुद्ध के उपदेशों से बौद्धमत विलक्षण है । इस स्थल पर हम बुद्ध के उपदेशों की नहीं किन्तु बौद्धमत की चारवाक से तुलना निम्नलिखित प्रकार करते हैं:—

---

* *The Ethics of Diet by Howard Williams M. A.*

† *The Light of Esia by Edwin Arnold.*

‡ *Buddhist Suttas by T. W. Rhys Davids (Sacred books of the East, Ed. by Maxmuller.*

चारवाक	बौद्ध अथवा जैनमत
(१) देह की उत्पत्ति के संग जीव की उत्पत्ति मानता और देह के नाश के साथ जीव का नाश मानता है।	(१) अनादि जीव मानता है।
(२) परलोक और पुनर्जन्म नहीं है।	(२) पुनर्जन्म, परलोक और निर्वाण (मुक्ति) है।
(३) एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।	(३) प्रत्यक्षादि चार प्रमाण हैं।
(४) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं।	(४) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं।
(५) वेद में पशुबध है इसलिये वेद अच्छे नहीं।	(५) वेद में पशुबध है इसलिये वेद अच्छे नहीं।

इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर और वेद से चारवाक और बौद्धमत वाले दोनों एक सम विमुख हैं, परन्तु जीव को अनादि और पुनर्जन्म परलोक प्रत्यक्षादि चार प्रमाण मानने से बौद्धमत वाले चारवाक से भेद रखते और अच्छे हैं।

बौद्धमत और क्या मानता है ?

बौद्धमत के सर्व तीर्थंकर जगत् को केवल दुःखरूप मानते हैं और सकल वासनाओं की निवृत्ति से शून्यरूप निर्वाण को मुक्ति कहते हैं। तथा यह मानते हैं कि बुद्ध भगवान् बौद्धों के पूज्यदेव हैं यथाः—

"बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।"

इसी विषय की पुष्टि आर. सी. दत्त महाशय का निम्नलिखित लेख इस प्रकार कर रहा है कि " बौद्धमत में उपनिषदों के ब्रह्म की गणना की गई है, परन्तु उसको सब से महान् नहीं माना, केवल पवित्र जीवन ही सब से महान् कहा गया है, जिन्होंने निर्वाण पालिया है वह बौद्ध लोग महान् हैं ब्रह्म से भी उच्च हैं" पृष्ठ (३८३) *

"फ़िज़ीकल रिलीजन" के पृष्ठ ६५ पर महाशय मैक्सम्युलर लिखते हैं किः—

"बुद्ध का उद्देश्य ब्राह्मणों से द्वेष करने का नहीं था, और नहीं वह ब्राह्मणों के मत पर कटाक्ष करने की रुचि रखता था वह केवल ब्राह्मणों के यज्ञों में पशु के बलिदान का और विशेष करके ब्राह्मण ग्रन्थों के ईश्वरोक्त होने का

* *R. C. Duttas ancint India, P. 383.*

खंडन करता है, और यह आश्चर्यमय बात है कि वर्त्तमान समय का रिफार्मर (आचार्य्य) दयानन्द सरस्वती भी ऐसा ही करता है अर्थात् दयानन्द सरस्वती वेदमंत्रों को ईश्वरोक्त मानता है परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों को मनुष्यकृत कहता है" ॥

इसी पुस्तक के पृष्ठ ३४३ पर भट्ट मोक्षम्युलर लिखते हैं कि:—
"बौद्धमत में प्रवेश करने वाले को इन बातों की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी:-

(१) अहिंसा, (२) चोरी त्याग, (३) इन्द्रिय निग्रह, (४) झूठ न बोलना, छल न करना, झूठी साक्षी न देना, (५) मादक द्रव्यों से बचना, इनके अतिरिक्त एक उच्च गृहस्थ को यह भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि- (६) समय पर भोजन खावे, (७) नाचे नहीं, गन्दे गीत न गावे, (८) सुन्दर आभूषण न धारण करे, इतर न लगावे और अभिमान वर्द्धक पदार्थों से बचे और जो साधु बनना चाहे उस को यह भी प्रतिज्ञा करनी होती थी कि (९) मैं गुदगुदी खाट पर शयन नहीं करूंगा, (१०) अपनी इच्छा से त्यागी रहूंगा" साथही मैक्सम्युलर लिखते हैं कि:- "प्राचीन हिन्दू ये धर्म के लक्षण जानते थे, मनुस्मृति अध्याय १० के श्लोक ६३ में यही चारों वर्णों के धर्म दर्शाए हुए हैं यथा:-(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) शौच, (५) इन्द्रियनिग्रह" ॥

अपने ग्रन्थ में आर. सी. दत्त लिखते हैं कि " बुद्ध मरते समय तक मानता रहा कि मैं केवल प्राचीन और पवित्र धर्म्म का जो कि हिन्दुओं और ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रहचुका है उपदेश देरहा हूं " (पृष्ठ ३४३) यदि आर. सी. दत्त महाशयजी को अपने इस वचन का मान है तो उनको मानना चाहिये कि प्राचीन आर्य्य ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यंत हिंसक न थे अर्थात् वह मांस नहीं खाते थे और न ही यज्ञ के निमित्त पशुवध करते थे न किसी प्राणी का मांस हवन में डालते थे। मैक्सम्युलर के उपर्युक्त वचनों से भी यही सिद्ध होता है कि बुद्ध ने मनुस्मृति अध्याय १० के श्लोक ६३ *

*मनु० अ० १० का श्लोक ६३ जिसका वर्णन मैक्सम्युलर ने किया है यह है:—
"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥"

की शिक्षा दी और इस श्लोक से सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्य लोग ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्य्यन्त हिंसाशील न होने के कारण मांसादि नहीं खाते और न ही हवन यज्ञ में कभी डालते थे। इस बात को मैक्सम्युलर मान कर फिर किस प्रकार स्वयं इस का खंडन करने के लिये अन्य स्थल पर उद्यत हो सक्ता है? इन महाशयों की किस बात को सच्चा और किस को झूठा मानें? यदि इनका यह लेख सत्य है तो इनका वह लेख कि "वैदिकआर्य मांस खाते थे," झूठा होगया॥

महाशय आर. सी. दत्त क्या अपने पूज्य महात्मा बुद्ध की सत्य साक्षी भी नहीं मानेंगे?

आर. सी. दत्त अपनी पुस्तक में यह प्रश्न उठाते हैं कि बौद्धमत के इतने भारी प्रचार का कि यह भूगोल के $\frac{1}{3}$ मनुष्यों का धर्म होगया क्या कारण था? और स्वयं ही उत्तर देते हैं कि बुद्ध का शुद्धाचरण ही एकमात्र कारण था।

(देखो पृष्ठ ३४३)

जब बुद्ध के सत्यवादी और महात्मा होने का आर. सी. दत्तजी को दृढ रीति से स्वयं ही निश्चय है तो फिर अपने पूज्य महात्मा की सत्यसाक्षी को आर. सी. दत्त क्यों नहीं स्वीकार करते? महात्मा बुद्ध तो मरते दम तक यह कहता रहा कि:—

"मैं केवल प्राचीन और पवित्रधर्म का जो कि हिन्दुओं और ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रह चुका है उपदेश देरहा हूं"

बुद्ध की इस साक्षी से सिद्ध होता है कि प्राचीन वैदिक आर्य्य यज्ञ में मांस नहीं डालते और न खाते थे बीच में कुकर्मी लोगों ने मांसभक्षण का प्रचार कर दिया सो उसका खंडन करते हुये सत्यवादी बुद्ध लोगों को निश्चय दिला रहा है कि मैं तुम्हारा प्राचीन धर्म जो कि अहिंसा है प्रचार कर रहा हूं यदि आर. सी. दत्त वास्तव में यह मानते हैं कि बुद्ध का आचरण शुद्ध तथा वह सत्यवादी था तो उन को यह साक्षी भी सत्य ही माननी पड़ेगी और इसको मानकर वह फिर यह नहीं लिख सक्ते कि वैदिकआर्य्य मांस भक्षण करते थे। देखिये महाशय आर. सी. दत्त बुद्ध की सत्य साक्षी को मानते हैं या नहीं?

बौद्धमत के दोष क्या थे ?

जो शिक्षा कि गौतम बुद्ध ने वेद, मनु अथवा योगशास्त्र के अनुसार दी वही सत्य होने के कारण उसकी विजय का कारण हुई, परन्तु जहां उसके चेलों ने अपनी बुद्धि पर निर्भर किया और वेद अथवा वेदानुकूल किसी शास्त्र का आश्रय नहीं लिया वहां ही उन्होंने ठोकरें खाईं। इन चेलों ने बुद्ध के शुद्ध उपदेशों में जो दोष मिला दिये उनको हम निम्नलिखित रीति पर दर्शाते हैं ये दोष अशोक के राज्य में मिलाए गये थे।

(१) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं ॥

(२) वेद में पशुवध है इसलिये वेद अच्छे नहीं ॥

(३) निर्वाण वासनाशून्य होने का नाम है ॥

(४) जगत् दुःख रूपही है ॥

(५) जिन्होंने निर्वाण पा लिया है वे बुद्ध लोग ब्रह्म से भी उच्च हैं॥

यदि बुद्ध के शिष्य अहिंसादि पांच धर्म के सत्य लक्षणों की ही बुद्ध के सदृश शिक्षा देते रहते तो देश का कल्याण हो जाता परन्तु इस उत्तम शिक्षा के संग शिष्यों ने ईश्वर और वेद से लोगों को विमुख कराते हुये नास्तिक बना दिया। इन्होंने निर्वाण को गाढ़ निद्रा का रूप ही दर्शादिया, जगत् को जो कि सुख दुःख दोनों का रूप है केवल दुःखरूप ही ठहरा दिया और वासनाशून्य जड़ पदार्थ समान बुद्ध पुरुष को ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर से उच्च बतलाते हुए मनुष्य पूजा अथवा गुरुडम का ही बीज न केवल बोया किन्तु मूर्त्तिपूजा की गहरी नीव खोद दी जो कि नानारूप से आज पर्य्यंत विद्यमान है और जिसने भारत सन्तान की भारी अधोगति करते हुये उसको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है ॥

बुद्ध के नाना मन्दिर बनाए गये जिसमें उसकी मूर्त्ति को परमेश्वर से भी महान् समझकर उसके अनुयायी पूजने लगे और भारतसन्तान वाममार्ग के फन्दों से निकल कर नास्तिकपन और मूर्त्तिपूजन के अथाह गढ़े में जा गिरी। भारतवर्ष देश बुद्ध की बड़ी छोटी मूर्त्तियों से भर गया और यहां तक ही नहीं किन्तु इसके पीछे २४ तीर्थंकरों की मूर्त्तियों से जैन मन्दिर भर गये।

ईसाई, मुसलमान तथा सर्व मतवादियों ने मनुष्यपूजा अथवा अवतार की शिक्षा बुद्धमत से सीखी।

क्या आश्चर्य की बात है कि मुसलमान मूर्त्तिपूजन के शत्रु हों परन्तु मुहम्मदसाहब को मुक्ति दिलाने का एक हेतु मानें! ईसाई आत्मा से प्रभु की भक्ति करना कहें परन्तु ईसा को ही अवतार बतलावें। कबीर, नानक, दादू पन्थी आदि सब के सब मनुष्य पूजा में रत हैं इनके मत रह नहीं सक्ते यदि इनमें से मुहम्मद, ईसा आदि प्रचारकों को निकालदें। ईसाई मोनियर विलयम्स् स्वयं इस त्रुटि को स्वीकार करते हैं, यथाः-

"बुद्ध लोगों की मुक्ति विनाश होना है, बुद्धमत सब से अनोखा है इसलिये कि जीवन्मुक्त मनुष्य से बढ़कर यह ईश्वर नहीं मानता, वास्तव में इस को धर्म नहीं कहना चाहिये, उत्तरीय बौद्धों के धर्म पुस्तक शुद्ध संस्कृत में लिखे गये थे। बौद्धमत विना बुद्ध के कुछ नहीं जैसा कि ज़रदुश्त का मत विना ज़रदुश्त के कुछ नहीं, मुसलमानी मत विना मुहम्मद के कुछ नहीं और मैं आदर पूर्वक कहूंगा कि ईसाई मत विना ईसा के कुछ नहीं है" (देखो पृष्ठ १२, १४, १८)

"बौद्धमत के प्रचारकों की प्रार्थना यह है "**बुद्धं शरणं गच्छामि**" अर्थात् मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। "**धर्मं शरणं गच्छामि**" अर्थात् मैं धर्म की शरण जाता हूं। "**संघमं शरणं गच्छामि** अर्थात् मैं सभा की शरण जाता हूं" (पृ० ७८)

भारत में मूर्त्ति पूजा का प्रथम प्रचार बौद्धमत ने किया

आर. सी. दत्त, मैक्सम्युलर आदि सर्व लेखक इस बात को मानते हैं कि मूर्त्तिपूजा की प्रवृत्ति भारत में बौद्धमत से हुई। "बुद्धइज़म" नामी पुस्तक के पृष्ठ ४६५ पर मोनियर विलयम्स लिखते हैं कि मैंने भारतवर्ष के सर्व प्रान्तों की यात्रा की और बुद्धिमान् पण्डितों से पूछा कि मूर्त्तिपूजा कहां से आरम्भ हुई, उन्होंने उत्तर दिया कि पूर्व काल में आत्मा से परमात्मा की उपासना होती थी, जब से बौद्धमत ने मूर्त्तिपूजन का प्रचार किया उसके देखा देखी लोग मूर्त्तिपूजक होगये। साथ ही मोनियर साहब लिखते हैं कि "ऋग्वेद में मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं मिलता और न मनु में ही है और बुद्ध की मूर्त्तियों से पूर्व की कोई भी हिन्दू मूर्त्ति नहीं मिली" यही महाशय एक स्थल पर लिखते हैं कि "दो जैनी पण्डित जो मुझे जयपुर में मिले वह यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे" (पृ० ५३४)

इन के निम्न लिखित वचनों से पाया जाता है कि जैनियों के सदृश मन्दिर बनाने वाली कोई जाति नहीं है ॥

"प्रत्येक जैनी जो धर्मभाव के लिये प्रसिद्ध हो एक मन्दिर बना देता है। काठियावाड़ के पालीटाना नगर में सारा नगर ही जैन मन्दिरों से पूरित हो रहा है। जैन मत बौद्ध मत के समान ब्राह्मण लोगों के धर्म से निकला और उस के भाग्य में फिर इन के धर्म में मिलजाना लिखा है" (पृष्ठ ५३६) *

बौद्धमत ने प्रत्येक मनुष्य से बुद्धि का चक्षु छीन लिया और प्रत्येक मनुष्य को अपनी बुद्धि से काम लेने के स्थान में उस को उपदेशकों के वचनों को चाहे वह निज बुद्धि के सर्वथा विपरीत भी क्यों न हों "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" कहकर मानने की शिक्षा दी, विचार कर देखें तो प्रतीत होता है कि बौद्धमत ने लोगों को ज्ञाननेत्रों से अन्धा कर दिया और धर्म में निज बुद्धि को काम नहीं लाना, इस भयङ्कर शिक्षा का चुपचाप रीति से भारत में बीज बो दिया यही नहीं कि बौद्धमत ने मनुष्य की आत्मिक स्वतन्त्रता का मूल बुद्धि छीन कर उस को अन्य मनुष्य का आत्मिक दास बना दिया, प्रत्युत यहां तक गिरा दिया कि जड़ मूर्त्ति के आगे चेतन आत्मा को उपासना के लिये झुकना पड़ा। जो भौतिक पदार्थ कि मनुष्य के भोग के साधन थे और जिन को चेतन आत्मा ज्ञानपूर्वक उपयोग में ला सक्ता है उन जड़ पदार्थों के आगे चेतन आत्मा सिर झुकाने लगा। हाय! कैसा भयङ्कर यह दृश्य है! बुद्ध के चेलों ने धार्मिक †अत्याचार फैला दिया अर्थात् धर्म में एक उपदेशक की बुद्धि पर ही निर्भर करना आरम्भ किया अथवा यह कहो कि धर्म में एक मनुष्य का राज्य जहां स्थापन किया वहां धर्म में पराधीनता का बीज बो दिया। इतिहास बतलाता है कि महाभारत के पश्चात् और बौद्धमत से पूर्व यदि भारतवर्षीय राजा चक्रवर्ती नहीं रहे थे तो भी इतनी शक्ति थी कि भारत में खण्ड खण्ड होकर अपना राज्य करते रहे। विदेशियों को भारत में आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ था परन्तु बौद्धमत के यौवन के पश्चात् जब कि अशोक के प्रचार ने मनुष्यपूजा सर्वत्र फैला दी और भारतसन्तान अधिक बुद्धिहीन

**Buddhism by S. Monier Williams P.* 536 *London* 1889.

† *Divine rights of the Priests.*

होकर अपनी स्वतंत्रता का भाव बहुत न्यून कर बैठी तो उस समय सिकंदर से विदेशी को भारत में आक्रमण करने का साहस हुआ, इसके पीछे शक देश निवासी विदेशियों के आक्रमणों से भारतपीडित होता चला गया, यहां तक कि महाराज विक्रमादित्य ने विदेशियों से भारत की कुछ काल के लिये रक्षा की। विक्रमादित्य के पश्चात् पौराणिक मतमतांतर जो कि बौद्धमत शंकरमतादि सम्पूर्ण मतों के कुकर्मों को प्रचार करने के लिये उत्पन्न हुए थे उन्होंने चारों वर्णों को बलहीन, मलीन और दीन कर दिया और इसी कारण यवनों ने आक्रमण करके भारत को पदाक्रान्त करडाला ॥

यूरोप के अन्धकार के इतिहास में पोपडम का समय वह था जिसमें कि रोम के पोप को धर्म अवतार, महान् गुरु मानकर लोगों ने अपनी बुद्धियां उस के अर्पण कर रक्खी थीं ठीक वैसे ही भारत में पोपडम का बीज बौद्धमत के प्रचार ने गहरा बोदिया। काशी, कन्नौज, पश्चिम और दक्षिण देश वालों ने जैनमत स्वीकार नहीं किया। जो लोग पर्वतों में रहते थे वह भी इस मत में प्रविष्ट नहीं हुए, शेष सारा देश और लंकादि द्वीप बौद्धमत के अनुयायी बन-गये। वेदों की सर्वत्र निन्दा फैलगई, वेद के पठन पाठन की रीति लुप्त होने लगी, यज्ञोपवीतादि विद्या के चिन्हों का बौद्ध लोगों ने नाश किया। दक्षिणी ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके वेदों की परम रक्षा की तो भी वेद की पुस्तकों का बहुत नाश हुआ। आर्य्यों पर बौद्धराजों के समय में क्रूरता की गई। "तीन सौ वर्ष तक बौद्धों वा जैनियों का राज्य रहा इस बात को अनुमान से ढाई सहस्र वर्ष हुए हैं"

गौतम बुद्ध ने स्वयं पुस्तक न रची

मोनियर विलियम्स लिखते हैं कि बुद्ध सुकरात के सदृश व्याख्यान और उपदेश ही देता रहा, परन्तु उसने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। जो कुछ बौद्धमत के विषय में इस समय ज्ञान उपलब्ध होरहा है वह उसका वास्तविक लेख अथवा उसका अनुवाद नहीं है। इसलिये लेखक लिखते हैं कि बुद्ध ने अपनी पूजा की शिक्षा नहीं दी थी। चेलों ने उसका महत्व बढ़ाने के लिये मनुष्य पूजा की लीला रचाई। मनुष्य-पूजा तथा मूर्त्तिपूजा के दोष के भागी उस के चेले हैं न कि स्वयं गौतम बुद्ध

अशोक के राज्य में जो "त्रीपिटक" रचे गये थे वह बुद्ध के उपदेशों से विपरीत चेलों ने चैन उड़ाने के लिये बनाए ॥

बुद्ध के जीवन पर एक दृष्टि

"बुद्धमत" नामी पुस्तक के पृष्ठ २२६ पर मोनियर विलियम्स लिखते हैं कि "योग के साधन बुद्धमत ने नए प्रचलित नहीं किये किन्तु योग के साधन गौतम बुद्ध से पूर्व भारतवर्ष में विद्यमान थे और बुद्ध के जीवनचरित्र का सर्व सम्मत वृत्तान्त यह है कि बुद्ध अपना घर और सांसारिक संग छोड़ने पर कई ब्राह्मण योगियों के पास गया, जो कि योगाभ्यास करते थे और प्रत्येक मनुष्य का जो कि योगाभ्यास करता है उद्देश्य परमात्मा की ही प्राप्ति है। एक सच्चायोगी भगवद्गीता (६-१३-२५) बतलाती है वह है जो सांसारिक पदार्थों से निर्मोह वा विरक्त हो। उस के लिये मिट्टी, पत्थर, सौना सब समान हैं "इण्डियन मैगेज़ीन" बाबत मास जुलाई सन् १८८७ ई० तथा मेरी पुस्तक "ब्राह्मणमत और हिन्दुमत" के पृष्ठ ५२९ पर वर्तमान समय के एक नए धार्मिक रिफ़ार्मर (आचार्य्य) का संक्षिप्त जीवनचरित्र है जिसका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है और जिससे मैं सन् १८७६ ईस्वी तथा सन १८७७ में मिला था और जिसका देहान्त सन् १८८३ ई० में हुआ है इस के जीवन का वृत्तान्त बहुत कुछ बुद्ध के जीवन से मिलता है। इसकी शिक्षा का उद्देश्य वेद के एक ब्रह्म के माने हुए सिद्धान्त का पुनः प्रचार करना है। यह लिखा हुआ है कि इसका पिता शैवमत की दीक्षा देने के लिये इस को एक शिवमन्दिर में लेगया परन्तु चूहों को प्रसाद खाते हुए और मूर्त्ति के ऊपर खेलते हुए देखकर उसका मन शिव की मूर्त्ति की पूजा से घृणा खागया कि यह परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं है। ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा करते हुए और बार२ जन्म मरण के दुःख से छूटने के लिये उसने विवाह न करने और त्यागी होने का दृढ संकल्प धारण कर लिया। २२ वर्ष की आयु में वह छिपकर घर से भाग निकला और रात्रि के अन्धकार ने उसके भागने को छिपालिया। एक अप्रसिद्ध मार्ग में चलते हुए वह रातों रात तीस मील निकल गया। दूसरे दिन उसके पिता ने उसका पीछा किया जो कि उसको लौटाने का यत्न निष्फल करता रहा। अपने प्रान्त

से बहुत दूर जाने पर उसने सत्य की जिज्ञासा में अपने आपको अर्पण करदेने का व्रत धारण कर लिया फिर वह कई वर्ष भारतवर्ष के नाना स्थलों पर योगियों और विद्वानों के पास भटकता फिरा अन्त को अहमदाबाद में जा ठहरा, इस स्थल पर उसने राजयोग में सिद्धि प्राप्त की, फिर वह एक नए समुदाय का जिसका नाम आर्य्यसमाज है आचार्य्य हुआ" (पृष्ठ २२६, २२७)

मोनियर विलियम्स के इस लेख से सार यह निकलता है कि बुद्ध स्वामी दयानन्द के समान योगाभ्यास करता रहा और योग का परम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है इसलिये बुद्ध योगी तथा आस्तिक था और यही कारण है कि बुद्ध ने योग के पांच यमों तथा अन्य अङ्गों की शिक्षा देने में अपना जीवन लगा दिया ॥

मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३६ पर लिखते हैं कि योग-शास्त्र के पांच यम बुद्ध की पांच शिक्षाओं से मिलते हैं जैसे कि:—

{ १ पहला यम अहिंसा
{ १ बुद्ध का पहला उपदेश हिंसा न करो

{ २ दूसरा यम सत्य
{ ४ बुद्ध का चौथा उपदेश झूठ मत बोलो

{ ३ तीसरा यम अस्तेय
{ २ बुद्ध का दूसरा उपदेश चोरी न करो

{ ४ चोथा यम ब्रह्मचर्य अथवा पवित्रता
{ ३ बुद्ध का तीसरा उपदेश पवित्रता धारण करो

{ ५ पांचवां यम अपरिग्रह
{ ५ बुद्ध का पांचवां उपदेश मद्य मत पीओ

अपरिग्रह के साथ मद्य न पीने के अर्थों का विचार करता हुआ मोनियर विलियम्स महाशय लिखता है कि इस में कुछ भेद सा है क्योंकि अपरिग्रह के अर्थ उक्त महाशय सांसारिक भोगों से बचना लिखता है परन्तु वास्तव में इस के अर्थ विषयासक्त न होने के हैं और शराब पीना भी एक विषय में आसक्त होना है इसलिये इस का न पीना अपरिग्रह के अन्तर्गत हो सक्ता है। उस समय वाममार्ग के प्रचार के कारण लोग शराब के विषय में लम्पट रहते थे इसलिये यदि बुद्ध ने केवल शराब न पीने पर इस यम का आशय

घटाया तो उसने कोई अनर्थ नहीं किया । वास्तव में बुद्ध ने योगशास्त्र के पांच यमों की ही शिक्षा दी है ॥

योगशास्त्र में यमों के पीछे ५ नियमों का वर्णन है, मोनियर महाशय ने नियमों का वर्णन करते हुए स्वाध्याय यम के अर्थ जप के किये हैं और इस के अन्तर्गत लिखा है कि:—

"तिब्बत के बौद्ध लोगों में निम्नलिखित वाक्य का जप किया जाता है॥

Om Mani Padme Hum–Om !

(ओ३म् मानि पद्मे हुं ओं)

इस से विदित होता है कि तिब्बत के बौद्ध गौतम बुद्ध के समान आस्तिक हैं और ओ३म् का जप करते हैं

गौतम बुद्ध और बौद्धमत सम्बन्धी हमारा विचार

इस प्रकार की सर्व सामग्री की विद्यमानता में हमारे लिये यह कहना कठिन है कि महात्मा बुद्ध स्वयं नास्तिक थे अथवा वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे उन को योगशास्त्र के जो कि उपासना शास्त्र है यम, नियम आदि अष्टांग योग की शिक्षा देते हुये जब हम विचारते हैं तो विदित होता है कि वह आस्तिक थे और उन के कई शिष्य आज पर्यन्त तिब्बत में ओ३म् का जप करते हैं ॥

अनुमान द्वारा प्रतीत होता है कि वाममार्गी लोगों ने वेद में कोई प्रक्षिप्त वाक्य डालने चाहे होंगे परन्तु दो कारणों से वह ऐसा कर नहीं सक्ते थे ।

(१) प्रथम यह कि वेद मन्त्रों की रचना अत्यन्त कठिन तथा विचित्र है॥

(२) दूसरा यह कि वेद को प्राचीन समय से ब्राह्मण लोग कण्ठस्थ रखते आये हैं और इस हेतु से कोई उन में न्यूनाधिक नहीं कर सक्ता ।

जब ऐसा वामी लोग न करसके तो उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों में वामलीला के वाक्य रचकर मिला दिये और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद ही प्रचार कर दिया । गौतम बुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों को हिंसापरक होने के कारण निन्दा योग्य कहता होगा जैसा कि उपरोक्त मैक्सम्युलर के वचनों से पाया जाता है । यह भी संभव है कि बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थों के एक अंश की जिस में कि हिंसा विधायक लेख है निन्दा की हो, चेलों ने सारे ही ग्रन्थ त्याज्य बतला दिये ॥

यदि गौतम बुद्ध कोई पुस्तक रचजाते और वह सुरक्षित रह सक्ती तो इतिहासवेत्ताओं के लिये उत्तम रीति से यह बात प्रकट हो जाती कि बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थों का किन २ हेतुओं से खंडन किया था। अशोक आदि पुरुषों को सभा करके इसीलिये बौद्धमत के नियम निश्चय कराने की आवश्यक्ता पड़ती रही, क्योंकि बुद्ध कोई अपना लेख नहीं छोड़ गये थे और इसी रीति से बुद्ध के उपदेश के विरुद्ध बौद्धमत के सिद्धान्त अशोक की सभा में बनाए गये, जैसा आन्दोलन करने वालों के लेखों से पाया जाता है ॥

यह बात आज विचित्र प्रतीत होती है कि गौतम बुद्ध तो स्वयं आस्तिक और वेद के मानने वाले हों, परन्तु बहुत से शिष्यगण नास्तिक और मूर्त्ति-पूजक हों। एक धनी पिता की संतान निर्धन हो सक्ती है उसी प्रकार यह बात है ॥

गौतम बुद्ध को छोड़कर जब हम बौद्धमत अथवा जैनमत की ओर आते हैं तो पाते हैं कि इस वर्त्तमान मत ने उन सर्व दोषों की शिक्षादी जिनको कि हम ऊपर गिना आये हैं। बुद्ध के चेलों ने ही भारतवर्ष में आर्य्य संतान को ईश्वर तथा वेद से विमुख करा मूर्ख बना मनुष्यपूजा और मूर्त्तिपूजन के अथाह समुद्र में गिरा दिया इसलिये बुद्ध के देहान्त के पश्चात् जब बौद्धमत यौवन पर आया तो निःसंदेह देश में नास्तिकता और मूर्त्तिपूजा छागई थी जिस को दूर करने के लिये कुमारिलाचार्य्य और स्वामी शंकराचार्य्य ने जन्म लिया ॥

मूर्ति पूजा के खण्डनकर्त्ता स्वामी शङ्कराचार्य्य का समय

—:-*-:—

कुमारिलाचार्य्य ने शङ्कराचार्य्यके लिये सड़क बांध दी।

जब बौद्धमत अपने यौवन के अन्तिम दिन भोग रहा था उस समय जिस देशहितैषी ने भारतसन्तान की रुचि ईश्वर और वेद की ओर कराई उस का नाम स्वामी कुमारिलाचार्य्य * था। कुमारिल स्वामी ने बौद्धमत का युक्ति और प्रमाण से उत्तम रीति से खंडन किया। गौडपादाचार्य्य ने जो उपनिषद् पर कारिका लिखी हैं और जिन में उस ने अपने भ्रम से मायावाद दर्शाया है उसी मायावाद के शस्त्र को लेकर कुमारिल स्वामी बौद्ध पण्डितों के पराजय के लिये निकल पड़े। जिस समय इन्होंने शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया उस समय जैन लोग बुद्धिहीन हो रहे थे। कुमारिल स्वामी के जीवन चरित्र में ऐसे दृष्टान्त बहुत मिलते हैं जिनसे पाया जाता है कि बौद्ध पण्डित चमत्कार (करामात) के मानने वाले बन रहे थे, जब कुमारिलाचार्य्य ने इनके संग शास्त्रार्थ किया उस समय बौद्ध लोगों ने अपनी मूर्खता प्रकट करते हुए इन से चमत्कार मांगे चाहिये तो यह था कि जैनी पण्डित युक्ति वा शास्त्र का प्रमाण मांगते परन्तु बड़े२ पण्डितों ने चमत्कार ही मांगे ॥

थोड़े ही समय तक प्रचार करने से कुमारिलाचार्य्य ने लोगों के कई संशय मिटाकर उनको वेद और ईश्वर का भक्त बना दिया। जहां इन के प्रचार से लोगों की श्रद्धा वैदिक साहित्य की ओर बढ़ी वहां साथही गौड़पादाचार्य्य का मायावाद (नवीन वेदान्त) फैल गया। बड़े २ धनी और विद्वान् पुरुष कुमारिल स्वामी के अनुयायी बने। अमरावती का राजा भी इनका अनुयायी बन गया और देश में सर्वत्र आस्तिकपन की जय ध्वनि होने लगी, कुमारिलाचार्य्य अपना काम करते हुए परलोक सिधार गये और शंकराचार्य्य के लिये काम करने की सड़क बांध गये। शंकराचार्य्य ने उन के काम की पूर्त्ति की और

*इन को कुमारिलभट्ट अथवा भट्टपाद भी कहते हैं।

युक्ति तथा शास्त्रार्थ का अद्भुत शस्त्र लिये हुए प्रसिद्ध जैनी पण्डितों पर विजय प्राप्त की। राजा सुधन्वा ने शंकरस्वामी को बहुत कुछ सहायता प्रचार में दी। शंकरस्वामी के उद्योग से अनेक जैनी लोगों ने गायत्री मन्त्र पढ़ा तथा यज्ञोपवीत धारण किये ॥

शंकराचार्य्य ने मूर्त्ति पूजा का भारी खंडन किया।

यही नहीं कि शंकरस्वामी जैनियों से शास्त्रार्थ करते रहे हों परन्तु उन्होंने पौराणिक मतवादी शैव, शाक्त लोगों और तन्त्रमतवादी वामी पण्डितों से भी उत्तम शास्त्रार्थ किये। उनके शास्त्रार्थों से पता लगता है कि जैनमत के प्रचार के कारण वाम मार्ग बहुत ही दब गया और बहुत कुछ नष्ट भी हो चुका था परन्तु सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ था और भारत के अनेक स्थलों पर गुप्त रीति से विचर रहा था। शंकरस्वामी ने भस्म लगाने वाले शैव लोगों को दर्शा दिया कि तुम्हारा भस्म के चिन्ह लगाना अवैदिक कर्म है। शंकरस्वामी ने नास्तिकपन और मूर्त्तिपूजा को दूर करने के लिये भारी यत्न किये और राजा की सहायता से बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। कौन कह सक्ता है कि कितने मन्दिर मूर्त्तियों से शून्य हुए अथवा कितनी मूर्त्तियां लोगों ने मन्दरों से निकाल कर नदियों में डालीं वा भूमि में गाड दीं। जिस प्रकार संग्राम की समाप्ति पर पराजित शत्रु शस्त्र दबाते, छिपाते अथवा स्वयं त्यागन करते हैं उसी प्रकार उस समय लोगों ने शंकर की युक्ति और प्रचार के प्रताप से बुद्ध तथा तीर्थंकरों की मूर्त्तियां भूमि में गाड़नी आरम्भ करदीं। यदि शंकर स्वामी के भय से उस समय मूर्त्तियां दबाई न जातीं तो आज दिन अङ्गरेजी सर्कार को पृथिवी खोदने से वह जैन मूर्त्तियां कैसे प्राप्त होतीं? इस समय जितनी मूर्त्तियां भारतवर्ष तथा लण्डन आदि के अद्भुतालयों का शृङ्गार बन रही हैं वह सब जैन मूर्त्तियां उस समय शंकर के भय से दबाई गई थीं। अद्भुतालयों की इन मूर्त्तियों को देखने से एक जिज्ञासु अनुमान करसक्ता है कि मूर्त्तिपूजा को नष्ट करने के लिये शंकरस्वामी ने कैसा प्रबल काम किया होगा। सैकड़ों मूर्त्तियां लोगों ने जैन मत त्यागने पर स्वयं तोड़ डालीं। राजा सुधन्वा और कई अन्य राजे वैदिक धर्मी हुए। शंकरस्वामी गुरुकुल बनाने की सर्वत्र चिन्ता करने लगे ताकि वेदों के पठनपाठन का प्रचार हो और उपदेश देने लगे कि "वेदों को नित्य पढ़ो"

परन्तु देश के भाग्य कहां थे कि यह गुरुकुलों का दर्शन करता। दो जैनी चेलों ने जो कि कीट तक की रक्षा करने को धर्म मानने वालों में से थे, ऐसे महान् पुरुष की हिंसा में संकोच न करते हुए वेषधारण करके छल से उन को विष देदिया। जो वेदों के पठनपाठन के लिये सर्वत्र गुरुकुल खोलने की शुभ इच्छा शंकराचार्य्य के मन में थी वह मन में ही रह गई और स्वामी शंकर पृथिवी पर से स्वर्ग को पधार गये।

शंकराचार्य्य के जविन पर एक दृष्टि

स्वामी शंकराचार्य्य वेद को छोड़ कर अन्य कई शास्त्र पढ़े हुए थे वेदों पर इन की अत्यन्त श्रद्धा थी। उपवेद पढ़ने का इन को अवसर नहीं मिला था, उपनिषदों में जो ऋषभ शब्द गर्भाधान प्रकरण में वाजीकरण औषध का वाची आता है और जिस के यथार्थ अर्थ वैदिक शास्त्र के पढ़ने से लगते हैं उस के साधारण अर्थ शंकरस्वामी ने बैल के ही किये हैं जिस से यह बात निश्चित होती है कि इन को उपवेद पढ़ने का अवसर नहीं मिला यदि इनकी गम्यता वेदों तक होती तो वेदमंत्रों का भाष्य करते अथवा अपने पक्ष की पुष्टि में वेद मन्त्र देते उपनिषदों पर ही वह निर्भर रखते थे इस से पाया जाता है कि वह वेद के पण्डित न थे इसलिये उन की गणना ऋषि श्रेणी के पुरुषों में नहीं हो सक्ती, हां पण्डितों और देशहितैशियों में वह प्रथम श्रेणी के गिने जा सकते हैं। जैनमत के पुस्तक भी भलिभांती पढ़े हुए थे। युक्ति के धनी थे। उज्जैन नगरी में आनकर सुधन्वा को वेदों का महत्व दर्शाया और कहा कि जैनों से हमारा शास्त्रार्थ करादो राजा ने शास्त्रार्थ कराया जिस में शंकरस्वामी की युक्ति प्रबल रही इस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में बौद्ध पक्ष यह था कि:—

"सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत् और जीव अनादि है इन की उत्पत्ति और विनाश कभी नहीं, होता"

स्वामी शंक्राचार्य्य का पक्ष यह था कि:—

"अनादि परमेश्वर ही जगत् का कर्त्ता है यह जगत् और जीव झूठा है, ईश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया है, यह जीव और प्रपंच स्वप्नवत् है"

यह युक्ति शंकरस्वामी ने गौड़पादाचार्य्य की उपनिषद् पर कारिकाओं से ग्रहण की थी। यह मायावाद की युक्ति यद्यपि जैनमत को गिराने में सफल हुई परन्तु मूर्त्तिपूजन के स्थान में प्रत्येक नरनारी को ब्रह्म ही ब्रह्म दर्शाने वाली हुई। इस अवैदिक युक्ति अथवा हेत्वाभास ने **मायावाद** (नवीन वेदान्त) का प्रचार सर्वत्र करादिया ॥

जगत् मिथ्या ब्रह्म सच्चा इस भ्रान्त युक्ति को लेकर स्वामी शंकराचार्य्य ने दश वर्ष के भीतर आर्य्यावर्त में भ्रमण करते हुए जैनी पण्डितों का पराजय कर दिया। शंकर स्वामी ने गौतम बुद्ध के विपरीत स्वयं ग्रन्थ रचे। इनके शारीरिक भाष्य आदि रचित ग्रन्थों का प्रचार इन के शिष्य करने लगे। इन संन्यासी शिष्यों ने मायावाद का सर्वत्र प्रचार कर दिया और जहां भारतसंतान में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने के लिये श्रद्धा उत्पन्न हुई वहां साथ ही मायावाद ने उन को कर्म करने के योग्य ही न रक्खा। लोग समझने लगे कि हम जब स्वयं ब्रह्म हैं तो ब्रह्म को पढ़ने की आवश्यकता क्या है ? बुद्ध के चेलों ने जीवन मुक्त बौद्धों को ब्रह्म अथवा ब्रह्म से उच्च दर्शा दिया था, स्वामी शंकर के मायावाद ने प्रत्येक जीव को ब्रह्म बनादिया ॥

गौतम बुद्ध जितने योगाभ्यासी थे उतने अन्य शास्त्रों के पण्डित न थे, योगशास्त्र और मनुस्मृति पर उनकी विशेष रुचि थी, ऐसा प्रतीत होता है। शंकराचार्य्य जी पण्डित थे, पर योगाभ्यासी न थे। इतिहास गौतम बुद्ध को योगाभ्यासी और शंकरस्वामी को पण्डित दर्शा रहा है। यदि शंकरस्वामी योग में अभ्यास करते और उनकी आयु कुछ अधिक होती तो वह अवैदिक मायावाद के प्रचारक न होते, शंकरस्वामी व्याकरण उपनिषदादि के विशेष पण्डित थे और साधारण रीति से शाब्दिक अर्थ करने की शैली से विज्ञ थे। वेद इन्होंने पाठमात्र पढ़ा होगा परन्तु वेदों के गूढ़ अर्थ केवल व्याकरण से नहीं खुलते, इसलिये वेदों के गूढ़ अर्थों तक इनकी गम्यता न हुई। जो विद्वान् वेद के बुद्धिपूर्वक अर्थ सृष्टिरूपी कोष में देखना चाहे उसको जहां व्याकरण आदि सर्व शास्त्रों में उत्तीर्ण होने की आवश्यकता है वहां योग दृष्टि की जो कि अभ्यास से प्राप्त होती है धारण करने की आवश्यकता है। यह हो सक्ता है कि जैनमत के भयंकर प्रचार से उनका हृदय व्याकुल होगया और उन्होंने झट

पट हो देशसुधार के काम को हाथ में छोटी अवस्था में ही लेलिया और इस हेतु से उन में यह त्रुटि रहगई और फिर काम में पड़कर उनको वेदार्थ मनन करने अथवा योगी बनकर साक्षात् करने का अवसर न मिला। वेदों में जब यह मंत्र विद्यमान हो कि:—

"द्वा सुपर्णासयुजा" इत्यादि

जिसमें द्वा शब्द दो का बोधक पाया जाय और मंत्र ईश्वर और जीव को स्वरूप से भिन्न २ दर्शा रहा हो तो स्वामी शंकराचार्य्य का केवल एक ही ब्रह्म मानना और जीव तथा प्रकृति को न दर्शाना विदित कराता है कि उन पर वेद मंत्रों के यथार्थ अर्थ नहीं खुले। यह मानते हुए कि वह वेदों के ऋषि न थे तो भी मूर्त्तिपूजा के खंडन में जो काम उन्होंने किया वह प्रसंशनीय है। वह हमें ज्ञान नेत्रों से एक बाल ब्रह्मचारी और देशहितैषी पण्डित के रूप में जैनमत, शैवमत और वाममार्ग का खंडन करते हुए और आर्य्य संतान को वेद पढ़ने का उपदेश देते तथा अवैदिक मायावाद को फैलाते हुए दृष्टि पड़ते हैं।

शंकर स्वामी के मायावाद का फल

शंकरस्वामी के लेखों तथा शास्त्रार्थों ने लोगों की बुद्धि को उज्ज्वल किया, परन्तु मायावाद ने चारों वर्णों के नरनारियों को महा आलसी और पुरुषार्थरहित बनादिया। मायावाद में पड़कर लोग कर्मकाण्ड से रहित होने लगे। मायावाद के प्रचार के संग २ झूंठा वैराग्य देश में बढ़ने लगा यहां तक कि मंदालसा सरीखी रानियां झूठे वैराग्य की लोरियां बच्चों को देने लगीं।

दो सौ वर्ष के लगभग मायावाद बढ़ता रहा और जैसा कि उसका स्वाभाविक फल होना था लोग धर्म कर्म से हीन होते गये। पांच यम जो कि सामाजिक जीवन के मूल थे उनका प्रचार लुप्त हो गया। सामाजिक जीवन से हीन आलसी भारत को शक आदि विदेशों के राजाओं ने दलन करना आरम्भ किया और शंकराचार्य्य के ३०० वर्ष पीछे उज्जैन नगर में आर्य्य राजा विक्रमादित्य हुये जिन्होंने कि विदेशियों से पीड़ित भारतसंतान को शान्ति दिलाई। बुद्धमत और शंकरमत की शिक्षा के उस अंश से जो कि अवैदिक था भारतसन्तान बुद्धि और शारीरक बल से क्षीण होने के कारण संग्रामों से पीडित होने लगी। आलसी भारतसंतान को पुनः पुरुषार्थी बनाने के लिये महाराज विक्रमादित्य ने

बहुत यत्न किया, अपने निज जीवन को ऐसे नियमपूर्वक व्यतीत करना आरम्भ किया कि प्रजा पर नियम और मर्य्यादापूर्वक पुरुषार्थ करने का उत्तम प्रभाव पड़ा। कई विद्याओं का पुनः इसने भारत में प्रचार कराया। जो वीर क्षत्रिय इस की सेना में थे उनकी तथा उनके सम्बन्धियों की संतान ने जो कि इतिहास में राजपूतों के नाम से प्रसिद्ध है, यवनों के समय आश्चर्यकारक वीरता दिखाई। विक्रमादित्य समग्र भारतवर्ष का महाराजा था कुमारी से कश्मीर तक इसका ही राज्य था, मित्रगुप्त इसकी ओर से मांडलिक राजा बनकर कश्मीर आदि में राज्य करता था। मनुस्मृति की राज्यव्यवस्था तथा नीति का इसने पूर्ण रीति से देश में प्रचार किया। विक्रमादित्य उसी प्रकार का महाराजा था जिस प्रकार कि बौद्धों का अशोक अथवा यवनों का अकबरशाह हुआ है। विक्रमादित्य के पश्चात् यद्यपि अनेक आर्य्य राजे भारत में हुये परन्तु किसी ने भी समग्र भारत का राज्य प्राप्त नहीं किया। पौराणिक समय में प्रान्त २ के भिन्न २ राजा होगये और परस्पर लड़ने झगड़ने में ही प्रवृत्त रहे॥

विक्रमादित्य के पांच सौ वर्ष पीछे राजा भोज हुये उन्होंने शिल्प विद्या, आयुर्वैदिक विद्या और कविता की उन्नति की। पौराणिक समय के आरम्भ से पूर्व कालिदास कवि हुआ है जिसके जीवनचरित्र से विदित होता है कि उस के समय तक भारत में जन्म से वर्ण नहीं माना जाता था। कालिदास पंडित का विवाह विद्योत्तमा से स्वयंवर की रीति से हुआ और कालिदास मौन धारण किये हुये अन्य पण्डितों की सम्मत्यनुसार स्वयंवर के समय उस से उङ्गलियां उठा २ कर शास्त्रार्थ करता रहा इस वृत्तान्त से यह भी सिद्ध होता है कि घूंघट काढ़ने का प्रचार इस समय तक स्त्री जाति में न था। विद्योत्तमा का जीवनचरित्र प्रकट करता है कि वह विदुषी थी और इतिहास दर्शाता है कि इस समय तक स्त्रियों को पुरुषों के समान विद्यादि का अधिकारी माना जाता था स्त्री और शूद्र को वेद न पढ़ाने का वाक्य पौराणिक समय में स्वार्थी ब्राह्मणों ने घड़ा और पौराणिक समय में ही स्त्रियों को लोग मूर्खा बनाने लगे॥

शङ्करस्वामी के जीवन चरित्र से भी प्रकट होता है कि उस समय स्त्रियां

पुरुषों के समान विदुषी हुआ करती थीं, यहां तक कि एक विदुषी स्त्री ने शङ्कर स्वामी को भी शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर दिया ॥

पण्डित कालिदास के समय के पश्चात् यही निश्चय होता है कि भारत सन्तान जन्म से वर्ण मानने लगी। पुरुषार्थी विक्रमादित्य के समय में ही मायावाद की अधोगति होगई थी। राजा भोज के समय से लोगों की रुचि इतिहास लिखने और काव्य ग्रन्थ बनाने की ओर होगई। कालिदास के विषयरस से भरे हुए शकुंतला आदि नाटक गृह २ में फैले और आर्य्यसन्तान विषयों के विषमय काव्यालंकार में पड़कर पुनः वीर्य्यहीन होने लगी। जिस प्रकार मुग़ल बादशाहों को विषयासक्त बनाने में "उर्दू के दीवान" (विषयवर्द्धक कविता के ग्रन्थ) कारण हुए थे उसी प्रकार आर्य्यसन्तान को फिर वाममार्ग अथवा विषयासक्ति की ओर लेजाने वाले कालिदास आदि कवियों के विषयवर्द्धक ग्रन्थ हुये। पवित्र शास्त्रों और उपयोगी विद्याओं को तज कर काव्य ग्रन्थों की ललितभाषा पर भारतसन्तान लट्टू होने लगी। इसी रुचि को अनुभव करके स्वार्थी ब्राह्मणों ने मीठी कविता में भागवत आदि पुराण रच कर मिथ्या सिद्धान्त और भ्रान्त कथाओं का भारत में प्रचार कर दिया। इन काव्य ग्रन्थों ने वाम मार्ग को पुनः जगाने का काम किया, क्योंकि जहां विषयाशक्ति की ओर लोग धावित हों वहां पर वाममार्ग क्यों न अपना राज्य जमाए। वाम मार्ग के जागने के साथ ही शैव, शाक्त, जैन आदि मतों ने भी सुध संभाली और सब के प्रचार ने मिलकर भारतवर्ष को १८ पुराणों की टकशाल बना दिया ॥

ओ३म्

भारत के इतिहास में पौराणिक अमावास्या की घनघोर रात्रि और उस में आदित्य ब्रह्मचारी का आगमन

:o-*-o:

महाशय आर. सी. दत्त पौराणिक समय के अन्तर्गत विक्रमादित्य को रखते हैं अर्थात् विक्रम से ही पौराणिक समय का आरम्भ करते हैं। हमने पौराणिक समय का आरम्भ राजा भोज के पश्चात् दर्शाया है। यदि कालिदास वैश्य पौराणिक समय में विद्या पढ़ना चाहता तो उस को ब्राह्मण कब पढ़ाते? जिस समय उस ने विद्या पढ़ी वह पौराणिक यौवन का समय नहीं हो सकता। आजकल कालिदास के ग्रन्थ पढ़ने वाले पौराणिक पण्डित शास्त्री कहलाते हैं अर्थात् पौराणिक पण्डित लोगों का कालिदास गुरु बन रहा है। एक युक्ति यह भी है कि राजा भोज के समय में शल्यविद्या * (सरजरी) उन्नत दशा पर थी और जो ऐसे वैद्य होते थे वह गुण कर्मानुसार ब्राह्मण पदवी धारण करते और आर्य्य तथा दस्यु सब की औषध करते थे परन्तु पौराणिक यौवन के समय में ब्राह्मणों ने विद्या के निमित्त मृत शरीर का छूना, यन्त्रों से चीरना सर्वथा छोड़ दिया और छूतछात में पड़कर दस्यु जाति की

*ठाकुर भगवन्तसिंहजी एम. डी ने आर्य्य वैदिक इतिहास में भोजप्रबन्ध ग्रन्थ का वर्णन करते हुये सिद्ध किया है कि दो धन्वन्तरियों (सरजनों) ने उत्तमता से राजा भोज के शिर को वेधन और यन्त्र द्वारा सीवन किया था।

औषध करना तो दूर रहा दस्यु के दर्शन से भी पाप मानने लगे । छूतछात और जन्म से जात पौराणिक समय की प्रधानता के दो मुख्य लक्षण हैं परन्तु यह दो लक्षण श्रीमान् राजा भोज के समय तक आर्य्य जाति में विद्यमान न थे इसलिये विक्रमादित्य और भोज के पश्चात् ही पौराणिक समय अपने यौवन पर आया, यही माना जा सकता है ।

कल्पित पुराण घड़ने की विधि वामियों ने सिखाई।

भारत के इतिहास में यदि किसी ने पहिले दूसरे के नाम पर झूठा अथवा कल्पित श्लोक वा वाक्य बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया है तो वह वाममार्गी थे वामियों से शिक्षा लेते हुए पौराणिक ब्राह्मणों ने ऋषि व्यास जी का नाम रख कर कपोल कल्पित व्यर्थ ग्रन्थ रचने आरम्भ करदिये और उनका नाम " नवीन " रखने के स्थान में पुराण रख दिया । इस ठगी की नींव डालते हुए पौराणिक ब्राह्मणों ने वाममार्ग, मूर्त्तिपूजा, अवतार, मायावाद से मेल करते हुये स्वयं पोप रोम के सदृश संस्कृत के शब्द पढ़ने का ठेका लेलिया और क्षत्रिय, वैश्य वर्णों को संस्कृत पढ़ाना छोड़ दिया, स्वयं बुद्धि खोदी और दूसरों की बुद्धि खोने के लिये पीछे पड़गये ॥

पौराणिक समय के यौवन का वर्णन ।

इस समय में सब से पहिले शैवमत यौवन पर आया, और वे शैवमत के अनुयायी जिन के भस्म लगाने आदि का शंकरस्वामी ने खंडन किया था जैनियों से शिक्षा पाते हुये शंकर को ही शिव का अवतार मानने लगे इधर शंकर के शिष्य शंकर को साक्षात् ब्रह्म बनाकर झूठे वैराग्य की आड़ में अपने मठों में चैन उड़ाते हुये संन्यास के रूप में गृहस्थों को मात कर रहे थे, उन्होंने मुट्ठी गरम करने के लिये शैवमत से मेल करलिया और शंकरमत के मायावादी साधु, सन्यासी शैवमत में पग अड़ाने लगे ॥

शैव शाक्त का मेल

शाक्तमत तो आगे ही शैवमत का अर्द्धांगी था अब उसने खुली रीति से शैवमत का आलिंगन कर लिया ॥ दोनों ने मिलकर भस्म रमानी और रुद्राक्ष की माला धारण करनी आरम्भ

करदी। शैव लोग रुद्राक्ष का धारण करना ही महादेव का रूप होना बतलाने लगे और उन के साथ शाक्तमत भी तथास्तु की माला फेरने लगा ॥

शैव और वाममार्ग की टिप्पणी।

शैव और वाममार्ग दोनों इकट्ठे मिलगये और निर्लज्ज असभ्यता वर्द्धक मूर्त्ति बनाने में जैनमत के भी कान कतर दिये। इन दोनों ने सम्मति करके भग लिंग की मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा प्रचलित की जलहरी उस का नाम रक्खा। विषयासक्ति की ओर नरनारी झुके, पामरपन धर्म बन गया।

जैनमत ने करवट बदली

जैनमत जिसने मूर्त्तिपूजा की सब को शिक्षा दी थी उसने जब देखा कि शिर पर शंकरस्वामी रोकने वाला नहीं और शङ्कर के चेले स्वयं घड़ियालिये बन रहे तथा मायावाद की गाढ़निद्रा में मूर्छित पड़े जीते हुए कर्महीन होने के कारण मुर्दा बन रहे हैं तो बस फिर किस का डर था बड़े ठाठ से मूर्त्तिपूजा आरम्भ की और घंटा घड़ियाल से कोलाहल मचा दिया, सारी कमाई ईंट चूने के जोड़ने में लगानी जीवन उद्देश्य समझा ॥

ब्राह्मण जैनियों के कर्मद्वारा शिष्य बन गये

स्वार्थी ब्राह्मणों ने मारकंडेय और शिवपुराण को तो राजा भोज के राज्य में कुछ घड़ ही लिया था परन्तु राजशासन के भय से पोपलीला फैला न सके अब जब कि विक्रमादित्य और भोज सरीखा कोई रोकने वाला दृष्टि न पड़ा तो मूर्त्तिपूजा के रण में खुले सरपट दौड़ने लगे। जैनियों के २४ तीर्थंकर थे इन्होंने भी २४ अवतार बनाए। जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराण हैं वैसे ही इन्होंने १८ पुराणों की संख्या पूरी की। अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति और कल्पित कथा के पुस्तक (पुराण) बनाने में ब्राह्मणों ने वह सिद्धि दिखाई कि कोई इन को जैनियों का चेला न कह सके। आगे जो लोग जैन मन्दिरों में जाते थे उनके लिये सर्व सामग्री पौराणिक ब्राह्मणों ने अपने घर में बना दी। और इस प्रकार के श्लोक सुनाने लगे कि:—

"चाहे प्राण कंठ में आजावें अथवा हाथी दलन करदे तो भी जैनमन्दिर में न जाना चाहिये" ॥

"बाबावाक्यं प्रमाणं" के मानने वाले हिन्दुओं ने जैन मन्दिरों से रुचि हटाकर इनकी सुध ली और हिन्दु मन्दिरों की लीला बढ़ने लगी। सदर से गये ग़दर हुआ, अनुकरण पर उतरे जैनियों के दासानुदास बन गये ॥

शाक्तों के मन्दिर वाममार्गियों ने काली, ज्वालामुखी, शीतला, विन्ध्यवासिनी आदि अनेक देवियों के नाम से नाना स्थलों पर मन्दिर बना लिये और भैंसे बकरे उन मन्दिरों में कटवाने लगे। यहां तक ही नहीं परञ्च मनुष्य के बलिदान भी समय२ पर गुप्त अथवा प्रकट रीति से देने लगे।

हंटर साहब अपने इतिहास के पृष्ठ ९१ पर इस विषय में ऐसा लिखते हैं कि:-

"१८६६ सन् के दुर्भिक्ष काल में काली के एक मन्दिर में जो कलकत्ता से ८०० मील के अंदर होगा एक लड़का ऐसा मिला जिसका कि गला काटा गया था। उसकी आंखें बाहर को निकली हुई थीं और जिह्वा दान्तों में पिचक गई थी। हुगली के एक और मन्दिर में काली की मूर्त्ति के आगे मनुष्य का शिर काट और उस पर फूल रख कर भेंट किया गया था" ॥

सरकार अङ्गरेज़ी के उत्तम राजप्रबन्ध के कारण मनुष्य के बलिदान इस समय इन मन्दिरों में नहीं दिये जाते। परन्तु यवनों के समय में मनुष्य के बच्चों के बलिदान बराबर दिये जाये थे। पंजाब में सरकारी राज्य से पूर्व कई माताएं देवियों के पुजारियों को जीता जागता अपना पहला बच्चा देआती थीं यह समझती हुई कि और बहुत से बच्चे होंगे और वह जीवित रहेंगे। इस बच्चे की जो चाहे सो दुर्गति दुष्ट पूजारी बनाते थे ॥

वाममार्गियों की गुफाएं जहां २ देवी अथवा भैरव आदि के मन्दिर होते हैं वहां २ वामियों ने अपनी निशाचरलीला रचाने के लिये गुफाएं जो कि कोटों की सुरंगों के सदृश हैं बना रक्खी हैं। सन् १९०२ अर्थात् गत वर्ष सरकार ने हनुमान गढ़ी के निकट फीरोज़ाबाद के प्रान्त में एक वामी गुफा की खोजना की थी, जिसके अंदर सुन्दर स्त्रियां मन्दिर के पुजारी गुप (लोप) कर लेते थे ॥

पौराणिक समय में सर्वत्र नाना प्रकार की मूर्त्तियां तथा उनके मन्दिर बनने लगे और प्रत्येक मतानुयायी गुप्त अथवा प्रसिद्ध मन्दिर बनाने में प्रवृत्त हुआ।

वैष्णवमत और उसकी शाखा।

हम कुछ थोड़ा सा शैव, शाक्त आदि मतों का वर्णन कर चुके हैं अब वैष्णव मत का वर्णन करते हैं। महाराजा भोज से १५० वर्ष पीछे वैष्णव मत प्रधान हुआ। शठकोप और मुनिवाहन इस के आदि प्रचारक थे। फिर एक मुसलमान का नाम हरिदास रख कर वैष्णव लोगों ने उसको अपने में मिलाकर अपना गुरु बना लिया। हरिदास को यवनाचार्य्य भी कहते हैं। रामानुज पण्डित ने इसमें प्रविष्ट हो कर इसकी बहुत उन्नति की। जिस प्रकार शैवों ने शिवपुराण, शाक्तों ने देवीभागवत बनाये थे उसी प्रकार वैष्णव लोगों ने विष्णुपुराण बनाया॥

रामानुज ने शंकरमत के खंडन में लेख किया और अपना अनोखा अवैदिक विशिष्टाद्वैतमत खड़ा कर दिया। कंठी, तिलक, माला, मूर्त्तिपूजन इनका मुख्य उद्देश्य हुआ। इन के मन्दिरों में पुजारी रात दिन मूर्त्तियों के सजाने में लगे रहते हैं। घंटा घड़ियालादि बहुत से आडम्बर रखते हैं॥

रामानुज का चेला रामानन्द हुआ जिसका मत सन् १३०० ई० से सन् १४०० ई० तक अथवा उस के लगभग यौवन पर रहा। बनारस में इसने अपना स्थान रहने का बनाया। इसने शूद्रादि वर्ण से १२ शिष्य बनाये, कोई मोची, कोई नाई और एक प्रसिद्ध शिष्य धुनिया था। रामानुज ने संस्कृत में ग्रन्थ रचे थे, रामानन्द ने हिन्दी भाषा से काम लिया॥

कबीर अलीनूर धुनिये का पालक पुत्र था। यह रामानन्द का चेला हुआ। बङ्गाल देश में इसने अपने मत का प्रचार किया। जिस प्रकार रामानन्द चाहता था कि छोटे बड़े सब एक हो जावें उससे अधिक कबीर चाहता था कि वैष्णवमत और मुसलमानी मत का परस्पर मेल हो जावे इसलिये उसने अपने वाक्यों में लिखा कि हिन्दुओं और मुसलमानों का ईश्वर साझा है। राम रहीम को मिलाने का इस ने अच्छा यत्न किया। यद्यपि इसने मूर्त्तिपूजन को वैष्णवमत से उड़ादिया और स्वयं मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता था, परन्तु पौराणिक मगर मच्छ ने इस उपदेश को भी इसके मरते ही निगल लिया और फिर कबीरपन्थी स्वयं कबीर को ही अवतार मान बैठे और खाट, तकिये, गद्दी, खड़ाऊं और दीपक आदि जड़ पदार्थों को वैष्णव लोगों के समान पूजने लगे। कान को बन्द करने से जो सां २ की ध्वनि होती है उसको अन-

हद शब्द सिद्धान्त ठहराया । मनकी वृत्ति को सुरति कहा। उस को इस सार के सुनने में लगाना सन्त और ईश्वर का ध्यान बतलाया । बरछी के समान तिलक लगाने और चन्दन की कंठी बांधने और कबीर को अवतार बतलाने का नाम कबीरपन्थ हो गया ॥

कबीर के कई चेले थे परन्तु सब में प्रसिद्ध नानकशाह हुआ है । इस विषय में आर. सी. बोस 'हिन्दुहिट्रोडकसी' पुस्तक* का कर्त्ता इस प्रकार लिखता है किः-

" इस में कुछ सन्देह नहीं हो सक्ता कि नानकशाह कबीर का चेला था और ऐसा चेला कि जिस के द्वारा कबीर के सिद्धान्त का प्रचार हुआ " । (देखो पृष्ठ ३१३)

सन् १३८० से सन् १४२० तक कबीर प्रचार का काम करता रहा। अकबरशाह का मन्त्री अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "सिकंदर लोधी के समय में कबीर था" ।

कबीर के वचन सिक्खों के आदि ग्रन्थ में बहुत मिलते हैं और 'बोस' महाशय का वचन है कि "जितने नानकशाह के वचन ग्रन्थ में हैं उससे कुछ ही न्यून कबीर के वचन हैं" कबीर ने जो कुछ ईश्वर सम्बन्धी उपदेश दिया है वह शंकरमत अथवा कुरानमत ही है अर्थात् जीव को ब्रह्म ही कहा है ।

"कबीर का मत काशी से चला जो कि हिंदु मत का केन्द्र था और पंजाब में आकर फैला" (पृष्ठ ३२९)

नानकशाह ने कबीर के सदृश मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया और एक ब्रह्म का उपदेश दिया । इनकी मृत्यु के कुछ काल पीछे सिक्खमत मूर्त्तिपूजक हो गया । और 'बोस, के लेखानुसार पृथिवी पर सिक्ख लोग ही केवल पुस्तक पूजक हैं । सिक्ख लोग पौराणिकों के समान अपनी पुस्तक को भोग लगाते, उसकी सवारी निकालते, उसपर चंवर झुलाते और उसकी आरती करते हैं । अमृतसर और गोदंवाल के ताल और बावली को तीर्थ समझ कर उन के जल को पापनाशक मानते हैं जिस प्रकार यवन लोग मानते हैं कि

Hiudu Heterodoxy. By R. C. Bose Calcutta 1887.

मुहम्मद साहब 'खातमुलमुरसलीन' हैं उन के पीछे कोई उन के समान नहीं होगा इसी प्रकार सिक्ख लोग दशवें गुरु साहब के पश्चात् किसी का उनके समान होना नहीं मानते। जैनी लोग भी ऐसा ही मानते हैं कि २४ तीर्थकरों के विना कोई महात्मा नहीं है। अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३६३ पर बोस लिखते हैं कि आदि ग्रन्थ के रचने वाले निम्नलिखित हैं अर्थात् केवल सिक्ख महाशयों वा गुरुओं ने ही नहीं बनाया प्रत्युत अन्य पुरुषों ने भी जो भक्त कहलाते थे बनाया है। वह 'ग्रन्थ साहब, के बनाने वालों की नामावली यह देते हैं:–

नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जनमल्ल, तेगबहादुर, गोविन्द, कबीर, सूरदास, त्रिलोचन, धन्नाजाट, नरदेव, रयिदास चमार, सदना कसाई, सिनोनाई, शेखफरीद, पीपाराजा, बेनी, भभीखन, ॥

"डाक्टर अरनेष्ट ट्रम्प*" जिन्होंने सिक्खों के आदि ग्रन्थ का अंगरेज़ी अनुवाद किया है और जिसके अनुवाद की सरकार ने "मरदुम शुमारी" की रिपोर्ट में श्लाघा की है उसका जो विचार इस पुस्तक अथवा "ग्रन्थ साहब" संबन्धी है उसको बोस लिखते हुए अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३८९ पर यह दर्शाते हैं कि:–

"जो कोई ब्रह्म को जानता है वह स्वयं ब्रह्म है, नानक् कहता है"

इससे पाया जाता है कि इस ग्रन्थ में जीव ब्रह्म की एकता की नवीन वेदान्त के समान शिक्षा दी गई है।

जिस प्रकार मायावादी अथवा यवनलोग एक ब्रह्म का महावाक्य (कलमा) बतलाते हैं उसी प्रकार सिक्ख लोगों ने "वाह गुरु" इन शब्दों को अपना महावाक्य बना रक्खा है। वाहगुरु "वाहद गुरु" का अपभ्रंश है, वाहद के अर्थ यवनभाषा में एक के हैं इसलिये "वाह गुरु" के अर्थ "एक गुरु" के हुये ॥

पौराणिक समय के जितने भी भक्त सुधारक हुये हैं उन्होंने नाम का पाठ, मूर्त्तिपूजन का खंडन, वैराग्य और जीव ब्रह्म की एकता इन ४ बातों की विशेष कर शिक्षा दी है। नामस्मरण का माहात्म्य पौराणिकों के सदृश मानते हैं मूर्त्तिपूजा का युक्तियों से खंडन करते हैं, वैराग्य पर बहुत ज़ोर दिया है परन्तु

*Dr. Ernest Trumpp.

वैराग्य के संग विवेक के साधन कहीं पर नहीं दर्शाए और यह भारी त्रुटि इनके लेखों में है। विदित हो कि वैराग्य विवेक का फल है। आत्मा, ईश्वर और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप के जानने का नाम ही विवेक है। कबीर और नानक शाह के वचनों में प्रकृति, ईश्वर और जीव के स्वरूप अथवा गुणों का बुद्धि-पूर्वक वर्णन कहीं नहीं मिलता ॥

मोनियर विलियम्स* ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५४६ पर जो लिखा है वह इस प्रकार है इस से वह सिद्ध करते हैं कि सिक्ख लोग हिन्दु अथवा पौराणिक ही हैं:—

"मुझे एक बुद्धिमान् पंजाबी सिक्ख मिला और मैंने उससे उसका मत पूछा, उसने कहा कि मैं मूर्त्तिपूजक नहीं हूं, मैं एक ईश्वर को मानता हूं और "जपजी" मेरी प्रार्थना है उसका मैं प्रातःसायं पाठ करता हूं। 'जपजी' पाठ के ६ पृष्ठ छपे हुए हैं और मैं उस सब का पाठ दश मिनिट में कर लेता हूं। वह इस बात के कहने से अपना गौरव दिखाता था कि मैं जो बड़ी जल्दी पाठ कर लेता हूं इस में बड़ापन है। मैंने उस से पूछा कि तुम्हारा मत और क्या करने को बतलाता है, उसने उत्तर दिया कि मैंने अमृतसर के निकट एक पवित्र बावली की एक यात्रा करली है। ८५ सीढियां उस में हैं मैंने उतर कर उस पवित्र जलाशय में स्नान किया जब मैं एक पौड़ी (सीढ़ी) चढ़ा और साथ ही बड़ी जल्दी से जपजी का पाठ किया, मैं फिर जलाशय में गया और फिर स्नान किया फिर दूसरी पौड़ी चढ़ा और दूसरी वेर पाठ किया, तब मैं तीसरी वेर फिर नीचे गया फिर ऊपर चढ़ा और तीसरी वेर 'जपजी' पढ़ी और इसी प्रकार ८५ पौडियां उतरा और चढ़ा ८५ वेर स्नान किया और ८५ वेर पाठ किया सायंकाल के पांच बजे से लेकर दूसरी प्रातः के ७ बजे तक मैं यह करता रहा और मैंने उस समय कुछ नहीं खाया, मुझे १४ घंटे लगे। मैंने पूछा ऐसा करने से तुम्हें क्या फल मिलने की आशा है? उसने कहा मैं आशा करता हूं कि मैंने बहुत पुण्य इकट्ठा कर लिया है जो कि चिरकाल रहेगा"

इस से आगे उपरोक्त लेख पर आलोचना मोनियर साहब ने इस प्रकार की है:—

*"*Buddhism*" *By Sir Monier Williams. P.* 546.

" मैं तुम्हें बतलाता हूं कि यह वास्तव में सच्चा हिन्दुपन है "

सिक्खों की एक शाखा 'नामधारी' कहलाती है जिसको साधारण लोग कूकेसिक्ख भी कहते हैं। नामधारी सिक्ख मांसमदिरा का सर्वथा त्याग करते हैं। वीरता में अन्य सिक्खों से जो मांस खाते हैं चार गुणा बढ़कर हैं यह रामसिंह जी को ग्यारहवां गुरु मानते हैं और जो भेनी ग्राम में वर्तमान गुरु है उस को बारहवां गुरु बतलाते हैं। 'ग्रन्थ साहब' की पूजा, परिक्रमा अन्य सिक्खों के सदृश करते और रामसिंहजी आदि को अवतार मानते हैं। गुरु गोबिन्दसिंहजी ने अपने समय में सिक्खों के लिये ५ ककार प्रचलित किये थे, परन्तु इस समय अनेक सिक्खों ने स्वयं ही ४ ककार त्याग दिये हैं केवल एक ककार अर्थात् केश सब रखते हैं।

नानकजी ने अपनी गद्दी अपने पुत्र श्रीचन्दजी को नहीं दी थी इसलिये श्रीचन्द जी ने एक पृथक् शाखा खड़ी करली और अब श्रीचन्दजी के अनुयायी उदासी सिक्ख कहलाते और सेलीटोपी पहनते हैं। इनका मत मायावाद ही है। वर्त्तमान समय में साधु केशवानन्द उदासी ने अद्भुतगीता नामी पुस्तक संस्कृत में रचकर प्रचलित की है इस में उसने इस गीता के पाठ करने का माहात्म्य यह लिखा है कि पापी से पापी भी पाठमात्र से पापों से रहित हो जाता है। वैष्णवमत का एक प्रचारक चेतन हुआ है जो कि सन् १४८५ ई० में उत्पन्न हुआ था बंगाल और उड़ीसा में इसने वैष्णवमत और उसके साथ जगन्नाथ की पूजा का प्रचार किया, उसके मरने पर चेले उसको विष्णु का अवतार मानने लग गये। भक्ति और विश्वास इन दो बातों का प्रचार करता था। चेतन पन्थ के उपदेशक बहुधा गृहस्थ होने लगे, उडेसा में घर २ लोग चेतन जी की पूजा करने लग गये॥

वल्लभस्वामी ने सन् १५२० के लगभग उत्तरीय भारत में राधा और कृष्ण की मूर्त्तियों की पूजा की शिक्षा दी इस मत के अनुयायी गोकालिये गोस्वामी कृष्ण को नानारूप में कलोलें करते हुये बतलाते हैं। गोस्वामी लोग प्रायः विद्याहीन होते हैं, कंठी बांधने, नाम का मंत्र देने, चेले चेलियां मूंडने में प्रवृत्त रहते और पोपलीला बहुत फैलाते हैं॥

वैष्णवमत अथवा कबीरमत की एक और शाखा

शिवदयालसिंह खत्री जो सन् १८१८ में उत्पन्न हुए और १८७८ में मरे उन्होंने एकमत "राधास्वामी" के नाम से चलाया। लोगों में यह प्रसिद्ध है कि उसने अपनी स्त्री "राधाबाई" के नाम से इस मत को चलाया था। "पहले पहल यह स्त्रियों को भक्ति मार्ग का उपदेश देते रहे" जैसा कि एक पुस्तक* के पाठ से विदित होता है। फिर १८६१ ई० में यह अपने मत का सबको प्रचार करने लगे। शिवदयालजी के पीछे इनकी गद्दी पर राय शालिग्राम जी कायस्थ बैठे, जिस प्रकार कबीर मतवाले शब्द और सुरत की खोजना करते हैं और कान बन्द कर लेते हैं उसी प्रकार यह लोग भी करते हैं और यही इन का सिद्धान्त है। राधास्वामी को ईश्वर का अवतार नहीं वरण उससे बड़ा मानते हैं।

"कबीर, दूलान, जगजीवन, चरनदास, तुलसी, दादू, दरया, सूरदास, नाभाजी, भीकाजी, इरानीसूफी और मौलाना रूम" के वचनों का संग्रह इन के मत की पुस्तक में जैसा कि वर्ण साहब लिखते हैं पाया जाता है।

गुरुडम को गोकुलिये गोसाइयों से कुछ अधिक फैला रक्खा है यहां तक कि अपने मत वालों को जूठन खाना परम उत्तम बतलाते हैं और गुरु की जूठ खाना प्रत्येक शिष्य के लिये आवश्यक है। वर्त्तमान में ही कई ब्राह्मण अपनी हिंदू बिरादरियों से जूठन खाने के कारण निकाले भी गये। इस जूठन को प्रसादी अथवा सीत प्रसाद भी कहते हैं। पारसल द्वारा एक नगर से दूसरे नगर में गुरु का जूठन भेजा जाता है। इन के एक पुस्तक में लिखा है कि शिष्य को गुरु की पीक पी लेनी चाहिये, यथाः—

"पीकदान ले पीक करावे, फिर पीक वह आप पी जावे"

शास्त्रार्थ अथवा संवाद करने से यह लोग अन्य पौराणिक मतवालों के सदृश सर्वदा भागते हैं॥

पौराणिकसमय की अन्य बातें

पौराणिक समय में मूर्त्तिपूजा सर्वत्र फैल गई। वह शंकर मत के अनुयायी जो कि मूर्त्तिपूजा के भारी शत्रु थे वह भी इस का शिकार होगये। "मठाम्नाय" आदि ग्रन्थों

Census of India 1901 Vol. XVI Part I Report By R. Burn, I. C. S.

के पाठ से विदित होता है कि शारदा मठ ने जो कि शंकरमत के प्रचार के लिये पश्चिम में बना था "सिद्धेश्वरदेवता, भद्रकालीदेवी और गंगा गोमती तीर्थ स्वीकार किये" पूर्व के गोवर्द्धनमठ ने "जगन्नाथदेवता, विमलादेवी, महोदधि तीर्थ" स्वीकार किये । उत्तर के जोशी मठ ने "बद्रीनारायणदेवता, पुण्यागिरिदेवी, और अलखनन्दा नदी तीर्थ स्वीकार किये" दक्षिण के शृङ्गेरी मठने "आदिवाराह देवता, कामाक्षादेवी और तुंगभद्रा तीर्थ स्वीकार किये" ॥

पौराणिक समय में जड़ पदार्थ ही आर्य्य सन्तान के इष्टदेव बन गये और विद्या, ब्रह्मचर्य्य, यम, नियम, धर्म कर्म के स्थान में जलादि तीर्थ बन गये । ऋषियों की संतान अज्ञान में पड़गई और नाम के ब्राह्मणों ने जन्मजात की महिमा यहां तक बढ़ा दी कि ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने से ही मनुष्य श्रेष्ठ और उच्च पदवी के अधिकारी माने गये। छूत छात का आडंबर अत्यन्त बढ़ाया गया यहां तक कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के हाथ से खाना निन्दित और भ्रष्ट समझने लगा ॥ बाप से पुत्र को और भाई से भाई को इस छूतछात के कारण घृणा हो गई । मनुष्य का मनुष्य बैरी बनगया। पौराणिक ब्राह्मणों ने छूतछात के कारण आयुर्वेद का पढ़ना बंद कर दिया और वैद्यों को घृणित दर्शाने के लिये झूठे श्लोक रचकर मनुस्मृति में मिला दिये और इन श्लोकों में वैद्यों को ब्राह्मण श्रेणी से निकालकर नीच श्रेणी में गिना दिया। एक वह दिन था कि सिकंदर वैद्य ब्राह्मणों को संग ले गया था और अब ब्राह्मणों ने वैद्यों को घृणित मानना आरम्भ कर दिया। वैश्य धर्म का ब्राह्मणों ने ऐसा नाश किया जैसा अग्नि इन्धन का करती है। मनुस्मृति के तीसरे, चौथे और दशवें अध्याय में ऐसे अयुक्त श्लोक रचकर डाल दिये जिस से लोगों को वैश्यधर्म के पालने, धन कमाने, जलयात्रा करने, कला कौशल में प्रवीण होने और नाना प्रकार के व्यवहारों के करने से घृणा लज्जा उत्पन्न हो जावे और यही कारण है कि आजदिन हिन्दु लोग भीख मांगना तो उत्तम समझते हैं पर कोई व्यवहार अथवा काम करके पेट भरना पाप समझते हैं। भारतवर्ष के कई नगरों में एक भी हिन्दु जुलाहा (तन्तुवाया) अबदृष्टि नहीं पड़ता । लाहोर, तरुखान बहुत कम हिन्दु जाति के मिलते हैं। छूतछात के पुतलों ने व्यवहार नष्ट कर दिये इसी कारण मनुस्मृति के लिखित व्यवहार सम्बन्धी श्लोकों में बहुत कुछ असार मिला दिया गयाः—

मनु० अध्याय ३ श्लोक १५२, १५५, १६०, १६२, १६३, १६६, । अ० ४ श्लोक ८२, २१०, २१२, २१५, २१६, २१९, (अ० १०) श्लोक ८४।

इन पौराणिक ब्राह्मणों ने दुकानदार, गन्धर्व, पशुओं के सिधाने वाले, शस्त्रविद्या के शिक्षक, मकान बनाने वाले, तैल निकालने वाले, बढई, सुनार, लोहार, कुम्हार, शस्त्रों के बनाने वाले, ग्वाले, कृषिकार, जुलाहे आदि वैश्यों को घृणित और नीच दर्शाना आरम्भ किया और ऐसा करने से भारत में दरिद्रता, दीनता का ऐसा बीज बो दिया कि आज भारतवर्ष जैसा कि महाशय दादाभाई नारोजी ने सिद्धकर दिखलाया है, यूरोप आदि सभ्य देशोंकी अपेक्षा अत्यन्त निर्धन देश है। देश का धन तभी बढ़ सक्ता है (१) जब स्वदेशी लोग स्वदेशी वस्तुओं को स्वयं उपयोग में लावें (२) कई प्रकार के स्वदेशी पदार्थों का विक्रय अन्य देशों में जाकर करें। पौराणिक समय के ब्राह्मणों ने प्रथम बात को नाश करने के लिये वैश्यकर्मों की जैसा ऊपर लिख चुके हैं निन्दा करने के लिये मनु में खोट मिला दिया और दूसरे कर्म का विनाश करने के लिये विदेशों में जाना और स्वच्छ निरामिष भोजी लोगों से भी खाना वर्जित करदिया। नौका, पोत (जहाज) पर चढ़ना और जल-यात्रा करना पाप कर्म बतला दिया! आर्य्यजाति में जो बुद्धिहीन लोग थे उन्होंने इन ब्राह्मणों की प्रेरणा से व्यवहार से आजीविका करनी आरम्भ की और बुद्धिमान् लोग गंगा में डुबकी लगाने लगे। जब इस तरह से अनाड़ी लोग ही व्यवहार में रत हुए तो कलाकौशल कौन बनावे? प्राचीन आर्य्य कला कौशल के धनी थे उन की सन्तान लोहे को शनि देवता का धन समझ कर छूना भी पाप समझने लगी इस से भयंकर और दृश्य क्या हो सक्ता है?

वैदिक समय के सच्चे ब्राह्मण लोग यजुर्वेद के सोलवें-अध्याय के अनुसार वैश्य वर्ण तथा धन ऐश्वर्य की सदैव वृद्धि करते थे। इस अध्याय में कुम्हार लोहार जुलाहे आदि सम्पूर्ण वैश्यों के कर्म्मों की महिमा दर्शाई गई है, यथाः—

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्चवो नमो०"

पौराणिक समय में जन्मजाति और छूतछात के कारण इसके विपरीत आचरण हो गया। यही नहीं कि जन्मजाति के अभिमान से निर्धनता का बीज

बोया गया हो, प्रत्युत मेधावी पुरुषों को जो कि ब्राह्मण से भिन्न वर्ण में उत्पन्न हों वैदिक शिक्षा देना अथवा संस्कृत पढ़ाना जरूरी नहीं समझा जाता था। आज तक भी ब्राह्मण लोग व्याकरण, रागविद्या, वैदिकविद्या क्षत्रिय आदि लोगों को नहीं पढ़ाते इसलिये देश में जहां धन की दरिद्रता फैली वहां सङ्ग२ ही विद्या की दरिद्रता भी फैल गई। ब्रह्मचर्य्य के नष्ट करने के लिये सर्वत्र बालविवाह के उपदेश होने और बालविधवाओं को पुनर्विवाह अथवा नियोग करने से रोकते हुए भ्रूण हत्या देश में फैला दी। धनी विधवाओं को तीर्थ यात्रा की चाट लगाई अथवा सती होने का माहात्म्य सुनाया। साधुओं ने गेरुवे वस्त्र धारण करने में ही सिद्धि मानकर लोगों से दान मांगना कर्त्तव्य बनालिया। मुर्दों के श्राद्ध की लीला खूब फैलाई और नरक स्वर्ग का ठेका ब्राह्मणों ने लेलिया। कहां वैदिक समय के अश्वपति और जनक से चक्रवर्त्ती राजे जो कि क्षात्र धर्म पालते हुए ब्राह्मणों को ब्रह्मविद्या के उपदेश देने को समर्थ हों और कहां पौराणिक समय के पृथ्वीराज से राजे जो रात दिन विषयाशक्त होने के कारण देश की हानि करावें? विक्रमादित्य का रक्त राजपूत क्षत्रियों में कभी २ प्रकट होकर राणा प्रताप से वीरों और पद्मिनी, दुर्गावती सी वीर देवियों के दर्शन कराता रहा। जब जाति के चारों वर्ण धर्म कर्म से रहित हों तो मुट्ठी भर राजपूत क्या करसक्ते थे? अकबर शाह जिसके सर्व उच्च कर्मचारी हिन्दु ही थे उसने हिन्दु धर्म की ओर रुचि दिखाई परन्तु छूतछात और जन्म जात के अजीर्ण ने ऐसे राजा को अपनी जाति में मिला लेने की सम्मति न दी। दारा शिकोह ने उपनिषदों के अनुवाद कराए परन्तु कभी इन ब्राह्मणों ने किसी अन्य भाषा में शास्त्रीय सिद्धान्त का आशय दर्शाकर परोपकार न किया। अन्तर और बाहर से पीड़ित भारत रसातल को जारहा था कि शिवाजी, गोविन्दसिंहजी, बंदा वैरागी आदि देशहितैषियों ने वीरता को प्रकट करते हुए यवनों के अत्याचार को रोका। इसके पश्चात् फिर भारतसंतान परस्पर के द्वेष और सामाजिक मलीनता के कारण दुःख से पीड़ित होगई यहां तक कि सन् १८५७ में राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया जी ने अपने उत्तम राज्य शासन से सर्व भारतप्रजा को शान्ति प्रदान की। इस उत्तम शान्ति के राज्य में जैनी, पौराणिक सब अपने २ मतों के प्रचार में शान्तिपूर्वक प्रवृत्त हुए।

ईसाई पादरियों और पश्चिमी 'सायंस' (पदार्थ विद्या) की शिक्षा ने हिन्दुओं को सभ्यतापूर्वक पौराणिक मत से गिराना आरम्भ किया पादरी 'डफ़' के मीठे परन्तु भ्रान्त उपदेशों से बंगाल के शिरोमणि ब्राह्मण ईसाई मत में प्रविष्ट हुए। देहली के प्रोफ़ेसर रामचंद्र सरीखे ईसाई होगये और पौराणिक ब्राह्मणों को ललकारते रहे कि यदि तुम में बल है तो हमें बचाओ परन्तु पौराणिक क्या करसक्ते थे ? इस समय में जब कि पौराणिक मत को तिलांजलि देकर हिन्दु विद्वान् प्रसन्नतापूर्वक ईसाई होरहे थे तो राजा राममोहन राय ने बंगाल में एक युक्ति ब्रह्मसमाज के रचन की निकाली।

ब्राह्म समाज और उसको वेदार्थ की कुंजी का न मिलना

सन् १८२८ ई० अथवा १८३० में राजा राममोहन राय ने ब्राह्मसमाज की नींव डाली और एक ईश्वर तथा वेद का मानना मुख्य नियम ठहराया, राजा राममोहन राय यज्ञोपवीत धारण करते थे। इसके २० वर्ष पीछे ब्राह्म लोगों ने वेदार्थ जानने के लिये दो चार ब्राह्मण जाति के पुरुष बनारस में भेजे परन्तु काशी में वेदों का पढ़ना पढ़ाना अनेक वर्षों से लोप होचुका था रुद्राध्याय, पुरुषसूक्त आदि का पाठ मात्र करने वाले भी गिनती के पण्डित थे मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रन्थों को कोई हाथ तक नहीं लगाता था वेद उन के लिये एक माननीय शब्द था-जिसके अर्थ वह न तो स्वयं जानते थे और न किसी को जनाने के योग्य थे। सायण भाष्य के कहीं पर इन पण्डितों ने जो ब्रह्म लोगों ने भेजे थे दर्शन करलिये होंगे और सायणकृतभाष्य से कुछ वेदार्थ आन कर सुनाए होंगे। कहते हैं कि ब्राह्मो लोगों की वेदार्थ पर श्रद्धा न हुई और हो भी क्योंकर सक्ती, क्योंकि सायण ने बुद्धिपूर्वकभाष्य नहीं किया है और न ही वह ऋषि था जब कि उससे बढ़िया पण्डित शंकर स्वामी वेदार्थ को न पा सका तो सायण कहां पासक्ता था ? सायण को यौगिक कुंजी नहीं मिली थी, भूमिका में तो सायण ने लिख दिया कि वेदों में इतिहास नहीं होसक्ते परन्तु प्रत्येक मंत्र के अर्थ यौगिक वा योगरूढी करना सायण के सामर्थ्य से बाहिर था। परन्तु शोक है तो यह, कि ब्राह्मों ने वेदार्थ के आन्दोलन करने का यत्न सर्वथा छोड़ दिया और ईसाई मत की ओर झुक गये। बाबू केशवचन्द्रसेन ने तो ब्रह्म समाज को ऐसा बना दिया मानो कि ईसाई मत की देशी शाखा है॥

सामाजिक उन्नति के लिये बाबू केशव ने विवाह सम्बन्धी एक प्रस्ताव सरकार से स्वीकृत करादिया, परन्तु पूर्ण आत्मिक बल न होने के कारण स्वयं बाबू केशव ने अपनी पुत्री के विवाह पर अपने ही प्रस्तावित नियम का उल्लंघन किया। जिससे समस्त भारतवर्ष में ब्राह्मनायक के गिर जाने का समाचार फैलगया और भारतवर्षीय लोग ब्राह्मसमाज से सामाजिक संशोधन की आशा करनी सर्वदा के लिये छोड़ बैठे। केशव बाबू के कई अनुयायी उसको दोष देते हैं कि वह स्वयं अवतार * बनना चाहता था। स्वदेशियों में जब सन्मान विशेष न रहा तो केशव बाबू ने ईसाइयों से अपनी प्रसंशा करानी चाही और इङ्गलैण्ड में जाकर ईसा की वह महिमा गाई कि विलायत के रहने वाले उसको ईसाई समझने लगे। एक † पुस्तक में मेक्समयुलर ने लिखा है कि जब बाबू केशव इङ्गलैण्ड में आकर मुझ से मिला तो मैंने कहा कि बाबू तुम तो ईसाई हो क्यों नहीं प्रकट रीति पर इस बात को स्वीकार करते? केशव जी ने उत्तर दिया कि साहब क्या डर है यदि यह बात कुछ वर्ष पीछे लोगों को विदित हो जावे। मैक्सम्युलर के साथ केशव बाबू जी की इस वार्त्ता से हम अनुमान करसक्ते हैं कि बाबू केशव वास्तव में क्या थे? ब्राह्मसमाज का मत कोई दार्शनिक मत नहीं है इस के सिद्धान्त बहुत से युक्ति शून्य हैं यदि इस मत का नाम खिचड़ी मत कहें तो अनुचित नहीं है, 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवा जोड़ा,' यह बात है। दो बातें ईसाइयों की लेलीं एक चेतनमत की आधी पौराणिक लोगों की और ब्राह्म धर्म नाम धर लिया। मुहम्मद, ईसा, मूसा इनके महात्मा पुरुष हैं, गौतम, कणाद को यह लोग देशी होने के कारण उत्तम पुरुष नहीं मानते जो कुछ ईसाइयों का वचन है वह इन के लिये माननीय है। संवाद शास्त्रार्थ अपने सिद्धान्तों पर करने से नित्य डरते हैं। बात तो यह है कि ब्राह्ममत ईसाईमत की एक अनोखी शाखा है।

आदित्य ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द का आगमन।

जिस समय पुराणों के अन्धकार के घनघोर बादल भारत में छा रहे थे, जिस समय पत्थरों को परमेश्वर मान कर सब लोग पूजा कर रहे थे, जिस समय नादि-

---

* *Census of India* 1901, *Vol. XVI, Chap. III.*

† *Auld Lang Syne or my Indian Friends. By F. Max Muller.*

यों में स्नान करने से मुक्ति मान रहे थे, जिस समय बालविधवाओं को जाति दण्ड का भय देकर पुनर्विवाह वा नियोग से रोका जाता था, जिस समय स्त्री और शूद्र को पशुवत् समझ रहे थे, जिस समय मुसलमान और ईसाई वेदों की निन्दा करते हुये आर्य्यसन्तान को अपने में मिलाने के लिये बाजे बजा रहे थे, जिस समय कि ब्राह्मसमाज ईसाईमत से हिन्दुओं को बचाने के लिये जन्म धारण कर स्वयं उनकी शाखावत् बन चुका था, जिस समय कि चार वर्णाश्रम की मर्य्यादा लुप्त हो रही थी, उस समय जगत्पिता के नियमानुसार ५००० वर्ष के पीछे भारतदेश में एक ऋषि ने उत्पन्न होकर पृथिवी को फिर वैदिक ज्योति दिखानी थी। काठियावाड़ के मोरवी नगर में ब्राह्मणकुल में एक बालक ने जन्म लिया यह बालक जब बड़ा हुआ तो उसके संस्कृत हृदय पर उसकी भगिनी तथा चचा की मृत्यु के दृश्यों ने बड़ा प्रभाव डाला। मृत्यु क्या है और मैं उससे किस प्रकार बच सकता हूं? यह प्रश्न इस विचित्र बालक के मनमें बसगया इसी प्रश्न का उत्तर पाने के लिये यह युवावस्था को प्राप्त हुआ बालक घर को त्यागता है, विवाह पर लात मारते हुए जंगलों में योगियों के पास जाकर अभ्यास करता है। किस प्रकार अमृत के लिये यह पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके योग सम्पन्न होता हुआ ऋषि विरजानन्द का मथुरा में शिष्य बनकर वेदार्थ की यौगिक कुञ्जी उन से प्राप्त करके वेद के ज्ञान में आनन्द लेता हुआ परोपकार के लिये उद्यत होता है? किस प्रकार आदित्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मा पदवी का अधिकारी पूर्ण योगी ऋषि श्रेणी का आत्मा दयानन्द नामी पृथिवी पर पुनः वैदिक समय को लाने के लिये उपदेशक बन कर भ्रमण करता हुआ दिग्विजय को प्राप्त होता है? किस प्रकार कानपुर में शास्त्रार्थ करने से सत्य की जय कराते हुए मूर्त्तिपूजकों के हाथों से नदी में मूर्त्तियां फिकवाता है? काशी आदि अनेक स्थलों पर पौराणिक ब्राह्मणों के साथ शास्त्रार्थ करता हुआ किस प्रकार पुराणों के कोट उड़ाता है? बंगाल पश्चिमोत्तरदेश, बम्बई पञ्जाब और राजस्थान की यात्रा करते हुए वाममार्ग, जैनमत, नास्तिकमत, मायावाद, पौराणिकमत, यवनमत, ईसाईमत आदि अवैदिक मतों का निर्भयता से खण्डन करते हुए भारत की काया पलटाने के लिये किस प्रकार आर्य्यसमाजें स्थापन करता है? जोधपुर में निर्भयता से सत्य उपदेश

करते हुए किस प्रकार विष खिलाये जाकर धैर्य्य धारण किये हुए अन्त को अजमेर में शान्ति पूर्वक योग की रीति से प्राण त्यागते हुए एक पञ्जाबी महान् विद्वान् नास्तिक को विन बोले आस्तिक बनाता हुआ मुक्ति को पाता है पूर्ण ऋषि होने पर अपने पीछे कोई गद्दी नहीं छोड़ता नहीं एक पुरुष विशेष को अपना प्रतिनिधि बनाता है किन्तु आर्य्यसमाज को ही अपना प्रतिनिधि बना कर किस प्रकार उसको वेद प्रचार का साधन बनागया यह और इन सरीखे अनेक प्रश्नों के उत्तर विस्तार पूर्वक इस पुस्तक के उत्तरार्द्ध में मिलेंगे, जिस उत्तरार्द्ध में कि इस महान् ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र वर्णित है और जिस उत्तरार्द्ध की यह लेख भूमिका अथवा उपोद्घात है ॥

ऋषि अथवा आप्त शब्द की मीमांसा

(१) गौतम और वात्स्यायन ऋषियों का सिद्धान्त इस विषय में यह है:—

"आप्तोपदेशः शब्दः" (न्याय दर्शन सूत्र ७)

इस पर वात्स्यायनजी ने इस प्रकार भाष्य किया है:—

"आप्तः खलु साक्षात् कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्तः ऋष्यार्य्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम् । तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्त्तन्त इति । एवमेभिः प्रमाणैर्देवमनुष्यतिरश्चां व्यवहाराः प्रकल्पन्ते नातोऽन्यथेति ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस में दर्शाया गया है कि आप्त वह मनुष्य होसक्ता है जिसने निश्चय करके अर्थात् भ्रान्ति रहित होकर धर्म का साक्षात् (प्रत्यक्ष) करलिया हो । और जो उस साक्षात् किये हुए धर्म का उपदेश करे इत्यादि ।

इस में जानने योग्य बात यह है कि आप्त लोग वही होते हैं जिन्होंने भ्रान्ति रहित होकर धर्म का साक्षात्कार किया हो अर्थात् धर्म को प्रत्यक्ष करलिया हो । यदि आंखों से धर्म प्रत्यक्ष होता तो प्रत्येक पुरुष आप्त ही था किन्तु नहीं शास्त्र का अभिप्राय यह है कि जिसने आत्मा के शक्तिरूप नेत्रों से धर्म प्रत्यक्ष करलिया हो । प्रश्न होता है कि जिन्होंने ज्ञान नेत्रों से धर्म प्रत्यक्ष

करलिया है उनका ज्ञान भ्रान्ति युक्त होता है अथवा निर्भ्रान्त। शास्त्र उत्तर देता है कि निर्भ्रान्त होता है क्योंकि शास्त्रोक्त प्रत्यक्ष ज्ञान में भ्रान्ति नहीं होती, इसलिये जब कहा कि प्रत्यक्ष (साक्षात्) होता है तो इस के अर्थ यह हैं कि उनका ज्ञान निर्भ्रान्त होता है। इसलिये ऋषि अथवा आप्त वही कहलाता है जो योग साधनों से समाधिस्थ होकर निर्भ्रान्त ज्ञान को प्राप्त होता है ॥

(२) जैमिनि और व्यास ऋषियों का सिद्धान्त भी हमारे उक्त लेख को पुष्ट करता है यथाः—

"सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ २ ॥ चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ३ ॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ४ ॥ शारीरक सूत्र"

अर्थः—"जब तक जीव अपने स्वकीय शुद्ध स्वरूप को प्राप्त; सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता, तब तक योग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होकर आनन्द में स्थित नहीं होसक्ता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब पाप आदि रहित ऐश्वर्य्य युक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सक्ता है ऐसा जैमिनि आचार्य्य का मत है ॥२॥ जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चेतनमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तब ही ब्रह्मस्वरूप के साथ संबन्ध को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवन मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यास मुनि जी का मत है" ॥ ४ ॥

भावार्थः—इससे पाया गया कि जीव स्वभाव से शुद्ध है जब प्रकृति का अधर्मपूर्वक सम्बन्ध करता है तब भ्रान्त अथवा अशुद्ध होजाता है जब योग द्वारा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध करता है तब फिर शुद्ध विज्ञान को अविद्यादि दोषों से रहित होने के कारण पाता है। शुद्ध विज्ञान का दूसरा नाम निर्भ्रान्त ज्ञान है इसलिये सिद्ध हुआ कि योगी ही ऋषि होता है और ऋषि निर्भ्रान्त रीति से सर्व विद्याओं के सिद्धान्तों अथवा चारों वेदों को जान सकता है इत्यादि।

जो लोग जीव को स्वभाव अथवा स्वरूप से भ्रान्ति युक्त वा अशुद्ध मानते हैं जैसा कि ईसाई लोग, उनको जानना चाहिये कि यदि यह स्वभाव से ही ऐसा है तो फिर कभी भी भ्रान्ति रहित नहीं होसकेगा, उनके लिये विद्यादि पढ़ना व्यर्थ ही है। जो मानें कि किसी निमित्त से भ्रान्ति आजाती है तो उस निमित्त के दूर करने से भ्रान्ति वा अज्ञान के दूर होने से आत्मा समाधि अवस्था में निर्भ्रान्त हो सक्ता है।

(३) यही नहीं कि योगी समाधिअवस्था में जिस विद्या को निर्भ्रान्त रीति से जानना चाहे जान सक्ता है प्रत्युत योगी समाधिदशा में ब्रह्म को भी साक्षात् (प्रत्यक्ष) जान सक्ता है और ब्रह्म के विषय में योगी का ज्ञान इस दशा में निर्भ्रान्त होता है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम पृष्ठ पर ही उपनिषद् का वचन लिखा हुआ है, जिसका आशय यह है कि योगी के लिये ब्रह्म प्रत्यक्ष होता है अर्थात् योगी ब्रह्म को निर्भ्रान्त रीति से जान सक्ता है। सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार चार ज्ञान विज्ञान के साधन लिखे हैं। साक्षात्कार आदि के विषय में ऋषि दयानन्द का लेख इस प्रकार है:---

"साक्षात्कार अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना"

"निदिध्यासन अर्थात् जब सुनने और मनन करने से निःसंदेह हो जाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं, ध्यान योग से देखना" (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४४)

"धन्य!! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं" (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २२२ अष्टम समु०)

"धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थित हुए तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये (सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमु० पृ० २०४)

निरुक्तकार ने "ऋषयो मंत्र दृष्टयः" लिखा है जिसका अर्थ यह है कि ऋषि लोग मन्त्रों के अर्थों को ठीक २ अर्थात् निर्भ्रान्त जानने वाले होते हैं।

(४) मुण्डक उपनिषद् में भी इस विषय में ऐसा लिखा है कि:—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे॥"

इस वाक्य से यही सिद्ध होता है कि ईश्वर की प्राप्ति पर योगी के सर्व संशय नष्ट होजाते हैं। संशयों का ही नाम भ्रम है। जब सब संशय नष्ट होगये तो योगी समाधिदशा में निर्भ्रान्त होगया।

इसी मुण्डक उपनिषद् में पहले प्रश्न उठाया गया है कि वह कौन पदार्थ है जिस एक के जानने से शेष सब जाना जाता है। उपनिषद्कर्त्ता ने उत्तर दिया है कि वह ब्रह्म है जिस एक के जान लेने पर योगी अन्य सब कुछ जान लेता है।

ब्रह्मा और वेदव्यास शब्दों वा उपपदों के अर्थ भी प्रगट करते हैं कि जो चारों वेदों को पूर्णता से जाने वह ब्रह्मा वा व्यास है। भ्रान्ति से वेद जानने वाले का ऐसा नाम नहीं हो सक्ता।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।" (योगशास्त्र)

इस वाक्य में योग के नव विघ्न गिनाए हैं उनमें एक विघ्न भ्रान्तिदर्शन है। भ्रान्तिदर्शन के अर्थ व्यासजी भाष्य में विपर्य्ययज्ञान (उल्टे ज्ञान) के करते हैं। जब पुरुष भ्रान्तिदर्शन से रहित हो जाता है तब ही वह योगी कहलाता है। योगी को निर्भ्रान्त वा यथार्थ दर्शन होता है॥

(५) इस प्रकार के अनेक प्रमाण शास्त्रों से दिये जासक्ते हैं जिन से एक जिज्ञासु के लिये यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं है कि योगी समाधि अवस्था में जिस २ विषय को जानना चाहे निर्भ्रान्त जान सक्ता है। प्रत्येक विद्वान् ऋषि नहीं है इसलिये यह अवस्था विद्वान् अभ्यासी योगियों की ही हो सक्ती है। योगी कदापि किसी दशा में ईश्वर अवतार नहीं होते, वह ईश्वर के किसी नियम को तोड़ नहीं सक्ते, वह करामातें नहीं करते। स्वामी

दयानन्द ऋषि थे परन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं मुहम्मद के सदृश "खतमुल मुरसलीन" हूं। नहीं परञ्च उन्होंने कहा कि ॥

"मुझ से अनेक उपदेशक इस देश में उत्पन्न हों"

सर्व ऋषि सदैव सब विद्यार्थियों को यह उपदेश देते आये हैं और इस को ही स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम तथा द्वितीय समुल्लासों में लिखा है अर्थात् ॥

"यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ।
यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"

इस का अभिप्राय यह है कि सर्वमनुष्यों को ऋषि आदि वृद्धों के उन आचरणों तथा कर्मों को जो धर्मयुक्त हों ग्रहण करना चाहिये अधर्मयुक्त कर्मों को नहीं क्योंकि यह नियम नहीं कि ऋषि जन्म से ही जीवन मुक्त हो। ऋषि लोग सदैव से शिक्षा देते आये हैं कि किसी के उपदेश को विना परीक्षा के मत मानो। तर्क वा बुद्धि तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विचार कर उपदेश को धारण करो इसलिये ऋषि लोगों ने कभी मनुष्यपूजा की शिक्षा नहीं दी और न ही अपने चरण पुजवाए, दयानन्द, मनु, गौतम, व्यासादि-समान ऋषि श्रेणी का पुरुष था। जिस प्रकार ये आप्त थे उसी प्रकार दयानन्द आप्त था। ऋषि दयानन्द वेदों के सर्वविद्यामय मूल रूपी सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे जैसा कि सर्व ऋषिगण जानते आये हैं और आगे जानेंगे भी।

ऋषि लोग सत्य की शिक्षा देते हैं।

ऋषि लोगों का कोई मन्तव्य विना सत्य के नहीं होता सत्य के वह ठेकेदार नहीं होते किन्तु प्रचारक होते हैं। वह अपने किसी निज के सिद्धान्त की शिक्षा नहीं देते परन्तु सत्य की जो सब का सिद्धान्त होने योग्य है इसीलिये जिन सिद्धान्तों की ऋषि दयानन्द जी ने शिक्षा दी उन को कोई बुद्धिमान् उनके निजसिद्धान्त नहीं कह सक्ता परन्तु सत्य होने के कारण वह सब के सिद्धान्त हैं ऋषि दयानन्दजी का कोई सिद्धान्त निज का वा पृथक् न था उनके और हम सब के एक ही सत्य सिद्धान्त हैं! उन्होंने इस विषय पर ऐसा लिखा है कि:—

"सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से

सब मानते आये मानते हैं और मानेंगे भी इसी लिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उस को स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्य मानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है, मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है"

(सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ५९९)

जो लोग मानते अथवा कहते हैं कि आर्य्यसमाज ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को अपना सिद्धान्त मान रहा है वह भ्रम में पड़े हुए हैं। आर्य्यसमाज अपने नियमानुसार सत्य को सिद्धान्त मान रहा है और सत्य ऋषि दयानन्द अथवा किसी अन्य ऋषि का दाय भाग नहीं है। सच तो यह है जैसा कि ऊपर के उद्धृत लेख से विदित होता है कि ऋषि दयानन्द का अपना वा निज का कोई भी सिद्धान्त न था। वह सत्य को मानते थे जिसको कि वेदों में ईश्वर ने प्रतिपादन किया है और जिस को ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक सर्व ऋषिगण मानते आये अथवा यह कहो कि ऋषि दयानन्द केवल सत्य के मानने वाले थे और सत्य तीन काल में एकरस रहता है और सब के मानने योग्य है दो और दो मिलके चार होते हैं आदि सृष्टि से आजतक सब विद्वान् इसको ऐसा ही मानते आये हैं और मानेंगे भी, यह सत्य सिद्धान्त है। सत्य किसी पुरुष का एकला नहीं परन्तु सब का सिद्धान्त होता है। अमेरिका के एक विद्वान का वचन है कि:—

"Truth is the region of Union."

अर्थात् सत्य वह स्थल है जिसमें सब मिल जाते हैं॥

आर्य्यसमाज के सिद्धान्त सत्य सिद्धान्त ही हैं और यही ऋषि दयानन्द

तथा मनुष्य मात्र के हैं इसलिये यह कहना कि आर्य्यसमाज ऋषि दयानन्द के निज सिद्धान्त को मानता है भ्रममूलक और असत्य है ऋषि दयानन्द और आर्य्यसमाज दोनों सत्य सिद्धान्त जो वेद प्रतिपादित हैं मानते हैं और ऐसा ही सब बुद्धिमान मानेंगे ॥

कल्प पर्य्यंत मुक्ति, विधवा विवाह अथवा नियोग नए सिद्धान्त नहीं

संसार में इससे बढ़ कर क्या भ्रम होसक्ता है कि लोग सत्य को नवीन वा प्राचीन का नाम दें। सत्य तो नित्य नया और सदा पुराना है। यह तीन काल में एक रस रहता है परन्तु अज्ञानी ऐसा स्वार्थ वश होकर नहीं समझते। पौराणिक विद्वान आज कल कहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने दो सिद्धान्त नए बना लिये। (१) विधवा विवाह अथवा नियोग (२) कल्प पर्य्यन्त मुक्ति प्रथम सिद्धान्त के विषय में हम इतना ही लिखना उचित समझते हैं कि वह मनु अध्याय ९ का एक वार पाठ करजाएं फिर सत्य हृदय से कहें कि यह प्राचीन सिद्धान्त है वा नवीन। इसके युक्तिपूर्वक होने में तो उनको भी शंका नहीं इसलिये इस पर अधिक लेख करना व्यर्थ है कल्प पर्य्यन्त मुक्ति के विषय में नियोग सदृश वेद मन्त्रों को छोड़कर छान्दोग्योपनिषद् का निम्न लिखित लेख ही पढ़ें और उस पर शंकरस्वामी तथा आनन्दगिरि की सम्मति रूपी टीका देखें तो उनका भ्रम दूर होसक्ता है ॥

"स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्म पथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते नाऽऽवर्त्तन्ते" ॥ (छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ४ खंड १५ श्रुति ५

इस पर शंकराचार्य्य इस प्रकार टीका करते हैंः—

"एतेन प्रतिपद्यमाना गच्छन्तो ब्रह्मेमं मानवं मनु संबन्धिनं मनोः सृष्टिलक्षणमावर्तं नाऽऽवर्तन्त आवर्तन्तेऽस्मिञ्जननमरण प्रबन्धचक्रारूढा* घटीयन्त्रवत्पुनः पुनरित्यावर्तस्तं न प्रति पद्यन्ते। नाऽऽवर्तन्त इति"

---

* (नोट) जो लोग कहते हैं कि प्राचीन भारत में लोग घटीयंत्र (*Clock and watch*) बनाना नहीं जानते थे वह शंकर स्वामी के इस दृष्टान्त को भली भांति पढ़ें॥

इस पर ही आनन्दगिरि इस प्रकार लेख करते हैं :—

"... परमात्मा प्रत्यक्त्वेनाज्ञातः सन्नेनमधिकारिणं मुक्ति प्रदानेन च पालयतीत्यर्थः । प्रकृतां गतिमुपसंहरति । एष इति । गतिफलं निगमयति । एतेनेति । इममिति विशेषणादनावृत्तिरस्मिन् कल्पे कल्पान्तरे त्वावृत्तिरिति सूच्यते" छान्दोग्योपनिषदि आनन्दाश्रम मुद्रणालय पृष्ठ २२६, २१७ देखो ॥

शंकरस्वामी के लेख के अर्थ यह है:—

"इससे ब्रह्म को प्राप्त हुए मन्वन्तर सम्बन्धी सृष्टि के आवर्त को नहीं आते । इसमें जन्ममरणप्रबन्धचक्रारूढ घटीयंत्र के समान बारम्बार नहीं आते"

आनन्दगिरिजी के लेख का अर्थ यह है:—

"यह परमात्मा जो कि इन्द्रियों से अगम्य है इस अधिकारी को मुक्ति दान से पालता है । गति के फल को बतलाते हैं । इमं इस विशेषण से इस कल्प में अनावृत्ति कही है परन्तु कल्पान्तर में तो आवृत्ति (लौट आना) इस ने सूचित कराई है" ॥

ऋषि दयानन्द के आर्य्य समाज के दश नियम :

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखम् । स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥ * अथर्व० कां० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० २० ॥

इत्यादि मंत्रों के आशय को लेकर ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज का प्रथम नियम बनाया जो कि इस प्रकार है:—

(१) "सब सत्य विद्या और सत्यविद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥"

विवरण—सत्य विद्या से अभिप्राय वेद विद्या से है क्योंकि वेद ईश्वरोक्त होने से सर्वांश में सत्य हैं । सत्यविद्या की उन्नति वा अधोगति नहीं होती जैसे दो और दो मिलकर सदैव चार होते हैं अतः सत्यविद्या तीन काल

* देखो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति विषय ॥

में एक रस रहती है। पदार्थ शब्द के अर्थ इस स्थल पर कार्य्य जगत् के हैं। आदि मूल के अर्थ मुख्य निमित्त कारण के हैं। सांख्यदर्शन में मूल शब्द कारण के अर्थों में आया है जैसा कि मूल का मूल नहीं होता यह नियम दर्शाता है कि ईश्वर सत्यविद्या (वेद) और कार्य्य जगत् दोनों का निमित्त कारण है। वेद का उपादान कारण ईश्वर को कहना ठीक नहीं है जो द्रव्य किसी द्रव्य से उत्पन्न हो तो कारण द्रव्य को उपादान कारण कहते हैं, वेद द्रव्य नहीं किन्तु गुण है इसलिये वेद का ईश्वर निमित्त कारण है॥

कोई आशंका करे कि आप को मूल के अर्थ कारण लेने थे निमित्त कारण क्यों लिये तो उसका उत्तर यह है कि प्रकरण तथा ऋषि के आशय को लेकर निमित्त कारण के किये हैं। संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में यह लेख है कि:—

"संसारमहीरुहस्य बीजाय"

अर्थात् "संसार ही मही रूप वृक्ष उसका जो बीज"

इसके टीकाकार ने बीज शब्द के अर्थ निमित्त कारण के लिये हैं इस लिये कि उसके ग्रन्थकर्त्ता का आशय यही है। यह बात भली प्रकार समझ में आ सक्ती है कि आदि मूल के अर्थ आदि कारण के हैं यदि हम सत्यार्थ-प्रकाश का आठवां समुल्लास पढ़ें तो इस समुल्लास में एक स्थल पर ऋषि दयानन्द का लेख इस प्रकार है:—

"जो केवल कारण रूप ही है वे कार्य्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य्य होता है वह दूसरा कारण कहाता है जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जलादि का कार्य्य होता है परन्तु जो आदि कारण प्रकृति है वह अनादि है मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता" सत्यार्थ॰ पृ॰ २१५॥

कोई पुरुष इस नियम के शब्दों को लौट फेर कर इस प्रकार इस नियम को लिखना चाहता है कि:—

"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है"

ऐसा करने की दशा में दर्शाता है कि सत्य विद्या के अर्थ ब्रह्म-

विद्या और पदार्थ विद्या के अर्थ सायंस (*Science*) के हैं परन्तु उनका ऐसा विचार संगत नहीं हो सक्ता, यह बात तो तब घटती जब वेदों में पदार्थविद्या न होती । वेद में पदार्थ विद्या तथा ब्रह्मविद्या दोनों हैं इसलिये सत्यविद्या के अर्थ ब्रह्मविद्या के इस स्थल पर करने ठीक नहीं हैं तीसरे नियम में जो आगे चलकर लिखा है कि वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है तो फिर क्या वह लोग इस तीसरे नियम से यह दर्शाना चाहते हैं कि वेद केवल ब्रह्मविद्या के पुस्तक हैं? ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में क्या पदार्थ विद्या नहीं है। विदेशीय तक तो मानते हैं कि ऋग्वेद पदार्थ विद्या का भंडार है। तीसरे नियम में सत्यविद्या नहीं प्रत्युत सत्यविद्याओं का पुस्तक वेद को माना फिर इसकी संगति वह कैसे करेंगे? एक ब्रह्म विद्या के लिये विद्या शब्द होना चाहिये था "विद्याओं" शब्द के होने से उनका विचार निर्बल हो जाता है इस लिये सत्यविद्या के अर्थ सम्पूर्ण सत्य विद्या के हैं पदार्थ विद्या उस से बाह्य नहीं है ॥

(२) अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ अम्भो अरुणं रजतः सोमः रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥ प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ अथर्व० कां० १३ अनु० ४ मं० ४ ४७—५० तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उपासना विषय ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ (यजु० अ० ४० मं० ८)

इत्यादि मन्त्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज का दूसरा नियम निम्नलिखित प्रकार बनाया:—

दूसरा नियम

"ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है ॥"

विवरण—इन नियमों तथा आर्य्यों के सत्य सनातन मन्तव्यों का व्याख्यान रूप सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ है । सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सप्तम में न्यायकारी और

दयालु को पर्यायवाची दिखाया गया है और ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि ईश्वर कभी किसी अपराध को क्षमा नहीं करता। अमेरिका के एक बुद्धिमान वैद्य* का कथन है कि ईश्वर कभी क्षमा नहीं करता और सर्व विद्वान इस बात की साक्षी आजकल अपने लेखों द्वारा दे रहे हैं कि ईश्वर क्षमा करने वाला नहीं है। सत्यार्थप्रकाश के ७ समुल्लास में सर्वशक्तिमान् के अर्थ यह दर्शाए हैं कि जो अपने काम करने में किसी के आधीन न हो इस से इस बात का निषेध पाया जाता है कि वह स्वरूप बदल सक्ता अथवा अवतार ले सक्ता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् होने पर भी पाप कदापि नहीं कर सक्ता।

पातालदेश (अमेरिका) के एक दार्शनिक विद्वान् ने भी सर्वशक्तिमान् के अर्थ ऐसे ही माने हैं यथाः—

" (Q.) *Can God do all things?*

(A.) *God is not sufficiently powerful to accomplish self-destruction. There are, therefore, necessities to Omnipotence.*"

(*The Penetralia*)†

इसके अर्थ यह हैं:—

" (प्रश्न) क्या ईश्वर सब कुछ कर सक्ता है ? (उत्तर) ईश्वर अपने आपको नष्ट नहीं कर सक्ता, इसलिये सर्वशक्तिमत्ता के यदृच्छा अर्थ नहीं हो सक्ते"

उपासना के अर्थ यह हैं कि जीवन में हम ईश्वर के गुणकर्म को धारण करें। मुण्डक उपनिषद् का वचन है कि ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म की उपासना करने वाला "ब्रह्मेव"‡ अर्थात् ब्रह्मवत् अथवा उसके अनुकूल गुणकर्म रखने वाला हो जाता है जैसे कि ब्रह्म न्यायकारी है, वह न्याय करता है। जैसा कि ब्रह्म दयालु अर्थात् हिंसा से रहित है उसी प्रकार वह दया को साध्य समझता है।

---

* *Trall, M. D., Author of Sexual Physiology.*

† "*The Penetralia*" *by A. J. Davis, Page* 114.

‡ बंबई के छपे हुए ग्रन्थ में ब्रह्मेव पाठ मिलता है। अन्य नगरों के छपे हुए ग्रन्थ में जो ब्रह्मैव पाठ है वह अशुद्ध है ॥

ईश्वर के दयालु और न्यायकारी होने और उस की उपासना को अभीष्ट मानते हुए कोई भी आर्य्य हिंसा करना अथवा हिंसा से प्राप्त हुए मांस के खाने को आर्य्य समाज के इस दूसरे नियम के अनुकूल धर्म नहीं मान सक्ता। चोरी करने से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वह यद्यपि दुःखदाई न हों परन्तु वह सर्वथा त्याज्य हैं क्योंकि वह हिंसा से प्राप्त होते हैं। मांसादि पदार्थ यदि कल्पना करलें कि कुछ अच्छे हैं परन्तु हिंसा से प्राप्त होने के कारण सर्वथा सर्वदा त्याग के योग्य ही हैं।

सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास के प्रथम पृष्ठ पर ऋषि दयानन्द ने मुसलमानों पर आक्षेप किया है कि तुम लोग अल्लह को दयालु मानते हुए फिर मांस क्यों खाते हो? यथाः—

"जो वह क्षमा और दया करने हारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर, मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं? और मुसलमानों का खुदा दयालु भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही"

यह नियम आर्य्यसमाज के हैं इस लिये यदि हम प्रथम आर्य्य शब्द के अर्थों पर ही विचार करें तो निश्चय होता है कि आर्य्य कभी हिंसाशील को नहीं कहते।

सत्यार्थप्रकाश के मन्तव्य विषय में ऋषि ने इस विषय में ऐसा लिखा हैः—

"जैसे आर्य्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं" पृष्ठ ६०४ सत्यार्थ० ॥

"आर्य्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इन से विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है" सत्यार्थप्र० अष्टमसमु० पृ० २२५ ॥

"दस्यु-अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डाकू चोर, हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य है, वह दस्यु कहाता है" आर्य्योद्देश्यरत्नमाला पृ० ११ ॥

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला में ऋषि ने दस्यु के अर्थ दर्शाते हुए हिंसक के अर्थ दुष्ट मनुष्य के दर्शाए हैं। कणाद ऋषि ने भी "दुष्ट हिंसायाम्" इस सूत्र से ऋषि दयानन्द के सदृश हिंसक के अर्थ दुष्ट के लिये हैं। इस लिये जब हम

कहते हैं कि "आर्य्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट" मनुष्य होते हैं, तो इस के अर्थ यह हुए कि आर्य्य हिंसा न करने वाले और दस्यु हिंसक तथा डांकू, चोर कहलाने वाले हुए। आर्य्यसमाज के अर्थ ऐसी सभा के हैं कि जिस के सभासद् हिंसादि दुष्ट कर्मों के त्यागने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुष हों॥

वर्णाश्रम धर्म के पालन करने वाले मनुष्यों को भी आर्य्य कहा जाता है और उन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सम्मिलित हैं, इन चारों वर्णों का जो सामान्यधर्म मनुजी ने दर्शाया है उस में सब के लिये अहिंसाशील होना एक बात बतलाई है यथाः--

(३) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ मनु० अ० १० श्लोक ६३॥

यस्मिन्नृचः सामयजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ य० अ० ३४ मं० ५॥ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ य० अ० २६ मं० २॥

इत्यादि वेदमंत्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का तीसरा नियम बनाया जोकि इस प्रकार है:—

तीसरा नियम

"वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है"॥

विवरण–इन नियमों में चारों वेदों के लिये वेद शब्द ही आया है। लड़कों को वेद पढ़ाने के लिये गुरुकुल हरिद्वार पर स्थापन किया गया है और सर्वसाधारण को वैदिक उपदेश सुनाने के लिये उपदेशक मण्डली नियत की गई है और उपदेशक मण्डली के निर्वाहार्थ पंजाब, पश्चिमोत्तरदेश, राजस्थान, बंगाल बिहार सब आर्य्यसमाजों की प्रतिनिधि सभाओं ने वेद प्रचार निधि (फण्ड) स्थिर की है। जालन्धर में कन्याओं को वैदिक शिक्षा देने के लिये कन्यामहाविद्यालय स्थापन किया गया है।

गुरुकुल निधि, वेदप्रचार निधि और कन्यामहाविद्यालय निधि की दान द्वारा वृद्धि करना आर्य्यों का परम कर्त्तव्य है॥

(४) अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि * यजु० अ० १ मं० ५। सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता † ॥ अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० २ ॥

इत्यादि वेद मन्त्रों के आशय को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का चौथा नियम बनायाः—

चौथा नियम। "सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

विवरण—जैनी, मुसलमान, ईसाई, और पौराणिक लोग इस नियम की उत्तमता को नहीं समझते और भय करते हैं कि यदि ऐसा नियम हम मानलें तो हमारे मत के अन्य नियम जो मिथ्या हैं वह निर्मूल हो जावेंगे, परन्तु यह गौरव आर्य्यसमाज को ही प्राप्त है कि वह इस नियम के अनुसार संवाद, शास्त्रार्थ करने पर सर्वदा उद्यत रहता है। सत्य असत्य के निर्णय करने का एकमात्र साधन प्रत्यक्षादि प्रमाण पूर्वक संवाद ही है।

बंग देश में जो सरकार ने एशियाटिक सोसाइटी की नींव डाली है वह भी इसी नियम के एक अंश को पूर्ण करने वाली है, क्योंकि संवाद करने के लिये आन्दोलन करने की बड़ी आवश्यकता है आर्य्य लोग आन्दोलन और संवाद करते हुए सत्य असत्य का निर्णय सर्वदा करते रहते हैं।

(५) स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्य्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० ३। तथा भूमिका पृष्ठ १०२ "धर्मश्च" अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० ७। भूमिका पृ० १०२ धर्मासि सुधर्मा मे न्यस्मे ॥ यजु० अ० ३८ मं० १४ ॥

इत्यादि मंत्रों के अनुसार ऋषि ने यह पांचवां नियम रचा।

पांचवां नियम। "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें"

विवरण—इस नियम में व्यवहारशुद्धि की शिक्षा दी गई है। भारतवर्ष में क्यों नहीं देशी लोग मिलकर बड़े२ कार्य्य वाणिज्यादि कर सकते? इस

* देखो व्यवहारभानु लघुपुस्तक ऋषि दयानन्द कृत।

† ऋ० भूमिका वेदोक्तधर्म विषय पृ० १०१ ॥

लिये कि वह परस्पर सत्य व्यवहार नहीं करते । एकता की पुकार तो सब मचाते हैं परन्तु एकता का साधन सत्य व्यवहार ही है । आर्य्यों को व्यवहार में शुद्ध होना चाहिये । इस नियम की व्याख्या में मानो ऋषि ने व्यवहार-भानु नामी लघुपुस्तक रचा है जो कि सब के पढ़ने योग्य है ॥

(६) शारीरिक उन्नति के बोधकः—

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥" यजु० अ० ३६ मं० २४ ॥

"ओजश्च तेजश्च सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥" भूमिका पृ० १०२ तथा अथर्व० कां० १२ । ५ । मं० ७ ॥ "पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ।" अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० १० ॥ तथा भूमिका पृष्ठ १०४ ॥

"ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥" ऋ० मं० १ सू० १६२ मं० १२ ॥

आत्मिक उन्नति के बोधकः—

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।" यजु० अ० ३६ मं० ३ ।

"विद्यांचाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥" यजु० अ० ४० मं० १४ ॥

सामाजिक उन्नति के बोधकः—

"सं गच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् । देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रयेवः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥ समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥" (ऋग्वेद अ० ८ अ० ८ व० ४९ मं० २, ३, ४)

"सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥" अथर्व० कां० १९ अनु० ७ व० ५५ मं० ६ ॥

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।" (यजु० अ० ३६ मं० १८)

इत्यादि मंत्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने यह छठा नियम बनाया कि:—

छठा नियम "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना"

(विवरण) जो लोग कहते हैं कि आर्य्यसमाज केवल हिन्दुओं के ही सुधार के लिये है वह इस नियम के "संसार" शब्द से अज्ञ हैं। वह "सर्वाणि भूतानि" और "यथेमां वाचं........जनेभ्यः" इन वैदिक शब्दों के अर्थ नहीं जानते। इस विषय की पुष्टि कि ऋषि दयानन्द किस प्रकार अपने जीवन में इङ्गलेण्डादि विदेशों में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की आवश्यक्ता समझते थे निम्नलिखित लेख कर रहा है:—

SANSKRIT AS A LIVING LANGUAGE.

Oxford, October, 1880.

Few are aware of the extent to which Sanskrit is at present used as a medium of conversation and correspondence in India, and of its extreme convenience when employed as a kind of *lingua franca* among learned men in a country where there may be no affinity between the spoken vernaculars, or not sufficient affinity to make two persons living in adjacent districts mutually intelligible.

Mr. Cust has shown that about two hundred languages and dialects are spoken by the inhabitants of our Indian empire. What a barrier would this variety of speech be to the interchange of ideas were it not for the universal employment of Sanskrit and Hindustani as vehicles of intellectual intercourse by the educated classes in all parts of the country! Sanskrit is supposed to be dead, and often called a dead language; but can any language be pronounced devoid of life which still lives and breathes in daily thought and daily speech, which still animates and inspires daily correspondence, and which still exerts a living influence over literature, science., and religion from the Hindu Kush to Ceylon?

The readers of the *Athenæum* may remember that about a year ago I announced the arrival in this country of a young Hindu of the Kshatriya caste, named S'yamaji Krishna Varma, whose knowledge of Sanskrit and power

of speaking and writing that language were so great that the title of Pandit had already been accorded to him. I also mentioned that he had had the advantage of the instruction of a remarkable person who is not only profoundly versed in ancient Sanskrit literature, but is now causing considerable stir in Indian religious circles by denouncing polytheism, pantheism, and idolatry, and preaching pure monotheism as the only true religion of the Aryan race founded on the Veda.

The name of this rising religious reformer is Dayananda Saraswati Swami. He is an eloquent speaker and writer of Sanskrit, as I can myself testify; for when I was at Bombay I heard him deliver a sermon with great earnestness and fluency, before an attentive congregation of the Arya Samaj, on the original religion of the Aryas. He has lately written a letter in Sanskrit to his pupil, now a member of Balliol College, Oxford, which, with the permission of the addressee, I here translate :—

" May the benediction of Dayananda Saraswati Swami rest upon S'yamaji Krishna Varma, who deserves all commendation for his learning and his perseverance in the path of Vedic religion, &c. I am sorry you have not cheered me for some time by a letter. I now write hoping you will rejoice my heart by replying to the following questions :—

" What sort of men are there in England ? What are their characteristic qualities, dispositions, and actions ? What is the nature of the land, water, and air there ? What kind of eatables, solid and liquid, and what things are fit for licking and sucking (lehya, chushya), can be had there ? Have you been in good health ever since you left this country ? Is the object of your visit to England being accomplished every day ? How many men read Sanskrit with you, and what books do they study ?

" What is your monthly income and what are your expenses ? What time have you for study, for teaching, and for meditating ? How is it that your fame for discoursing on the doctrines of the true religion has not spread so rapidly in England as it formerly did here in different parts of India ? Perhaps you have already acquired a reputation without our having heard of it, being at a long distance from you ; or perhaps you have had no leisure. If that be the case, it is my earnest recommendation that, as soon as you have finished reading and teaching (parhna, parhana), you should deliver addresses for the propagation of Vedic doctrines, and then return here, but not before ; for a good reputation so acquired is preferable to making money, nay, it confers a great blessing (siva-karah). What is the present opinion of our beloved professors Monier Williams and Max Müller (Mokshamülar) about the Vedas and other Sastras ? Have they and others any regard for the dissemination of the meaning of those

works (tadartha-pracharaya) ? Is it a fact that the Theosophical Society has established a Vedic branch (Vaidiki sakha) in London (*Nanda-nagra*, the city of joy) ? Have you ever seen Her Majesty, the great Queen, Empress of India ? Have you seen the assembly called Parliament (Parliment-akhya sabha) ?

"Please to answer these questions as soon as you can, and write to me at length about other topics which you may think worth mentioning. This will suffice for the present, as it is not necessary to write long letters to the intelligent. Written on Tuesday, the sixth day of the white half of the month Ashadha of the Samvat year, measured by the earth, the numerical symbols, the Ramas, and the sages (1937=A. D. 1880)."

The above letter is well and clearly written in pure classical Sanskrit. I constantly receive similar Sanskrit letters from learned Hindus who live in countries as widely separated and distinct from each other as Cashmere and Travancore. The specimen translated is valuable for other purposes than a mere illustration of the fact that the educated classes of India use Sanskrit as a medium of communication. It affords an insight into the ideas that prevail among learned natives and thoughtful religious reformers in regard to the condition of the country under whose rule they are able to pursue their studies or propagate their reforming opinions in peace and security. I may note, for the benefit of those who were interested in the controversy as to the proper translation of the title "Empress of India" that the expression employed by Dayananda is *Raja-rajes'vari*.

MONIER WILLIAMS.

उक्त अंगरेज़ी का अनुवाद यह है:—

"संस्कृत जीवित जाग्रत भाषा है"

"जब कि भारतवर्ष के नाना प्रान्तों की भाषाएं एक दूसरे से सर्वथा न मिलें अथवा बहुत कम मिलती हों और ऐसा होने पर निकटवर्ती नगरों के दो पुरुष भी एक दूसरे की बात भली प्रकार न समझ सके हों तो यह बात बहुत थोड़े मनुष्य जानते होंगे कि संस्कृत आजकल बोलचाल और लिखने पढ़ने का भारतवर्ष में भारी साधन है और पण्डित लोगों को इससे बड़ी सुगमता परस्पर व्यवहार के लिये मिलती है और वे इसको एक प्रकार की सामाजिक सार्वभौमिक भाषा समझते हैं। मिस्टर कस्ट ने दर्शाया है कि हमारे भारतवर्ष के राज्य में लगभग २०० भाषाएं अपनी शाखा सहित प्रचलित हैं। यदि भारतवर्ष देश के सर्वस्थानों में विद्वान् लोग संस्कृत और हिंदोस्तानी से काम न लेते तो इतनी भाषाओं की विद्-

मानता पर उनको परस्पर भाव प्रकट करने भी कठिन हो जाते। कल्पना की जाती है कि संस्कृत मृतभाषा है और बहुधा मृतभाषा कहलाती है परन्तु क्या वह भाषा जो प्रतिदिन के भावों और बोलचाल में जीवित जाग्रत रूप से विद्यमान हो, जिस के द्वारा ही प्रतिदिन पत्र व्यवहार किये जाएं और जिसका जीवित प्रभाव साहित्य, शास्त्र और धर्म पर हिंदुकुश पहाड़ से लेकर लंका द्वीप पर्यंत हो, कभी निर्जीव कहला सक्ती है ?

इस 'अथीनियम' पत्र के पाठकों को स्मरण होगा कि गतवर्ष मैंने सूचना दी थी कि इंगलैण्ड में एक हिन्दू युवापुरुष क्षत्रिय वर्ण का जिसका नाम श्यामजीकृष्णवर्मा है और जिसकी संस्कृतविद्या में विद्वत्ता और संस्कृत में वक्तृता करने तथा लेख लिखने की योग्यता ऐसी महान् है कि उसको पण्डित की पदवी दी जा चुकी है, आया है। मैंने यह भी वर्णन किया था कि इसने सौभाग्यता से एक महान् पुरुष से शिक्षा भी ग्रहण की है जो महान् पुरुष न केवल प्राचीन संस्कृत साहित्य में पूर्ण विज्ञ है परञ्च आजकल भारतवर्ष के सर्व मतमतान्तरों में अनेक ईश्वरपूजन, मायावाद और मूर्त्तिपूजन का खण्डन करने और इस बात के मण्डन करने से कि आर्य्यजाति का एकमात्र सच्चा धर्म वेदोक्त एक ईश्वर की उपासना करना है भारी चर्चा फैला रहा है। इस नए धार्मिक रिफ़ार्मर (आचार्य्य) का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है। मैं अपनी साक्षी से कह सक्ता हूं कि स्वामी दयानन्द संस्कृत के प्रभावशाली वक्ता और लेखक हैं। जब मैं बम्बई में था तो मैंने इनको बड़ी धार्मिकवृत्ति और उत्तमता से आर्य्यसमाज के लोगों के मध्य में जो ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे थे आर्य्यों के प्राचीनधर्म के विषय में उपदेश देते हुए सुना था। आज कल ही इनका एक पत्र संस्कृत में इनके शिष्य के नाम आया है जो कि आजकल 'बेलिअलकालिज ओक्सफोर्ड' का एक मेम्बर है और उसकी आज्ञा पूर्वक मैं उस पत्र का अनुवाद नीचे लिखता हूं:—

श्यामजीकृष्णवर्मा को जो कि अपनी विद्या और वैदिकधर्म के मार्ग में दृढ़ता के कारण प्रसंशा के योग्य है दयानन्दसरस्वती स्वामी का आशीर्वाद पहुंचे। मैं शोक करता हूं कि कुछ काल से तुमने पत्र भेजकर मुझे आनन्दित नहीं किया। अब मैं इस आशय से पत्र लिखता हूं कि तुम इसका उत्तर देकर मेरे मन को प्रसन्न करोगे।

इंगलैण्ड के लोग किस प्रकार के हैं ? उनके विशेष गुण, स्वभाव और कर्म क्या हैं ? वहां का जल, स्थल और वायु कैसा है ? खाने, पीने, चाटने, चूसने के योग्य कौन से पदार्थ वहां मिल सक्ते हैं ? जब से तुमने यह देश छोड़ा है तब से तुम्हारा शरीर आरोग्य तो रहता है ? क्या उस प्रयोजन में तुम को प्रतिदिन सफलता प्राप्त होती है जिस के लिये कि तुम इंगलेण्ड की यात्रा को आये हो। कितने मनुष्य तुम से संस्कृत पढ़ते हैं और किन २ पुस्तकों का वह पाठ करते हैं ? तुम्हारा मासिक आय और व्यय कितना है ? किस २ समय तुम स्वयं पढ़ते, पढ़ाते और उपासना करते हो ? सत्यधर्म के सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने से जो तुम्हारा यश इंगलेण्ड में शीघ्र फैलना चाहिये था जैसा कि भारतवर्ष के नानास्थलों पर फैल चुका है उस के न फैलने का क्या कारण है ? कदाचित् तुम्हारी कीर्त्ति फैल रही हो और हमको उस की सूचना न मिली हो इस कारण कि हम तुम से दूरी पर हैं, अथवा यह कि तुमको अवकाश ही न मिला हो। यदि अवकाश न मिला हो तो मैं सत्यहृदय से प्रेरणा करता हूं कि जब तुम को पठन पाठन से अवकाश मिले तब ही * **वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के निमित्त व्याख्यान देना और तब ही यहां आना इस से पूर्व नहीं।** क्योंकि इस प्रकार के यश का प्राप्त करना धन संग्रह करने से उत्तम है, न केवल यही परन्तु यह कल्याणकारी काम है। आजकल हमारे प्यारे प्रोफेसरों अर्थात् मोनियर विलियम्स और मैक्समूलर की वेद और अन्य शास्त्रों के विषय में क्या सम्मति है ? क्या यह और अन्य लोग वेदादि शास्त्रों के अर्थ प्रचार करने के लिये कुछ भाव रखते हैं ? क्या यह सत्य है कि थियासोफिकल सोसाइटी ने लन्दन नगर में वैदिकीय शाखा स्थापन की है ? क्या तुम कभी श्रीमती भारत राजराजेश्वरी से मिले हो ? क्या तुमने कभी पारलियामेंट नामी सभा देखी है ? कृपा करके शीघ्र ही इन प्रश्नों के उत्तर देना और अन्य विषयों पर विस्तार पूर्वक लिखना जिनको कि तुम वर्णन के योग्य समझो। इस समय इतना लेख ही पुष्कल है क्योंकि विचारशीलों को विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

मंगलवार आषाढ शुक्ल ६ संवत् १९३७

(तदनुसार सन् १८८०)

* (नोट) अक्षर मोटे हमने किये हैं।

उक्त पत्र उत्तम है और शुद्ध प्राचीन संस्कृत की शैली में स्पष्ट लिखा हुआ है। इसी प्रकार के मुझे नित्यप्रति संस्कृत के पत्र विद्वान् हिन्दुओं से आते रहते हैं जो भिन्न २ प्रान्तों में रहते हैं जिनकी दूरी इतनी होती है जितना कि कश्मीर और ट्रावनकोर एक दूसरे से दूर हैं। इस अनुवाद से न केवल यही दृष्टान्त मिलता है कि भारतवर्ष के पण्डित लोग पत्र व्यवहार संस्कृत में ही करते हैं परंच इससे अन्य बातें भी विदित होती हैं। इससे भारत के विद्वान् और बुद्धिमान् धार्मिक रिफार्मरों के अन्तरीय भावों का इंगलैंड के विषय में पता लगता है जिसके राज्यप्रबन्ध में वे लोग शान्तिपूर्वक निर्विघ्न रीति से पुस्तकों को पढ़ते और सुधार विषयक प्रचार करते हैं जो लोग इस संवाद में दत्तचित्त थे कि "एम्प्रेस आफ़ इण्डिया" का यथार्थ अनुवाद क्या है उनके लाभ के लिये मैं यह भी दर्शाना चाहता हूं कि (स्वामी) दयानन्द ने "राजराजेश्वरी" प्रयोग लिखा है।

स्थान ओक्सफोर्ड
अक्तूबर १८८० ई०

भवदीय
मोनियर विलियम्स

(७) "मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि।" (यजु० अ० १९ मं० ९)

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्।" (अथर्व कां० ३ अ० ६ सू० ३० मं० २)

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।" (अथर्व कां ३ अ० ६ सू० ३० मं० ३॥ तथा संस्कारवि० पृ० १५८)

इत्यादि मंत्रों के अनुसार ऋषि ने सातवां नियम यह बनायाः-

सातवां नियम "सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये"

विवरण- इसका अभिप्राय यह है कि धर्मात्मा मनुष्यों, सज्जन बन्धुओं और मित्रों से प्रेम करना, मूर्खों से सहनशीलता का वर्ताव और चोरादि दुष्ट पुरुषों को न्यायपूर्वक यथायोग्य दण्ड देना अथवा पंचायत वा न्यायालय

से दिलवाना चाहिये। योगशास्त्र में लिखा है कि संसार में ४ प्रकार के मनुष्य हैं उनसे इस प्रकार मानसिक वर्ताव करना चाहियेः-

१ सुखी जन से मित्रता की वृत्ति रक्खो,
२ पुण्यात्मा जन से मन में आनन्दित हो,
३ पापी से उपशमवृत्ति,
४ दुखी पर दयावृत्ति धारो।

अनाथों पर कर्म द्वारा दया करने के प्रयोजन से अजमेर, बरेली, जालंधर आदि कई नगरों में आर्य्यसमाज ने लड़के तथा लड़कियों के अनाथालय स्थापन किये हुये हैं। इनकी ओर दया की दृष्टि रखना सज्जनों का काम है। निज जीवन में प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन अनेक प्रकार के सुखी, दुःखी, पापी, धर्मात्मा मनुष्यों से मेल होता है इसलिये प्रत्येक आर्य्य को सब से प्रेम पूर्वक धर्मानुसार मन वचन तथा कर्म द्वारा यथायोग्य वर्ताव सदैव करना चाहिये॥

(८) "अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳬं रताः॥" यजु० अ० ४० मं० ९

"अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥" यजु० अ० ४० मं० १०॥

"सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयᳬं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ ११॥"

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्या मुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬं रताः॥" यजु० अ० ४० मं० १२॥

इत्यादि मंत्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का आठवां नियम यह बनायाः-

आठवां नियम "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये"

इसी नियम के आशय को लेकर आर्य्यसमाज, मूर्त्तिपूजन, नास्तिकपन, मायावाद, जलस्थलरूपी तीर्थ और भ्रमजनक मतमतांतरों के मिथ्या सिद्धान्तों का युक्ति और प्रमाण द्वारा खंडन करता हुआ उसके स्थान में सच्चा विवेक प्रचार करता है। यजु० अ० ४० के १२वें मंत्र की व्याख्या वेदभाष्य में

ऋषि ने इस प्रकार लिखी है जिसके पाठ करने से इस नियम का मूल विदित होजाता है।

"(अन्धम्) दृष्ट्यावरकम् (तमः) गाढमज्ञानम् (प्र) (विशन्ति) (ये) (अविद्याम्) अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्येति ज्ञानादिगुणरहितं वस्तु कार्य्यकारणात्मकं जडं परमेश्वराद्भिन्नम् (उपासते) अभ्यस्यन्ति (ततः) (भूय इव) अधिकमिव (ते) (तमः) अज्ञानम् (ये) पण्डितं मन्यमानाः (उ) (विद्यायाम्) शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानमात्रेऽवैदिके आचरणे (रताः) रममाणाः ॥

(६) सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्व० कां० ३। वर्ग ३० मं० १ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः समनसस्कृणोमि॥ अथर्व० कां० ३ वर्ग ३० मं० ५ तथा संस्कार विधि पृष्ठ १५६ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांᳪ शूद्रो अजायत ॥ (य० अ० ३१ मं० ११)

इत्यादि मंत्रों के आशय को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का नवां नियम इस प्रकार रचा कि:—

नवां नियम	"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"

विवरण—परस्पर अत्यन्त प्रेम से उपकार अथवा कार्य्य करने की शिक्षा इसमें दी गई है। जिस प्रकार गाय प्रेमबद्ध होकर बछिया की रक्षा तथा उपकार में अपना जीवन समझती वा ज्ञानी लोग दूसरों को उन्नत करते हुए उन्नति को परस्पर की सहायता के कारण प्राप्त होते अथवा चारों वर्ण परस्पर सहायता करते हैं जिस प्रकार कि शरीर के अङ्ग एक दूसरे की उन्नति करते हुये उन्नत होते हैं इसी प्रकार आर्य्यों को दूसरे की उन्नति में अपनी उन्नति समझते हुये सदैव परस्पर सहायता तथा एक दूसरे की उन्नति करनी चाहिये।

(१०) स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि (ऋ० मं० ५ सू० ५१ मं० १५)

इत्यादि मंत्रों के आशय के अनुसार ऋषि ने दसवां नियम बनाया जो कि इस प्रकार है:—

दसवां नियम "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥"

विवरण—उपरोक्त वेद मंत्र में प्रत्येक हितकारी और सामाजिक उन्नति के नियम का अलङ्कार से वर्णन किया है । मंत्र दर्शाता है कि जिस प्रकार सूर्य चन्द्र अपने २ मार्ग में भ्रमण करते हुए एक दूसरे के हित के लिये नियमों में बंधे हुए विचरते हैं और सर्वहितकारी नियमों का उल्लंघन नहीं करते इसी प्रकार मनुष्यों को सर्वहितकारी नियमों में चलना चाहिये ताकि निज की उन्नति के संग २ सामाजिक उन्नति होती जाय । इस वैदिक अलंकार की उत्तमता इस स्थल पर विशेष रीति से हम वर्णन करना नहीं चाहते किन्तु यह दर्शाते हैं कि पातालदेशी एक विद्वान् ने इस विषय में क्या लिखा है ?

" *The Perfect harmony between Liberty and Law, is beautifully revealed to us in the world of planets.*"*

इसका अर्थ यह है कि:—

" स्वतंत्रता और परतंत्रता के मध्य में पूर्णता से समता का दृष्टान्त ग्रह मंडल में मिलता है "

वैदिक आशय को लेकर महर्षि मनु तथा पतञ्जलि जी ने सामाजिक अथवा सर्वहितकारी और निजसंबंधी अथवा प्रत्येक हितकारी नियमों को दो भागों में करके उनके यम और नियम नाम रक्खे हैं ।

सामाजिक सर्वहितकारी यम पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह । जब हम कहते हैं कि किसी की हिंसा न करो तो इस से पाया जाता है कि एक हिंसा करने वाला और उससे भिन्न कई प्राणी हैं जिनके

* *The Harmonial man*, p.p. 12-13. *By A. J. Davis.*

साथ शान्तिपूर्वक वर्ताव करने के लिये यह उपदेश है। एक से अधिक प्राणियों के लिये जो नियम वर्ताव में आवे वही सामाजिक अथवा सर्वहितकारी है जैसे कि अहिंसा का नियम।

सत्य तब ही बोला जाता है जब बोलने वाले से भिन्न कई मनुष्य हों जो उसको सुन सकें और उसका उन से व्यवहार पड़े। सत्य विश्वास का मूल है विश्वास समाज की जान है विश्वासघाती अनेक मनुष्यों की हानि करता है वह अनेक पुरुषों के व्यवहार के नाश करने से उनको हानि पहुंचाता है। चोरी के अर्थ दूसरों के पदार्थों को बलात्कार अथवा अन्याय से ग्रहण करने के हैं। अपने ही पदार्थ इधर से उधर रखना चोरी नहीं है। चोरी के त्याग करने से हम न केवल अपने आपको ही वरन अन्य मनुष्यों को भी लाभ पहुंचाते हैं इसलिये चोरीत्याग (अस्तेय) सामाजिक सर्वहितकारी नियम है। ब्रह्मचर्य्य रखने वाला न केवल अपने शरीर में बलवीर्य्य को धारण करता है किन्तु दूसरों की बहू बेटी को दूषित न करने से समाज के जनों को लाभ पहुंचाता है इसलिये ब्रह्मचर्य्य सर्वहितकारी नियम है। अपरिग्रह दर्शाता है कि हम विषयासक्त तथा अभिमानी न बनें विषयासक्त मनुष्य समाज के निर्बलों पर क्रूरता करता हुआ उनकी हानि का कारण बनता है और अभिमानी पुरुष अन्त में हिंसक बनकर समाज के मनुष्यों को पीडा पहुंचाता है। इसलिये विषयासक्ति तथा अभिमान का त्याग सर्वहितकारी नियम है।

कोई यह न समझले कि सर्वहितकारी सामाजिक नियम प्रत्येक हितकारी होते ही नहीं। विचार कर देखो तो निश्चय होगा कि सर्वहितकारी के अन्तर्गत प्रत्येक का हित भी रहता है। जब सर्व का हित कहा गया तो क्या प्रत्येक का हित सर्व से बाहर रहगया? कदापि नहीं। सर्वोपकारी, सर्वहितकारी सामाजिक नियमों के अन्तर्गत एक व्यक्ति का निज उपकार रहता है। हां यह देखने में आता है कि सर्वोपकारी नियम पहिले फल समाज को पहुचाते हैं पीछे एक व्यक्ति को, परन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि उनसे औरों का ही भला हो और एक व्यक्ति का न हो।

यह भी कोई न समझले कि प्रत्येक हितकारी नियमों से एक व्यक्ति विशेष को ही लाभ पहुंचता है समाज को नहीं। हां यह ठीक है कि प्रत्येक

हितकारी नियम पहिले एक व्यक्ति का भला करते हैं फिर उस व्यक्ति द्वारा समाज को लाभ अवश्य मिलता है । प्रत्येक हितकारी नियमों के अन्तर्गत समाज का उपकार रहता है । जब कोई देश उन्नत होता है तो वहां सामाजिक नियमों के साथ २ निज सम्बन्धी नियम पाले जाते हैं फल अन्त में दोनों का सर्वहित है । सामाजिक नियमों के अन्तर्गत अपना भला और अपने भले के अन्तर्गत समाज का भला बना रहता है । जब कोई देश अधोगति को प्राप्त होता है तो वहां केवल प्रत्येक हितकारी नियम पाले जाते हैं और सामाजिक नियम त्याग किये जाते हैं क्योंकि मूर्ख लोग दूरदर्शी तो होते नहीं इसलिये उनकी समझ में यह सहज से नहीं आता कि परोपकार के अन्तर्गत अपना उपकार क्योंकर हो सकता है ? वह प्रत्येक हितकारी नियमों के प्रभाव को अपने निज पर शीघ्र अनुभव करते हुये एक मात्र नियमों के सेवन करने वाले बन जाते और यमों को छोड़ देते हैं । मनुष्य की इस निर्बलता को अनुभव करने वाले ऋषि मनुजी ने इसी वास्ते यह लिख दिया कि नियमों के संग २ यमों को अवश्य पालें और इसी लिये ऋषि दयानन्द ने यमों के पालन करने के लिये आर्यों को परतन्त्र रहने की आज्ञा दी । मनुजी की यह चितावनी वास्तव में अति उत्तम है:-

"यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः । यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥ मनु० अ० ४॥"

(अर्थ) बुद्धिमान् यमों का निरन्तर सेवन करे और नियमों का केवल न करे । यमों का सेवन न करता हुआ पतित हो जाता है जो केवल नियमों को ही सेवन करता है ।

इसी पर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में इस प्रकार लिखा है कि :-

"यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करे किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे जो यमों का सेवन छोड़कर केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है" सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४७ ॥

मनु और दयानन्द ऋषि के उक्त लेखों से विदित हुआ कि सर्वहित-

कारी यमों का सेवन आवश्यक है अर्थात् यमों के सेवन के लिये इस दसवें नियम की परिभाषा में सब को परतन्त्र रहना चाहिये और वास्तव में यह ठीक है कि परतन्त्रता सामाजिक नियमों के सेवन में होनी ही चाहिये। इस लिये यम सर्व हितकारी सामाजिक जीवन अथवा मिलकर काम करने के महान् नियम हैं ॥

नाना देशों की सभ्यता के इतिहास बतलाते है कि किसी जाति के उन्नत-होने का एक महान् लक्षण यह है कि उस जाति के लोग मिलकर काम करना जानते हों अथवा यह कहो कि उन मनुष्यों में सामाजिक जीवन पाया जावे ॥

'भारत हमें क्या शिक्षा दे सकता है' * इस नाम के ग्रन्थ में भट्ट मेक्सम्युलर ने दर्शाया है कि संस्कृत का "सत्य" शब्द ऐसा उत्तम है कि अन्य किसी भाषा में इस सरीखा सार्थक सारगर्भित शब्द मिलता ही नहीं। जिस प्रकार मैक्स-म्युलर सत्य शब्द पर लट्टू हो रहे हैं उसी प्रकार एक जिज्ञासु संस्कृत के एक और शब्द पर भी मोहित हो सकता है जो कि यह है अर्थात्:—

'सभ्य' जिसके अर्थ "सभा के योग्य" के हैं ॥

सभ्य पुरुष उन्नत पुरुष को कहते हैं परन्तु उन्नत वही होता है जो सभा के योग्य है, जिसमें सामाजिक जीवन है, जो यमों का सेवी है, जो औरों के साथ मिलकर काम कर सकता है। उन्नति के इतिहास लिखने वाले बहुत अक्षरों में लिखते हैं कि उन्नत होने से अभिप्राय सभा के योग्य होने से है, परन्तु इस सब बात को सभ्य शब्द ही एकला उत्तमता से बोधन कराता है। मेक्सम्युलर ने एक स्थल पर लिखा है कि प्राचीन आर्य्यपुरुष सामाजिक जीवन से शून्य थे और इस समय में भारतवासियों ने 'नेशन' (समाज) शब्द हम से सीखा है और इसी प्रमाण को शिर पर धर कर मद्रास के पादरी मरडक ने कई लघु पुस्तक लिख डाले जिसमें यह दर्शाया है कि प्राचीन भारत में कभी उन्नति नहीं हुई क्योंकि इनके यहां 'नेशन' और 'नैशनल लाइफ़' अर्थात् समाज और सामाजिक जीवन शब्द ही नहीं थे। यदि मेक्सम्युलर और 'मरडक' ने मनुजी के इस लेख पर विचार किया होता अथवा पांच यमों पर विचार

* *India what can it teach us? By F. Max Muller.*

दृष्टि की होती वा सभ्य शब्द के अर्थ अनुभव किये होते तो ऐसी निर्मूल शंका न करते ॥

भारत में आज कल शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन पांच प्रत्येक हितकारी नियमों की कुछ चर्चा सी रह गई है। आर्य्यसन्तान शौच के एक अंश अर्थात् नहाने धोने के लिये प्रसिद्ध है। मन की प्रसन्नता वा सन्तोष तो इन में से उड़ गया और अब भूल से आलस्य को यह सन्तोष मानने लगे। तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति भी कुछ है। हिन्दुओं की गणना संसार की अर्द्ध सभ्य जातियों के संग विदेशी विद्वान् करते हैं और उसका कारण यही बतलाते हैं कि हिन्दुओं में सामाजिक जीवन का अभाव है वास्तव में यह सत्य भी है क्योंकि सामाजिक जीवन के पांच यमों का पालन हिन्दू लोग इस समय नहीं करते यथाः—

पहले यम को लें तो निश्चय होगा कि अहिंसक होने के स्थान में आर्य्य संन्तान हिंसाशील यहां तक बन गई है कि भाई से सगे भाई की नहीं बनती। पुत्र पिता को दुःख देता है, मा बेटी को नहीं चाहती वैर फूट सर्वत्र फैलगया है सच तो यह है कि पहला यम नाम को भी वर्तमान समय में भारत में नहीं मिलता। दूसरा यम सत्य है वह भी इस देश में नहीं रहा स्वदेशियों को स्वदेशियों पर विश्वास इसलिये नहीं कि सत्य आचरण नहीं करते। चोरी सूक्ष्मरूप से नर नारी में मानों व्याप्त होगई है। ब्रह्मचर्य्य की जो दुर्दशा भारत में है कदाचित् अफरीका में भी न होगी। आठ २ वर्ष के बच्चे व्याहे जाते हैं और आयु भर विवाह के रूप में व्यभिचार करते हैं। स्त्रियों को घूंघट काढ़ना पड़ता है क्योंकि पुरुषसमाज मलिन होरहा है। अपरिग्रह इस यम का भी अभाव ही है। अभिमान यहां तक बढ़ गया है कि दो विद्वान् मिलकर काम नहीं करसक्ते। भारतवर्ष के विद्वानों, पण्डितों का एक मात्र काम दूसरे की निंदा और अपनी बड़ाई करना रह गया है। सभाएं समाजें बन २ कर टूट जाती हैं क्योंकि सभासद् कोई नहीं बनना चाहता सब ही अभिमान के कारण आयु भर के लिये प्रधान बनना चाहते हैं।

अमेरिका आदि देशवासियों ने जो सामाजिकजीवन उपलब्ध किया है उस का कारण यही पांच यम हैं। वैदिकसमय के आर्य्यों की अपेक्षा ये

लोग अभी पूर्ण रीति से इन पांच यमों पर आरूढ़ नहीं हुये परन्तु भारतवासियों से फिर भी बहुत उत्तम हैं । पांच यम बहुत अंश तक इनमें चरितार्थ पाये जाते हैं । हिंसाशील भारतवासियों से कम हैं यद्यपि उन में कई पशुहिंसा करते हैं तथापि अपने २ देश के मनुष्यों से हिंसा वा वैर का करना परम दुष्टकर्म समझते हैं । सत्याचरणी यहां तक हैं कि भारत में कह दो कि यह विदेशी (विलायती) बैंक है सब को विश्वास होजाएगा कि यही सुरक्षित है । परस्पर की चोरी इन में बहुत न्यून है, ब्रह्मचर्य्य और पवित्रता में भारत वासियों से कई गुणा बढ़ कर हैं, अभिमानत्यागी हैं, अपने २ धर्म पालन में तत्पर रहते हैं, छोटे बड़ों की यथावत् आज्ञा पालन करते हैं, विद्वान् परस्पर मिलकर काम करते हैं । हमारे ऋषि मुनि इसी लिये उन्नत थे कि वे यम नियम अर्थात् सर्वहितकारी और प्रत्येक हितकारी नियमों को संग २ पालन करते हुए मोक्षमार्ग में पग धरते जाते थे यदि प्राचीन आर्य्यों में से कोई सामाजिक नियम के पालन में शिथिल होजाता था तो वह सभा वा समाज की मर्य्यादा से दण्ड का भागी होता था जिसका अभिप्राय यह है कि वे सर्वहितकारी नियमपालन में परतंत्र और प्रत्येकहितकारी नियम में स्वतंत्र रहते थे ॥

प्राचीन आर्य्यों के सामाजिक जीवन की उत्तमता जानने के लिये हमें उनके वर्ण, आश्रम की ओर विचार दृष्टि देनी चाहिये । आज कल पश्चिमीय देशों में ऐसे विद्यालय नहीं बने जिन में कि चारों वर्णों के पुत्र पुत्री बिना फ़ीस दिये न केवल शिक्षा प्रत्युत साथ ही भोजन वस्त्र भी पासकें, परन्तु यह कठिन बात प्राचीन आर्य्यों ने अपने सामाजिक जीवन की पूर्णरूप से उत्तमता के कारण अपने लिये सुगम कर रखी थी । उनके गुरुकुलों में विद्यार्थी विद्या तथा भोजनादि का बिना फ़ीस दिये दान पाते थे। आजकल पश्चिमीय देशों में वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों की प्रणाली उत्तम नहीं है परन्तु प्राचीन आर्यों की सामाजिक दशा के उत्तम होने के कारण ये आश्रम उत्तम होते थे । यदि वैदिक समय के चारों वर्णों के मनुष्य अनुपम और उत्तम होगये हैं तो उसका कारण उनकी सामाजिक तथा निज सम्बन्धी व्यवस्था की उत्तमता ही थी ॥

आजकल आर्य्यसन्तान "पबलिक" (सामाजिक) कार्य्यों का नाम तक

भूलगई है परन्तु प्राचीन आर्य्य "पबलिक" कार्य्य को*यज्ञ के नाम से पुकारते थे। निरुक्तकार ने यज्ञ के अर्थ ऐसे कर्म के किये हैं जिसमें ये तीन बातें हों:-

(१) देवपूजा (२) संगतिकरण (३) दान—विद्वानों का प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करना तथा उनको दक्षिणा देने का नाम देवपूजा है नाना प्रकार के पदार्थों को संयुक्त करने और उनसे कला कौशल रचने का नाम संगतिकरण है। समाज में जो निर्बल, निर्धन हैं उनको स्वत्वाभिमान छोड़ कर धन देने का नाम दान है। यूरोप की "जीवन का बीमा करने वाली" सभाएं केवल धनियों की संतान को धन दे सक्ती हैं किन्तु निर्धनों की संतान की सहायता का कोई उत्तम प्रबन्ध उन देशों में नहीं है यदि होता तो दरिद्रता पश्चिमीय देशों में इतनी न होती कि सर्व विद्वान् उसको असाध्यरोग अपनी समाज का बतलाते। प्राचीन आर्य्यों ने अपने दान के बल से दरिद्रता अपनी समाज से सर्वथा दूर कर रक्खी थी और यह दान उन के यज्ञ 'पबलिक कार्य्य' का एक अंश था। देवपूजा तब ही हो सक्ती है जब कि देवगण परस्पर मिलें वा एकत्र हों इसलिये यज्ञ शब्द वैसा ही महान् आशय वाला एक जिज्ञासु के लिये हो सक्ता है जैसा कि मेक्सम्युलर के लिये सत्य शब्द हुआ है। यज्ञ शब्द आर्य्यों के परोपकारी, सर्वहितकारी सामाजिक जीवन का बोधन करा रहा है॥

कोई यह न समझे कि प्राचीन आर्य्यों ने ५ यम और ५ नियम साधारण बात समझी हुई थी परन्तु उन्होंने इनको ही धर्म के दश लक्षणों का नाम दिया था और धर्म को वे प्राणों से प्यारा समझते थे। इनही यम नियमों का अनुवाद करके मनुजी ने धर्म के १० लक्षण बनाए हैं यथा:---

* यज्ञ में जो ब्रह्मा होता है उसके अर्थ ऐसे पुरुष के हैं जो चारों वेदों का ज्ञाता और यज्ञ का अधिष्ठाता *Director-General* हो। पुरोहित- *Public-spirited, learned man or Brahamin.*

यम नियम	योग शास्त्र	मनुस्मृति	विवरण
१ यम	अहिंसा	अक्रोध	
२. यम	सत्य	सत्य	
३. यम	अस्तेय	अस्तेय	
४. यम	ब्रह्मचर्य्य	इन्द्रिय निग्रह	
५. यम	अपरिग्रह	दम	मानसिक लोभ को अभिमान कहते हैं जो कि विकृत अहंकार वृत्ति होती है। मन के इन्द्रिय द्वारा विषयों के लोभ को विषयासक्ति कहते हैं ॥
१. नियम	शौच	शौच	
२. नियम	संतोष	धृति	मन की सम्यक् तुष्टि का नाम संतोष है, प्रत्येक दशा में प्रसन्न रहने को संतोष वा धृति कहते हैं ॥
३. नियम	तप	क्षमा	मानसिक तथा शारीरिक क्षमा करने वा सहने का नाम तप है।
४. नियम	स्वाध्याय	धी	
५. नियम	ई० प्रणिधान	विद्या	विद्या के अर्थ ब्रह्मदर्शन के हैं जो कि यजु० के ४० अ० में लिये गये हैं ॥

योगसूत्र	मनुस्मृति का श्लोक
तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥ शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥	धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

आर्य्यसमाज के इन दश नियमों के प्रसंग को हम समाप्त करते हुए आगे चलते हैं ॥

प्रामाणिक जीवन चरित्र पर आशंकाएं और उनका उत्तर

भारतवर्ष में आजकल सामाजिक जीवन का अभाव सा हो रहा है। आश्चर्य्य है कि लोग भारत में सामाजिक महान् बल को एक मनुष्य के बल से भी न्यून समझते हैं, यही कारण है कि जो जीवनचरित्र ऋषि दयानन्द का पंजाब के आर्य्यसमाजों की शिरोमणि सभा अर्थात् आर्य्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से प्रामाणिक रीति पर प्रकाशित हुआ उसकी विद्यमानता में साधारण लोग निज की रीति पर उसके विरुद्ध मनमाने जीवनचरित्र प्रकाशित करने से अपने टके सीधे करते हुए कोलाहल मचा रहे हैं। क्या कभी संभव है कि जो काम सहस्र उत्तम मनुष्य मिलकर करें वह एक साधारण मनुष्य वैसा ही कर सके? निसन्देह कभी नहीं कर सक्ता यदि कर सक्ता तो क्यों न इस पुरुष ने सभा के जीवनचरित्र प्रकाशित होने से पूर्व ऐसा काम किया? आर्य्यप्रतिनिधिसभा ने कितना व्यय किया, पंडित लेखराम से जिज्ञासु और सच्चे धर्मवीर ने जिसका कि नाम भारत में विख्यात है कठिन से कठिन यात्रा करने के कारण यात्री (मुसाफ़िर) के उपपद को धारण करते हुए उस सामग्री को किस निष्पक्षभाव से एकत्र किया उसको समझना सहज नहीं है। यदि अमेरिका में पंडित लेखराम होता और इस निष्पक्षभाव से जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई विना नमक मिरच लगाए सर्वसाधारण के सन्मुख रख देता तो पश्चिम के बुद्धिमान् उसकी अति प्रसंशा करते, परन्तु इस अभागे देश में चटनी नमक मिरच के लेखों का मान है शब्द जाल में फंसने वाले बहुत हैं ऐसी मन्दावस्था से लाभ उठाने के तुच्छ भाव से प्रेरे जाकर लोगों ने ऋषि की एक जीवनचरित्र रूपी कहानी लिख डाली और लोगों को भ्रम में डालना अन्तरीय प्रयोजन ठहराया।

आशंका

इस कहानी के पृष्ठ ११८ पर लिखा है किः—

(क) "स्वामीजी ने जून १८७७ में आर्य्यसमाज लाहौर स्थापित किया और अक्टूबर १८८३ में उनका देहान्त हुआ इस छः साल और ४ मास के अन्दर किसी आर्य्यसमाजी को यह ख्याल उत्पन्न नहीं हुआ कि वह स्वामी जी के सिद्धान्तों पर शंका करे। यदि किसी एक वा दो पुरुषों के

मन में कोई शंका कभी उत्पन्न भी हुई तो उन्होंने इस ख्याल से उसको दबाए रक्खा कि इस से स्वामीजी के तेज और उनके महत्व में न्यूनता होगी" ॥

(ख) "स्वामी जी के मरजाने के पश्चात् जब एक सभासद् ने मांस खाने के विषय में स्वामी जी के प्रसिद्ध सिद्धान्त पर प्रश्न किया उसी वक्त सर्व आर्य्यसमाज हिल गया....हालांकि स्वामी जी को इस सभासद् की इस राय का मुद्दत पहले इल्म (ज्ञान) था और बावजूद उस इल्म के उन्होंने कभी उसको समाज से पृथक् करने का इशारा भी नहीं किया परञ्च मरने से कुछ मास पूर्व ही उसको परोपकारिणी सभा में एक निहायत ही आला पदवी दी" ॥

इसका खंडन

प्रथम तो (क) (ख) इन लेखों में परस्पर विरोध है क्योंकि एक स्थल पर यह लिखना कि यदि किसी एक वा दो पुरुषों के मन में कोई शंका कभी उत्पन्न हुई तो उन्होंने दबा रक्खी। और फिर यह लिखना कि इस सभासद् की इस राय (विचार) का कि यह मांसभक्षण को वेदानुकूल समझता है स्वामी जी को ज्ञान था। इन दोनों में से एक बात सत्य हो सक्ती है यदि यह सत्य है कि इस पुरुष ने छः साल और ४ मास अपनी राय को दबाए रक्खा तो दूसरी बात ठीक नहीं हो सकती कि स्वामीजी को उक्त सभासद् की इस बात का ज्ञान था कि वह मांसभक्षण वेदधर्म के अनुकूल समझता है। दोनों में से एक बात तो अवश्य झूठ है और लिखने वाला मिथ्यावादी ठहरता है ॥

(२) लाला लाजपतराय ने किस ढंग से स्वामी दयानन्दजी को कपटी सिद्ध करने का यत्न किया है अर्थात् यह बतलाया है कि स्वामीजी ने जान बूझकर एक ऐसे पुरुष को समाज में रक्खा हुआ था जो कि वैदिक सिद्धान्त नहीं मानता था। उस ऋषि को जिसने महाराजा उदयपुर से प्रतापी का भय न करते हुए लाखों की गद्दी पर जो कि एक मन्दिर की थी लात मारी, जिसने थियासोफ़िस्टों और लाहौर समाजियों के परमसहायक की पदवी को तृणवत् परे फैंक दिया, उस ब्रह्मऋषि को जिसने महाराजों का भय न करते हुए जोधपुर में सत्य उपदेश किया और प्राण दिये, उस सत्यप्रिय को जिसने बम्बई के हरिश्चन्द्र और मुरादाबादी मुन्शी इन्द्रमणि से प्रसिद्ध आर्यों को धर्म से गिरते

हुए देखकर आर्य्यसमाज से बाहर निकलवा दिया, उस सच्चे योगी को जो कपट और छल को निर्मूल करने के लिये रातदिन जान हथेली पर लिये विचरता था, उस आप्त पुरुष को जिसने कभी पाप से मेल करना सीखा ही नहीं था, उस शुद्धाचरणी को जिसके साथ संवाद करते हुए ह्यूम साहिब से विदेशी उस के सत्याचरण की स्तुति करते हुए नहीं थकते उसपर लोग मनोकल्पित दोष लगाकर मांसभक्षण से पापकर्म को सिद्ध करना चाहते हैं ! हा भारत तुझ में ऐसे मिथ्यावादी भी हैं जो सर्वोपकारी ऋषियों को मिथ्यादोष लगाने के लिये लेखनी उठाते हुए लज्जित नहीं होते ! भारत ! तेरी सन्तान का सुधार कब होगा तेरी संतान कब सत्यवादी बनेगी ?

आर्य्यसमाज अजमेर की ओर से एक मासिकपत्र "देशहितैषी" नामी निकला करता था उसके खंड २ के अङ्क १० बाबत मास माघ संवत् १९४० के पृष्ठ ८ पर परोपकारिणी सभा के अधिवेशन का वर्णन करते हुए ऐसा लिखा है कि:—

"पश्चात् श्रीयुत रावबहादुर गोपालरावहरि देशमुखजी ने निम्नलिखित श्री स्वामीजी का सिद्धान्त सुनाया और कहा कि इस समय दूर २ स्थानों के आर्य्यगण उपस्थित हैं सब कोई जान लें कि स्वामीजी का क्या सिद्धान्त था। जहांतक होसके उसी के अनुसार वर्ताव करें। मंत्र संहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि वेद नहीं हैं। **वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है** *। वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है। पाषाणमूर्त्तिपूजन वेदविरुद्ध है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अजर, अमर, नित्य, पवित्र, इत्यादि है उसी की उपासना करना योग्य है। जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो वह धर्म नहीं। वेदों का अधिकार सब वर्णों को है। कर्म और गुणों से वर्ण हैं वीर्य्य से नहीं। जहांतक होसके बालविवाह से बचकर ब्रह्मचर्य्य रखना, वायु की शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है। मृतकों को भोजन छादन कदापि नहीं पहुंचता। वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों की यात्रा करें। आर्य्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठनपाठन रक्खें। स्वार्थसाधकों

* यह अक्षर मोटे हमने कर दिये हैं ॥

ने उन में यत्र तत्र मिला दिया हो उसको वेदों की कसौटी से परीक्षा कर उस से दूर करें। इस पर सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये और सब ने उत्साह पूर्वक कर दिये"

"देश हितैषी" पत्र के पृष्ठ २ पर परोपकारिणी सभा के १० सभासदों के नाम दिये हुए हैं जिन्होंने हस्ताक्षर किये उन में लाला मूलराज एम. ए. और रावबहादुर महादेव गोविन्दराव रानडे के नाम भी हैं।

यदि राय मूलराज सच्चे हृदय से मानते थे कि वेद में हिंसा की आज्ञा है तो अत्यन्त शोक का स्थान है कि उन्हों ने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध हस्ताक्षर कर दिये। ला० लाजपतराय का उक्त लेख क्या मिथ्या नहीं है जो बतलाता है कि स्वामी जी को ज्ञान था कि यह मांसभक्षण को धर्म मानता है। जब कि इस महाशय ने सभा में हस्ताक्षर कर दिये तो किस को भ्रम हो सक्ता है कि यह मन में इस के विरुद्ध मानता होगा? यदि मन में कुछ और था और कर्म में कुछ और तो राय मूलराज दूषित होते हैं न कि श्री स्वामीजी महाराज ॥

जब कोई मनुष्य आर्य्यसमाज में प्रविष्ट होता था उस समय भी निवेदनपत्र पर स्वामीजी इस प्रकार के हस्ताक्षर करा लेते थे कि मैं इन दश नियमों को सत्य मानता हूं और इन के अनुसार चलने का यत्न करूंगा। क्या राय मूलराज विना हस्ताक्षर किये ही आर्य्यसमाज के सभासद् बन सक्ते थे? कदापि नहीं। उन्हों ने हस्ताक्षर किये जब कि वह आर्य्यसमाज में प्रविष्ट हुए। क्या दूसरे नियम में ईश्वर को दयालु और न्यायकारी मानते हुए और दया और न्याय की उपासना करने की प्रतिज्ञा करते हुए यह हिंसा को धर्म मान सकते थे? कदापि नहीं। बात यह है कि राय मूलराज ने कभी स्वामी जी को मन का भाव नहीं बतलाया और हस्ताक्षर करने में कभी त्रुटि नहीं की। इसलिये ला० लाजपतराय का यह दोष कि स्वामी जी ने जान बूझ कर ऐसे पुरुष को आर्य्यसमाज में रख छोड़ा था सर्वथा मिथ्या है ॥

ए. ओ. ह्यूम साहिब का पत्र

वास्तव में बात यह है कि राय मूलराज के विचार कुछ और ही थे और न जाने किस अभिप्राय से समाज में प्रविष्ट हुए। जहां २ उन्होंने हस्ताक्षर किये वहां २ आर्य्यों को धोखा

ही हुआ। इस बात का व्यौरा इस प्रकार है:- ए. ओ. ह्यूम साहिब * जो कि "नैशनल कांग्रेस" के विधान कर्ता हैं, उन्होंने जब सुना कि राय मूलराज आर्य्य-समाज लाहौर के सभासद् बन गये हैं तो उन्होंने आर्यसमाज लाहौर के प्रधान को एक पत्र लिखा "कि मुझे यह सुनकर आश्चर्य्य हुआ है कि राय मूलराज एम. ए. मेरे मित्र स्वामी दयानन्द के आर्य्यसमाज के नास्तिक होने पर कैसे सभासद् बन गये ? इस की बावत लाहौर आर्यसमाज को उचित पड़ताल तथा प्रबन्ध करना चाहिये।" ला० साईदासजी प्रधान लाहौर समाज ने तीन चार महाशयों को तो वह पत्र दिखा दिया परन्तु उस पर कोई प्रबंध राय मूलराज को समाज से पृथक् करने अथवा उन से परित्यागपत्र (इस्तीफ़ा) लेने का न किया। पण्डित गुरुदत्तजी आदि महाशयों को इस पत्र की सूचना आदि ला० साईदासजी दे चुके थे।

ह्यूम साहब यदि एक पत्र सीधा स्वामी दयानन्द जी के नाम भी जहां कहीं वह भ्रमण कर रहे थे भेज देते तो स्वामी जी अवश्य राय मूलराज एम. ए. को यथायोग्य आन्दोलन करने के पश्चात् लाहौर समाज से पृथक् करवा देते वा उनसे परित्याग पत्र लेलेते, जैसा कि वह इन्द्रमणि आदि अनेक सभासदों को कई स्थलों पर समाज से पृथक् करवा चुके थे। पर ह्यूम महाशय को क्या पता था कि लाला साईदास जी यहां तक असत्य से काम लेंगे कि उस पत्र को छिपाए रक्खेंगे और लाहौर आर्य्यसमाज के सभासदों के अधिवेशन में प्रस्तुत न करेंगे। यदि लाहौर आर्य्यसमाज के सभासदों के अधिवेशन में ला० साईदासजी यह पत्र ह्यूम साहब का प्रस्तुत कर देते जैसा कि उनको अधिकारी होने के कारण अवश्य करना चाहिये था तो नास्तिक महाशय समाज में क्यों बने रहते ? ला० साईदास जी ने इस बात को छिपाने और भुलाने का यत्न किया और जबतक स्वामी जी जीवित रहे कभी यह बात अथवा ह्यूम साहब के पत्र का समाचार उनके कानों में पहुंचने न दिया। जब स्वामी जी का देहान्त हो चुका और महाशय गुरुदत्त एम. ए. ऋषि की मृत्यु के अद्भुत दृश्य के प्रभाव से सच्चे आस्तिक बन चुके तो उन्होंने सोचा कि आर्य्यसमाज में नास्तिक का सभासद् बने रहना धर्मविरुद्ध है इसलिये उन्होंने

* *A. O. Hume, Esqr.*

यह निश्चय कर लेने पर कि राय मूलराज अब भी नास्तिक हैं ला० साईंदास जी प्रधान समाज से कहा कि यह उचित नहीं कि आर्य्यसमाज के सिद्धान्त न मानने वाले पुरुष आर्य्यसमाज के सभासद् रहें आपने राय मूलराज को समाज का सभासद् जब कि वह अबतक नास्तिक हैं क्यों बना रक्खा है? ला० साईंदास जी ने उनको कहा कि अब तो राय मूलराज ईश्वर में विश्वास करने लग गया है। इस बात का चर्चा अधिक न करो। पं० गुरुदत्त जी ने कहा कि मुझे जब निश्चय करा दोगे कि वह आस्तिक तथा सामाजिक सिद्धान्तों के मानने वाले होगये हैं तो मैं फिर चर्चा न करूंगा। जब कभी अवकाश मिलता पं० गुरुदत्त ला० साईंदास से कहते रहते परन्तु ला० साईंदास टालमटोल में समय व्यतीत कर देते। एक दिन जब कि जालंधर के महाशय मुन्शीराम जी वकील लाहौर में आये हुए थे तो ला० साईंदासजी ने यह अनुमान करके कि महा० मुन्शीराम जी के कहने से कदाचित् पं० गुरुदत्त जी इस बात का पीछा छोड़देंगे महा० मुन्शीरामजी को बीच में बिठलाकर कहा कि आप पं० गुरुदत्त जी को समझाओ महा० मुन्शीरामजी को भी ह्यूम साहब के पत्र का ब्योरा भलीभान्ति विदित होगया। जब दोनों बैठे हुए थे तो ला० साईंदास जी ने कहा कि अब तो राय मूलराज ईश्वर मानने लग गये हैं और एक पत्र जेब से निकालकर दिखाया जिस पर यह शब्द अङ्गरेज़ी में केवल लिखे हुए थे- "*I believe in God*" (अर्थ) मैं ईश्वर को मानता हूं। और यह दिखा कर पण्डित गुरुदत्त जी को विश्वास दिलाना चाहा। पं० जी जानते थे कि थियासोफिस्ट लोग भी ब्रह्म को मानते हैं परन्तु यह कहते हैं कि ब्रह्म चेतन तथा आनन्दस्वरूप नहीं है अर्थात् *God Impersonal.* है और थियासोफिस्ट लोग इस कारण नास्तिक ही हैं इसलिये पण्डित जी को संदेह हुवा कहीं राय साहब ऐसे ही आस्तिक तो नहीं हैं इसलिये निश्चय करने के लिये पण्डित गुरुदत्त जी ने कहा कि *Let him define God.* अर्थात् राय मूलराज जी से ईश्वर के लक्षण कराओ। महाशय मुन्शीरामजी ने साधारण रीति से कहा जो कि राय मूलराज के स्वभाव से अज्ञ थे कि इतना लेख क्या काफ़ी नहीं? पण्डितजी! आप मानही लें कि राय साहब ईश्वर को मानते हैं। यह सुनकर पं० जी बोले कि ला० मुन्शीरामजी! मैं इससे क्योंकर मानलूं कि वह यथार्थ रीति से मानने लग गये हैं? क्योंकि मेरे स्पष्ट

कहने पर कि मैं नास्तिक हूं ला० साईंदास जी ने मेरा नाम आस्तिक प्रकट कर समाज में लिख लिया था, मैं कैसे मान लूं कि राय साहब वेदोक्त ईश्वर को मानते हैं। इस पर कुछ निर्णय न हुआ और बात ऐसे ही रह गई।

पं० गुरुदत्त और ला० साईंदास के देहान्त के पश्चात् सन् १८६२ ई० के नोवेंबर मास में राय मूलराज ने लाहौर समाज के उत्सव पर भरी सभा में अपना एक अन्तरीय भाव इस प्रकार प्रकट किया कि:—

"एक मैं हूं जो मांसभक्षण वेदानुकूल मानता हूं" इस पर लोगों ने "शेम शेम" कहा और राय साहब मौन साध बैठ गये। इसके पश्चात् राय मूलराज और उसकी मंडली को आर्य्यसमाज लाहौर ने समाज की सभासदी से पृथक् कर दिया। उस दिन से इन लोगों ने येनकेन प्रकार से कालिज को संभाला और मांस के प्रचार में प्रवृत्त हुये। अब इनका आर्य्यप्रतिनिधिसभा पंजाब से कोई सम्बंध नहीं और समग्र भारतवर्ष की ७०० (सात सौ) आर्य्य समाजों ने इनको अपने से पृथक् माना हुआ है। १८६२ में तो यह अपने आप को "कलचर्ड" कहते थे परन्तु जब से ला० लाजपतराय ने यह कहानी नंबर ४ लिखी है तब से अपने आपको "हिंदूआर्य्य" कहते हैं।

हम कालेज का वृत्तान्त लाला लाजपतराय के सहयोगी और उनकी मण्डली के प्रामाणिक पुरुष महता राधाकृष्ण के वचनों में ही सुनाना चाहते हैं। आर्य्यगजट लाहौर ६ नोवेंबर सन् १६०२ के परचे में महता राधाकृष्ण इस प्रकार लिखते हैं कि:—

दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालिज में संस्कृत की शिक्षा और उसका विद्यार्थियों पर प्रभाव।

"इस स्थल पर पहुंचकर दयानन्दकालिज के लिये एक कड़े इमतिहान का अवसर बन जाता है यूनिवर्सिटी की डिगरियां प्राप्त कराने के लिये दया० कालिज इस बात पर मजबूर होता है कि वह अपने विद्यार्थियों को उपनिषद् उस ढंग पर पढ़ावे जिस रीति पर कि स्वामी शंकराचार्य्य ने इनको समझा है और अपने विद्यार्थियों के मन में इस बात को बिठलावे कि उपनिषदों की शिक्षा नवीन वेदान्त की शिक्षा है। ऋग्वेदीय संकलित पुस्तक को सायणाचार्य के

भाष्य के अनुसार पढ़ावे और इस शिक्षा से अपने विद्यार्थियों को बतावे कि वेदों में सचमुच इन विषयों का वर्णन है कि जिन की शिक्षा उनको दीजाती है यद्यपि आर्य्यसमाज अपने सारे बल के साथ यह डंका बजा रहा है कि सायणाचार्य और महीधर का भाष्य ठीक नहीं है तो भी द० कालिज को मजबूरी से उन भाष्यों के सत्य और ठीक होने की शिक्षा देनी पड़ती है और यह शिक्षा इस प्रकार की है कि जिससे विद्यार्थी अपने जीवन के शेष भाग में आर्य ग्रन्थों को उसी रीति पर पढ़ने के योग्य बनते हैं और वैदिकधर्मानुयायी होने के स्थान में वह **दयानन्द कालिज में शिक्षा पाकर वेदों के विरुद्ध हो जाते हैं*** **अथवा यह कि वेदों को यूरोप के विद्वानों के समान एक दिल्लगी समझते हैं।**"†

यह लोग जन्मजात और छूतछात को हिंदुओं के समान काम में लाते हैं। एक मात्र मांस का रातदिन प्रचार करते हैं। मांस के प्रचार के लिये इन्होंने लेखद्वारा कई यत्न किये परन्तु अभीतक उसमें सफलता नहीं हुई। एक समय था कि मांसभोजनविचार नामी ४ पुस्तकें एक साधु के नाम से छपवाकर बांटते रहे जिनमें शराब की भी गणना थी जब पत्रों ‡ में आलोचना निकली तो डर गये और हिन्दुओं से पुस्तकें छिपाने लगे फिर गोरखपुर के एक अप्रसिद्ध पुरुष को आगे करके मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोकों से मांस खाने के विषय में कुछ लिखा परन्तु जब लोगों ने देखा कि मनुस्मृति का एक प्रक्षिप्त श्लोक यह भी है जिसको सत्यार्थप्रकाश में वामियों का बनाया हुआ बतलाया गया है अर्थात्:—

"न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।"

और यह लोग इस श्लोक को भी प्रक्षिप्त नहीं बतलाते तो इन पर हिन्दू ही दोष मढ़ने लगे फिर कहीं और ग्रन्थों से तीतर के मांस पर अड़े परन्तु उन्हीं ग्रन्थों में बैल के मांस खाने का विधान था हिन्दुओं से डर कर चुप

---

* नास्तिकों के शिर पर क्या सींग होते हैं? जो वेद विरुद्ध होते हैं वह ही नास्तिक हैं॥

† यह अक्षर मोटे हमने कर दिये हैं।

‡ *Note.–Purity Servant Lahore* आदि समाचार पत्रों से अभिप्राय है॥

होगये । प्रमाणों को तजकर एक डाक्टर की आड़ में युक्तियों से मांस सिद्ध करने लगे परन्तु जब इसका भी उत्तर हम से पाचुके तो अब मांस के विषय पर लिखना बंद करदिया । देखिये लाला लाजपतराय जी अपनी कहानी के पृष्ठ १२१ पर मांस के विषय क्या लिखते हैं:—

"मांस खाना वेदविरुद्ध है वा नहीं यह प्रश्न ऐसा है जिस पर इस पुस्तक में संवाद करने की जरूरत नहीं" सत्य है अभी अंगूर कच्चे हैं कौन दांत खट्टे करे।

दूसरी आशंका

ऋषि दयानन्द के प्रामाणिक जीवनचरित्र में हमने लिखा था कि "जब उन्होंने ऋषियों की शैली पर वेदों का भाष्य किया तो वह निःसंदेह पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यंत सर्व विद्याओं के मूलरूपी सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे यदि मिस्टर हरबर्ट स्पेंसर दार्शनिक है तो क्या वह वर्तमान पदार्थविद्या के सिद्धान्तों से अज्ञ है यदि मनुष्यश्रेणी के एक दार्शनिक विद्वान् के लिये सर्वविद्याओं के मूलरूपी सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है तो क्या पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी के लिये सर्व विद्याओं का निर्भ्रान्त जानना कठिन है" हमारे इस लेख को शास्त्र से अज्ञ होने के कारण न समझते हुए ला० लाजपतराय वह आशय निकालते हैं जो कि है नहीं अर्थात् लिखते हैं कि एक दल स्वामी दयानन्द को निर्भ्रान्त मानता है। दूसरा (कलचर्ड) मानता है कि कोई मनुष्य निर्भ्रान्त न हुआ न होगा और न होसक्ता है ॥

इसका खंडन

हमने यह कहां लिखा है कि कोई ऋषि स्वरूप से निर्भ्रान्त होता है अथवा स्वामीजी स्वरूप से निर्भ्रान्त थे वा यह कि वह जन्म से ही जीवन्मुक्त थे हमने तो यह दिखाया कि योगदृष्टि से वह सर्वविद्याओं को निर्भ्रान्त जानते थे, इसके अर्थ यह नहीं हैं कि योगी विना समाधि के भी यथार्थ दर्शन पासक्ता है । स्पेन्सर के दृष्टान्त से हम ने संभावना भी दर्शाई परन्तु उसको कौन समझे ? ऐसी गूढ़ बातें सहज से समझ में कहां आसक्ती हैं ? अच्छा यह क्या मानते हैं कि कोई मनुष्य समाधिदशा में भी निर्भ्रान्त हो नहीं सक्ता अर्थात् स्वभाव से आत्मा मलिन है जैसा कि ईसाई मत मानता है अस्तु, फिर क्या मुक्ति कभी जीव की होगी

वा नहीं ? इनके मत में तो न कभी किसी की हुई, न होगी और न होनी चाहिये। अथर्ववेद भी इनके मत में जो संशयों की निवृत्ति के लिये है निष्फल ही होजायगा। क्योंकि इनके लेखानुसार कभी जीव भ्रान्ति रहित हो ही नहीं सक्ता इस विषय को हम 'ऋषिमीमांसा' शीर्षक में पूर्व पृथक् लिख आये हैं वहां देखलो यहां पर कुछ थोड़ासा और लिखते हैं बुद्धिमान् उस पर विचार कर हम से सहमत हो सक्ते हैं।

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्संप्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च।" निरुक्तं, नैगमकाण्डम्। अ० १ खंड २० पृष्ठ ९ तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० ३४५

इस पर ऋषि दयानन्द जी यह लिखते हैं:—

"यैः सर्वा विद्या यथावद्विदितास्तऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतवेदेभ्यो मनुष्येभ्य उपदेशेन वेदमन्त्रान्संप्रादुः मन्त्रार्थांश्च प्रकाशितवन्तः।" (ऋग्वे० भूमिका पृष्ठ ३४६)

"विद्यां चाविद्यां"—(यजु० अ० ४० मं० १४) इस मन्त्र का भाष्य करते हुए ऋषि दयानन्द इस प्रकार विद्या शब्द के अर्थ दर्शाते हैं " (विद्यया) आत्मशुद्धान्तःकरणसंयोगधर्मजनितेन यथार्थदर्शनेन"

(देखो वेदभाष्य)

"समानो मन्त्रः" (ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४९ मं० ३) की व्याख्या ऋ० भूमिका में इस प्रकार करते हुए ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यंत अर्थात् सब पदार्थों की ज्ञानोपलब्धि का उपदेश देते हैं।

"हे मानवा वो युष्माकं मंत्रोऽर्थान्मामीश्वरमारभ्य पृथिवीपर्यन्तानां गुप्तप्रसिद्धसामर्थ्यगुणानां पदार्थानां भाषणमुपदेशनं ज्ञानं वा भवति।"

इस पर विशेष लेख करने की हम इसलिये आवश्यकता नहीं समझते कि पूर्व इस पर लिख चुके हैं इस स्थल पर यह अधिक प्रमाण देने ही उचित समझे गये॥

अच्छा अब हम यह दर्शाना चाहते हैं कि ला० लाजपतराय जो कुछ स्वयं लिख चुके हैं उसको वह स्वयं समझते भी हैं वा नहीं, क्योंकि जो आशंका हम पर करते हैं उस के विरोध में इनकी कहानी में से हम इन का ही लेख दिखाते हैं।

इनकी पुस्तक खोलते ही पहले एक पृथक् पृष्ठ पर यह लिखा हुआ है जिसको इन्होंने अपनी पुस्तक का *Motto* (सिद्धान्त) बनाया है। इसके विरुद्ध मानो यह कभी हो नहीं सक्ते। वह यह है:—

"ऋग्वेद मं० १ सू०१२२ मं०१२" यह लिख कर फिर यह मंत्र लिखा है

एतं शर्द्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे। द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्"

फिर मोटे अक्षरों की उर्दू लिपि में इस के यह अर्थ दिये हैं:—

"जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जानने हारे, समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं।"

यह पुस्तक का *Motto* (सिद्धान्त) लाला साहिब ने स्वयं स्वीकार किया है और स्वामीजी पर घटाया है क्योंकि जिस पुस्तक का यह *Motto*–है वह जीवन चरित्र की है जब स्वयं लाला साहिब मानते हैं कि स्वामी दयानन्द जी पूर्ण विद्याओं को जानने हारे और समस्तविद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते थे तो फिर हमपर विदित नहीं होता कि क्यों वृथा आशंका करने को उद्यत हुए हमने भी तो यही बात लिखी थी। इन्होंने तो वह बात की जो पंजाब में कही जाती है कि एक धनी ने एक नौकर को चोरों से गृह बचाने के लिये रक्खा और उस को कह दिया कि चोर को पकड़ना तेरा काम है उस ने कहा अच्छा, यह कहकर नौकर कई दिन मकान की रखवाली करता रहा चोर कोई न आया एक दिन एक भले पुरुष को पकड़ कर धनी के पास ले गया और कहा कि लो मैंने अपना काम पूरा कर दिया धनी ने कहा कि यह तो चोर नहीं है नौकर ने कहा कि कोई चोर कभी न आवेगा, तो क्या मैं अपना काम छोड़ दूंगा। सचमुच ला० लाजपतराय ने अपना काम हम पर तथा धर्मवीर पं० लेखरामजी पर वृथा आक्षेप करना ही समझ रक्खा है। चाहो आशंका बने न बने इन्हों ने कर ही डालनी इन से कोई पूछे कि जब

आप की पुस्तक का *Motto* (सिद्धान्त) यह लेख है तो आपने फिर निर्भ्रान्त के चक्र में कोलाहल मचा कर हमारे लेख पर वृथा आक्षेप क्यों किये ? उस समय यही उत्तर दे सक्ते हैं कि आक्षेप करना ही हमारा काम है, लोग आक्षेप के योग्य लेख न करेंगे तो क्या हम भी आक्षेप करना छोड सक्ते हैं ।

और लीजिये अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८३ पर लालाजी लिखते हैं किः—

" दुर्दशा देख के भारतभूमि की दयामय को दया आई । एक महर्षि को उत्पन्न करके दीनी उन्हें प्रभुताई। वैदिक पूर्ण पंडिताई॥"

हिंदू लोग तो इनके इस लेख से अनुमान कर सक्ते हैं कि लाला लाज० राय स्वामीजी को अवतार मान रहे हैं परन्तु यह स्वयं लिखते हुए विचारते तक नहीं दूसरों के शास्त्रोक्त लेख पर आशंका करने को झट उद्यत होजाते हैं ।

फिर आप इसी पुस्तक के पृष्ठ १३६ पर लिखते हैं किः—

" आओ युवा पुरुषो ! तुम को बालजितेन्द्रिय, पूर्णब्रह्मचारी, महापरोपकारी, देशहितैषी, विद्वान्, योगी महर्षि दयानन्द के जीवन की कहानी सुनाएं"

क्या हमने इन शब्दों से कोई बढ़कर लिख दिया था जिस पर आप आशंका करने लगे थे सच तो यह है कि लाला साहिब संस्कृत के महर्षि आदि शब्दों के शास्त्रीय अर्थ जानते ही नहीं, बिन जाने उनका प्रयोग कर रहे हैं यदि जानते तो हम पर व्यर्थ कुतर्क न करते और देखिये स्वयं ही लिखते हैं किः—

" स्वामी दयानन्द परमयोगी थे "

(देखो इनकी कहानी पृष्ठ ४५२)

विदित होता है कि इनको परमयोगी के भी शास्त्रोक्त अर्थ नहीं आते ॥

" उसके चेहरे से (मुख पर से) इस प्रकार का तेज टपकता था जो क्षणभर में उस के विरोधियों को भयभीत कर देता था " (पृष्ठ ४५४)

" उन के चेहरे की ज्योति और उन के तेज ने उन की हिम्मतों को आन की आन में चकनाचूर कर दिया" (पृष्ठ ४५५)

"जहां जहां दयानन्द जाता है बहुत लोग उसके सामने उसके पगों की धूलि में सिजदा करते हैं (शिर झुकाते हैं) " (पृष्ठ ४५६)

फिर स्वयं ही लिखते हैं किः—" उस पुरुष की ज़िन्दगी में ज़रूर कुछ न कुछ जादू का असर है " (पृष्ठ ४६१)

"उसको वेद बरज़बान याद थे उसके तमाम दिलोदिमाग़ में वेद सरायत किये हुए थे उसने ऋग् यजु का बडा भारी भाष्य किया है यूं कहो कि एक गूना वेदों पर उसको तसल्लत हासिल था" (पृष्ठ ४७१)

हम इसी प्रकार के कई और वाक्य लाला साहिब की लेखनी से निकले हुए दिखा सक्ते हैं। इन लेखों से निष्पक्ष सज्जन अनुभव करसक्ते हैं कि इनके लेख में किस प्रकार का परस्पर विरोध है। एक स्थल पर तो ऋषि दयानन्द को कोसते हैं दूसरे स्थल पर महर्षि, परमयोगी सब कुछ दर्शा रहे हैं। यह महाशय अपनी कहानी के पृष्ठ ८६, ८७ पर कृष्ण, बुद्ध, कालिदास, नानक, अशोक, ईसा, महम्मद, मूसा, लूथर, कणाद, गौतम, व्यास, बोनापार्ट, जोज़फ मेज़नी, गेरीबालडी, सब को एक ही श्रेणी के महापुरुष बतलाते हैं।

आजतक तो सब विद्वान् पंडित कालिदास की तुलना पं० शेक्सपीयर से करते रहे परन्तु ला० साहब ने अब पंडित कालिदास और बोनापार्ट को एक ही श्रेणी का बतलादिया। वाह ! वाह ! तुलना कैसी उत्तम की है ? क्षत्रिय ब्राह्मण सब एक कर दिये। ब्राह्मो लोग तो ईसा, नानक, मूसा आदि भक्तों को एक श्रेणी का दर्शाते थे यह ऐसे उदारचित्त निकले कि ऋषि व्यास, गौतम और कणाद को अशोक, और बोनापार्ट से क्षत्रियों के समान कर दिया जिनको सामान्य विशेष का ज्ञान नहीं जो सर्वोत्तम ऋषिश्रेणी के पुरुषों को साधारण पण्डितों वा उत्तम क्षत्रियों के समान बतलावें उनके विवेक पर बुद्धिमान् हंसेंगे। विदित होता है कि इन महाशय को वर्ण का भेद पहचानने की विधि नहीं आती यदि आती तो ऐसा भ्रममूलक लेख क्यों करते; आगे तो हम सुनते थे कि ब्राह्मो लोग ही महम्मद आदि को ऋषियों के समान मानते हैं अब पता लगा कि यह महाशय भी उनसे न्यून नहीं हैं इनकी कहानी की कहां तक आलोचना करें परस्पर विरोध, मिथ्या और अयुक्त बातें इसमें अनेक स्थलों पर भर रही हैं॥

आर्य्यसमाजों का नायक कौन है ?

आर्य्यसमाजों का नायक (लीडर) कौन है ? यह प्रश्न बहुधा सुनने में आता है। अपनी अन्तिम पुस्तक में महाशय मैक्सम्युलर ने यह दर्शाया है कि ऋषि दयानन्द के पश्चात् अब आर्य्यसमाजों का कोई नायक नहीं रहा इसलिये वह आर्य्यसमाजों

को ब्राह्मसमाजों से मिलने का उपदेश करते हैं और यह इसलिये कि उनको मन में निश्चय है कि ब्राह्मसमाजी अन्त को ईसाई मत में मिल जावेंगे वा उसके लिये भारत में सड़क बांध देंगे। यदि उनको पता होता कि आर्य्यप्रतिनिधि सभाएं भी हैं तो वह आर्य्यसमाजोंको बिना नायक के कभी न मानते अस्तु, भारतवर्ष में जो ७०० आर्य्यसमाजें हैं वह अपने २ प्रान्त की आर्य्यप्रतिनिधि सभाको अपना २ नायक मानती हैं। पंजाब, सिंध, बिलोचस्थान, की आर्य्यसमाजों का नायक आर्य्यप्रतिनिधिसभा पंजाब है। इसी प्रकार पश्चिमोत्तर तथा अवध देश की समस्त आर्य्यसमाजों का नायक आर्य्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर देश व अवध है। राजस्थान प्रान्त की सर्व आर्य्यसमाजों का नायक आर्यप्रतिनिधिसभाराजस्थान है। और इसी प्रकार बंगाल विहार की समाजों का नायक वहां की प्रतिनिधिसभा है। सर्व आर्य्य संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, ब्रह्मचारी और अनेक धार्मिक विद्वान् अपने २ प्रान्त के आर्य्यसमाजों की लीडर (नायक) अपनी प्रतिनिधिसभा को समझते हुए उसकी सामाजिक व्यवस्थानुसार सामाजिक कार्य्यवाही करते हैं ॥

सूचना इस उपोद्घात में जो कुछ हमने लिखा है उसके उत्तरदाता हम हैं, कोई आर्य्यसमाज वा प्रतिनिधिसभा नहीं।

अमृतसर
ता० २ जनवरी
१९०३ ई०

वैदिकधर्मियों का
एक तुच्छ सेवक-
आत्माराम, अमृतसरी

॥ ओं शम् ॥

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र ।

स्वामीजी का जन्मस्थान

स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी काठियावाड़ देश के रहने वाले थे, उन्होंने संन्यासधर्म्म के नियमानुसार अपने जन्म स्थान और पिता आदि का नाम कभी नहीं बतलाया क्योंकि वे कहते थे कि गुजरात देश में मोह अधिक है यदि मेरा पता मेरे सम्बन्धियों को मिल जायगा तो वे मुझ को फिर गृहस्थ में घसीटने का यत्न करेंगे, जिससे मेरे योगसाधन आदि में बाधा पड़ेगी और जो देशोपकार व धर्म्मोद्धार का काम मैंने उठाया है वह योंही रह जायगा ।

नाम व जन्म दिन व कुल

पंडित लेखरामजी ने बहुत सी छान बीन के पश्चात् लिखा है कि वे शहर मोरवी के (जो मछु काँठा नदी के किनारे पर बसा हुआ है और जो एक रियासत की राजधानी है) रहने वाले थे और इन का जन्म नाम "मूलशंकर" था । इन्होंने संवत् १८८१ अर्थात् सन् १८२४ ई० में जन्म लिया था । इनके पिता का नाम "अंबाशंकर" था । स्वामी जी औदीच्य ब्राह्मण थे, परन्तु इनके कुल में भिक्षावृत्ति नहीं थी । इनके यहां ज़मींदारी के अतिरिक्त साहूकारी व लेन देन का काम भी होता था, जिससे उनका निर्वाह भले प्रकार से होता था । इनके यहां ज़मींदारी का पद जोकि आज कल के तहसीलदारी के बराबर था पीढ़ियों से चला आता था और इसी कारण मालगुज़ारी उघाने का काम भी इनके यहां था, जिसके लिये राज से सिपाही मिले हुए थे ।

विद्यारम्भ और यज्ञोपवीत

स्वामीजी को पांच वर्ष की अवस्था में देवनागरी अक्षरों का सिखाना प्रारम्भ किया गया और इनके माता पिता और कुटुम्ब के बड़े बूढ़ों ने इनको अपनी कुल की रीति के अनुसार शिक्षा देना प्रारम्भ किया

और इनको बहुत से स्तोत्र मंत्र और श्लोक आदि कंठ करा दिये थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया और इनको गायत्री संध्या, उपासना करने की विधि भी सिखलाई गई। इनको इनके पिता पढ़ाया करते थे जो असल में सामवेदी ब्राह्मण थे परन्तु शैवमत को मानते थे। इनके पिता ने यजुर्वेद संहिता प्रारम्भ कराके रुद्री कंठ करादी और बाल्यावस्था से ही शैवमत के संस्कार डालने प्रारम्भ किये। इनके पिता इनको इस मत सम्बन्धी प्रदोष आदि समस्त व्रतों के रखने की आज्ञा दिया करते और कहा करते थे कि मृत्तिका का लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा किया कर।

शिवरात्रि का व्रत साधारण प्रकार से इनके पिता चाहते थे कि यह नियमानुसार शिवरात्रि का व्रत रक्खे, कथा सुने और जागरण करे, परन्तु इनकी माता कहा करती थी कि यह बालक है इससे व्रतादि नहीं रक्खे जासक्ते। इनके पिता इनको संस्कृत व्याकरण और वेद का पाठ मात्र पढ़ाया करते थे और मन्दिरों और सत्संगों में अपने मित्रों के यहां इनको अपने साथ लेजाया करते थे और शिवपुराण की कथा अपने पास बिठला कर सुनाया करते थे और सदैव समझाया करते थे कि शिव की उपासना सब से श्रेष्ठ है। संवत् १८९४में जब कि इनकी अवस्था १४ वर्ष की थी तब इन्होंने सारी यजुर्वेदसंहिता कंठस्थ करली थी और दूसरे वेदों का पाठ भी सीख लिया था। शब्दरूपावलीआदि व्याकरण की छोटी२ पुस्तकें भी पढ़ली थीं। इसी वर्ष स्वामी जी के पिता ने इन्हें शिवरात्रि का व्रत करने के लिये आज्ञा दी परन्तु वे इसके लिये राज़ी नहीं हुए। तब इनको इस व्रत के माहात्म्य की कथा सुनाई गई जो इन्हें अच्छी मालूम हुई और यह व्रत रखने को राज़ी होगये। इनका स्वभाव प्रातःकाल ही कुछ कलेवा करने का था इस कारण इनकी माताने कहा कि इससे व्रत नहीं हो सकेगा यदि रक्खेगा तो बीमार होजायगा परन्तु इनके पिताने एक भी न सुनी और कहा कि कुल की रीतिके अनुसार पूजा अवश्य करनी चाहिये और स्वामीजीको व्रत रखने की कठोर आज्ञा दी। अन्य देशों की प्रणाली से भिन्न काठियावाड़ में यह व्रत फाल्गुन के बदले माघ बदी १४ को होता है। इस दिन संध्या को इन्हें समझाया गया कि तुम्हें रात भर जागना पड़ेगा नहीं तो व्रत का माहात्म्य जाता रहेगा। इसी रात को इन्हें पूजा पाठ की विधि भी सिखलाई गई थी। इनके नगर के बाहर एक बड़ा शिवालय है, जहां नगर के बड़े २ प्रतिष्ठित व सर्वसाधारण लोग इस व्रत को रख कर जाया करते और पूजा पाठ किया करते हैं। इस मंदिर में स्वामी जी उनके पिता और बहुत से लोग शिवरात्रि को इकट्ठे हुए। रात्रि को पहिले पहर की

पूजा समाप्त हुई और दूसरे पहर की पूजा भी लोगों ने ज्यों त्यों करके पूरी की परन्तु आधीरात होने पर लोग ऊंघने लगे और एक२ करके सब सोगये। स्वामी जी के पिता को सब से पहिले नींद आई जिनको सोता देखकर मंदिर के पुजारी भी बाहर जाकर सोगये परन्तु स्वामीजी यह सोचकर कि सोने से कहीं व्रत का फल नष्ट न होजाय अपनी आंखों पर पानी छिड़क छिड़क कर जागते रहे।

शिवलिंग पर चूहा जब बहुत रात्रि बीत गई और मंदिर में सुनसान होगई तब एक चूहा बिल से निकल पिंडी के चारों तरफ फिरने लगा और जो सामग्री उस पर चढ़ी हुई थी उसको मूर्ति पर चढ़कर खाने लगा स्वामी जी इस समय जाग रहे थे और चुपके बैठे हुए सारा तमाशा देख रहे थे। इस घटना से अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उनके चित्त में उठने लगे। बालक दयानन्द के दिल में प्रश्न पैदा हुआ कि क्या यह वही महादेव है कि जिसका वर्णन कथा में आया था? वह जो आदमी की तरह एक देवता है, जो चलता, फिरता, खाता, पीता, त्रिशूल धारण करता, डमरु बजाता और बैल की सवारी करता है और किसी को वर और किसी को शाप देता है, वह कैलाश पर्वत का स्वामी बतलाया जाता है और यह मूर्ति तो एक तुच्छ मूसे को भी हटाने की शक्ति नहीं रखती यह क्या बात है? यह घटना एक साधारण मनुष्य के लिये तो कुछ भी नहीं थी परन्तु स्वामी दयानन्द जैसे महात्मा पर बिना असर डाले कब रह सक्ती थी? सच पूछो तो इसी रात को उस धार्मिक परिवर्त्तन की नींव रक्खी गई कि जिसने इस देशही नहीं वरन सुशिक्षित जगत्‌में एक हलचल मचादी। यह किसको मालूम था कि संवत् १८९४ के माघसुदी १४ की रात को एक छोटा सा बालक शिवालय में जायगा और उसको परमात्मा ज्ञान रूपी आवाज़ से एक चूहे और मूर्ति के द्वारा यह पुकार कर कहेंगे कि हे दयानन्द! मूर्ख लोग मुझको भूलकर एक पत्थर के लिङ्ग का पूजन करते हैं तू उठ, विद्याध्ययन कर, वेदोंको जो कि मेरे ज्ञान का भंडार है पढ़कर लोगों को सत्य उपदेश कर कि सच्चाशिव कल्याणकारी एक परमात्मा है जिसकी कोई मूर्ति नहीं है। अए लोगो! तुम इस अंधेर से निकलो, ज्ञान और योग द्वारा अपने कल्याण के साधन करो। इस घटना पर आनरेबल सरसय्यद अहमद खां साहब सी. एस. आई. लिखते हैं कि यदि यह इलहाम नहीं था तो क्या था कि जिसने स्वामी दयानन्द के दिल को मूर्ति पूजा से फेर दिया, परन्तु यह सय्यद साहब की भूल है, इलहाम कोई नहीं था यह तो महान् पुरुषों के आत्माओं की निर्मलता और शुद्धता का दृष्टान्त था।

अंत को स्वामी दयानन्द अपने विचारों को बहुत समय तक न रोक सके और शीघ्रही अपने पिताको जगाकर निर्भय होकर पूछा कि आप सत्य उपदेश करके मेरी शंका निवारण कीजिये कि क्या यह महादेव वही है जो इस मंदिरमें है, जिसका वर्णन मैंने कथा में सुना था ? इस प्रश्न ने स्वामी दयानन्दके पिता को चकित और क्रोधित कर दिया और उन्होंने लाल २ नेत्र करके पूछा कि तू यह प्रश्न क्यों करता है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस पाषाण के महादेव पर तो मूषिक दौड़ते और खराब करते हैं। जिस महादेव का वर्णन कथा में सुना था वह तो चेतन है, वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देता यह तो सिर तक नहीं हिलाता और न अपने आपको बचाता है। इसके उत्तर में स्वामीजी के पिता ने उन्हें यह कहकर समझाने का यत्न किया कि कैलाश पर्वत पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति का आवाहन करके यहां पूजते हैं क्योंकि इस कलिकाल में उनके दर्शन नहीं होते और इसी करके पाषाण आदि की मूर्ति बना उसमें महादेव की भावना कर उसका पूजन करते हैं। तुझे शंका करने की बहुत खराब बान पड़गई है परन्तु ऐसी बातों से स्वामी दयानन्द की कब शान्ति होसक्ती थी। उनके चित्त पर उसी समय से यह बात जम गई कि मूर्ति पूजा ठीक नहीं है और उन्होंने अपने मन में यह ठान लिया कि जब तक मैं महादेव को प्रत्यक्ष न देखलूं तबतक उसकी पूजा नहीं करूंगा। इससे थोड़ी देर के पश्चात् स्वामी जी ने क्षुधा और थकावट के कारण अपने पिता से घर जाने की आज्ञा मांगी उन्हों ने आज्ञा देदी और कहा कि सिपाही को साथ लेजा परंतु भोजन कदापि न करना। स्वामी जी ने घर पहुंचकर अपनी माता से कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है, उसने कुछ मिठाई खाने को दी और कहा कि मैं तो पहिले ही कहती थी कि तुझ से व्रत नहीं हो सकेगा तूने नाहक व्रत रक्खा। खैर मिठाई खाले और अपने पिता के पास पीछे मत जाना। स्वामी जी मिठाई खाकर एक बजेके पश्चात् सोगये और दूसरे दिन ८ बजे उठे। जब इन के पिता प्रातःकाल घरपर आये और इनके रात को मिठाई खालेने के समाचार सुने तो बहुत क्रुद्ध हुए परन्तु इन्होंने स्पष्ट यह उत्तर दिया कि जिस महादेव का वर्णन मैंने कथा में सुना था वह महादेव मंदिर में नहीं था इस कारण मैं उसकी पूजा नहीं करूंगा और अपने चचा से भी कहा कि पढ़ने लिखने के कारण मुझ से व्रत पूजनादि नहीं हो सक्ते जिस पर इनके चचा और माता ने इनके पिता को इस बात पर विशेष आग्रह करने से रोक दिया और वे भी शान्त होगये कि अच्छा पढ़ने दो। इस प्रकार इस व्यर्थ कार्य्यसे बचकर स्वामी जी बड़ा चित्त लगाकर पढ़ने लगे और एक पण्डितसे निघण्टु, निरुक्त, पूर्वमीमांसा और कर्म्मकाण्ड सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ीं॥

छोटी बहन की मृत्यु

इस घटना के दो वर्ष पश्चात् एक और ऐसी घटना हुई जिसने महान् आत्मा को पूरा२ अपनी ओर खेंचलिया और उसकी काया पलटदी। यह उन की छोटी बहिन की मृत्यु थी, स्वामी जी से छोटे दो भाई और दो बहिनें थीं। संवत् १८९६ में जब कि इन की आयु १६ वर्ष की थी, यह एकदिन अपने कुटुम्ब वालों के साथ एक मित्र के यहां नाच देखने गये थे। अचानक नौकर ने आकर कहा कि उनकी छोटी बहिन को जिसकी कि आयु १४ वर्ष की थी हैज़ा हो गया, घरके सारे आदमी दौड़े गये, बहुत कुछ वैद्योंके द्वारा चिकित्सा कराई परन्तु किसी से आराम नहीं हुआ और ४ घंटे पश्चात् वह मर गई, घर में रोना पीटना मचगया और सब शोकसागर में डूब गये।

दुःखसागर से पार उतरने का विचार

स्वामी जी के जीवन में यह पहला ही अवसर था कि उन्होंने मृत्यु को अपनी आंखों से देखा। एक ओर तो सारे कुटम्बियोंके रोनेका दृश्य था और दूसरी ओर मृत्यु का भयानक दृश्य इनकी बुद्धि को घेरे हुए था। संसार कुछ नहीं है, जन्ममरण क्या है और उन से रहित मनुष्य किस प्रकार से हो सकता है? यह प्रश्न उनके मनमें उत्पन्न होने लगे। यह सोचते थे कि मरना सबको है, इस अटल नियम को कोई नहीं टाल सक्ता, इस लिये कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे इस दुःखसे छुटकारा हो जाय। जिस आत्मा ने शिवलिंग पर चूहे दौड़ते देख मूर्त्तिपूजा के मिथ्यापन को जान लिया था उसपर मृत्यु का दृश्य विना असर डाले कब रह सक्ता था। मौत क्या है और संसार में मनुष्य जीवन नलनीदल पर विन्दुवत् है, इस बात ने इनके हृदय पर पूरा २ प्रभाव डाला और इस खेलकूद और खाने पीने की उमर में बालक को वैराग्य की चाट ने बेसुध कर दिया। इसी कारण जहां एक ओर सारे कुटुम्बी हाहाकार करते थे वहां दूसरी ओर बालक दयानन्द मृतकशरीर के निकट एक दीवार के सहारे खड़ा २ इस चलायमान जगत् को जानता हुआ यह सोच रहा था कि किस प्रकार इस दुःख से मनुष्य मुक्त हो सक्ता है? इस सोच विचार में रोना पीटना सब भूल कर मूर्तिवत् खड़ा रहा, इनके पिता माता ने ताने से यह कहा कि यह लड़का बड़ा पाषाण-हृदय है। अन्य लोगों ने भी इनको रोने पीटने में शामिल न होने के कारण बहुत कुछ बुरा भला कहा, परन्तु लाख ताने मारो, इनकी आत्मा इन बन्धनों से रहित होने की युक्ति में लगी हुई थी। माता पिता ने इन को टालने के लिये कहा कि जाओ सो रहो परंतु वहां नींद किसे आती थी, मृत्यु ने घोरनिद्रा लेने वाले बालक को

अशान्त कर दिया था। सोच यह था कि एकदिन मुझे भी इसके मुंह में जाना है। उस समय के दुःख से बचने का क्या उपाय है ? इस साधन के खोज में अपने आपे से बाहिर हो गया और रात दिन इसी चिन्ता में कटने लगे परन्तु इन्होंने इस बात को किसी पर प्रकट नहीं किया और नियमानुसार पढ़ने में लगे रहे।

चचा का देहान्त

स्वामी दयानन्द के चचा एक बड़े धार्मिक विद्वान् मनुष्य थे, वे स्वामी जी से बहुत प्यार रखते थे, जब स्वामी जी की अवस्था १९ वर्ष की हुई तो उनके चचा का भी देहान्त हैज़े की बीमारी से होगया, जब वे मृत्यु-रूपी ग्राह के मुख में जाने वाले ही थे कि उन्होंने स्वामी जी को अपने बिस्तर के पास बुलाया, लोग उन की नाड़ी देख रहे थे और वे स्वामी जी की ओर देखकर आंसुओं की धारा बहा रहे थे। इस दृश्य को बालक दयानन्द देख नहीं सके और वे भी फूट २ कर रोने लगे, यहां तक कि उनकी आंखें सूज गईं। छोटी प्यारी बहिन की मृत्यु ने जिस आत्मा को शोकसागर से निकाल ज्ञानरूपी नौका पर बिठलाया था उसी को प्यारे हितैषी चचा की मौत ने पिघला दिया और बे काबू कर दिया। जो विचार कि बहिन की मृत्यु से प्रारम्भ हुए थे वे चचा की मृत्यु के दृश्य से और भी दृढ हो गये।

अमरफल की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प

बुद्धिमान् बालक ने अपने चचा के मृतकशरीर के सामने ही अपने जीवन का निश्चय कर लिया और यह प्रण कर लिया कि सारी आयु अमर करने वाली औषधि के खोज में लगाऊंगा। सारांश चचाकी मृत्यु से वैराग्य का वेग ऐसा बढ़ा कि उसका छिपा रहना कठिन हो गया। यद्यपि उन्होंने अपने विचारों को अपनी प्यारी मा पर प्रकट नहीं किये परन्तु अपने मित्रों और विद्वान् पण्डितों से यह पूछना आरम्भ कर दिया कि अमर होने का क्या साधन है? उत्तर मिला कि योगाभ्यास।

घर त्यागने का विचार

अन्त को शनैः२ यह विचार पुष्ट होता गया कि घर से निकलजाना चाहिये क्योंकि इस असार संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसके कारण जीने की इच्छा की जावे, इस विचार को उन्होंने अपने मित्रों पर प्रकट किया शनैः २ इनकी माताको भी यह सब बातें प्रकट हो गईं जिस से इन के माता पिताको बड़ा सोच पड़ गया और वे वह साधन ढूंढ़ने लगे कि जिससे उन का यह संकल्प पूरा न होने पावे।

विवाह का विचार

अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि जहां तक हो सके शीघ्र ही इनका विवाह करके इनको गृहस्थ के बंधनों में जकड़ दिया जावे। जब मूलशंकर को अपने पिता के ऐसे विचारों के समाचार मिले कि २०वर्ष की अवस्था होतेही इनका विवाह करादिया जावेगा तब इन्हों ने अपने पिता को ऐसे विचारों से रोकने के लिये अपने मित्रों द्वारा बहुत यत्न किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन के पिताने इस वर्ष उन के विवाह को रोक दिया। स्वामी दयानन्द को यह कठिनाई ब्रह्मचर्य्य आश्रम के प्राचीन नियम के प्रचलित न रहने से हुई। लोग शास्त्रानुकूल गुरुकुल की मर्य्यादा को छोड़ नाममात्र के लिये विद्याध्ययन के समय को ब्रह्मचर्य्य आश्रम कहते हैं। हम कह सक्ते हैं कि स्वामी दयानन्द५वर्ष की आयु से ही ब्रह्मचर्य्याश्रम में प्रविष्ट हो गये। जब उन्होंने देखा कि माता पिता ब्रह्मचर्य्य भंग करने के विचार में हैं तो विवाह करने से नाहीं करदी और यह दृढ संकल्प कर लिया कि घर से बाहर निकलकर विद्याध्ययन करूंगा।

काशी जाने का विचार

संवत् १९०० में जब कि स्वामी जी २० वर्ष के हो गये तब उन्होंने अपने पिता से निवेदन करना प्रारम्भ किया कि उन्हें काशी में विद्योपार्जन के लिये भेजदें कि वहां वे जाकर व्याकरण, ज्योतिष और वैदिक ग्रन्थ पढ़ आवें। इस बात का विरोध उन की माता और कुटुम्ब के सब आदमियों ने किया और कहा कि घर ही में जहांतक पढ़ सको पढ़ो, तुह्मारे विवाह का थोड़ा समय शेष है, लड़की वाले अधिक समय तक नहीं ठहर सकते और हमें विशेष विद्या पढ़ाने की आवश्यकता भी नहीं। उनकी माता ने कहा कि मैं भली प्रकार जानती हूं कि जो मनुष्य विशेष पढ़ जाता है वह विवाह करना नहीं चाहता और तुम्हारे काशी चले जाने से तुम्हारे विवाह में भी बाधा पड़ जावेगी। जब स्वामी जी ने काशी जाने के लिये अपने पितासे बहुत हठ किया तो उनकी माता जो सदैव उन के अनुकूल रहा करती थी वहभी विरुद्ध हो गई और कहा कि हम तुम्हें कहीं नहीं भेजेंगे, तुम्हारा विवाह शीघ्र ही कर देवेंगे। स्वामीजी को उनके इस प्रकार के विचारों से हटाने के लिये उनके पिता ने उनको ज़मींदारी के कार्य्य में लगाने की इच्छा प्रकट की परन्तु उन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया और थोड़ा समय व्यतीत होने के पश्चात् अपने पिता से निवेदन किया कि यदि आप मुझे काशी नहीं भेजते तो गांव से ३ कोस की दूरी पर एक दूसरे ग्राम में जहां अपनी ज़मींदारी है, भेज दें क्योंकि उस ग्राम में एक वृद्ध विद्वान् पण्डित अपनी जाति का रहता है, मैं उसी से पढ़ा

करूंगा। इस बात को उनके पिता ने मान लिया और स्वामीजी उस ग्राम में जाकर कुछ समय तक उस भद्र पुरुष से पढ़ते रहे। एक दिवस अचानक स्वामीजी ने बात चीत करते हुए अपने गुरु से स्पष्ट कह दिया कि मुझे विवाह करने से ग्लानि है।

विवाह की तय्यारियां

पंडित ने यह समाचार उनके पिता को कहलवा दिये, जिन्होंने उनको ग्राम में पीछे मंगवाकर विवाह का प्रबन्ध प्रारम्भ कर दिया उस समय इनकी अवस्था २१ वर्ष की होगई थी इन्होंने विचार किया कि विवाह से बचने का सिवाय इसके और कोई उपाय नहीं कि यहां से चले जावें जिस किसी मनुष्य से वे इस विषय की बात चीत करते सब ही विवाह कर लेने के लिये सम्मति देते। इन शुभचिन्तक निर्बलात्माओं को क्या मालूम था कि स्वामी दयानन्द का महान् आत्मा गृहस्थ की तमाम आवश्यकताओं को पार करने की शक्ति रखता है और उस देशोपकारी यज्ञ को संपूर्ण करने के लिये जो उन्हीं से होना है, यह आवश्यक है कि वह विवाह न करे। माता पिता की चेष्टाओं से उन्हें दृढ विश्वास होगया कि वे विना विवाह किये नहीं मानेंगे और न विशेष विद्योपार्जन करने देंगे। अन्त में सब ओर से निराश हो घर को छोड़ देने की ठान ली, परंतु उस समय तक अपने इस विचार को किसी पर प्रकट नहीं किया, जब देखा कि एक मास में ही विवाह की सब तय्यारियें होगईं तो इन्होंने सोचा कि अब देर करने का समय नहीं है। आत्मा ने पुकार कर कहा कि चल, नहीं तो सारे विचार निष्फल होजांयगे और जिस महान् कार्य्य का तूने संकल्प किया है वह पूरा न होसकेगा। अन्त को ज्येष्ठ मास की एक संध्या को ब्रह्मचारी मूलशंकर ने अंतिमवार प्यारे घर की ओर देखा, जहां उस का जन्म हुआ था और जहां उसने २१ वर्ष काटे थे। प्यारे पाठको! यह दृश्य भी कैसा विचित्र होगा कि एक २१ वर्ष का युवक एक धनाढ्य घरकी सम्पत्ति पाने वाला इन सब सांसारिक धन दौलत प्रीति और प्रेम को लात मार कर आयु भर के लिये वैराग्य के कठिन मार्ग में पांव रखता है। प्यारे माता पिता की रक्षा से निकल कर अपने आपको जगत्पिता व जगन्माता की गोद में डालता है और जगत् के तमाम सम्बन्धियों से मुंह मोड़ जगद्बन्धु परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ता है और उसी पर भरोसा उसी पर विश्वास करके और उसी का सहारा लेकर उसी की विद्या ग्रहण करने के लिये ऋषिसन्तान ऋषिपदवी की प्राप्ति के लिये घर से निकलता है और सांसारिक घर को छोड़कर कभी न नष्ट होने वाले कभी न गिरने वाले आत्मिक घर की खोज में आगे बढ़ता है।

घर से निकलते ही पहिली रात तो स्वामीजी ने अपने गांव से ४ कोस की दूरी पर एक दूसरे गांव के निकट व्यतीत की, वहां से एक पहर रात्रि बाकी रहने पर चलकर दूसरे दिन शाम तक १५ कोस की मंज़िल करके एक गांव में हनुमान् के मंदिर में जा विश्राम किया। यह सारी मंज़िल उन्होंने प्रसिद्ध मार्ग से नहीं की, बरन पगडंडियों और टेढ़े रास्ते से, ताकि इधर उधर से आने जाने वाले पथिक उन को पहिचान न लें। यह सावधानी उनके बड़े काम आई क्योंकि इस जगह पहुंचनेपर एक सरकारी कर्म्मचारी के द्वारा उनको मालूम हुआ कि यहां मूलशंकर नामी एक लड़के को कुछ सवार और प्यादे ढूंढने आये थे। यह घर से भगने का तीसरा दिन था।

साधु ठगों की संगत यहां से चलकर स्वामीजी को साधु ठगों की एक संगत से पाला पड़ा, जिन्होंने उनसे कुछ रुपये और अंगूठी आदि भूषण यह कह कर ठगलिये कि जबतक तुम यह न त्याग दोगे तुम्हें पूरा वैराग्य न होगा। इन ठगों को क्या मालूम था कि यही युवक इसी ठगी की जड़ें काटने जारहा है।

शुद्धचेतन नामी नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनना मोरवी रेलवे पर मूली नाम एक स्टेशन है, इस स्थान से ४ कोस की दूरी पर एक सामले नामी ग्राम है इन दिनों यहां पर लाला भगत के स्थान पर बहुत से साधु जमा थे, स्वामीजी भी वहां जा पहुंचे जहां एक ब्रह्मचारी ने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी होजाने को कहा और दीक्षा दे काषायवस्त्र धारण करा इनका नाम "शुद्धचेतन ब्रह्मचारी" रखदिया और एक तूंबा हाथ में देदिया। इन साधुओं के संग में रहकर नये ब्रह्मचारी योग साधन करने लगे।

भूत का भय यद्यपि मूर्त्तिपूजा से इनका चित्त हट गया था परंतु अन्य झूंठे विश्वास अभी दूर नहीं हुये थे। एक रात्रि को जब वे एक वृक्ष के नीचे योगाभ्यास कर रहे थे तो ऊपर से घूघू आदि पक्षियों के अनोखे शब्द सुनकर उन्हें भूत का भय लगा और वे वहां से झट उठकर अपनी संगत में आ मिले।

वैरागियों का फंदा यहां से वे कोठगांगड़ नामी ग्राम में पहुंचे, यह स्थान अहमदाबाद के निकट गुजरात की एक छोटी सी रियासत में है। उस समय इस स्थान पर बहुत से वैरागी इकट्ठे हो रहे थे और उनके फंदे में एक रानी भी फंसी हुई थी जो कि उनके साथ थी। स्वामीजी को गेरुवे वस्त्रों में देख वैरागियों ने हंसी की और उनको अपने फंदे में फंसाने का यत्न करने लगे। उनके कहने से हमारे शुद्धचेतन ब्रह्मचारी ने रेशमी किनारे की धोतियां जो उस समय तक उनके पास उपस्थित थीं फैंक दीं और सादी धोतियें धारण करलीं। इस स्थान पर इन्होंने ३ मास तक डेरा रक्खा।

सिद्धपुर को जाना

इन्हीं दिनों में उनको मालूम हुआ कि सिद्धपुर में कार्तिक का मेला है (यह स्थान राजपूताना मालवा रेलवे का स्टेशन है और सरस्वती नदी पर बसा है) यहां कार्तिक मास में प्रतिवर्ष मेला होता है और औदीच्य ब्राह्मणों का मुण्डन संस्कार यहीं होता है । स्वामीजी इस नगर को इसलिये रवाने हुए कि वहां कोई मेले में ऐसा योगी मिल जावे जो अमर होने का मार्ग बतावे ।

जान पहचान वाले एक वैरागी से भेट

थोड़ी दूर गये थे कि उन्हें एक वैरागी मिला जो उनके कुटुम्ब के लोगों से भले प्रकार परिचित था । जब उस वैरागी से बात चीत हुई तो दोनों की आंखों में आंसू भर आये और दोनों अपनी पूर्वावस्था को याद करके रोने लगे । स्वामीजी ने वैरागी से अपने भाग आने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया । पहिले तो वह कुछ हंसा और फिर घर से निकल आने के लिये बुरा भला कहा, परन्तु अब क्या होसक्ता था, यह सब निष्फल था ।

दण्डी स्वामियों से मिलना

उस वैरागी से जुदे होकर स्वामीजी सिद्धपुर पहुंचे और नीलकंठ महादेवके मंदिर में उतरे । यहां पहिले से ही कई एक दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी उतरे हुए थे, स्वामीजी भी उनमें जा मिले । मेले में जहां किसी विद्वान् की प्रशंसा सुनते उसीसे मिलने के लिये जाते और सत्संग से लाभ उठाते ।

स्वामीजी के पिता का आगमन

सिद्धपुर के मार्ग में जो वैरागी स्वामीजी को मिला था उसने उनका सारा वृत्तान्त उनके पिता को लिख भेजा कि मूलशंकर इस समय सिद्धपुर में कार्तिक के मेले में आया है । इस पत्र के पहुंचते ही स्वामीजी के पिता चार सिपाहियों को साथ ले सिद्धपुर में आपहुंचे और उनको ढूंढने लगे और एक दिन प्रातःकाल स्वामीजी को उसी मंदिर में पण्डितों के बीचमें जा पकड़ा कि जहां वे उतरे हुये थे । वे उन्हें गेरुवे वस्त्र धारण किये हुए देख अति क्रुद्ध हुए । स्वामीजी उनके मुंह की ओर नहीं देखसके । क्रोधमें आकर उन्होंने स्वामीजी को बहुत बुरा भला कहा और झिड़क कर कहा कि तूने हमारे घराने को सदैव के लिये बदनाम करदिया है, तू हमारे कुल में कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ है । इन सब बातों से स्वामीजी दब गये और मारे डर के अपनी जगह से उठकर पिता के पावों पर गिर पड़े और कहने लगे कि आप क्रुद्ध न हूजिये मुझे क्षमा कीजिये । अच्छा हुआ कि आप पधारगये मैं आपके साथ ही चलने को राज़ी हूं । इन बातों से भी उनके पिता का क्रोध शान्त नहीं हुआ और उन्होंने झपटकर उनके कपड़े फाड़ डाले और तूंबा खोसकर पृथ्वी पर देमारा और बहुत बुरा भला कहकर नये श्वेत वस्त्र

धारण करवा कर जहां आप ठहरे हुए थे वहीं लेगये और कहा कि तू अपनी माता की हत्या किया चाहता है !

पहरे में से भागना

यद्यपि स्वामीजी ने उनके साथ जाना स्वीकार किया था परंतु उन्होंने इनकी बात का भरोसा न करके इन पर सिपाहियों का पहरा बिठला दिया और आज्ञा दी कि इस निर्मोही को क्षण भरके लिये भी कहीं न फिरने दो। रात्रिको भी इसपर पहरा रहे। यद्यपि स्वामीजी ऊपर से अपने पिता के साथ घर जाने को कहते रहे परंतु मन में वे अपने संकल्प पर वैसे ही दृढ़ थे जैसे कि उनके पिता उन को घर लेजाने में। रात्रि के समय उन पर पहिरा था परंतु दैवयोग से ३ बजे के करीब पहिरे वाले को बैठे२ निद्रा ने घेर लिया तो स्वामीजी जो जागते थे,अवसर पाकर शौच के बहाने पानी का लोटा लेकर उस जगह से निकल पड़े और आध कोस की दूरी पर एक बागीचे में एक पुराने मंदिर के शिखर में एक बट के वृक्ष के सहारे चढ़ कर जा छिपे, पानी का लोटा भी साथ लेलिया और उस जगह छिप कर इस बात की प्रतीक्षा में रहे कि देखें अब क्या होता है ? प्रातःकाल के ४ बजे क्या देखते हैं कि सिपाही उनको ढूंढ रहे हैं और उस मंदिर के मालियों और आने जाने वालों से उनका पता पूछ रहे हैं। जब कुछ पता न चला तो निराश होकर पीछे चले गये। स्वामीजी सारे दिन वहीं चुप चाप सांस को रोक बैठे रहे, ताकि किसी नई आपत्ति में न जा फंसें। जब सूर्य्य अस्त हुआ और कुछ अंधेरा होगया तो स्वामीजी उस स्थान से उतर, सड़क के मार्ग को छोड़, लोगों से पूछते पाछते वहां से दो कोस की दूरी पर एक ग्राम में जा ठहरे। प्रातःकाल वहां से भी चल पड़े। अपने पिता से स्वामीजी का यह अन्तिम मिलाप था ॥

बड़ौदा होते हुए चेतनमठ में जाना

यहां से अहमदाबाद होते हुए स्वामीजी बड़ौदे पहुंचे। यहां चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि संन्यासियों और ब्रह्मचारियों से वेदान्तविषय की बहुत बातें कीं, इनके सत्सङ्ग से वे नवीनवेदान्ती (अहंब्रह्मास्मि) बनगये अर्थात् जीव और ब्रह्म का अभेद यानी उनको एक मानने लगे।

सच्चिदानन्द परमहंस से भेट और नर्मदा के तट पर जाना

यहां पर बनारस की रहने वाली एक बाई से उन्होंने सुना कि नर्मदातट पर बड़े २ विद्वानों की एकसभा होने वाली है, फिर देर क्या थी, उस सभा के देखने के लिये चलदिये और वहां पहुंच कर सच्चिदानन्द परमहंस नामी एक महात्मा से शास्त्रविषयक वार्त्तालाप किया, उससे मालूम हुआ कि नर्मदा के किनारे चाणोदकल्याणी में बहुत से विद्वान्, संन्यासी, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण विद्वान् रहते हैं। स्वामीजी उसी स्थान पर पहुंचे और दीक्षित और चिदाश्रम आदि स्वामी, संन्यासियों से अनेक विषयों पर संलाप किया।

यहां पर इन्होंने परमहंस परमानन्द नामी एक महात्मा से पढ़ना प्रारम्भ किया और थोड़े से दिनों में वेदान्तसार, आर्य्यहरिमीडे, तोटक, वेदान्तपरिभाषा आदि ग्रन्थ पढ़ लिये और दर्शन सम्बन्धी भी कुछ पुस्तकें पढ़ीं ॥

पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास धारण करना और "दयानन्द सरस्वती" नाम पाना

ब्रह्मचर्य्यावस्था में स्वामीजी को प्रचलित प्रणाली के अनुसार अपने हाथ से भोजन बनाना पड़ता था, जिससे उनके विद्याध्ययन में बड़ी बाधा पड़ती थी इसको दूर करने के लिये उन का विचार संन्यास धारण करने का हुआ, इस विचार को उन्होंने एक दक्षिणी पण्डित द्वारा चिदाश्रम स्वामी नामक एक संन्यासी से प्रकट किया कि वह संन्यास धारण करावे, परन्तु उन्होंने इनकी युवावस्था होने के कारण ऐसा करने से नाहीं की परन्तु इस नाहीं से स्वामीजी का सङ्कल्प ढीला नहीं पड़ा। वे नर्मदा नदी के तट पर अनुमान १॥ वर्ष तक विचरते रहे और उस समय में चाणोद नामी ग्राम के निकट एक कोस की दूरी पर जङ्गल में एक स्थान पर शृङ्गीमठ के एक दंडी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आ उतरे। इन दंडी स्वामी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था जो द्वारिका की तरफ जाने वाले थे। वही दक्षिणी पण्डित स्वामीजी को बड़े प्रेम से उन दण्डी स्वामी के पास ले गया और यह उनके साथ ब्रह्मविद्या पर बातचीत करते रहे। स्वामीजी ने जानलिया कि यह संन्यासी बड़े विद्वान् हैं, उस समय उस दक्षिणी पण्डित ने उन दंडी स्वामी से हमारे शुद्धचेतनब्रह्मचारी को संन्यासाश्रम में दीक्षित करने का निवेदन किया और कहा कि यह ब्रह्मचारी बड़ा शुद्ध है, किसी प्रकार का अवगुण नहीं, ब्रह्मविद्या प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा रखता है परन्तु अपने हाथ से भोजन बनानेआदि का बखेड़ा जो इस के पीछे लगा हुआ है इस कारण अपना बहुतसा समय विद्याध्ययन में नहीं लगा सका, आप कृपा करके इसको संन्यास धारण कराइये। स्वामीजी की युवावस्था को देख कर पहिले तो इन्होंने भी संन्यास देने से नांह की और कहा कि हम महाराष्ट्र हैं यह मनुष्य किसी गुजराती संन्यासी से संन्यास धारण करे तो ठीक है। दक्षिणी पंडित ने कहा कि जब दक्षिणी संन्यासी पंच गौड़ों को संन्यास देदेते हैं तो गुजराती ब्रह्मचारी को जो उच्चश्रेणी का औदीच्य ब्राह्मण है और जो पञ्चद्राविडों में है, संन्यास देने से क्यों संकोच किया जाता है? बहुतसी आना कानी के पश्चात् स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती हमारे शुद्धचेतन ब्रह्मचारी को संन्यास देने पर राज़ी होगये और तीसरे दिन उन्हों ने स्वामीजी को संन्यास आश्रम में दीक्षित कर दण्ड ग्रहण करा इनका नाम "दयानन्द सरस्वती" रक्खा। स्वामीजी उनके पास थोड़े दिनों तक ब्रह्मविद्यासम्बन्धी पुस्तक पढ़ते रहे और फिर दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं के सामने

योगानन्द स्वामी से योग सीखना

कर दिया क्योंकि दण्ड की भी बहुत क्रिया है जिनसे विद्याध्ययन में विघ्न पड़ता था फिर वे संन्यासी तो द्वारिका की तरफ चले गये और स्वामीजी चाणोद कल्याणी ही में रह कर पढ़ते रहे, उस समय उन्हों ने यह सुना कि योगानन्द स्वामी एक बड़े योगी हैं, स्वामी ने उनके पास जाकर व्यासाश्रम में उनसे योगक्रिया सीखनी प्रारंभ की। योगविद्यासम्बन्धी कुछ पुस्तकें पढ़ कर छिन्नाड़े को गये क्योंकि उन्हों ने

कृष्ण शास्त्री से व्याकरण पढ़ना

सुनाथा कि कृष्ण शास्त्री नामी एक ब्राह्मण व्याकरण में बड़े निपुण हैं, इसलिये उनसे व्याकरण पढ़ा और फिर पीछे चाणोद कल्याणी में आगये और वहां से एक दूसरे स्थान पर आ एक पंडित से वेद पढ़ते रहे इस

वेद का पढ़ना

स्थान पर इनको ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि दो योगी मिले उनके साथ रह कर स्वामीजी योगाभ्यास करते रहे। स्वामी

दो योगियों से योगाभ्यास सीखना

और ये योगी दोनों आपस में योगशास्त्र पर प्रायः बात चीत भी किया करते थे। थोड़े दिनों के पश्चात् यह दोनों योगी अहमदाबाद की तरफ चले गये और कह गये कि एक महीने के पश्चात् तुम भी अहमदाबाद में आना, हम नदी तट पर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे, वहां तुम्हें योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। स्वामीजी प्रतिज्ञानुसार एक महीने के पश्चात् अहमदाबाद जा पहुंचे और उन दोनों योगियों से मिले, उन्होंने भी अपने कथनानुसार स्वामीजी को योग-विद्याके समस्त मर्म जो वे जानते थे समझा दिये और उनकी कृपा से स्वामीजी को इस विद्या में भी अच्छा अभ्यास होगया। स्वामीजी इन दोनों योगियों को प्रायः धन्यवाद दिया करते थे।

आबू पर योगाभ्यास करना

अहमदाबाद में स्वामीजी ने सुना कि आबू पर्वत पर बहुतसे विद्वान् योगी रहते हैं, इस कारण वे उस तरफ चल पड़े और अर्बुदा भवानी आदि पहाड़ की चोटियों पर भवानी गिरि आदि प्रसिद्ध राजयोगियों से मिले। ये योगी पहिले के दोनों योगियों से विशेष दक्ष थे, इनके पास रहकर स्वामीजी ने इस विद्या सम्बन्धी अनेक गुप्त भेदों को जाना। इस प्रकार संवत् १९११ विक्रमी तक स्वामीजी इधर उधर फिर कर बहुत से महात्मा विद्वानों और योगियों के सत्संग से लाभ उठा कर शारीरिक और आत्मिक उन्नति करते रहे। इनका यह स्वभाव था कि जो विद्वान् आदमी इन को मिलता उसके विद्यार्थी बन उस से वि-

हरिद्वार के कुम्भ के मेले में जाना

द्याध्ययन करते। इस प्रकार भ्रमण करते करते ३० वर्ष की आयु में संवत् १९१२ में पहिली बार हरिद्वार के कुंभ में जा पहुंचे क्योंकि वहां श्रेष्ठ सुयोग्य योगी एकत्र होकर आपस में मिलते हैं जिनकी यह व्यवस्था किसी

को ज्ञात नहीं होती यहां आकर बहुतसे सुयोग्य साधुओं और संन्यासियों से मिले, जब तक मेला रहा स्वामी चंडी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करते रहे और मेले की समाप्ति पर हृषीकेश की ओर चले गये और वहां कई एक महात्मा संन्यासी और योगियों से मिलकर सत्संग किया और योगाभ्यास को बढ़ाया इस के पश्चात् कुछ समय तक अकेले ही हृषीकेश में रहे वहां इन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले और यह तीनों मिलकर टिहरी की तरफ चले गये। यह स्थान विद्या के लिये बड़ा प्रसिद्ध था। यहां इन आदमियों में से एकने एक २ दिन स्वामी जी को भोजन के लिये निमन्त्रण दिया और नियत समय पर एक मनुष्य को बुलाने के लिये भेजा, उस आदमी के साथ स्वामी जी और एक ब्रह्मचारी दोनों गये वहां जाकर क्या देखते हैं कि एक पंडित मांस को काट कर बना रहा है, यह देखते ही स्वामी जी को बड़ी घृणा हुई। आगे चलकर बहुत से पंडितों को वहां बैठा देखा जो हड्डी मांस और भुने हुए सिर पर काम कर रहे थे उस घर के मालिक पंडित ने स्वामीजी को बड़े आदरभाव से आगे पधारने के लिये निवेदन किया, परंतु स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप अपना काम किये जायं मेरे वास्ते इतना परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। यह कह कर वहां से पीछे अपने स्थान को चले आये और आराम किया, इतने में वह ब्राह्मण भी आन पहुंचा और कहने लगा कि आप पधारिये, मांसादि स्वादिष्ठ भोजन सब आप ही के लिये बनाये गये हैं। स्वामी जी ने स्पष्ट कह दिया कि यह सब निष्फल है, आप मांसहारी हैं, मेरे वास्ते तो फल फूल ही अच्छे हैं, मांस का खाना तो दूर रहा मैं तो उसे देखकर ही बीमार हो जाता हूं। यदि आपको मेरा सत्कार ही करना है तो कुछ अन्न फलादि यहां भिजवादें, मेरा ब्रह्मचारी सब कुछ बना लेगा। यह सुन वह पण्डित लज्जित हो अपने घर चलागया।

> टिहरी जाना तथा मांस भोजन का निमन्त्रण और उस से घृणा

> तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन

कुछ समय के पश्चात् स्वामी जी ने उन पंडितों में से एक से वे समस्त पुस्तकें जिनकी वे लोग प्रशंसा किया करते थे देखने के लिये मांगी, जब उन पुस्तकों के नाम स्वामीजी के आगे लिये गये तो उन्हों ने तन्त्र की पुस्तकों को देखने के लिये मांगा क्योंकि यह उन्होंने पहिले नहीं देखी थीं उनको खोलकर देखते ही उन की दृष्टि ऐसे स्थान पर पड़ी कि जिस को पढ़कर वे कांप उठे। उसमें लिखा था कि मा, बहन, बेटी, चूहड़ी, चमारी आदि से भोग करने, उन्हें नंगी खड़ी करके पूजन करने और इसी प्रकार पञ्चमकारों (मद्य, मांस, मछली, मदिरा, मैथुन) के सेवन करने और ब्राह्मण से लेकर चण्डाल तक एक स्थान पर भोजन करने से मोक्ष होती है।

यह तन्त्र ग्रन्थ वामियों के बनाये हुये हैं और ऐसी२ निन्दित और निर्लज्जता की बातों से भरे हुए हैं कि जिन से बढ़कर दुनियां में निर्लज्जता हो ही नहीं सक्ती। ये पुस्तकें आर्य्यजाति के पवित्र यश में कलंक लगाने वाली हैं और वामियों के कुकर्मों और भ्रष्टता का फोटो बतलाने वाली यह आर्य्यावर्त्त को अधोगति में पहुंचाने वाले समय की बनी हुई हैं इसी लिये स्वामी जी जैसे महान् आत्मा में जो कुछ घृणा इनसे उत्पन्न हुई वह आयु पर्य्यन्त दूर नहीं हुई।

हिमालय केदारघाट

यहां से स्वामी जी श्रीनगर को चले गये और केदारघाट पर एक मंदिर में ठहरे। यहां जब किसी पण्डित से शास्त्रार्थ होता तो स्वामीजी इन्हीं तन्त्र ग्रन्थों का प्रमाण दे इनको निरुत्तर कर देते। यहां पर एक गंगागिरि नामी बड़े विद्वान् साधु मिले जो दिन के समय में अपने पहाड़ परसे नहीं उतरते थे इन से स्वामीजी की बड़ी प्रीति हो गई और ये दोनों दो मास से अधिक इकट्ठे रहे।

रुद्रप्रयाग और सिद्ध आश्रम को जाना

वसन्त के प्रारम्भ में स्वामीजी अपने ब्रह्मचारी और दो साधुओं समेत केदारघाट से दूसरे स्थान की ओर चले गये और रुद्रप्रयाग आदि होते हुए अगस्तमुनि की समाधि तक पहुंचे यहां से उत्तर की ओर सिद्धआश्रम नाम एक पहाड़ की चोटी पर गये। यह वही स्थान है जहां योगी-जन मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं। यहां शरद् ऋतु के ४ मास व्यतीत किये और फिर अपने साथियों से जुदा हो कर इकल्ले वे खटके केदारघाट को वापिस चले आये। गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड और भीमगोडा से होते हुए त्रियुगीनारायण के मंदिर में पहुंचे। यहां इनका चित्त नहीं लगा इस कारण शीघ्र ही केदारघाट को लौट आये, जो स्थान इनको बहुत पसंद था, यहां के पुजारी जंगम थे। जब यहां के मनुष्यों के स्वभाव को भले प्रकार जान लिया और जब इनके पहले साथी ब्रह्मचारी और दोनों साधु भी आगये तो इनका विचार आस पास के पहाड़ों की छवि देखने को हुआ। पहाड़ों पर सर्वदा बर्फ जमा रहता है और स्वामीजी ने सुन रक्खा था कि वहां

हिमालय पर्वत पर महात्माओं की खोज में भ्रमण करना

बड़े २ महात्मा रहते हैं इन्हीं महात्माओं के खोज में वे इन पहाड़ों की तरफ गये। वहां जिस किसी मनुष्य से उनके विषय पूछते तो वे या तो कहते कि हम नहीं जानते हैं या तत्सम्बन्धी ऐसी २ गप्पें हांकते कि जिसको कोई बुद्धिमान् मनुष्य नहीं मान सक्ता था। शरद्ऋतु थी। स्वामी जी कठिन सरदी को सहन करते हुए बीस दिवस इधर उधर भटक फिर केदारघाट की तरफ पीछे चले आये।

तुंगनाथ पर चढ़ना

इन दिनों स्वामीजी को पर्वतों पर चढ़ने का बड़ा चाव था, वे तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ गये और वहां के मंदिर को उन्होंने पुजारियों और मूर्तियों से भरा पाया। वहां से यह उसीदिन पीछे चले आये, आते समय दो पगडंडियें मिलीं एक तो पश्चिम को जाती थी और दूसरी नैऋतनामी स्थान को। उन्होंने जंगल का मार्ग पकड़ा और थोड़ी दूर जाकर ऐसे घने जंगल में पहुंच गये जहां ऊंची नीची बेडौल चट्टानें थीं और नदी नाले सब शुष्क थे, कहीं आगे जाने का मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता था इस भयानक दृश्य को देखकर यह सूखी घास व सूखी झाड़ियों

जङ्गल की झाड़ियों में फंसजाना

की जड़ों को पकड़ कर एक नले के किनारे पर जा चढ़े और एक चट्टान पर खड़े होकर जब चारोंओर दृष्टि फैलाई तो सिवाय विकट पहाड़ों, टीलों और जंगलों के कुछ न दिखाई दिया। इस समय सूर्य अस्ताचल को जा रहा था और इन्हें यह सोच पड़ा कि इस सुनसान निर्जन वन में विना पानी और ईंधन के कैसे रात कटेगी, लाचार वस्ती के खोज में चल खड़े हुए पर[illegible]मार्ग में ऐसे २ विकट स्थानों से निकलना पड़ा जहां कांटों के मारे सारे वस्त्र [illegible]टगये और शरीर से रक्त बहनेलगा और पांव से भी लंगड़ाने लगे। बड़ा कष्ट उठाकर हज़ार कठिनाइयों से पहाड़ के नीचे उतरे और अपने आप को प्रसिद्ध मार्ग पर पाया। इस समय चारों ओर अंधेरा छा गया था और यह अटकल से मार्ग ढूढ़ २ कर चल रहे थे, चलते २ बस्ती के चिन्ह दिखाई दिये बस्ती क्या थी चंद टूटी फूटी झोंपड़ियें थीं। वहां से पूंछकर कि यह मार्ग ओखीमठ को जाता है यह उसी ओर रवाने हुए और रात्रि वहां जाकर काटी भोर होते ही गुप्तकाशी को चले आये परन्तु ओखीमठ को देखने की अभिलाषा अभी बाकी थी इस कारण वे फिर उधर गये और वहां जाकर जान लिया कि तमाम गुफाएं पाखण्डी साधुओं से भरी हुई हैं।

मठ का महन्त बनाने का लालच

इस स्थान के एक बड़े महन्त ने इनको अपना शिष्य बनाना चाहा और बहुत से द्रव्यादि का लालच देकर कहा कि अंत में तुझ को गद्दी का मालिक बना दूंगा। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि मुझे द्रव्य की इच्छा होती तो अपने घर से क्यों निकलता और अपने पिता की सारी जायदाद को जो तुम्हारी जायदाद से कहीं अधिक थी क्यों छोड़ता? इसके अतिरिक्त जिस इच्छा से मैंने संसार के सर्वप्रकार के सुख और भोगों के लात मारी है वह इच्छा तुम्हारे पास रहने से पूरी नहीं हो सक्ती। महन्त ने पूछा कि वह कौन सी वस्तु है जिस की तुम्हें खोज है और तुम इतना परिश्रम उठा रहे हो? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि सत्य योगविद्या और मोक्ष को जो विना आत्मिकशुद्धि और सत्याचरण के प्राप्त नहीं

होती, ढूंढ रहा हूं और जब तक यह प्राप्त न होगा मैं बराबर अपने देशवासियों का उपकार करता रहूंगा।

इस महन्त ने स्वामी जी को अपने पास अधिक ठहरने के लिये कहा परन्तु वे दूसरे दिन ही जोशीमठ को चले आये, यहां पर इन्हें बहुत से अच्छे विद्वान् महाराष्ट्र संन्यासी और योगी मिले, जिन से इन्होंने योगविद्या सम्बन्धी बहुत सी नई बातें सीखीं।

बदरीनारायण जाना इन महात्माओं से जुदे होकर स्वामीजी बदरीनारायण की ओर चले गये, उन दिनों यहां रावल जी नामी एक विद्वान् पंडित इस मंदिर के महन्त थे। कई दिवस तक इन की और स्वामी जी की वेदों और दर्शनों पर बातचीत होती रही। स्वामी जी को यह सुनकर बड़ा शोक हुआ कि बदरीनारायण के आस पास पहाड़ों में कोई बड़ा योगी नहीं रहता, परन्तु ऐसे योगी प्रायः दर्शनों के लिये आजाया करते हैं। य[illegible]र स्वामी जी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे पहाड़ी स्थानों में घूम २ कर योगियों की खोज करेंगे और इसी विचार से वे एक दिन सूर्य्य निकलने से पूर्व बदरीनारायण से चल पड़े और पर्वत की जड़ों में होते हुए अलकनंदा नदी के किनारे जा पहुंचे। इनका विचार इस नदी को पार करने का नहीं था क्योंकि दूसरी तरफ मांस नामी एक ग्राम था, इस कारण नदी के निकास की तरफ पहाड़ की जड़ों में जंगल में उन्होंने चलना प्रारम्भ किया। इस समय सारा पर्वत श्वेत बर्फ से [illegible] था इस कारण स्रोत तक पहुंचने में बड़ा कष्ट हुआ। जब गोमुख पर [illegible] अपने चारोंओर ऊंचीर पर्वतमालाएं देखीं और कोई मार्ग आगे [illegible] दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

[illegible] सिवाय नदी को पार करके इस ओर चले आने के और कोई उपाय नहीं [illegible] इनके वस्त्र बड़े पतले थे और सरदी ऐसी कड़ी पड़ती थी कि वे उसे सहन नहीं कर सकते थे। खान पान की भी कोई वस्तु पास नहीं थी, यहां क्षुधा ने भी ऐसा पीड़ित किया कि बर्फ खा खा कर उसको निवारण करने लगे, परन्तु कहीं बर्फ से [illegible] क्षुधा मिटी है? अन्त को इन्होंने नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। [illegible] कहीं २ ठिकाने तो घुटने २ तक थी और कहीं २ बहुत गहरी चौड़ाई में १० हाथ के अनुमान थी इसके अतिरिक्त इसमें बर्फ के छोटे२ तिरछे टुकड़े इतने विशेष थे कि उन्होंने स्वामी जी के नंगे पावों को घायल कर दिया और उनसे रक्त बहने लगा, पांव मारे सरदी के सुन्न होगये यहां तक कि मूर्छा आगई और कुछ समय तक इनको अपने आपकी कुछ भी खबर नहीं हुई शीत के कारण मूर्छा अधिक बढ़ने

लगी और वे बर्फ पर गिरने वाले ही थे, परन्तु यह सोचकर कि यदि इस जगह गिरगये तो फिर उठना कठिन होजायगा और मृत्यु होजायगी, जिस वस्तु की खोज में घर बार माता पिता आदि छोड़ेहैं उस को पाये विना ही मृत्यु रूपी ग्राह निगल जावेगा अंतको बहुत सी दौड़ धूप के पश्चात् ज्यों त्यों करके नदी पार की परन्तु आगे बढ़ने की शक्ति नहीं थी। स्वामीजी ने सारे शरीर के कपड़े उतार पांवों से लेकर जंघाओं तक अपने आपही लपेट लिये और शक्तिहीन आगे हलने चलने में अशक्त घबराये हुये खड़े रहे और दिल में यह अभिलाषा रही कि कोई सहायता देने वाला मिले परंतु वहां इस प्रकार की सहायता देनेवाला कोई नज़र नहीं आता था यह सोच ही रहे थे कि दो पहाड़ी आदमियों को अपनी ओर आते हुए देखा उन्होंने स्वामी जी को प्रणाम करके अपने घर चलने के लिये निवेदन किया, जब इन मनुष्यों ने स्वामी जी का वृत्तान्त सुना तो उन्होंने उनको सिद्धपथ नामी एक तीर्थस्थान पर पहुंचाने का प्रण किया स्वामीजी नेउनके निवेदनको अस्वीकार किया और कहा कि मुझ में विशेष चलने की शक्ति नहीं है मैं यहां से हिल नहीं सक्ता, उचित है कि यहीं पर प्राण छोड़दूं तुम्हारे संग चलने की शक्ति नहीं। स्वामीजी के नाहीं करने से उन दोनों पहाड़ी आदमियों ने अपना रस्ता लिया और थोड़ी देर में पर्वतों में छुप गये अंत को थोड़े समय पश्चात् जब इनकी प्रकृति कुछ ठीक होगई तो वे आगे चले और कुछ समय तक बसुधा नामी एक तीर्थस्थान पर ठहर कर संगम के आस पास होते हुए सन्ध्या के आठ बजे बद्रीनारायण में वापिस आगये।

पुनः महन्तजी से भेंट और रामपुर को प्रस्थान

यहां के महन्त रावल जी स्वामीजी के इतने दिनों तक गुप्त रहने से बड़े घबड़ाये हुये थे, जब ये सन्ध्या को वापिस आये तो इन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया और थोड़ा सा भोजन कर के सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्वामीजी महन्त रावलजी से विदा होकर रामपुर की तरफ रवाने हुए मार्ग में एक योगी के पास जाठहरे और रातभर उसी के पास काटी। स्वामीजी वर्णन करते हैं कि यह मनुष्य बड़ा विद्वान् था और अपने को प्रसिद्ध ऋषि समझता था इससे धर्म सम्बन्धी बात चीत करने से स्वामीजी ने अपने विचारों को विशेष दृढ़ कर लिया।

रामपुर में रामगिरि के आश्रम में विश्राम

दूसरे दिन वहां से चल पड़े। जङ्गलों और पर्वतों में से होते हुए चिलकिया घाटी से उतर कर अन्त को रामपुर में आपहुंचे और रामगिरि के मकान पर विश्राम लिया। रामपुर में रामगिरि अपने शुद्ध आचरणों के कारण प्रख्यात था उस का स्वभाव विचित्र था रात को वह सोया नहीं करता

किन्तु प्रायः कई रात्रि तक बराबर बातें करने में समय व्यतीत कर देता यद्यपि उस के पास कोई मनुष्य नहीं था तौ भी ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी से बातें करता है कभी २ वह बड़े ज़ोर से ढाड़ें मारता और जब उसके कमरे में जाकर देखते तो वह अकेला ही मिलता । इन बातों ने स्वामीजी को बहुत चकित कर दिया उन्होंने इन सब बातों का कारण पूछा तो सिवाय इसके और कुछ उत्तर नहीं मिला कि उसका स्वभाव ही ऐसा है इस मनुष्य से एकान्त में बातें करने से स्वामी जी को यह ज्ञात हुआ कि यह योगविद्या की सिद्धि किया चाहता है परन्तु इस विद्या का उसे अभ्यास नहीं ।

द्रोणसागर से मुरादाबाद होते हुए गढ़मुक्तेश्वर जाना और वहां गंगा में मुर्दे की परीक्षा करना ।

यहां से चलकर स्वामीजी काशीपुर पहुंचे और वहां से द्रोणसागर को गये और सारी शरदृऋतु वहीं व्यतीत की यहां पर एक बार यह मनमें आया कि हिमालय पर्वत पर जाकर देह छोड़ देनी चाहिये परन्तु बहुत सोच विचार के पश्चात् निश्चय किया कि मरजाना तौ कोई पुरुषार्थ नहीं है ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् देह का छोड़ना उत्तम है । द्रोणसागर से चलकर स्वामीजी मुरादाबाद, संभल और गढ़मुक्तेश्वर होते हुये गङ्गा के किनारे जा पहुंचे उस समय उनके पास और पुस्तकों के अतिरिक्त हठप्रदीपिका, योगबीज, केसरानासंगत संस्कृत में वैदिक व चीरा फाड़ी की भी कुछ पुस्तकें थीं इन में नाडी चक्र आदि का वर्णन विस्तार युक्त था जिनको वे बहुधा देखा करते थे ये पुस्तकें इस ढंग पर लिखी हुई थीं कि उनको कण्ठस्थ करना कठिन था और इन के प्रामाणिक होने में भी स्वामीजी को शङ्का थी परन्तु अभीतक उनकी परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं मिला था ।

एक दिवस गङ्गा में एक मुर्दा बहता हुआ स्वामीजी के दृष्टि गोचर हुआ उसे देखते ही स्वामीजी को उन पुस्तकों के शुद्धाशुद्ध की परीक्षा करने का ध्यान आया इसलिये वस्त्र उतार वे गङ्गा में कूद पड़े और मुर्दे को पकड़ किनारे पर ले आये तेज़ चाकू से उसको चीरा उसके कलेजे को निकाल कर देखा कि पुस्तक के बयान से मिलता है वा नहीं फिर सिर और गर्दन के भागों को काटा और पुस्तक से मिलान किया तो जाना कि वे पुस्तकें झूठी हैं तब स्वामी जी ने उनको यह कहकर कि मेरा यह निश्चय होगया कि सिवाय वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल आदि दर्शनों के जो और पुस्तकें योगविद्या पर लिखी गई हैं असत्य हैं, फाड़डाला और मुर्दे के साथ ही नदी में बहा दिया । यह घटना सिद्ध करती है कि सत्यविद्या की प्राप्ति का चाव और खोज करने की शक्ति स्वामी दयानन्द में कैसी प्रबल थी । कहां तो एक हिन्दू संन्यासी और

कहां मुर्दे का चीरना? साधारण मनुष्य तो उसके स्पर्श से ही अशुद्ध होना समझते हैं फिर उसकी भले प्रकार चीर कर जांच करना और पुस्तक से मिलान करना कैसा? यह छानबीन की ही शक्ति थी जिसने स्वामी दयानन्द को महान् पुरुष बना दिया।

इसी प्रकार गङ्गा के तट पर थोड़े दिवस और रहकर स्वामीजी संवत् १९१२ के अखीर में फर्रुखाबाद पहुंचे। संवत् १९१३ में पहिले पहिल स्वामी जी ने कानपुर और इलाहाबाद के बीच के कई एक स्थान देखे फिर मिरज़ापुर के समीप बनारस में कुछ दिवस रहे इसके पश्चात् विन्ध्याचल अशोंची के मंदिर में एक मास तक रहे फिर खास बनारस में पहुंच कर उस गुफा में ठहरे जो बरना और गंगा के संगम पर है और जो उस समय भवनंद सरस्वती के अधिकार में थी इस स्थान पर कई एक विद्वानों से मिले यहां से चल कर चांडालगढ़ में पहुंचे और दुर्गा कोहू के मंदिर में जा उतरे यहां उन्होंने चावल खाना छोड़ दिया और केवल दूध पीकर रात दिन योगाभ्यास और तत् सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहते यहां पर स्वामी जी को भंग पीने का व्यसन हो गया था जिससे, वे बहुधा उन्मत्त हो जाते।

भंग के नशे में स्वप्न का देखना

एक दिवस जब वे चांडालगढ़ से एक निकटवर्त्ती ग्राम को जा रहे थे तो उनको उनका एक पुराना साथी मिला इन्होंने ग्राम के दूसरी ओर एक शिवालय में जाकर रात्रि व्यतीत की। भंग के नशे में उन्होंने स्वप्न में महादेव और पार्वती को बातें करते हुवे सुना। पार्वती कहती थी कि दयानन्द सरस्वती का विवाह होजाय तो अच्छा है परन्तु महादेव उसका निषेध करते थे और उनके भंग के नशे के विषय में कहते थे जब स्वामी जी जगे और उस स्वप्न का स्मरण आया तो बड़े दुःखित हुए उस समय वर्षा मूसलाधार हो रही थी और स्वामीजी मंदिर के बरांडे में आराम कर रहे थे।

नांदिये के पेट में चोर।

यहां भी एक नन्दी की मूर्त्ति थी जैसा कि शिवालयों में हुआ करती है इन्होंने अपने वस्त्र और पुस्तकें इस मूर्त्ति के पेट में रखदीं और अपने स्वप्न पर विचार करने लगे ज्योंही कि उनकी दृष्टि मूर्त्ति के अंदर के भाग की ओर पड़ी कि उनको एक आदमी छिपा हुआ दिखाई दिया इन्होंने उसकी ओर हाथ पसारा और वह मारे डरके निकल कर गांव की ओर भाग गया अब यह खुद उस के अंदर घुस कर सो गये और सारी रात वहीं काटी भोर होते ही एक बुढिया ने आकर उस सांड देवता की पूजा की और गुड और दही चढ़ाया इनको भूख लगी हुई थी बडे मज़े से दही खाया चूंकि यह खट्टा था इस कारण नशे के उतारने में बडा लाभकारी हुआ इस दिन से स्वामी जी ने भंग पीना छोड़ दिया।

नर्मदानदी के स्रोत की खोजमें मार्गमें रीछ का सामना।

चैत संवत् १९१४ का स्वामीजी इस स्थान से नर्मदा नदी के स्रोत को देखने के लिये रवाने हुए और दक्षिण की ओर जाते २ एक बड़े घने सुनसान जंगल में पहुंचे उस में कहीं २ झोंपडियां थीं इन में से एक झोंपडी में ठहर कर इन्होंने कुछ दूध पिया और आगे को रवाने हुए डेढ मील के अनुमान चले होंगे कि अपने को ऐसे भयानक जंगल में पाया कि जहां बहुत से बेरियों के वृक्ष थे और घास इतना लंबा था कि मार्ग दिखाई नहीं देता था यहा इनको एक बड़ा काला रीछ मिला जो अपनी पिछली टांगों पर खडा हो चिंघाड़ें मारता हुआ मुंह खोले हुए इन्हें खाने के लिये आरहा था यह विना हिले चले उसके सामने खड़े होगये और अपना सोटा संभाल उसकी ओर किया जिससे डर कर वह पीछे की तरफ चिंघाड़ें मारता हुआ दौड़ा इस शब्द को सुनकर झोंपड़ियों के आदमी सोटे और शिकारी कुत्ते ले इनकी सहायता के लिये आन पहुंचे और इनसे कहा कि आप आगे न जावें यह जंगल सिंह, रीछ, हाथी आदि बहुत से भयंकर पशुओं से भरा पड़ा है लेकिन इन्होंने उनकी इन बातों पर कुछ ध्यान न दिया और जब इन लोगों ने एक लंबा सोटा दिया तो इन्होंने उस सोटे को भी वहीं फेंक दिया और आगे को चल दिये दिन भर चलते रहे सूर्यास्त होगया चारों ओर अंधेरा छागया और कई घंटों तक इन्हें बस्ती के कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिये मार्ग में बहुत से ऐसे वृक्ष देखे जिनको मस्त हाथियों ने जड़ों से उखेड़ डाला था ॥

दुर्गम जंगल में जा फसना

आगे चलकर इन्हें एक ऐसा जंगल दिखाई दिया कि जिसमें घुसना अति कठिन था इसमें कांटेदार बेरियों के बहुत वृक्ष थे जोकि एक दूसरे से गुथे हुए थे इस जंगल से पेट के बल और घुटने टेकते हुए धीरे २ सांप की नाईं निकले सारे वस्त्र फट गये, शरीर घायल होगया और यह अधमरे से होगये इतने में बिलकुल अंधियारी छागई और चारों ओर सिवाय इसके और कुछ दीख नहीं पड़ता था परन्तु ऐसी दशा में भी उन्होंने आगे बढ़ने के विचार को नहीं छोड़ा अंत में एक ऐसे भयानक स्थान पर पहुंचे कि जहां चारों ओर घने वृक्ष और नाना प्रकार की वनस्पतियों से लदे हुए ऊंचे २ पर्वत दिखाई देने लगे इनमें कहीं २ बस्ती के चिन्ह पाये जाते थे थोड़ी देर में इनकी दृष्टि कई झोंपड़ियों और कुटियों पर पड़ी इनके चारों ओर गोबर के ढेर के ढेर पड़े हुए थे एक स्वच्छ जल की छोटी सी नदी के किनारे बकरियां चर रही थीं झोंपड़ियों के अंदर से टिमटिमाते हुए दीपक भी दिखाई देने लगे।

रात्रि भर एक वृक्ष पर निर्वाह करना

सब से पहिले एक बड़ा वृक्ष मिला जिसकी छाया में एक झोंपड़ी थी झोंपड़ी के अंदर जाकर उन्होंने वहां के मनुष्यों को कष्ट देना

उचित न समझा इसलिये इस वृक्ष पर चढ़ गये और सारी रात वहीं व्यतीत की प्रातःकाल होते ही नीचे उतरे और नदी के किनारे जाकर अपने घायल पांव और शरीर को धोकर उपासना के लिये बैठने ही वाले थे कि एक जंगली जानवर की सी गरज का शब्द सुनाई दिया परन्तु यह आवाज़ गाड़ी की थी थोड़ी देर में बहुत से स्त्री पुरुषों का झुंड बहुत सी गायें और बकरियों को साथ लिये हुए अपनी ओर आते हुए देखा, वे लोग कोई त्यौहार मनाने के लिये इकट्ठे हो कर जा रहे थे जब उन्होंने स्वामी दयानन्द को देखा तो सबके सब उनके चारों ओर हो गये और उन में से एक बूढ़े आदमी ने आगे बढ़कर उनसे पूछा कि आप कहां से आये हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं बनारस से आया हूं और अब नर्मदा नदी के स्रोत की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूं यह पूछकर वे लोग तो आगे बढ़गये और स्वामीजी अपनी उपासना में लगे आध घण्टे के पश्चात् उनका सरदार दो पहाड़ी आदमियों को ले के पीछे आया और एक तरफ स्वामी जी के पास बैठ गया उस ने स्वामीजी से कहा कि आप चलकर हमारी झोंपड़ियों में आराम करिये हम लोग तन मन से आप की सेवा और भोजन आदि से सत्कार करेंगे परन्तु स्वामीजी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया लाचार उसने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि स्वामीजी के इर्द गिर्द आग जलादो और रात को इन की रक्षा के निमित्त यहीं रहो फिर इसने स्वामी जी से भोजन के लिये पूछा, स्वामीजी ने कहा कि मैं केवल दूध पीता हूं इस पर वह इन का तूंबा लेगया और दूध से भरकर दे गया इस में से दूध पीकर स्वामी जी उस रात्रि को उन पहरे वालों की रक्षा में सो रहे और भोर होते ही संध्या आदि से निवृत्त हो वहां से आगे को चल दिये। नर्मदा तट पर वे ३ वर्ष तक विचरते रहे और अनेक महात्माओं, साधुओं और विद्वानों के सत्संग से लाभ उठाते रहे यहां से पीछे मथुरा की ओर रवाने हुए और वहां जाकर स्वामीजी ने विरजानंदजी से विद्याध्ययन आरंभ किया।

* स्वामी विरजानन्द सरस्वती।

स्वामी विरजानन्द जी असल में दुवाबा बस्त जालंधर के रहने वाले थे बाल्यावस्था में ही माता (चेचक) की बीमारी से इनकी दोनों आंखें चली गई थीं यदिच बाहर की आंखें जाती रही थीं परंतु हृदय की आंखों ने बड़ी ज्योति का प्रकाश किया ११ वर्ष की अवस्था में विचारे अंधे बालक के माता पिता मर गये थे अंधे तो पहिले ही से थे अब अनाथ हुए और शरण भी अब ऐसे भाई की रहे जो कलियुग

* स्वामी विरजानन्द सरस्वती का पूरा जीवनचरित्र इस पुस्तक के अन्तिम भाग में देखियेगा।

का नमूना था वह पवित्र घर जिस में जन्म लेकर ११ वर्ष माता पिता के लाड़ प्यार में स्वर्ग के समान व्यतीत किये थे उनके परमधाम को जाते ही नरक के सदृश हो गया अंधा अनाथ भाई के क्रोध को आखिर न सहन करके घर से निकल पड़ा और भिक्षा मांगता ठोकरें खाता हरिद्वार पहुंचा इसने अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से वह विद्या प्राप्त की कि अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् कहलाया। स्वामी दयानन्द इनको व्याकरण का सूर्य्य कहा करते थे। विरजानन्दजी भी स्वामी दयानन्द की नांई दंडी स्वामी थे। यह पहिले अलवर में रहते थे उनकी आयु तब ८१ वर्ष की थी उनकी वेद शास्त्रों से लेकर आर्ष ग्रन्थों में बड़ी रुचि थी वे आधुनिक, कौमुदी, शीघ्रबोध आदि ग्रन्थों को अच्छा नहीं समझते थे और भागवतआदि पुराणों का बड़ाही तिरस्कार करते थे सारे आर्ष ग्रन्थों में उनकी बड़ी भक्ति थी ॥

मथुरा में स्वामी विरजानन्दजी से बात चीत।

स्वामी दयानन्दसरस्वती जी यमद्वितीया अर्थात् कार्तिकसुदी २ संवत् १९१७ तदनुसार १४ नवंबर सन् १८६० को मथुरा में पहुंचे और सीधे दण्डीजी के डेरे पर गये दण्डीजी ने पूछा कि कौन है? उत्तर दिया कि संन्यासी (वि०) क्या नाम है ? (दया०) दयानन्द सरस्वती (वि०) कुछ व्याकरण पढ़ा है ? (दया०) सारस्वत आदि पढ़ा हूं दण्डीजी ने दर्वाजा खोल दिया यह अन्दर गये प्रथम कुछ थोड़ीसी परीक्षा ली और कहा कि ऋषिकृत शास्त्र और हैं। दयानन्द ने कहा कि महाराज! हमें बतलाओ ? उत्तर दिया कि यदि मनुष्य कृत को छोड़ दे तब उसको पासक्ता है ॥

मनुष्यकृत ग्रन्थों का त्याग

स्वामी दयानन्द ने संकल्प किया कि मैंने वे सब छोड़ दिये, तब विरजानन्दजी ने उनको सारस्वत की व्यवस्था सुनाई कि अनुभूतिस्वरूप आचार्य्य ने इसको बनाया है। बूढ़ा होने से मुंह में दांत न रहने के कारण "पुंसु" के स्थान में "पुंक्षु" शब्द अशुद्ध मुंह से निकल गया पंडितों ने आक्षेप किया यह क्रुद्ध होगये और इस की सिद्धि के लिये यह झूंठा ग्रन्थ बनाया और अपने मन में इस अशुद्धि को शुद्ध कर दिखाया परन्तु यह सब निष्फल हुवा अर्थात् "पुंक्षु" शब्द शुद्ध सिद्ध न हुआ।

दण्डीजी ने उस समय यह भी कहा था कि हम संन्यासी को विद्या नहीं पढ़ाते क्योंकि वे लोग भोजन कहांसे लावें और किस प्रकार सबर से पढ़ोगे परन्तु स्वामीजी ने बहुत हठ किया तीन चार दिवस तक ठहरे और उनके सब नियमों को स्वीकार किया यह बात प्रसिद्ध है कि भट्टोजिदिक्षित जो सिद्धान्तकौमुदी के बनाने वाले हैं उनके नाम पर दण्डीजी विद्यार्थियों से जूते लगवाया करते थे और जब

तक उसकी प्रतिष्ठा विद्यार्थियों के हृदय से दूर नहीं होती थी तब तक अष्टाध्यायी आरंभ नहीं कराते थे। स्वामी दयानन्दजी ने भी जब उनकी आज्ञा का पालन किया तब दण्डीजी ने विद्या आरंभ कराई सारे शहर में चंदा करवाके उनके वास्ते महाभाष्य का पुस्तक मंगवाया जिसपर ३१) रुपये खर्च पड़े ॥

विद्याध्ययन में सहायता

स्वामीजी के विद्यारंभ करने के थोड़े समय पश्चात् ही बड़ा भयंकर काल पड़ा लोगों को बड़े कष्ट पड़े विशेष कर विद्यार्थियों को, परंतु स्वामीजी इन समस्त कठिनाइयों को झेल कर दुर्गा खत्री डाकेवाले के यहां से कभी सूखे चने और कभी चने की रोटी लाकर गुज़ारा करते रहे अकाल के अंत में एक दिन इनकी भेंट बाबा अमरलाल जोशी से जो कि मथुरा के रईस और जाति के औदीच्य ब्राह्मण थे होगई, जिसने कि इनके खान पान और पुस्तकों का सारा प्रबंध अपने ऊपर उठा लिया स्वामीजी जब तक मथुरा में रहे इनही के यहां भोजन पाते रहे। इस रईस के यहां प्रतिदिन सो सवासौ ब्राह्मणो को भोजन मिला करता था, इस पुरुष का प्रेम स्वामीजी के साथ इतना होगया था कि यह इन्हें अपने घर लेजाकर खाना खिलाता और जब कभी आप कहीं जीमने को जाता तो पहिले इनको अपने घर में भोजन करा जाता पीछे बाहर जाता ॥

स्वामीजी रात्रि के समय भी विद्याध्ययन में लगे रहते थे लाला गोवर्द्धनसर्राफ इनको चारआने मासिक तेल के लिये दिया करता था और हरदेवपत्थर वाला २) रुपये मासिक दूध के वास्ते ॥

भक्ति से गुरु की सेवा करना।

जब तक स्वामीजी मथुरा में रहे तो अपने गुरु के स्नान के वास्ते बहुत से घड़े पानी के यमुना से भरकर लाया करते बड़े पुरुषार्थी फुरतीले और परिश्रमी थे। लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में जहां यह रहा करते थे बैठक पर प्रतिदिन व्यायाम करते और एक या दो कोस तक भ्रमण करने भी जाया करते थे और दंडीजी के पीने के लिये स्वच्छ निर्मल जल जमना के बीच जाकर भर लाया करते थे कभी उन्होंने किसी स्त्री से हँसी मज़ाक नहीं की और न इस प्रकार की बात चीत उन्हें अच्छी लगती थी। यदि कोई ऐसी बातें करता तो उसे यह धुत्कार देते थे। स्वामीजी को अभ्रक (अबरक) फूंकना और पारे की गोली बनाना भी आता था।

संस्कृतभाषण का अभ्यास करना

यह विद्यार्थियों को बहुधा ब्रह्मचर्य्य साधने का उपदेश किया करते और ब्राह्मणों को संध्या, उपासना और अग्निहोत्र करने को कहा करते अपने सहपाठियों के साथ संस्कृतबोलते और शास्त्रार्थ भी किया करते, रात के ग्यारह २ बजे तक पढ़ा करते थे और योगाभ्यास भी बराबर साधते रहते, बहुत

से विद्यार्थी इनके स्थान पर आया करते थे इन्हीं दिनों में ये मूर्त्तिपूजा, कंठी, तिलक और सम्प्रदाइयों का खंडन भी करते और लोगों को सच्चिदानन्द परमात्मा की भक्ति का उपदेश देते।

गुरुजी की लाठी से उनका स्मरण रखना।

स्वामीजी ने २॥ साल के अनुमान विरजानन्दजी से पढ़ा, ये अपने गुरु की सदैव आज्ञा पालन करते थे परन्तु कभी २ विरजानन्दजी क्रोध मे आकर इनको अपने यहां से निकाल भी देते परन्तु यह फिर उनके पास चले जाते। एक दिन उन्होंने किसी वात से रुष्ट हो स्वामीजी के लाठी मारी जिससे उनके हाथ पर बड़ी चोट आई और जिसका चिन्ह उमर भर तक बना रहा वह इस चिन्ह को देखकर महर्षि विरजानन्द के उपकार को याद किया करते। स्वामीजी ने लाठी खाकर अपने गुरु से निवेदन किया कि महाराज ! आप मुझे न मारा करें मेरा शरीर कठोर है मारने से आपके कोमल हाथों को दुःख होता होगा।

एक समय स्वामी विरजानंद का रंगाचार्य्य से वृन्दावन में शास्त्रार्थ हुआ, स्वामी दयानन्द भी साथ गये थे वहां रंगाचार्य्य का एक चेला संस्कृत में बोलने लगा तो इन्होंने उसकी गलतियें ज़ाहिर कीं परन्तु दंडीजी ने रोक दिया।

एक वार संथा लेते समय दण्डीजी ने क्रुद्ध होकर स्वामीजी को गालियें दीं और सोटा मारा। नयनसुख जड़िया जो कि यद्यपि संस्कृत का अक्षर भी नहीं लिख सक्ता था परंतु सत्संग के प्रभाव से इसको अष्टाध्यायी और महाभाष्य कंठ था और संस्कृत का उच्चारण भी अतिशुद्ध था, इसने दण्डीजी से कहा कि महाराज यह कोई गृहस्थ नहीं है साधु सन्यासी है इसको न तो गालियें देनी चाहिये न मारना चाहिये दण्डीजी ने उत्तर दिया कि अच्छा हम आगे को प्रतिष्ठा से पढ़ावेंगे जब सन्था लेकर स्वामीजी बाहर आये तो नयनसुखजी पर क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरे लिये ऐसा क्यों कहा ? दण्डीजी तो सुधार के लिये मारते हैं ईर्षा द्वेश से नहीं, जैसे कुम्हार पीट २ कर घट बनाता है इसी प्रकार यह मेरे सुधार के लिये यत्न करते हैं॥

रुष्ट हुये गुरुजी को प्रसन्न करना।

जब विद्या समाप्ति के १५ वा २० दिवस रह गये तो एक दिन विरजानन्दजी ने कहा कि दयानन्द ! ऊपर जहां हम बैठते हैं झाड़ू दे देना। स्वामीजी ने बुहारी लगाकर कूड़ा एक जगह कर दिया टहलते समय दण्डीजी का पांव कहीं उस कूड़े में पड़ गया जिस पर क्रुद्ध होकर गालियें दीं और कहा कि यहां से निकल जा तू ने हमारी आज्ञा नहीं मानी तेरी डोढ़ी वंद है इस पर स्वामीजी को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने नंदनचौवे और नयनसुख जड़िये से सिफारिश कराई इन दोनों से स्वामी ने यह भी कह दिया कि यद्यपि गुरुजी वास्तव में

कुछ नहीं हैं परन्तु अब मेरी विद्यासमाप्ति के दिन पूरे होने वाले हैं इसलिये मैं योग्य नहीं समझता कि महाराज किसी प्रकार भी उदास रहें, इन दोनों की सिफारिश से दण्डीजी राज़ी हो गये स्वामीजी ने पांव को हाथ लगाया और क्षमा मांगी, वहां क्या देर थी प्रसन्न होगये।

जाते समय गुरु दक्षिणा देनी और आशीर्वाद लेना

जब स्वामीजी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र और बहुत सी पुस्तकें पढ़लीं तो मथुरा से विदा होने की इच्छा उत्पन्न हुई प्राचीन परिपाटी के अनुसार भेंट लेकर गुरु के सन्मुख उपस्थित हुए संन्यासी विद्यार्थी के पास भेंट के लिये कोई बहुमूल्य पदार्थ तो था ही नहीं दण्डीजी की प्रिय वस्तु अर्थात् आध सेर लौंग नज़र करके विदा मांगी और कहा कि मेरे पास कुछ नहीं जो आपके भेंट करूं, विरजानंदजी ने उत्तर दिया कि मैं तुझ से ऐसी चीज़ मांगूंगा जो तेरे पास उपस्थित है, स्वामीजी ने निवेदन किया कि जो कुछ मेरी शक्ति में है आप पर न्योछावर करने को तत्पर हूं। इस उत्तर से प्रसन्न हो महर्षि विरजानन्द सरस्वतीजी ने कहा-बेटा! जा लिखा पढ़ा सफल कर देश का सुधार और उपकार कर, सत्यशास्त्रों का उद्धार कर, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटा और वैदिक धर्म्म जो लोप होगया है उसको फिर फैला। स्वामीजी ने बड़ी नम्रता और उदासीन भाव से इसको स्वीकार किया और पूरा करने की प्रतिज्ञा की। गुरूजी ने आशीर्वाद दिया और विदा होते समय एक अमूल्य बात और भी कहदी कि मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषि मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है ऋषिकृत ग्रन्थ इस दोष से रहित हैं इस कसौटी को हाथ से नहीं छोड़ना। स्वामीजी यहां से रवाने हुए और किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया इसको सब लोग जानते हैं इन्होंने अपनी सारी आयु धर्म्म प्रचार में व्यतीत की, कष्ट पर कष्ट सहे परंतु अपने कर्त्तव्य से कभी मुंह न मोड़ा।

विद्याध्ययन की समाप्ति।

धन्य है स्वामी दयानन्द को जिसने लोकोपकार के लिये अपने जीवन को जीवन न समझा मनुष्यों का अविद्यान्धकार दूर करने के लिये नाना प्रकार के दुःख सहे लोगों को अपना शत्रु बनाया, ऐसे समय में गुरु की आज्ञा पालन करना प्रारम्भ किया कि जिस समय संसार में कोई भी उनका सहायक व रक्षक न था और धन्य है वह गुरु जिसने सांसारिक किसी पदार्थ को अपने शिष्य से न मांग कर धर्म्म और देश की अधोगति पर विचार कर वेद और शास्त्रों के प्रचार ही को अपनी गुरुदक्षिणा समझी। इनका विश्वास था कि हमारे शिष्यों में से यदि कोई हमारा अभीष्ट सिद्ध करेगा, तो दयानन्द ही करेगा इसीलिये उन्होंने

अपना सारा विद्याभंडार इनको सौंप दिया था और जो कुछ ऋषिकृत ग्रन्थों से बातें निश्चयात्मक की हुई थीं वह सब ही इनको समझा दी थीं। स्वामी दयानन्द के हृदय से भी अपने गुरु का मान व प्रतिष्ठा कभी दूर नहीं हुई वह अपनी पुस्तकों में जगह २ पर बड़े गर्व से अपने तईं "विरजानन्द का शिष्य" लिखते हैं यद्यपि दयानन्द सरस्वती ने पहिले से ही संन्यास धारण कर लिया था परन्तु वास्तव में यह उनके ब्रह्मचर्य्याश्रम की समाप्ति का समय था।

विद्या पढ़कर महर्षि दयानन्द धर्म्म प्रचार में प्रवृत्त होता है।

आगरे में पहुंचकर धर्मोपदेश करना

मथुरा में महर्षि विरजानन्द सरस्वती से विद्या रत्न प्राप्त करके और उनकी आज्ञा लेकर वैशाख संवत् १९२० के अन्त में स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आगरे की ओर रवाने हुए और वहां पहुंच कर यमुना के किनारे भैरव के मन्दिर के पास लाला गल्लामल रूपचंद अग्रवाल के बगीचे में उतरे, यहां एक साधु रहता था जिसने जा के डिप्टी पोस्ट मास्टर जनरल के दफ्तर में राय सुन्दरलालजी आदि गृहस्थ विद्वानों को कहा कि एक महात्मा आये हुए हैं इस समाचार को सुन बहुत से लोग सत्संग के लिये स्वामीजी के पास आने लगे। आगरा उन दिनों में रौनक पर था क्योंकि तब तक हाईकोर्ट भी वहीं था स्वामीजी के आने के थोड़े दिनों बाद ही एक कैलाश पर्वत नामी स्वामी भी इसी बगीचे में आकर उतरे एक दिन यह स्वामी गीता का एक श्लोक लोगों को समझा रहे थे परन्तु किसी की सन्तुष्टि नहीं होती थी जब एक मनुष्य ने स्वामी दयानन्द जी से इसके अर्थ पूछे तो आपने ऐसी उत्तमता से उसकी व्याख्या की कि सब श्रोता चकित होगये। स्वामी कैलाश पर्वत ने आपकी विद्या की प्रशंसा की और लोगों को कहा कि यदि कुछ पढ़ना हो तो इस साधु से पढ़ा करो उस दिन से कई मनुष्य पढ़ने के लिये आने लगे।

पञ्चदशी ग्रन्थ में अश्रद्धा होनी

कुछ दिनों तक स्वामीजी ने यहां गीता की कथा सुनाई जो दिवाली के दिवस समाप्त हुई यह देवी भागवत में से भी कुछ सुनाया करते थे फिर लोगों के कहने पर पञ्चदशी ग्रन्थ की कथा प्रारम्भ की कथा सुनाते २ कहीं यह आगया कि ईश्वर को भी भ्रम होजाता है इसको देखते ही आपने पुस्तक हाथ से रखदी और कहा जिसको भ्रम फिर वह ईश्वर कैसा? मैं इस को नहीं पढूंगा यह मनुष्यकृत है ऋषिकृत नहीं, मुझे गुरु की आज्ञा है कि आर्षकृत ग्रन्थों को पढ़ूं और सुनाऊं।

संध्या की पुस्तक का बनाना

यहां पर स्वामीजी ने एक संध्या पुस्तक भी बनाई थी जिसको रूपलाल नामी एक पुरुष ने छपवाकर ३०००० के अनुमान पुस्तक मुफ्त बांटी थीं, स्वामीजी आगरे में दो वर्ष के लगभग रहे थे समय २ पर आप स्वामी विरजानन्द के पास स्वयं जाकर या पत्र द्वारा शंका समाधान करते रहे।

रोग के निवारणार्थ योग की न्यौली क्रिया का करना

स्वामीजी ने आगरे में कई मनुष्यों को योग क्रिया सिखाना प्रारंभ कर दिया था परन्तु जब वहां से जाने लगे तो सब को छुड़ादी और कहा कि तुम गृहस्थ हो नियम पूर्वक नहीं रह सकोगे ऐसा न हो कि हमारे जाने के पश्चात् तुम को कोई रोग उत्पन्न होजावे। एक दिन स्वामी जी के पांव पर कुछ फुन्सियें निकलीं जिनको देखकर वह कहने लगे कि उदर में विकार होगया है चलो न्यौली क्रिया करें और तीन चार पुरुषों को साथ लेकर राजघाट यमुना तट पर जाकर जल में बैठ मूलद्वार से तीन दफे जल चढ़ाया और निकाल २ दिया पहिली वार जल दुर्गंध युक्त था, दूसरी वार पीलासा, तीसरी वार बिलकुल सफेद निकला। जल चढ़ाने के पश्चात् नाभि चक्र घुमाते थे और नदी से बाहर निकलकर जल निकाल देते थे इस क्रिया के विषय में स्वामीजी कहते थे कि हमने एक कनफटे योगी से विन्ध्याचल पर नर्मदा के किनारे बड़े परिश्रम से बहुत दिवस उसके पास रहकर सीखी थी। आगरे में स्वामीजी के पास एक नौकर था जो कि हठयोग के ८४ आसन जानता था ये कभी २ उसका यह तमाशा देखा करते थे।

मूर्तिपूजा का खण्डन करना

स्वामीजी बराबर मूर्त्तिपूजन का खण्डन किया करते थे जिसके प्रभाव से दो प्रतिष्ठित, पण्डितों ने स्पष्ट कहदिया था कि यह ठीक नहीं है परन्तु हम जीविकावश नहीं कह सके। इनके उपदेश से राय सुंदर-लाल आदि कई बड़े २ आदमियों ने मूर्त्तिपूजा छोड़दी स्वामीजी सायं और प्रातः समाधि लगाते थे।

वेदों की खोज में भ्रमण करना

आगरे से वेदों की तलाश में स्वामीजी धौलपुर पहुंचे। धौलपुर से स्वामीजी चार विद्यार्थियों सहित लशकरग्वालियर में पहुंचे। सन् १८६५ के आरम्भ में महाराजा साहिब ने अपनी राजधानी में भागवत की सप्ताह को बड़ी धूमधाम से बिठलाया था स्वामीजी के पधारने पर महाराज साहब ने अपने आदमियों द्वारा उनसे भागवत की सप्ताह का माहात्म्य पूछा स्वामीजी ने उत्तर दिया कि सिवाय दुःख उठाने और कष्ट पाने के और कोई फल नहीं चाहे करके देखलो, यह सुनकर महाराज साहब हँस पड़े और कहा कि आप समर्थ हैं जो चाहें सो कहें हम तो सब तय्यारी करचुके हैं जब स्वामीजी को कथा में आने के लिये कहा

तो स्वामीजी ने यह कहला भेजा कि गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिये परन्तु महाराज ने यह कहकर टाल दिया कि जो कुछ तय्यारी होनी थी होगई अब नहीं टाल सके। एक ओर तो बड़ी धूमधाम से कई स्थानों पर बड़े २ सजधज के मंडपों में काशी, पूना, अहमदाबाद, सितारा, नासिक आदि के आये हुए बड़े २ पण्डित कथा बांच रहे थे जिनको दो लाख रुपये तक महाराज ने दक्षिणा दी और बड़ा आदर और सन्मान किया ॥

राजा के विरुद्ध भागवत का खण्डन करना।

सारी रियासत इस उत्सव में लगी हुई थी दूसरी ओर स्वामी दयानन्द बिना किसी की सहायता के रामकुई पर उसी भागवत का खण्डन कर रहे थे जिस के लिये यह आडंबर रचे गये थे महारा[illegible] राज का भय था फिर भी बहुत लोग सुनने आते थे और उनकी धारा प्रवाह सं[illegible] को सुन दंग रह जाते थे और अपने हृदय में उपदेशों की सत्यता का अनुभव कर[illegible] जिस रात सप्ताह की कथा समाप्त हुई रियासत में खुशी के डंके बजे परंतु थोड़ी [illegible]

रंग में भंग

में यह खुशी शोक से बदल गई अर्थात् महारानी साहब का [illegible] महीने का गर्भपात हो गया और इसी महीने में शहर में बड़े ज़ोर शोर से [illegible] फैल गया और छोटे महाराज कुमार का जिन की दीर्घायु के लिये यह कथा [illegible] लाई गई थी और जिनको पण्डितों ने आशीर्वाद दिया था शोक है कि देहान्त [illegible] गया !! सारी राजधानी में हाहाकार मच गया ॥

शास्त्रार्थ के विज्ञापन से हिन्दू पण्डितों का पलायन।

स्वामीजी ७ मई सन् १८६५ ई० तक बाबा साहब के बाग में रहे [illegible] राबर शास्त्रार्थ के विज्ञापन देते रहे परन्तु बड़े २ नामी पण्डितों होते हुए भी किसी ने शास्त्रार्थ नहीं किया। रामाचार्य्य, गोपालचार्य्य तो सुनकर नासिक को चले गये और नाना पौराणिक, ढूंढू शास्त्री, रावजी शास्त्री बार २ ललकारे जाने पर भी सामने नहीं आये ॥

करौली पधारना।

ग्वालियर से स्वामीजी करौली पधारे और राजा साहिब से धर्म्म विषय पर वार्तालाप होती रही कई पण्डितों से भी शास्त्रार्थ हुआ यहां कई महीने ठहर कर स्वामीजी ने वेदों का दुबारा अभ्यास किया यहां से जयपुर को पधारे ॥

जयपुर पधारना।

जयपुर में स्वामीजी रामकुमार और नंदराम मोदी के बाग़ में उतरे इनके साथ ३ विद्यार्थी भी थे, एक गोपालानन्द परमहंस ने जो घाट में रहते थे जीवब्रह्मविषयक कुछ प्रश्न लिखकर भेजे उनके उत्तर स्वामीजी ने ऐसी योग्यता से लिखकर भेजे कि गोपालानन्दजी ऐसे प्रसन्न हुये कि घाट का निवास त्याग स्वामीजी के पास ही आ ठहरे और प्रतिदिन अपनी शंकायें निवृत्त करने लगे, इसके

पश्चात् अवधूतनाथजी के शिष्य लक्ष्मणनाथजी जिनको महाराज रामसिंहजी जोधपुर से लाये थे स्वामीजी के साथ बृजनन्दजी के मन्दिर में सम्भाषण हुआ लक्ष्मणनाथजी ने स्वामीजी को शास्त्रसम्पन्न और योगी समझ कर निवेदन किया कि आप कृपा कर इसी मंदिर में रहें और सम्प्रदायी लोगों के शास्त्रार्थ में हम को सहायता दें स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यदि शास्त्रार्थ में मैं बुलाया जाऊंगा तो अपनी सम्मति के अनुकूल कथन करूंगा फिर स्वामीजी ने व्याकरण के दस या पन्द्रह प्रश्न लिख कर जयपुर की संस्कृत पाठशाला में पंडितों के पास भेजे पंडित महाशयों ने इनके उत्तर में गाली गलौज के सिवाय और कुछ नहीं लिखा स्वामीजी ने इस पत्र में आठ प्रकार के दोष निकाल कर हरिश्चन्द्रादि महान् पुरुषों के पास भेज दिये उस पत्र को पढ़ कर सब ने अत्यन्त शोक प्रकट किया और पत्र का कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

शास्त्रार्थ में पंडितों को निरुत्तर करना

फिर सब पंडित एकत्रित होकर व्यास बख्शीरामजी के पास गये और कहा कि हमारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करवादो पंडितों के कहने से व्यासजी ने स्वामीजी को महलों में बुलवाया सब पंडित भी एकत्रित हुए और शास्त्रार्थ होने लगा अंत में पंडित निरुत्तर होकर चुप हो गये और एक मैथिल पंडित ने कहा कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है स्वामीजी ने उस को यही बात लिख देने के लिये कहा परंतु उन्हों ने नहीं लिखा और रात्रि विशेष हो गई यह बहाना कर के चुप हो गये॥

जैनगुरु को परास्त करना।

इस के पश्चात् जैनियों के एक गुरु ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की परंतु वह स्वामीजी को अपने मकान पर ही बुलाना चाहता था इस कारण मौखिक शास्त्रार्थ न हुआ और स्वामीजी ने १५ प्रश्न लिख कर उसके पास भेज दिये जिनका उत्तर यतीजी से न बन पड़ा परंतु उन्होंने ८ प्रश्न लिख कर स्वामीजी के पास भेज दिये जिनका उत्तर स्वामीजी ने बड़ी योग्यता से दिया।

अचरौल के ठाकुर को उपदेश करना

अचरौल के ठाकुर रणजीत सिंहजी को साधुओं से बहुत प्रीति थी स्वामीजी से मिलने के पहिले वह राधाकृष्ण को मानते और उन्हीं का भजन किया करते थे। एक ठाकुर हमीरसिंह जी राज बीकानेर के रहने वाले किसी मुकद्दमे में जयपुर आये हुए थे वह स्वामीजी से परिचित थे और मूर्त्तिपूजा की पोल से विज्ञ थे इन्होंने अचरौल ठाकुर साहब को समझाया जिस पर उन्हों ने पूछा कि तो फिर हम किस से सत् उपदेश लें ठाकुर हमीरसिंह ने स्वामीजी का नाम बतलाया इस पर वे स्वामीजी से मिले और दूसरे दिन मझोली अपने आदमी

के साथ भेज स्वामीजी को बुलवाया स्वामीजी भी निमंत्रण मान कर पैदल चले आये वार्त्तालाप करने से ठाकुर साहब के बहुत से संदेह निवृत्त होगये और मूर्त्तिपूजा से विश्वास हटगया। ठाकुर साहब ने निवेदन किया कि जब तक आप जयपुर में रहें मेरे यहां ही रहें स्वामीजी ४ रोज़ महलों में रहे परंतु एकान्त स्थान न देखकर बाग़ में चले गये।

सदुपदेश से मद्य मांस छुड़ाना।

यहां नगर के बहुत से विद्यार्थी और खुद ठाकुर साहब प्रति दिवस स्वामीजी के पास जाकर मनुस्मृति, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि उपनिषद् श्रवण किया करते थे इन उपदेशों के प्रभाव से हीरालालजी कायस्थ कामदार ठाकुर साहब ने मदिरा पीना और मांस खाना बिलकुल छोड़ दिया।

भागवत के खण्डन में एक पत्र छपाना

स्वामीजी चार मास के लगभग जयपुर में रहे उपनिषद् और गीता की कथा किया करते थे मूर्त्ति पूजा का खण्डन करके कहा करते थे कि परमात्मा का ध्यान मन में करो यहां पर इन्हों ने एक पत्र भागवत के खंडन मे छपवाया था जिस में लिखा था कि महात्मा श्रीकृष्ण पर जो कलंक भागवत में लगाये गये हैं वे सर्वथा मिथ्या हैं एक परचा तत्वबोध का लिख कर ठाकुर साहब को दिया था इन दिनों में स्वामीजी वेदान्त का उपदेश किया करते और निराकार परमात्मा को शिव नाम से बतलाया करते थे पार्वती के पति शिव का कुछ वर्णन नहीं था।

वैष्णव मत का खंडन और शैव मत का मंडन करना।

इन्ही दिनों महाराजा रामसिंहजी वैष्णवों और शैवों का शास्त्रार्थ करा रहे थे शैवमत का स्थापन और अन्य मूर्त्तियों का तिरस्कार प्रारंभ करदिया था व्यास बख़्शीराम और उनके भाई कनीराम इस काम के अधिष्ठाता थे इन लोगों ने पंडितों के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ था उस में भले प्रकार देख लिया था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती विद्या में पूर्ण हैं यदि यह हमारे पक्ष में हो जांय तो फिर किसी का भय नहीं ऐसा विचार कर ये स्वामीजी के पास गये और वार्त्तालाप करके पीछे चले आये और महलों में जाकर महाराजा रामसिंहजी से स्वामीजी के समाचार कहे महाराजा साहब ने कहा कि ठाकुर रणजीतसिंह जी द्वारा स्वामीजी को महलों में बुलाओ ठाकुर रणजीतसिंहजी ने स्वामीजी को पधारने के लिये निवेदन किया तब स्वामीजी ने जाना स्वीकार किया प्रातःकाल कनीराम व्यास स्वामीजी के पास आया तब उसको १० बजे चलने के लिये कहा और नियत समय पर पीनस पर सवार होकर गये और राजराजेश्वर के मंदिर में जाकर बैठे परन्तु मूर्ति को नमस्कार न किया। व्यास बख़्शीराम ने कहा कि मैं महाराजा साहब को आपके पधारने की सूचना देता हूं इतने ही में किसी म-

तुष्य ने वक्षीराम व्यास से कहा कि ये स्वामी तो हर प्रकार की मूर्त्तियों को उखाडना चाहते हैं अगर तुमने इनका दखल यहां करा दिया तो तुम्हारा सब कारखाना भ्रष्ट करा देंगे इन सब बातों से उस को शंका उत्पन्न हो गई और उसने बहाने बनाकर स्वामीजी को महाराज से न मिलने दिया तब स्वामीजी ने कहा कि हमें महाराज की क्या परवा है हम कभी मिलने नहीं जावेंगे स्वामीजी ने वैष्णव मत का खण्डन करके शैवमत की स्थापना की जयपुर के महाराजा रामसिंहजी ने भी शैवमत को ग्रहण किया जिससे यह बहुत फैला और हज़ारों रुद्राक्ष की मालायें लोगों के गले में पड़ गईं यहां तक कि हाथी घोड़ों के गले भी इससे खाली नहीं रहे ॥

कृष्णगढ़ होते हुए अजमेर पधारना।

स्वामीजी ४॥ मास के लगभग जयपुर में रहे जिससे अचरौल के ठाकुर के अतिरिक्त अन्य सरदारों की भक्ति भी स्वामीजी में उत्पन्न हुई। स्वामीजी चैत्र के महीने में बगरु के ठाकुर साहब के यहां गये और वहां दो रोज़ निवास करके दूदू को पधारे ठाकुर इन्द्रसिंहजी रईस दूदू ने दो दिवस तक उपदेश श्रवण किया और उनके शिष्य हुये। यहां से रवाने होकर स्वामीजी रियासत कृष्णगढ़ में पहुंचे और दो दिन के पीछे वहां से अजमेर पधारे और राय दौलतरामजी के बाग़ में रह कर पुष्कर पधारे ॥

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त और मूर्त्तिपूजा का खण्डन।

चैत कृष्णपक्ष संवत् १९२३ ता० १२ व १३ मार्च सन् १८६६ को स्वामीजी पुष्कर पहुंचे और वहां ब्रह्माजी के विशाल मंदिर में उतरे यहां उन्होंने खुल्लमखुल्ला मूर्त्तिपूजा का खण्डन प्रारम्भ कर दिया जिस पर बहुत से ब्राह्मण शास्त्रार्थ करने को आये परन्तु जब कोई भी सामने न ठहर सका तो सब मिलकर बंकट शास्त्री के पास जो कि नाग पहाड़ की एक कंदरा में रहता था गये, इसने स्वामीजी के सन्मुख जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया परन्तु जब वह नहीं आया तो स्वामीजी स्वयं उसके पास चले गये इस समय ३०० व ४०० के अनुमान ब्राह्मण उपस्थित थे पहिले भागवत के विषय पर बातचीत हुई बंकट शास्त्री ने मंडन किया और स्वामीजी ने धाराप्रवाह संस्कृत में प्रबल युक्तियों से ऐसा खण्डन किया कि शास्त्रीजी इस विषय को छोड़ साधारण पण्डितों की नाईं शुद्धि और अशुद्धि पर उतर पड़े। एक घंटे तक व्याकरण विषयक बातचीत रही अन्तको स्वामीजी का कथन ही सत्य ठहरा। फिर दुर्गा के विषय पर बातचीत हुई। शास्त्रीजी ने स्वामीजी की बहुत प्रसंशा की और कहा कि आप की विद्या बहुत प्रबल है और स्वामीजी को अपने गुरु अघोरी से मिलाया यह अघोरी बड़ा लंबा चौड़ा हृष्ट पुष्ट आदमी था और लोगों को पत्थर मारा करता और गालियें दिया

करता था, मुर्दों को चिता से निकाल कर खालिया करता था, संस्कृत का अच्छा विद्वान् था। स्वामीजी की इस से बातचीत हुई उसने सब के सामने कह दिया कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं सब सत्य है और बङ्कट शास्त्री ने सब ब्राह्मणों को भाषा में कह दिया कि तुम व्यर्थ हठ मत करो ये सत्य कहते हैं यह सुनते ही सब ब्राह्मण चले गये। कहते हैं कि बङ्कटशास्त्री बालशास्त्री के बराबर नैयायिक थे इसने स्वामीजी से कहा कि जब कभी शास्त्रार्थ में काम पड़े तो मुझको लिखना मैं चला आऊंगा। स्वामीजी इन दिनों में उपनिषदों का अभ्यास करते और मार्कण्डेय ऋषि की गुफा से जो इसी पर्वत में है भस्म के गोले मंगवा कर अपने बदन पर मला करते थे।

कंठियें तुड़वाना

मूर्त्ति पूजा, पुराणों और कंठीतिलक का निषेध करते थे यहां तक कि बहुत से मनुष्यों की कंठियें तुड़वा कर ब्रह्मा के मंदिर के एक कोने में ढेर लगवा दिया था जिससे पुष्कर में बड़ी खलबली पड़ गई थी लोग भगकर बङ्कट शास्त्री के पास पहुंचे कि आप स्वामीजी को समझावें परंतु उसने उत्तर दिया कि बात उसकी अच्छी है परंतु यह चलेगी उसी समय जब कि कोई राजा उनका शिष्य होजावेगा।

एक पुजारी को उपदेश से ईश्वरभक्त बनाना।

स्वामीजी सत्य उपदेश करने में ऐसे निर्भय थे कि पुजारी को कहा करते थे कि अरे तेरा ब्रह्मा मुंह से बोलता है या बात करता है? फिर पूजा करने से क्या लाभ और चमड़ा कूटने से (नक्कारे बजाने) और कांसी पीटने (झांझ बजाने) से क्या लाभ? तेरे पास यह ढाई मन की मूर्त्ति मानों पारस पत्थर है रंडी भडुवों से द्रव्य को बचा साधुओं को लड्डू खिलाया कर। स्वामीजी के उपदेश से पुजारी ने पूजा करना, घाट पर मांगना और कंठी बांधना छोड़ दिया और डाकखाने की नौकरी कर स्वामीजी के बतलाये हुए ईश्वर के सच्चे नाम सच्चिदानन्द का जप करने लगा स्वामी रत्नगिरी व अन्य संन्यासियों को भी कहा करते थे कि आप लोग विद्याध्ययन करके सत्य का मण्डन करें खीर पूरी के जाने का भय न करें विद्या से यह ज्यादा मिलेगी।

रामानुजीय मतका खण्डन करना।

स्वामीजी रामानुज सम्प्रदाय वालों का विशेष खंडन किया करते थे इन्हों ने शास्त्रार्थ के लिये विज्ञापन भी दिया परंतु कोई रामानुजी नहीं आया स्वामी कहा करते थे कि "अतप्त तनूः स्वर्गं गच्छति" का अर्थ यह नहीं है कि शरीर दग्ध करने से स्वर्ग मिलता है वरन यह है कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपावे और मन को विषयों से रोक कर जप आदि में लगावे तब सुख को प्राप्त होता है।

द्राविड़ संन्यासी को शास्त्रार्थ से हटाना

एक ब्राह्मण जो सब संन्यासियों का पुरोहित कहलाता है स्वामीजी के पास भी गया और सरटीफिकेट के तौर पर एक श्लोक लिखवाना चाहा परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अरे ! क्या तू हमारा पुरोहित बनता है ? यह कहकर टाल दिया इन दिनों चन्द्रघाट पर एक द्रावड़ी संन्यासी आया हुआ था जो पुराणों की कथा करवाकर ब्राह्मणों को भोजन करवाया करता था स्वामीजी इससे शास्त्रार्थ करने के लिये २०० के अनुमान ब्राह्मणों को संग लेकर वहां गये परन्तु यह सामने नहीं आया। स्वामीजी २२ दिवस के अनुमान पुष्कर में रहे। एक दिन ब्रह्माजी के बड़े पुजारी ने ब्रह्मा को भोग लगाकर दूध स्वामीजी को पिला दिया जब स्वामीजी को यह बात मालूम हुई तो उससे कहा कि अरे ! पत्थर को भोग लगाकर हमको पिला दिया ? इस पर वह क्रुद्ध होगया और फिर कभी दूध नहीं पिलाया स्वामीजी भिन्न २ आचार्य्यों के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्रों के लिये कहा करते थे कि ये उनके बनाये हुए नहीं लोगों ने उनका नाम डाल दिया है कि वे प्रचलित होजांय। भागवत व्यासजी का बनाया हुआ नहीं है वरन वोपदेव का। हम उस शिव को मानते हैं जिसका नाम कल्याणकारी है, पार्वती के पति को नहीं।

यहां से स्वामीजी का विचार मारवाड़ की ओर जाने का था और एक दिन जोधपुर का वकील भी प्रार्थना करने आया था परन्तु इन्हीं दिनों में अचरौल के ठाकुर साहब का आदमी स्वामीजी को लेने के लिये आगया क्योंकि जयपुर के महाराज लाट साहब से मिलने के लिये आगरे जाने वाले थे। वृन्दावन में रंगाचार्य्य नामी एक पंडित रहता था उससे कहीं शास्त्रार्थ न होजाय इसलिये महाराज ने स्वामीजी को ठाकुर साहब द्वारा बुलवाया था।

फिर अजमेर पधारना और मूर्त्तिपूजा आदि के खण्डन का विज्ञापन देना

द्वितीय ज्येष्ठ संवत् १९२३ तथा ३० मई सन् १८६६ ई० को स्वामीजी पुष्कर से अजमेर आये और वंशीलालजी सरिश्तेदार के बाग में ठहरे उस समय इनके साथ ६ आदमी थे स्वामीजी ने नगर में विज्ञापन लगवा दिया कि जिस किसी को मूर्त्तिपूजा आदि पर शंका हो वह हमसे आकर शास्त्रार्थ करले कुछ लोगों ने कोलाहल मचाया परन्तु सन्मुख कोई नहीं आया यह प्रश्न लिखकर भेज दिये कि संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये बग्गी पर सवार नहीं होना चाहिये, स्वामीजी ने उनका युक्ति और शास्त्र प्रमाणों से उत्तर दिया कि जहां अन्धकार फैला हुआ हो वहां संन्यासी को उपदेश के लिये अधिक ठहरना चाहिये और उस पत्र की बहुतसी अशुद्धियें निकाल कर भी भेज दीं स्वामीजी भागवत को भडुवा

पुराण और मंदिरों को अड्डा बतलाते थे मालाओं को गले में काष्ठ का भार बतलाया करते थे इस पर बहुत से मनुष्यों ने भागवत की अशुद्धियों का पता पूछा जिस पर उन्होंने ३-४ पन्ने अपने हाथ से लिखकर दो एक आदमियों को दिये ।

पादरियों के साथ शास्त्रार्थ करना।

यहां पर स्वामीजी का शास्त्रार्थ पादरी ग्रे, रोबिन्सन और शूलब्रेड साहब से ३ दिनों तक ईश्वर, जीव, सृष्टिकर्म्म और वेद विषयों पर होता रहा स्वामीजी ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया चौथे दिवस ईसा के ईश्वर होने और मरने के पश्चात् जीवित हो आकाश पर चढ़ जाने विषयक प्रश्न किये, पादरियों से कुछ उत्तर बन नहीं पड़ा इस पर स्कूल के लड़कों ने ताली पीट दी परन्तु स्वामीजी ने रोक दिया फिर भी पादरी लोग शास्त्रार्थ के लिये दूसरे रोज़ नहीं आये इस शास्त्रार्थ में पादरियों ने एक वेद मन्त्र का प्रमाण दिया था परंतु जब स्वामीजी ने उसको वेद में बतलाने के लिये कहा तो नहीं बतलासके फिर स्वामीजी बड़े पादरी रोबिन्सन से मिलने के लिये गये जिसने यह पूछा कि ब्रह्माजी ने जो अपनी पुत्री से व्यभिचार किया उसका क्या उत्तर है ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि क्या एक ही नाम के बहुत से मनुष्य नहीं होते ? क्या प्रमाण है कि यह वे ही ब्रह्मा थे ? प्राचीन शास्त्रों से सिद्ध है कि महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे इस पर पादरी साहब ने प्रसन्न होकर एक पत्र लिख दिया कि स्वामी दयानन्द वेदों के एक प्रसिद्ध पंडित हैं हमने अपनी सारी उमर में ऐसा संस्कृत का विद्वान् नहीं देखा ऐसे मनुष्य संसार में कम होते हैं जो इनसे मिलेगा बहुत लाभ उठावेगा जो कोई इनसे मिले तो बहुत सन्मान करे ॥

कमिश्नर आदि कई बड़े२ अफसरों से मिलना।

स्वामीजी मेजर ए० जी० डेविड्सन साहब बहादुर कमिश्नर अजमेर से भी मिलने गये थे बात चीत में आपने कहा कि राजा प्रजा का पिता है और प्रजा उसकी पुत्र, जब पुत्र कोई खोटा काम करने लगे तो पिता का धर्म्म है कि उसको बचावे आप राजा हैं देश में अन्धकार फैल रहा है मतमतान्तर के लोग आपकी प्रजा को लूट लूट कर खारहे हैं आपको उस का प्रबन्ध करना चाहिये साहब ने उत्तर दिया कि यह धर्म्म सम्बन्धी विषय है गवर्नमेंट इस में हस्तक्षेप नहीं कर सक्ती यदि कोई ख़ास बात हो तो हम आप को सहायता देसके हैं ।

कर्नल ब्रुक साहब से गोरक्षा पर बातचीत करना।

इसके पश्चात् आप रेप्टन साहब असिस्टेन्ट कमिश्नर से भी मिले स्वामीजी की मुलाकात कर्नल ब्रुक से जो एक विख्यात एजन्ट गवर्नर जनरल हु[illegible] ई यह साहब गैरवे वस्त्र वालों से बहुत चि-

हुते थे एक दिन जब स्वामी जी बाग़ में कुरसी पर बैठे हुए थे तो साहब बहादुर उधर चले आये लोगों ने कुरसी हटा लेने के लिये कहा परन्तु स्वामीजी ने उलटी आगे बढ़ाली वह देखते २ अंदर घुस आया, लोग घबराने लगे स्वामीजी ने कहा कुछ परवा नहीं आने दो और आप उनके आने के पूर्व ही कुरसी पर से उठ कर टहलने लगे ताकि ताज़ीम आदि का रगड़ा न रहे वे आते ही टोपी उतार स्वामीजी से हाथ मिला सामने की कुरसी पर बैठ गये और बातें करने लगे स्वामीजी ने पूछा कि आप लोग धर्म्म को स्थापन करते हो या खंडन? साहब ने उत्तर दिया कि धर्म्म का स्थापन करना तो हमारे यहां भी अच्छा है परन्तु जिसमें लाभ हो वह करते हैं। स्वामीजी ने कहा कि आप लाभ की बात नहीं करते, हानि करते हैं। साहब ने पूछा कि कैसे? स्वामीजी ने कहा कि एक गौ से कितना लाभ होता है और उसको मार खाने से कितनी हानि? तब एजन्ट साहब ने कहा कि होती तो हानि ही है तब स्वामी ने कहा कि आप गोवध क्यों करते हो? तब उन्होंने कहा कि यह बात हम भी ठीक मानते हैं। आप कल हमारे बंगले पर आवें वहां हम वार्त्तालाप करेंगे। फिर साहब चले गये। दूसरे दिन साहब बहादुर के यहां से गाड़ी आई और स्वामीजी जोषी रामस्वरूप के साथ बंगले पर गये, पौन घंटे तक स्वामी जी की साहब से गोरक्षा विषय पर बातचीत होती रही। जब वे गोरक्षा में लाभ और हत्या में हानि मान चुके तो स्वामीजी ने कहा कि फिर आप इसको बंद क्यों नहीं करते? साहब ने उत्तर दिया कि महाराज! मेरा अधिकार नहीं है मैं आप को चिट्ठी देता हूं आप लाट साहब से मिलें जिस साहब को आप मेरी चिट्ठी बतलावेंगे वह आप से अवश्य मिलेगा। यह चिट्ठी लेकर स्वामीजी चले आये। साहब बहादुर ने स्वामीजी से जयपुर का हाल भी सुना था, इस कारण एक चिट्ठी उन्हों ने महाराजा रामसिंह के नाम भी भेजी कि शोक!! तुम ने ऐसे वेदवक्ता के साथ बातचीत नहीं की। इस चिट्ठी को सुनकर महाराज साहब ने बड़ा पश्चात्ताप किया और अचरौल ठाकुर साहब को बुलाकर स्वामी जी से मिलने की अभिलाषा प्रकट की और कहा कि मुझे उस समय स्वामीजी का ज्ञान नहीं था अब मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं।

दो तपस्वियों से मिलना और उनके अहंकार की परीक्षा करनी।

अजमेर में काले वर्ण के दो युवा तपस्वी नाग पहाड़ के जंगलों से स्वामीजी से मिलने आये, ये सिवाय संस्कृत के दूसरी भाषा नहीं बोलते थे। योग विषय पर कुछ बात चीत [illegible] जिस पर उन्हों ने कहा कि महाराज! हम तो बड़े शान्त हैं। स्वामीजी ने कहा [illegible] नहीं, [illegible]

अहंकार नहीं जीता। इन्हों ने कहा कि हां जीत लिया, तिस पर स्वामीजी ने अपने ब्रह्मचारी को कुछ इशारा किया जिसने बाहर जाकर किसी बात पर उन साधुओं से तकरार कर उन्हें पकड़ लिया और उनकी कुश्ती हो गई और उसने उनको और उन्होंने उसको पछाड़ा स्वामीजी और हम सब लोग बाहर गये और समझा कर छुड़ा दिया फिर अंदर बुलाकर संस्कृत में समझाया कि हम कहते थे कि तुमने अहंकार नहीं जीता, जिस पर उन्होंने क्षमा मांगी और 'नमो नारायण' कह के चले गये इन्हीं दिनों रामसनेहियों के बड़े महन्त यहां आये हुये थे, स्वामीजी ने उनको शास्त्रार्थ करने के लिये कहला भेजा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि हम से शास्त्रार्थ नहीं हो सक्ता क्योंकि दूसरे के स्थान पर तो हम जाते नहीं और यहां कोई आवे तो हम उत्थानिका अर्थात् गद्दी से उठकर ताज़ीम नहीं देते। जब स्वामीजी से जाकर यह बात कही तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमें उनकी गद्दी की आवश्यकता नहीं हम तो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। जब यह बात महन्तजी से कही तो उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि बाबा! हम तो राम २ करते हैं और रोटियें खाते हैं शास्त्रार्थ कुछ नहीं जानते, इस पर स्वामीजी ने एक पत्र संस्कृत में लिख कर भेज दिया जिसका उत्तर उन्होंने कल देने के लिये कहा परन्तु उत्तर कहां था, दूसरे दिन प्रातः काल ही अजमेर छोड़ चले गये। यहां पर देहली के एक पण्डित जो हरिश्चन्द्रजी के गुरु भाई थे उनसे मनुस्मृति और उपनिषदों पर शास्त्रार्थ होता रहा, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुये और स्वामीजी का आतिथ्य किया यहां पर स्वामीजी की जैनियों से भी छेड़छाड़ रही। स्वामीजी का चर्चा सुन कई स्त्रियें भी स्वामीजी के पास आने लगी परन्तु यह उनको नहीं आने देते थे और कहते थे कि माईयो! अपने पतियों को भेज दो। हम उनको उपदेश कर देंगे। यहां पर भी स्वामीजी ने बहुतसी कण्ठियें लोगों से तुड़वा डाली थीं सावर के ठाकुर साहब भी स्वामीजी का उपदेश सुनने आये थे और इनकी बहुत बातें मानने लगे थे स्वामीजी के पास एक ९० वर्ष का ब्रह्मचारी जिसकी भवें सफेद हो गई थीं आन ठहरा था और संस्कृत में बात चीत किया करता था॥

कृष्णगढ़ में वल्लभमत का [illegible] कर पुनः [illegible] आगमन।

अजमेर से स्वामीजी को दो एक श्रद्धालु भक्त कृष्णगढ़ लेगये और वहां जाकर उपदेश कराया यहां के राजा वल्लभकुल के सेवक हैं जब इन्हों ने अपने मत के खंडन का हाल सुना तो ठाकुर गोपालसिंहजी और बहुत से राज के पंडितों को हल्ला गुल्ला करने के लिये भेजा स्वामीजी उन के अभिप्राय को समझ गये और शौच आदि से निवृत्त हो स्नान कर भस्म

रमा लकड़ी के तख्त पर आन बैठे वे लोग भी पास आन कर बैठ गये तब स्वामीजी ने आने का कारण पूछा उन में से एक पंडित ने पुस्तक के कुछ पत्रे आगे किये स्वामीजी ने कहा कि तुम पढ़ो हम उत्तर देंगे पंडित ने पढ़े जिसका यह आशय था कि वल्लभमत सब से श्रेष्ठ है स्वामीजी ने इस का खूब खंडन किया जिसका वह कुछ उत्तर नहीं दे सके और हल्ला करने का विचार किया यह देख कर स्वामीजी तख्त पर खड़े होगये और बोले कि तुम यह न समझना कि मैं अकेला हूं मैं अकेला ही तुम्हारे लिये काफी हूं अगर शास्त्रार्थ करना है तो भी मैं तय्यार हूं शास्त्रार्थ में भी पीछे नहीं हटने का। इतने में बहुत से श्रीमाली ब्राह्मण आगये और वे लोग चले गये यहां से स्वामीजी दूधू गये और ठाकुर साहब के महलों में तीन दिवस पर्यन्त उपदेश कर बगरू को गये वहां केवल एक रात बागीचे में रह कर जयपुर को चले आये।

जयपुर में राज महल में जाना।

अचरौल ठाकुर साहब ने महाराजा रामसिंहजी को खबर कराई कि स्वामीजी महाराज पुष्कर से यहीं आगये हैं महाराज साहब ने व्यास बक्षीरामजी को भेजकर निवेदन कराया कि आप महलों में पधारें महाराज आप के दर्शन करना चाहते हैं स्वामीजी ने कहा कि व्यासजी आप भलेप्रकार जानते हैं कि मैं महलों में आने की कुछ भी इच्छा नहीं रखता यदि महाराज को कुछ संभाषण करना हो तो किसी समय कुछ काल के लिये यहीं पधार जावें व्यासजी ने महलों में जाकर इसी प्रकार महाराज से निवेदन किया पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने ठाकुर रणजीतसिंहजी से कहा कि आप स्वामीजी को महलों में लावें ठाकुर साहब बहुत से प्रतिष्ठित पुरुषों को साथ ले स्वामीजी के पास गये कि एक बार आप महलों में अवश्य ही पधारें बड़ी कठिनाई से इनके निवेदन को स्वीकार कर स्वामीजी महलों में पधारे और मोज मंदिर में जाकर विराजमान हुए वहां पर सब राजपंडित भी उपस्थित थे दैवयोग से महाराजा रामसिंह जी किसी कार्य्यवशात् ज़नाने में चले गये थे चेले ने आनकर कहा कि उनका आना अभी न होगा यह सुन कर स्वामीजी और सब आदमी उठकर चले आये इसके पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामीजी किसी तरह महलों में पधारें परन्तु स्वामीजी ने सर्वथा इन्कार किया इस दफे स्वामीजी आधे आश्विन तक यहां रहे फिर हरिद्वार का संकल्प करके आगरे की ओर रवाने हुए विदा के समय ठाकुर रणजीतसिंहजी और उनके कामदार रोने लगे तो आपने कहा कि हमने तुम्हें उपदेश रोने के लिये नहीं दिया वरन हंसने के लिये।

आगरे के दर्बार में भागवत का खण्डन कर मथुरा में गुरुजी से अन्तिम मिलाप ।

कार्तिक वदि नवमी संवत् १९२३ अर्थात् १ नवम्बर सन् १८६६ ई० के लगभग आगरे में पहुंचे यहां बड़ा भारी दरबार होने वाला था इस में देश भर के सब राजा बुलाये गये थे। स्वामीजी ने इस समय को धर्मोपदेश के लिये उत्तम समझ एक सात आठ पृष्ठों की पुस्तक भागवत खण्डन पर बना कई हज़ार कापियें उसकी छपवाई कितनी ही तो वहां दरबार में बांटीं बाकी कई हजार हरिद्वार के लिये साथ लेकर मथुरा में पहुंचे इस समय इन के साथ ५ विद्यार्थी थे, स्वामीजी अपने गुरु से मिले, और दो अशरफी और एक मलमल का थान उनके भेट किया अपनी पुस्तक गुरु जी को दिखला हरिद्वार पर जाकर धर्म्मप्रचार करने की आज्ञा मांगी विरजानन्दजी इनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें आशीर्वाद दिया स्वामीजी ने बहुतसी बातें इन से पूछीं और सत्य शास्त्रों के विषय अपने विचार भी प्रकट किये स्वामी जी का यह अपने गुरु से अन्तिम मिलाप था।

मेरठ होते हुए हरिद्वार को प्रस्थान करना ।

मथुरा में कुछ दिवस रहने के पश्चात् स्वामीजी मेरठ पधारे वहां पंडित गंगारामजी रईस से मिले और एक देवी के मंदिर में ठहरे एक ब्रह्मचारी साथ था गोरक्षा और वेदों के पढ़ाने की बहुत रुचि थी, पंडित गंगारामजी ने कृष्णाभ्रक के विषय इन से पूछा इन्हों ने एक पुड़िया दी तब पंडितजी ने कहा कि महाराज कामदेव तो सब को खराब करे है तुम क्यों कर बचे हो। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका विधान है यदि नियम पूर्वक रहे तो कामदेव मंद होजाता है, जब चढ़ जाता है तब नहीं उतरता। विधान यह है कि मनुष्य एक स्थान पर रहे कहीं नाच व तमाशे में न जाय न स्त्रियों की ओर देखे। विषय भोग से बचता है, जप [illegible] रात दिन करे जब बहुत आलस्य हो सोजाय यह सुषुप्ति की [illegible] होती है फिर सुषुप्ति के दो घंटे बाद उठकर भजन शुरू करदे अधिक सोने से [illegible] उत्पन्न होजाता है प्रातःकाल शौच से निवृत्त हो के ५ दाने [illegible] के खाया करे न तो बुरा देखे, न बुरा सुने और न स्मृति दौड़ावे परम ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहे। यहां से रवाने होकर स्वामीजी हरिद्वार की ओर पधारे।

स्वामीजी महाराज का इस समय तक का अनुभव।

अखीर फागुन संवत् १९२३ तक स्वामीजी ने यह निश्चय कर लिया कि निम्न-लिखित बातें सत्य सनातन वैदिकधर्म और ऋषि आचरण के विरुद्ध हैं:—

१ सर्व प्रकार की मूर्त्तिपूजा।
२ वाममार्ग।
३ वैष्णवमत।
४ चोलीमार्ग।
५ बीजमार्ग।
६ अवतार।
७ कंठी।
८ तिलक, छाप।
९ माला।
१० पुराण, उप पुराण।
११ शंख, चक्र, गदा, पद्म को तप्त करके दग्ध करना।
१२ गंगा आदि नदियों से पाप का कटना।
१३ काशी आदि क्षेत्रों से मुक्ति का मिलना।
१४ नाम स्मरण और एकादशी आदि व्रतों से भवसागर पार उतरना।

हरिद्वार का वर्णन।

यह हरिद्वार हिन्दुओं की उन पवित्र सात पुरियों में से है जिन का वृत्तान्त जहां तहां पुराणों में माहात्म्य के तौर पर आया है यहां तक कि कालिदास की कविता की अनुपम छटा का प्रसिद्ध काव्य मेघदूत भी इसके वर्णन से खाली नहीं रहा क्यों रहे जब कि कुदरत ने इस को ऐसा रमणीक स्थान प्रदान किया जहां पहाड़ी और मैदानी दोनों दृश्य अपूर्व हैं इसकी अनुपम छवि को देखकर ही लोगों ने इस का नाम हरिद्वार अर्थात् वैकुंठ का दर्वाज़ा ही मान लिया, गंगा यहां पर ही पर्वतों को चीर कर निकली है और अपना अपूर्व दृश्य मनुष्यों को दिखलाया है और इसी स्थान पर नहाने का बड़ा माहात्म्य माना गया है इसके दोनों ओर पर्वतों ने गंगा के जोबन को दुगना कर दिया है और नहर ने सोने में सुगन्ध का काम किया है यहां पर मनुष्य अद्भुतसृष्टि की विचित्रता को देखकर उस बनाने वाले महान् पुरुष की ओर ध्यान दौड़ाता है। ऐसे सुन्दर स्थान में प्रत्येक १२ वर्ष के पश्चात् [illegible] मेला होता है जो कि कुंभ के नाम से प्रसिद्ध है जिस में लाखों मनुष्य गंगा में स्नान से मुक्ति मानने वाले इकट्ठे होते हैं और अपने भिन्न२ प्रकार के आचरण व व्यवहारों से भारत की अधोगति का जीता जागता दृश्य दिखला[illegible]। इसी मेले में हज़ारों त्यागी साधु कहलाकर भी सैकड़ों हाथी, घोड़े, पालकी [illegible] आदि

सर्व त्यागी दयानन्दर्षिः

राजसी ठाठ से निकलते हैं, हज़ारों लज्जा को भी लज्जित करके नंगे मादरज़ाद बाज़ारों में स्त्रियों के सन्मुख होकर निकलते हैं, हज़ारों पहिले स्नान करने के बहाने लड़ाई झगड़ा कर अपनी अविद्या का परिचय देते हैं और अन्य मतावलंबियों के हास्य के पात्र बनते हैं जैसा कि जहांगीर ने अपनी तुज़क जहांगीरी में इस मेले के वृत्तान्त में लिखा है। यह मेला अन्य मेलों की अपेक्षा प्राचीन प्रतीत पड़ता है इस तीर्थ का पता सातवीं शताब्दी तक चलता है क्योंकि इस का वृत्तान्त चीन के प्रसिद्ध पथिक हुवानथिसांग ने भी लिखा है।

जिस स्थान का नाम हर की पैड़ी रक्खा गया है उसके थोड़े ऊपरी पहाड़ों को देखने से प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में कोई बुद्धिमान् इंजीनियर पहाड़ों को काट गंगा को इस स्थान पर लाया है, अनुमान से यह इंजीनियर भगीरथ ही हुआ था, पहाड़ तो कनखल के पास ही समाप्त होजाते हैं और नदी वहां से आगे मैदान ही मैदान में चली जाती है और जिस स्थान पर नदी के बहाव को रोक कर उसके पानी का बहुतसा भाग नहर में लेगये हैं वह मनुष्य को चकित करता है। गंगा का पानी बर्फीला और बिना मेल होने के कारण निर्मल और मीठा है और क्षुधा को बढ़ाता है इन गुणों के कारण भोले मनुष्यों ने इसमें स्नान करने से पापों का कटजाना मान लिया है और हरिद्वार की पैड़ियों पर स्नान करने में बड़ा माहात्म्य गिनते हैं और पर्वों और कुम्भ पर (जो १२ वें वर्ष हुआ करता है) इतना बड़ा मेला लगता है कि शायद ही दूसरे स्थान पर लगता हो। हरिद्वार पर्वतों के पिता हिमालय के चरणों में होने के कारण ऐसा रमणीय है कि प्राचीन ऋषि मुनियों ने सत्संग के लिये इसको एक मुख्य तीर्थ स्थान बनाया।

मेले में पाखण्ड खंडनी झंडी गाडना

सारांश यह है कि ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देने के लिये ही स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी विद्या में निपुण होकर मतमतान्तरों पर विचार करते हुए कुंभ की संक्रान्ति से एक मास पूर्व अर्थात् १२ मार्च सन् १८६७ को हरिद्वार में पहुंचगये। एक विश्वेश्वरानन्द दूसरे शंकरानन्द और ईश्वरीप्रसाद ब्राह्मण गौड़ और ५ या ६ दूसरे आदमी साथ थे। स्वामीजी ने हृषीकेश के मार्ग पर जो कि एक प्रसिद्ध तीर्थ का स्थान है सप्तस्रोत के निकट बाड़ा बनवा उसमें आठ दस छप्पर डलवा वहां डेरा डालदिया और एक झंडी गाडदी जिसका नाम "पाखंडखंडनी" रक्खा।

स्वामी विशुद्धानन्द कृत असत्यार्थ का खण्डन करना।

आर्य्यावर्त्त के अनेक मत मतान्तरों के प्रतिनिधि भी वहां उपस्थित थे और सब आपस में लड़ते थे प्रत्येक मनुष्य अपनी ही बड़ाई करता था और एक दूसरे को भला बुरा कहता था बहुत से

राजा महाराजा इस अवसर पर आये थे स्वामी विशुद्धानंद काशी के प्रसिद्ध संन्यासी भी आये हुए थे यह स्वामी समस्त पौराणिक पण्डितों के गुरु थे महाराजा जम्बू काश्मीर भी इनके चेलों में से थे। विशुद्धानंद ने पुरुषसूक्त में से वेद की उस ऋचा का जिस में जातियों का वर्णन है यह अर्थ किया कि ब्राह्मण परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है स्वामीजी ने यह अर्थ सुनकर उसका खंडन किया और कहा कि यदि यह अर्थ ठीक हो तो पापी भी उसी मुख से उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण मुख से उत्पन्न नहीं हुए वरन ब्राह्मण, वर्णों में मुख के समान हैं क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा, और शूद्र पांव। इसपर लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि यह नास्तिक है, वेदों का खण्डन करता है। इसके पश्चात् गुसांइयों और विशुद्धानन्द में झगड़ा होगया गुसांईयों ने विशुद्धानन्द पर नालिश की और स्वामीजी के पास सहायतार्थ आये परंतु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम न तुम्हारे न विशुद्धानन्द के पक्ष के हैं सत्य की ओर हैं। उस समय कैलाश पर्वत भी उपस्थित थे।

इस पौराणिक मेले में स्वामीजी के पास क्या गृहस्थ, क्या साधु क्या संन्यासी, क्या पंडित सबही आते थे और उपदेश सुन चले जाते थे कोई २ शंका समाधान व शास्त्रार्थ भी करता था परंतु अंत में निरुत्तर हो दांत पीस रहजाते थे और घर को पीछे चले जाते थे मनही मन में कहते जाते थे कि शोक! हिन्दू मा बाप से पैदा होकर और उस पर भी संन्यासी होकर ऐसा काम करता है क्या करें अंगरेज़ी राज्य है नहीं तो अभी इसको मज़ा चखा देते। पंडों के कलेजे पर तो सांप लोटता था परंतु कुछ कर नहीं सके थे यही कहते थे कि घोर कलियुग आगया। एक दिन एक पंजाबी ब्रह्मचारी स्वामीजी के पास आया और दो घंटे तक संस्कृत में बात चीत करता रहा इस प्रकार सब भांति के मनुष्य उनके दर्शनों को आया करते थे। गद्दीधारी महन्तों को छोड़ और सब लोग इनके पास चर्चा और वार्त्तालाप के लिये आया करते थे, जिनमें से मुख्य २ ये थे पंडित श्यामसिंह ठाकुरों के डेरे वाले, आत्मस्वरूप अमृतसर वाले, संत अमीरसिंहजी निर्मला, स्वामी महानन्द सरस्वती दादूपंथी जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं, साधु देवेन्द्र सरस्वती, पंडित बस्तीराम, स्वामी रत्नगिरि आदि। जो गृहस्थ लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ जाते वे कुछ भेंट चढ़ाने को भी लेजाते जिसका सायंकाल तक एक ढेर लग जाता था, स्वामीजी इस सब को कंगलों को बांट दिया करते थे अपने लिये कुछ नहीं रक्खा करते थे इस प्रकार पौराणिक महोत्सव के दस दिनों पीछे तक धैर्य और निर्भयता से समस्त पौराणिक मत मतान्तरों का खंडन करते रहे और उपनिषदों की कथा सुना लोगों

को सच्चे ज्ञान का उपदेश करते रहे। यह स्वामी दयानन्द जैसे प्रतापी संन्यासी की ही हिम्मत थी कि इस मेले पर लाखों हिन्दुओं से न डर उनके बड़े तीर्थ स्थान पर ही झंडा गाड़ कुंभ के दिन उस तीर्थ का खंडन करे।

पाठकगण ! आप उस समय का चित्र अपने सामने खींचें कि एक ओर तो हज़ारों वर्षों के फैले हुए पाखंड जाल और दूसरी ओर स्वामी दयानन्द की अकेली ध्वनि क्या थी परंतु यह ध्वनि सत्य की नाद थी इस में परमात्मा के ज्ञान की गूंज थी इस कारण वह निर्भय होकर अपने मन्तव्य को प्रकट करती थी और समस्त हिन्दुओं को सुनाती थी कि मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, झूठे तीर्थादि सब भ्रम जाल हैं इन सब लीलाओं को छोड़ कर वेद रूपी झरने से अमृत पान करो नहीं तो पछताओगे। सत्य तो यों है कि इस कुंभ पर स्वामीजी ने पौराणिक मत की जड़ को खोखला कर दिया लाखों मनुष्यों ने स्वामीजी के सदुपदेश को सुना और कितनोंही ने इस को माना।

देश की अधोगति पर पश्चात्ताप करना स्वामीजी ने इसके पूर्व इतने बड़े तमाशे को कभी नहीं देखा था जिसमें इतनी बड़ी संख्या साधु, संन्यासियों, वैरागियों और पंडितों की थी इनको उनकी अवस्था पर विचार करने का अवसर भी मिला, क्या देखते हैं कि संन्यासी जिनका धर्म्म जगत् का सुधार करने का था वे गिरि, पुरी, भारती, अरण्य, पर्वत, आश्रम, सरस्वती, सागर, तीर्थ, गुसाईं आदि दस विभागों में विभक्त हो आपस में जूतम पैज़ार कर रहे हैं गुसाईं विवाह करके भगवे वाने को लज्जित कर रहे हैं और अपने कलियुगी मंत्र के अनुसार भोग और योग को मिला रहे हैं नाम के त्यागी वास्तव में गृहस्थों के भी कान काटते हैं मदिरा मांस और व्यभिचार जो वाममार्ग चोलीमार्ग और बीजमार्ग के साधन हैं उन्हें अहं ब्रह्मास्मि की तरंग में दुग्धवत् पी रहे हैं सत्य का मार्ग भुला स्वयं ईश्वर बन गये हैं साधु सत्य धर्म्म की निर्मलता और उज्ज्वलता से कोसों दूर हैं और जगत् माया से उदासीन रहने के बदले उस में लिप्त हैं, हाथी, घोड़े, रुपहरी और ज़रदोज़ी झूलें मखमली तकिये और जरबफ्त के गद्देले, सोने के कंगन और चांदी के उगालदान सब कुछ रक्खे हुए हैं।

वैरागियों की दशा वैरागियों को मुंह से कहने को सब कुछ वैराग्य और त्याग है परन्तु वास्तव में लोगों के द्रव्य फूंकने को आग का अंगीठा पास रक्खे हुए हैं काला अक्षर भैंस बराबर है, सिवाय खाने और पड़े रहने या राग रंग में जीवन बिता ने के और कुछ काम नहीं। गीता का केवल पाठमात्र भी हज़ारों में से एक को याद,

अर्थ करोड़ों में से सौ पचास जानते होंगे, परंतु तंबाखू, चरस, गांजा और भांग से एक भी नहीं बचा हुआ है। योगी गोरखनाथ के नाम को कलंकित करने वाले कानों में स्वर्ण का मुद्रा डाले हुए कोई किसी गद्दी का महन्त कोई किसी का, धर्म्म कर्म्म से शून्य, योग के पूरे शत्रु, मद्य मांस सेवन में बड़े तत्पर, लोगों के भोले भाले बच्चों के कान फाड़ने में बड़े दक्ष। राजा महाराजा अकल के अंधे गांठ के पूरे इसी प्रकार के संडे मुस्टंडों के चेले तन, मन, धन गुसांईजी और गुरुजी के अर्पण करने वाले, झूठी प्रशंसा चाहने वाले, डरपोक कारकुनों के भरोसे सब काम छोड़ धर्म्म कर्म्म से बेख़बर, विषयासक्ति में निमग्न, अफीम के गोले चढ़ाने में पक्के। फकीरों की सिआही, गृहस्थो की तबाही, विद्वानों और बुद्धिमानों की संगत से लापरवाही और ज्ञानवानों की जान बूझकर चुप आदि धर्म्म की इस भयानक अवस्था और आर्य्य जाति की दुर्गति को देख स्वामी दयानन्द पर उदासी छागई।

दुर्दशा को मेटने के लिये आत्मा में उत्तेजना होनी।

जब तक मेला रहा तब तक तो जोश भरा रहा जब यह समाप्त होगया तो विचार का समय आया। धर्म्म की इस मन्द अवस्था को देखकर और प्राचीन समय का ध्यान करके बहुत दुःख हुआ, ऋषि मुनियों की सन्तान व्यास और कपिल की औलाद को सच्चे ईश्वर की उपासना छोड़ मूर्त्तिपूजा आदि ढकोसलों में फंसे हुए देख इनका मन भर आया और लोगों की वैदिक धर्म्म से अनभिज्ञता और ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को ईसाई मुसलमान होते देख और सुनकर उसका दयावान् मन स्थिर न रह सका और उसने न चाहा कि अन्य लोगों की भांति भेड़िये धसान के प्रवाह में बहता चला जाऊं, बार २ देखा सोचा विचारा एक दिन नहीं दस बारह दिवस तक सोचता रहा अंत को उसके सत्यग्राही आत्मा और उसकी मनुष्यों को पहचानने वाली आंखों ने दिव्यदृष्टि और बारीक निगाह से यही निश्चय किया कि ए दयानन्द! तू औरों की भांति अचेत मत पड़ा रह रोग को जान कर उसकी चिकित्सा न करना बड़ा पाप है, तुझे परमेश्वर ने आंखें दीं सत्य धर्म्म का ज्ञान दिया, उठ खड़ा हो और सोते हुओं को जगा कमर हिम्मत बांध क्योंकि जो औरों की सहायता करता है ईश्वर उसकी सहायता करता है।

परोपकारार्थ सर्वस्व त्याग कर गंगातट पर अकिंचन होकर भ्रमण करना।

"परोपकाराय सतां विभूतयः" यह विचार दृढ़ होते ही व्याख्यान देते २ दिल भर आया और यह सोचने लगे कि यह अधर्म्म जो फैला हुआ है उसको हटाने की शक्ति है या नहीं? हृदय के कोने से आवाज़ आई कि अभी तप करो और जो विद्या पढ़ी है उसको

विचारो तब तुम कुछ कर सकोगे। बस यह अनुभव होना ही था कि व्याख्यान की समाप्ति पर "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" करके सब कुछ त्याग दिया जो कुछ माल असबाब इस समय डेरे में था अर्थात् पलंग, वर्त्तन, पीतांबरी धोतियां, रेशमी कपड़े दुशाले ऊनी वस्त्र रोकड़ आदि सब कुछ लोगों में बांट दिया एक पुस्तक महाभाष्य ३५) रुपये का और एक थान मलमल का गुरुजी के निमित्त एक पुरुष को दे दिया कि मथुरा में पहुंचा दे और नग्न हो लंगोट बांध भस्म रमा अवधूतमूर्त्ति बन डेरा उखाड़ गंगातट का मार्ग लिया। जब लोगों ने पूछा कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो उत्तर दिया कि हम सत्य २ कहना चाहते हैं और यह बात बे खटके हुये बिना नहीं हो सक्ती जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करेंगे इस में सफलता प्राप्त न होगी।

कौपीनधारी होकर गढ़मुक्तेश्वर में गंगातट पर विचरना।

स्वामीजी प्रथम हृषीकेश की ओर गये और पांच छै रोज़ में पीछे आकर दक्षिण की ओर चल पड़े हरिद्वार से चलकर कनखल होते हुये गंगा के किनारे २ लंढोरा पहुंचे तीन दिन तक कुछ न खाया था जब बहुत भूख लगी तो एक खेत वाले से कहा उस ने तीन बैंगन दिये उन्हें खा क्षुधा निवृत्त की वहां से शुकताल में गये जहां लोग कहते हैं कि शुकदेवजी ने कथा सुनाई थी फिर परीक्षितगढ़ होते हुये गढ़मुक्तेश्वर में आये वहां १५ दिन रहे। दिनरात बालू में पड़े रहते थे और संस्कृत के सिवाय दूसरी भाषा नहीं बोलते थे वहां के पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ रुड़की से २० कोश उरे मीरांपुर में भी किसी से २ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ था इस प्रकार स्वामीजी निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करते थे और ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते थे इस आनन्द का अनुभव वही मनुष्य कर सक्ता है जिसने योग बल से अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो और परमात्मा का ध्यान करता हो इस आनन्द में केवल एकही पीड़ा की रेखा थी जो सनातन वैदिकधर्म और आर्य्यजाति की अधोगति के चिन्तन करने से खड़ी होती थी।

ढाई वर्ष तक गंगा तट पर भ्रमण कर उपदेश करना।

अहा! कैसा ही अद्भुत दृश्य है! एक संन्यासी भस्म लगाये नग्न गंगा रज में बैठा हुआ मनुष्यों की धार्म्मिक अधोगति पर चिन्तन कर रहा है और परमात्मा से इस अधोगति को दूर करने के लिये बलकी प्राप्ति की प्रार्थना करता हुआ तपसे अपने आपको धार्म्मिक युद्ध के लिये तय्यार कर रहा है। आर्य्यावर्त्त के इतिहास में यह दृश्य एकही है इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ढाई वरस गंगा के किनारे किनारे विचरते और उपदेश करते रहे चाहे गर्मी हो चाहे सर्दी नग्न रहते और भस्म रमाते थे केवल एक लं-

गोट बांधते थे। लोगों को संध्या गायत्री सिखाते किसी २ जगह मनुस्मृति और उपनिषद् भी पढ़ाते थे जब चाहते चले जाते थे न किसी को आनेकी खबर देते न जाने की जहां जाते यज्ञ कराते और द्विज लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराते गंगा तट की अनेक जाति के सैंकड़ों मनुष्यों ने उनके उपदेश से यज्ञोपवीत लिया और संध्या गायत्री सीखी इस ढाई साल में उपदेश करते हुए कानपुर तक गये फिर वहां से पीछे लौटते हुये गंगा के किनारे २ उन्हीं स्थानों पर फिर ठहरे और कर्णवास तक आये॥

कर्णवास में शास्त्रार्थ करना।

वैशाख शुक्ल संवत् १९२४ अर्थात् माह मई सन् १८६७ में स्वामीजी कर्णवास पहुंचे और एक दिन ठहर कर चले गये फिर आषाढ सुदी ५ (६ जुलाई) को पक्के घाट पर आ उतरे और नागा बाबा की मढ़ी के आगे बसेन्दू वृक्ष की छाया में गंगारज लगाये अकेले लंगोटी बांधे रहने लगे गांव के ठाकुर व पण्डितों ने जाना आना प्रारम्भ किया तब गांव में चर्चा फैला कि बड़े भारी महात्मा और संस्कृत के विद्वान् हरिद्वार के कुंभ से सभा जीतकर आये हैं ऐसे महात्मा न पहिले कभी सुने गये न देखे गये इसी आन्दोलन में स्वामीजी को श्रावण मास बीतकर भादों आ गया इन्हीं दिनो में पण्डित भगवानदास भागवती से एक दिन स्वामीजी महाराज ने कण्ठी तिलक धारण करने का साधारण प्रकार से निषेध किया वह सुनकर चुप के ही चला गया और ग्राम में आकर स्वामीजी के विरुद्ध उद्योग करना प्रारंभ किया कि स्वामीजी मूर्तिपूजा, अवतार, कण्ठी, माला, तिलक, भागवत, सम्प्रदाय आदिको मिथ्या और पाखण्ड बतलाते हैं और कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिये एक ही गायत्री है। आश्विन के महीने में बाहिर के आये हुये पण्डितों से भगवानदास ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया जिससे पास २ के ग्राम २ और नगर २ में स्वामीजी का बड़ा आश्चर्य के साथ चर्चा फैल चला और दानपुर के पण्डित गिरिवरलाल व अहमदगढ़ के पण्डित कमलनयन ने शरत्पूर्णिमा को आकर स्वामीजी से कुछ बातचीत की इन दोनों पण्डितों से नन्दकिशोर उपाध्याय कर्णवास वाले ने कहा कि पण्डित अम्बादत्त वैद्य अनूपशहर वाले को बुलाकर इनसे शास्त्रार्थ कराया जाय तब तो भले ही अर्थ सिद्ध हो नहीं तो औरों से कुछ न होगा यह सुनकर उन्होंने पण्डित अम्बादत्तजी को बुलाया और स्वामीजी से संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ।

शास्त्रार्थ से पौराणिकों पर प्रभाव पड़ना और यज्ञ होना।

पण्डित अम्बादत्तजी ने स्वामीजी के कथन को स्वीकार कर कहा कि यदि पण्डित हीरावल्लभ जी पर्वती जो वेदपाठी और व्याकरणी हैं इन बातों को मानलें तो निश्चय हो जाय। पंडित अंबादत्तजी के

इतना कहते ही और ढंग हो गया ठाकुर लोग स्वामीजी से प्रार्थी हुये कि जो कर्म्म बतलाया जाय उसे हम करने को उद्यत हैं स्वामीजी महाराज ने सबको यज्ञोपवीत संस्कार कराने की आज्ञा दी और अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट आदि से ४० विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जप करने के लिये बुलाये गये और स्वामीजी की कुटिया के आगे ही कुंडादि निर्माण हो यज्ञ प्रारम्भ हुआ और १५ व २० आदमियों का यज्ञोपवीत हुआ जिस में कुमरजी नामक एक पंडित कंठी तोड़ तिलक मिटा दीक्षित हुये थे इस कर्म्म से स्वामीजी महाराज के विजय का सूर्य्य उदय हुआ और एक अपूर्व अग्नि प्रज्वलित हो धर्म्मात्माओं के हृदय कुण्ड में प्रकाशित होने लगी और चारों ओर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आकर संस्कार कराने लगे।

गप्पों का खंडन करना।

अब स्वामीजी महाराज निर्भय होकर इन आठों गप्पों का खंडन करने लगे (१) अठारह पुराण, मिथ्या और अप्रमाण हैं व्यासजी के बनाये हुए नहीं (२) मूर्ति पूजा वेदविरुद्ध है (३) शैव, शाक्त, रामानुज आदि सम्प्रदाय बनावटी और मिथ्या हैं (४) तन्त्रग्रंथ वाममार्ग आदि महा भ्रष्ट हैं (५) भंग शराब आदि सब नशे की चीजें (६) पर स्त्री गमन करना (७) चोरी करना (८) छल, अभिमान, झूठ आदि यह आठों गप्पें हैं इन्हें सब मनुष्यों को छोड़ना चाहिये।

एक मूर्त्तिपूजक ने मूर्तियों को गंगा में बहादिया

पौष के मास में पंडित हीरावल्लभ पर्वती स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये अनूपशहर से आये उस दिन दो सहस्र मनुष्यों की भीड़थी पंडितजी सभा के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर बालमुकन्द गोमतीचक्र शालिग्राम आदि की मूर्त्तियां रख कर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामीजी महाराज के हाथ से भोग चढ़वाके उठूंगा परन्तु वह दिन तो दोनों के धारा प्रवाह संस्कृत बोलने में समाप्त हुआ और इसी प्रकार ६ दिन पर्य्यन्त शास्त्रार्थ होता रहा अंतको किसी मूर्त्ति ने सहायता न की और पंडित हीरावल्लभजी ने शुद्ध अंतःकरण से स्वामीजी महाराज की ओर उच्च स्वर से सब को सुना कर कहा कि भाइयो ! जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वह सत्य और प्रामाणिक है इसके पश्चात् सिंहासन समेत सब मूर्त्तियों को उठा गंगा में डालदीं यह देख स्वामीजी महाराज ने शास्त्रीजी के सत्य ग्रहण करने और मिथ्या के त्यागने की बड़ी महिमा की इस बातकी बड़ी धूम मची। हठी और स्वार्थी मूर्त्तिपूजक दुमदबा कर भाग गये। जगह २ लोगों ने मूर्त्तियें उठा कर गंगामें डालनी शुरु कीं मंदिरों के मंदिर मूर्त्तियों से खाली होगये सैकड़ों ब्राह्मण बे रोजगार हो स्वामीजी की बात में

फिरने लगे गंगाके तट पर रहने वाले हिन्दुओं में कोलाहल मच गया।

तलवार से न डर के शान्ति पूर्वक उपदेश करना।

माघ मास के अन्त में स्वामीजी रामघाट की ओर चले गये और अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए ज्येष्ठ वदी १३ संवत् १९२५ अर्थात् २० मई सन् १८६८ को कर्णवास में उसी कुटिया में आ फिर विराजमान हुए। ज्येष्ठ सुदि १० को यहां गंगास्नान का मेला हुआ करता है उसमें बहुत पुरुष एकत्रित होते हैं इस मेले में राव करणसिंह बड़गूजर रईस बरोली भी आये थे ये कुछ दिनों पहिले रंगाचारी से तिलक छाप लेचुके थे स्वामीजी की चर्चा सुन उनसे मिलने के लिये गये और स्वामीजी ने बड़े आदर सत्कार से बैठने को कहा परन्तु रईस साहब जो पहिले से ही भरे हुए आये बोले कि कहां बैठें स्वामीजी ने कहा जहां इच्छा हो, रईस ने कहा जहां तुम बैठे हो वहां बैठेंगे स्वामीजी महाराजने शीतलपट्टी के एक सिरे की ओर हट कर कहा कि आइये बैठिये परन्तु वह न बैठा और बोले कि आप गंगाजी को क्यों नहीं मानते स्वामीजी ने कहा कि जितनी गंगाजी है उतनी मानते हैं उसने कहा कितनी, स्वामीजी ने कहा कि हम लोगों का तो गंगाजी कमण्डलु ही है इस पर उसने कुछ श्लोक गंगाजी की स्तुति के पढ़े स्वामीजी ने कहा कि यह बात तुम्हारी गप्प है यह केवल पीने का पानी है इससे मोक्ष नहीं होसकता मोक्ष तो केवल कर्म्मों से होता है तुमको पोपों ने बहकाया है। उनके तिलक आदि को देखकर संस्कृत में कहा कि तुमने क्षत्रिय होकर यह भिखारियों का चिन्ह मस्तक पर क्यों धारण किया है उसने कहा कि हमारे स्वामी के सामने आप से बातचीत भी नहीं होगी तुम उनके सामने कीड़े के तुल्य हो तुझ से उसके आगे जूतियां उठाते हैं। स्वामीजी ने हँसकर बड़ी शान्ति से कहा कि उनको शास्त्रार्थ के लिये बुलाओ यदि उनमें आने का सामर्थ्य न हो तो हम वहां चलें इसपर वह बहुत क्रुद्ध होगया और गालीगलौच दे कहने लगा कि यदि तुम हमारे सामने खंडन मण्डन करोगे तो तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है स्वामीजी महाराज ने उसके कटु वाक्यों को सह कर कुछ भी चिन्ता न करते हुए सिंहवत् शृगाल से भयभीत न होकर बड़ी गंभीरता और शान्ति से सत्य का उपदेश और चक्राङ्कित मत का भले प्रकार खंडन किया और कहा कि तुम कैसे क्षत्रिय हो जो रामलीला में लौंडों का सांग भरवा महा पुरुषों की नकल उतरवा उनको नचवाते हो, अगर तुम्हारी बहन बेटी को कोई नचावे तो कैसा बुरा मानो इस पर राव करणसिंह को अत्यन्त क्रोध आगया और उसने तलवार की मूंठ पर हाथ रक्खा और उसके एक साथी पहलवान ने आगे बढ़कर स्वामीजी पर हाथ डालना चाहा मगर स्वामी

जी ने ज्योंही उसका हाथ पकड़ कर धक्का दिया कि वह पीछे जा पड़ा और उससे कहा कि अरे धूर्त्त ! यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर और धौलपुर के राजाओं से जालड़ो, यदि शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य्य को वृन्दावन से बुलालो इतने पर बहुत कोलाहल होगया। कोई २ यह भी कहते हैं कि स्वामी जी ने उसके हाथ से तलवार भी छीन ली इतने में ठाकुर कृष्णसिंह लट्ठ लेकर खड़े होगये और रईस से कहा कि अगर तुम महात्मा को ज़राभी छेड़ोगे तो लट्ठों के मारे तुम्हारी तमाम शेखी निकाल देंगे, इस पर वह वहां से अपने साथियों को लेकर चला गया इस के पश्चात् बहुत से लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप पुलिस में रिपोर्ट करें परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जब वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यों अपने सन्यास धर्म्म से पतित होवें सन्तोष करना ही हमारा परमधर्म्म है। स्वामीजी यहां कार्तिक पर्य्यन्त ठहरे और इस अन्तर में स्वामी विशुद्धानन्द कृष्णानंद आदि कई संन्यासियों से वेदान्त व योगाभ्यास पर बातचीत हुई।

हुंकार मात्र से घातकों का पलायन व धैर्य का धारण करना।

आश्विन शुक्ला शरद् पूर्णिमा को ठाकुर कर्णसिंह रईस बरौली फिर गंगास्नान को आये और स्वामीजी की कुटी से थोड़ी दूर पर पश्चिम को बारहदरी में ठहरे। स्वामीजी को भी यहीं विराजमान सुन कर रात्रि के समय अपने दो तीन आदमियों को स्वामीजी के मारडालने को शस्त्र देकर भेजा परंतु इस घटना से कुछ दिनों पहिले कर्णवास के ठाकुरों ने ठाकुर कैथलसिंह को वहां नियत कर दिया था कि जब रात्रि को स्वामीजी सोजाया करें तो उनपर कम्बल डाल दिया करो क्योंकि स्वामीजी जब रात्रि को कम्बल उतर जाता तो आप नहीं ओढ़ा करते थे वैसे ही नग्न पड़े रहते थे राव कर्णसिंह के आदमी गये परन्तु कुटी में जाने की हिम्मत नहीं पड़ी स्वामीजी उस समय सोतेथे और कैथलसिंह भी सोता था खटका सुनकर स्वामी जी बैठगये वे आदमी लौटकर चले गये और कहा कि हमारी हिम्मत नहीं चलती इस पर राव साहब ने उनको बहुत धमकाया और दूसरी बार भेजा स्वामीजी ने यह सब सुन लिया क्योंकि अनुमान से १२५ कदम का फासला था और रात्रि का समय था स्वामीजी ध्यानावस्थित हो चौकी पर बैठ गये इस बार भी वे आदमी औसान भूलकर वापिस चले गये इस पर राव साहब ने गालियें देकर उनको फिर भेजा वे तीसरी बार आये और हाथ में तलवार ले अपने औसान को कायम रखने के लिये यह कहते हुए कि कौन है कुटी में अंदर घुसने लगे स्वामीजी ने चौकी पर से उठ कुटी के दरवाजे पर खड़े होकर जोर से "हुम" की आवाज़ लगाई ऐसी भारी आवाज़ को सुन वे घबराके भगने लगे

और रास्ते में गिरपड़े परंतु सँभल सँभला कर भगगये इतने में ठाकुर कैथलसिंहजी भी जगपड़े और स्वामीजी से कहा कि आप किसी गढ़े में छिप रहें परन्तु स्वामीजी ने हंसकर कहा कि "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" हम नहीं डरते ईश्वर हमारा सहायक है तुम मत जाओ परन्तु कैथलसिंह गांव की ओर दौड़े और ठाकुरों को जाके ख़बर दी ठाकुर कृष्णसिंहजी लठ्ठ लेकर दौड़े और कई आदमी उनके पीछे हो लिये उन्होंने जाते ही राव कर्णसिंह को ज़ोर २ से गालियें देना शुरु किया और कहा कि यदि वीर और असली क्षत्रिय का पुत्र है तो हमारे सामने आ, देख तेरी बंदूक और तलवार कैसे एक २ थप्पड़ में छीनते हैं और बहुत सी कड़ी २ बातें कहीं जहां सिपाही गिरे थे वहां चिन्ह भी देखे स्वामीजी ने ठाकुर कृष्णसिंह से कहा कि तुम संतोष करो वह तो स्वयं भीरु है क्रोध मत करो वह हमारा कुछ नहीं कर सका परंतु ठाकुर कृष्णसिंह का क्रोध शान्त न हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि यदि राव कर्णसिंह यहां रहगया तो उसको विना पीटे नहीं छोडूंगा जब यह बात ठाकुर कर्णसिंह के ससुर मोहनसिंह ने सुनी तो उसने अपने दामाद से आकर कहा कि यदि तुम्हारे अच्छे दिन हैं तो यहां से इसी समय चले जाओ नहीं तो यहां के क्षत्रिय तुम्हें मारे व हथियार छीने विना नहीं रहेंगे ।

पाप का फल अवश्य दुःख होता है ।

राव साहब फौरन रवाने होगये और घर में जाते ही बीमार होगये और पागल होकर कपड़े फाड़ने लगे प्रयाग में एक ५० हज़ार का मुक़द्दमा भी हार गये और अपने मत के विरुद्ध मदिरा मांस का सेवन प्रारम्भ कर दिया और इनका जीवन बड़ी दुर्दशा में कटा ।

शान्ति ऐसी होती है ।

स्वामीजी पर आक्रमण की बात राजघाट की तरफ प्रसिद्ध होगई थी दूसरे दिवस २०-२५ हथियारबन्द पंजाबियों ने आकर स्वामीजी से निवेदन किया कि यदि आप आज्ञा देवें तो सब बदमाशों को भगा देवें हमारी नौकरी जाती रहे तो कुछ परवा नहीं परंतु स्वामीजी ने उन को समझाया राव कर्णसिंह ने कुछ वैरागियों से भी कहा था कि तुम स्वामी दयानन्द का शिर काट लाओ मैं रुपया खर्च करके तुम्हें बचा लूंगा अगर तुम मे से एक दो मर भी गये तो क्या बात है, कौनसी लुगाई रोती है परंतु किसी वैरागी की हिम्मत न पड़ी ।

सूर्यग्रहण में उपदेश व बनावटी तीर्थों का खण्डन करना।

यहां पर एक दारोगा साहब से कुरान के विषय में बात चीत हुई थी जिसमें दारोगा साहब से कुछ उत्तर नहीं बन पड़ा इसके पश्चात् रईस धर्मपुर जो नये मुसलमान थे स्वामीजी के पास आये और पूछने लगे कि क्या वह किसी प्रकार शुद्ध होसक्ते हैं ? स्वामीजी ने कहा हां

वेदोक्त आचरण करने से। यहां पर जब स्वामीजी ठहरे हुए थे तो सूर्य्य ग्रहण का पर्व आया हज़ारों मनुष्य गंगास्नान के लिये एकत्रित हुए जिनको अवतार व तीर्थ खण्डन पर उपदेश किया। लोगों ने ग्रहण में सूतक के लिये पूछा उत्तर दिया कि सूतक ऊतक कुछ नहीं भोजन उस समय करना चाहिये जब क्षुधा लगे।

चाशनी होते हुए ताहरपुर पधारना।

गंगा तट पर विचरते २ स्वामी जी चाशनी में पहुंचे यहां पंडित नन्दराम नामी एक ब्राह्मण आसपास के ग्रामों के जाटों को चक्राङ्कित बनाना चाहता था जाटों के मुखिया छीतरसिंह ने कहा कि यदि महात्मा दयानन्दजी इसको ठीक बतलादें तो हम चक्राङ्कित होजावेंगे इस पर नंदराम आदि बहुत से पंडित गंगा तट पर आये परन्तु सूरत देखते ही दूसरे ग्राम को भाग गये उसके पीछे आदमी दौड़ाये गये परंतु वह नहीं आया इससे सब को निश्चित होगया कि जो स्वामीजी कहते हैं वह ठीक है और कोई भी चक्राङ्कितों के फंदे में न फँसा यहां आठ दिवस रहकर मनुस्मृति व महाभारत पढ़ने का उपदेश करके ताहरपुर की ओर रवाने हुए। स्वामीजी का नियम था कि जो पहिले रोटी लाकर देता उसी की खा लेते थे एक वैरागी ईर्ष्या से जली हुई रोटियें पहिले लाकर इनको दे दिया करता था।

अनूपशहर होते हुए अहार में सत्योपदेश करना।

ताहरपुर से स्वामीजी अनूपशहर को गये और वहां से अहार में आये यहां श्रीवल्लभ की कुटी में ठहरे एक कौपीन के सिवाय कुछ नहीं रखते थे रात्रि के २ बजे गंगा में ग़ोता लगाकर समाधिस्थ हो जाते थे और एक घंटा दिन चढ़े तक लगाये रखते थे और जाटों को उपदेश दिया करते थे। एक मनुष्य ने स्वामीजी को अपना हाथ दिखलाया स्वामीजी ने कहा इसमें हाड़, चाम, मांस और रुधिर है और कुछ नहीं। एक मनुष्य ने जन्मपत्र दिखलाया, कहा कि जन्मपत्र किस काम का कर्मपत्र श्रेष्ठ है, गंगास्नान को जो यात्री आते उनको भी उपदेश करते जिससे इनका चर्चा गावों में बहुत फैला, मुर्दों के श्राद्ध का खण्डन और जीतों के श्राद्ध का मण्डन किया करते थे।

अनूपशहर में रामलीला बन्द कराना।

अनूपशहर में स्वामीजी श्रावण से लेकर कार्तिक की पूर्णिमा तक पहिले लालाबाबू की कोठी में फिर नर्मदेश्वर में ठहरे यहां रामलीला बड़ी धूमधाम से हुआ करती थी इस कारण इसका खण्डन किया जिस का ऐसा प्रभाव हुआ कि दूसरे साल यह बन्द हो गई। यहां राजा जयकृष्णदासजी इन से मिलने के लिये आये थे बहुत देर तक बातचीत करके अलीगढ़ को चले गये यहां पर तहसीलदार सय्यद मोहम्मद से जो बड़े भारी मौलवी थे बातचीत हुई जिस का प्रभाव ऐसा हुआ कि उसने स्वामीजी की सब बातों को स्वीकार कर लिया।

पौराणिक पण्डितों के ही हाथ से मूर्तियों का गंगा में प्रवाह कराना।

यहां स्वामीजी के पास गुजराती ब्राह्मण बहुत आया करते थे यहां हीरावल्लभ नामी पण्डित से शास्त्रार्थ किया, प्रातःकाल से दुपहर तक खूब मुठभेड़ रही अन्त को पं० हीरावल्लभ परास्त हो गये और उन्होंने शुद्ध अन्तःकरण से अपनी शालिग्राम की मूर्त्ति को गंगा में फेंक दिया और उसी समय पं० टीकाराम ने भी अपने ठाकुरजी फेंक दिये और पण्डित टीकाराम ने जो गंगा मन्दिर के पुजारी थे पूजा करना छोड़ दिया और कई ठाकुरों ने यज्ञोपवीत धारण करने का प्रण किया। दूसरी वार जब स्वामीजी इस नगर में आये तो एक पण्डित महात्मा नाम सिकंदराबाद का रहने वाला एक खर्रा लिखकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया स्वामीजी ने उसे देखकर कहा कि क्या यह लग्नपत्र लाये हो? बस उसे उत्तर देने और बोलने का सामर्थ्य नहीं रहा यहां जब स्वामीजी बीमार हो गये तो तुलसीदल और कालीमिरच घुटवा कर पीलेते थे और फूंस पर सोया करते थे तर्कसंग्रह को नर्कसंग्रह बतलाते थे यहां कृष्णानन्द, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को आये थे परन्तु न मालूम सन्मुख क्यों नहीं आये। स्वामीजी के उपदेश से बहुत से लोगों ने शालिग्राम और माखनचोरकी मूर्त्तियों को गंगा में डाल दिया इस कारण पोपों ने स्वामीजी को लालाबाबू की कोठी से निकलवाने का यत्न किया परन्तु कृतकार्य्य नहीं हुये। यहां पर रामदास वैरागी परमहंस राजा बूंदी के गुरु रहते थे उनकी स्वामीजी से बड़ी प्रीति हो गई थी जब स्वामी जी अनूपशहर को जाने लगे तो इन्होंने कहा कि तुम भागवत का खण्डन करते हो और शहर में कथा हो रही है कोई रोटी तक न देगा स्वामीजी ने उत्तर दिया कुछ चिन्ता नहीं हमारे कर्म्म हमारे साथ हैं। यहां कई साधु लोग भी शंका समधान को आया करते थे जब कोई सूक्ष्म विषय स्वामीजी समझाते तो ये तर्क वितर्क करते जिस पर स्वामीजी ने एक वार उत्तर दिया कि मोटी बुद्धिवाले सूक्ष्म बात नहीं समझ सकते जैसे बालू में मिली हुई चीनी को हाथी नहीं निकाल सक्ता परंतु चींटी निकाललेगी।

पान में ज़हर।

यहां पर एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्तिखण्डन से रुष्ट होकर उनको पान में ज़हर दे दिया स्वामीजी ने जान लिया और अंदर जाकर न्यौली क्रिया करके बचे परन्तु इस आदमी से कुछ न कहा।

संसार को कैद कराने नहीं वरन छुड़ाने आया हूं।

जब सय्यद मोहम्मद तहसीलदार को मालूम हुआ तो उन्हों ने उस आदमी को कैद कर दिया और यह समझ कर कि स्वामीजी इस कार्य्यवाही से प्रसन्न होंगे उनके पास गये परन्तु स्वामीजी

उन से बोले तक नहीं जब उन्होंने कारण पूछा तो स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं संसार को कैद कराने नहीं आया हूं वरन कैद से छुड़ाने को। यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें। अन्त में उस ब्राह्मण को छुड़वा दिया ॥

श्राद्ध के खण्डन में कहा करते थे कि अरे मूर्खो! जल में जल मत डालो अगर डालना ही है तो वृक्ष में डालो कि उसको लाभ हो।

मृतकश्राद्ध का खण्डन

बलोन में स्वामीजी ने एक पीपल के वृक्ष के नीचे आसन जमाया और सैकड़ों लोगों को संध्या गायत्री का उपदेश किया कुछ कापियें लिखवाकर लोगों को बांटी भी थीं।

राम व कृष्ण के अवतार का उत्तर।

श्रीकृष्ण पण्डा से रामचन्द्रजी व श्रीकृष्णजी के विषय बात चीत हुई तो आपने फरमाया कि प्रतापी राजा हुए और श्रीकृष्णजी भी अवतार नहीं एक राजा थे। गोपियों के साथ रास की बात झूंठी है इससे तो वे साधारण मनुष्य सिद्ध होते हैं।

बदन पर मिट्टी लगाने का कारण।

आप मिट्टी बदन पर क्यों लगाते हैं जब ऐसा पूंछा तो स्वामीजी ने कहा कि यह इसलिये लगाता हूं कि इससे कई रोग दूर होते हैं ठंड भी नहीं लगती मख्खी मच्छर डंक भी नहीं मारते।

रामघाट में उपदेश

स्वामीजी गंगातट पर पद्मासन लगाये प्रातः १० बजे से सायंकाल तक बैठे रहे जिसको देखकर लोगों ने उनका चर्चा सब जगह फैला दिया और वे उनको बनखंडी महादेव के मंदिर में लेगये जहां दो पंडितों में शास्त्रार्थ हो रहा था जब स्वामीजी ने धाराप्रवाह संस्कृत में दोनों का खंडन किया तो सब दंग रह गये। एक कृष्णानन्द सरस्वती को शास्त्रार्थ के लिये लाये जिस से गीता के इस श्लोक "यदा यदा हि" के सिवाय और कुछ न बन पड़ा स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर निराकार है शरीरधारी कैसे हो सक्ता है? फिर वह कहने लगा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि लक्ष का तो लक्षण होता है लक्षण का लक्षण नहीं। क्या किसी ने आटे का भी आटा सुना है इसपर सब लोग हंस पड़े यहां खेमकरन नामी साधु ने जो २० सेर के अनुमान पूजन की सामग्री घोड़े पर लादे २ ग्रामों में फिरा करता था इनके सदुपदेश से सब पाखण्ड को छोड़ दिया। यहां स्वामीजी ने चरक और सुश्रुत को ठीक बतलाया और तुलसी के वृक्ष को वायु की शुद्धि के लिये लगाना बतलाया।

अतरौली में उपदेश

यहां दो बार स्वामीजी पधारे और भैरव के मंदिर में उपदेश किया।

छलेसर में २० मन्दिरों की मूर्त्तियों को कालिन्दी में बहाना

यहां स्वामीजी ३ वार पधारे इनके उपदेशों से ठाकुर मुकुंदसिंहजी रईस छलेसर ने अपनी ज़मींदारी के २० मंदिरों से मूर्तियें उठवा कर कालिंदी नदी में डलवादीं जिससे इनकी बड़ी भारी मुख़ालफ़त हुई। स्वामीजी ने यहां पाठशाला स्थापित की हज़ारों लोगों को धर्म्मोपदेश किया मुसलमान लोगों से भी बातचीत हुई। राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई. भी यहीं आकर अपनी शंकाओं का समाधान कर गये थे और स्वामीजी को अलीगढ़ बुला गये थे ॥

बगढ़िया में मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना

यहां स्वामीजी चैत संवत् १९२५ में गये। पं० गयानारायण आदि कई चक्राङ्कितों से शास्त्रार्थ कर उनको परास्त किया और एक मास तक धर्म्मोपदेश करते रहे जिस को सुनने के लिये सैकड़ों मनुष्य आते रहे। इसके पश्चात् स्वामीजी सोरों में पधारे जहां १० हज़ार ब्राह्मण बतलाते हैं यहां अम्बागढ में ठहरे यहां नारायण चक्रांकित अपना मत छोड़ स्वामीजी की शरण आया जिससे शहर में हलचल मची और सैकड़ों पण्डित व साधारण मनुष्य स्वामीजी के पास आये और मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ जिस में पौराणिक पण्डित परास्त हुए और पं० गोविंदराम स्वामीजी की शरण आया फिर बाकी पण्डित कोलाहल करके चले गये ॥

प्रसिद्ध पंडित अंगद शास्त्री से शास्त्रार्थ ॥

सोरों के पास बदरिया ग्राम में एक संस्कृत के विद्वान् पण्डित अंगदराम शास्त्री रहते थे इन जैसा दूसरा पण्डित दूर दूर तक न था इसी कारण किसी का साहस नहीं होता था कि इनकी सम्मति के विरुद्ध कुछ कहे सैकड़ों पण्डित इनके शिष्य थे जोकि व्याकरणमें अच्छे थे। यह शालिग्राम की बटिया का पूजन किया करते थे और भागवत की कथा लोगों को सुनाया करते थे सर्व साधारण में इनकी बड़ी मान प्रतिष्ठा थी इनके एक शिष्य नारायण चक्राङ्कित स्वामीजी के अनुयायी होगये थे जिन्होंने जाकर इनके सन्मुख स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि ऐसे महात्मा संन्यासी कभी इधर नहीं आये, आप अवश्य चलकर उनसे वार्त्तालाप करें इस पर अंगद शास्त्री स्वामीजी के आसन पर आये और सब से पहिले मूर्त्तिपूजा पर चर्चा चली स्वामीजीने वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का खण्डन किया और अंगद शास्त्रीजी को चुप होना पड़ा। इसके पश्चात् भागवत के विषयमें बातचीत हुई सर्व साधारण में प्रसिद्ध है कि भागवत की संस्कृत अत्युत्तम है परंतु स्वामीजी ने अष्टाध्यायी के प्रमाणों से उस की अनेक अशुद्धियें पण्डित अंगद शास्त्री को बतलाईं तो उन सब को स्वीकार

किया और शास्त्रीजी पर स्वामीजी के सत्य उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपनी सब शंकाओं को स्वामीजी से वर्णन किया और जब उन्होंने शास्त्रीजी की प्रत्येक शंका का समाधान कर उनकी शान्ति कर दी तो उन्होंने एक दिन शालिग्राम की मूर्त्ति को जिसकी वे कई वर्षों से प्रति दिन पूजा किया करते थे सबके सन्मुख गंगा में डालदिया और पुराणों का और भागवत का निःशंक होकर खंडन करने लगे। शास्त्रीजी का यह हाल देखकर उनके कई सम्बन्धियों ने भी अपनी २ मूर्त्तियें गंगा में डालदीं। इन्हीं दिनों स्वामीजी के सहपाठी पण्डित युगलकिशोरजी कुछ अप्रसन्न हुए और संस्कृत में कुछ बोलने लगे पंडित अंगद शास्त्री ने उनकी व्याकरण की कुछ अशुद्धियें पकड़लीं और शास्त्रार्थ होने लगा। अंत में स्वामीजी ने बतलाया कि यह शब्द दोनों प्रकार से बोला जाताहै। पं० युगलकिशोरजी ने मथुरा पहुंचने पर दंडीजी से शिकायत की कि स्वामी दयानन्दजी सोरों में तिलक छाप कंठी शालिग्राम आदि का खंडन करते हैं दंडीजी ने उत्तर दिया कि फिर बुरा क्या करते हैं? शालिग्राम शब्द ही ठीक नहीं है फिर उसकी पूजा करना तिलक छाप आदि लगाना सब पाखण्ड है इन से कुछ लाभ नहीं यदि इन को तुम ठीक समझते हो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रमाण दो हमारी राय में तो कोई प्रमाण नहीं है इस पर पण्डित युगलकिशोरजी कहने लगे कि यदि इन बातों का प्रमाण नहीं है तो यह लीजिये मैं भी इन को दूर करता हूं और यह कह कर अपनी कण्ठी तोड़ डाली।

सत्य उपदेश का प्रभाव।

अंगद शास्त्री के स्वामीजी के अनुयायी होने और पत्थरों को गंगा में डाल देने से सारे सोरों और उस के आसपास के ग्रामों में कोलाहल मच गया, पौराणिक लोगों की सीटी गुम हो गई। चक्राङ्कितों का गुरु रंगाचार्य्य जो प्रतिवर्ष वृन्दावन से सोरों आया करता था और सैकड़ों मनुष्यों को अपना चेला बना उनके शरीर को तप्तमुद्रा से दग्ध कर सहस्रों रुपये नक़द व सामान ले जाया करता था उसने जब से स्वामीजी के उपदेशों की चर्चा सुनी कभी उस ओर मुंह नहीं किया। भला यह कब हो सक्ता है कि सत्य के सूर्य्य के सन्मुख अंधकार में शिकार करने वाला चिमगादड़ ठहर सके? स्वामीजी के सत्य उपदेशों को सुनकर सोरों और उसके आसपास के ग्रामों के बहुत से मनुष्यों ने जो पहिले रंगाचार्य्य के फंदे में फंसे हुये थे चक्राङ्कित मत को त्याग कण्ठियें तोड़ संध्या गायत्री याद कर प्रातः सायं ब्रह्मयज्ञ व देवयज्ञ करने लगे। अश्लील भागवत व मिथ्या पुराणों के बदले आर्ष ग्रन्थों की कथायें होने लगीं। सोमवती अमावास्या पौर्णमासी और वारुणी पर सहस्रों मनुष्य दूर २ से आकर गंगा किनारे स्वामीजी के सत् उ-

पदेश सुनते थे और संध्या गायत्री सीखकर जाते थे खास सोरों के सैकड़ों पंडे और ब्राह्मण स्वामीजी के उपदेशानुसार कार्य्य करने लगे जिस समय स्वामीजी सोरों में थे वहां ब्राह्मणों के २५०० घर थे परंतु इन में से पांच भी ऐसे नहीं थे जो भले प्रकार संध्या आदि कर्म्म जानते हों ये लोग केवल भोले भाले मनुष्यों को ठगने की विद्या जानते थे और यजमानों को लूट २ कर खाते थे स्वामीजी के उपदेशों से सैकड़ों अपना नित्यकर्म्म करने लग गये थे परंतु शोक है कि स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् वे फिर अविद्या के अंधकार में फंस गये क्योंकि उनको हर समय ताड़ना करने व सन्मार्ग पर लाने वाला कोई नहीं रहा परंतु फिर भी थोड़ा बहुत प्रभाव अभीतक बाकी है।

सब पुराण व वर्तमान महाभारत आधुनिक घडन्त हैं

जब अंगद शास्त्री पौराणिक धर्म्म को मानते थे तो उन्होंने कैलाशपर्वत नामी एक साधु के कहने से उनके स्थापित किये हुए वराह के मंदिर की प्रशंसा में बहुत से श्लोक बनाये थे परंतु जब उन्होंने सत्य सनातन धर्म्म ग्रहण किया तो उसके खंडन में बहुत से श्लोक बनाकर प्रचलित किये जिससे चिड़कर कैलाशपर्वतजी ने अपनी सहायता के लिये एक जगन्नाथ चक्राङ्कित को बरेली से बुलवाया परंतु उसका साहस न हुआ कि स्वामीजी के सन्मुख आवे। एक दिवस मनुस्मृति का एक श्लोक लिखकर भेजदिया जिसमें पुराण शब्द आता है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका अर्थ प्राचीन है न कि १८ पुराणों का। और चौबे रामदास वैद्य ने इस चक्राङ्कित को बहुत लज्जित किया और कहा कि जिन पुराणों को तुम प्राचीन बतलाते हो वह बहुत अर्वाचीन हैं देखो कवि कालिदास जी ने अपने ग्रंथ संजीवनी में लिखा है कि इस समय १० पुराण हैं परंतु अब देखो १८ होगये व्यासजी ने महाभारत को केवल ४००० श्लोकों में रचा था परंतु महाराजा भोज के समय में १०००० श्लोक होगये और अब तो १००००० एक लक्ष से भी ऊपर निकलते हैं यह सब घड़ंत नहीं तो और क्या है? अन्त को जगन्नाथ चक्राङ्कित विना शास्त्रार्थ किये अपना सा मुंह लेकर चला गया।

मूर्तिपूजा की जड़ अर्थात् पुराणों का खण्डन करना।

एक दिन स्वामीजी ने कैलाशपर्वत को बड़ा साधु समझ कर कहा कि हम इन चार मतों की पोल भले प्रकार खोलना चाहते हैं (१) रामानुज (२) वल्लभाचार्य्य (३) यमाचार्य्य (४) माध्वाचार्य्य। क्योंकि इनके जाल में बहुत से मनुष्य आगये हैं और आते जाते हैं जिससे देश में बड़ी खराबी फैलगई है आपको हमें सहायता देनी चाहिये। कैलाशपर्वतजी ने उत्तर दिया कि हम तय्यार हैं यदि आप (१) मूर्त्तिपूजा का खंडन करना छोड़दें

क्योंकि इसमें लाखों मनुष्यों की रोज़ी जाती रहेगी (२) यह कहना छोड़दें कि सब पुराण व्यासजी के बनाये नहीं हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि चाहे आप सहायता दें वा नहीं यह कदापि सम्भव नहीं है कि मैं यह बात स्वीकार करूं जिन मत मतान्तरों को मैं छिन्न भिन्न करना चाहता हूं उनकी जड़ ही मूर्त्तिपूजा है और जबतक कि जड़ न काटी जायगी यह सम्भव नहीं कि केवल शाखों के काटने से पापरूपी वृक्ष उखड़ जावे रहे पुराण यह उन सब बुराइयों के भंडार.हैं जिनसे यह देश ग़ारत हुआ है उनके भ्रष्ट उपदेशों से ही सारे देश में दुर्गंध फैली है और मूर्त्तिपूजा का पता सिवाय पुराणों के और किसी ग्रन्थ में नहीं चलता ऐसी दशा में आप कैसे मुझसे आशा रखते हैं कि मैं आप की बातों को मानूं। सारांश कैलासपर्वतजी स्वामीजी के ऐसे वचनों से चुप होगये और स्वामीजी ने तो पहिले से विशेष वेग के साथ काम करना प्रारम्भ करदिया कैलाशपर्वतजी ने स्वामीजी के सत्य उपदेशों का प्रभाव लोगों के हृदय से दूर करने के लिये एक पुस्तक भी छपवाई जिस में पौराणिक मत पर दृढ़ रहने की लोगों से विनय की थी परंतु इसका फल उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ और सैकड़ों मनुष्यों ने उनके वराह के मन्दिर में जाना छोड़ दिया और पुराणों से घृणा करने लगे।

पीलीभीत के एक पण्डित से शास्त्रार्थ ॥

सारे सोरों और उसके आस पास के ग्रामों में गुसाईं बलदेव गिर का ऐसा प्रभाव था कि किसी का साहस नहीं होता था कि स्वामीजी को कोई कष्ट पहुंचावे परन्तु शास्त्रार्थ के लिये सब को हर समय अधिकार था इन्हीं दिनों में पीलीभीत से एक पौराणिक पण्डित अङ्गदराम नामी सोरों में आये और स्वामी जी के विरुद्ध कुछ कहने लगे स्वामी जी ने उस समय अङ्गद शास्त्री को कह दिया कि इन से शास्त्रार्थ करो और देखो कि यह क्या जानते हैं? शास्त्री जी ने पीलीभीत के पण्डित को एक स्थान पर शास्त्रार्थ करने के लिये लाचार किया और नियम आदि भी निश्चित होगये परन्तु बहुत से मनुष्यों के सन्मुख निरुत्तर होकर अपने देश को चले गये ॥

नंगा साधु ॥

इस के थोड़े दिनों पश्चात् ही एक नङ्गा साधु आया जो थोड़ी सी संस्कृत भी जानता था इस ने आते ही हल्ला मचाया कि हम शास्त्रों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करेंगे यह सुनकर स्वामीजी ने उसे शास्त्रार्थ के लिये एक पत्र लिखा जिस में यह भी था कि या तो आप जिस स्थान में मैं ठहरा हूं पधारें या मुझे लिखें तो मैं आप के यहां आऊं परन्तु सर्वसाधारण के सन्मुख शास्त्रार्थ अवश्य होना चाहिये, नङ्गे साधूजी ने इस का उत्तर कुछ नहीं दिया सारे दिन लोगों से वृथा गप्पें हांका

किये जब ४ घड़ी दिन रहा तो सोरों से नंगा की बड़ी धारा की ओर चले गये किसी ने साधु के भाग जाने के समाचार स्वामीजी से आ कहे इस पर स्वामी जी भी वायु सेवन के लिये उसी ओर चले गये जिधर नंगा साधु गया था और थोड़ी देर में उसको जा पकड़ा और कहा कि तुमने तो मूर्त्तिपूजा को वेद आदि सत्य शास्त्रों से सिद्ध करने का प्रण किया था और अब भगे जाते हो यह क्या बात है ? आपको चाहिये कि मुझसे इसी समय यहां पर इस विषय पर बातचीत करें या पीछे लौटकर सर्वसाधारण के सन्मुख शास्त्रार्थ करें परंतु उस बिचारे नंगे साधु की कुछ भी हिम्मत नहीं चली कि बात करे स्वामीजी ने बहुत कुछ चाहा कि वह कुछ तो बोले परंतु उसने तो पूरी मौन साधली और हां हूं तक नहीं की अंत में स्वामीजी ने कहा कि ज्ञात होता है झूंठ, असत्य पक्ष और आत्मा के विरुद्ध बातने आपके मुंह को सीं दिया है आप को आगामि के लिये ऐसी बातों से लज्जित होना चाहिये लोगों को धोखे में डालना और सत्यमार्ग से भुलाना बहुत बुरा कर्म्म है यह कह कर स्वामीजी पीछे चले आये ॥

शहबाज़पुर जाना और व्याकरण रूपी सूर्य का अस्त होना सुन दुःखित होना

सोरों से चलकर स्वामीजी शहबाज़पुर में पहुंचे और वहां कुछ दिवस टिके यहां उनको समाचार मिले कि मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्दजी का देहान्त होगया जिसको सुनकर बड़े उदास होगये और यह कहने लगे कि आज संस्कृत व्याकरण का सूर्य्य अस्त होगया। शहबाज़पुर में एक वैरागी साधु को स्वामीजी के सत्य उपदेश बड़े बुरे लगे और इसने स्वामीजी को मार डालने की सोची और अपने जान पहिचान के एक ठाकुर से कहा कि मुझे तलवार मांगी दीजिये ताकि मैं स्वामी दयानन्द का सीस उतार लाऊं ठाकुर साहब ने वैरागी साधु को बहुत आड़े हाथों लिया और उसको बड़े घर पहुंचाना चाहा परन्तु अंत में उसके बहुत गिड़गिड़ाने पर छोड़ दिया और शीघ्र ही स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होकर सारा वृत्तान्त आ सुनाया स्वामीजी ने कहा कि आप कुछ चिन्ता न कीजिये उसकी क्या शक्ति है कि मेरी ओर आंख उठा करभी देख सके परंतु इस पर भी ठाकुर साहब ने अपने शस्त्रधारी सिपाहियों को वहां पहरे पर रख दिया ॥

ककोड़े के मेले पर धर्म्मप्रचार।

शहबाज़पुर से स्वामीजी ककोड़े पहुंचे यह ग्राम बदायूं के ज़िले में गंगाजी के किनारे बसा है और यहां प्रतिवर्ष कार्तिकमास में एक बड़ा भारी मेला होता है जिसमें हज़ारों आदमी दूर २ से आते हैं स्वामीजी मेले के

क्टर साहब जो प्रबंध के निमित्त वहां आये हुए थे स्वामीजी से मिलने को आये और बड़े अदब से टोपी उतार कर सलाम किया और थोड़ी देर वार्त्तालाप करके चले गये इस के पश्चात् पादरी व मौलवी लोग भी आते और स्वामीजी से बहस कर और उनकी युक्तियों से निरुत्तर होकर चले जाते इन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध उदासी साधु ने स्वामीजीसे कहा कि ब्राह्मण लोग आपको बहुत बुरा भला कहते हैं आप वृथा क्यों कष्ट उठाते हैं और मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं हम लोगों की नाईं क्यों नहीं चैन करते किसी को छेड़ने से क्या लाभ? स्वामीजीने उत्तर दिया कि हम परब्रह्म परमात्मा के ध्यान में हर समय मग्न रहते हैं और हमको आनन्द वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार में आता है आप अपनी चिन्ता कीजिये हमारी कोई निन्दा करे या स्तुति हमें कुछ परवा नहीं है हमारा धर्म्म ईश्वर की आज्ञा पालन करना है और जो कुछ हम जानते हैं उसको औरों पर प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि लोग सत्य मार्ग पर आवें।

वैरागी की लीला नोली जिले बदायूं के एक कायस्थ वैरागी होगये थे और उन्होंने यह ढंग डाला हुआ था कि ब्राह्मणों के लड़कों को अपना चेला करके अपना झूंठा उन्हें खिलाया करते थे और उन से अपनी टहलचाकरी करवाते थे एक दिन स्वामीजी गंगा किनारे घूम रहे थे इतने में यह वैरागी महाशय अपने आठ दस चेलों को लिये हुये आ निकले सब के हाथों में गोमुखियां थीं और मुंह से यह जप कर रहे थे " हरिजपो सब छोड़ो धंधा " स्वामीजी ने इनको रेत के टीले पर वहीं बिठला लिया और आप सामने बैठ गये और बोले कि आप सब से सब धंधे क्योंकर छुड़वाते हैं क्या आप की सम्मति में सब भले काम भी छोड़ देने चाहियें जबतक कुछ कार्य्य न किया जावे तबतक तो रूखी सूखी रोटी और सादा पानी भी नहीं मिलता सारांश वैरागीजी की हरएक बात की पूरी २ पोल खोल दी और वह चुप होकर चला गया।

नरौली व काम्पिल। फर्कोड़े घाट से विदा होकर स्वामीजी नरौली व कम्पिल होते हुये क़ायमगंज पहुंचे मार्ग में एक ब्राह्मण मिला स्वामीजी ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि ब्राह्मण, फिर पूछा कि कहां रहते हो? उसने कहा कि कसबा कायमगंज। तीसरी बार पूछा कि तुम वहां क्या करते हो उत्तर दिया कि भागवत आदि पुराणों की कथा करते हैं स्वामीजी ने कहा कि हम भी वहां २० दिन तक पहुंच जावेंगे यह अच्छा होगा कि तुम अपनी कथा को शीघ्र समाप्त करलो नहीं

कायमगंज में प्रचार स्वामीजी ने कायमगंज में पहुंचते ही वैदिकधर्म्म का उपदेश प्रारम्भ किया और बहुत लोग उनके सत्य उपदेशों को सुनने के लिये आने लगे जहां स्वामीजी बैठे थे उससे कुछ ऊपर कुछ गंवार आदमी बैठ गये इस पर कुछ समझदार आदमियों ने उनको मने किया परन्तु स्वामीजी ने उनको समझाया कि भाई पक्षी भी तो उपर बैठे हुये हैं आप इन सीधे साधे लोगों को कष्ट न दें इन्हें भी पक्षी समझ लें।

भागवत मिथ्या है एक दिन स्वामीजी से लाला कृष्णप्रसाद तहसीलदार कायमगंज ने पूछा कि श्रीमद्भागवत सत्य है या असत्य? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मिथ्या है इस पर तहसीलदार कायमगंज कहने लगे कि आप ऐसा न कहें मेरा दिल दुःखता है स्वामीजी ने कहा कि यह कोई बात नहीं है जो सत्य है वह सत्य ही है और जो असत्य है वह असत्य ही है यदि ऐसा ही दिल दुःखने का ख़याल था तो पहिले निश्चय करने की क्यों ठानी?

फर्रुखाबाद में धर्म-प्रचार॥ कायमगंज से प्रस्थान करके स्वामीजी फर्रुखाबाद पहुंचे और गंगा के किनारे ठहरे यहां के प्रायः सब प्रसिद्ध पंडितों से स्वामीजी की बात चीत हुई और सब को निश्चय होगया कि पौराणिक गाथायें थोड़े दिनों की हैं परंतु स्वार्थी ब्राह्मण अपने पेट के लिये सत्य को छिपाते रहे परंतु सत्यवादी लोग खुल्लमखुल्ला स्वामीजी के अनुयायी होगये और किसी के कहने सुनने की परवाह न की अपने में शास्त्रार्थ करने की शक्ति न देख कुछ पौराणिक पंडित काशीजी दौड़े गये और वहां से अपने पक्ष में एक व्यवस्था लिखवा लाये और उसे लेकर जगह २ फिरने लगे और बड़े अभिमान के साथ उसको स्वामीजी को दिखलाया स्वामीजी उसे पढ़कर हंसे और बोले कि काशी के पंडितों की योग्यता बहुत कुछ इससे ज्ञात होगई। कई बदमाश लोगों ने स्वामीजी को मार डालना चाहा परंतु कर कुछ भी नहीं सके सर्वसाधारण पर स्वामीजी के उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा और एक साहूकार ने (जो बड़ी लागत से एक मंदिर शिवजी की मूर्त्ति स्थापन करने के लिये बनवाया था) स्वामीजी के उपदेशों से वहां संस्कृत की पाठशाला खोलदी जो कई वर्षों तक चलती रही बहुत से मंदिरों में जहां दर्शन करने वालों की भीड़ रहा करती वहां अब थोड़े लोग जाने लगे स्वामीजी ने बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत संस्कार करवाया और बहुत सों को संध्या गायत्री सिखाई दूसरी बार स्वामीजी जब इस नगर में आये तो संस्कृत के विद्वान् पंडित विश्वम्भरनाथजी इनके अनुयायी होगये जिससे समस्त नगर में तहलका मच गया। एक दिन स्वामीजी गंगा में पांव

लटकाये बैठे थे कुछ बदमाश लड़के रेत के गोले बनाकर दूर से फेंकने लगे स्वामीजी चुपचाप अपने ध्यान में लगे रहे और लड़कों से कुछ नहीं कहा परंतु जब कुछ रेत आंख में पड़ गई तो उठकर एक ओर चले गये स्वामीजी में यह एक बड़ी बात थी कि कोई कैसा ही लखपती करोड़पती उनके पास आता तो उसकी बुराइयें उस के सन्मुख बता देते थे और कभी कोई लगी लपेट की बात नहीं करते थे ॥

भोजन भ्रष्ट कैसे होता है।

एक दिन एक साधु (यह एक कौम है जो फरुखाबाद के ज़िले में बहुत रहती है आम हिन्दू इनके हाथ का पानी नहीं पीते) स्वामीजी के लिये बहुत अच्छी कढ़ी भात बनाकर लाया स्वामीजी ने उसे प्रसन्नता से खालिया इस पर फरुखाबाद के कुछ पोपों ने स्वामीजी से कहा कि आपने साधु के हाथ का खालिया भ्रष्ट होगये स्वामीजी ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है एक तो किसी की हिंसा करके या कष्ट पहुंचा कर प्राप्त किया हुवा हो दूसरा उसमें कोई खराब वस्तु के पड़जाने से। जो भोजन साधु लाया था उसमें यह दोनों अवगुण नहीं थे फिर भ्रष्ट कैसे हुआ? एक मनुष्य ने पूछा कि संध्या सायं व प्रातः दोनों काल करनी चाहिये या तीन वार स्वामीजी ने उत्तर दिया दो बार इस पर उसने कहा कि एक स्थान पर ऐसा लिखा है कि राजा कर्ण दो पहर को संध्या करके भोजन किया करते थे स्वामीजी ने कहा कि यह ठीक नहीं देखो महाभारत में महाराज श्रीकृष्णजी जब द्वारिका से हस्तिनापुर को गये तो मार्ग में दो काल संध्या करते थे ॥

फरुखाबाद में पहिला शास्त्रार्थ।

फरुखाबाद में जब पौराणिक लोगों ने देखा कि स्वामीजी के सत्य उपदेशों से उनकी बड़ी हलकी होती जाती है और लोग अनेक प्रकार के प्रश्न करते हैं यहां तक कि लड़के भी बहस को तय्यार हो जाते हैं और तमाम रईस सेठ साहूकार उनसे फिरते जाते हैं तो उन्होंने दूर २ तक के पौराणिक पण्डितों को अपना रोना रोया और उनको सहायता के लिये बुलवाया परंतु किसी का साहस नहीं हुआ कि मैदान में सन्मुख आवे हां ज़िले मेरठ के एक श्रीगोपाल नामी पौराणिक आये और स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को राज़ी होगये समय भी नियत होगया और लाला पीताम्बरदासजी सभापति नियत होगये। सब से पहिले पण्डित श्रीगोपालजी ने संस्कृत में स्वामीजी से पूछा कि आप मूर्तिपूजा का क्यों खण्डन करते हैं इसकी तो आज्ञा है। स्वामीजी ने पहिले तो पण्डितजी की संस्कृत में बहुतसी ग़लतियें निकालीं फिर उत्तर दिया कि मैं मूर्तिपूजा का खण्डन करता हूं क्योंकि इसकी कहीं आज्ञा नहीं है आप बतलावें कि किस जगह आज्ञा है? इस पर

पण्डितजी ने मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७६ पढ़ा स्वामीजी ने कहा इस के अर्थ कीजिये पण्डितजी ने अर्थ किया कि देवता की पूजा करें और प्रातःसायं हवन करें क्योंकि पूजा केवल मूर्त्ति की ही होती है और की नहीं इसलिये मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आपका यह अनुमान अत्यन्त पोच है अर्चन शब्द "अर्च पूजायाम्" धातु से बनता है जिस का अर्थ पूजा अर्थात् सत्कार है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मनु महाराज ने जो लिखा है कि प्रातः सायं अग्निहोत्र किया करो और धर्मात्मा विद्वानों का सत्कार किया करो इसका अर्थ कदापि मूर्तिपूजा का नहीं इस पर थोड़ी सी बहस कर श्रीगोपालजी चुप होगये और परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी की विद्वत्ता का चर्चा शहर में पहिले से विशेष हो गया।

काशी के स्वाधर्मी पण्डितों की व्यवस्था।

जब पंडित श्रीगोपाल से कुछ नहीं बन पड़ा तो वे सीधे काशीजी को भागे और वहां पंडित शालिग्राम शास्त्री से मिले उनसे कहने लगे कि आप फर्रुखाबाद के रहने वाले हैं आप के नगर के ब्राह्मणों की रोज़ी स्वामी दयानन्द बन्द कर रहे हैं मूर्तिपूजा में अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे हैं आप कृपा कर इतनी सहायता कीजिये कि हमें काशी के पंडितों से एक व्यवस्था दिलवा दीजिये पंडित शालिग्रामजी पर इन बातों का कुछ असर हुआ और उन्होंने कुछ लिखना प्रारंभ किया परंतु उनके गुरु पंडित राजारामजी शास्त्रीजी ने कहा कि क्यों वृथा परिश्रम करते हो थोड़े समय पूर्व दक्षिण में मूर्तिपूजा के विरुद्ध कुछ चर्चा चला था तब एक व्यवस्था बनाकर भेजी थी उसी की नकल करके भेजदो सारांश उसी व्यवस्था पर कुछ रुपया खर्च करके फिर हस्ताक्षर कराये गये और पंडित श्रीगोपाल इस को लेकर फूलते २ फर्रुखाबाद में आये और अपनी जीत की डींग मारने लगे इन्होंने अपनी सहायता के लिये एक ज्वालाप्रसाद नामी कान्यकुब्ज को जो शाक्त मत में था और प्रथम श्रेणी का शराबी था लिया एक दिन पण्डित श्रीगोपाल ने गंगा किनारे एक बांस गाड़ा जिसका नाम धर्मध्वजा रक्खा जब हज़ारों आदमियों का मेला लग गया तो पं० श्रीगोपालजी ने एक और बांस गाड़ कर अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि इस पर जल चढ़ाओ कई मूर्ख लोग जल चढ़ाने लगे इससे थोड़ी दूर पर एक घाट पर स्वामीजी ठहरे थे और इस समय उनके पास कई सेठ साहूकार और पढ़े लिखे आदमी बैठे हुये तमाशा देख रहे थे स्वामीजी ने कहा कि देखो आज पं० श्रीगोपाल ने बहुत से मनुष्यों को सिड़ी बना दिया है पं० श्रीगोपाल ने पहिले अपने कुछ फिसादी आदमी स्वामीजी के पास भेजकर कहलवाया कि हमारे पास आकर शास्त्रार्थ करो स्वामीजीने उत्तर दिया कि वह क्या शास्त्रार्थ करेगा एकही दिन के शास्त्रार्थ

से सब को ज्ञात होगया कि उसको व्याकरण का ज्ञान नहीं है फिर कुछ मनुष्यों ने पं० श्रीगोपालजी से कहा कि आप स्वामीजी के पास चलकर सभ्यता से शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते इस प्रकार हुल्लड़ मचाने से क्या लाभ?उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हम वहां जहां स्वामीजी ठहरे हैं नहीं जासक्ते क्योंकि उन्हों ने वह स्थान कील दिया है यदि मैं वहां जाऊंगा तो हार जाऊंगा यदि वे नीचे उतरेंगे तो वे पराजित होजावेंगे पण्डित श्रीगोपाल ने एक मंगड़ चौबे को भी स्वामीजी को अपने अखाड़े में बुलाने के लिये भेजा था परन्तु जब स्वामीजी ने उस से शास्त्रार्थ के अर्थ पूंछे तो वह बिचारा मुंह ताकने लगा और कुछ नहीं बोल सका अंत में लोगों ने उसे समझाया कि विद्वान् लोगों के शास्त्रार्थ करने के जो नियम हैं उनके अनुकूल यदि पं० श्रीगोपाल कार्य्य करे तो शास्त्रार्थ हो सक्ता है नहीं तो सर्वसाधारण में वे अपनी हलकी तो एक समय से करवा रहे हैं उजड्ड चौबे यह उत्तर लेकर चले गये इनही दिनों में किसी ने ज़िले के हाकिमों को यह झूठी खबर दी कि यहां एक ऐसे संन्यासी आये हैं कि जिनके उपदेश से लड़ाई दंगा होजाने का भय है पुलिस ने जब अनुसंधान किया तो ज्ञात हुआ कि स्वामीजी न किसी को बुलाते हैं न भड़काते हैं;स्वतंत्रता से केवल धर्मोपदेश करते हैं प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि अच्छा लगे तो सुने वरना न सुने थोड़े दिनों पश्चात् वह डाकमुन्शी ज्वालाप्रसाद कनोजिया खूब शराब पीकर और घर से कुरसी लेकर स्वामीजी के यहां पहुंचा और बड़ी बे अदबी से कुरसी बिछा कर उनके सामने बैठा और नशे में चूर होने के कारण मनमाना अस्तव्यस्त बकने लगा। स्वामीजी के पास जितने आदमी बैठे हुये थे वे इस उन्मत की कुचेष्टाओं से बहुत भड़के परन्तु स्वामीजी के इस कहने पर कि इस उन्मत्त आदमी की बातों की कुछ परवा नहीं करनी चाहिये सब शान्त हो गये परन्तु जब यह मदोन्मत्त अपनी सीमासे बाहर हो गया तो दो तीन आदमियों से न रहा गया और उन्होंने इसकी कुरसी को उठाकर फेंक दिया और इसको एक तरफ़ लेजा कर इसकी उन्मत्तता उतार दी सारांश यह कि वह शाक्त ब्राह्मण बहुत दुर्दशा में गिरता पड़ता अपने घर पहुंचा।

किसी के कहने सुनने से उसने पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवाई थी परंतु कुछ विशेष कार्य्यवाही करने की हिम्मत नहीं पड़ी स्वामीजी से जब लोगों ने पूछा कि यदि मुक़दमा अदालत में चला तो आप क्या कहेंगे स्वामीजी ने कहा कि सत्य २ कहूंगा लोगों ने कहा कि इस में तो जुर्माना होने का भय है स्वामीजी ने उत्तर दिया कुछ ही क्यों न हो मैं झूठ नहीं बोलूंगा इस के पश्चात् सुना गया कि इस मनुष्य

का एक सम्बंधी बीस पच्चीस मनुष्य लेकर स्वामीजी पर आक्रमण करेगा परंतु यह सब गीदड़ भबकियें थीं किसको सामर्थ्य था कि स्वामीजी की ओर आंख उठा कर भी देखता, सेठ जगन्नाथ प्रसादजी ने स्वामीजी से कहा कि आप बाहर के मकान के बदले अन्दर के मकान में रहा करें इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अगर इस स्थान पर आप मेरी रक्षा करोगे तो और जगह कौन करेगा सच्चा रक्षक हर स्थान पर मेरे साथ है वही मेरी सहायता करता है मुझे किसी से भय नहीं है मैं गंगाजी के किनारे अकेला पड़ा रहता हूं और कभी मुझ पर भय नहीं व्यापता ऐसीर आफतें कई बार मेरे ऊपर आचुकी हैं परन्तु ईश्वरकी कृपा से आज तक मेरा बाल बांका नहीं हुवा सोरों में कुछ बदमाशों ने आपस में यह सलाह करी कि या तो मुझे विष दे दिया जावे या सोते हुवे को उठा कर नदी में फेंक दिया जावे अतएव एक रात्रि को मेरे धोखे में एक और साधू को चारपाई सहित उठा कर नदी में डाल दिया जब वह चिल्लाया तो उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई ज्यों त्यों करके उसे निकाल लिया इसी प्रकार जब मैंने गंगाजी के किनारे आचार्यों के मत की पोल खोली और उनकी घृणित कार्यवाहियों को सब पर प्रकट कर दिया तो उन्होंने एक दिन मुझे जान से मार डालने की ठान ली परन्तु जिस वृक्ष के नीचे मैं बैठा हुवा था उसी वृक्ष के समीप कई कामार्थी साधु जिनका पेशा हिमालय पर्वत पर से गंगोत्तरी का पानी लाना और लोगों से कुछ लेकर शिवलिङ्ग पर चढ़ाना था दो पहर में विश्राम के लिये ठहरे हुवे थे जब उन्हें इन लोगों की कुचेष्टा प्रतीत हुई तो उन्हों ने अपने बड़े २ कुत्ते छोड़ दिये और बड़ी २ लाठियां लेकर उनके पीछे होगये, इस पर वे आचार्यों के चेले भाग गये थोड़ी देर के पश्चात् ही यह समाचार सारे गांव में फैल गया और तत्काल ही गांव के सब निवासी एकत्रित होगये उन्हों ने उन आदमियों की जो स्वामीजी को मारडालने के लिये गये थे खूब खबरली इस के पश्चात् किसी मनुष्य ने स्वामीजी से छेड़ छाड़ न की और वे पहिले की अपेक्षा विशेष बल से चक्राङ्कितो का खण्डन करने लगे।

फरुखाबाद का दूसरा शास्त्रार्थ।

फरुखाबाद के पहिले शास्त्रार्थ में जब पण्डित श्रीगोपाल को बहुत नीचा देखना पड़ा और बनारस की व्यवस्था भी जिसे उन्होंने बड़े परिश्रम और खुशामद से सत्य असत्य बोलकर और अपने पास से कुछ खर्च करके प्राप्त की थी कुछ काम न आई तो पौराणिक मतावलम्बियों को भी, एक प्रकार की लज्जा आई, अन्त को यहां के लाला प्रेमदास देवीदास ने पण्डित हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण को जो दूर २ तक संस्कृत का एक विद्वान् प्रसिद्ध था कानपुर से बुल-

वाया। जब ओझा जी पधार गये तो उनके सहायकों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि यदि कोई हारजीत की बदें तो हम हलधर का स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराते हैं इसपर सेठ जगन्नाथप्रसादजी ने जो स्वामीजी के पूर्ण भक्त थे अढाई हज़ार रुपये नक़द पं० सतावनलाल के हाथ लाला प्रेमदासजी देवीदासजी को भिजवा दिये और साथ ही यह भी कहलवा दिया कि आपने हलधर ओझा को बुलवाया है और स्वामीजी से रुपये की हारजीत पर शास्त्रार्थ कराना चाहते हैं सो हमें यह भी स्वीकृत है यह अढाई हज़ार रुपये मैं भेजता हूं इतने ही आप अपने पास से मिला कर पांच हज़ार रुपये किसी साहूकार की दुकान पर जमा करा दीजिये, यदि स्वामीजी शास्त्रार्थ में हार जांय तो आप यह पांच हज़ार रुपये लेलीजिये और उनका जो चाहे कीजिये। यदि हलधरजी हार गये तो यह पांच हज़ार रुपये हमारे हो जांयगे। यह सुनकर ला० देवीदासजी बहुत घबराये और कहने लगे कि हमने हारजीत की कभी इच्छा प्रकट नहीं की हमने तो हलधरजी को केवल स्वामीजी से मित्रभाव से वार्त्तालाप करने के लिये बुलाया है। इस केपश्चात् हलधरजी के सहायक उन्हें अपने साथ लेकर स्वामीजी के उतारे के स्थान पर पहुंचे। कुशल क्षेम के पश्चात् मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होने लगा परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ही हलधरजीने अपना पक्ष गिरते देख प्रकरण बदल दिया और अब मद्यपान पर शास्त्रार्थ होने लगा। कारण यह था कि हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण थे और मैथिल प्रायः तांत्रिक होते हैं जिनके लिये मद्य और मांस आवश्यक पदार्थ है। ओझा ब्राह्मणों का कार्य प्रायः झाड़ फूंक जादू मंत्र टोने टोटके करना और भूत चुड़ैल उतारना होता है। हलधरजी ने एक प्रमाण दिया जिससे सिद्ध होता था कि मद्य का पीना ठीक है स्वामीजी ने प्रबल युक्तियों से उसका खण्डन किया और कहा कि जिस शब्द के अर्थ मद्य के करते हैं उस के वास्तविक यह अर्थ नहीं हैं वरन उत्तम फलों का रस है जो कि औषधिवत् काम में लाया जाता है जब इस पर ओझाजी निरुत्तर हो गये तो स्वामीजी से संन्यासी के लक्षण पूछने लगे स्वामीजी ने सत्य शास्त्रों के अनुसार संन्यासी के लक्षण वर्णन कर दिये इस के पश्चात् स्वामीजी ने हलधरजी से ब्राह्मण के लक्षण पूछे तो हलधरजी बगलें झांकने लगे और अटक२ कर अशुद्ध संस्कृत बोलने लगे। यह देखकर स्वामीजी ने संस्कृत में हलधरजी से कहा हलधर भाषा में वार्त्तालाप करो जो कुछ कहना है भाषा में कहो और प्रकरण मत छोड़ो। बहुत लज्जित होकर हलधरजी शब्दों की झंझट पर उतर आये और स्वामीजी से कहने लगे कि आप यह बताइये कि प्रकरण शब्द किस प्रकार सिद्ध होता है स्वामीजी ने शीघ्र ही उत्तर दिया कि

प्रपूर्वक "कृञ् धातु" से ल्युट् प्रत्यय लगने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है फिर हलधरजी ने पूछा कि "कृ" धातु समर्थ होता है या असमर्थ? जब इसका भी उत्तर स्वामीजी ने देदिया तो हलधरजी ने असली प्रकरण और आशय के विरुद्ध व्याकरण की शुष्क बातों में समय खराबकरना चाहा और यह पूछा कि समर्थ किसको कहते हैं और असमर्थ किसको? स्वामीजी ने महाभाष्य के प्रमाण से जब इस का भी उत्तर देदिया तो हलधरजी कहने लगे कि महाभाष्य में ऐसा नहीं लिखा है यह सुनकर स्वामीजी ने पं० ब्रजकिशोरजी को कहा कि आप महाभाष्य के दूसरे अध्याय का पहिला अंक निकालिये और हलधरजी को समझा दीजिये। अपनी गलती स्पष्टतया देखकर हलधरजी बहकी २ बातें करने लगे और कहने लगे कि फिर महाभाष्य भी मनुष्य ने ही बनाया है और मैं भी मनुष्य हूं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि महाभाष्य एक ऐसे ऋषि का बनाया हुआ है कि जिस के आप बाल के बराबर भी नहीं यदि हो तो बतलाओ कि कलम संज्ञा किस की है। हलधर इसका कुछ उत्तर न दे सके तब स्वामीजी ने कहा कि "अकथितं" च इस सूत्र के भाष्य में देखलो कि कलम संज्ञा कर्म्म की है इस पर सब लोग जान गये कि हलधर की कितनी विद्या है इस प्रकार व्याकरण पर शास्त्रार्थ करते २ रात का १ बज गया अंतको यह बात ठहरी कि "समर्थः पदविधिः" यह सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधरजी की हार होगी यदि एक स्थान पर तो स्वामीजी की। इसके पश्चात् सभा विसर्जन होगई दूसरे दिन रात्रि के आठ बजे से फिर सभा जुड़ी उस समय मालूम हुआ कि कुछ बदमाशों का विचार कोलाहल करने का है इस पर सब लोगों को पुकार कर कह दिया गया कि यदि कोई शास्त्रार्थ के बीच में बिना कारण के बोलेगा तो सभा से उठा दिया जायगा और जिन लोगों पर शंका थी उनको सभ्यता पूर्वक चबूतरे के नीचे बैठा दिया इस पर पण्डित गौरीशंकर कश्मीरी क्रुद्ध होकर चले गये और उसी दिन से स्वामीजी को गाली गलौज देने लगे। स्वामीजी ने गत रात्रि की प्रतिज्ञा का स्मरण दिला कर महाभाष्य की पुस्तक से "समर्थः पदविधिः" इस सूत्र को सर्वत्र लगाकर बता दिया और पण्डितों से फैसला चाहा। हलधर मौन साध गये और पण्डित लोग दूसरी बातें करने लगे। स्वामीजी ने पूर्व प्रतिज्ञा पर बल दिया और सेठ जगन्नाथ प्रसाद ने भी सब पण्डितों को पुकार कर कहा कि सत्य के प्रकट करने में क्यों झिझकते हो इस पर सब ने कहा कि जो बात हलधरने कही थी वह ठीक सिद्ध नहीं हुई पण्डितों की यह व्यवस्था सुन कर हलधर की आंखों के आगे अन्धेरी छागई और वो मूर्छित होने लगा परन्तु इस के साथियों ने उस को सम्भाल लिया और बड़ी

कठिनाई से उस को घर ले गये। लाला प्रेमदास देवीदासजी ने चलते वक़् हलधर को कुछ नहीं दिया और वह निराश होकर कानपुर चला गया। आज की रात्रि में भी शास्त्रार्थ एक बजे तक होता रहा और कई आदमी एकादशी के कारण रात भर जागते रहे और बात चीत करते रहे। लाला जगन्नाथप्रसादजी रईस फ़र्रुखाबाद रात भर जगने, ओस में बैठे रहने और ठण्डे पानी में न्हाने से बीमार पड़ गये। पौराणिक लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया चूंकि उक्त सेठजी ने हलधर को स्वामीजी से हरवा दिया इस लिये हलधर ओझा ने इन पर प्रयोग किया है सेठजी ने इस की कुछ परवाह न की परन्तु हलधर स्वयं डर के मारे सेठजी के यहां आकर कह गया कि लोग उस पर मिथ्या कलंक लगाते हैं उस ने कुछ नहीं किया है।

फ़र्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी सिंहीरामपुर में पहुंचे और यहां गङ्गा के किनारे ठहरे यहां से प्रस्थान करके मौज़े जलालाबाद में उतरे एक ब्राह्मण ने भोजन का निमन्त्रण दिया, स्वामीजी ने मानलिया, नियत समय पर वह स्वामीजी के पास आया और कहने लगा कि भोजन तैयार है मेरा घर पवित्र कीजिये। स्वामीजी ने हंस कर उत्तर दिया कि यदि वहां चलना होता तो यहां क्यों ठहरते जो कुछ आपने हमारे लिये बनवाया है यहां ही ले आइये हम आप के सामने खालेंगे उसने कहा बहुत ठीक परन्तु मैंने कच्चा भोजन बनवाया है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि कच्चा भोजन कोई किसी के लिये नहीं बनवाता आप लेआइये और कुछ न बनवाईये रात्रि को जब सोने का समय आया तो कई आदमियों ने चाहा कि स्वामीजी के लिये बिस्तर बिछावें परन्तु उन्होंने नांही की और केवल दो ईंटें मंगवाय उनका तकिया लगाय गङ्गारज पर सोगये और कहा कि यही हमारा बिस्तर है।

कन्नौज में धर्मोपदेश।

जलालाबाद से चलकर स्वामीजी कन्नौज पहुंचे और यहां धर्मोपदेश करने लगे सारी कन्नौज के पण्डित स्वामीजी से धर्म सम्बन्धी बातचीत किया करते थे और उत्तर सुनकर चुप हो जाया करते थे। पण्डित गुलजारीलाल व हरिशंकर शास्त्री ने कई दिन तक स्वामीजी से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया परन्तु अन्त में परास्त हो गये पण्डित हरिशंकर शास्त्री खुल्लमखुल्ला स्वामीजी के अनुयायी हो गये जिससे सारी कन्नौज में स्वामीजी की विद्वत्ता का सिक्का बैठ गया, एक मनुष्य ने कहा कि सदाचार में मूर्त्ति पूजा भी शामिल है। स्वामीजी ने उन्हें भले प्रकार समझादिया कि सदाचार में पञ्चमहायज्ञ हैं न कि मूर्त्तिपूजन।

कानपुर में वैदिकधर्मप्रचार

स्वामीजी कन्नौज से चलकर बिठूरहोते हुये मौज़े मदार में पहुंचे और यहां के सामवेदियों से मिले। मदार से प्रस्थान करके वर्षाऋतु के आरम्भ में कानपुर पहुंचे और गङ्गाजी के किनारे विश्रान्त घाट पर ठहरे क्योंकि स्वामीजी की प्रसिद्धि दूर २ तक होगई थी इस कारण भिन्न २ जाति व सम्प्रदायों के हज़ारों मनुष्य उनका उपदेश सुनने जाया करते हर समय प्रश्नोत्तर व शास्त्रार्थ की चर्चा रहती थी। पंडित हृदयनारायण कौलदत्तात्रेय और उनके दो छोटे भाई प्रति दिवस दस बजे भोजन करके स्वामीजी के पास चले जाते थे और सायंकाल तक वहीं बैठे रहते थे थोडे ही दिनों में इनको संस्कृत समझने व समझाने का ऐसा महावरा होगया कि प्रायः लोगों को स्वामीजी की संस्कृत का उल्था करके समझाया करते थे।

ऊंट का चारा।

श्रावण में कई लोग पाषाण के महादेव पर बिल्वपत्र चढाकर स्वामीजी का उपदेश सुनने आ जाया करते थे स्वामीजी उनसे पूछा करते थे कि आप कहां से आते हैं तो वे साफ २ कह दिया करते थे कि शिवजी पर बिल्वपत्र चढाकर आये हैं इस पर स्वामीजी कहा करते थे कि यदि वे पत्ते किसी ऊंट को खिला देते तो उसका चारा होजाता, पाषाण पर चढ़ाने से क्या लाभ ?

यदि जागती ज्योति है तो हमें उठा कर फेंक दे।

कानपुर में जहां स्वामीजी ठहरे हुये थे वहां पास ही पहिले सरकारी मेगज़ीन था जहां अस्त्रशस्त्र रहा करते थे यहां पर संगीन का पहरा रहता था लोगों में एक कहावत प्रसिद्ध थी कि एक समय उधर से भैरवजी की सवारी निकली थी पहरे वाले ने टोका था इस पर भैरवजी ने क्रुद्ध होकर पहरे वाले को उपर की मंजिल से ज़मीन पर पटक दिया, मेगज़ीन के अफसर ने उस तरफ का पहरा उठा दिया और कहदिया कि इस ओर के रक्षक भैरवजी हैं ऐसी झूंठी करामात की बातें लोग प्रायः स्वामीजी को सुनाया करते थे, एक दिन स्वामीजी ने सब को कहा कि हम तो प्रति दिवस इन भैरुवजी के विरुद्ध कहते हैं यदि ये जागती ज्योति हैं तो हमें उठाकर क्यों नहीं फेंक देते पहरे वाले को भैरव जी ने नहीं गिराया नींद ने धक्का दिया होगा इसके थोड़े दिनों पश्चात् गङ्गा की बाढ़ से भैरवजी मये चबूतरे के बह गये और लोगों को गप्प मारने का मौका न रहा।

हमारे ठाकुरजी को जाड़ा नहीं लगता।

फ़र्रुखाबाद के सेठ दुर्गाप्रसादजी कानपुर में स्वामीजी से मिलने आये और बातचीत में कहने लगे कि आप के सदुपदेश से सेठ पन्नालालजी ने मूर्त्तिपूजा बिलकुल छोड़ दी है और अब एक ईश्वर प-

रमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं एक दिन उनके मंदिर के पुजारी उनके पास पत्थर के ठाकुरजी के लिये जाड़े के कपड़े मांगने के लिये आये थे तो उन्हों ने उसे झिड़क कर कह दिया कि जाओ हमारे ठाकुरजी को जाड़ा नहीं लगता।

महादेव की बटियों से मसाला पीसने लगे।

स्वामीजी के सदुपदेशों से कानपुर में लोगों को मूर्त्तिपूजा से ऐसी घृणा हो गई कि अपनी मूर्त्तियों को गङ्गा में बहादेना और कण्ठी वगैरः तोड़ डालना एक साधारण बात होगई। यहां तक कि पूजारियों ने अपनी कई पीढियों के मूर्त्तिपूजा के रोज़गार को छोड़ दिया और ईमानदारी से अपनी भुजाओं से कमाई करने लगे। कानपूर के पण्डित शिवरामजी गौड़ ने जो कई वर्षों से एक बड़े पत्थर को महादेव के नाम से पूजा करते थे और उनके पिता भी बड़े मूर्तिपूजक थे उन पर स्वामीजी के सत्संग और उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने पत्थर के महादेवों से मसाला पीसना प्रारम्भ कर दिया बहुत से बड़े२ व बूढ़े पंडित जो उपदेश सुनने जाया करते प्रायः कहा करते थे कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं है तो सब सत्य परन्तु क्या किया जावे रोज़ी में फरक़ आता है। यदि यह मूर्ति पूजा का खंडन न करें तो लोग इनको इस समय ब्रह्मा का अवतार मानने लगें यदि यह किसी एक मत का खण्डन करें तो उसका नाम निशान न रहे परन्तु यह तो सब को एक लाठी से हांकते हैं।

एक साधु की अविद्या का परिचय

जिन दिनों स्वामीजी इस प्रकार प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों वहां एक ब्रह्मानन्द वेदान्ती साधु आनिकला जिसने यह प्रसिद्ध करादिया कि स्वामीजी अंगरेजों की ओर से लोगों को ईसाई बनाने के लिये नियत हुए हैं कोई आदमी उनके व्याख्यानों में न जावे नहीं तो धर्म्मभ्रष्ट होजावेगा, परन्तु लोगों पर ऐसी निर्मूल बातों का कुछ भी असर नहीं हुआ यह साधु कुछ पौराणिक पंडितों को लेकर एक दिन स्वामीजी के पास भी गया परन्तु उन्होंने उसकी मूर्खता की बातें सुनकर कह दिया कि तुमको विद्या की बातें नहीं आतीं अस्तव्यस्त बकने से क्या लाभ? इस पर साधुजी पीछे चले आये और कुछ भोलेभाले लोगों को यह डर दिलाया कि तुमने स्वामीजी के उपदेशों में देवताओं की निन्दा सुनी है इस कारण तुम पर बहुत पाप चढ़गया है शीघ्रही गंगा तट पर चल कर प्रायश्चित्त करो नहीं तो तुम पर कोई बलाय आने वाली है २०, २५ मनुष्य इस मूर्ख साधु की बहकावट में आगये और उसने उनको एक दिन लेजाकर गंगाजल में खड़ा रक्खा और फिर उन के जनेऊ बदलवाये और गौ का गोबर और मूत्र आदि भी पिलाये और उपदेश दिया कि आगामी को कभी स्वामी का उपदेश सुनने मत जाना। इस साधु ने एक वि-

ज्ञापन भी लगाया था कि जो ब्राह्मण स्वामी के उपदेशों में जावे उसको जाति में से छेक देना चाहिये परन्तु इस मूर्ख साधु की बातों पर किसीने ध्यान नहीं दिया और लोग पहिले से भी विशेष उपदेशों में जाने लगे ॥

वैष्णवों की घृणित लीला ।

एक दिन स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में वर्णन किया कि वैसे तो चक्राङ्कित लोग कहते हैं कि हमें मांस आदि से बड़ी घृणा है परन्तु वास्तव में देखो तो यह नरमांस खाते हैं क्योंकि जब इन लोगों के आचार्य्य किसी को अपना चेला बनाते हैं तो उसके शरीर को तप्त मुद्रा से दागते हैं और फिर उसी लोहे को जिसमें मनुष्य की जली चमड़ी मांस आदि लगा रहता है पानी में बुझा चरणामृत करके पीते हैं, यह नरमांस खाना नहीं तो और क्या है ? ॥

तोबाह करने से पाप नहीं छुटते

कानपुर की पुलिस के इन्सपेक्टर सुलतानमोहम्मद् साहब प्रायः स्वामीजी के पास आया करते थे और उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुना करते थे एक दिन स्वामीजी ने उनसे कहा कि आपके दीन में जो यह बतलाया गया है कि तोबाह करने से सब पाप क्षमा होजाते हैं यह बात ठीक नहीं है ऐसा कभी नहीं होसक्ता पाप और पुण्य का फल अवश्य मिलेगा इसको सुनकर मियां सुलतानमोहम्मद ने कहा कि महाराज जो कुछ आप कहते हैं सब सत्य है और मैं भी उसको मानता हूं। यह इन्स्पेक्टर साहब स्वामीजी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और जिस समय लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ तो खुद मियां सुलतान मोहमद् पचास साठ पुलिस कान्स्टेबिल सहित प्रबंध करने आये थे और किसी प्रकार का गुल गपाड़ा नहीं होने दिया ॥

मुक्ति की प्राप्ति का उपाय ।

एक ब्राह्मण ने स्वामीजी से एक दिन पूछा कि मैं क्या२ कर्म्म करूं कि जिससे मुक्ति हो जाय स्वामीजी ने उत्तर दिया कि प्रति दिन संध्या और पंच महायज्ञ किया करो लड़कों को विद्या पढ़ाया करो यज्ञोपवीत कराया करो परंतु मूर्तिपूजा कभी न किया करो यह अन्तिम बात सुनकर वह कुछ संकोच करने लगा और कहने लगा कि मूर्तिपूजा तो पुरानी चली आई है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह कोई बात नहीं है चोरी करना भी पुराना चला आया है सत्य को सदैव ग्रहण करना चाहिये और असत्य को परित्याग करना चाहिये यह कोई आवश्यक नहीं है कि यदि एक खोटा काम जो हम अविद्या या भूलसे करते आये हैं ठीक प्रतीत होने पर भी पुराना होने के कारण करते चले जावें ॥

बुरे काम से सिर नीचा होजाता है

पं० गुरुनारायण ब्राह्मण के घर में एक मेम थी यह महाशय कभी २ स्वामीजी के यहां उपदेश सुनने जाया करते थे एक दिन स्वामीजी

ने उचित रीति से इनकी खबरली और कहा कि आपने यह क्या भ्रष्ट काम कर रक्खा है पंडितजी ने सिर नीचा कर लिया।

मुंह तोड़ उत्तर ऐसा होता है।

एक दिन एक मसखरे ने स्वामीजी से हंसी भी करी थी परंतु ऐसी मुंहकी खाई कि चुप होना पड़ा यह इस प्रकार हुआ कि स्वामीजी के पास एक लोटा रक्खा हुआ था उसने कहा कि आप थोड़े समय के लिये लोटा मुझे देदें स्वामीजी ने पूछा क्या करोगे उसने उत्तर दिया कि इस में पानी भर२ कर महादेवजी पर चढ़ाऊंगा स्वामीजी ने कहा आपके पास तो कुदरती लोटा मौजूद है उससे यह काम क्यों नहीं लेते उसने आश्चर्य्य में होकर पूछा कि वह क्या? स्वामीजी ने कहा कि तुम्हारा मुंह, उसमें पानी भर२ कर क्यों नहीं महादेवजी पर चढ़ाते यह उत्तर सुनकर मसखरा चुप होगया॥

कानपुर में बड़ा भारी शास्त्रार्थ।

यहां पर स्वामीजी के लगातार सत्य उपदेशों से दूर २ तक सब मत, मतान्तरों के लोगों में खलबली मचगई विशेष कर पौराणिक लोगों में जो बहुत ही हतोत्साही और निराश थे। उस समय कानपुर में पंडित गुरुप्रसाद शुक्ल और पंडित प्रयागनरायण तिवाड़ी दो बड़े धनाढ्य मनुष्य थे इन्होंने कई मन्दिर बहुत रुपया लगा कर बनाये थे यह भी स्वामी जी के उपदेश सुनने जाया करते थे एक दिन स्वामीजी ने इनको समझाया कि आप ने वृथा लखों रुपये इन मन्दिरों के बनवाने में लगाये जिसमें सिवाय हानि के और कुछ लाभ नहीं है थोड़े दिनों में यह गिर जावेंगे क्या ही उत्तम होता यदि तुम यही रुपया किसी देशोपकारी कार्य्य में लगाते जिससे सर्वसाधारण को लाभ पहुंचता परंतु यह लोग पौराणिक ब्राह्मण थे स्वामीजी के सत्य उपदेशों से लाभ उठाने के बदले उलटा अपना हलकापन समझने लगे और उसी घड़ी से मन में ठान ली कि जिस प्रकार होसके स्वामीजी को नीचा दिखाना चाहिये। उधर हलधर ओझा फर्रुखाबाद की पराजय के कारण खार खाये बैठा ही था जब इसको यह ज्ञात हुआ कि शुक्लजी और तिवाड़ीजी भी स्वामीजी के विरुद्ध हैं तो इसकी हिम्मत बढ़गई और दस बीस आदमी और भी इनमें मिलगये जो रुपये पैसे से सहायता देने को तय्यार थे इसके पश्चात् पौराणिक पंडितों ने भी अपने यजमानों को उकसाया कि यदि ऐसे समय में जब कि सनातन धर्म्म की हानि होरही है सहायता नहीं दोगे तो कब दोगे सारांश यह है कि सारे पौराणिक समुदाय में हलचल मच गई दूसरी ओर स्वामीजी ने भी एक विज्ञापन संस्कृत में छपवा कर वितीर्ण कर दिया कि इससमय २१ ग्रन्थ प्रामाणिक माने जावेंगे परंतु यदि किसी पुस्तक में कोई बात वेदविरुद्ध होगी तो वह

अप्रामाणिक ठहरेगी क्योंकि बहुत से धूर्त्त पंडित धोखा देने को हस्तलिखित पुस्तकों में कुछ का कुछ बढ़ा लेते हैं और छपी हुई पुस्तकों में भी चालाकी करते हैं इसी विज्ञापन में अष्ट गप्पों और अष्ट सत्य उपदेशों का वर्णन था सारांश शुक्लजी और तिवाड़ीजी के कहने से पंडित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये नियत हुए एक बिठूर के लक्ष्मण शास्त्री दूसरे हलधर ओझा । ३१ जुलाई सन् १८६९ शास्त्रार्थ के लिये नियत हुई इस दिन कानपुर के भैरवघाट के नीचे फरश होगया सारे नगर के सेठ साहूकार रईस व अफसर सरकारी अहलकार उपस्थित थे मिस्टर डबल्यू थैन साहिब जाइन्ट मैजिस्ट्रेट कानपुर इस सभा के सभापति नियत हुए क्योंकि आप संस्कृत के भी विद्वान् थे और किसी पक्ष के नहीं थे । शास्त्रार्थ के प्रारंभ में ५० हज़ार मनुष्यों की भीड़ भाड़ थी साहब इन्स्पेक्टर पुलिस ५०-६० कानूस्टेबिलों सहित प्रबन्ध कर रहे थे ठीक दो बजे हलधर ओझा और स्वामीजी की बातचीत प्रारंभ हुई ।

वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है ।

पहिले हलधर ओझा ने जो फर्रुखाबाद में परास्त होचुका था प्रश्न किया कि संस्कृत के विज्ञापन में जो आप ने अभी दिया है जो अष्ट गप्पम् और अष्ट सत्यम् लिखा है यह व्याकरण से अशुद्ध है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इन वृथा बातों में समय मत नष्ट करो ऐसी २ बातें पाठशाला के छोकरे किया करते हैं मेरे विज्ञापन में व्याकरण की एक भी अशुद्धि नहीं है यदि शंका है तो फिर किसी दिन अपने मित्रों को लेकर चले आना मैं समाधान करदूंगा इस समय तो वह चर्चा होनी चहिये कि जिसके लिये इतने मनुष्य एकत्रित हुए हैं और ऐसा प्रबंध किया गया है इस पर ओझाजी ने दूसरा प्रश्न किया कि क्या आप महाभारत को मानते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हां जहां तक यह वेदानुकूल है । यह सुनकर ओझाजी ने एक श्लोक बोला जिसका अभिप्राय यह था कि एक भील ने द्रोणाचार्य्य की मूर्त्ति बनाकर अपने सामने रख ली थी और उससे धनुष् विद्या सीखी थी इसको सुनकर स्वामीजी ने पूछा कि क्या इस श्लोक में मूर्त्तिपूजा की आज्ञा है इसमें स्पष्ट लिखा है कि एक भील ने ऐसा किया जैसा कि प्रायः कुपढ़ जंगली गंवार मनुष्य किया करते हैं जिस भील ने ऐसा किया उसके विषय ऐसा नहीं लिखा कि वह कोई विद्वान् था या ऋषि मनुष्य था और न यह ही सिद्ध होता है कि किसी विद्वान् आदमी ने उसको ऐसा करने की प्रेरणा की यदि खेंचतान करके आप उससे यह अभिप्राय निकालें कि उसके ऐसा करने से उसको धनुषविद्या आगई तो यह द्रोणाचार्य्य की मूर्त्ति सामने रखने से नहीं आई बरन घोर अभ्यास करने

से जैसा कि आजकल चांदमारी में चांद बनाकर निशाना लगाते हैं स्वामीजी का यह उत्तर सुनकर ओझाजी चुप होगये थोड़ी देर के पश्चात् फिर प्रश्न किया कि यदि वेदों में मूर्त्तिपूजा की आज्ञा नहीं है तो मनाई कहां है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि कोई स्वामी यदि अपने भृत्य को पूर्व की ओर जाने की आज्ञा दे दे तो यह स्पष्ट है कि वह पश्चिम उत्तर और दक्षिण की ओर न जावे और वेदों में तो स्पष्ट मूर्त्तिपूजा का निषेध है, यह सुनकर ओझा चुप होगया।

संस्कृतज्ञता का परिचय।

इसके पश्चात् सभापति मिस्टर थेन साहब ने यह जानने के लिये कि स्वामीजी केवल शास्त्रार्थ करना ही जानते हैं या कुछ पढ़े भी हैं एक पत्रा संस्कृत की पोथी का जो ओझाजी के पास था लेकर स्वामीजी को दिया कि ज़रा इसे पढ़िये इसमें क्या लिखा है स्वामीजी ने जो कुछ उस में लिखा था पढ़कर सुना दिया अंत में मिस्टर थेन ने प्रश्न किया कि आप किस को मानते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि एक ईश्वर को, यह सुनकर मिस्टर थेन उठ खड़े हुए और स्वामीजी की विजय की व्यवस्था देखकर इनको सलाम करके चल दिये।

हारने पर भी पौराणिकों का जीत का कोलाहल मचाना

सभापति के जाते ही सभा विसर्जन होगई और इस अवसर पर भी पौराणिक लोग अपनी शरारत से नहीं चूके पं० प्रयागनरायण तिवाड़ी ने ८) रु० के पैसे पं० हलधरजी के सिरपर से वार कर लुटा दिये और शोर मचाया कि ओझाजी जीत गये और स्वामीजी हार गये फिर ओझाजी को गाड़ी में बिठला कर घर ले गये दूसरे दिन पं० गुरुप्रसाद शुक्ल शोलेतूर नामी अखबार के कारखाने में पहुंचे और शोलेतूर के मालिक से जो उनका किरायेदार था कहा कि कल के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त अखबार में छापो अखबार वाले ने कहा क्या छापें शुक्लजी ने कहा यही कि ओझाजी जीते और स्वामीजी हारे। अखबार वाले ने कहा कि इस महासभा में करीब २ सबही हाकिम लोग थे इसलिये बिना उनकी आज्ञा के कुछ लिखना उचित नहीं होगा इसपर शुक्लजी ने कहा उचित न होगा तो क्या होगा अखबारवाले ने कहा शायद जुर्माना होजाय इसपर शुक्लजी ने कहा कि १० हज़ार तक तो मैं जुर्माना दे दूंगा अंत को शुक्लजी के बहुत ही कहने सुनने पर अखबार में यह निकाला कि स्वामीजी निरुत्तर होगये और ओझाजी जीते चूंकि इस सभा में ५० हजार मनुष्य उपस्थित थे और सब को सत्य हाल प्रकट था, इस कारण शोलातूर वाले को झूंठ लिखने पर सब ने धिक्कार दी, और स्वयं हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री अपनी पराजय को अनुभव करनेलगे।

सत्योपदेश से मूर्त्तियों का गंगा में फेंका जाना

इस भारी शास्त्रार्थ के पश्चात् पौराणिकों का रहा सहा अभिमान चूर होगया और सर्वसाधारण का चित्त मूर्त्तिपूजा से हटगया और प्रतिदिन ढेर के ढेर शिवालिंग और शालिग्राम गंगाजी में फेंके जाने लगे समस्त नगर में हलचल मचगई कि पौराणिक मत नष्ट हुआ जाता है इसपर हलधर ओझा ने संस्कृत, नागरी और उर्दू में विज्ञापन जारी किये कि कोई मूर्त्तियों को गंगा में न डाले या तो वे स्वयं शुक्लजी या तिवाड़ीजी के मंदिर में पहुंचा देवें या खबर कर देवें ताकि आदमियों से उठवा मंगवावें ॥

विज्ञापन की नक़ल यह है ।

जो कि दयानन्द सरस्वती के मत के अनुसार बहुत से लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अपना कुलधर्म्म छोड़कर देवताओं की मूर्त्ति गंगाजी में प्रवाह कर देते हैं यह बात बड़ी अनुचित है इसलिये यह विज्ञापन दिया जाता है कि जो लोग उनके मत को स्वीकार करें उनको उचित है कि मूर्त्तियों को कृपाकर एक मन्दिर कैलास नामी महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल का है उस में या मन्दिर महाराज प्रयागनारायण तिवाड़ी में पहुंचा दिया करें यदि उनको पहुंचाने की शक्ति न हो तो हमको इत्तिला दें हम उनको उठवा लिया करेंगे इनके वहां फेंकने में बहुत पाप है ॥

ह० हलधर ओझा ॥

शोलेतूर में ही सत्योपदेश के प्रभाव का वर्णन

किस को सामर्थ्य है कि सत्य को सदैव छुपा सके वही अखबार शोलेतूर जिसने मकान वाले के दबाव से असत्य लिखा था उसी ने लाचार यह लिखा कि संन्यासी के सत्संग से बाजे हिन्दू मूर्त्तियों को दरिया में डालने लगे ओझाजी ने इश्तिहार दिया है कि वेदों व शास्त्रों में ऐसा करना बुरा लिखा है जिसको दरिया में मूर्त्ति डालना हो वह उनके पास भेज दें नदी में डाल कर पाप न लें ॥

स्वामीजी की जीत का प्रमाण पत्र ॥

अखबार शोलेतूर की झूठी लिखावट व धोखेबाजी को पं० हृदयनारायणजी ने सभा के प्रधान मिस्टर डबल्यू थेन साहब के सन्मुख पेश की जिन्हों ने अखबार के शब्द सुनकर फ़रमाया कि नहीं २ उस दिन स्वामीजी की फतह हुई थी और उक्त साहब ने एक पत्र भी लिख दिया ॥

Gentlemen! At the time in question I decided in favor of Swami Dayanand Saraswati Faqir, and I believe his arguments are in accor-

dance with the Vedas. I think he won the day. If you wish it, I will give you my reasons for my decision in a few days,

(Sd.) THANES.

रामनगर बनारस में प्रचार ॥

कानपुर से रवाने होकर स्वामीजी गाजीपुर आदि स्थानों में एक २ दिन ठहरते हुए २१ सितम्बर सन् १८६९ को रामनगर में पहुंचे यहां महाराज साहिब बनारस के लघु भ्राता के उत्साह व सहायता से रामलीला का मेला बड़े समारोह के साथ हुआ करता था दूर २ से लोग इसको देखने के लिये आया करते थे स्वामीजी ने यहां पहुंचते ही मेले में वैदिकधर्म्म का प्रचार आरंभ कर दिया सारे मेले में इनकी धूम मच गई पण्डितों और उनके शिष्यों ने प्रश्न किये उत्तर सुन २ कर चकित हो जाते थे कई रईस भी छुप २ कर उपदेश सुना करते थे और उनके हृदयों पर सत्य उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ता था यद्यपि लोकलाज से वे सब के सन्मुख प्रकट नहीं करते थे बहुत से अंगरेजी पढ़े लिखे लोग भी स्वामीजी के पास शंकानिवारणार्थ आया करते थे और शान्तिदायक समाधान सुन कर स्वामीजी के अनुयायी हो जाया करते थे ।

काशी में धर्मप्रचार

२२ अक्टूबर सन् १८६९ ई० को स्वामीजी खास काशी में पहुंचे आनन्दबाग में जा डेरा जमाया स्वामीजी का रामनगर में विशेष रहने का यह भी अभिप्राय था कि वे काशी के पण्डितों की विद्या की परीक्षा स्वयं करते थे एक दिन स्वामीजी के पास महाराजा भरतपुर महाराजा रीवां महाराजा नरवा और एक अंगरेज आये और ऐसी बातें कीं कि जिससे प्रतीत होता था कि वे ईश्वर को नहीं मानते परन्तु स्वामीजी ने उनको ऐसी प्रबल युक्तियों से समझाया कि अन्त में उनको मानना पड़ा और वे हृदय से स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे यह सब रईस उन दिनों बनारस कालेज में पढ़ते थे काशी के पण्डितों ने यह चाल चल रक्खी थी कि वे अपने शिष्यों द्वारा स्वामीजी से संस्कृत में प्रश्न किया करते थे और उत्तर सुन कर चुप हो जाया करते थे ।

पौराणिक शास्त्री की सभ्यता ।

एक दिन काशी के शिरोमणि पण्डित राजाराम शास्त्री को पं० बलदेव शुक्ल के द्वारा एक प्रश्न लिख कर भेजा पं० राजाराम शास्त्री उस को देख कर घबरा गये और क्रुद्ध होकर असभ्य मनुष्यों की नाईं बकने लगे कि स्वामीजी से कह दो कि पहिले बीच में एक छुरी रखलें तब हम उनका उत्तर देंगे यदि हमने उसका उत्तर दे दिया तो उनकी नाक काट लेंगे जब स्वामीजी ने शास्त्रीजी के ऐसे अमूल्य वचन सुने तो उन्हों ने उत्तर दिया कि

शास्त्रीजी से जाकर अभी कह दो कि एक नहीं २ छुरियें बीच में रख लें और जो पराजित हो जाय वह अपनी नाक आप काट ले यह सुन कर शास्त्रीजी चुप होगये और यह कह कर टाल दिया कि अब वे काशी में आ गये हैं शीघ्रता क्या है शनैः २ सब ज्ञात हो जायगा ।

शास्त्रार्थ के लिये काशी नरेश को उत्साहित करना ।

आनन्द बाग में पंडितों और विद्यार्थियों की भीड़ हरसमय रहने लगी और स्वामीजी ने निडर होकर सब मतमतान्तरों की पोल खोलनी प्रारम्भ करदी और साथ ही वैदिकधर्म्म के सिद्धान्तों का प्रचार । स्वामीजी महाराज ने काशीनरेश से कहला भेजा कि या तो आप स्वयं हम से अपनी शंकाओं की निवृत्ति कर लेवें या काशी के प्रसिद्ध और विद्वान् पंडितों से अपने सन्मुख हमारा शास्त्रार्थ करादें ताकि सत्य और असत्य का निर्णय होजाय । अन्त को महाराज ने काशी के नामी २ पंडितों को बुलाकर कहा कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ कीजिये नहीं तो ठीक नहीं होगा । महाराज साहब के भ्राता जो बड़े कट्टर पौराणिक थे पंडितों से कहने लगे कि जैसे बने वैसे मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करो । महाराज काशी ने पंडितों से कहा कि यदि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खंडन न करते तो हम उन्हें अपना गुरु बनाते और अपने हाथ से सोने का छत्र उन पर चढ़ाते । हम स्वयं वेद और शास्त्र से विज्ञ नहीं इस कारण हम उनसे बात चीत नहीं कर सके आप सब लोग हमारा लाखों रुपया खर्च करवाते रहे हैं अब अवसर है कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ करके मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करो नहीं तो बड़ी खराबी होगी । यह सुनकर काशी के सब पंडित सोच में पड़गये और कहने लगे कि स्वामीजी बार २ वेदों का प्रमाण मांगते हैं और हम में से किसी ने आज तक वेद देखे नहीं हैं अन्य पुस्तकें तो बहुत पढ़ी हैं यदि हमें कुछ अवकाश मिले तो हम वेदों को देखकर उनमें से जो कुछ मूर्त्तिपूजा के विषय लिखना होगा पेश करेंगे । महाराज साहिब ने उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ तुम को अवश्य करना पड़ेगा और १५ दिवस की अवधि तय्यारी के लिये देदी और रोशनी का प्रबन्ध भी करा दिया कि पण्डित लोग रात्रि को भी तय्यारी करें १५ दिन के पश्चात् पंडितों में से एक मनुष्य स्वामीजी के पास यह पूछने को गया कि आप कौन से ग्रन्थ प्रामाणिक मानते हैं । स्वामीजी ने कहा कि वेदों को स्वतःप्रमाण और अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों को परतःप्रमाण । जब जिले के हाकिमों ने सुना कि स्वामीजी से एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ होने वाला है तो उन्होंने महाराज साहब काशी से इच्छा प्रकट की कि यदि यह रविवार को हो तो हम सब लोग भी इसमें सम्मिलित होसके हैं परंतु महाराज काशी को तो

उनका बुलाना अभीष्ट नहीं था इस कारण कुछ कहला दिया क्योंकि उनके होते हुए सारा प्रबन्ध महाराज के हाथ में नहीं रहता और न वे अपनी इच्छानुसार धांधल करसके ।

काशी में शास्त्रार्थ की तैयारी।

ता० १६ नवम्बर १८६९ ई० शास्त्रार्थ के लिये नियत हुई । महाराज काशी ने अपने सांसारिक वैभव व प्रतिष्ठा का प्रभाव स्वामीजी पर डालना चाहा और काशी के पण्डितों को नियत काल से कुछ पूर्व बड़े ठाट बाट से भेजना प्रारम्भ किया पौराणिक पण्डितों की डोलियों पर डोलियां आनेलगीं और कई पण्डित तो बड़ी सजी हुई पालकियों व नालकियों में चंवर ढुलवाते हुये आये इस उन्नीसवीं शताब्दी के बड़ेभारी शास्त्रार्थ को देखने के लिये ५०—६० हजार मनुष्य एकत्रित हो गये थे पण्डित रघुनाथप्रसादजी बुंदेलखंड निवासी इससमय पुलिसइन्स्पेक्टर थे यद्यपि यह मूर्तिपूजक थे परंतु सत्यग्राही व स्वतन्त्रविचार के मनुष्य थे काशी के पण्डितों ने शास्त्रार्थ से बहुत टालबाज़ी करनी चाही परन्तु पं० रघुनाथप्रसाद के बीच में रहने से कुछ उनकी चाल न चल सकी इसका कारण यह था। कि पण्डित रघुनाथप्रसादजी सत्य २ वृत्तान्त महाराज काशी से कह दिया करते थे और स्वयं स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे और जो कुछ विपक्षियों की ओर से कहना हुआ करता था आप कहा करते थे शास्त्रार्थ के दिवस आप मय सब इन्स्पेक्टर व ५० सिपाहियों के प्रबन्ध के लिये उपस्थित थे और आपने ऐसा उत्तम प्रबन्ध कर दिया था कि यदि उसके अनुकूल चलते तो किसी प्रकार की हां हूं नहीं होती अर्थात् आपने एक कमरे में दो ऊंचे २ स्थान नियत किये थे एक स्वामीजी के लिये और दूसरा विपक्षियों के लिये और तीसरा स्थान काशीनरेश के लिये रक्खा था ताकि एक समय में एक २ मनुष्य ही बोलसके और दूसरे मनुष्य बीच में न बोलसकें जिससे सब लोगों को आपस की बातचीत सुनाई देवे परन्तु शोक है कि महाराज काशी ने आते ही सारे प्रबन्ध को बिगाड़ दिया और बहुत से पण्डित महाराज की हिमायत पर आगे बढ़कर स्वामीजी को घेरकर बैठ गये और सब से आगे स्वयं महाराजा हो गये स्वामीजी के सहायकों के लिये संकेत से मार्ग बंद कर दिया आखिर किसी ने स्वामीजी के पास रुक्का लिखकर भेजा कि उनको लोग नहीं आने देते जिस पर उन्होंने पण्डित रघुनाथप्रसादजी को कह कर उनको अंदर बुलालिया और बड़ी प्रतिष्ठा से अपने पास बिठलाया परन्तु महाराज काशी ने पण्डितों के कहने सुनने से उनको उठवा कर दूसरे स्थान पर बिठला दिया स्वामीजी को बुरा तो बहुत लगा परन्तु यह समझकर कि यह लोग किसी बहाने से शास्त्रार्थ को टालना चाहते हैं चुप हो गये ।

काशी के शास्त्रार्थ में प्रसिद्ध पण्डित ये थे ।

वैसे तो काशी के सब पण्डित इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे जिन में से निम्नलिखित प्रसिद्ध थे, स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बालशास्त्री, पं० शिवसहाय माधवाचार्य्य, वामनाचार्य्य, पं० देवदत्त शर्म्मा, पं० जयनारायण शुक्ल वाचस्पति, पं० चंद्रशेखर त्रिपाठी, पण्डित राधामोहन तर्क वागीश, पं० दुर्गादत्त, पं० बस्तीरामदुबे, पं० काशीप्रसाद शिरोमणि, पं० हरिकृष्ण व्यास, पं० अम्बिकादत्त, पं० घनश्याम, पं० ठाकुरदास, पं० हरदत्त दुबे, पं० भैरवदत्त, पं० श्रीधर शुक्ल, पं० विश्वनाथ मैथिल, पं० नवीननारायण तर्कालंकार, पं० मदनमोहन शिरोमणि, पं० कैलाशचंद्र शिरोमणि, पं० मेवकृष्ण वेदान्ती, पं० गणेशश्रोत्रिय, पं० धनीरामनारायण शास्त्री, पं० देवधर, नृसिंह शास्त्री, महाराज काशी, महाराज के भ्राता, राजकुमार शिववीर नारायणसिंह व फतहनारायणसिंह वर्म्मा, बा० ईश्वरीनारायणसिंह शर्म्मा ॥

शास्त्रार्थ का संक्षिप्त वृत्तान्त । इस शास्त्रार्थ का सविस्तर वृत्तान्त काशीशास्त्रार्थ नामी पुस्तक में है संक्षेप से यहां भी दिया जाता है । पहिले ही पहल मूर्त्तिपूजा पर बातचीत प्रारम्भ हुई पण्डितों ने अपनी आदत के अनुसार प्रकरण बदल कर जगत् के कारण और कर्त्ता पर प्रश्न ले दौड़े जब स्वामीजी उत्तर देते तो दो २ चार २ पण्डित बीच में बोलने लग जाते चार घंटे तक बराबर शास्त्रार्थ होता रहा जिसमें पौराणिक लोगों ने बहुत ही हठ धर्मी की जब काशी के सब पण्डित मूर्तिपूजा को सिद्ध नहीं कर सके और स्वामीजी ने बार २ ललकारा कि मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करो कोई वेद का प्रमाण दो तो सब पण्डित चुप होजाते थे अंत में पण्डित माधवाचार्य्य ने एक संस्कृत की पुस्तक के कुछ पृष्ठ सामने रख कर कहा कि यह वेद के पृष्ठ हैं और इनमें लिखा है कि यज्ञ की समाप्ति पर यजमान दसवें दिन पुराणों की कथा सुने असलमें यह पृष्ठ गृह्यसूत्र के थे वेदों के नहीं स्वामीजी से प्रश्न किया गया कि यहां पुराण शब्द का क्या अभिप्राय है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि पहिले असली संस्कृत को पढ़ो और फिर उसके आगे पीछे के सम्बन्ध को मिलाओ इस पर स्वामी विशुद्धानन्दजी ने पृष्ठ उठाकर स्वामीजी के हाथ पर रख दिये और कहा कि आपही पढ़िये स्वामीजी ने पृष्ठ पीछे देकर कहा कि उत्तम यह है कि आप ही पढ़ें स्वामी विशुद्धानन्दजी ने कहा मेरा चश्मा नहीं है आपही पढ़ें स्वामीजी ने उनके हठ करने पर पृष्ठ लेलिये कमरे में संध्या के कारण अंधेरा होगया था इसलिये उन्होंने रोशनी मांगी एक पौराणिक एक रद्दी सी लालटेन जिसके एक ओर से प्रकाश हो सक्ता था लाकर खड़ा होगया जब स्वामीजी पृष्ठ देखने लगे तो

यह चालबाज़ी से लालटेन को हिलानेलगा स्वामीजी को पृष्ठ देखने में दो मिनट भी नहीं लगे होंगे कि स्वामी विशुद्धानन्दजी खड़े होगये और कहने लगे कि हम विशेष देर तक नहीं ठहर सक्ते और जीत की आवाज़ें लगाने लगे स्वामीजी ने यह दृश्य देख कर बड़े ज़ोर से कहा कि यह सब कार्य्यवाही बड़ी असभ्य व शोचनीय है परन्तु वहां कौन सुनता था बाहर चालीस पचास सहस्र मनुष्यों की भीड़ भाड़ थी उन्होंने असभ्यता का राज्य फैला दिया उस समय पुलिसइन्सपेक्टर पण्डित रघुनाथप्रसादजी ने महाराज काशी से कहा कि महाराज आप के सन्मुख सत्य के गले पर छुरी फिर रही है मैंने जो प्रबंध किया था उसको तो आप ने आते ही बदल दिया मैं आप का मान रखने के लिये चुप हो रहा अब यह असभ्यता फैल रही है इस पर महाराज साहब पण्डित रघुनाथप्रसादजी की बांह में हाथ डालकर अपने साथ ले गये और मार्ग में कहने लगे कि आप को इन बातों से क्या प्रयोजन आप भी तो मूर्त्तिपूजक हैं पस अपने शत्रु को जिस प्रकार हो सके विजय करना चाहिये। इसके पश्चात् बड़े २ समाचारपत्रों में इस शास्त्रार्थ का वर्णन छपा जिस से सत्य स्वयं प्रकट हो गया यहां तक कि विपक्षी समाचार पत्रों को अपनी निर्बलता स्वीकार करनी पड़ी सत्य तो यह है कि इस शास्त्रार्थ से काशी के पौराणिक पण्डितों की सारी ढोल की पोल निकल गई और विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों को प्रकट होगया कि पौराणिक ढकोसला बहुत समय तक नहीं चलेगा ॥

काशी में तीसरी वार पधारना और अहं ब्रह्मास्मि का खण्डन।

तीसरीवार स्वामीजी १६ मई १८७० को काशी में पधारे और लाला माधवदासजी के बाग में उतरे इनको काशी के पण्डितों की विद्या व बुद्धि का पता तो पूर्व लग ही चुका था परन्तु फिर भी शास्त्रार्थ का अवसर दिया गया परन्तु किसी ने चूं तक भी न की इन दिनों मे स्वामीजी ने नवीनवेदान्तियों का विशेष कर खण्डन किया और एक पुस्तक अद्वैतमतखण्डन नामी लिखी जो लाइटप्रेस बनारस में छपवाकर बांटी गई थी जिसका फल यह हुआ कि नवीनवेदान्त की कई खराब पुस्तकें जो पहिले बहुत प्रचलित थीं बंद होगईं और सब को प्रकट होगया कि नवीनवेदान्तियों का (अहं ब्रह्मास्मि) "मैं ही ब्रह्म हूं" बिलकुल असत्य सिद्ध हुआ ॥

काशी में चौथी वार पधारना और मूर्त्तिपूजा का खंडन ॥

चौथी वार स्वामीजी १ मार्च सन् १८७२ को काशी में पधारे और लाला माधवदासजी के भ्राता लाला मधुसूदनदासजी के बगीचे में ठहरे और फिर बड़े ज़ोर शोर से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया और पौराणिक पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा परन्तु कोई सन्मुख नहीं आया ॥

५ वीं वार काशी में हिन्दीभाषा में व्याख्यान ।

पांचवींवार स्वामीजी काशी में जून १८७४ में पधारे और गुसांई रामप्रसादजी के बाग में ठहरे दो मास तक निवास किया और अपनी स्थापित की हुई पाठशाला को भी देखते रहे यहां ही पहिलीवार भाषा बोलना प्रारम्भ किया और एक मनुष्य से कहा कि हम तीसरे पहर को भाषा में व्याख्यान देंगे इन्होंने मने किया कि ऐसा न करें स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम तो आप यही चाहते हैं कि भाषा न बोलें परन्तु तजुर्बे ने यह बतला दिया है कि सर्वसाधारण को हमारी बातों का अभिप्राय उलटा समझाया जाता है हम कुछ कहते हैं और पण्डित लोग लोगों को कुछ समझा देते हैं इस कारण लाचार हमें भाषा बोलनी पड़ेगी और आपने तीसरे पहर भाषा बोलने का साहस किया परन्तु वास्तव में वह भाषा क्या थी निरी संस्कृत थी कहीं२ कोई शब्द भाषा का आजाता था लाला माधवदासजी की श्रद्धा स्वामीजी पर बहुत थी स्वामीजी को एक दिन ज्ञात हुआ कि उनके बाग से प्रति दिवस एक टोकरी पुष्प उनके घर पर मूर्तियों पर चढ़ने के लिये जाया करते हैं सो आपने उक्त लाला साहब से कहा कि हमें शोक है कि आप अभीतक मूर्तिपूजा करते हैं नित्यप्रति आप सेरों पुष्पों को नष्ट कराते हैं यदि यह बाग में लगे रहें तो बाग की सुंदरता बढाने के अतिरिक्त दूर २ तक वायु को सुगंधित करें यदि गुलदस्ते बनवाकर ही आप अपने घर या कोठी में रखवावें तब भी कुछ बात है परन्तु पत्थरों पर चढ़ा कर उनको फेंक देना बुद्धिमत्ता नहीं कहलाती इन्हों ने उत्तर दिया कि मैं तो मूर्त्तिपूजक नहीं हूं परन्तु मेरे घर के और सब लोग मूर्त्तिपूजा करते हैं यदि बाग से पुष्प भेजना बंद कर दूं तो वे बाजार से डेढ़ दो रुपये रोज़ के पुष्प लाया करेंगे और हानि वास्तव में मुझे ही होगी यह सुनकर स्वामीजी हंसने लग गये और कहा कि ऐसी दशा में कठिन है ॥

काशी के सबजज साहब के बंगले पर व्याख्यान ।

इस वार स्वामीजी ने सर सैयद अहमद खां साहब के बंगले पर जो इन दिनों बनारस के सबजज थे दो तीन बार व्याख्यान दिये सय्यद साहब ने स्वामीजी की मुलाकात शेक्सपीयर साहब कमिश्नर से कराई महाराज बनारस ने भी अपने पिछले अपराधों की क्षमा के तौर पर स्वामीजी से भेट करनी चाही और अपनी बग्घी भेजी परन्तु स्वामीजी ने अस्वीकार कर दिया फिर दूसरे दिन अपनी बग्घी व आदमी भेजे और बड़े आदर सत्कार के साथ स्वागत किया और बात चीत करते समय स्पष्ट कह दिया कि आप जिसका चाहें खंडन करें मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं होगा मैं आपसे अपने पिछले अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हूं अंत में एक मन मिठाई भेट की जिसको स्वामीजी ने बांटदिया।

छठीवार भी काशी के पण्डित स्वामीजी के सन्मुख नहीं आये ।

छठीवार स्वामीजी २७ नवम्बर १८७६ को काशी में पधारे और उत्तम गिरिजी के बगीचे में ठहरे और आते ही वैदिक धर्मका प्रचार प्रारंभ करदिया और कई बार काशी के पंडितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा विज्ञापन भी दिये और प्रतिष्ठित मनुष्यों के द्वारा जुबानी भी कहलवाया परंतु हठी और स्वार्थी पौराणिकों का क्या मुख था कि सन्मुख आते ॥

सातवीं बार स्वामीजी काशी में २७ नवम्बर सन् १८७९ को पधारे और महाराजा विजय नगर के आनन्द बाग में ठहरे स्वामीजी के पधारने की खबर सारे नगर में अपने आप फैल गई और पौराणिक लोग घबरा उठे कि यह तो हमें चैन से नहीं रहने देगा और इसमें कुछ संदेह भी नहीं कि स्वामीजी ने सारी काशी के पौराणिक पंडितों को बहुत क्षोभित (ज़िच्च) करदिया था ।

स्वामीजी का कथन था कि काशी पौराणिक धर्म का केन्द्र है, प्रत्येक अनर्थ जो धर्म की आड़ में किया जाता है उसके प्रचार की व्यवस्था काशी से दीजाती है। काशी के पण्डितों को धर्म के बेचने में तनिक भी संकोच नहीं। आज एक मनुष्य कुछ धन व्यय करके यहां के पौराणिक पंडितों से किसी एक बात की व्यवस्था लेजाता है, कल दूसरा मनुष्य उसके सरासर विरुद्ध उन्हीं पण्डितों से कुछ अधिक धन लगा कर लिखवा लेजाता है।

प्रत्येक मत के नेताओं को शास्त्रार्थ का चेलेंज देना

ये पौराणिक पण्डित इस बात को मानते हुए भी कि हमने अपनी सारी आयु में वेदों को आंख से भी नहीं देखा, सर्व साधारण लोगों के सामने यह कहते हैं कि हमारे सारे मन्तव्य और कर्त्तव्य वेदों के अनुसार हैं। इन्हीं कारणों से स्वामीजी ने लगातार सात बार काशी को जड़ से हिला दिया। निदान इस बार भी एक विज्ञापन दिया, जिसके द्वारा कुल पौराणिकों, ईसाइयों और मुसलमानों तथा प्रत्येक मत के नेताओं और अनुयायियों को सूचना दी कि वे अपनी शंकायें निवारण कर सकते हैं और यदि चाहें तो नियम पूर्वक शास्त्रार्थ भी कर सकते हैं। साथ ही शास्त्रार्थ के नियम भी संक्षेप से लिख दिये। काशी के सब गली, कूचों, मन्दिरों, घाटों, सड़कों और चौराहों पर ये विज्ञापन चिपकाये गये और केवल इसी पर सन्तोष नहीं किया किन्तु ये विज्ञापन इस देश के बड़े २ नगरों और प्रसिद्ध पण्डितों के पास भी भिजवाये गये इसलिये कि इस कठिन समय में यदि कोई काशी के पण्डितों की सहायता कर सकता है तो करे, इस पर भी सन्नाटा ही रहा।

काशी वालों ने झूठी रिपोर्ट करदी

इसी अवसर में करनल अलकाट साहब और मैडम ब्लवस्टकी साहबा बम्बई से स्वामीजी के मिलने को बनारस पधारे और स्वामी जी के समीप ही एक बंगले में ठहरे। जब स्वामीजी ने देखा कि सब लोग शास्त्रार्थ से घबराते हैं, तो उन्होंने प्रत्येक मत और सम्प्रदाय का तत्व और साथ ही साथ सत्य मत के प्रकाश करने का सङ्कल्प किया। निदान उनका पहिला व्याख्यान २० दिसम्बर सन् १८७९ ई० को काशी के बंगाली टोले के पीर थोरी स्कूल में होना निश्चित हुआ और सर्व साधारण को विज्ञापन दिया गया। साथ ही यह भी विज्ञापित किया गया था कि करनैल आलकट साहब भी इस अवसर पर कुछ कथन करेंगे।

कलक्टर साहब ने विना विचारे व्याख्यान बन्द करादिया।

यह व्यवस्था देखकर काशी के भिन्न २ मत और सम्प्रदाय के लोग बहुत घबराये, निदान उन्होंने धोखा देने और झूठ बोलने पर कमर बान्ध ली। सब ने मिलकर बनारस के कलक्टर साहब के यहां एक निवेदन पत्र प्रस्तुत किया कि स्वामीजी के व्याख्यानों से यहां उपद्रव और अशान्ति का भय है, निवारण किया जावे। बड़े शोक की बात है कि कलक्टर साहब ने इस अवसर पर अपनी निर्बलता प्रकट की अर्थात् विना परीक्षा करने और बृटिश गवर्नमैण्ट की शासन प्रणाली के विरुद्ध (जो धार्मिक स्वतंत्रता के लिये उसने प्रत्येक को दी हुई है) स्वामीजी का व्याख्यान रोकदिया। ठीक उस समय जब कि स्वामीजी व्याख्यान देने के लिये निर्दिष्ट स्थान में पहुंचे, कलक्टर साहब की चिट्ठी उन्हें दीगई, जिसमें व्याख्यान न देने की आज्ञा थी। स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कलक्टर साहब की आज्ञा को शिरोधार्य किया, परन्तु यह बात छिप कब सकती थी, नियत समय पर स्वामीजी के स्थान पर करनल आलकट साहब खड़े हुए और उन्होंने स्वामीजी के अभिप्राय को बड़ी गम्भीरता और स्पष्टता के साथ अंगरेज़ी में प्रकट किया। यद्यपि कलक्टर साहब ने स्वामीजी के व्याख्यान को रोक दिया था, परन्तु एक यूरोपियन के व्याख्यान को रोकना सहज काम नहीं था। स्वामीजी के व्याख्यान बन्द होने से बड़ी हलचल फैली यहां तक कि यह बात पश्चिमोत्तर व अवध की गवर्नमैण्ट के कानों तक पहुंची, समाचार पत्रों में भी इसका आन्दोलन होने लगा परिणाम यह हुआ कि कलक्टर साहब को अपनी पहिली आज्ञा का प्रतिवाद करना पड़ा और उन्होंने स्वामीजी को एक चिट्ठी लिखी जिसमें स्पष्ट शब्दों में आज्ञा प्रदान कीगई कि आपको पबलिक में अपने धर्म सम्बन्धी विचार प्रकट करने की पूरी स्वतंत्रता है।

स्वामीजी के २२ व्याख्यान और आर्य्यसमाज का स्थापन होना।

तत्पश्चात् काशी के पौराणिक पण्डितों की ओर से स्वामीजी के विरुद्ध अश्लील और असभ्यता से भरे हुये विज्ञापन निकलने लगे। यह रंग ढंग देखकर कुछ काल पश्चात् स्वामीजी ने एक और विज्ञापन दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि काशी में इस समय दो संस्कृत के पण्डित विद्यमान हैं एक स्वामी विशुद्धानन्द दूसरे बालशास्त्री। (और उस समय यही दोनों सम्पूर्ण काशी के पण्डितों में शिरोमणि माने जाते थे) यदि इनमें से कोई महाशय शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हों तो मैं सर्वथा उद्यत हूं। परन्तु उक्त दोनों महाशय पहिले ही से ऐसे भयभीत थे कि स्वामीजी का नाम सुनकर कांपने लगते थे और प्राइवेट बातचीत में किसी २ से कहदिया करते थे कि हमारा उनका शास्त्रार्थ क्या हो सकता है? यदि हम गृहस्थ या गृहस्थों से विशेष सम्बन्ध रखने वाले नहों, तो हम भी वही कहेंगे जो वे कहते हैं। निदान इसबार स्वामीजी ने काशी में २२ व्याख्यान दिये जिनका परिणाम यह हुवा कि काशी में आर्य्यसमाज की नींव रक्खी गई और थोड़े दिन पश्चात् सभासदों के उद्योग से उत्तम स्थान पर समाज का मन्दिर भी बनगया।

स्वामीजी कहते तो सच हैं।

इन्हीं दिनों काशी के एक पौराणिक पण्डित को कहीं से एक गांव दान मिला, अकस्मात् एक आर्य्यसमाज के सभासद् से उनका मेल जोल होगया, एक दिन बातचीत में पण्डितजी कहने लगे कि स्वामीजी कहते तो सच हैं, परन्तु (पेट दिखाकर) हम क्या करें, पेट नहीं कहने देता। देखो अभी एक गांव मिला है, चैन करते हैं, यदि स्वामीजी जैसे होजावें तो क्योंकर निर्वाह हो? कोई एक फूटी कौड़ी भी हाथ से न दे।

राजा शिवप्रसाद साहब सी. एस्. आई. की टेढ़ी चाल।

दौर्भाग्य से काशी के स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद साहब अपने समय में सदा ऐसे कामों में अग्रिणी रहे जो सचाई, देशहित और परमार्थ से शून्य होते थे स्वार्थ और खुशामद के कामों में बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। राजा साहब जैनी थे इसलिये जैनियों का विशेष पक्ष किया करते थे। आप की सम्मति भी बहुत शीघ्र बदल जाया करती थी। एकबार उन्होंने अविद्यान्धकार दूर करने के लिये एक इतिहास लिखा, जिसमें जैनियों को बौद्ध सम्प्रदाय की एक शाख बतलाया, पर जब इससे जैनी अप्रसन्न होने लगे तो झट आपने उसका प्रतिवाद (खण्डन) करके अपनी ऐतिहासिक विज्ञता का प्रमाण देदिया। जब तक बनारस में स्वामीजी विराजमान रहे तब तक नाममात्र भी राजा साहब को साहस न हुवा कि वे कुछ स्वामीजी से कहें सुनें।

परन्तु वे अपनी कुटिल चाल चलने के लिये समय की प्रतीक्षा करते रहे। निदान जिसदिन स्वामीजी बनारस से प्रस्थान करने को थे और रेलपर अपना असबाव भेज चुके थे उस दिन राजा साहब ने एक चिट्ठी स्वामीजी को लिखी और उसका उत्तर मांगा। उनका अभिप्राय यह था कि या तौ ऐसी दशा में स्वामीजी चिट्ठी नहीं लेंगे या उत्तर दिये विना चले जावेंगे, या यदि चिट्ठी देर में मिलेगी तौ यह प्रसिद्ध करेंगे कि उन्हें इस चिट्ठी के आशय का किसी प्रकार पता लग गया था इसलिये उन्होंने जाने में शीघ्रता की। अस्तु, परन्तु स्वामीजी इन बातों को खूब समझते थे, उन्होंने अवकाश न होने पर भी चिट्ठी का उत्तर लिख भेजा और कहला भेजा कि यदि कुछ और पूछना है तौ यहां पधारिये पर कौन आता था और किसे पूछना था? स्वामीजी नियत समय पर प्रस्थित हो गये। पीछे नामवरी के लिये राजा साहब ने यह प्रसिद्ध किया कि हमने कईवार स्वामीजी को शास्त्रार्थ के लिये लिखा, परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मुंह छिपाकर काशी से चले गये। पर सच को कोई छिपा नहीं सकता, इसका भेद सबको मालूम था इसलिये राजा साहब की बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

प्रयाग का कुम्भ और वैदिकधर्म्म का प्रचार।

प्रयाग में माघ (मकर) की संक्रान्ति पर बड़ाभारी कुम्भ का मेला हुवा करता है इस में बड़ी २ दूर से लोग आते हैं। इस मेले में वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये स्वामीजी जनवरी सन् १८७० ई० में प्रयाग पहुंचे और गंगा के किनारे निवास किया। उनके आते ही पण्डितों और साधु सन्यासियों की इनके आस पास भीड़भाड़ रहने लगी रात दिन प्रश्नोत्तर और शङ्का समाधान होते थे। बड़े २ प्रसिद्ध पण्डित दो चार बातों में परास्त हो जाते थे और साश्चर्य्य होकर लौट जाते थे, सहस्रों मनुष्यों को स्वामीजी के उपदेश से वैदिक धर्म के सिद्धान्त विदित हुये।

आप के मुंह को जाड़ा क्यों नहीं लगता?

जिन दिनों स्वामीजी प्रयाग में निवास करते थे उन दिनों शीत अधिक पड़ता था, स्वामी जी रात दिन सिर्फ एक कौपीन पहने रहते थे और कोई कपड़ा न पहनते थे, न ओढ़ते थे। यहां तक कि रात को भी जब कि बर्फ पढ़ती थी गंगा के किनारे खुले मैदान में रेत पर या किसी चबूतरे पर ऐसे आराम से सोजाया करते थे जैसे कोई किसी गरम कमरे में लिहाफ तोशक के अन्दर सोता है। यह दशा देख कर एक दिन मिरजापुर निवासी पंडित रामाधीन तिवाड़ी ने स्वामी जी से कहा कि इन दिनों बड़ी सर्दी पड़ती है परन्तु आप को जाड़ा नहीं लगता, इसका क्या कारण है? स्वामीजी ने यह सुनकर

तिवाड़ी जी से पूछा कि आप के मुंह को जाड़ा क्यों नहीं लगता, तिवाड़ी जी ने कहा कि हमारा मुंह तो सदा खुला रहता है । स्वामीजी ने कहा कि यही दशा हमारे शरीर की है, यह बारह महीने बराबर खुला रहता है । वस्तुतःस्वामीजी में सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों के सहन करने की शक्ति इस कारण से थी कि वे पूर्ण ब्रह्मचारि थे अर्थात् ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन यथार्थ रूप से करते थे ।

पं० शिवसहायजी कृत वाल्मीकि रामायण की टीका

पण्डित शिवसहायजी जो काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में और पण्डितों के साथ स्वामीजी के सन्मुख आये थे, उनकी प्रयाग में ही स्वामीजी ने खबर ली थी । सारांश यह है कि किसीने स्वामीजी से आकर यह कहा कि इनदिनों पं० शिवसहायजी ने वाल्मीकि रामायण पर टीका लिखी है । स्वामीजी ने कहा कि वह कहीं से लाकर हमे अवश्य दिखाओ, जब वह लाकर स्वामीजी को दिखाई गई तो उन्होंने उसमें सैकड़ों अशुद्धियां निकाल दीं और कहा कि जिन्होंने यह लिखी है यदि वे यहां पधारें तो हम उनसे कुछ वार्तालाप भी करना चाहते हैं । निदान पं० शिवसहायजी स्वामीजी के पास आये और जब उन्हें उनकी टीका की अशुद्धियां दिखलाई गईं तो वे विवाद करने लगे । इस पर स्वामीजी ने प्रमाण और हेतु देने प्रारम्भ किये, परन्तु पण्डितजी को वहां ठहरने की शक्ति कबथी ? तुरन्त उठकर चल दिये ।

मिरज़ापुर में वैदिक धर्म का प्रचार ।

मिरज़ापुर पहुंचकर स्वामीजी ने गंगा के किनारे निवास किया और वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे । मिरज़ापुर और आस पास के प्रायः संस्कृतज्ञ पण्डित स्वामीजी के पास आया करते थे और अनेक प्रकार के प्रश्न उनसे किया करते थे । स्वामीजी के सदुपदेश से मिरज़ापुर के कई पौराणिक पण्डितों ने मूर्तिपूजन को त्याग दिया और सैकड़ों ब्राह्मण सन्ध्या और अग्निहोत्र करने लगे । यह लोग स्वामीजी के यहां आने से पहिले सन्ध्या और गायत्री का अर्थ तो क्या नाम भी नहीं जानते थे । मिरज़ापुर के बाबा बालकृष्ण वैरागी ने महाभारत और उपनिषदों पर टीका लिखी थी, एक महाशय उनका कुछ भाग स्वामीजी को दिखाने के लिये लाये, स्वामीजी ने उनमें बहुत सी व्याकरण की अशुद्धियां निकाल दीं । इस पर बाबा बालकृष्णजी स्वामीजी से यहांतक भयभीत हुवे कि जब तक वे वहां रहे, इधर उधर आना जाना भी बन्द कर दिया इसलिये कि कोई स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को न कहे ।

उद्दण्ड आदमी समझाने से नहीं मानता

एक दिन मिरज़ापुर के कुछ गुण्डे झगड़ा करने के लिये स्वामीजी के पास गये और उनमें से एक मनुष्य ने (जिसका नाम गुशाईं

छोटूगिर था) स्वामीजी को भड़काने के लिये कुछ अपशब्द भी कहे । पहिले तो स्वामीजी अपनी सरलता से उन्हें समझाते रहे, परन्तु जब उनकी उद्दण्डता समता की सीमा से बहुत ही बढ़गई तब स्वामीजी ने उनको डाटा । उनकी एकही डाट में वे सब के सब बेत की तरह कांपने लगे और उनका नायक जगन्नाथ मालवी हाथ जोड़ कर सामने खड़ा होगया और क्षमाप्रार्थी हुवा । फिर यही लोग स्वामीजी से बड़े विनयपूर्वक अपने सन्देह निवारण करते रहे । यहां के पौराणिक पण्डितों से कई बार स्वामीजी का वार्तालाप हुवा, परन्तु कोई उनके सामने ठहर न सका ।

डुमरांव, आरा और पटने में स्वामीजी का पधारना ।

मार्च सन् १८७१ ई० से लेकर एक वर्ष तक गंगा के किनारे स्वामीजी वैदिक धर्म का उपदेश करते रहे और यत्र तत्र अपनी पाठशालाओं को देखते रहे । अप्रैल सन् १८७२ ई० में डुमरांव पधारे और यहां नागाही उदासी के पास ठहरे, नागाही सच्चे मन से स्वामीजी पर श्रद्धा रखते थे । डुमरांव से चल कर आरा पहुंचे और ला० हरवंशरायजी वकील के यहां ठहरे, यहां के पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हुवा था, सबके सब उनकी वक्तृता को सुनकर चकित होगये । आरे से प्रस्थित होकर पटने पहुंचे, यहां मुं० मनोहरलालजी व डिप्टी सावनमलजी व राय मोहनलालजी ने इनके ठहरने का बहुत अच्छा प्रबन्ध करदिया । आतेही स्वामीजी ने वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया पटने और आस पास के पौराणिक पण्डित प्रतिदिन इनसे अनेक विषयों पर बातचीत किया करते थे ।

गरुड़पुराण की गड़बड़ ।

एक दिन यहां के प्रसिद्ध पण्डित रामजीवन भट्ट पचास साठ नामी पौराणिक पण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को आये, पर दोचार बातों में ही उखड़ गये और शास्त्रार्थ को अधूरा छोड़ कर ही उठ गये । उस दिन स्वामीजी ने गरुड़पुराण की खूबही गड़बड़ दिखाई और दुर्गा पाठ की भी जिसे वे प्रायः मुर्गा पाठ कहा करते थे खूब पोल खोली ।

शालिग्राम की मूर्ति गंगा में फेंकदी ।

पटना कालिज के पंडित रामलाल साकल द्वीपी ने स्वामीजी के उपदेश सुनकर अपनी शालिग्राम आदि की मूर्तियां (जिनकी वह पूजा किया करते थे) गंगा में फेंकदीं । एक दिन पटने में एक महाशय ने स्वामीजी से पूछा कि हम आपकी बात कब तक मानें ? कहा कि जबतक हमारा मस्तिष्क ठीक रहे और उस में कोई विकार न हो ।

संसार को त्याग देना ठीक है वा नहीं ?

बांकीपुर पटने के रईस बा० गुरुप्रसाद सेन ने स्वामीजी से यह पूछा कि संसार को त्याग देना ठीक है वा नहीं ? स्वामीजी ने उन से पूछा कि संसार आश्रम से आपका क्या अभिप्राय है ? उन्हों ने

कहा कि स्त्री, पुत्र, गृह, कुटुम्ब और सम्बन्धि आदि में रहना, यह सुनकर स्वामीजी ने फिर पूछा कि आदि में आप किन वस्तुओं को गिनते हैं प्रश्नकर्ता ने कहा कि धन का संग्रह करना। पुनः स्वामीजी ने कहा कि आपने अपने प्रश्न में संस्कृत के "गृह" शब्द का प्रयोग किया था और पूछा था कि क्या इसे भी छोड़ देना चाहिये, अब कृपा करके "गृह" शब्द की भी व्याख्या कर दीजिये। इसपर प्रश्नकर्ता महाशय मौन होगये और कहने लगे कि मेरे प्रश्न का उत्तर स्वयमेव मिलगया, कारण यह कि "गृह" शब्द में खाना, पीना, श्वास लेना और विद्या एवं बुद्धि सीखना ये सब बात आजाती हैं।

स्वामीजी का बिना रुकावट श्लोक बनाना

पटने में एक दिन एक तिरहुत के रहने वाले पण्डित जी स्वामीजी के पास आये और संस्कृत में वाद करने लगे। पण्डितजी ने अपने कथन की पुष्टि में भागवत का प्रमाण दिया, स्वामीजी ने भागवत का खण्डन किया और कहा कि यह एक अश्लील पुस्तक है जो कभी प्रामाणिक नहीं हो सकती इस पर पण्डितजी कहने लगे ऐसा भी हमें कोई नहीं देख पड़ता कि जो भागवत जैसे १८ हज़ार श्लोक बनावे दोष निकालना और खण्डन करना सहज है। यह सुनकर स्वामीजी ने पण्डितजी से कहा कि आप भूल पर हैं, केवल श्लोक घड़ लेना कोई वीरता का काम नहीं है। आप विश्वास करें भागवत वाले ने तो सिर्फ १८ हज़ार श्लोक घड़े हैं, हम आपके सन्मुख ३८ हज़ार घड़ सकते हैं, यदि निश्चय न हो तो कागज कलम सम्भालिये और लिखते जाइये, विषय भी बहुत सरल होगा अर्थात् जूते और खड़ाऊं के प्रश्नोत्तर। पण्डितजी भी स्वामीजी की परीक्षा करने के लिये लिखने बैठ गये, स्वामीजी विना रुकावट के श्लोक लिखवाने लगे। अभी कुछ थोड़े से ही श्लोक लिखे गये थे कि पण्डितजी स्वामीजी का धारा प्रवाह देखकर चकित होगये और कागज रखकर खड़े होगये और बहुत नम्रता के साथ झुककर प्रणाम करके चले गये।

शास्त्रार्थ से पौराणिकों का पलायन।

स्वामीजी ने पटने में मूर्त्तिपूजा, मद्य मांस भक्षण, पुराणों और मृतकों के श्राद्ध का बड़े समारोह से खण्डन किया, जिसका फल यह हुवा कि लोग पटने और आस पास के प्रसिद्ध पौराणिक पण्डितों को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उकसाने लगे परन्तु इतना साहस और बल किस में था कि जो सिंह के सामने आता। निदान बहुत से पौराणिक पण्डित इस आपत्ति से बचने के लिये इधर उधर टल गये और उनके पीठ दिखाने से सर्व साधारण पर स्वामीजी का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। पटने में कुछ पौराणिक पण्डित एक दिन स्वामीजी

से शास्त्रार्थ करने के लिये आये थे, परन्तु जिन पण्डित महाशय को उन्होंने अपनी ओर से शास्त्रार्थ करने के लिये चुना उनसे "श्रीगणेशाय नमः" ही ऐसी अशुद्ध हुई कि लाचार चुनने वालों को ही उन्हें चुप कराना पड़ा, इन पण्डितजी का नाम पं० रामावतार तिवाड़ी था और यह उस प्रान्त में संस्कृत के विद्वानों में गिने जाते थे।

मुंगेर में वैदिक धर्म्म का उपदेश।

अक्टूबर सन् १८७२ ईस्वी में स्वामीजी मुंगेर पहुंचे और लगातार वैदिक धर्म का उपदेश आरम्भ कर दिया, इस नगर और आस पास के निवासी जन बड़े उत्साह से उनके मधुर उपदेश सुनने को आया करते थे, एक दिन स्वामीजी ने बड़े धड़ल्ले के साथ मूर्त्तिपूजन का खंडन आरम्भ किया उस समय उस प्रान्त के अनुमान चालीस प्रसिद्ध पण्डितों के उपस्थित थे किसी ने होंठ तक नहीं हिलाये। यद्यपि उनको शंका करने का अवसर भी दिया गया तथापि वह कुछ भी नहीं कह सके, किन्तु एक प्रकार से अनुमोदन करते रहे, एक दिन एक मौनी साधु स्वामीजी के पास आकर बैठ गया, मुख से यह साधु कुछ नहीं कहता था, इस कारण मौनी प्रसिद्ध था, स्वामीजी ने इसकी ओर देखकर कहा कि यदि तू महामूर्ख है तो तेरा एक प्रकार मौन रहना ही योग्य है और यदि तू कुछ जानता है और समझदार है तो तुझे चाहिये कि अपनी कहे और दूसरों की सुने, यह उत्तम उपदेश सुनकर वह मौनी साधु स्वामीजी से बातचीत करने लगा स्वामीजी ने उसके सन्मुख मूर्त्तिपूजन और पुराणों का खण्डन किया उसने शुद्धमन से स्वीकार किया कि निस्सन्देह मूर्त्तिपूजन और पुराणों की अनुयायिता दुर्गति का कारण है।

भागलपुर में वैदिक धर्म का प्रचार।

मुंगेर से प्रस्थान कर २० अक्टूबर सन् १८७२ ईस्वी को स्वामीजी भागलपुर पहुंचे और वैदिक धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। दो तीन दिन के भीतर सब प्रान्त में उनके आने की खबर फैल गई। और लोग उमड़२ कर स्वामीजी के विश्राम स्थान पर आने लगे और उनके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनने लगे कई बड़े प्रसिद्ध और मानी पण्डित भी वाद विवाद करने के अभिप्राय से स्वामीजी के पास गये थे परन्तु उनकी बातें सुनकर और उनकी योग्यता देखकर भौचक रहगये किसी में इतना साहस न हुआ कि किसी प्रकार का संदेह या तर्क प्रस्तुत करे, प्रतिदिन स्वामीजी के व्याख्यान के समय एक मेला सा लग जाता था और बाहर मेवा मिष्टान्न आदि बेचने वाले अपनी अपनी दूकानें लगा देते थे एक दिन पंडित भयरामजी ने बरद्वान के राजा साहब से उनकी कोठी पर स्वामीजी की प्रशंसा की उस पर राजा साहब ने चार प्रसिद्ध नैयायिक पण्डित स्वामीजी के पास भेजे और उनसे कहा कि लौटकर हम से सविस्तर वृत्तान्त कथन

कीजिये इन पण्डितों ने दो पहर के १ बजे से लेकर सन्ध्या के ५ बजे तक स्वामीजी से शास्त्रार्थ किया और अन्त में निरुत्तर होकर यह कहने लगे कि हम राजा साहब बर्द्वान को अवश्य आप के दर्शनार्थ लावेंगे पण्डितों ने राजा साहब के सन्मुख सत्य २ सब वृत्तान्त वर्णन करदिया और राजा साहब ने वचन दिया कि हम अवश्य चलैंगे, सुसंयोग से जिस समय राजा साहिब स्वामीजी के पास आये उस समय उनके पास देशी ईसाइयों, पादरियों, और मौलवियों का एक झुन्ड उपस्थित था, राजा साहब बर्द्वान के विषय में उस समय यह प्रसिद्ध था कि यह इसाई मत की ओर किसी कारण से कुछ २ प्रवृत्ति रखते हैं राजा साहब स्वामीजी की ईसाइयों और मुसलमानों के साथ जो बात चीत हो रही थी, उस को ध्यान पूर्वक सुन्ते रहे और अन्त में उन्हीं चारों नैयायिक पण्डितों से "जिन्हें उन्हों ने स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करने को भेजा था" यह कह कर चले गये कि स्वामीजी को हमारी कोठी पर अवश्य ले आओ, परन्तु स्वामीजी ने यह अनुरोध (उज़र) किया कि हम एकान्त सेवी हैं ऐसे स्थान पर जहां हमारे ध्यान, उपासना आदि में विक्षेप हो नहीं जासकते और जो स्थान उनके लिये नियत किया गया था ठीक भी न था पुनर्वार जब राजा साहब बर्द्वान स्वामीजी के पास आये उस समय कुछ ब्रह्म स्वामीजी से बात चीत कर रहे थे, स्वामीजी की बातों से जब वे बिलकुल निरुत्तर होगये तो कहने लगे कि कलकत्ते में हमारे धर्माचार्य रहते हैं यदि वह आप से सहमत होजावें तो हम भी उद्यत हैं।

एक ब्राह्मण इसाई को पश्चाताप।

इस अवसर पर एक और बात भी निवेदनीय है कि जिस समय स्वामीजी का इसाई पादरियों से वार्तालाप हो रहा था उस समय एक ब्राह्मण जो ईसाई होगया था कातर होकर बड़े दुःख से सब उपस्थितों के सामने रुदन करने लगा जब उस से इस महा दुःख भरे विलाप का कारण पूंछा गया तो वह निश्शंक होकर कहने लगा- शोक है कि मुझे ऐसे (स्वामीजी की ओर संकेत कर के) पण्डित पहिले न मिले, अन्यथा मैं इसाई न होता जब मैं स्कूल में पादरियों के आक्षेप सुनता था तो मेरे हृदय में अधीरता उत्पन्न हो जाया करती थी, घर आकर पण्डितों से उनके उत्तर पूंछा करता था, तो वे यातो टाल देते थे अथवा ऐसे उत्तर देते थे, जो मुझे स्वयम् ही अयोग्य प्रतीत होते थे अन्त को मैं ईसाई होगया, यदि पहिले स्वामीजी का उपदेश सुन्ने का मुझे अवसर मिलजाता तो मैं कदापि अपने धर्म का त्याग न करता। भागलपुर के एक रईस ने स्वामीजी से योगविद्या सीखी थी और तत्पश्चात् वह विरक्त होगये।

आर्य्यावर्त की राजधानी कलकत्ता में स्वामीजी का सुशोभित होना ।

दिसम्बर सन् १८७२ ई० में स्वामीजी कलकत्ता (भारतवर्ष की राजधानी) में सुशोभित हुये। वास्तव में इनका यहां पर स्वागत और आतिथ्य करने में मिस्टर चन्द्रशेखरसेन बैरिस्टर एटला कलकत्ता ने अधिक परिश्रम किया, प्रथम यह श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर के पास गये और उनसे अपना अभिप्राय प्रकट किया परन्तु उन्हों ने किसी कारण से अधिक ध्यान न दिया तत्पश्चात् वोह बाबू (वर्तमानराजा) सुरेन्द्रमोहन टगोर के पास गये और उन्होंने भी कुछ उत्साह प्रकट न किया परन्तु जब मिस्टर चन्द्रशेखर सेन अपने साहस पर स्वामीजी का हवड़ा के रेलवे स्टेशन पर स्वागत करने गये तो बाबू सुरेन्द्रमोहनजी को पता लग गया जब उन्हों ने स्वामीजी को देखा तो उनके हृदय में स्वतः अनुराग उत्पन्न होगया, और वे बड़े आदर और सन्मान पूर्वक स्वामीजी से मिले। उसी समय अपने साथ उनको अपनी प्रमोदकानन नाम वाली वाटिका में लेगये और उन्हें बड़े आराम के साथ बंगले में ठहराया और सब आवश्यकीय प्रबन्ध बड़ी उत्तमता के साथ करदिया।

सांख्य का रचयिता ईश्वर और वेद को मानता था।

कलकत्ता पहुंचते ही स्वामीजी के आगमन के समाचार बड़े २ समाचार पत्रों में मुद्रित होगये और प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों का समुदाय स्वामीजी के पास पहुंचने लगा, उनका अधिक समय बंगाली पौराणिक पण्डितों के साथ वाद विवाद करने में व्यतीत होता था, पण्डित हेमचंद्रजी चक्रवर्ती आदि ब्रह्मोसमाज के उपदेशक भी स्वामीजी की ख्याति सुनकर उन के पास गये और वर्णाश्रम और ईश्वर विषय में कुछ प्रश्न किये थे स्वामीजी के उत्तरों से वह पूर्णतया सन्तुष्ट होगये थे, और स्वामीजी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था अतएव स्वाजी से उन्हों ने अष्टांग योग सीखा था और उन्हों ने उन्हें उस की क्रिया भी बतलादी थी तथा गायत्री मन्त्र के अर्थ सहित जप करने की आज्ञा दी थी एक दिन इन्हीं बाबू साहब ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि लोग सांख्य शास्त्र के रचयिता को नास्तिक कहते हैं, आप की क्या सम्मति है ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वे मूर्ख हैं सांख्य शास्त्र का रचने वाला ईश्वर और वेदों को शुद्ध मन से मानता था यदि आप इस शास्त्र को अवलोकन करना चाहते हैं तो ऋषिकृत भागुरि भाष्य देखिये फिर आप के सर्व संशय स्वतः निवृत्त होजावेंगे, स्वार्थी और बुद्धिहीन मनुष्यों की इस शास्त्र के विषय में व्याख्यायें पढ़ना निरर्थक है कारण यह है कि वह सच्चा मार्ग दर्शाने के विपरीत भ्रम में डाल देती हैं। इन्हीं दिनों में ब्राह्मोसमाज कलकत्ता में किन्हीं धर्म विषयों पर वाद

वाद हो रहा था बा० केशवचन्द्रसेन जो अङ्गरेज़ी भाषा के एक बड़े योग्य वक्ता हुये हैं, इस विषय में आग्रह करते थे कि जो लोग ब्राह्मोसमाज की चौकी पर बैठ कर उपासना प्रार्थना करावें उन्हें यज्ञोपवीत कदापि नहीं पहिरना चाहिये इसका कारण यह था कि यह महाशय संस्कृत नहीं जानते थे और वेदादि सत्य शास्त्रों के सिद्धान्तों से नितान्त अपरिचित थे, हां पाश्चात्य विद्याओं में अच्छे प्रवीण थे और इसाई मत की भी बहुत सी पुस्तकें देखी हुई थीं तथा मेल मिलाप उनका विशेष कर अङ्गरेज़ी विद्या के जानने वाले महाशयों से रहा करता था निदान उनके हृदय-पट पर बहुत कुछ रंग उन्हीं बातों का चढा हुआ था, जिन्हें यह बाल्यावस्था से सीखते रहे थे परन्तु आदि ब्रह्मोसमाज के आचार्य श्रीमद्देवेन्द्रोनाथ टगोर केशव बाबू के इस विषय में सर्वथा विरुद्ध थे और वोह ऐसे मनुष्य के समाज की वेदी पर बैठने के कदापि सहमत नहीं थे जिसके गले में यज्ञोपवीत न हो इसका कारण यह था कि आदि ब्रह्मोसमाज में विशेषतः वे लोग थे जिन्हें संस्कृतभाषा और आर्ष ग्रन्थों से बहुत कुछ प्रेम था और वे किसी प्रकार यह नहीं चाहते थे कि ब्राह्मोसमाज ईसाई मत की एक शाखा बन जावे या सामान्य रीति पर इसाईयों के यूनिटेरियन चर्च की श्रेणी में अपने आपको गिनने लग जावे ।

यज्ञोपवीत धारण में शङ्का समाधान ।

जिन दिनों ब्राह्मो समाज में जनेऊ रखने न रखने का विवाद चल रहा था उन्हीं दिनों पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती उपदेशक आदिब्रह्मोसमाज ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि हमें यज्ञोपवीत रखना उचित है वा नहीं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप ब्राह्मण हैं आप को यज्ञोपवीत रखना अत्यावश्यक है परन्तु जो कोई मूर्ख ब्राह्मण हो उसका यज्ञोपवीत तोड़ डालना चाहिये, जो लोग पण्डित, ज्ञानवान वेदवक्ता और धार्मिक हैं उनको अवश्य यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये अतएव पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने कभी अपना यज्ञोपवीत नहीं उतारा इसी प्रकार और कई ब्रह्मो स्वामीजी से जनेऊ के विषय में पूछने आये, सबको स्वामी जी ने ऐसाही उत्तर दिया अन्त में बहुत से ब्रह्मो एक वैदिकसिद्धान्त से पतित होते२ बच गये । पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती उपदेशक आदिब्रह्मोसमाज से एक दिन स्वामी जी ने पूछा कि आप ने सब उपनिषद् भी पढ़ी हैं उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं थोड़ी२ पढ़ी हैं, इस पर स्वामीजी ने उन्हें स्वयम् पढ़ाना आरम्भ कर दिया पण्डितजी को स्वामीजी से इतना प्रेम हो गया था कि वोह पुनः उनसे कानपुर में जाकर मिले और फर्रुखाबाद तक उनके साथ रह कर उपनिषद् समाप्त किये कलकत्ते में पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न व पण्डित तारानाथतर्क वाचस्पति और कई अन्य प्रसिद्ध शा-

श्री स्वामीजी से शास्त्रार्थ करते रहते थे। बाबू केशवचन्द्र सेन तथा राजनारायण वसु तथा द्विजेन्द्रोनाथ टगोर विशेषतः स्वामीजी के पक्ष की पुष्टि किया करते थे। राजा सुरेन्द्रमोहन टगोर और श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर भी प्रायः स्वामीजी के समीप बैठे हुवे प्रश्नोत्तरों को ध्यान पूर्वक श्रवण किया करते थे तथा बाबू क्षेत्रनाथ बन्धोपाध्याय और बाबू कृष्णचन्द्रमित्र स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे कलकत्ते में स्वामीजी प्रातःकाल से लेकर २ बजे पर्यन्त एकान्त में योगाभ्यास और शास्त्रावलोकन किया करते थे चार बजे पश्चात् सभा आरम्भ हो जाती थी सहस्रों मनुष्य उनका उपदेश सुन्ने आया करते थे और अपनी २ योग्यता के अनुसार लाभ उठाते थे एक दिन बाबू केशवचन्द्रसेन और बाबू राजनारायण वसु से स्वामीजी का पुनर्जन्म और हवन के विषय में शास्त्रार्थ हुआ था, स्वामीजी ने प्रबलयुक्ति और प्रमाणों से दोनों महाशयों को निरुत्तर कर दिया था, केशव बाबू वास्तव में स्वामीजी का बड़ा आदर और सत्कार किया करते थे और उन्हों ने उनका अपने गृह पर उपदेश भी कराया था, जिस में प्रायः प्रतिष्ठित और माननीय पुरुष सम्मिलित हुये थे, स्त्रियां भी बड़े ध्यान से उनके व्याख्यान को सुन्ती थीं, कलकत्ता ब्रह्मोसमाज़ के वार्षिकोत्सव पर श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर ने स्वामीजी को निमन्त्रित किया और अपने ज्येष्ठ पुत्र बाबू द्विजेन्द्रनाथ टगोर को उन्हें अपने साथ लिवालाने को भेजा। दो दिन तक बराबर स्वामीजी इस अधिवेशन में सम्मिलित होते रहे और अनेक धार्मिक विषयों पर उनका लोगों से वार्तालाप होता रहा श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर के गृह में एक मण्डप था जिस में एक वेदी बनी हुई थी, उसके चारों ओर संस्कृत के चुने२ श्लोक लिखे हुये थे इस को देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुये श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी ने स्वामीजी के ठहरने के लिये अपने महल का तीसरा खण्ड प्रस्तुत किया, परंतु स्वामीजी ने यह उज़र कर दिया कि गृहस्थों के गृह में निवास करना मैं पसंद नहीं करता, मेरे लिये बाहर का स्थान अत्यन्त उचित है। एक बार स्वामीजी ने श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी का रचा हुआ ब्राह्मधर्मग्रन्थ ध्यान पूर्वक सुना, और अन्त में यह कहा कि यह एक प्रकार उपनिषद् की टीका है, ब्राह्मधर्म ग्रन्थ इसका नाम व्यर्थ रखदिया यह सर्वथा सत्य है कि श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी से स्वामीजी को स्नेह हो गया था और उनकी सम्मति थी कि श्रीमत् जी महर्षि मण्डल पर श्रद्धा रखते हैं।

पं० महेशचन्द्र की चाल का खण्डन

२३ फरवरी सन् १८७२ ई० को कलकत्ते में स्वामीजी ने बाबू गुरुचरण दत्त के गृह पर ईश्वर और धर्म के विषय में संस्कृत में व्याख्यान दिया जिसमें भीड़भाड़ अधिक थी और कलकत्ते के कतिपय प्रसिद्ध और

प्रतिष्ठित पुरुष भी विद्यमान थे, व्याख्यान के अन्त में पण्डित महेशचन्द्रजी न्याय रत्न ने खड़े होकर बंगाली भाषा में लोगों को स्वामीजी के व्याख्यान का अनाप शनाप अर्थ समझा दिया यह देखकर संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों को बहुत बुरा मालूम हुआ और उन्होंने अन्त में आज्ञा लेकर पंडित महेशचन्द्रजी के अन्यथा वर्णन का भली प्रकार खण्डन किया और सबको विदित करादिया कि पंडितजी ने ऐसी बातें अपनी ओर से कहदी हैं कि जो स्वामीजी ने नहीं कहीं और किन्हीं २ बातों पर अनावश्यक टिप्पणी चढादी है। इत्यादि २ वास्तव में पंडित महेशचन्द्रजी के विरोध का यहीं से अङ्कुर उत्पन्न हुआ था, इसी अवसर पर बाबू केशवचन्द्र सेन ने स्वामीजी से कहा कि आप संस्कृत में व्याख्यान देते हैं अनुवाद करने वाले उसका अन्यथा अनुवाद करके लोगों को धोखा देते हैं आप कुछ कहते हैं और लोग अनुवाद कर्ताओं की कृपा से कुछ समझ लेते हैं इससे उचित यह है कि आप भाषा में लोगों को उपदेश किया कीजिये। स्वामीजी ने इस सम्मति को सत्य समझकर स्वीकार करलिया, एक दिन प्रमोदकानन वाटिका में स्वामीजी तालाब के तट पर बैठे हुये कुछ जनों से वार्तालाप कररहे थे कि इतने में किसी ने उनसे आकर कहा कि आपको राजा सुरेन्द्रमोहन जी याद करते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं इस समय इन सज्जनों से वार्तालाप कर रहा हूं यह उचित नहीं समझता कि इस समय इनको छोड़कर उठजाऊं। यह सुन कर राजा साहब स्वयम् स्वामीजी के पास आगये और धार्मिक विषयों पर बातचीत होने लगी। २ मार्च सन् १८७३ ई० को स्वामीजी ने वड़ानगर बोरिन्यू कम्पनी के बडे कमरे में ईश्वर, जीव, भक्ति, हवन और पञ्चमहायज्ञ की आवश्यकता पर व्याख्यान दिया ९ मार्च सन् १८७३ ई० को बुरहानपुर के नाइटस्कूल में वैदिक सिद्धान्तों पर प्रभावशालिनी वक्तृता की इसमें उन्होंने बालविवाह और जातिभेद की हानियें विस्तार पूर्वक दिखलाईं। इनके उपदेश सुने को कलकत्ते के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित पुरुष बडे प्रेम से आया करते थे, इन्हीं दिनों में बंगाल के लाट साहब का यह विचार था कि संस्कृत कालिज कलकत्ता तोड़दिया जावे, जब स्वामीजी को यह विदित हुआ तो उन्होंने प्रकाश्य रीति पर यह कहा कि वास्तव में ऐसे संस्कृत कालिज से कुछ लाभ नहीं, जिसमें वेदों की शिक्षा नहीं दीजाती, इन्हीं दिनों में बाबू प्रसन्नकुमार टगौर ने एक संस्कृत कालिज स्थापन किया, वहां जाकर स्वामी जी ने यह सम्मति दी कि वेदों की शिक्षा इसमें अवश्य होनी चाहिये, इसी विषय में उन्होंने मिस्टर नवगोपाल मित्र सम्पादक नैशनल पत्रिका को एक लेख भी भेजा था वैद्यक की प्रणा-

ली आयुर्वेद से स्वामीजी पूर्णतया सहमत थे, अतएव डाक्टर महेन्द्र लाल सरकार से उन्होंने देरतक इस विषय में वार्तालाप किया था, जिन दिनों स्वामीजी कलकत्ते में सुशोभित थे उन्हीं दिनों यह निर्धारण हुआ था कि जितने व्याख्यान स्वामीजी ने यहां दिये हैं उन्हें पुस्तकाकार बा० केशवचन्द्रसेन के प्रबन्ध से प्रकाशित कराया जावे परन्तु स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् केशव बाबू की उपेक्षा के कारण यह कार्य्य पूर्णता को प्राप्त न हुआ, एक दिन केशव बाबू ने स्वरचित एक पुस्तक स्वामी जी को दिखाई जिसके आरम्भ में एक श्लोक था और उसमें ईश्वर के चरण आदि वर्णन किये थे स्वामीजी ने उचित रीति पर उस पुस्तक की अशुद्धियां प्रकट करदीं फिर यह कहा कि ऐसे श्लोक आरम्भ में लिखने अयोग्य हैं, कारण यह है कि ईश्वर के जिस अलंकार में हाथ पग आदि वर्णन किये गये हैं वह रीति ठीक नहीं है, एक दिन केशव बाबू ने स्वामी जी के अङ्गरेज़ी न जानने पर शोक प्रकट किया और कहा कि यदि अङ्गरेज़ी जानते होते तो इङ्गलिस्तान चलने के लिये मेरे उपयुक्त सहयोगी होते, स्वामी जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि मुझे भी आप की संस्कृत की अनभिज्ञता पर अत्यन्त शोक है और इसका विशेष कारण यह है कि आप इस देश के सर्वसाधारण जनों को ऐसी भाषा के द्वारा धर्मोपदेश करना चाहते हैं जिसको वे समझ भी नहीं सकते जिन दिनों स्वामीजी कलकत्ते में वैदिक धर्म का प्रचार कररहे थे उन दिनों वहां एक ब्राह्मसभा थी जिसका साप्ताहिक अधिवेशन इतवार को हुआ करता था इस सभा के सर्व सभासद् स्वामीजी के व्याख्यानों में सम्मिलित हुआ करते थे और कभी २ कुछ प्रश्नोत्तर भी किया करते थे पंडित तारानाथ भट्टाचार्य्य तर्कवाचस्पति इस ब्राह्मसभा के मुख्य उपदेष्टा थे और यह बाहर लोगों से कहा करते थे कि जिस समय मैं स्वामीजी के सन्मुख जाऊंगा तो उनका मुख बन्द होजायगा किसी ने स्वामीजी से भी कह दिया कि पंडित तारानाथ इस प्रकार लोगों में डींग मारते फिरते हैं स्वामीजी ने कहा कि उन्हें हमारे पास लेआओ फिर सारी व्यवस्था स्वतः विदित होजावेगी। लोगों ने स्वामीजी के पास चलने के लिये पं० तारानाथ को उकसाना आरम्भ किया, अन्त में वोह क्रुद्ध होकर स्वामीजी के पास शास्त्रार्थ करने के निमित्त आये और आते ही सत्तर प्रश्न स्वामी जी से कर दिये, यह मन में समझे हुये थे कि इनका उत्तर स्वामीजी से कुछ भी न बन पड़ेगा परन्तु स्वामीजी ने बड़ी योग्यता और सरलता के साथ २२-२३ उत्तरों में उनके ७० प्रश्नों का उत्तर देदिया, यह देख कर पंडित तारानाथजी चकित रहगये और बड़ी नम्रता से स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़े। निदान कलकत्ते में स्वामीजी ने वैदिकधर्म के

प्रचार में जो कुछ उस समय हो सकता था किया और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी हुई। कलकत्ते में स्वामीजी ने यह दृढ़ संकल्प करलिया था कि पाठशाला आदि के प्रबन्ध से मुक्तभार होकर हम वेदप्रचार और वेदभाष्य करेंगे।

शास्त्रार्थ हुगली। १ अप्रैल सन् १८७३ ईस्वी को स्वामीजी हुगली में पधारे और वहां के प्रसिद्ध ज़मींदार बाबू वृन्दावन मण्डल की वाटिका में निवास किया। स्वामीजी के आते ही सारे प्रान्त में धूम मचगई और प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय के लोग उनके पास आने लगे हुगली कालिज के ईसाई प्रिन्सिपल रेवरेन्ड लालबिहारी देव भी स्वामीजी से मिलने गये और वर्णाश्रम पर कुछ प्रश्न किये स्वामीजी के उत्तरों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे कि अनभिज्ञता के कारण मैं वैदिकसिद्धान्तों को अन्यथा समझता था। ६ अप्रैल सन् १८७३ ईस्वी को हुगली के रईसों ने एक सभा की जिसमें स्वामीजी को उपदेश करने के लिये आमन्त्रित किया जिस समय स्वामीजी उपदेश कर रहे थे उस समय पण्डित ताराचरण भी आ पहुंचे परंतु दूर खड़े हो गये हुगली के प्रतिष्ठित पुरुषों ने उन्हें भीतर बुलाया परन्तु उन्होंने कुछ ध्यान न दिया और मकान के ऊपर चढ़गये और वहां से बड़ बड़ाने लगे पण्डितजी की यह बालक्रीड़ा देखकर लोग समझ गये कि इन में स्वामीजी के सन्मुख आने की शक्ति नहीं है, दूर से अपनी बड़ाई दिखाना चाहते थे अन्त में बहुत कुछ कह सुनकर बाबू वृन्दावन मण्डल ज़मींदार हुगली ८ अप्रैल को पण्डितजी को स्वामीजी के पास ले आये और परस्पर शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया सब से प्रथम यह बात स्थिर होगई थी कि चार वेद, छः वेदाङ्ग, और ६ शास्त्रों के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का प्रमाण स्वीकार नहीं किया जावेगा। सब से प्रथम पण्डित ताराचरणजी ने एक संस्कृत श्लोक पढ़ा तत्पश्चात् यह कहा कि यह सूत्र पातंजल शास्त्र का है और व्यासजी का ऐसा वचन है कि मन विना किसी स्थूल वस्तु के एक स्थान पर ठहर नहीं सकता, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ऐसा कदापि पातंजल सूत्र नहीं है और यह स्पष्ट है कि आप इस विषय में स्वयम् सन्दिग्ध हैं। अर्थात् प्रथम इसे पातंजल सूत्र कह कर इसे फिर व्यासजी का वचन बतलाते हैं इसके पश्चात् पण्डितजी ने वाचस्पति का प्रमाण दिया स्वामीजी ने तुरन्त रोक दिया कि यह प्रथम ही स्थिर हो चुका है कि वेद वेदाङ्ग व ६ शास्त्रों के अतिरिक्त और किसी का प्रमाण स्वीकार न होगा और दृष्टान्त के लिये यदि आप के ही कथन को लिया जावे तो प्रगट है कि स्थूल वस्तुओं में तो सारा संसार और उसके पदार्थ आ जाते हैं। क्या गदहा, घोड़ा, वृक्ष, ईंट, पत्थर, आदि २ आप किस २ वस्तु के पूजन को सिद्ध करेंगे दो चार बातें और

कहने के पश्चात् पण्डित ताराचरणजी कहने लगे कि प्रत्येक प्रकार की पूजा व्यर्थ है, इस पर स्वामीजी ने उन्हें सूचित कर दिया कि इस समय आपने स्वयम् मूर्तिपूजन का भली प्रकार खण्डन कर दिया, यह दशा देखकर बाबू भूदेवमुकरजी, पंडित हरिहर तर्कसिद्धान्त, बाबू वृंदावनचन्द्र आदि यह कह कर उठ खड़े हुये कि पंडित जी घर से यह प्रतिज्ञा करके आये थे कि हम मूर्त्तिपूजन को सिद्ध करेंगे, यहां उसका स्वयम् खंडन करने पर उद्यत होगये, लज्जित और निरुत्तर होकर पं० ताराचरणजी मकान के ऊपर के खंड पर चले गये स्वामीजी भी उठ खड़े हुए और ऊपर के खंड पर जाकर उनसे कहने लगे कि बनावट कब तक चल सकती है ? आप सत्य के अनुमोदन में इस प्रकार क्यों भयभीत हैं ? यह सुनकर पंडित ताराचरण, बाबू वृन्दावनमंडल और कई अन्य महाशयों के सन्मुख कहने लगे कि हृदय से तो मैं भी मूर्तिपूजनादि को बालक्रीडावत् समझता हूं, परन्तु क्या करूं अन्य रीति पर निर्वाह होना कठिन प्रतीत होता है, यदि कहीं मेरे विश्वास की महाराजा साहब काशीनरेश को सूचना हो जावे तो वोह अपने यहां मुझे घुसने न दें और जो वृत्ति मिलती है तत्काल ही बन्द हो जाय, जिस प्रकार आप बेधड़क सत्य का प्रकाश करते हैं उस प्रकार मैं नहीं कर सकता ।

आर्य्यसन्मार्गसन्दर्शनी सभा कलकत्ता और श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज।

मथुरा और वृन्दावन में स्वामीजी के लगातार धर्म उपदेश ने वहां के साम्प्रदायिक नेताओं को घबराहट में डाल दिया और वे यहां तक लज्जित और दीन हुये कि जब तक स्वामीजी वहां रहे वे धार्मिक विषयों की छेड़छाड़ से बचते रहे अन्त में उन्हों ने मथुरा के प्रसिद्ध सेठ नारायण दासजी की प्रशंसा (खुशामद) करनी आरम्भ की, निदान उन्हें अपने धर्म का संरक्षक नियत कर उनसे प्रार्थना की कि आप इस कठिन समय में हमारी सहायता करें । सेठ साहब पौराणिक ब्राह्मणों की चाटुकारिता में आगये और उनके बढावों से अत्यन्त प्रफुल्लित होगये निदान सब प्रकार उचित तथा अनुचित रीति से उनकी सहायता करने पर उद्यत होगये, इस में संशय नहीं कि सेठ साहब की थैली का पेट बहुत फूला हुआ था और पौराणिक ब्राह्मणों की उसी पर दृष्टि थी और जगह दाल गलती न देख कर स्वामीजी के विरुद्ध मनमानी कारर्वाइयां करने के लिये बंगाल में जाकर शरण ली अर्थात् २२ जनवरी सन् १८८१ ई० को कलकत्ते के सेंट हाल में एक सभा की जिसमें वहां के कई नामी धनाढ्य और बंगाल के बडे प्रसिद्ध पौराणिक पंडित सम्मिलित हुए, इस सभा के प्रबन्धकर्ता पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न प्रिन्सपिल संस्कृतकालिज कलकत्ता थे. अतिरिक्त

इनके अनुमान ३०० पण्डितों के दूर२ से एकत्रित हुये थे जिनमें से पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति, पण्डित जीवानन्द विद्यासागर बी, ए, नवद्वीप के पण्डित भुवनचन्द्र तर्करत्न, जस्सद के पण्डित रामधन, कानपुर के पण्डित बांकेविहारी वाजपेयी तथा पण्डित यमुनानारायण तिवारी, वृन्दावन के सुदर्शनाचार्य्य इलाके तनजोर के अदोश तल्लू, विद्ग्राम मद्रास प्रान्त के पण्डित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (जिनको राम सुवा शास्त्री भी कहते हैं) विशेष कर गणनीय हैं तथा बंगाल के धनाढ्य और माननीय पुरुष भी इस सभा में सम्मिलित हुये थे, यथा आनरेबुल महाराजा ज्योतीन्द्र मोहन टगोर, महाराजा कमलकृष्ण बहादुर, राजा सुरेन्द्रमोहन टगोर डाक्टर आफ़ म्यूजिक सी, एस, आई, राजा राजेन्द्रलाल मलिक, बाबू जयकृष्ण मुख्योपाध्याय, कुमार देवेन्द्र मलिक, बाबू चारुचन्द्र मलिक, आनरेबुल बाबू कृष्टोदास पाल, सेठ नारायणदासजी रईस मथुरा, राय बद्रीदासजी, सेठ जुगलकिशोरजी, सेठ नाहरमलजी, सेठ हन्सराजजी, यद्यपि पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र एल, एल, डी, इस सभा में सम्मिलित नहीं हुये परन्तु लेख द्वारा उन्होंने इस सभा के उद्देश्य और प्रयोजनों से अपनी सहानुभूति प्रकट की। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने निम्नलिखित प्रश्न इस सभा में निर्णयार्थ प्रस्तुत किये।

(१-प्रश्न) वेदों के मन्त्रभाग की भांति ब्राह्मणभाग भी मानने के योग्य है अथवा नहीं, मनुस्मृति की भांति अन्य स्मृतियां भी मानने योग्य हैं वा नहीं ?

(उत्तर) दोनों मानने योग्य हैं अर्थात् मूल एवं भाष्य दोनों समान हैं।

(२-प्रश्न) विष्णु, शिव और दुर्गा की पूजा, मृतकों का श्राद्ध और तीर्थ आदि शास्त्र विहित हैं या नहीं ?

(उत्तर) हां ये सब शास्त्र विहित हैं। इस व्यवस्था के देते समय किसी शास्त्र का नाम नहीं लिया गया केवल सामान्य रीति पर शास्त्र का नाम लेदेना पर्याप्त समझा गया।

(३-प्रश्न) ऋग्वेद संहिता में "अग्निमीडे पुरोहितम्" यह मंत्र है, इस से ईश्वर किसको समझना चाहिये ?

(उत्तर) भौतिक अग्नि को अर्थात् जलाने की आग ईश्वर है।

(४-प्रश्न) यज्ञ जलवायु की शुद्धि के लिये किया जाता है या मुक्ति के उद्देश्य से ?

(उत्तर) मुक्ति के उद्देश्य से, अर्थात् हवन से जल वायु की शुद्धि नहीं होती, किन्तु इस कर्म से इन लोगों की दृष्टि में सहज मुक्ति मिलजाती है।

इन उत्तरों की समाप्ति पर सब पण्डितों के हस्ताक्षर कराये गये और उदारता

से पुष्कल पारितोषक देकर उनको विदा किया गया। आर्यसमाज की ओर से पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रत्येक प्रश्न का यथार्थ और हेतुगर्भित उत्तर दिया गया परन्तु वहां इसकी कौन परवाह करता था वहां तो यह एक चाल चली गई थी जिसका आशय यह था कि यह बात सब में प्रसिद्ध होजावे कि बंगाल और दक्षिण के बड़े २ धुरंधर पण्डितों ने मूर्तिपूजा, मठपूजा, मृतकपूजा और जड़पूजा आदि की शास्त्रानुसार व्यवस्था देदी है और मुट्ठी गरम होगई सो अलग।

इस सभा के हो चुकने के पश्चात् एक भेदीने (जिसके हाथ में शायद थैली थी जिससे पण्डितों के जेब व दामन भरे गये थे) एक फड़कता हुवा लेख भारतीविलास आगरे में "अपूर्वसभा" के शीर्षक से छपवाया था, जिस में प्रकट किया गया था कि पौराणिक पण्डितों ने द्रव्य के लोभ से अपने धर्म और कान्शेन्स को बेचा, बाहर कुछ कहते हैं भीतर कुछ कहते हैं और भीतर जाकर कुछ और ही सम्मति देते थे। यदि कोई भूल में कुछ विरुद्ध कहने को उद्यत होता था तो उसे तुरन्त रोक दिया जाता था और जता दिया जाता था कि यदि कुछ भी विरुद्ध बोलोगे तो रिक्त हस्त (खाली हाथ) यहां से लौटना पड़ेगा। इस सभा में पण्डित गुणिआगर और रत्नागिरि आदि महात्मा जो लोभ को त्याग चुके थे आमंत्रित किये जाने पर भी नहीं पधारे कारण यह था कि उन्हें वास्तविक सभा का उद्देश्य विदित होचुका था।

कलकत्ते से स्वामी जी की प्रत्यावृत्ति (लौटना)

१६ अप्रैल सन् १८७३ ई० को हुगली से चलकर १७ अप्रैल को स्वामीजी भागलपुर में पहुंचे और एक मास तक वहां उपदेश करते रहे। यहां से मन्मथनाथ चौधरी बी, ए, संस्कृत पठनार्थ स्वामीजी के साथ होलिये और डेढ़ वर्ष तक साथ रहे। १८ मई सन् १८७३ ई० को स्वामीजी पटने में पहुंचे और एक सप्ताह तक बराबर उपदेश करते रहे। पण्डितों को विज्ञापन द्वारा सूचना दीगई कि यदि किसी को कुछ पूछना है या विचार करना है तो वह प्रसन्नता से हमारे पास आवें। नगर के प्रतिष्ठित जन और पटना कालिज के छात्रगण बड़े उत्साह से स्वामीजी का उपदेश सुनने जाया करते थे। परन्तु यह बात प्रकट करने के योग्य है कि यहां का कोई पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत न हुवा अन्त में पौराणिक लोगों ने अनजान लोगों में यह गप्प उड़ादी कि यह कोई जरमन इसाई है, लोगों को धर्म भ्रष्ट करता फिरता है।

पर्दे में छिपकर शास्त्रार्थ करना।

२५ मई सन् १८७३ ई० को स्वामीजी छपरे में पधारे, यहां के प्रसिद्ध रईस श्रीमान् रायबहादुर शिवगुलाम शाह ने इनको एक विशाल मन्दिर में ठहराया। पौराणिक पण्डितों ने रायसाहब को अनेक प्रकार की

विरुद्ध और झूठी बातें कहकर भड़काना चाहा, परन्तु उन्होंने किसी की नहीं सुनी। नगर के छोटे बड़े बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वामीजी के धर्मोपदेश सुनने आया करते थे, यह दशा देख कर दिन प्रति दिन पौराणिक पण्डित डाह के मारे कोयला हुये जाते थे, निदान वे स्वामीजी पर आक्रमण करने की घात में रहने लगे, जब इसमें भी सफलता होती न देखी तब अन्त में जाकर पण्डित जगन्नाथ की शरण ली। यह पण्डित महाशय स्वामीजी के पास नहीं जाते थे, जब कोई कारण पूछता था तौ यह कहदिया करते थे कि यदि मैं वहां जाऊंगा तौ मुझे एक नास्तिक का मुंह देखना पड़ेगा, जब यह बात स्वामीजी को मालूम हुई तौ उन्हों ने लोगों से कहा कि आप ऐसा कीजिये कि जब पण्डितजी यहां आवें तो हमारे और उनके बीच में एक पर्दा डाल दीजिये ताकि वे मेरा मुंह न देख सकें। प्रयोजन तो शास्त्रार्थ से है नकि एक दूसरे का मुंह तकने से, निदान लोग पण्डित जगन्नाथ जी को खींच तान कर स्वामीजी के पास लेही आये और वास्तव में जब पण्डितजी आये तौ स्वामीजी ने बीच में एक पर्दा डलवा लिया। जब संस्कृत में बात चीत होने लगी तौ दो चार बातों में ही पण्डितजी बहकने लगे और शास्त्रिय प्रमाणों की भरमार ने पण्डितजी को चकित करदिया, निदान वे परास्त होकर अपने साथियों सहित उठ खड़े हुये।

छपरे से आरा होते हुए डुमरांव पहुंचना।

छपरे से प्रस्थित होकर स्वामीजी ११ जून १८७३ ईस्वी को आरा पहुंचे और २२ जुलाई १८७३ ईस्वी तक वहीं निवास रहा। यहां बाबू हरवंशलालजी वकील ने स्वामीजी का यथोचित आतिथ्य व सत्कार किया। स्वामीजी ने यहां धड़ल्ले के साथ धर्म्मोपदेश किया परन्तु किसी ने विरोध नहीं किया। यहां से विदा होकर २६ जुलाई १८७३ ई० को स्वामीजी डुमरांव पहुंचे और महाराजा साहब डुमरांव के बंगले में ठहरे। राज्य की ओर से स्वामीजी के आतिथ्य का सब प्रकार प्रबन्ध कर दिया गया था, महाराजा साहब अपने प्रधान मन्त्री सहित स्वामीजी से मिलने आये और देर तक अपने संशय निवृत्त करते रहे। यहां के पौराणिक पण्डित भी स्वामीजी के पास जाया करते थे और धार्मिक विषयों पर वार्तालाप किया करते थे, परन्तु किसी को उनका प्रतिद्वंद्वी बनने का साहस न हुवा। एक दिन महाराजा साहब के कहने से पं० दुर्गादत्तजी जो आत्मश्लाघा के रोग में ग्रस्त थे, स्वामीजी के पास पहुंचे और अपने साथ एक पत्थर का बट्टा (जिसको वे शिवजी कहते थे) लेते आये। उसको सामने रख कर स्वामीजी से वातचीत करने लगे। परन्तु दो चार पग ही चल कर ठिठक गये और इधर उधर की बातें बनाकर चलते बने। कुछ दिन पश्चात् पण्डितजी ने एक अण्ड बण्ड पुस्तक लिखी।

जिसमें यह लिख दिया कि स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के अन्त में यह कहा कि पं० दुर्गादत्तजी आप ब्रह्म हैं और मैं जीव हूं, भला जीव की क्या सामर्थ्य है कि ब्रह्म से बात करसके। यद्यपि यह उपहास पण्डितजी के योग्य न था तथापि जिनको आत्मश्लाघा का रोग लग जाता है वे इसी प्रकार अण्ड बण्ड बका करते हैं।

मिर्जापुर होते हुए कानपुर पधारना।

डुमरांव से स्वामीजी मिर्जापुर गये और वहां पाठशाला का कुप्रबन्ध देख कर उसे तोड़ दिया और साधु जवाहरदास को बुलवाकर उनसे खास काशी में पाठशाला खोलने के विषय में परामर्श (मशवरह) किया। वहां से रवाना होकर स्वामीजी कानपुर पहुंचे और वहां गंगा के किनारे एक कुटी में निवास किया। ब्राह्मसमाज के उपदेशक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती कलकत्ते से यहां स्वामीजी के पास आये और उनके साथ रहने लगे। मध्यान्ह के समय स्वामीजी गंगा में घण्टे आध घण्टे तैरा करते थे और न्हाने के पश्चात् शारीरक व्यायाम करने लगते थे, थोड़ी देर पीछे भोजन करके आराम करते थे। इसके उपरान्त धर्मोपदेश करने लगते थे, रात को प्रायः समाधि लगाया करते थे। अत्यन्तशीत पड़ने पर भी कोई कपड़ा न पहनते थे, मिठाई नहीं खाया करते थे, यदि कोई ले आता था तो लोगों को बांट दिया करते थे। बाबू क्षेत्रनाथ बंगाली वकील कानपुर ने मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर परेट में शामियाना खड़ा करके स्वामीजी से उपदेश कराया था। उस समय वहां के कोतवाल ने विरोध किया था, परन्तु मजिस्ट्रेट ने उसे प्रबन्ध रखने की आज्ञा दे दी थी इस पर भी कुछ ईंटें आईं थीं और यह कोतवाल साहब की शरारत थी। दूसरी बार खजांची शिवप्रसादजी के मकान बंगालबैंक में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ, इस में किसी प्रकार का विघ्न न होने पाया।

फर्रुखाबाद अलीगढ़ आदि होते हुए मथुरा जाना।

कानपुर से प्रस्थित होकर २० नवम्बर १८७३ ईस्वी को स्वामीजी फर्रुखाबाद पधारे और अपनी पाठशाला के समीप एक वाटिका में ठहरे। यहां स्वामीजी सरविलियम म्यौर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पश्चिमोत्तर व अवध से मिले थे और उनसे बातचीत करते हुवे कहा कि हमने सुना है कि आप इङ्गलैण्ड जाकर इण्डिया कौंसिल में भरती होंगे। आशा है कि आप भारतवर्ष से सहानुभूति रखते हुवे गोहिंसा को बन्द कराने का यत्न करेंगे, सरविलियम ने प्रतिज्ञा की थी कि हम इस विषय में यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। फर्रुखाबाद से स्वामीजी कासगंज गये और वहां आठ दश दिन तक पाठशाला के प्रबन्ध में तत्पर रहे इसके पश्चात् २० दिसम्बर १८७३ ईस्वी को छलेसर के लिये प्रस्थित हुये। मार्ग में राजघाट पर कर्णवास के ठाकुरों से मिले और वहां से चलकर छलेसर में पहुंचे,

कुछ दिन यहां धर्मोपदेश करते रहे। इसी बीच में राजा जैकिशनदास साहब, सी, एस्, आई, डिप्टीकलेक्टर अलीगढ़ से पधारे, स्वामीजी से मिलकर और अलीगढ़ पधारने का वचन लेकर वापिस चले गये, पाठशाला के प्रबन्ध से निवृत्त होकर स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी रईस छलेसर को अपने साथ लेकर २६ दिसम्बर १८७३ ईस्वी को अलीगढ़ पहुंचे और चाऊलाल की वाटिका में ठहरे। स्वामीजी के पहुंचते ही वहां लोगों की भीड़ भाड़ रहने लगी, परन्तु स्वामीजी भी किसी को निराश नहीं करते थे, प्रत्येक के प्रश्न का उत्तर दे देते थे और जब तक वह चुप न हो जावे उसके संशय निवारण करते रहते थे। २७ दिसम्बर १८७३ ईस्वी को वाटिका में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित जन, राजकीय अधिकारी और सर्वसाधारण बड़े उत्साह से सम्मिलित हुये, व्याख्यान की समाप्ति पर प्रश्न करने की आज्ञा सबको दी जाती थी इसी प्रकार लगातार कई दिन तक व्याख्यान होते रहे। अलीगढ़ और उस प्रान्त के पण्डितों को तनिक भी साहस न हुवा कि वे शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होते, हां यह तो हुवा कि कुछ भंगी, चरसी अनपढ़ साधुओं से स्वामीजी को गालियां दिलवाते रहे। २२ जनवरी १८७४ ईस्वी को अलीगढ़ से चलकर स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी सहित हाथरस पहुंचे। राजा जैकृष्णदासजी स्वामीजी से पहिले प्रबन्ध के लिये हाथरस पहुंच गये। हाथरस मथुरा के समीप है इसलिये वहां मूर्तिपूजा और मनुष्यपूजा का बड़ा प्रचार है, स्वामीजी ने बड़े धड़ल्ले के साथ मूर्तिपूजा, मृतकपूजा और झूंठे विश्वास का खण्डन किया, जिससे हाथरस और उसके आस पास एक कोलाहल मच गया।

वृन्दावन में ब्रह्मोत्सव पर मूर्तिपूजा का खंडन।

यहां से स्वामीजी मुरसान गये और वहां कुछ दिन ठहर कर मथुरा पधारे, इस समय मथुरा वृन्दावन जाने का मुख्य कारण यह था कि स्वामीजी ने फर्रुखाबाद की पाठशाला के लिये मथुरा से पण्डित गंगादत्तजी को बुलवाया था, यह जाने को तैयार थे कि मथुरा के चौबों और पौराणिकों को खबर हो गई, उन्होंने पण्डितजी को बहुत बुरा भला कहा और कई प्रकार के दबाव डाले जिन से पण्डितजी दब गये और स्वामीजी को लिखा कि यहां पर मूर्तिपूजा का बड़ा प्रचार है और रङ्गाचार्य्य जी सर्वत्र कहते फिरते हैं कि मूर्तिपूजा शास्त्र विहित है, पहिले यहां आकर मूर्तिपूजा की पोल खोलिये फिर मैं वहां आसकूंगा। स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर लिख दिया कि बहुत अच्छा हम अवश्य आवेंगे। निदान स्वामीजी ऐन उस अवसर पर जब कि रथयात्रा का मेला था जिस में दूर २ से वैष्णव मत के आचार्य्य और अनुयायी एकत्रित होते हैं, मथुरा पहुंच ग-

थे। सच तो यह है कि जिस प्रकार स्वामीजी मूर्तिपूजा की जड़ उखाड़ने पर तुले हुये थे, उसी प्रकार वृन्दावन के रङ्गाचार्य्यजी मूर्तिपूजा की जड़ जमाने में अड़े हुये थे। वह रङ्गाचार्य्यजी जो कृष्णजी के स्थानापन्न समझे जाते थे और जिनके दर्शन करने के लिये सहस्रों, लाखों स्त्री पुरुष चारों ओर से वृन्दावन में आते थे। निदान स्वामीजी ने रङ्गाचार्य्य की वाटिका के बराबर अपना डेरा जमादिया। सैकड़ों पौराणिक तथा अन्य मतावलम्बी प्रायः स्वामीजी के पास बैठे रहते थे और स्वामीजी बड़ी योग्यता और प्रेम के साथ सब के संदेह निवारण करते रहते थे। निदान बख्शी महबूब मसीह सुपरिण्टेण्डेण्ट चुंगी वृन्दावन की ओर से जहां तहां हिन्दी में विज्ञापन लगाये गये कि होली के पश्चात् चैत बदी २ तदनुसार ५ मार्च सन् १८७४ ई० से (जब कि रथयात्रा का मेला या ब्रह्मोत्सव आरम्भ होता है) स्वामीजी व्याख्यान देवेंगे। बख्शी महबूबमसीह एक सज्जन, धर्मात्मा, सत्यग्राही और उदार प्रकृति के मनुष्य थे, इसलिये उन्होंने स्वामीजी के व्याख्यानों का विज्ञापन अपनी ओर से देने में तनिक भी संकोच नहीं किया। इधर स्वामीजी ने धड़ल्ले के साथ वैष्णवमत का खण्डन प्रारम्भ किया, उधर वैष्णवमत के नेता रङ्गाचार्य्यजी को लेखबद्ध सूचना दी कि आप हमसे जिस प्रकार चाहें मूर्तिपूजा और अपने वैष्णवमत के विषय में शास्त्रार्थ कर लीजिये, जिससे कि सत्यासत्य का निर्णय हो सके। रंगाचार्य्यजी पहिले तो शास्त्रार्थ को टालते रहे, अन्त में जाकर चंगे भले अस्वस्थता का बहाना करदिया और एक दिन कलक्टर साहब ज़िले मथुरा से प्रार्थना की कि स्वामीजी हमारे मत का खण्डन करते हैं और हमें शास्त्रार्थ के लिये तंग करते हैं। रंगाचार्य्य जी के कट्टर चेलों ने स्वामीजी पर आक्रमण करने के कईबार मन्सूबे बांधे, परन्तु उनका एकबार भी साहस न हुवा कि उनके पास जावें। एक दिन स्वामीजी के कुछ शुभचिन्तकों ने उनसे कहा कि आप अकेले बाहर न पधारा करें, ऐसा न हो कि किसी दिन कोई धूर्त धूर्तता कर बैठे। स्वामीजी ने हंसकर कहा कि कल को आप हमसे कहेंगे कि कोठरी में छिपकर बैठा कीजिये कहीं ऐसा न हो कि मकान के भीतर कोई घुस आवे। एक दिन शास्त्रार्थ के बहाने से मथुरा के उजड्ड चार पांच सौ चौबे लट्ठ ले २ कर स्वामीजी के निवास स्थान पर चढ़ आये थे, परन्तु कुछ रिसाले के सिपाही वहां बैठे थे, उन्होंने फाटक बन्द कर दिया, इतने में कर्णवास के १५ ठाकुर जो स्वामीजी के विशेष भक्त थे, वहां पर पहुंच गये और कुछ प्रतिष्ठित कर्मचारी भी आगये, इसलिये फाटक खोल दिया गया और सूचना दीगई कि जिसको नियम पूर्वक शान्ति के साथ शास्त्रार्थ करना है वह भीतर आजावे परन्तु इस समूह

में सिवाय भंगड़ों और मूर्खों के कोई भी पण्डित नहीं था जो शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होता। निदान यह उपद्रवी लोग शीघ्र तितर बितर हो गये, परन्तु इनके आकस्मिक आपात से स्वामीजी किञ्चिन्मात्र भी नहीं घबराये और न उनकी चेष्टा से कुछ भय या क्षोभ के चिन्ह प्रगट हुये। कारण यह था कि ऐसे सैकड़ों अविवेककृत उत्पात उन्होंने देखे हुये थे और अकेले आपही उनका शमन किया था। इसके उपरान्त प्रायः पौराणिक लोग स्वामीजी के पास आते रहे और जिज्ञासु होकर अपनी शंकायें निवारण करते रहे।

स्वामीजी के उपदेशों से शालिग्राम यमुना में डालदिये।

एक दिन स्वामीजी के उपदेश का पं० मदनदत्तजी पर इतना प्रभाव हुवा कि वे उसी स्थान पर मूर्तिपूजा आदि का खण्डन करने लगे, इसपर लोगों ने प्रसिद्ध करदिया कि स्वामीजी के पास कोई जादू है जिससे जो कोई उनके पास जाता है वह उन्हीं की सी कहने लगता है, उक्त पण्डितजी ने अपने शालिग्राम आदि यमुना में डाल दिये थे। मथुरा में राजा टीकमसिंह साहब रईस मुरसान ज़िला अलीगढ़ स्वयं अपनी फ़िटन लेकर स्वामीजी को लेने के लिये आये और स्वामीजी उन के साथ मुरसान चले गये। राजा टीकमसिंह साहब ने ठाकुर गुरुप्रसादसिंहजी रईस बेसवान को कहला भेजा कि आप सदा कहा करते हैं कि हमने यजुर्वेद का भाष्य किया है और वह बिलकुल ठीक है, परन्तु स्वामीजी उसे अशुद्ध बतलाते हैं। यदि आपको सत्य की जिज्ञासा है तो यहां आकर वार्तालाप कीजिये, स्वामीजी आजकल यहां पर हैं ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। परन्तु इतना बोधित करने पर भी ठाकुर साहब स्वामीजी के सन्मुख नहीं आये दूर से ही बातें बनाते रहे। निदान ठाकुर टीकमसिंह जी ने उन से कह दिया कि अब हम को आप की वास्तविक योग्यता विदित होगई। कुछ दिन पश्चात् राजा साहब स्वयं स्वामी जी को मेंढू के रेलवे स्टेशन पर सवार करा गये यहां से स्वामीजी प्रथम छलेसर गये और वहां से इलाहाबाद ठहरते हुये बनारस पहुंचे।

प्रयाग में धर्म प्रचार और मर्दे की रीति का खण्डन।

इलाहाबाद में स्वामीजी १ जुलाई सन् १८७४ ईस्वी से सितम्बर १८७४ के अन्त तक रहे और रातदिन वैदिकधर्म का प्रचार करते रहे। पण्डित, पादरी और मौलवी लोग प्रायः उन से शास्त्रार्थ किया करते थे, स्वामीजी शास्त्रार्थ में इंजील और कुरान के भी प्रमाण दिया करते थे और उनकी समीक्षा सुनकर सब चकित रहजाते थे। इलाहाबाद में स्वामीजी ने एक बंगाली महाशय के मकान में व्याख्यान भी दिया था, इस व्याख्यान में स्वामी

जी ने पर्दे की रीति का खण्डन किया था, और यह भी कहा था कि स्त्रियां इस कुरीति के कारण बहुत से लाभों से वञ्चित रहजाती हैं। और कालिज के उस समय के छात्रगण स्वामीजी के अत्यन्त श्रद्धालु होगये थे, और अब तक वे जहां २ हैं आर्य्यसमाज के सहायक हैं।

जबलपुर से चल कर पञ्चवटी में धर्म्मोपदेश करना

मास अक्टूबर सन् १८७४ ई में स्वामीजी जबलपुर पहुंच गये और एक वाटिका में ठहरे। यहां के प्रायः प्रसिद्ध पण्डित स्वामीजी के पास जाया करते थे, परन्तु स्वामीजी के बार २ कहने पर भी उन में से कोई मूर्तिपूजा को वैदिक सिद्ध न कर सके। यहां पर स्वामीजी ने एक व्याख्यान भी दिया था जिस का बहुत अच्छा प्रभाव हुआ। जबलपुर से प्रस्थित होकर स्वामीजी २४ अक्टूबरको नासिक त्र्यम्बक पहुंचे और यहां धर्म्मोपदेश प्रारम्भ कर दिया। यह स्थान पञ्चवटी कहलाता है और कहते हैं कि महाराज रामचन्द्रजी लंका को जाते हुये यहां ठहरे थे। इस लिये यह तीर्थ माना जाता है और यहां पांच सात हजार पौराणिक ब्राह्मण भिक्षावृत्ति करते हैं। स्वामीजी ने यहां पर मूर्तिपूजा, पृथिवीपूजा, और मनुष्यपूजा का बड़े समारोह से खण्डन किया जिस से यहा के याचकवृत्ति वाले ब्राह्मण कोलाहल मचाने लगे और अपनी कटुभाषिता का परिचय देने लगे। परन्तु स्वामीजी के सन्मुख उनकी क्या मजाल थी कि कोई बात भी मुह से निकाल सकें, दूर से ही लोगों को भड़काते रहे पर विचारों की एक न चली।

आर्यसमाज की स्थापना और वैदिक धर्म का लगातार प्रचार।

बम्बई में पहुंचना।

नासिक से चलकर २६ अक्टूबर सन् १८७४ ई॰ का स्वामीजी बम्बई पहुंचे। मार्ग में से ही एक सेठजी के नाम अपने आने का तार देदिया था। नियत समय पर सेठजी सवारी के सहित रेलवे स्टेशन पर उपस्थित थे। जब स्वामीजी वहां पहुंचे तो बड़े सत्कार के साथ उन का स्वागत कर के उन्हें नगर से दो कोश बाहर बालकेश्वर महादेव के पहाड़ पर एक रमणीय स्थान पर ठहराया। साथ ही धर्माधर्म के निर्णयार्थ चार भाषाओं में विज्ञापन वितरित किये गये। पण्डित सेवकलाल कृष्णदास आकस्मिक संयोग से स्वामीजी के काशी के शास्त्रार्थ में उपस्थित थे अब से एक मास पहिले उन्होंने इस शास्त्रार्थ का विवरण "आर्य्यमित्र"

नामक गुजराती समाचार पत्र में छपवा दिया था। इसलिये दक्षिण के पण्डितों को स्वामीजी का परिचय होचुका था, परन्तु उन को यह मालूम न था कि इतनी शीघ्रता से वे हमारे शिर पर आ कूदेंगे। जब स्वामीजी ने भिन्न २ सम्प्रदायों की पोल खोलनी प्रारम्भ की और विशेष कर पौराणिकों के पुस्तकों से ही उनके मन्तव्यों की समीक्षा कीगई तो सारे नगर में एक कोलाहल मचगया और पौराणिकों को मुंह छिपाना कठिन होगया। जब उनसे कुछ न बन पड़ा तब उन्होंने हार कर अनुचित उपायों का अवलम्बन किया, स्वामीजी के विषय में अनेक प्रकार की निर्मूल बातें उड़ाने लगे और अपने चेलों को पट्टियां पढ़ा कर स्वामीजी के पास भेजने लगे। परन्तु उन कायरों की क्या मजाल थी कि स्वामीजी के सन्मुख आंख उठा कर भी देख सकते। निदान पौराणिक मतावलम्बियों ने अपनी ओर से स्वामीजी के विरोध में कोई कसर उठा न रक्खी पर उनकी एक भी न चली।

वल्लभ मतानुयायियों से युद्ध।

बम्बई पहुंच कर स्वामीजी को उस प्रान्त के समस्त सम्प्रदायों की गुप्त लीला और उनकी रहस्य की बातें पूर्णतया विदित होगई थीं। उनमें से वल्लभ सम्प्रदाय के अत्यन्त भ्रष्ट आचरणों को सुनकर स्वामीजी को बहुत ही उद्वेग हुआ और उनके दुष्ट चरित्रों पर क्रोध भी आया। इसलिये उन्होंने यह दृढ़ संकल्प करलिया कि सब से पहले इसी सम्प्रदाय की खबर लेनी चाहिये और इनका वास्तविक स्वरूप अन्धेरे से निकाल कर उजाले में लाना चाहिये। निदान उन्होंने इस सम्प्रदाय के खण्डन में लगातार व्याख्यान देने प्रारम्भ किये और इस सम्प्रदाय के समस्त नेताओं, आचार्यों और विश्वासियों को बल पूर्वक आह्वान किया कि यदि किसी में साहस है तो सन्मुख आवे और शास्त्रार्थ करै। मुख्यकर स्वामीजी ने गुशाइयों के (जो इस सम्प्रदाय के आचार्य माने जाते हैं) उस रीति की खूब पोल खोली जिसके द्वारा ये अपने चेलों (जिनमें स्त्री पुरुष दोनों सम्मिलित हैं) का तन, मन, धन, गुसांईजी के अर्पण कराकर उनसे कहदेते हैं कि अब तुम्हारा साक्षात् भगवान् कृष्णचन्द्र से सम्बन्ध होगया है।

स्वामीजी को विष दिलाने का उद्योग

इस सम्प्रदाय के लोगों से जब और कोई उपाय स्वामीजी के विरुद्ध न बन पड़ा तो उन्होंने यह सोचा कि चाहे जिस प्रकार हो उनको समाप्त कर देना चाहिये जिससे कि यह कांटा सदा के लिये दूर होजावे। निदान एक दिन अवसर पाकर जीवनजी गोसांई ने स्वामीजी के रसोइये बलदेवसिंह को (जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण था) कहा कि यदि तुम स्वामीजी को विष देदो जिससे उनका काम समाप्त होजावे तो मैं तुम्हें एक हज़ार रुपया नकद दूंगा

और प्रसन्न करदूंगा। हज़ार रुपये का तो रुक्का लिख दिया और उसी समय पांच रुपये और पांच सेर मिठाई साई में दी। अकस्मात् कोई स्वामीजी का हितैषी किसी कोने में से इस कुमंत्रणा को सुन रहा था, उसने तुरन्त स्वामीजी के पास जाकर सूचना देदी कि आपका रसोइया बलदेवसिंह अभी गोशाईं जीवन से कुछ अभिसन्धि (साज़िश) की बातें कर रहा था और उसे कुछ रुपया और मिठाई भी मिली है। इतने में बलदेवसिंह आगया। स्वामीजी ने उससे पूछा कि क्या तुम गोकुलिये गोसाइयों के मन्दिर में गये थे। उसने सच २ कहदिया कि हां महाराज ! मैं गया था। यह सुनकर स्वामीजी ने फिर पूंछा कि क्या ठहरा है ? बलदेवसिंह ने उत्तर दिया कि एक हज़ार रुपया, जिसका यह रुक्का मेरे पास है, पांच रुपये और पांच सेर मिठाई मेरे पल्ले में बन्धी हुई है। स्वामीजी ने हंसकर कहा कि मुझ को कई बार विष दिया गया परन्तु मैं अब तक जीवित हूं। काशी में विष दिया गया, कर्णवास में राव करणसिंह ने पान म विष दिया, तब भी कुछ नहीं हुआ और अब भी क्या होने लगा है। इस पर बलदेवसिंह ने गिड़गिड़ा कर निवेदन किया कि महाराज ! मेरा काम विष देना नहीं है और फिर मुझ से कभी ऐसा होसकता है कि आप से महात्मा और संसार का उपकार करने वाले को विष देदूं। निदान स्वामीजी ने मिठाई फिंकवा दी और रुक्का फाड़कर फेंक दिया और बलदेवसिंह को कहदिया कि ख़बरदार फिर कभी उनके यहां न जाना।

चौबीस प्रश्न।

बम्बई के किसी गुप्तनाम मनुष्य ने २४ प्रश्न छपवाकर स्वामीजी के पास उत्तर देने के लिये भेजे, स्वामीजी ने इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर छपवा दिया और यह भी प्रकट करादिया कि धार्मिकवाद और निर्णय में संकोच या मुंह छिपाने का कोई कारण नहीं है। जिसको अपने सन्देह निवारण करने हों या शास्त्रार्थ करना हो वह बे रोक टोक कर सकता है। इन प्रश्नों में एक प्रश्न का उत्तर वर्णन करने के योग्य है और वह यह है कि "मैं स्वतंत्र नहीं हूं किन्तु वेदों का अनुयायी हूं"।

स्वामीजी के विरुद्ध वक्तृतायें।

जब स्वामीजी पहिली बार बम्बई पहुंचे, उस समय वहां वैष्णव मत बड़ी उन्नति पर था उसमें वहां के बड़े २ धनाढ्य और सम्पन्न लोग सम्मिलित थे। इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य बम्बई में जीवनजी गोसाईं (जिनका परिचय हमारे पाठकों को होचुका है) और गुसाईं गट्टूलालजी थे। अन्तिम महाशय यद्यपि प्रज्ञाचक्षु थे परन्तु इसमें किसी को सन्देह नहीं होसकता कि वे संस्कृत के धुरंधर पण्डित थे। चिरकाल तक उनको भी साहस न हुआ कि स्वामी

जी से शास्त्रार्थ करसकें या मूर्त्तिपूजा की सिद्धि में कोई प्रमाण देसकें। परन्तु जब स्वामीजी के व्याख्यान सुन २ कर उनके चेले उनसे फिरने लगे और सैंकड़ों स्त्री पुरुष उनके पंजे से निकलने लगे, तब से बहुत घबराये। मथुरा पंथ नामी उनका एक योग्य शिष्य और प्रसिद्ध वैष्णव स्वामीजी के उपदेश सुनकर सच्चे मन से उन पर विश्वास लेआया और उसने बहुत से वैष्णवों की कंठियां तुड़वा कर उन्हें वैष्णव मत के विरुद्ध बना दिया। इन लोगों की प्रेरणा से एक दिन स्वामीजी ने एक तिमंज़िले मकान पर व्याख्यान दिया। श्रोताओं की संख्या दश हजार के लगभग थी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस का जरनैली पहरा था इसलिये कि किसी प्रकार की हलचल वा दङ्गा न होने पावे। मध्यान्ह के उपरान्त दो बजे से सायंकाल के ६ बजे तक स्वामीजी ने लगातार व्याख्यान दिया। विषय मूर्त्तिपूजा और भिन्न २ सम्प्रदायों का खण्डन था। इस व्याख्यान में स्वामीजी ने वैष्णव मत की विशेषता से पोल खोली। इस व्याख्यान को सुनकर सब लोगों की आंखें खुल गईं और वैष्णव मत की गुप्त लीला प्रकट होजाने के कारण सर्व साधारण को इससे अश्रद्धा उत्पन्न होगई। यह दशा देख कर गोस्वामी जीवनजी ने गोस्वामी गट्टूलालजी से कहा कि आप किस निद्रा में हैं? यहां सारा बना बनाया काम बिगाड़ा जाता है। सर्व साधारण अब हम पर उंगली उठाते और मथुरा पंथ भाटिये के निकल जाने से बहुत से हमारे चेले हमारे शत्रु बनगये यदि थोड़े दिन यही हाल रहा तो बैठने को भी कहीं जगह न मिलेगी, तुम्हारी योग्यता और विद्वत्ता किस दिन काम आवेगी? यह अवसर है कि स्वामीजी के विरुद्ध लगातार व्याख्यान दिये जावें और कम से कम लोगों के ध्यान को उस ओर से हटाकर अपनी ओर आकर्षित किया जावे। निदान गोस्वामी गट्टूलालजी ने एक सभा की जिसमें बहुत से पौराणिक पण्डित बुलाये गये। इस सभा में स्वामीजी के वरुद्ध अनर्गल और अश्लील भाषण हुए। जब अप्रासंगिक बातें होने लगीं तो पं० छोटेलाल ने सभा में खड़े होकर गोस्वामी गट्टूलालजी से कहा कि महाराज! स्वामीजी की यह प्रतिज्ञा है कि मूर्त्तिपूजा का वेदों में नाम तक नहीं प्रत्युत प्रत्येक प्रकार की भौतिक पूजा का निषेध किया गया है। आपको चाहिये कि वेदों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करें। परन्तु ऐसी बातें वहां कौन सुनता था। दो एक सामवेद के अप्रासङ्गिक मंत्र पौराणिक पण्डितों से पढ़वा कर सभा का विसर्जन कर दिया गया। इस परिश्रम के बदले में पण्डितों को ॥) प्रति मनुष्य दक्षिणा दीगई और सर्व साधारण में यह प्रसिद्ध कराने का उद्योग किया गया कि गोस्वामी गट्टूलालजी ने मूर्त्तिपूजा को प्रमाणिक सिद्ध करदिया।

मरवाने का उद्योग करना

जब वैष्णव सम्प्रदाय के गोस्वामी जीवन जी ने यह देखा कि स्वामीजी के सन्मुख हमारी एक भी नहीं चलती तब उन्हों ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार होसके उनका जीवन समाप्त करदेना चाहिये। निदान उन्हों ने चार मनुष्य उस मार्ग पर नियत किये, जिस पर स्वामीजी टहलने के लिये जाया करते थे। यह मार्ग समुद्र के तट पर जाता था और रमणीय होने से स्वामीजी को प्रिय था। जीवनजी के डरपोक भृत्यों को किसी दिन यह साहस न हुआ कि स्वामीजी के सामने आवें। एक दिन स्वामीजी ने गर्ज कर उनसे कहा कि क्या तुम लोग प्रति दिन हमारे मारने के लिये आया करते हो। वे स्वामीजी की आकृति देखते ही कांपने लगे जिस से स्पष्ट यह जाना जाता था कि उनका शरीर नहीं कांपते किन्तु भीतर से आत्मा कांपता है। उन में इतनी शक्ति कहां थी कि वे उत्तर भी देसकते, उसी समय वहां से पलायमान होगये और फिर कभी वहां नहीं आये। स्वामीजी बराबर उस सड़क पर जब तक बम्बई में रहे टहलने जाया करते थे. उन को इस घटना का स्मरण तक नहीं रहा। जब गोस्वामी जीवनजी को सब ओर से निराशा होगई तब वे मद्रास की ओर चले गये और स्वामीजी ने इधर वल्लभसम्प्रदाय के खण्डन में एक पुस्तक छपादी।

पुस्तकालय बम्बई में शास्त्रार्थ

बम्बई के कतिपय मुख्य पौराणिक पण्डितों ने लज्जित होकर एक दिन स्वामीजी से पुस्तकालय बम्बई में मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया। परन्तु उन्हें सर्वसाधारण के सन्मुख अत्यन्त ही लज्जित होना पड़ा। कारण यह कि उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम मूर्तिपूजा को वेदों से सिद्ध करेंगे सो कुछ भी न कर सके।

पं० जयकृष्ण जी व्यास से शास्त्रार्थ

बम्बई के पौराणिक पण्डितों के गुरु पं० जयकृष्ण व्यास से एक दिन स्वामीजी का सेठ लीलाधर की वाटिका में जीव और ब्रह्म की एकता पर शास्त्रार्थ हुआ पण्डितजी शीघ्र ही निरुत्तर होगये और इसी उपलक्ष्य में स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में "वेदान्तिध्वान्तनिवारण" नामक एक पुस्तक छपवा कर प्रकाशित करदिया।

भिन्न २ मतानुयायी लोगों की निराशा

बम्बई में भिन्न २ सम्प्रदाय के लोगों ने अपने मन में यह समझ कर कि स्वामी जी के द्वारा हमारा समुदाय बढ़ेगा, या हमारे मत का अधिक प्रचार होगा, उन्हें आमंत्रित करने में विशेष उत्साह प्रकट किया था, परन्तु परिणाम में उन्हें निराश होना पड़ा। कोई चाहता था कि वैष्णवों की पोल खुले और कोई शैवों की। कितने ही ब्राह्म समाज या प्रार्थना समाज वाले इस आ-

शा में बैठे थे, कि स्वामीजी के उपदेश से हमारे समाज की उन्नति होगी। परन्तु जब उन्हों ने देखा कि स्वामीजी उन सब मतों का (जो वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध हैं) समान रूप से खण्डन करते हैं तो वे निराश और उदास मन होगये और उनका सारा उत्साह शिथिल पड़गया। तथापि वे सचाई के सन्मुख कर क्या सकते थे? वाद विवाद की तो कथा क्या है? उन का यह साहस भी नहीं होता था कि स्वामीजी की किसी उक्ति वा युक्ति पर परोक्ष में भी कोई आक्षेप करें। जिज्ञासु, सत्यग्राही और स्वामी जी के शुभचिन्तकों ने जब यह देखा कि यद्यपि आज कल प्रायः लोग बाहर से तो परीक्षक, सत्य के खोजी, सत्यग्राही और आस्तिक देखने में आते हैं, परन्तु भीतर से वे कट्टर और निज मत के आग्रह रूप रोग में ग्रस्त हैं, तो उन्हों ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि स्वामीजी से ऐसा प्रार्थना करें कि जिस के द्वारा उन के उपदेश का चिरस्थायी प्रभाव हो और वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार का नये सिरे से सन्तोष जनक प्रबन्ध हो सके। निदान २४ नवेम्बर सन् १८७४ ई० से ३० नवेम्बर सन् १८७४ ई तक स्वामिजी से बराबर इस विषय में परामर्श होता रहा। फलतः ६० मनुष्यों ने उन के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की कि यदि आप आर्य्यसमाज स्थापन करें तो हम उस में सम्प्रविष्ट होंगे।

काठियावाड़ (गुजरात) में परिभ्रमण

दिसम्बर सन् १८७४ ईस्वी में राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख सेशन जज अहमदाबाद के पुत्र (जो बैरिस्टर हैं) स्वामीजी को बम्बई से अहमदाबाद (गुजरात) लेगये अहमदाबाद के एक प्रतिष्ठित सेठ साहब स्टेशन पर स्वामीजी के स्वागत करने के लिये उपस्थित थे स्वामीजी जब उनकी गाड़ी में सवार होचुके तो वे भी विनीत भाव से एक उचित जगह पर बैठ गये और मार्ग में स्वामीजी से कहने लगे कि अभी कुछ दिन हुये मैंने लगभग तीन लाख रुपया लगा कर एक मन्दिर बनवाया है। स्वामीजी ने गाड़ी में हाथ मारकर और रुष्ट होकर कहा कि आपने कुछ नहीं किया कि जो इतना रुपया एक व्यर्थ काम में लगा दिया। यदि इतना रुपया किसी पाठशाला में लगाते तो वहां से वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण निकलते जो संसार भर को लाभ पहुंचाते। ऐसी ही नासमझी और मूर्खता के कारण हम लोगों की यह दुर्दशा होरही है, वेद जब जर्मनी से छप कर यहां आते हैं तब हम लोगों को उनके दर्शन का सौभाग्य मिलता है। सेठजी ने कहा कि मैं मूर्तिपूजा पर आपका पण्डितों से अवश्य ही शास्त्रार्थ कराऊंगा। निदान सेठजी ने राजा मल्हारराव से कुछ परामर्श करके कई पण्डित दूर २ से बुलाये और एक जज साहब की वाटिका में नियम पूर्वक शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

इस अवसर पर दो ढाई सौ के लगभग पौराणिक प्रसिद्ध पण्डित उपस्थित थे। पूरे पांच छै घण्टे तक शास्त्रार्थ होता रहा। जब पौराणिक पण्डितों से कुछ न बन पड़ा तब गालियों पर उतर आये। यह व्यवस्था देख कर राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख जज अहमदाबाद व भोलानाथ भाई खड़े हुये और उन्हों ने कहा कि पौराणिक पण्डित वेदों से अणुमात्र भी मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सके, अब यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है कि वह माने या न माने।

राजकोट (काठियावाड़) में वैदिकधर्मप्रचार।

२८ दिसम्बर सन् १८७४ ईस्वी को स्वामीजी अहमदाबाद से राजकोट की ओर प्रस्थित हुये और ३१ दिसम्बर १८७४ ईस्वी को वहां पहुंच गये। उन दिनों यहां बम्बई के लाट साहब का दरबार था। स्वामीजी ने यहां पर लगातार १२ व्याख्यान दिये। यहां के साधारण और प्रतिष्ठित जन बड़े प्रेम से स्वामीजी के व्याख्यान सुनते थे एक दिन राजकुमार कालिज के अध्यापक स्वामीजी को कालिज में लेगये और अपने प्रिन्सिपल साहब से मिलाया। प्रिन्सिपल साहब इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि इस समय आप हमारे छात्रों को समयोचित शिक्षा कीजिये। स्वामीजी ने उनके कथनानुसार उस समय छात्रों के प्रति एक शिक्षा पूर्ण उपदेश किया। विदा होते समय प्रिन्सिपल साहब ने स्वामीजी को दो प्रति ऋग्वेद की भेट कीं जिन्हें उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। यहां के भद्र पुरुषों ने स्वामीजी का फोटो लिया था। कालिज में स्वामीजी ने मांस भक्षण के विरुद्ध एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया था जिस का श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव हुआ।

अहमदाबाद में स्वामीनारायणमत की पोल।

१८ जनवरी १८७५ ईस्वी को राजकोट से चलकर २१ जनवरी सन् १८७५ ईस्वी को पुनः अहमदाबाद लौट कर आगये और यहां एक सप्ताह ठहर कर स्वामीनारायणमतकी खूब पोल खोली। साथ ही इस मत का आन्तरिक भेद प्रकट करने के लिये एक पुस्तक भी लिखी। यहां से बड़ौदे जाने का विचार था, परन्तु उन्हीं दिनों बड़ौदा राज्य में कुछ उपद्रव हो गया था, इसलिये वहां का जाना रोक कर सीधे बम्बई को प्रस्थान किया और २९ जनवरी सन् १८७५ ईस्वी को पुनः बम्बई जा विराजे।

सब से पहिला आर्यसमाज।

स्वामीजी ने बम्बई पहुंच कर देखा कि लोगों का वह उत्साह जो कुछ दिन पहिले आर्यसमाज स्थापन करने के विषय में था, उनके चले जाने के पश्चात् कुछ शिथिल पड़ गया है। यह देखकर उन्हें खेद हुआ और उन्होंने फिर इस विषय में प्रेरणा की। उनके उकसाने की देर थी कि सब लोग

अद्वितीय व्याख्याता दयानन्दर्षि के उपदेश देते समय
का चित्र

पहिले से भी अधिक उत्साह के साथ समाज की स्थापना करने के लिये उद्यत हो-गये। फरवरी सन् १८७५ ईस्वी में एक साधारण अधिवेशन में (जिसके सभापति राव बहादुर दादूबा पाण्डुरङ्गजी थे) आर्यसमाज की स्थापना और उसके नियमों दृश्य पर विचार करने के लिये चुने हुवे पुरुषों की एक उपसभा नियत की गई। परंतु इस सभा के सभासदों में से किसी २ सभासद् ने किसी कारण से यह सम्मति दी कि अभी समाज के स्थापन करने का समय नहीं आया है, अतः कुछ दिनों के लिये यह प्रस्ताव फिर विचाराधीन हो गया। तत्पश्चात् कतिपय भद्रपुरुषों ने सर्व सम्मति से राजमान्य राजेश्वरी पानाचन्द आनन्दजी पारिखको आर्यसमाज के उपनियम बनाने के लिये चुना और उन्होंने इस काम को उत्तमता से शीघ्र पूर्ण किया और स्वामीजी ने इनको पसन्द किया। निदान चैत्र सुदी ५ संवत् १९३२ वि० तदनुसार १० एप्रिल सन् १८७५ ईस्वी को बम्बई के मुहल्ले गिरगाम में सायंकाल के समय डाक्टर मानिकचन्दजी की वाटिका में नियमपूर्वक "आर्यसमाज" स्थापित हुआ और उसी दिन समाज के अधिवेशन में सामान्य रीति पर आर्यसमाज के नियम सुनाये गये।

आर्यसमाज के नियम जो पहिलीवार बम्बई में निर्धारित हुये थे।

(१) सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना अत्यावश्यक है।

(२) इस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही माना जावेगा, साक्षी के लिये तथा वेदों के अर्थ ज्ञान के लिये एवं आर्य्य इतिहास के लिये, शतपथादि ब्राह्मण वेदाङ्ग ६ उपवेद ४ दर्शन ६ और ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यानरूपी आर्ष सनातन ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जायगा।

(३) इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य उसकी शाखा समझे जावेंगे।

(४) प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

(५) प्रधान समाज में वेदोक्त धर्मानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में सदुपदेश के लिये नाना प्रकार के पुस्तक रहेंगे और एक "आर्यप्रकाश" साप्ताहिक पत्र निकलेगा। ये सब समाज में प्रवृत्त किये जावेंगे।

(६) प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।

(७) प्रधान पुरुष इस समाज की व्यवस्था का यथावत् पालन करेगा और मंत्री सबके पत्र का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा ।

(८) इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद् किये जावेंगे ।

(९) प्रत्येक गृहस्थ सभासद् को उचित है कि वह अपने गृहकृत्य से अवकाश पाकर जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उस से अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करे और विरक्त तो नित्य ही समाजोन्नति में तत्पर रहें ।

(१०) प्रति सप्ताह में एक दिन प्रधान, मंत्री और सब सभासद् समाजस्थान में एकत्रित हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें ।

(११) एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ कर करें । फिर सामवेद का गान, परमेश्वर, सत्यधर्म, सत्यनीति, सत्य उपदेश के विषय में ही बाजे आदि के साथ गान हो और इन्हीं विषयों पर मंत्रों का अर्थ और व्याख्यान हो, फिर गान फिर मंत्रों का अर्थ फिर व्याख्यान फिर गान आदि ।

(१२) प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे, उस में से "आर्यसमाज" "आर्यविद्यालय" और "आर्यप्रकाश पत्र" के प्रचार और उन्नति के लिये आर्य समाज कोष में १) रु० सैकड़ा देवें । 'अधिकस्याधिकंफलम्' यह धन उक्त कार्यों में ही व्यय होगा अन्यत्र नहीं ।

(१३) जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करे उसका उतनाही अधिक सत्कार उत्साह वृद्धि के लिये होना चाहिये ।

(१४) इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वैत परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना कीजायगी । स्तुति–निराकार, सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द इत्यादि विशेषणों से परमात्मा के गुण कीर्तन करना । प्रार्थना–उस से सब श्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना । उपासना–उसके आनन्द स्वरूप में मग्न होजाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षण युक्त परमात्मा की ही भक्ति करनी उसको छोड़कर और किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिये ।

(१५) इस समाज में निषेकादि और अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जावेंगे ।

(१६) आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन पाठन हुवा करेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्यशिक्षा सब पुरुष और स्त्रियों को दी जावेगी ।

(१७) इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न

किया जावेगा, एक परमार्थ दूसरे व्यवहार, इन दोनों का शोधन तथा सब संसार के हित की उन्नति कीजावेगी।

(१८) इस समाज में न्याय जो पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य धर्म वेदोक्त ही माना जावेगा, इस से विपरीत कदापि नहीं।

(१९) इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सर्वत्र सदुपदेश करने के लिये समयानुकूल भेजे जावेंगे।

(२०) स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिये पृथक्२ आर्य विद्यालय प्रत्येक स्थान में यथासम्भव बनाये जावेंगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जावेगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इस से विरुद्ध नहीं।

(२१) इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्यसमाज के अनुकूल पालन की जावेगी।

(२२) इस समाज में प्रधान आदि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़ कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सब के साथ वर्त्तना होगा।

(२३) विचारसमय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहितसाधक जो सत्य बात भली प्रकार विचार से ठहरे, उसी को सब सभासदों को प्रकट करके वही सत्य बात मानी जावे।

(२४) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारि हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना किन्तु ये दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही की जावें अन्यथा नहीं।

(२५) आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाशपत्र और आर्यसमाज का कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद् तन, मन, धन से सदा किया करें।

(२६) जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तबतक और की नौकरी न करे और न किसी और को नौकर रक्खे, वे दोनों परस्पर स्वामि सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

(२७) जब विवाह, जन्म, मरण या और कोई अवसर दान करने का उपस्थित

हो तब २ आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें, ऐसा धर्म का काम और कोई नहीं है ऐसा समझ कर इसको कभी न भूलें।

(२८) इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जायगा तो सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही सब को विदित करके ऐसा करना होगा।

नियम बन जाने के पश्चात् अधिकारी चुने गये, तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल को आर्यसमाज के अधिवेशन होने लगे। परन्तु कुछ दिन उपरान्त शनिवार सामाजिक पुरुषों के अनुकूल न होने से आदित्यवार रक्खा गया जो अब तक है।

पं० कमलनयनजी आचार्य से शास्त्रार्थ

बम्बई में नियमपूर्वक समाज स्थापित करके स्वामीजी द्वितियवार अहमदाबाद पधारे और वहां प्रबल युक्तियों से स्वामि नारायण मत की समीक्षा की। बम्बई से स्वामीजी के चले आने के पश्चात् वहांके पौराणिक पण्डितों ने यह प्रसिद्ध किया कि स्वामीजी शीघ्र यहां से चलेगये नहीं तो हम उन से शास्त्रार्थ करने को उद्यत थे। जब इनके मिथ्या प्रवाद से लोगों में कुछ भ्रान्ति सी होने लगी तो समाज के मंत्री ने बम्बई से तार भेजकर स्वामीजी को अहमदाबाद से बुलवाया। स्वामीजी के आते ही पौराणिक पण्डितों को मुंह दिखाना कठिन होगया लोगों के आग्रह करने पर भी शास्त्रार्थ से जी चुराने लगे। पं० कमलनयन जी आचार्य भी जो बम्बई के पौराणिक पण्डितों के शिरोमणि माने जाते थे शास्त्रार्थ से बचने लगे। निदान बहुत से प्रतिष्ठित सभ्य लोगों के बाधित करने पर उन्हों ने बड़ी कठिनता से स्वामीजी के सन्मुख आना स्वीकार किया १२ जून शास्त्रार्थ की तिथि नियत हुई, शास्त्रार्थ का स्थान "फ़ामजी काऊसजी इन्स्टीट्यूट" नियत हुवा। नियत समय से पहिले लोग आने लगे, दोपहर के तीन बजे पश्चात् स्वामीजी पधारे और उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा के साथ एक उच्च स्थान पर कुरसी पर बिठाया गया। उनके सामने ही एक कुर्सी आचार्य कमलनयनजी के लिये बिछाई गई, बीच में लग भग डेढ़सौ के प्रामाणिक संस्कृत की पुस्तकें रक्खी गई जिस से कि दोनों पक्षों को प्रमाणों के देखने का सुभीता रहे। चौंतरे के नीचे आठ कुर्सियां समाचार पत्रों के पत्र प्रेरकों के लिये क्रम से लगाई गई थीं, ये वास्तव में निष्पक्षभाव से दोनों ओर की उक्तियां लिखने के लिये आये थे। इस सभा में बम्बई के लगभग समस्त सेठ, साहूकार, अधिकारी, प्रतिष्ठित और शिक्षित पुरुष उपस्थित थे। यथा राव बहादुर बेचरदास अलबाईदास, सेठ लक्ष्मीदास खेमजी, सेठ मथुरादास लोजी, राव बहादुर दादूबा पाण्डुरङ्ग, भाई शङ्कर नाना भाई, गङ्गादास किशोरदास, हरगोविन्ददास नाना, मनसुखराम सूरजराम, रनछोड़ भाई उदयराम,

विष्णु परशुराम शास्त्री इत्यादि प्रायः श्रीमान् और विद्वान् उपस्थित थे इस समय यह ख़बर उड़ी कि आचार्य कमलनयनजी यहां इसलिये नहीं आवेंगे कि यह जगह एक पारसी की है। कारण यह था कि रामानुज सम्प्रदाय के यह आचार्य थे और इनके अनुयायी नहीं चाहते थे कि हमारे आचार्य के गौरव में अन्तर पड़े। परन्तु ज्यों त्यों आध घण्टे के पीछे आचार्यजी अपने २५-३० शिष्यों के सहित सभा में सुशोभित हुये और स्वामीजी के सामने वाली कुर्सी पर विराजमान होगये, निदान राव बहादुर बेचरदास अलबामीदासजी को सभापति बनाया गया और उन्हों ने आरम्भ में एक उपयुक्त वक्तृता की कि जिसका सार यह था कि हम सब वास्तव में पौराणिक और मूर्तिपूजक हैं और मैं स्वयं भी मूर्तिपूजा किया करता हूं। परन्तु हम सब यहांपर इसलिये एकत्र हुये हैं कि आग्रह और पक्ष को अपने चित्त से हटा कर स्वामीजी और आचार्यजी की विद्यापूरित और सारगर्भित वक्तृताओं को सुनें और सत्य को ग्रहण करें हठ और विवाद से काम न लें। इस समय सबसे प्रधान विषय मूर्तिपूजा है। स्वामीजी का यह पक्ष है कि मूर्तिपूजा वेदों से निषिद्ध है और इस लिये वह पापकर्म है। आचार्यजी का पक्ष इसके सर्वथा विपरीत है अर्थात् वे मूर्ति पूजा को वेदविहित समझते हैं। बस अब हमें दोनों महाशयों की उक्ति प्रत्युक्तियों को एकाग्र मन होकर बड़े ध्यान से सुनना चाहिये। किसी प्रकार क्रोध, आवेग और कोलाहल नहीं करना चाहिये, अन्त में सेठ साहब ने यह भी विज्ञापित कर दिया था कि वास्तव में यह शास्त्रार्थ दो महाशयों की परस्पर प्रतिज्ञाओं का परिणाम है जिन्होंने इसके व्यय का सारा भार परस्पर आधा२ बांट कर अपने ऊपर लिया है उनके नाम ठक्कर जीवनदयालुजी और मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्द हैं। ठक्कर जी ने मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्द से (जो सदा आचार्य कमलनयनजी के पक्ष का आश्रय लिया करते हैं) यह कहा था कि यदि आचार्यजी शास्त्रार्थ में स्वामीजी को जीत लेंगे तो मैं आचार्य जी का शिष्य होजाऊंगा अन्यथा आपको स्वामीजी का भक्त होना पड़ेगा। शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिपूजा है मैं फिर निवेदन करता हूं कि आप सब महाशय स्वस्थचित्त होकर आचार्यजी और स्वामीजी की पाण्डित्य भरी वक्तृताओं को सुनें और अपने लिये उसका परिणाम निकालें।

सेठ साहब अपनी वक्तृता समाप्त करके बैठ गये। तदनन्तर मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्दजी ने यह विवाद उपस्थित किया कि ठक्करजी से मैंने यह भी कह दिया था कि मूर्तिपूजा की सिद्धि में पुराणों के भी प्रमाण दिये जावेंगे। परन्तु ठक्करजी के प्रतिज्ञा पत्र प्रस्तुत करने पर वे मौन हो गये, यह प्रतिज्ञापत्र सेठ साहब ने

सभा में उच्चैःस्वर से सब को सुनादिया। उस में इस बात की गन्ध भी नहीं थी; निदान मारवाड़ीजी को चुप होना पड़ा। अब आचार्य कमलनयनजी की बारी आई, वे कहने लगे कि जितने पण्डित इस सभा में उपस्थित हैं, पहले वे मुझे अपने २ मत से सूचना देवें कि किन २ सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते हैं। यह सुनकर विचारशील पुरुषों ने कहा कि यह एक अत्यन्त असङ्गत और व्यर्थ प्रश्न है, आपको इस समय साधारण रीति पर किसी के विश्वास या मत से कुछ प्रयोजन न होना चाहिये। सभापति आपकी सम्मति से नियत हो चुके हैं, शेष सब श्रोतागण हैं उनको शास्त्रार्थ की समाप्ति पर अधिकार है कि कुछ सम्मति निर्धारण करें। परन्तु आचार्यजी ऐसी युक्तियुक्त बातों को कब सुनते थे? कहने लगे कि हम कैसे समझें कि यह लोग किन २ सम्प्रदायों के हैं और ठीक २ सम्मति निर्धारण कर सकेंगे या नहीं? यह सुनकर पण्डित कालिदास गोविन्दजी शास्त्री खड़े हुये और आचार्यजी को सम्बोधन करके कहने लगे कि आप व्यर्थ इस प्रकार की बातों से अपना और उपस्थित लोगों का समय नष्ट करना चाहते हैं। मैं आपके सन्मुख प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं निष्पक्ष और सत्य २ जो कुछ मेरी समझ में आवेगा अन्त में प्रकट करदूंगा और जो कुछ शास्त्रार्थ सुनने के पश्चात् मेरी सम्मति होगी वह भी नहीं छिपाऊंगा और आप दोनों महाशयों की वक्तृता अक्षरशः लिखता जाऊंगा। शोक कि आचार्यजी ने इस पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। तब स्वामीजी ने बड़ी कोमलता और प्रीति के साथ आचार्यजी से कहा कि आज का दिन मैं अत्यन्त माङ्गलिक समझता हूं कि आप धर्म के एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर मुझ से वार्तालाप करने के लिये यहां पधारे हैं और लोगों के इतने संघट्ट से यह प्रकट है कि लोगों में सत्यासत्य के निर्णय करने का सच्चा और प्रबल उत्साह है। मेरा जो पक्ष है वह सभापति महाशय ने बड़ी उत्तमता के साथ सर्व साधारण को अभी सुनादिया है, इसी प्रकार आपका भी। अब आपको उचित है कि मूर्तिपूजा को वेदों से सिद्ध करें और प्रामाणिक ग्रन्थों के (जो निर्धारित हो चुके हैं) प्रमाण देवें, जिन से प्रकट हो कि प्राणप्रतिष्ठा (जिससे मूर्ति में प्राण का सञ्चार हो जाता है) आवाहन (जिससे उनको बुलाया जाता है) विसर्जन (जिससे उनको बिदा किया जाता है) पूजन (जिससे उन्हें प्रसन्न और आनन्दित किया जाता है) इत्यादि करना सार्थक और उचित है। यों तो इस समय एक सज्जन और विचारशील सेठ साहब सभापति हैं परन्तु मेरी सम्मति में मेरे और आप के वास्तविक मध्यस्थ चारों वेद हैं। आप विश्वास रक्खें, वे हम में से लेश मात्र भी किसी का पक्ष न करेंगे। उचित रीति यह है कि हमारे कथनोपकथन

अक्षरशः पीछे से प्रकाशित करदिये जावें, जिससे कि सर्वत्र पण्डितों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति निर्धारण करने का अवसर मिल सके। स्वामीजी की यह समीचीन उक्ति सुनकर भी आचार्यजी की समझ में न आया और वे अपनी हठ करते रहे कि हम ने जो कुछ कहा है जब तक वह नहीं होगा, शास्त्रार्थ नहीं हो सकता, जिसका स्पष्ट यह आशय था कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते। यह व्यवस्था देखकर सेठ मथुरादास लोजी खड़े हुये और उन्होंने आदि से अन्ततक वह कारखाई सुनाई जो उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों की प्रेरणा से आचार्य कमलनयनजी से शास्त्रार्थ के विषय में की थी। इसमें उन्होंने प्रकट किया कि आदि में किस प्रकार आचार्यजी शास्त्रार्थ से बचने के लिये विचित्र और अपूर्व नियम प्रस्तुत करते रहे और अन्त में बिलकुल विवश और निरुत्तर होने पर उन्होंने यहां तक आना स्वीकार किया और अब यहां आकर क्या कहते हैं ? आचार्यजी में इतना साहस कब हो सकता था कि सेठ जी के एक शब्द का भी प्रत्याख्यान करें। निदान अत्यन्त लज्जित होकर विना कुछ कहे सुने सभा से उठकर चलदिये, इस पर प्रधान सभा ने आचार्यजी को संबोधन करके कहा कि आप इस प्रकार विना कुछ कहे जाते हैं यह उचित नहीं है। सहस्रों मनुष्य आज बड़े उत्साह से आप के पाण्डित्य का चमत्कार देखने आये थे, उनको बड़ी भारी निराशा होगी। स्वामीजी ने फिर आचार्यजी से कहा कि आजकल मूर्तिपूजा से लाखों मनुष्यों का निर्वाह होता है यदि आप उनकी आजीविका स्थिर रखना चाहते हैं तो इससे बढ़कर और कौनसा अवसर होगा ? परन्तु आचार्यजी को तो वहां एक क्षणभर ठहरना भी कठिन हो गया था। वे अपने मन में कहते थे कि वह कौनसी घड़ी हो जो मैं अपने घर पहुंच जाऊं। परिणाम यह हुवा कि आचार्यजी जैसे कोरे आये थे वैसे ही चले गये। आचार्यजी के चले जाने के पश्चात् सेठ छबीलदास लल्लूभाई और राजमान राजेश्वरी बोलजी ठाकुरशी ने रामानुज संप्रदाय के आचार्य की इस उदासीनता पर अत्यन्त शोक प्रकट किया। इसी सभा में सेठ गोविन्ददास बाबाने स्वामीजी से प्रश्न किया कि मूर्तिपूजा सनातन से चली आती है वा यह आधुनिक है ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि बहुत थोड़े काल से यह प्रवृत्त हुई है। बुद्ध और जैन के पश्चात् बहुत से कम समझ मनुष्यों ने इसको चला दिया था नहीं तो संस्कृत के प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थों में इसका कहीं नाम तक नहीं पाया जाता। इसके पश्चात् स्वामीजी ने इसी सभा में अपना यौक्तिक व्याख्यान मूर्तिपूजा के खण्डन में प्रारम्भ किया और वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा को महापाप सिद्ध करदिया। समाप्ति पर सभापति ने स्वामीजी के गले में फूलों का

हार डाला और सेठ छबीलदास लल्लूभाई इन्हें अपनी जोड़ी में सवार कराकर इनके आश्रम तक पहुंचा आये।

पूना में वैदिकधर्म का प्रचार।

जुलाई सन् १८७५ ई० की आदि में स्वामीजी पूना पहुंचे और अगस्त सन् १८७५ ई० के अन्त तक अर्थात् पूरे दो मास वहीं रहे। समझदार लोग तो इनसे प्रसन्न थे परन्तु मूर्ख और उजड्ड लोग लड़ाई, दङ्गा तक करने को उद्यत थे, जिनमें से कई को स्वयं अपने किये का फल भी मिलगया। यहां स्वामीजी ने १५ व्याख्यान दिये थे जो संक्षेप से मराठी भाषा में छपगये थे इन्हीं दिनों में पूना में आर्यसमाज भी स्थापित होगया था। लोकहितवादी पत्र ने स्वामीजी की बहुत प्रशंसा लिखी थी और सच २ उनके उपदेश और व्याख्यानों की समालोचना की थी।

बम्बई में धर्म प्रचार।

पूना से चलकर स्वामीजी बम्बई लौट आये और इस वार समाज मन्दिर में ठहरे। प्रायः लोगों से धर्म चर्चा होती रहती थी और प्रत्येक जिज्ञासु के सन्देह को निवृत्त कर देना स्वामीजी अपना कर्त्तव्य समझते थे। यहां बाबू नवीनचन्द्र राय बाबू प्रतापचन्द्र मोजूमदार और डाक्टर भण्डारकर से (जिनका सम्बन्ध ब्रह्मसमाज से था) स्वामीजी की बात चीत होती रहती थी। परन्तु ये तीनों महाशय प्रायः निरुत्तर होजाने पर भी कभी अपना आग्रह नहीं छोड़ते थे। यद्यपि स्वामीजी इनको अपने सन्देह निवारण करने के प्रायः अवसर दिया करते थे परन्तु ये महाशय सत्य के ग्रहण करने में सदा हठ से काम लेते रहे। उस समय प्रायः ब्राह्म लोग यह समझते थे कि स्वामीजी जब तक हम लोगों की पूरी २ सहानुभूति प्राप्त न करेंगे और जब तक हमको संरक्षक वा सहायक न बनायेंगे, तब तक उन्हें कदापि सफलता प्राप्त न होसकेगी। इण्डियन मिरर कलकत्ते में जो उस समय ब्राह्म लोगों के हाथ में था इस प्रकार के विचार प्रकट किये गये थे। परन्तु पीछे से अनुभव ने यह सिद्ध करादिया कि सूर्य को खद्योत से प्रकाश लेने की कुछ आवश्यकता नहीं।

लड़का सिवाय साधुओं और वैरागियों के और कोई नहीं देसकता।

बम्बई में स्वामीजी एक दिन धर्मोपदेश कर रहे थे, उस समय उनके पास बहुत से भद्र पुरुष बैठे हुए थे। अचानक वहां बहुत सी स्त्रियां (जो अच्छे घरानों की थीं) आगईं। स्वामीजी ने उनसे पुछवाया कि तुम यहां सब मिलकर क्यों आई हो? उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की कि हमें सन्तान की इच्छा है आप दया करके हमें निहाल कर दीजिये। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे पास तो सत् उपदेश है, लड़के इन दिनों सिवाय साधुओं और

वैरागियों के और कोई नहीं देसकता। यह सुनकर वे स्त्रियां तो निराश होकर चली गईं परन्तु वहां जितने सेठ साहूकार बैठे थे वे लज्जा के मारे पानी २ होगये। इसका कारण यह था कि प्रायः उन्हीं लोगों की बहू बेटियां सन्तान के लिये मूर्ख और नीच साधुओं और वैरागियों की शरण में जाकर उनकी सेवा और भेट आदि भी चढ़ाया करती थीं।

हमारे राजाओं की अवनति का कारण

एक दिन बम्बई में कई सहस्र मनुष्यों के सन्मुख स्वामीजी ने एक व्याख्यान दिया, जिसमें इस देश के राजाओं की अवनति और ह्रास का कारण मूर्खता और दुष्ट मंत्रियों का होना बतलाया। उन्होंने कहा कि आज कल के राजाओं के मंत्री चार प्रकार के रहगये हैं:- (१) फलित ज्योतिषी (२) तेल वाला (३) ऊंट वाला (४) नपुंसक, इस पर यह दृष्टान्त दिया कि एक वार किसी राजा पर कोई शत्रु चढ़ आया और देश में लगभग उसने अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु राजा साहब को अपनी रंग रलियों में कुछ ख़बर न हुई। जब उसने किले को चारों ओर से घेर लिया तब राजा साहब चौंके कि यह क्या हलचल है, उस समय उन्हें मालूम हुआ कि शत्रु ने हमको चारों ओर से घेर लिया है। अब आप ने सब से पहिले अड्डे पोप ज्योतिषी से परामर्श किया कि इस अवसर पर क्या करना चाहिये। उसने पत्रा खोल कर और मीन मेष विचार कर कहा कि अभी भद्रा लगी हुई है आपको कुछ नहीं करना चाहिये। अस्तु, इसके पश्चात् उन्होंने तेल वाले डाकोत से सलाह पूछी कि तुम्हारी क्या सम्मति है? उसने कहा कि महाराज! आप घबराते क्यों हैं? अभी तेल देखिये तेल की धार देखिये। इसके बाद उन्होंने एक ऊंट वाले से पूछा कि तुम क्या कहते हो? उसने कहा कि महाराज! आप कुछ चिन्ता न करें, देखिये तो सही कि ऊंट किस करवट पर बैठता है। यहां ये अपनी २ सम्मति ही देरहे थे कि इतने में शत्रु की सेना किले का द्वार तोड़ कर भीतर घुस आई, तब राजा साहब ने अपने नपुंसक मंत्री से पूछा कि अब बताओ क्या किया जाय? उसने ताली बजाकर और कमर को बल देकर कहा कि एहे महाराज! यह कौनसी बड़ी बात है आप अपनी किनात चारों ओर तनवा लीजिये क्या वह मुहा ग़नीम परदे के अन्दर घुस आवेगा? उस समय स्वामीजी ने मेज़ पर हाथ मारकर कहा कि यदि हमारे राजाओं की ऐसी दशा और ऐसी बुद्धि न होती तो आज हमारी और हमारे देश की यह हीन और दीन दशा न होती। वास्तव में इस देश की अवनति के कारण ऐसे ही राजे और रईस हैं जो रात दिन प्रजा के धन को नाच तमाशों और व्यर्थ कामों में उड़ाते रहते हैं और अपनी शारीरिक शक्ति और

मानसिक स्मृति को खोकर किसी काम के नहीं रहते। इनके प्रमाद और अनभिज्ञता से राज्य के प्रबन्ध में बड़ी अव्यवस्था होजाती है और फिर नित्य नये २ बखेड़े पैदा होते रहते हैं।

बम्बई के बड़े पादरी साहब। स्वामीजी ने सुना कि बम्बई के बड़े पादरी विलसन साहब एक विद्वान् पुरुष हैं और अपने धार्मिक नियमों का पूर्णतया पालन करते हैं। उन्होंने उन्हें धर्म विषयिक शास्त्रार्थ के लिये आमंत्रित किया, परन्तु पादरी साहब ने ध्यान नहीं दिया। अस्तु, स्वामीजी एक दिन स्वयं उनके पास गये, वे बड़े विनय और सज्जनता से मिले, देर तक धार्मिक विषयों में वार्तालाप होता रहा, जब वे सब प्रकार से निरुत्तर होने लगे तो कहने लगे कि इस समय मुझे एक आवश्यक काम है इसलिये आप से अधिक बात चीत नहीं कर सकता, फिर किसी समय मैं स्वयं आप की सेवा में उपस्थित हूंगा। परन्तु शोक है कि जब तक स्वामीजी बम्बई में रहे, कभी वे नहीं पधारे किन्तु बम्बई से बाहर चले गये।

पं० रामलालजी शास्त्री से शास्त्रार्थ बम्बई के कुछ पौराणिक पण्डितों ने हार कर एक नदियाशान्तिपुर के पण्डित को उभारा कि आप बड़े विद्वान हैं, स्वामीजी से शास्त्रार्थ कीजिये इस में आप की बड़ी प्रतिष्ठा होगी, सहायता के लिये हम उपस्थित हैं। परिणाम जो कुछ होगा सो होगा परन्तु आप का नाम दूर तक प्रसिद्ध होजायगा, बहुत कुछ कहने सुनने पर पण्डितजी शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुये। निदान ता० २७ मार्च सन् १८७६ ई० को होकाभाई जीवनजी के मकान पर शास्त्रार्थ सुनने के लिये बहुत से लोग एकत्रित हुये। उभय पक्ष की सम्मति से पं० भौजाऊ जी शास्त्री सभापति नियत हुये। स्वामीजी ने पं० रामलालजी से पूछा कि मूर्तिपूजा वेद में कहां लिखी है? पंडित जी ने पुराणों के एक दो प्रमाण दिये इसपर स्वामीजी ने कहा कि ये पुस्तकें मानने योग्य नहीं आप वेद का कोई प्रमाण दीजिये। परन्तु पण्डित जी ने आयु भर कभी वेदों के दर्शन भी नहीं किये थे, प्रमाण वे कहां से देते? स्वामीजी ने जब विशेष बल दिया तो असम्बद्ध बातें करने लगे। यह दशा देख कर इस सभा के प्रधान भौजाऊजी शास्त्री ने पंडितजी को सम्बोधित किया कि यह क्या बात है? "आम्रान् पृष्टः कोविदाराना चष्टे" स्वामीजी कुछ पूछते हैं और आप कुछ कहते हैं। यह सुन कर पंडित रामलालजी बिलकुल चुप होगये और सभापति ने स्वामीजी के पक्ष में अपनी व्यवस्था दी। इस सत्यभाषिता के बदले में पौराणिक पंडितों ने शास्त्रीजी को बहुत सताया, परन्तु ये उन के दबाव में नहीं आये। इस के कुछ दिन उपरान्त वैदिकयंत्रालय प्रयाग के प्रबन्धकर्त्ता पंडित रामलालजी से मिले, उ-

न्हों ने पूछा कि पंडितजी! आपने स्वामीजी से शास्त्रार्थ क्यों नहीं किया? पंडितजी ने उत्तर दिया कि हम अपनी आजीविका से लाचार हैं। स्वामीजी विरक्त हैं और हम गृहस्थ, उनकी सी स्वतंत्रता और निर्भयता हम में क्योंकर हो सकती है?

मूर्तिपूजकों को विज्ञापन के द्वारा आमन्त्रित किया गया।

भाई जीवनदयालु तुरकादयालु साकिन नल बाजार बम्बई ने उन्हीं दिनों एक विज्ञापन दिया जिसमें यह प्रकट किया गया कि मैं स्वामीजी के उपदेश और शास्त्रार्थ सुन कर आर्य हुआ हूं और मेरा अब दृढ़ निश्चय है कि मूर्तिपूजा वेदानुसार पाप कर्म है। यदि कोई महाशय इस के विपरीत सिद्ध करदें तो मैं उन को सवासौ रुपये भेंट करूंगा परन्तु किस में इतना साहस और बल था कि सन्मुख आता किसी ने उत्तर तक नहीं दिया।

हम तो क्या ईसाई होंगे बहुत से ईसाई आर्य हो जावेंगे।

१ मई सन् १८७६ ई० को बम्बई से चल कर ९ मई सन् १८७६ ई० को पांचवीं बार स्वामीजी फर्रुखाबाद पधारे। यहां ईसाइयों से इसवार स्वामीजी की छेड़ छाड़ होती रही। एक दिन उन्हों ने कहा कि हमें निश्चय है कि आप बहुत शीघ्र ईसाई धर्म को स्वीकार करेंगे। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि हम तो क्या ईसाई होंगे तुम थोड़े ही दिनों में देखोगे कि बहुत से ईसाई आर्य्य होजावेंगे। कुछ दिन बाद पाठशाला तोड़ कर और उस की पूंजी वेदभाष्य फण्ड में बदल कर स्वामीजी बनारस चले गये। विदा होते समय सब को जता दिया कि यदि यहां शीघ्र आर्यसमाज स्थापित होगया तो फिर भी आवेंगे अन्यथा नहीं।

भिन्न २ स्थानों में जाना।

फर्रुखाबाद से चल कर स्वामीजी बनारस पहुंचे और वहां लाजरस कम्पनी के यंत्रालय में वेदभाष्य भूमिका के छपवाने का प्रबन्ध किया। यहां से जौनपुर पहुंचे और दो तीन दिन ठहर कर आर्य्यसमाज के स्थापित होने का सुसमाचार सब को सुनाया और वैदिकधर्म का उपदेश करते रहे। जौनपुर से अयोध्या पहुंचे और यहां सरयू के तट पर निवास करके वेदभाष्य भूमिका लिखनी प्रारम्भ करदी। अयोध्या से चलकर लखनऊ पहुंचे और सर्दार विक्रमानसिंह आल्हूवालिया की कोठी में ठहरे। यहां स्वामीजी के समय का बड़ा भाग वेदभाष्य भूमिका के लिखने में लगता था, तौ भी वे धर्मोपदेश बराबर करते रहते थे। लोगों के कहने सुनने से यहां अंगरेज़ी में भी कुछ पढ़ने लिखने का ढंग डाला था इस विचार से कि यदि इसदेश से बाहर जाने का काम पड़े तो यह भाषा काम आवे। लखनऊ में धनीराज व लाला ब्रजलाल से स्वामीजी की धार्मिक वि-

षयों में प्रायः बातचीत हुवा करती थी और उक्त दोनों महाशय स्वामीजी से अपने सन्देह निवारण किया करते थे। लखनऊ से चलकर स्वामीजी कुछ दिन शाहजहांपुर ठहरे और यहां उपदेश करके बरेली चले गये। वहां पर ख़ज़ांची लक्ष्मीनारायणजी की कोठी में निवास किया। यहां अंगदरामजी शास्त्री को स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के लिये कईवार बुलाया, परन्तु इन्हें स्वामीजी का बल पहिले ही मालूम हो चुका था इसलिये ये दूर से ही अपनी शेख़ी बघारते रहे पास कभी न आये। बरेली से चलकर दो दिन स्वामीजी कर्णवास ठहरे। यहां के ठाकुर लोग जो स्वामीजी पर परमभक्ति और श्रद्धा रखते थे, स्वामीजी के पधारने से अत्यन्त ही प्रफुल्लित हुये। यहां स्वामीजी ने दिल्ली दर्बार में उपदेश करने का अपना मनोरथ प्रकट किया। तुरन्त ठाकुर लोगों ने सब सामान (शामियाने, क़नात, फ़र्श, गाड़ी आदि) इकट्ठा करदिया। दिसम्बर के अन्त में स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंह तथा अन्य महाशयों के साथ दिल्ली को प्रस्थित हुये। अलीगढ़ स्टेशन पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बंबई वाले भी दिल्ली जाते हुये स्वामीजी के साथ हो गये और ये सब ठीक समय पर दिल्ली पहुंच गये।

सन् १८७७ ई० का कैसरी दर्बार और वैदिकधर्म का उपदेश।

दिल्ली में शेरमल के अनारबाग़ में स्वामीजी के शामियाने और डेरे खड़े किये गये इसी ओर अवध के रईसों के कैम्प भी पड़े हुये थे। प्रतिदिन स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये प्रायः रईस और पण्डित लोग आते रहते थे और सर्वसाधारण भी स्वामीजी के उपदेशों को बड़े प्रेम और ध्यान से सुना करते थे। एक दिन एक ईरान के मौलवी साहब जो केवल फ़ारसी भाषा बोल सकते थे, स्वामीजी के पास आये। एक कायस्थ साहब के द्वारा स्वामीजी ने उनसे बातचीत की मौलवी साहब उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये। एकदिन महाराजा साहब जम्बू व काश्मीर की प्रेरणा से बाबू नीलाम्बरजी मुसाहब महाराजा साहब स्वामीजी के पास आये और उनसे कहा कि महाराजा साहिब आप से मिलना चाहते हैं। स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया था, परन्तु पीछे से पण्डितों के जोड़ तोड़ लगाने से यह काम ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार एकवार महाराजा रणधीरसिंहजी कश्मीराधिपति ने स्वामीजी को अपने यहां बुलवाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु पण्डित गणेश शास्त्री ने महाराजा साहिब से यह कहकर कि उन्हें बुलाने से पहिले यहां के सब मन्दिरों को गिरा दीजिये और बहुत से उतार चढ़ाव से उनकी इच्छा रोकदी। परन्तु पीछे सन् १८९२ ईस्वी में वर्तमान महाराजा प्रतापसिंहजी के सन्मुख जब आर्यसमाज के साथ पौराणिक पण्डितों का शास्त्रार्थ

हुआ तो उन्हीं गणेश शास्त्रीजी ने सभा में स्पष्ट कहदिया कि महाराज ! सच तो यह है कि मूर्तिपूजा की वेद में आज्ञा नहीं है । यद्यपि महाराजा साहिब उस समय उनसे अप्रसन्न भी होगये तथापि शास्त्रीजी ने अपने आत्मिकबल का पूरा परिचय दिया ।

दिल्ली में पधारने का मुख्य प्रयोजन ।

दिल्ली में इस अवसर पर स्वामीजी के पधारने का मुख्य प्रयोजन यह था कि दरबार के उपलक्ष्य में भारतवर्ष के समस्त राजे महाराजे तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग चारों ओर से एकत्रित होंगे, उनके कानों तक आर्य-समाज का नाम व उद्देश्य पहुंचाने का उत्तम अवसर है । दूसरे यह भी समझागया था कि यहां पर प्रायः शिक्षित पुरुष और प्रसिद्ध धार्मिक उपदेष्टा अपने२ मन्तव्यों का प्रचार करने के लिये आवेंगे । उनको एक स्थान पर परस्पर संवाद करने के लिये आमंत्रित किया जासकता है, प्रायः राजा लोग स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये आते रहे । महाराजा हुल्कर और दो एक राजों ने यह उद्योग किया था कि सम्पूर्ण स्वदेशीय नृप गण किसी एक स्थान में उपस्थित होकर स्वामीजी का उपदेश सुनें, परन्तु उनके अनेक कार्यों में आसक्त होने के कारण इस प्रकार का प्रबन्ध न होसका, तथापि स्वामीजी ने अन्य उपायों से अपना उद्देश्य पूरा किया । साथ ही स्वामीजी ने उन महाशयों को जो उस समय धार्मिक संशोधन के काम में प्रवृत्त थे, अपने विश्रामस्थान में आमंत्रित किया । निम्नलिखित महाशय उनके स्थान पर सुशोभित हुवे ।

(१) मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी (२) बाबू नवीनचन्द्रराय (३) बाबू केशवचन्द्रसेन (४) मुन्शी इन्द्रमणि (५) आनरेबुल सर सय्यदअहमदखां (६) बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि । जब सब महाशय एकत्रित होगये तो स्वामीजी ने इस नैमित्तिक सभा का उद्देश्य यह वर्णन किया कि हम सब इस समय धार्मिक संशोधन में प्रवृत्त हैं । हमें चाहिये कि अपने२ सन्देह निवारण करके सच्चे धर्म को शुद्धभाव से ग्रहण करें और फिर एक ही सर्वसम्मत मार्ग का अवलम्बन करें जिससे कि यह भेदभाव, द्वेष और कुटिलता आदि दूर होकर दूध पानी की तरह से हम सब लोग आपस में मिलजावें । अन्त में स्वामीजी ने कहा कि इस वैमनस्य के दूर करने का सबसे उत्तम उपाय यही हो सकता है कि धार्मिक विरोध दूर होजावे । क्योंकि धार्मिक विरोध ही प्रत्येक प्रकार के उपद्रव और अशान्ति की जड़ हुवा करता है । जबतक धार्मिक विरोध और खिचावट बनी रहती है तबतक परस्पर सच्चा अनुराग और सौहार्द उत्पन्न ही नहीं होसकता । इस सभा में स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में यह

भी कहा था कि चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, हम सब को चाहिये कि अक्षरशः उन्हीं की अनुकूलता और अनुयायिता स्वीकार करें। यदि किसी महाशय को इसमें कुछ सन्देह हो तो मैं उसके निवारण करने के लिये सर्वदा उद्यत हूं। परन्तु खेद है कि यह सभा विना किसी परिणाम पर पहुंचने के विसर्जित होगई, कारण स्पष्ट है कि जबतक दुराग्रह से अन्तःकरण मलिन है उसमें सत्य का प्रकाश कदापि नहीं हो सकता। दरबार के दिनों में स्वामीजी कई वार बाबू केशवचन्द्रसेन से मिले। एक दिन उक्त बाबू साहब ने स्वामीजी को सम्मति दी कि यदि आप पूरी २ सफलता चाहते हैं तो यह प्रसिद्ध कीजिये कि जो कुछ मैं कहता हूं वह मुझसे परमेश्वर कहलवाता है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि परमेश्वर अन्तर्यामी व सर्वव्यापक है, क्या वह किसी के कान में कहीं से कहने आता है, ऐसी झूठी बात मैं कभी मुंह से नहीं निकाल सकता। सर्वसाधारण जनों को स्वामीजी ने इस अवसर पर यह उपदेश किया था कि मद्यपान और मांसभक्षण वेदों की शिक्षा के सरासर विपरीत हैं इसलिये इनसे मनुष्यों को सर्वदा बचना चाहिये। दरबार के अवसर पर स्वामीजी ने वेदभाष्य के विज्ञापन और आर्यसमाज के छपे हुये नियम भी वितरित कर दिये थे और मुख्य २ महाशयों को स्वरचित पुस्तकें भी अर्पण की थीं।

स्वामीजी को पंजाब में भ्रमण करने के लिये निमंत्रित करना।

कैसरी दरबार की समाप्ति पर मुं० हरसुखराय साहब मालिक अखबार कोहनूर लाहोर, पं० मनफूल साहब रईस लाहोर, सरदार विक्रमासिंह साहब आलहू वालिया रईस जलन्धर और मुं० कन्हैयालाल साहब अलखधारी रईस लुधियाना ने विनय पूर्वक स्वामीजी से प्रार्थना की कि आप अब पंजाब में भी अवश्य भ्रमण करें। स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके प्रतिज्ञा की कि हम अब शीघ्र ही पंजाब आवेंगे।

दिल्ली से प्रस्थान।

दरबार के पश्चात् स्वामीजी १६ जनवरी सन् १८७७ ई० को दिल्ली से प्रस्थित होकर उसी दिन मेरठ पहुंचे और सूर्यकुण्ड पर डिप्टी महताबसिंह साहब की कोठी में ठहरे। कुछ दिन वहां विश्राम करके फर्वरी के प्रारम्भ मे सहारनपुर पहुंचे, यहां वेदभाष्य भूमिका लिखते रहे और साथही धर्मोपदेश भी करते रहे इन्हीं दिनों चांदापुर ज़िला शाहजहांपुर के प्रसिद्ध मेले के स्थापकों की ओर से उन को सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया गया और सहारनपुर के कई प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी मेले में पधारने के लिये उनसे प्रार्थना की। निदान स्वामीजी ने लिख भेजा कि १५ मार्च सन् १८७७ ई० को हम मेले में पहुंचेंगे। उन्हीं दिनों ला० चण्डी

प्रसादजी अम्बहटा निवासी ने स्वामीजी से अनेक धर्मसम्बन्धी प्रश्न किये थे जिनका उत्तर स्वामीजी ने बड़ी उत्तमता के साथ दिया।

मेला सत्यमत परीक्षा चांदापुर।

यह मेला इस समय में अपने ढंग का निराला ही हुआ है, जिसमें बड़े २ प्रसिद्ध धार्मिक लीडर (आचार्य) सुशोभित थे। इसके संस्थापक मुन्शी प्यारेलाल साहब रईस ज़िले शाहजहांपुर थे। मुन्शी साहब ने अकस्मात् यह सोचा कि इस समय भिन्न २ मत और उनके सिद्धान्तों में प्रतिदिन विरोध बढ़ता जाता है, इसलिये एक ऐसा मेला जोड़ना चाहिये कि जिसका उद्देश्य सत्य मत की परीक्षा करना हो और जिसमें प्रत्येक मत और संप्रदाय के विद्वान् और आचार्यों को निमंत्रित किया जावे और सर्वसम्मति से धार्मिक सिद्धान्त चुनकर उन पर गम्भीरता और सभ्यता से विचार किया जावे। जो कि मुन्शी साहिब दृढ़संकल्प थे इसलिये उन्हों ने कलक्टर ज़िले से अपना अभिप्राय प्रकट करके मेला लगाने की आज्ञा प्राप्त करली। निदान यह मेला चांदापुर ज़िले शाहजहांपुर में १८ मार्च सन् १८७७ ई० से प्रारम्भ होकर २० मार्च सन् १८७७ ई० तक रहा। इस मेले में मुं० प्यारेलाल के आमंत्रित करने पर निम्नलिखित महाशय सुशोभित हुए। (१) स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी वैदिकआचार्य और आर्यसमाज-संस्थापक (२) मुं० इन्द्रमणिजी मुहम्मदी मत के प्रसिद्ध प्रतिपक्षी (३) पादरी टी० जे० स्काट साहब प्रसिद्ध इञ्जील अनुवादक और लाजेशियन (नैयायिक) (४) पादरी नवल साहब (५) पादरी पारकर साहब (६) पादरी जान्सन साहब (७) पादरी जान टाम्सन साहब (८) मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब उस्ताद मदर्से अर्बी देवबन्द ज़िला सहारनपुर (९) मौलवी सय्यद अबुल मन्सूर साहब देहलवी। इन विद्वानों के अतिरिक्त दूर व समीप के प्रायः प्रतिष्ठित व शिक्षित जन सम्मिलित हुए थे। मुं० प्यारेलालजी की ओर से आतिथ्य का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था और सभा के लिये स्थान बड़ी उत्तमता से सजाया गया था। इस मेले में जो संवाद हुआ, वह अक्षरशः छपकर पुस्तकाकार मुद्रित होगया है और सच यह है कि प्रारम्भ में इस संवाद को पढ़कर बहुत से मनुष्य आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए हैं। इस शास्त्रार्थ में स्वामीजी के सन्मुख सब महाशय निरुत्तर होगये और जिस योग्यता के साथ प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्वामीजी ने दिया था, वह उन्हीं का काम था। शास्त्रार्थ मेला चांदापुर के अवलोकन से यह सब वृत्तान्त अवगत होसकता है।

लुधियाने में पधारना।

मेला चांदापुर के समाप्त होने पश्चात् ३१ मार्च सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लुधियाने पहुंचे और दूसरे दिन एक व्याख्यान दिया

जिसमें अनेक भद्र पुरुष उपस्थित थे। इस व्याख्यान से स्वामीजी के पधारने की खबर दूर व समीप सर्वत्र फैल गई और इनके व्याख्यानों में प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। एक दिन पादरी वेरी साहब व जज कारस्टीफ़न साहब स्वामीजी से मिलने के लिये उन के आश्रम में पधारे और बातचीत के प्रसङ्ग में कहने लगे कि कृष्णजी के विषय में जो कुछ श्रीमद्भागवत में लिखा है उसे पढ़कर बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वे महात्मा हों। स्वामीजी ने झट उत्तर दिया कि उस पुस्तक में जितने अपवाद कृष्णजी पर लगाये गये हैं वे सब बनावटी हैं। परन्तु बुद्धि के स्वीकार करने के विषय में क्या कहा जावे, आश्चर्य है कि बुद्धि यह स्वीकार कर लेती है कि परमेश्वर का आत्मा कबूतर के रूप में आकाश से उतरा और मरियम के गर्भाशय में प्रविष्ट होगया और फिर कुमारी (अविवाहिता) होने पर भी मरियम के पेट से महात्मा ईसा पैदा हुए। एक दिन स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे, एक पौराणिक पण्डित उनका व्याख्यान सुनकर घबरा गये और क्रोध में आकर अपने साथी से कहने लगे कि ,यहां से चलो, ये दुष्ट हैं इनका मुंह देखनेमें भी पाप लगता है। स्वामीजी ने अकस्मात् ये शब्द सुनलिये और पण्डितजी से कहने लगे कि आप एक ओर ऊझल में खड़े होजावें, केवल मेरा उपदेश सुने जावें मुंह न देखें। यह सुनकर पण्डितजी लज्जित होगये। लुधियाने में जब स्वामीजी अपने व्याख्यानों को समाप्त कर चुके तौ उन्होंने सब को विज्ञापित किया कि जिस किसी को कुछ प्रष्टव्य हो या मेरे कथन में सन्देह हो, वह निःशंक होकर प्रकट करे, तुरन्त उत्तर दिया जायगा। यदि कोई शास्त्रार्थ करना चाहे तौ इसके लिये भी मैं सर्वथा उद्यत हूं, परन्तु यह सुनकर भी सन्नाटा रहा किसी ने चूं तक नहीं की। एक गौड ब्राह्मण लुधियाने के पादरियों के स्कूल में लड़कियों को हिन्दी इञ्जील पढ़ाने पर नौकर था, शनैः २ उसकी रुचि ईसवी मत की ओर होगई थी, यहां तक कि उसके नियम पूर्वक ईसाई बनाने का दिन भी नियत होचुका था। परन्तु उसके सौभाग्य से उन्हीं दिनों स्वामीजी वहां पहुंच गये और उनके उपदेश सुनकर वह ईसाई होने से बच गया और उसने उनकी नौकरी भी छोड़ दी।

लाहौर में वैदिक धर्म का प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना।

१९ एप्रिल सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लाहौर पहुंचे। रेलवे स्टेशन पर स्वागत के लिये मुं० हरसुखराय साहब मालिक कोहनूर प्रेस और पं० मनफूल साहब साबिक मीर मुन्शी गवर्नमेंट पंजाब उपस्थित थे। बड़े सन्मान के साथ स्वामीजी को लेजाकर दीवान रत्नचन्द्र साहब के बाग में ठहराया। यहीं पर सैकड़ों मनुष्य स्वामीजी

के उपदेश सुनने और अपने संशय निवृत्त करने के लिये आते थे । २५ अप्रैल को वेद और वेदोक्त धर्म पर बावली साहब में एक व्याख्यान हुआ, श्रोताओं की संख्या बहुत थी, इस व्याख्यान का बहुत अच्छा प्रभाव हुवा । परन्तु पौराणिक लोग बड़े क्रुद्ध हुये । निदान उन्होंने दीवान रत्नचन्द्र साहब को जिन के मकान में स्वामीजी ठहरे हुये थे, बहुत कुछ भड़काया । इस का परिणाम इस से बढ़ कर और क्या हो सकता था कि स्वामीजी अपना स्थान परिवर्त्तन करलें । निदान वे डाक्टर रहीमखां साहब की कोठी में चले गये और निर्भय होकर सत्यधर्म की ओर लोगों के मन को आकर्षित करते रहे । पंजाब में उस समय एक भी पौराणिक पण्डित इस योग्य न था कि स्वामीजी से घण्टे दो घण्टे भी संस्कृत में बात चीत कर सके, तौभी लाहोर के साधारण पण्डितों ने कुछ विरोध का तार छेड़ दिया और स्वामीजी के व्याख्यानों के प्रतिवाद में अनाप शनाफ कहने लगे । परन्तु इस विरोध का प्रभाव उलटा हुवा, लोगों को मालूम हो गया कि इन के पास अपशब्दों के सिवाय और कुछ नहीं और इन में कोई इस योग्य नहीं कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर सके । इन्हीं दिनों शहर में धार्मिक हलचल देखकर एक दिन पं० मनफूल साहब ने स्वामी जी से कहा कि उचित यह है कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ देवैं फिर यह सब विरोध आप से आप शान्त हो जायगा और महाराजा साहब काश्मीर भी आप से बहुत प्रसन्न होंगे । स्वामीजी ने इस का संक्षेप से यह उत्तर दिया कि "मैं लोगों को या महाराजा साहब काश्मीर को प्रसन्न करूं या ईश्वरीय आज्ञा का (जो वेद में लिखी है) पालन करूं" यह सुन कर पंडित साहब सहम गये और फिर कभी ऐसी प्रार्थना नहीं की । एक पादरी साहब और एक बंगाली साहब ने यज्ञ और वेद के विषय में कुछ प्रश्न किये थे, स्वामीजी ने उन को समीचीन उत्तर देकर सन्तुष्ट कर दिया । पं० भानुदत्त जी पहिले स्वामीजी के पास बहुत आते जाते रहे और मूर्त्तिपूजा का खण्डन भी करते रहे परन्तु एक दिन कई पौराणिक पण्डितों के धमकाने पर पंडित जी घबरा गये और स्पष्ट कह दिया कि मेरा विश्वास पूर्ववत् है और मैं मूर्तिपूजा को मानता हूं । पं० शिवनारायण अग्निहोत्री भी स्वामी जी के पास बहुधा जाया करते थे, एक दिन स्वामी जी ने अग्निहोत्री जी को विना सोचे समझे सम्मति देने पर अत्यन्त लज्जित किया । पंजाब में शिक्षित लोगों की कुछ विचित्र ही दशा थी प्रत्येक के मन्तव्य भिन्न २ और अपनी रुचि (मर्ज़ी) के अनुसार थे। स्वामी जी के उपदेश सुनकर उन की आंखें खुल गईं और वे उन के प्रत्येक शब्द पर विचार करने लगे । जितने सन्देह उन के हृदय में उत्पन्न होते थे, वे सब साथ

के साथ निवृत्त होते जाते थे। निदान यह प्रस्ताव स्थिर हुवा कि जैसे बम्बई व पूना में आर्यसमाज स्थापित होगये हैं वैसे ही लाहोर में भी होना चाहिये।

अब प्रश्न यह हुवा कि आर्यसमाज के नियम जो बम्बई में बने हैं वे बहुत ही विस्तृत हैं इसलिये प्रत्येक की समझ में उनका आना कठिन है। निदान स्वामीजी ने उन सब नियमों को देख कर कुछ परिवर्तन के साथ १० नियम उन में से चुन लिये। जो निम्नलिखित हैं:—

आर्य्यसमाज लाहोर के दश नियम ॥

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्यासत्य को विचार करके करने चाहियें।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सर्वथा विरोध छोड़कर सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रारम्भ में भिन्न २ स्थानों पर समाज के साप्ताहिक अधिवेशन होते रहें, परंतु इसमें सुभीता देखकर समाज ने एक मकान किराये पर लेलिया। स्वामीजी समाज मन्दिर में व्याख्यान दिया करते थे और समाज की स्थापना से बहुत प्रसन्न

थे। एकसमय समाज के कई श्रद्धालु पुरुषों ने स्वामीजी से यह प्रार्थना की कि आप समाज के गुरु या आचार्य की पदवी धारण करें। स्वामीजी ने कहा कि इस प्रस्ताव से "गुरुपन" की गन्ध आती है। क्या आप यह चाहते हैं कि मैं भी गुरु बनकर एक नया पन्थ चलाऊं? मेरा उद्देश्य तो "गुरुपन" की जड़ काटना है, इसके विरुद्ध आप मुझ से ही उसके स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं कि जिसके नाम से मुझे द्वेष (नफ़रत) है। यह सुनकर सब चुप होगये, परन्तु एक महाशय ने भक्ति के वेग में आकर स्वामीजी से कहा कि अच्छा और नहीं तो हम आप को समाज का परम सहायक अवश्य कहेंगे। इस पर स्वामीजी ने पूछा कि यदि मुझे समाज का परम सहायक कहोगे तो परमेश्वर को क्या कहोगे? इसका क्या उत्तर होसकता था। निदान स्वामीजी ने सामाजिक पुरुषों को बिलकुल निराश न करने के लिये यह आज्ञा देदी कि यदि आप को यही आग्रह है तो मेरा नाम समाज के सहायकों में लिख लीजिये। इसके पश्चात् स्वामीजी कुछ दिन के लिये लाहोर से बाहर वैदिकधर्म के प्रचार के लिये चले जाया करते थे और फिर लौट आया करते थे। २१ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को ब्राह्मसमाज लाहोर का वार्षिकोत्सव था, उसमें स्वामीजी दो तीन सौ आर्य पुरुषों के सहित पधारे। स्वामीजी कहते थे कि यह लोग आस्तिक और एक ईश्वर को मानने वाले हैं इनकी सभा में जाने से कोई हानि नहीं है। ९ नवेम्बर सन् १८७७ ई० को आर्यसमाज लाहोर की अन्तरङ्ग सभा में समाज के उपनियमों पर विचार होरहा था, संयोग से उस समय स्वामीजी भी सुशोभित थे। एक अवसर पर उनसे प्रार्थना कीगई कि इस विषय में आप भी सम्मति दें। उन्होंने स्पष्ट उत्तर देदिया कि मैं आप की अन्तरङ्ग सभा का सभासद् नहीं हूं, इसलिये मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है।

बाहर से लौट आकर २ मार्च सन् १८७८ ई० को स्वामीजी लाहोर में नव्वाब नवाज़िशअली ख़ां साहिब के बाग़ में ठहरे। एक दिन स्वामीजी ने मुहम्मदी मत के खण्डन में व्याख्यान देना प्रारम्भ किया, पास ही नव्वाब साहब टहल रहे थे परन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा। एक महाशय ने साहस करके कहा कि आप मुहम्मदी मत का खण्डन कर रहे थे, पास ही नव्वाब सुनते थे, ऐसा न हो कि वह अप्रसन्न होजावें। स्वामीजी ने इसका यह उत्तर दिया कि मैं यहां न तो मुहम्मदी मत की प्रशंसा करने आया हूं और न किसी अन्य मत की। मैं तो सिर्फ़ एक वैदिकमत को सच्चा मानता हूं और शेष सब मतों को झूंठा। नव्वाब साहब सुनरहे थे तो क्या हुआ? मैं जान बूझकर वैदिकधर्म का महत्त्व उनके कर्णगोचर कर रहा था। मुझे

सिवाय परमात्मा के और किसी का कुछ भय नहीं है। लाहोर से जब स्वामीजी ने जाने का विचार प्रकट किया तो एक महाशय ने स्वामीजी से बड़ी अधीनता पूर्वक यह प्रार्थना की कि सम्प्रति आप अपने जाने का विचार कुछ दिन के लिये रोकदें और कुछ दिन यहीं विश्राम करके वैदिकधर्म का उपदेश करें। स्वामीजी ने कहा कि जिस प्रकार आप यहां पर मेरी उपस्थिति की आवश्यकता समझते हैं, उसी प्रकार अन्यत्र भी मेरे जाने की आवश्यकता है। मैं किसी दशा में एक स्थान में नहीं ठहर सकता, मेरा औचित्य (फ़र्ज़) है कि सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार करूं।

अमृतसर में स्वामीजी का पहुंचना

५ जुलाई सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लाहोर से अमृतसर पहुंचे और रामबाग़ के समीप एक कोठी में ठहरे। यह कोठी सरदार दयालसिंह साहिब मजीठिया ने स्वामीजी के ठहरने के लिये किराये पर लेरक्खी थी, स्वामीजी के पहुंचते ही सारे शहर में चर्चा फैलगई और प्रत्येक मत और सम्प्रदाय के लोग उनके पास आने लगे। स्वामीजी ने लोगों का उत्साह देख कर कोठी में ही उपदेश का काम प्रारम्भ करदिया और साथ के साथ प्रत्येक जिज्ञासु के सन्देह भी निवृत्त कर देते थे। शहर और बाहर के मुख्य और प्रतिष्ठित लोग भी स्वामीजी के उपदेश सुनने आया करते थे। राजा सर साहब दयालु साहब, सर्दार भगवानसिंह साहब और लाला सन्तराम साहब संपड़ा नित्य ही पधारा करते थे। स्वामीजी के व्याख्यानों से पौराणिक पण्डित बहुत ही घबराये, परन्तु उनमें से एक भी इस योग्य न था कि स्वामीजी से घड़ी दो घड़ी तक भी संस्कृत में बातचीत कर सकता. इसलिये वे सदा मुंह छिपाते रहे और झूठी बातें उड़ा २ कर लोगों को बहकाते रहे। कभी २ किसी कोरे पण्डित को कुछ सिखा पढ़ा कर स्वामीजी का समय नष्ट करने के लिये भेजदिया करते थे, परन्तु तो भी स्वामीजी बड़ी योग्यता के साथ उसे सन्तुष्ट करदिया करते थे। बहुत से सत्यवादी पण्डित और ज्ञानी पुरुष पीछे से यह कह दिया करते थे कि स्वामीजी महाराज जो कुछ कहते हैं, वह सर्वथा सत्य है, परन्तु लोग भ्रम जाल में फंसे हुए हैं उनका उससे निकलना बहुत ही कठिन काम है। शनैः २ बहुत से लोग स्वामीजी की बातों को मानने लगे और अपने को "आर्य्य" कहलाने में गौरव समझने लगे। उनमें स्वामीजी के उपदेश से इतना आत्मिकबल उत्पन्न होगया कि वे लोगों के विरोध और क्रोध को गम्भीरता के साथ सहन कर सकें। निदान यहां भी आर्यसमाज का स्थापित होना निश्चित होगया, इस बात की सूचना लाहोर आर्यसमाज को भी दीगई और १२ अगस्त सन् १८७७ ई० को नियमपूर्वक अमृतसर में "आर्यसमाज" स्थापित होगया। आर्य-

समाज के होते ही बहुत कुछ काम होने लगा और लोगों की रुचि समाज की ओर बढ़ने लगी। बहुत से लोग यद्यपि किसी कारण से समाज में प्रविष्ट न होसके, परन्तु मूर्तिपूजा और अनेक झूठे विश्वासों से बचगये। स्वामीजी ने सबको विज्ञापित करदिया कि यदि किसी को मुझ से शास्त्रार्थ करना हो या मेरी किसी बातपर आक्षेप करना हो तो मैं सर्वदा उद्यत हूं, परन्तु किसी ने करवट तक नहीं बदली। जब लोगों ने पौराणिक पण्डितों को लज्जित करना प्रारम्भ किया यहां तक कि किसी २ ने वृत्ति तोड़ने की भी धमकियां दीं तब लाचार उन्होंने अमृतसर के प्रसिद्ध पण्डित रामदत्तजी की शरण ली और निवेदन किया कि यहां आप ही हम सब के एक मात्र आधार व आश्रय हैं, आप हमारी लाज रखिये अर्थात् स्वामीजी से शास्त्रार्थ कीजिये अन्यथा हमारी आजीविका भी जाती रहेगी। पण्डितजी स्पष्टवक्ता थे उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि मुझ में स्वामीजी के सन्मुख जाने की शक्ति नहीं है, इस पर भी जब उन्होंने न माना तो पण्डितजी हरिद्वार चले गये।

मेरा काम वेदों की आज्ञा पर स्वयं चलना और औरों को चलाना है।

एक दिन पं० विहारीलाल साहब एक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर अमृतसर ने स्वामीजी से कहा कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो यहां के सब लोग आप के सभासद् व सहायक होजावें। स्वामीजी ने कहा कि मैं सत्य को हाथ से नहीं छोड़ सकता, मुझे किसी के सहायक होने न होने से प्रयोजन नहीं है। मेरा काम वेदों की आज्ञा पर स्वयं चलना और औरों को चलने के लिये प्रवृत्ति दिलाना है। एक दिन सरदार हरचरणदास साहब रईस अमृतसर स्वामीजी से मिलने के लिये गये, उनसे बातचीत करते हुए स्वामीजी ने कहा कि इस समय हमारे देश में ऐसे २ रईस रहगये हैं कि जिनसे चला तक नहीं जाता, ऐसे लोग देश का क्या भला कर सकते हैं? वास्तव में बात यह थी कि सरदार साहब इतने स्थूलाकाय थे कि उनसे दश कदम भी चला नहीं जासकता था। मिस्टर परकन्सन साहब कमिश्नर अमृतसर से भी स्वामीजी मिले थे और धार्मिक बातचीत भी हुई थी, जिससे कमिश्नर साहब को स्वामीजी का अभिप्राय और उद्देश्य भले प्रकार विदित होगया था। दूसरी वार स्वामीजी १५ मई सन् १८७८ ई० को अमृतसर में पधारे थे और सरदार भगवान्सिंह साहब के बाग़ में ठहरे थे। इस वार उनके व्याख्यान अमृतसर के मलोईबुंगे में हुआ करते थे और सहस्रों मनुष्य सुनने के लिये जाया करते थे। एक दिन राय बहादुर गागरमल साहब रईस अमृतसर के छोटे भाई लाला ईश्वरदासजी भी स्वामीजी के पास गये और बिना सोचे समझे बोलने लगे। स्वामीजी ने उनसे स्पष्ट कहदिया कि आप को शा-

स्त्रों का परिचय नहीं है इसलिये आपको इन विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है इस पर लाला साहब रुष्ट होगये और उन्होंने हठ में आकर एक हिन्दूसभा बनाई। सर्दार दयालसिंहजी साहब मजीठिया से एक दिन वेदों के विषय में स्वामीजी की बातचीत होरही थी। आग्रह के आवेग से सर्दार साहब वाद (बहस) के नियमों का पालन न करसके। स्वामीजी ने कई वार संकेत से कहा कि सरलता के साथ बातचीत होनी चाहिये, परन्तु सर्दार साहब किसी कारण से उस समय अपने वेग को नहीं रोक सके। तब स्वामीजी ने कहा कि शास्त्रार्थ की यह रीति नहीं है, हम समय नियत करते हैं, घड़ी बीच में रख लीजिये। नियत समय तक हम बोलें, उतनी ही देर तक आप, अन्यथा इस वार्तालाप का कुछ फल न होगा। यद्यपि स्वामीजी का यह कथन अनुचित न था, परन्तु न मालूम क्यों सर्दार साहब को बुरा लगा और वह सहसा उठ कर चले गये, फिर वे कभी स्वामीजी से न मिले।

पौराणिक पण्डितों की चाल।

पौराणिक पण्डितों ने अन्त में एक नई चाल चली, जब सुना कि शीघ्र ही स्वामीजी यहां से जाने वाले हैं तो लोगों में प्रसिद्ध किया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे। इसपर आर्यसमाज ने विज्ञापन दिया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिये सर्वदा और सर्वथा उद्यत हैं, आइये, परन्तु किसी ने उत्तर तक नहीं दिया, बहुत कहने सुनने पर यह निश्चय हुवा कि सर्दार भगवानसिंह साहिब के मकान में शास्त्रार्थ हो। नियत समय पर पांच छः हज़ार मनुष्य शास्त्रार्थ को सुनने के लिये एकत्रित हुये जिनमें सत्तर के लगभग नामी रईस और प्रतिष्ठित पुरुष थे। दो चौकियां आमने सामने बिछाई गईं इसलिये कि शास्त्रार्थ में गड़बड़ न हो और बीच में कोई बोलने न पावे, यह सब कुछ हुवा पर पौराणिक पण्डित एक भी न आया। इतने में ही लाला मोहनलाल साहब वकील खड़े हुये और कहा कि पण्डित लोग बाहर खड़े हैं भीतर आने की आज्ञा चाहते हैं। बड़ी प्रसन्नता के साथ उनसे कहा गया कि वे आवें उन्हें रोका किसने है ? इसके पश्चात् बहुत से उजड्ड ब्राह्मण जय जय के शब्द करते हुये भीतर घुस आये और पांच छै ब्राह्मण स्वामीजी के सामने अकड़कर बैठ गये उधर उनके चेलों ने ईंट पत्थर फेंकने प्रारम्भ किये, जब यह दशा देखी तो वे लोग पुलिस के भय से अचानक उठ खड़े हुये और चलते समय यह कहगये कि हम अपने सिद्धान्त पीछे से लिखके भेजदेंगे, परन्तु किसने भेजना था और क्या भेजना था ? यह भी एक स्वांग था। एक दिन शुभचिन्तकता से किसीने स्वामीजी को सूचना दी कि आज रातको कुछ निहंग (एक प्रकार के सिक्ख साधु) आप को मारने के लिये आवेंगे, स्वामीजी ने इस बात की कुछ परवाह नकी, किन्तु

जितने मनुष्य रात को उनके आश्रम में सोया करते थे उनको कहदिया कि आज कोई यहां न रहे। जिस ईश्वर की आज्ञा का हम पालन करते हैं वही हमारा रक्षक है। स्वामीजी के पधारने से पूर्व अमृतसर के पौराणिक पण्डित सर्वसाधारण के सन्मुख वेदमंत्र नहीं पढ़ा करते थे, परन्तु स्वामीजी के प्रताप से सर्वसाधारण को बुला बुलाकर वेदमंत्र सुनाने लगे।

४० हिन्दू विद्यार्थियों का ईसाई होते२ बचना।

जिस समय पहिली बार स्वामीजी अमृतसर पधारे थे, उस समय लगभग ४० हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्मसे विमुख थे और ईसवीधर्म की ओर आकर्षित थे और अपने आप को विना बपतिस्मे के ईसाई कहते थे। उन्होंने अपनी अलग एक सभा बनाली थी और ईसाई होने को ही थे, परन्तु स्वामीजी के उपदेशों का उनपर ऐसा प्रभाव हुआ कि ईसाईधर्म से उनकी रुचि बिलकुल हट गई। एक दिन एक पादरी साहब ने स्वामीजी से कहा कि आप हमारे साथ मेज़ पर बैठकर खाना खावें, स्वामीजी ने कहा कि इससे लाभ क्या होगा? उन्होंने कहा कि इससे परस्पर प्रेम बढ़ेगा। स्वामीजी ने कहा कि यदि यही बात है तो ईसाइयों में अवान्तर भेद क्यों है और क्यों वे एक दूसरे के शत्रु है? इसपर पादरीसाहब निरुत्तर होकर चुप होगये। पादरियों ने घबराकर कलकत्ते से एक बंगाली ईसाई को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलाया था पहिले उन्हों ने स्वीकार करलिया था कि आवेंगे पर पीछे से लिख दिया कि मेरी लड़की अस्वस्थ है इसलिये मैं नहीं आसकता।

गुरदासपुर में वैदिक धर्म प्रचार।

अमृतसर से चलकर १८ अगस्त सन् १८७७ ई० को स्वामीजी गुरुदासपुर में पहुंचे नगर के प्रायः प्रतिष्ठित रईस और ज़िले के देशीय आफ़िसर और कर्मचारी स्वागत के लिये शहर से बाहर आये हुये थे, डाक्टर बिहारिलाल साहब ने स्वामीजी के आतिथ्य का भार अपने ऊपर लिया था। स्वामीजी ने पहुंचतेही धर्मोपदेश प्रारम्भ करदिया, मूर्तिपूजा का धड़ल्ले से खण्डन किया। यह बात अनेक महाशयों को बुरी लगी, निदान उन्हों ने साधु गणेशगिरिजी को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बहुत कुछ उकसाया, परन्तु उन्हों ने स्पष्ट कह दिया कि हम इस काम के योग्य नहीं हैं। लोगों के वार२ कहने पर एक दिन उन्हों ने कहदिया कि यदि तुम लोग अधिक आग्रह करोगे तो हम यहां से कहीं अन्यत्र चले जावेंगे। निदान मूर्तिपूजा के सहायकों ने पं० लक्ष्मीधर और पं० दौलतरामजी को दीनानगर से बुलवाया, परन्तु यह दोनों महाशय स्वामीजी की वक्तृता को सुन कर अवाक् होगये। बहुत कुछ कहने सुनने पर भी उनका साहस न हुआ कि थोड़ी

देर भी स्वामीजी से सम्भाषण करें, अपशब्द मुंह से निकालते हुये सभा से उठ खड़े हुये। स्वामीजी के लगातार वैदिकधर्म के प्रचार से २४ अगस्त सन् १८७७ ई० को गुरुदासपुर में आर्यसमाज स्थापित होगया और कई योग्य और भद्र पुरुष उस के अधिकारी चुने गये।

जलन्धर में वैदिक धर्म का प्रचार।

पहिली वार एप्रिल सन् १८७७ ई० में स्वामीजी लुधियाने से लाहोर जाते हुये सिर्फ़ एक रात कुंवर सुचेतसिंह साहब की कोठी में ठहरे थे। परन्तु तब कोई व्याख्यान नहीं दिया था दूसरी वार १३ सितम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी अमृतसर से जलन्धर पधारे और कुंवर साहब की कोठी में ठहरे। पहिले दिन उन्होंने कुंवर साहब की हवेली में व्याख्यान दिया, परन्तु भीड़ अधिक होजाने से स्थान का संकोच रहा। इसलिये दूसरे दिन उनका व्याख्यान कुंवर विक्रमानसिंह के मकान में हुवा, यहां स्वामीजी ने लगातार ४० के लगभग व्याख्यान दिये जिससे सारे नगर और प्रान्त में धूम मचगई। दूर २ से लोग उनके उपदेश सुनने को आने लगे, यहांपर स्वामीजी ने मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध का खूब ही खण्डन किया। एक दिन स्वामीजी के पास बहुत से सज्जन बैठे हुये थे स्वामीजी ने कहा कि मृतकश्राद्ध किसी तरह ठीक नहीं है। पौराणिक लोग कहते हैं कि हम पितरों का श्राद्ध करते हैं, यदि किसी संस्कृत के विद्वान् से पूंछा जावे तो उसे कहना पड़ेगा कि व्याकरण की रीति से पितृ शब्द का प्रयोग जीवित पुरुषों में ही होसकता है मृतकों में नहीं। एक महाशय ने पं० शिवरामजी की ओर संकेत करके कहा कि यहां यह भी एक प्रसिद्ध पण्डित हैं। स्वामीजी ने उन से पूछा कि आप सत्य२ कहें कि जो कुछ हम कहते हैं वह ठीक है या नहीं? पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया कि जो कुछ आप कहते हैं वास्तव में वह ठीक है। यहांके प्रसिद्ध पण्डित रामदत्तजी आनरेरी मजिस्ट्रेट से मृतकपूजा के विषय में स्वामीजी की साधारण बात चीत हुई थी परन्तु नियमपूर्वक शास्त्रार्थ नहीं हुआ। पं० रामदत्तजी मृतकपूजा के पोषक थे और इसे धर्म बतलाते थे, परन्तु वे इस अवसर पर वेदों से अपने पक्ष की पुष्टि नहीं करसके। कुंवर विक्रमानसिंह साहब के सन्मुख स्वामीजी का मौलवी अहमदहुसन साहब उर्फ़ वलीमुहम्मद से शास्त्रार्थ हुवा था, जिसे मिर्ज़ा मुवहद साहब ने उन्हीं दिनों में निष्पक्ष होकर मुद्रित करादिया था।

छावनी फीरोज़पुर में वैदिक धर्म का प्रचार

जिन दिनों स्वामीजी पंजाब में पधारे थे, उन दिनों छावनी फीरोज़पुर में एक सभा थी जिसका नाम हिन्दू सभा था। इस सभा में एक बड़े प्रतिष्ठित पुरुष ने (जो लाहोर में स्वामीजी के उपदेश सुन

आये थे) कहा कि लाहोर में आज कल एक महात्मा आये हुये हैं जो संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं और वेदादि शास्त्रों से अपने धर्म के महत्व को सर्वोपरि सिद्ध करते हैं। इस पर सब की यह राय हुई कि उन को यहां बुलाया जावे। निदान २६ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी फीरोजपुर पधारे और लाला विहारीलाल जी की कोठी में (जो तोपखाने के समीप थी) ठहरे। यहां पर भी स्वामीजी ने जब तक रहे वैदिक धर्म का खूब प्रचार किया। यहां के समस्त पौराणिक पण्डितों की ओर से कुछ प्रश्न बन कर आये थे, जिन का नम्बरवार उत्तर स्वामीजी ने सभा में ही देदिया था। इस के पश्चात् फिर किसी ने कोई शंका नहीं की। यहां के बड़े मन्दिर के पुजारी पं० रघुनाथजी भी स्वामीजी से मिलने गये थे। स्वामीजी ने प्रथम उनसे नाम पूंछा फिर पूंछा कि आप क्या करते हैं? उन्हों ने कहा कि "पुजारी हूं" स्वामीजी ने कहा कि "पुजारी" शब्द के क्या अर्थ हैं? इस पर वे चुप होगये, तब स्वामीजी ने उन से कहा कि "पुजारी" दो शब्दों से मिलकर बना है, पूजा और अरि अर्थात् पूजा के शत्रु। पं० रघुनाथ सहाय अर्थ सुन कर चले गये।

एक दिन नियमानुसार व्याख्यान देने के पश्चात् सभा में स्वामीजी ने आज्ञा देदी कि यदि किसी को कुछ शंका करनी हो तो करे वा यदि कोई महाशय कुछ पूछना चाहते हों तो पूंछ सकते हैं? जब कोई न उठा तो महनतीराम दफ्तरी ने खड़े होकर एक हिन्दी का दोहा पढ़ना आरम्भ किया जिस का पाहिला पद इस तरह पर था—"ज्ञान कर ज्ञान को खण्डर कर खेल चौगान मैदान में" यह आगे कुछ पढ़ने को ही था कि स्वामीजी ने रोक दिया और कहा कि पहिले इसके अर्थ करलो फिर आगे चलो। दफ्तरी इस के अर्थ करने में झिजका, तब स्वामीजी ने कहा कि, यदि तुम को इस के अर्थ करने में संकोच है तो हम करते हैं ध्यान देकर सुनो:— "पहले कुछ लिख पढ़ फिर लिखा पढ़ा सब भूल जा और मैदान में गिल्ली डण्डा खेला कर" यह अर्थ सुन कर महनतीराम बहुत लाल पीला हुवा और यह कहने लगा कि आप पढ़े लिखे चाहे कितने ही हों परन्तु आप सन्तों के रहस्य को क्या समझें? फिर दफ्तरी साहब ने स्वामीजी से पूंछा कि आपका गुरु कौन है? स्वामीजी ने कहा कि हमारा गुरु वेद है। यह सुन कर दफ्तरी साहब बैठ गये और फिर कुछ न बोले।

रावलपिण्डी में वैदिकधर्मप्रचार।

रायबहादुर सरदार सुजानसिंह साहब रईस रावलपिण्डीने लाहोर में स्वामीजी के व्याख्यान सुने थे, उन्होंने रावलपिण्डी जाकर कुछ लोगों से (जिन्हें संस्कृत में कुछ नाम मात्र बोध था) कहा कि स्वामीजी मू-

र्तिपूजा का खण्डन करते हैं और वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से इसे निषिद्धकर्म ठहराते हैं। यह सुनकर वे लोग कहने लगे कि ऐसा कभी हो सकता है? मूर्तिपूजा तो सनातन से चली आती है फिर कौन इसे रोक सकता है? सरदार साहब ने उनसे कहा कि यदि आप में कुछ योग्यता है तो आप अपने प्रमाण या हेतु लिखकर हम को देदो हम स्वामीजी के पास भेजदेंगे। निदान उन लोगोंने दो चार पुराणों के श्लोक लिखकर सरदार साहब को देदिये, सर्दार साहब ने डाक द्वारा स्वामीजी के पास लाहोर भेजदिये। स्वामीजी उनको देखकर हंसे और उत्तर में सरदार साहब को लिखदिया कि इनके उत्तर हम स्वयं रावलपिण्डी आकर देंगे। निदान ७ नवेम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी रावलपिण्डी पहुंचे और सेठ जामनजी की कोठी में ठहरे। यहां पहुंचतेही स्वामीजी ने अपने व्याख्यान क्रमशः प्रारंभ करदिये, लगभग दो महीने के रावलपिण्डी में रहे, परन्तु प्रतिदिन अनवरत वैदिकधर्म के प्रचार में तत्पर रहे। एक दिन कुछ ईसाई स्वामीजी से कहने लगे कि आपने इंजील के प्रमाण से जो कुछ हज़रत लूत के विषय में कहा है वह मिथ्या है, स्वामीजी ने कहा, मालूम होता है कि आपने इञ्जील नहीं पढ़ी, जब वे हठ किये गये तो स्वामीजी ने असल आयत निकाल कर उनके आगे रखदी। इसे पढ़कर वे जनसमुदाय में अत्यन्त लज्जित हुये और फिर कभी उन्होंने ऐसा साहस न किया। पौराणिक पण्डित स्वामीजी के विषय में यह प्रसिद्ध करने लगे कि यह लोगों को ईसाई करने के लिये आये हैं। जब कुछ न चली तो उन्होंने पारसी सेठ साहब को जिनकी कोठी में यह ठहरे हुये थे, उकसाया कि आप स्वामीजी से अपनी कोठी खाली करालीजिये। स्वामीजी को पहिले ही से इस बात की सूचना होगई थी, इसलिये वे स्वयं उस मकान को छोड़कर सरदार सुजानसिंह के बाग़ में जाठहरे। कनखल की गद्दी के महन्त साधु सुपन्तगिरि संयोग से उनदिनों रावलपिण्डी में आये हुये थे, लोगों ने उनसे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु उन्होंने टाल दिया और कहदिया कि स्वामीजी वेदवक्ता हैं वे जो कुछ कहते हैं उसे हम नहीं कहसकते। यहां महाराजा साहब कश्मीर का निमन्त्रण पत्र स्वामीजी के नाम आया था, जिस में उन्होंने बड़े विनय के साथ स्वामीजी को अपनी रियासत में बुलाया था। परन्तु स्वामीजी ने यह कह कर अस्वीकार करदिया कि महाराजा साहब मूर्तिपूजक हैं और सैकड़ों मन्दिर शिवालय आदि इसी प्रयोजन के लिये उन्होंने बनवाये हुये हैं। हम डंके की चोट मूर्तिपूजा का खण्डन करेंगे सम्भव है कि किसी से लड़ाई दंगा हो, इससे उचित यही है कि संप्रति हमें जो और बहुत से आवश्यक काम

करते हैं उन्हें पूरा करें अभी कश्मीर में जाना ठीक नहीं है । स्वामीजी ने एक दिन यह भी कहा था कि एक राजा साहब मारवाड़ में लगभग पन्द्रह सेर रुद्राक्ष के दाने अपने शरीर पर लादे रहते थे और वे उन्हें गौरीशंकर बतलाते थे। हमने उन्हें उपदेश किया कि ये एक वृक्ष के फल हैं इनको धारण करने से क्या लाभ ? उस समय तो उन्होंने न माना परन्तु सचाई अपना प्रभाव दिखाती है, दूसरीवार जो वह हम से मिलने आये तो सिर्फ एक दाना रुद्राक्ष का उनके शरीर पर था हमने उनको साधुवाद कहा कि आपने बहुत कुछ उन्नति की है । राजा साहब ने कहा कि यह सब आपके उपदेश का फल है। इस दृष्टान्त से तात्पर्य यह था कि महाराजा साहब कश्मीर पर भी वैदिकधर्म का प्रभाव पड़ सकता है परन्तु इसके लिये समय चाहिये। एक पौराणिक पण्डित ने शास्त्रार्थ के लिये स्वामीजी को चिट्ठी लिखी उस में इतनी अशुद्धियां थीं कि प्रति पंक्ति में दो तीन शब्दों पर हरताल लगी हुई थी। स्वामीजी ने उनके सिवाय और भी अशुद्धियां निकाल कर कह दिया कि जिस बिचारे को अभीतक एक साधारण चिट्ठी लिखनी नहीं आती वह शास्त्रार्थ तो क्या करेगा। उसके मन में जो कुछ सन्देह हों वह प्रसन्नता से आकर निवारण करले पर पण्डित जी में इतनी शक्ति कहां थी कि सन्मुख आते । निदान स्वामीजी की उपस्थिति में ही रावलपिण्डी में आर्यसमाज स्थापित हो गया ।

झेलम में वैदिकधर्म का प्रचार।

रावलपिण्डी से गुजरात के लिये जाते हुये स्वामीजी झेलम के रेलवे स्टेशन पर उतरे और वहां थोड़ी देर के लिये भ्रमण करते हुये मैदान की तरफ निकल गये। यहां के रिसाले के मास्टर लक्ष्मीप्रसादजी ने लखनऊ में स्वामीजी को देखा था, किसी ने उनको स्वामीजी के आगमन की सूचना देदी। उन्होंने तुरन्त स्वामीजी के पास आकर उनसे प्रार्थना की कि आप कुछ दिन यहां ठहर कर उपदेश करें, स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और ३१ दिसम्बर १८७७ ईस्वी से १३ जनवरी सन् १८७८ ई० तक झेलम में रहे। गवर्नमेन्ट स्कूल में इनके व्याख्यान हुवा करते थे। एक दिन एक ईसाई पादरी साहब घर से कुछ प्रश्न लिख कर लाये थे, परन्तु जिस समय वह सभा में स्वामीजी के सन्मुख पढ़ने खड़े हुये उस समय उनका सारा शरीर कांपने लगा और वाणी भी उखड़गई, निदान वह स्वयं सभा से बाहर चले गये और फिर कभी नहीं आये। स्वामीजी के प्रभावशाली उपदेश से झेलम में भी आर्यसमाज स्थापित होगया । कई बुद्धिमान् और सत्यग्राही मुसलमान भी स्वामीजी की प्रशंसा करते थे और वे बड़े उत्साह से स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे जिन दिनों स्वामीजी झेलम में थे, उन्हीं दिनों

झेलम नदी के तट पर एक वृद्ध योगी रहा करते थे, उनकी स्वामीजी से संस्कृत में प्रायः बात चीत हुवा करती थी, जिसमें किसी प्रकार का मतभेद न होता था।

गुजरात में वैदिक-धर्म प्रचार।

झेलम से चलकर १३ जनवरी सन् १८७८ ई० को स्वामीजी गुजरात पहुंचे, यहां डाक्टर विष्णुदास साहिब ने उनके आतिथ्य का भार अपने ऊपर लिया था। स्वामीजी के व्याख्यान गवर्नमेण्ट स्कूल के बोर्डिङ्गहाउस में हुवा करते थे, श्रोताओं की भीड़ लग जाती थी। दो पौराणिक पण्डितों ने (जिनका नाम गोस्वामी विष्णुदास और पं० होशनाकराय था) यह जानते हुये भी कि हम स्वामीजी के सन्मुख कुछ भी नहीं हैं प्रसिद्धि के लोभ से कुछ छेड़छाड़ की अर्थात् कुछ संस्कृत के शब्दों को जोड़ जाड़ कर सभा में यह प्रकट किया कि यह वेद की श्रुतियां हैं। स्वामीजी ने कहा कि चारों वेद रक्खे हुये हैं इनमें से यह निकालो तो कहने लगे कि हम अपने वेद में से दिखा सकते हैं, दूसरे दिन स्वामीजी ने ललकार कर उनसे कहा कि अपने वेद लाओ और उनमें यह वाक्य दिखाओ। परन्तु वहां किसने और क्या दिखाना था? उनका प्रयोजन तो कुछ और ही था जिसको सब जान गये। एक दिन पौराणिक पण्डितों की दुर्दशा देख कर मिस्टर बोकेनन ने स्वामीजी से ऐन सभा में कहा कि आप इन विचारे अंधों के टेकने की लाठी छीनते हैं इसके बदले में आप इन्हें देते क्या हैं? स्वामीजी ने इस का उत्तर दिया कि मैं इन्हें उस के बदले में वेद देता हूं और योगाभ्यास। एक दिन सभा में स्वामीजी ने गायत्री मंत्र के अर्थ करके सुनाये जिन को सुनकर मौलवी मुहम्मदअली साहब कहने लगे कि महाराज! यदि गायत्री के यही अर्थ हैं तो हम भी इसका जप किया करेंगे। एक दिन कुछ चालाक लोगों ने आपस में सलाह करके स्वामीजी से यह प्रश्न किया कि "आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी" उनका अभिप्राय यह था कि यदि वे अपने आप को ज्ञानी कहेंगे तो हम उन्हें अभिमानी प्रकट करेंगे और यदि अज्ञानी कहेंगे तो फिर हम उनसे कहेंगे कि आप को उपदेश करने का अधिकार नहीं होसकता, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं कई बातों में अज्ञानी हूं और कई बातों में ज्ञानी। यथा-वाणिज्य, कृषि, अंग्रेज़ी, फ़ारसी आदि में अज्ञानी हूं तथा संस्कृत, वेद और धर्मशास्त्र की बातों में ज्ञानी हूं यह सुनकर वे लोग चकित होगये। कितने ही धूर्तों ने स्वयं या किसी के बहकाने से स्वामीजी पर यहां ईंटें भी फेंकीं थीं परन्तु उन्हों ने इसकी कुछ परवाह नहीं की, किन्तु लोगों के यह कहने पर कि ऐसे दुष्टों को दण्ड मिलना चाहिये, स्वामीजी यह कहदिया करते थे कि ये मूर्ख हैं इनपर क्रोध नहीं किन्तु दया करनी चाहिये।

वज़ीराबाद में धर्म-प्रचार।

गुजरात से रवाना होकर २ फ़बरी को स्वामीजी वज़ीराबाद पहुंचे और समनबुर्ज में ठहरे। यहां भी व्याख्यान धूमधाम से होने लगे। पौराणिक लोग जब कुछ वश नहीं चलता था तौ झुंभलाकर बीच से ही उठजाते थे और जहांतक होसकता था औरों को भी साथ लेजाने की चेष्टा किया करते थे निदान इन्हों ने एक भिक्षुक वृत्ति पौराणिक ब्राह्मण को जो मूर्ख होने के अतिरिक्त उन्मत्त भी था, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये चुना और साथही यह मत्सर (तमस्खुर) किया कि सभा में विना आज्ञा के एक टूटी सी कुर्सी बिछा कर उस सिड़ी ब्राह्मण को उस पर बैठा दिया और प्रसिद्ध कर दिया कि यह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेगा इसे दो तीन दिन तक बराबर सभा में लाते रहे और कुछ अट्ट सट्ट संस्कृत के वाक्य रटा कर उससे कहलवाया करते थे। परन्तु जब यह धृष्टता (बेहूदगी) बहुत ही बढ़गई तौ स्वामीजी ने उन लोगों को लताड़ दी, इसपर लोगों ने हुल्ला करदिया परन्तु समझदार लोगों ने दरवाज़े बन्द करलिये और उन धूर्तों को घेर कर बाहर निकाल दिया। स्वामीजी के एक क्लर्क को इस अवसर पर कुछ चोट आई थी।

गुजरांवाल में धर्म-प्रचार॥

वज़ीराबाद से विदा होकर ७ फर्वरी सन् १८७८ ई० को स्वामीजी गुजरांवाले पहुंचे और एक उत्तम स्थान पर ठहरे। इनके पधारते ही नगर के तीन चार प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित शहर छोड़कर कहीं बाहर चले गये, इसलिये कि कहीं लोग स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये तंग न करें। यहां के पादरियों ने स्वामीजी से कुछ छेड़छाड़ आरम्भ की थी, परन्तु जब देखा कि इन के सामने हमारी दाल न गलेगी तौ यह चाल चली कि एक दिन अपने गिर्जे में शास्त्रार्थ के लिये समय नियत किया और चार पांच घंटे पाहिले वहां आकर बैठ गये और कुछ अपने स्कूल के लड़कों को बैठा लिया और स्वामीजी को बुलाने के लिये अपना आदमी भेज दिया कि हम शास्त्रार्थ के लिये तैयार हैं, आप आईये। स्वामीजी उस समय वेदों का भाष्य कर रहे थे, जब उन्हों ने ईसाईयों का सन्देश (पैग़ाम) सुना तौ बड़े आश्चर्य में होकर कहा कि कल सर्वसाधारण के सन्मुख,चार बजे का समय नियत होचुका है, तथा यह भी स्थिर होचुका है कि स्थान कोई विशाल होगा अब यह नियम विरुद्ध काररवाई क्यों की गई? निदान उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि हम नियम के विरुद्ध काम नहीं कर सकते। जब नगर के लोगों को इस बात की सूचना हुई तौ उन्हों ने ईसाइयों पर आक्षेप किया और नियत समय पर एक उत्तम जगह पर स्वामीजी का व्याख्यान कराया और उनको सूचना देदी कि यदि शास्त्रार्थ

करना हो तो इस समय कर सकते हैं। परन्तु ईसाइयों की तो यह दशा हुई कि अबतक स्वामीजी गुजरांवाले में रहे एक दिन भी सामने न आये।

मुलतान में धर्म प्रचार।

स्वामीजी गुजरांवाले से रवाना होकर लाहौर ठहरते हुए १२ मार्च सन् १८७८ ई० को मुलतान पहुंचे। इन दिनों शहर में होलियों की हू हा मची हुई थी, इसलिये संध्या को सैकड़ों मनुष्य स्वामीजी के उपदेश सुनने जाया करते थे। यहां पर गोकुलिये गोसाइयों का बहुत ज़ोर था, अतएव आवश्यक समझ कर स्वामीजी ने वैष्णव मत के सिद्धान्त और गुसाइयों के रहस्य की खूब पोल खोली। इस पर शहर और उसके आस पास में बड़ी हलचल मची। गुसाईं लोग स्वामीजी के रक्त के प्यासे होगये और उनसे लड़ने को उद्यत होगये। एक दिन अपने बहुत से चेलों को साथ लेकर शंख और घड़ियाल बजाते हुए और जय जय कार मचाते हुए सभा में आगये, स्वामीजी उस समय व्याख्यान देरहे थे। उन्होंने इन लोगों की धूर्त्तता पर कुछ भी ध्यान न दिया और बुद्धिमान् पुरुष गोसाइयों की रंगत देखकर तत्काल ही प्रबन्ध के लिये उद्यत होगये। परन्तु इन डरपोक गुसाइयों में इतना साहस कहां था कि कुछ कहसकें या कर सकें। अपना सा मुंह लेकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये। छावनी मुलतान के कई प्रतिष्ठित पारसियों ने स्वामीजी को विशेष रीति पर आमंत्रित करके उनका व्याख्यान सुनाथा और बड़े आदर और सत्कार से उनका सन्मान किया था। प्रत्येक मत और सम्प्रदाय के लोग उनके व्याख्यानों में आया करते थे और अपने सन्देह निवारण किया करते थे। राय सागरमल साहब एकज़ीक्युटिव इञ्जीनियर भी उन दिनों मुलतान ही में थे, वह लोगों से प्रायः कहा करते थे कि मैं चौदह सौ पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुआ हूं। स्वामीजी से तीन दिन तक बराबर उनकी बात चीत रही जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने शुद्ध मन से नास्तिकता छोड़ देने की प्रतिज्ञा की। यहां एक दिन स्वामीजी ने व्याख्यान देते हुए कहा कि जो लोग अपनी लड़कियां बेचते हैं अर्थात् रुपया लेकर उन्हें व्याहते हैं, उनमें और कञ्चनों में कुछ भेद नहीं है। यह लोग एक से ही अधिक रुपया लेकर अपनी लड़की उसको देदेते हैं और कञ्चन अनेक मनुष्यों से रुपया व सामान लेकर उनको देते हैं, कमाई अपनी२ लड़कियों की दोनों बुरी तरह से खाते हैं। एक कश्मीरी पण्डित की मांस भक्षण के विषय में यहां स्वामीजी से बातचीत हुई थी, स्वामीजी ने कहा कि मांस खाना सब तरह पाप है शरीर और आत्मा दोनों के लिये हानिप्रद है, विशेष कर आत्मा के लिये। यदि कुछ सन्देह हो तो परीक्षा कर लीजिये। निदान स्वामीजी ने उन्हें योग की एक रीति बतलाई और मांस

खाने का निषेध करादिया। पण्डित साहब ने क्रिया प्रारम्भ की थोड़े ही दिनों में आत्मा में एक प्रकार का प्रकाश मालूम होने लगा, अभी क्रिया पूरी नहीं हुई थी कि एक दिन उनके लड़के ने खाने में मांस का अंश देदिया, उसे खाते ही हृदय में अन्धकार छागया और वह आत्मिक आनन्द क्षण भर में जाता रहा।

एक दिन पं० कृष्णनारायणजी ने स्वामीजी से पूछा कि आज कल प्रोफेसर मेक्समूलर साहब वेदों के ज्ञाता और भाष्यकार कहलाये जाते हैं, आपकी इस विषय में क्या सम्मति है? स्वामीजी ने कहा कि वेद विद्या में मैक्समूलर अभी विद्यार्थी हैं, जब तक वह सायण और महीधर के पाद चिन्ह पर अपना पद रखना नहीं छोड़ेंगे सम्भव नहीं कि वह वेदों के वास्तविक अर्थ को समझ भी सकें। एक महाशय के पूछने पर यहां स्वामीजी ने यह भी कहा था कि एक थाली में खाना खाने या एक कटोरे में पानी पीने या एक निगाली से हुक्का पीने का शास्त्र में निषेध है। पं० यशवन्तराय साहब सिविल सर्जन ने स्वामीजी की पुष्टि की थी और इस निषेध के लाभ सब को बतलाये थे।

रुड़की में धर्म प्रचार।

कई प्रतिष्ठित महाशयों की विशेष अभ्यर्थना पर २५ जुलाई सन् १८७८ ई० को स्वामीजी रुड़की में पहुंचे और अपना काम आरम्भ करदिया। समझदार लोग और रुड़की कालिज के विद्यार्थी बड़े उत्साह से स्वामीजी के व्याख्यानों में शरीक हुआ करते थे। विचारशील मुसलमान भी स्वामीजी की प्रशंसा करते थे, परन्तु आम मुसलमानों ने यह समझा कि हिन्दू जो पहिले हम से किसी दशा में शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) की शक्ति नहीं रखते थे, उन्होंने स्वामीजी को हमारे प्रतिपक्ष (मुक़ाबिले) में बुलाया है इसलिये वे बहुत भड़के यहां तक कि लड़ने पर उद्यत होगये। दो चार बार सभा में भी विघ्न डालने की चेष्टा की, परन्तु स्वामीजी ने इनकी कुछ परवाह न की और वे स्वतंत्रता के साथ बराबर मत मतान्तरों का खण्डन करते रहे। व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी सब को सूचित करदिया करते थे कि यदि किसी को कुछ पूछना या आक्षेप करना या शास्त्रार्थ करनाहो तो वह इस समय कर सकता है। स्वामीजी यहां अपने व्याख्यानों में प्रायः यह कहा करते थे कि वास्तव में बड़े शोक का स्थान है कि अन्य देश के रहने वाले हमारे धर्म की खोज में लगे हुए हैं और हम आर्यसन्तान कहला कर ऐसे सोये हैं कि कुछ ख़बर नहीं, लकीर के फ़कीर बने हुए हैं। रुड़की निवासियों ने एक पौराणिक पण्डित को जो नार्मल स्कूल में अध्यापक थे बहुत कुछ कहा कि आप स्वामीजी से शास्त्रार्थ करें और कम से कम मूर्तिपूजा को तो वेदों से सिद्ध करें परन्तु पण्डित

जी यह उत्तर देकर चुप होगये कि मूर्तिपूजा वेदों में नहीं है, इसके सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है। स्वामीजी ने रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज के छात्रों का उत्साह और रुचि देखकर एक दिन पश्चिमीय फिलास्फरों के कल्पित सिद्धान्तों की समालोचना की। डार्विन थ्यूरी का विशेषतः खण्डन किया, स्वामीजी का कथन ऐसा युक्ति युक्त और सारगर्भित था कि अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोग चकित थे और कहते थे कि ऐसे प्रबल हेतु और अकाट्य युक्ति पहिले हम ने कभी नहीं सुनीं। एक दिन स्वामीजी ने रुड़की कालिज के विद्यार्थियों को कहा कि तुम यह समझते होगे कि सायंस और फ़िलासफ़ी केवल पश्चिमीय शिक्षा पर निर्भर है, संस्कृत में क्या रक्खा है। इस समय मैं तुमको बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा देता हूं कि तुम किसी सायंस के सिद्धान्त के विषय में मुझ से पूछो और मैं प्रामाणिक संस्कृत पुस्तकों के प्रमाण से तुम्हारा अभी सन्तोष (इतमीनान) कर दूंगा। यह कभी न होगा कि खींचतान कर अपना प्रयोजन सिद्ध करूं किन्तु उनके शाब्दिक अर्थ किये जावेंगे। तुम लोगों की यह बड़ी भारी भूल है कि इस देश के विद्वानों और फ़िलास्फरों को जङ्गली समझते हो। उन्होंने प्रत्येक प्रकार की विद्याओं और क्रियाओं के सीखने में अपनी उमरें व्यतीत करदीं थीं और आत्मिक एवं प्राकृतिक उन्नति में भी सर्वोच्च पदवी को प्राप्त किया था। यह सुनकर कुछ विद्यार्थियों ने सूर्य और पृथिवी के भ्रमण और आकर्षण, तत्वों की व्यवस्था, पवन, मेघ, रसायन, नक्षत्र, वनस्पति आदि विद्याओं के विषय में प्रश्न किये। स्वामीजी ने प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में संस्कृत के श्लोक पढ़े और सरल शब्दों में उनका अनुवाद करके उनकी सन्तुष्टि करदी कि ये बातें इस देश के बुद्धिमानों से छिपी हुई नहीं थीं। संस्कृत विद्या का प्रचार न रहने से यह सब बातें हमें नई सी मालूम पड़ती हैं, ज्यों २ संस्कृत और वेद विद्या की उन्नति होती जावेगी त्यों २ लोगों की आंखें खुलती जावेंगी और वे संस्कृत के प्राचीन रत्नों को देख कर चकित होजावेंगे। एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये करनैल मानसल साहब कमान अफ़सर रुड़की और कप्तान स्टूवार्ट साहब क्वार्टर मास्टर पधारे, उस समय स्वामीजी इञ्जील की समालोचना कररहे थे। करनैल साहब कप्तान साहब से अनुवाद करा कर प्रत्येक आक्षेप को ध्यान देकर सुनते रहे, तदनन्तर उन्होंने स्वामीजी से बातचीत शुरू की, देरतक संवाद होता रहा बीच २ में करनैल साहब भड़क भी उठते थे, परन्तु स्वामीजी बड़ी शान्ति और प्रेम के साथ करनैल साहब के प्रत्येक आक्षेप का समाधान करते रहे। निदान करनैल साहब बिलकुल निरुत्तर होकर चले गये और यह कह गये कि हम कल को इन सब बातों

का उत्तर देंगे। परन्तु दूसरे दिन सिर्फ़ कप्तान साहब ही आये करनैल साहब नहीं पधारे। मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब से भी शास्त्रार्थ के लिये पत्र व्यवहार हुआ था, परन्तु फल कुछ न हुआ। एक पौराणिक पण्डित ने संस्कृत व्याकरण में एक पुस्तक लिखी थी, जो काशी में भी हो आई थी और सब जगह से प्रशंसा मिलने पर उन्हें यह अभिमान हो गया था कि यह पुस्तक व्याकरण में अद्वितीय बनी है। जब स्वामीजी को उन्होंने दिखलाई तो उन्होंने सैकड़ों अशुद्धियें निकाल दीं और कहा कि पहिले आर्ष ग्रन्थों (अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि) को पढ़िये फिर पुस्तक बनाने का साहस कीजिये। इन दिनों यहां एक साधु (जो सतुवा साधु के नाम से प्रसिद्ध थे) आये हुये थे, लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि सतुआ साधु स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु वारवार कहने पर भी वह एक दिन नहीं आये। यहां के एक पौराणिक पण्डित जो प्रकट में स्वामीजी से विरोध रखते थे और कहा करते थे कि मूर्तिपूजा की वेदों में आज्ञा है अन्त समय में जब चोला छोड़ने को थे अपने चिकित्सक वैद्य से कहने लगे कि यदि मेरे पिता विद्यमान होते तो मैं निस्सन्देह स्वामी जी का अनुयायी हो जाता और आर्यधर्म को स्वीकार करलेता। २० अगस्त सन् १८७८ ईस्वी को रुड़की में स्वामीजी के सन्मुख ही आर्यसमाज स्थापित हो गया।

अलीगढ में धर्म प्रचार।

२१ अगस्त सन् ७८ ई० को रुड़की से रवाना होकर २२ अगस्त को स्वामीजी अलीगढ़ पहुंचे और लगातार उपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। शहर के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित एवं व्यापारी लोग बड़े उत्साह से स्वामी जी के व्याख्यान सुनने आया करते थे और प्रत्येक मत व सम्प्रदाय के जन स्वामी जी से अपने सन्देह निवारण किया करते थे। एक दिन स्वामीजी का बड़े धड़ल्ले का व्याख्यान हुआ था जिस में कई हज़ार मनुष्यों की भीड़ भाड़ थी। इस सभा के चेयरमैन मौलवी फ़रीदउद्दीन साहब सब जज अलीगढ़ थे उन्हीं दिनों यहां बम्बई के मिस्टर मूलसी ठाकरसी हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और पण्डित श्यामजीकृष्णवर्म्मा स्वामीजी से मिलने आये थे। २३ अगस्त सन् १८७८ ई० को आनरेबुल सर सय्यद अहमदखां साहब ने स्वामीजी को बम्बई के अभ्यागतों के सहित निमंत्रित किया परन्तु स्वामीजी अस्वस्थता के कारण नहीं जासके।

मेरठ में धर्म प्रचार।

अलीगढ़ से प्रस्थित होकर २६ अगस्त सन् १८७८ ई० को स्वामीजी मेरठ में पधारे और बस्ती से बाहर एक कोठी में ठहरे। इनके आते ही शहर, छावनी और आस पास सर्वत्र चर्चा फैल गया कि स्वामीजी आपहुंचे, अब बनावटी बातों की पोल खुलेगी। स्वामीजी ने आते ही वैदिक धर्म का प्रचार

प्रारम्भ कर दिया और विज्ञापनों के द्वारा लोगों को सूचित कर दिया कि प्रत्येक को शास्त्रार्थ, शंका समाधान और धार्मिक प्रश्न करने की आज्ञा है। धर्म सभा मेरठ की ओर से कुछ प्रश्न बन कर स्वामीजी के पास आये थे, स्वामीजी ने उनके यौक्तिक उत्तर सप्रमाण अपने व्याख्यान में देदिये। प्रश्न वही थे जो सब पौराणिकों की ओर से प्रायः अवसरों पर हुआ करते हैं। यथा मूर्तिपूजा सनातन से चलीआती है इस में आप को सन्देह क्योंकर होगया है ? गंगादि तीर्थ मानने के योग्य हैं आप को इस में क्या सन्देह है ? आदि २। इसी प्रकार एक मुसलमान मौलवी साहब ने भी जिनका उर्दू का इमला तक ठीक न था, स्वामीजी को एक चिट्ठी लिखी थी जिस में शास्त्रार्थ के अद्भुत नियम लिखे थे, बड़ाभारी आग्रह इस बात पर किया था कि शास्त्रार्थ मौखिक हो, उस का एक शब्द भी न लिखा जावे। इस से उन का मुख्य अभिप्राय यह था कि मौखिक बातों में बहुत कुछ बचाव और झूठ बोलने का अवकाश रहता है जोकि लेखबद्ध में नहीं रहता। स्वामीजी ने मौलवी साहब की योग्यता देख कर उनको उचित उत्तर भिजवा दिया था, जिस पर मौलवी साहब को फिर कुछ लिखने का साहस न हुवा। इसी तरह कुछ पौराणिक पण्डितों ने आपस में सलाह कर के कई प्रतिष्ठित पुरुषों की ओरसे स्वामिजीको एक चिट्ठी भिजवाई थी, जिस में शास्त्रार्थ की अभिलाषा प्रकट की गई थी, परन्तु आश्चर्य यह था कि किसी के हस्ताक्षर इस चिट्ठी में नहीं थे। पंडितों का मुख्य अभिप्राय इस चिट्ठी को भिजवाने से अपनी ख्याति और लोगों को धोखा देना था। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान के पश्चात् प्रकाश्य रीति पर यह कह दिया कि जब तक चिट्ठी पर लाला किशनसहायजी रईस मेरठ अपने हस्ताक्षर न करेंगे मैं इस पर कुछ भी ध्यान न दूंगा। ऐसे काम बिना किसी प्रतिष्ठित पुरुष की मध्यस्थता के नहीं होसकते। यदि लाला साहब को शास्त्रार्थ करा कर सत्यासत्य का निर्णय कराना अभीष्ट है तो उन्हें इस पर अपने हस्ताक्षर कर के भेजना चाहिये और शास्त्रार्थ के प्रबन्ध के भार को अपने ऊपर लेना चाहिये और उन्होंने यहभी प्रकट कर दिया था कि प्रमाण केवल वेदादि सच्छास्त्रों के माने जावेंगे और साथ ही उन के नाम भी एक२ कर के प्रकट कर दिये थे। परन्तु बात को टालने के सिवाय और कुछ कार्यवाई दूसरी ओर से नहीं हुई, निदान स्वामीजी ने सीधे एक चिट्ठी लाला किशनसहायजी के पास भेजी जिस में लिखा था कि जिस पंडित से चाहें आप शास्त्रार्थ कराइये, परन्तु उसका प्रबन्ध शीघ्र होना चाहिये, इस का उत्तर भी बिना हस्ताक्षर लाला साहब के यह आया कि आप वेदों के विरुद्ध उपदेश करते हैं इस लिये

शास्त्रार्थ से कुछ लाभ न होगा । जब इस का उत्तर विस्तारपूर्वक स्वामीजी ने लिखा तो फिर एक हस्ताक्षरी पत्र स्वामीजी के पास आया जिस में साधारण सभ्यता से भी काम नहीं लिया गया । उस का तात्पर्य्य यह था कि हमें पंडितों के द्वारा विदित हुआ है कि आप वेदों के विरुद्ध लोगों को उपदेश करते हैं, आप वेद नहीं जानते, भूले हुये हैं । हमारे पंडित वेदादि शास्त्रों के जानने वाले हैं, जब तक आप अपना वर्णाश्रम हमें ठीक २ विदित न करावें, हम आप के पास नहीं आसकते । ईसाइयों ने यहां पर स्वामीजी से किसी प्रकार का विवाद नहीं किया, इन के उपदेशों में बराबर आते थे, परन्तु शास्त्रार्थ का नाम तक न लेते थे । २९ सितम्बर सन् १८७८ई० को स्वामीजी की उपस्थिति में शहर मेरठ में आर्यसमाज स्थापित हो गया ।

दिल्ली में धर्म प्रचार ।

मेरठ में आर्यसमाज स्थापित करके ९ अक्टूबर सन् १८७८ ई० को स्वामी जी दिल्ली पहुंचे और लाला बालमुकुन्द केसरीचन्द के बाग़ में ठहरे । शाहजी के छत्ते में उन्होंने नम्बर वार व्याख्यान देने शुरू किये, श्रोताओं की बड़ी भीड़ लग जाती थी, उनके उपदेशों का फल यह हुआ कि कुछ दिन पश्चात् उनकी उपस्थिति में ही दिल्ली में आर्यसमाज स्थापित हो गया ।

अजमेर में पधारना ।

दिल्ली से स्वामीजी का विचार सीधे अजमेर जाने का था क्योंकि वहां के कई भद्र पुरुषों ने विशेष प्रार्थना के साथ स्वामीजी को निमंत्रण दिया हुवा था । स्वामीजी जाने के लिये तैयार थे कि किसी कायर और धूर्त पुरुष ने अजमेर से स्वामीजी के नाम एक चिट्ठी भेजदी । जिसका अभिप्राय यह था कि हम आपकी सभा आदि के प्रबन्ध के लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, परन्तु अभीतक पूरा चन्दा नहीं हुवा, इसलिये अभी आप यहां न पधारें, जब यथेष्ट सब प्रबन्ध हो जावेगा तब हम आप को कष्ट देवेंगे । अन्त में अपना नाम "युगल बिहारी शर्म्मा कालिज अजमेर" लिख दिया । इस चिट्ठी के पहुंचने से स्वामीजी को कुछ संकोच होगया । उधर अजमेर में लोग उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे परन्तु यह भेद शीघ्र खुल गया और उसी समय स्वामीजी को तार दिया गया और यह भी प्रकट कर दिया कि यह किसी कायर पौराणिक ब्राह्मण की करतूत है आप इस पर कुछ ध्यान न दें । निदान दिल्ली से चलकर ८ नवम्बर सन् १८७८ ई० को स्वामीजी अजमेर पहुंच गये । कई प्रतिष्ठित पुरुष रेलवे स्टेशन पर स्वामीजी का स्वागत करने के लिये आये हुये थे ।

पुष्कर के मेले में वैदिक धर्म प्रचार

कार्तिक सुदी पौर्णमासी को पुष्कर में बड़ा भारी मेला होता है, स्वामीजी ने इस अवसर पर वहां प्रचार करने की इच्छा प्रकट की

उनकी आज्ञा होते ही सब प्रबन्ध कर दिया गया। स्वामीजी ने वहां पहुंच कर एक विज्ञापन वितरित किया, जिस में लिखा था कि जिसको सत्यासत्य का निर्णय करना हो वह हमारे पास आवे। इसके पश्चात् उनके पास बहुत से साधु, संन्यासी और संस्कृत के विद्वान् पण्डित आते रहे और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे। और लोग भी अपनी २ योग्यता के अनुसार स्वामीजी से प्रश्न किया करते थे और वे सब को बड़े प्रेम और योग्यता के साथ उत्तर दिया करते थे। पुष्कर के समीप एक ग्राम में कुछ वाममार्गी साधु रहते थे और वे कहा करते थे कि हमारे तंत्रों में बड़ी भारी शक्ति है जो चाहें सो करदें। इस गांव के कुछ लड़के अजमेर कालिज में पढ़ते थे, स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर उनके हौसले बढ़गये और उन्होंने अपने गांव में जाकर उन साधुओं से कहा कि यदि आपके तंत्रों में कुछ शक्ति है तो स्वामीजी के सामने उसको दिखाइये या उनसे शास्त्रार्थ करके तंत्र की महिमा को सिद्ध कीजिये। परन्तु उन मूर्ख और दुराचारियों की क्या मजाल थी कि शास्त्रार्थ के लिये स्वामीजी के सन्मुख आते, चुप होगये, उस गांव के रहने वालों पर उनका सारा रहस्य प्रकट होगया। मेले की समाप्ति पर स्वामीजी पुनः अजमेर पधार गये। यहां स्वामीजी ने वैदिक धर्मके महत्त्व पर नम्बर वार कई व्याख्यान दिये और साथ ही मतवादियों के अन्धे विश्वास और झूंठे मन्तव्यों का खण्डन भी किया। इनके व्याख्यानों में अजमेर के लगभग सब शिक्षित और प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित होते थे। प्रायः विचार शील मुसलमान भी इनसे सहानुभूति करने लगे, मौलवी मुहम्मद मुरादअली साहब मालिक राजपूताना गजट पर स्वामीजी का ऐसा प्रभाव हुवा कि उन्हों ने गोरक्षा के विषय में उद्योग कराने का प्रण किया।

नसीराबाद में धर्म प्रचार।

छावनी नसीराबाद से एक प्रतिष्ठित पुरुष के आमंत्रित करने पर स्वामीजी वहां पधारे। कई धूर्त जनों ने प्रबन्ध में कुछ गड़बड़ डालनी चाही थी, परन्तु उनकी कुछ न चली। स्वामीजी ने कई दिन तक यहां प्रचार किया। जिसका यहां के लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव हुवा, पादरी लोग भी बराबर आया करते थे, परन्तु किसी ने छेड़छाड़ नहीं की।

जयपुर में पधारना।

१४ दिसम्बर सन् १८७८ ईस्वी को नसीराबाद से चल कर स्वामीजी जयपुर पहुंचे, यहां वज़ीर फ़तहसिंह ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। महाराजा साहब स्वामीजी से मिलने की अभिलाषा रखते थे, परन्तु कई स्वार्थी लोगों ने झूठी बातें बनाकर उन की इस इच्छा को पूर्ण न होने दिया तौभी महाराजा साहब की ओर से स्वामीजी के आतिथ्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध था।

रिवाड़ी में धर्म प्रचार।

राव युधिष्ठिरसिंह जी रईस के बुलाने पर स्वामीजी रिवाड़ी पहुंचे यहां पर उन्हों ने लगातार ११ व्याख्यान दिये जिन में पौराणिक मत की खूब पोल खोली। ईसाइयों से भी बात चीत हुई थी, परन्तु उनमें इतनी हिम्मत कहां जो शास्त्रार्थ का नाम भी लें? रावसाहब ने दूर २ से अपने सम्बन्धियों और जाति वालों को स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये बुलाया था जिनमें से कई अब तक दृढ़ आर्य हैं।

दिल्ली, मेरठ, हरिद्वार और देहरादून में धर्म प्रचार।

रिवाड़ी से रवाना होकर ९ जनवरी सन् १८७९ ई० को स्वामीजी दिल्ली पहुंचे, इस वार सिर्फ़ दो तीन व्याख्यान देकर मेरठ पधार गये और वहां से बहुत शीघ्र हरिद्वार को चले गये। हरिद्वार के कुम्भ पर लगातार काम करने के बाद कुछ दिन किसी रमणीय स्थान में विश्राम करने के लिये स्वामीजी देहरादून पहुंचे। पं० कृपारामजी ने पहिले से सब आवश्यक प्रबन्ध कर रक्खा था, स्वामीजी जब यहां पहुंचे तो उनका शरीर अस्वस्थ था, तथापि धर्मचर्चा बराबर होती थी। यहां स्वामीजी को मालूम हुवा कि ब्राह्मसमाज के मेम्बरों ने भी हमारे आतिथ्य आदि के लिये आर्यों को चन्दे से सहायता दी है। इस पर उन्हों ने एक दिन एकान्त में पं० कृपारामजी से कहा कि आपको ब्राह्मसमाजियों से चन्दा नहीं लेना चाहिये था। यह आज आपके सहायक हैं, जब हमारा उपदेश सुनेंगे तो झट विरुद्ध होजावेंगे। पण्डितजी ने निवेदन किया कि अस्तु, कुछ हानि नहीं है मैं अकेला ही यथाशक्ति आपकी सेवा करने के लिये उपस्थित हूं रुपये पैसे की कुछ बात नहीं है। एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान में कई अंगरेज़ अफ़सर और पादरीसाहब मौजूद थे स्वामीजी ने कुरान और इञ्जील दोनों की बड़े धड़ल्ले के साथ समालोचना की, पादरीसाहब को स्वामीजी की वक्तृता सुन कर बहुत जोश आया और क्रोध के मारे आपे से बाहर होगये यहांतक कि व्याख्यान के बीच में बोलने लगे। इनकी यह दशा देख कर एक अंग्रेज़ अफ़सर ने इनसे कहा कि आप तनिक धैर्य से काम नहीं लेते, स्वामीजी किस योग्यता के साथ आक्षेप करते हैं और आप क्रोधाविष्ट होते जाते हैं। परन्तु पादरीसाहब किसकी सुनते थे? निदान वह सभा से उठकर चले गये, चलते समय स्वामीजी ने पादरीसाहब से पूंछा कि क्या आप कल भी पधारेंगे? परन्तु पादरीसाहब गुस्से में बड़बड़ाते हुये चले गये। व्याख्यान की समाप्ति पर अंग्रेज़ी अफ़सरों से धर्म के विषय में स्वामीजी देर तक वार्तालाप करते रहे। एक दिन स्वामीजी ने ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों का खण्डन किया, जिससे ब्राह्म लोग स्वामीजी के विरुद्ध होगये। इन्हीं दिनों यह सुना गया

कि जिस बंगले में स्वामीजी ठहरे हुये हैं वह रात को जला दिया जावेगा और मुसलमान लोग आक्रमण करेंगे, परन्तु ये सब बातें गप्प थीं। हां एक दिन बहुत से मुसलमान मिलकर स्वामीजी के पास गये थे परन्तु किसी प्रकार की कोई घटना नहीं हुई। स्वामीजी के चलेजाने पश्चात् २९ जून सन् १८७९ ई० को देहरादून में आर्यसमाज स्थापित होगया।

मुरादाबाद का वृत्तान्त।

देहरादून से रवाना होकर १ मई सन् १८७९ ईस्वी को स्वामीजी सहारनपुर पहुंचे और यहां दो दिन ठहर कर मेरठ पधार गये। २५ मई को मेरठ से विदा होकर अलीगढ़ होते हुये छलेसर पहुंचे। शरीर अस्वस्थ था इसलिये यहां एक महीने तक निवास किया इसके पश्चात् मुरादाबाद को प्रस्थित हुये। पहिली वार सन् १८७६ ई० में स्वामीजी यहां आये थे और राजा जयकृष्णदासजी की हवेली में कई व्याख्यान भी दिये थे। उन दिनों स्वामीजी की यहां धूम मचगई थी पादरियों से भी कई दिन तक छेड़ छाड़ होती रही, विषय संसार की उत्पत्ति था। पादरी लोग संसार को उत्पन्न हुये केवल पांच हज़ार वर्ष बतलाते थे। स्वामीजी ने बड़े २ विद्वानों की साक्षी से इस मन्तव्य का ऐसा खण्डन किया था कि वे निरुत्तर होगये थे। दूसरी वार छलेसर से रवाना होकर३ जुलाई १८७९ ई० को स्वामीजी मुरादाबाद पहुंचे और राजा जयकृष्णदास साहब की कोठी में ठहरे और पूर्ववत् वैदिकधर्मके प्रचार में तत्पर होगये। एक दिन मुरादाबाद के कलक्टर साहब की प्रार्थना पर स्वामीजी ने छावनी की एक कोठी में "राजनीति" पर व्याख्यान दिया शहर के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित लोग भी उपस्थित थे। स्वामीजी ने वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से राजा और प्रजा के अन्योन्याश्रय अधिकार और सम्बन्ध इस रीति पर वर्णन किये कि सब श्रोतागण वाह वाह करने लगे और उन्हें मालूम होगया कि राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी उच्च कक्षा के नियम वेदादि शास्त्रों में हैं। केवल विचार, अन्वेषण और अवलोकन की आवश्यकता है। व्याख्यान की समाप्ति पर कलक्टर साहब ने स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यदि ऐसे महात्मा कुछ दिन पहिले होते तो सन् १८५७ ई० का अनिष्ट उपद्रव कभी न होता। २० जुलाई १८७९ ई० को राजा जयकृष्णदासजी के मकान पर हवन होकर नियम पूर्वक समाज स्थापित होगया।

बदायूं में धर्म प्रचार।

स्वामीजी के पधारने से पहिले मई १८७९ ई० में बदायूं में आर्यसमाज स्थापित होचुका था। जब यहां के आर्य पुरुषों को सूचना मिली कि स्वामीजी मुरादाबाद में विराजमान हैं तो उन्होंने स्वामीजी को बुलाया।

२१ जुलाई की रात को स्वामीजी बदायूं पहुंचे। यहां स्वामीजी के व्याख्यान मुं० गंगाप्रसाद साहब के दीवान खाने और चुंगी की कोठी में हुये। खबर थी कि मुसलमान लोग मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब को बुलवाकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करावेंगे, परन्तु किसी ने नहीं बुलवाया। पं० रामप्रसादजी से स्वामीजी की थोड़ी देर तक धर्म के विषय में बात चीत हुई थी और उन्होंने पण्डितजी के प्रत्येक प्रश्न का यथायोग्य उत्तर देदिया था परन्तु पं० जी पौराणिक होने के कारण अपनी हठ किये गये।

बरेली में धर्म प्रचार।

१४ अगस्त १८७९ ई० को स्वामीजी बरेली पहुंचे और प्रचार आरम्भ करदिया, यहां इनके व्याख्यानों में ज़िले के प्रधान शासक कलेक्टर साहब और उनके साथ अन्य शासक गण भी पधारा करते थे। निदान यह प्रस्ताव स्थिर हुआ कि स्वामीजी का बरेली के प्रसिद्ध पादरी स्काट साहब से पुनः शास्त्रार्थ होना चाहिये, पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार करलिया। इस वार शास्त्रार्थ में पादरी साहब ने हंसी और कटुभासिता से बिलकुल काम नहीं लिया और शास्त्रार्थ आदि से अन्त तक बड़ी सभ्यता के साथ होता रहा। विचारणीय विषय ये थेः- (१) आवागमन (२) अवतार (३) ईश्वर पाप क्षमा करता है। शास्त्रार्थ अक्षरशः लिखा जाता था और इस रीति पर भाविनी भ्रान्ति की आशंका ही दूर करदीगई। तीनों विषयों पर पादरी साहब को निरुत्तर होजाना पड़ा। कारण स्पष्ट है कि ईसवी मत के सिद्धान्त इन विषयों का निर्णय करने में अपर्याप्त हैं।

शाहजहांपुर में धर्म प्रचार।

४ सितम्बर १८७९ ई० को स्वामीजी शाहजहांपुर पहुंचे, इनके पहुंचते ही आर्यसमाज की ओर से व्याख्यानों के विज्ञापन देदिये गये। स्वामीजी के पधारने से नगर और आस पास के सम्पूर्ण साम्प्रदायिक लोगों में खलबली मचगई, पौराणिक पण्डितों के तो वास्तव में छक्के छूट गये। उन्होंने आपस में सलाह करके अङ्गद शास्त्री को जो पीलीभीत स्कूल में १५) मासिक पर अध्यापक थे, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलवाया इनकी संस्कृत की योग्यता इतनी भी न थी कि एक पंक्ति भी शुद्ध लिख सकें इस पर भी ख्याति की बड़ी अभिलाषा रखते थे और इस बात की कुछ भी परवाह न थी कि लोगों में अपनी अयोग्यता के प्रकट होने से लज्जित होना पड़ेगा। पण्डितजी से शास्त्रार्थ के लिये पत्र व्यवहार होता रहा, परन्तु बातें बनाने वालों और अपनी विद्वत्ता का परिचय देने वालों में बड़ा भारी अन्तर होता है, पण्डितजी अन्त तक बातें बनाते रहे और शास्त्रार्थ के लिये एक दिन भी उद्यत न हुए, फिर इसका परिणाम क्या होना था?

लखनऊ व फरुखाबाद का वृत्तान्त ।

शाहजहांपुर से रवाना होकर १८ सितम्बर सन् १८७९ ई० को स्वामीजी लखनऊ पहुंचे और यहां एक सप्ताह तक विश्राम करके कानपुर होते हुए फरुखाबाद पधारे और यहां आते ही लगातार व्याख्यान आरम्भ करदिये, लगभग शहर के सब प्रतिष्ठित पुरुष और राजकीय अधिकारी इनके व्याख्यानों में आया करते थे। इस वार भी पौराणिक पण्डितों ने अन्यथा भाषण के द्वारा लोगों को धोखा देना चाहा, परन्तु उनकी कोई चाल चल न सकी। कुछ पौराणिक पण्डितों से धर्म सम्बन्धी प्रश्नोत्तर भी हुए थे, इस रीति पर बहुत से वैदिक सिद्धान्तों के विषय में लोगों को मालूम होगया और ऐसे अवसर पर यही बहुत कुछ समझा जासकता है। एक बी. ए. ब्राह्मण ने स्वामीजी के विरुद्ध एक सभा स्थापित की थी, जिसका उद्देश्य मूर्त्तिपूजा की पुष्टि करने का था, परन्तु सुशिक्षित पुरुषों ने इनको बहुत कुछ लताड़ दी थी, जिसको आयु भर स्मरण रक्खेंगे, एक समाचार पत्र ने भी खूब ख़बर ली थी।

कानपुर, इलाहाबाद, मिरजापुर व दानापुर का वृत्तान्त ।

फरुखाबाद से रवाना होकर कानपुर व इलाहाबाद होते हुए २३ अक्टूबर १८७९ ई० को मिरज़ापुर पहुंचे। यद्यपि शरीर खिन्न था तथापि स्वामीजी ने अपना काम प्रारम्भ करने में कुछ भी विलम्ब नहीं किया। यहां से बिदा होकर ३० अक्टूबर को दानापुर पहुंचे यहां भी नियमानुसार वैदिक धर्म का खूब प्रचार किया, कई प्रतिष्ठित और विचारशील मुसलमान भी इनके व्याख्यान सुनने को आते थे और इनकी प्रशंसा करते थे। यद्यपि उनके मित्रों ने उन पर आक्षेप भी किये तथापि उन्होंने सत्य को हाथ से न दिया। यहां के पौराणिकों ने पं० चतुर्भुजजी को बाहर से स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलवाया था, परन्तु पण्डितजी साफ़ टाल बताकर चले गये क्योंकि शास्त्रार्थ करने की योग्यता उनमें न थी।

लखनऊ व फरुखाबाद और मैनपुरी में धर्म प्रचार ।

५ मई सन् १८८० ई० को स्वामीजी लखनऊ पहुंचे और इस वार यहां बहुत थोड़े दिन ठहरे। कोई २ महाशय इनके पास आकर अपने सन्देह निवारण करते थे और जो महाशय इनसे मिलने को आते थे, उन्हें ये सदुपदेश किया करते थे। यहां से रवाना होकर सातवींवार २० मई सन् १८८० ई० को स्वामीजी फरुखाबाद पहुंचे और उपदेश करते रहे। यहां की छावनी फतेहगढ़ में भी धर्मप्रचार किया था। इनका उपदेश सुनकर एक दिन वानिस्टन ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट ने योग के विषय में प्रश्न किया था, स्वामीजी ने समुचित उत्तर देकर कहा कि आप वर्त्तमान अवस्था में योग साधन नहीं करसकते कारण

यह है कि आप मद्य और मांस का सेवन करते हैं। यदि इनको सर्वथा त्याग दें तो आप योगसाधन कर सकते हैं। फरुखाबाद से स्वामीजी मैनपुरी पधारे और यहां भी व्याख्यान देने प्रारम्भ किये। इनके उपदेश सुनने के लिये कलक्टर जज और सिविल सर्जन आदि अंग्रेज अफसर भी आया करते थे और यहां के बहुत से मुसलमान लोग भी इनके व्याख्यानों की प्रशंसा करने लगे थे। इनके अन्तिम व्याख्यान में एक प्रतिष्ठित मुसलमान साहब ने सभा में खड़े होकर धन्यवाद दिया था। स्वामीजी के चले जाने के बाद ११ जुलाई सन् १८८० ई० को यहां आर्यसमाज स्थापित होगया।

मेरठ व मुज़फ्फर नगर में धर्म प्रचार।

८ जुलाई १८८० ईस्वी को स्वामीजी पुनः मेरठ पधारे और बस्ती से बाहर एक कोठी में ठहरे। इन्होंने पहुंचते ही अपना काम शुरु करदिया, पौराणिक पण्डितों को जब और कुछ न सूझा तो एक कथक्कड़ को स्वामीजी के उपदेशालय के समीप नियत कर दिया कि रामायण आदि की चौपाइयां ऊंचे स्वर से स्वामीजी के व्याख्यान के समय गाया करे ताकि लोग उनका उपदेश न सुन सकें, परन्तु इस विषय में भी उनको लज्जित ही होना पड़ा। इन्हीं दिनों पण्डिता रमाबाई (जिन का इससे पूर्व स्वामीजी से पत्रालाप हो चुका था) मेरठ पधारीं और स्वामीजी से संस्कृत पढ़ती रहीं। उन्होंने चार पांच व्याख्यान भी स्त्री शिक्षा के विषय में दिये थे। बिदा होते समय स्वामीजी ने इनको स्वरचित पुस्तकें भेट की थीं। १५ सितम्बर १८८० ई० को स्वामीजी मुज़फ्फर नगर (वहां के प्रतिष्ठित लोगों से आमन्त्रित होकर) पधारे और रायबहादुर निहालचन्द साहब रईस की कोठी में ठहरे। श्राद्धों के दिन थे इसलिये राय साहब ने स्वामीजी से पूछा कि मृतकों का श्राद्ध करना चाहिये या नहीं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मृतकोद्देश्य से श्राद्ध करना बिलकुल निष्फल है। इस पर राय साहब ने कहा कि हमें दान वा परोपकार भी नहीं करने चाहियें क्योंकि मरने के पश्चात् हमें उनका कुछ भी फल नहीं मिल सक्ता। स्वामीजी ने उनको समझा दिया कि दान करना प्रत्येक जीव का अपना कर्म है और कर्म कर्ता के साथ रहता है, नष्ट नहीं होता और मृतकों के श्राद्ध जीवित करते हैं इसलिये मृतकों को उसका कुछ फल नहीं मिलसक्ता, क्योंकि वह दूसरों का कर्म है। फल अपने कर्म का मिलता है, नकि मरने के पश्चात् दूसरों के खिलाने, पिलाने या देने लेने का। स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये शहर और आसपास के बहुत लोग एकत्रित हुआ करते थे और यह अन्त में प्रत्येक के प्रश्न का सन्तोषदायक उत्तर दे दिया करते थे, यदि कोई भड़कता भी था तो यह उसे शान्त

करदिया करते थे और उत्तर ऐसा प्रमाणपूर्वक होता था कि उस पर विवाद करने का किसी को अवसर ही न मिलता था।

देहरादून और मेरठ का वृत्तान्त।

मुज़फ्फर नगर से रवाना होकर ७ अक्टूबर सन् १८८० ईस्वी को स्वामीजी देहरादून पहुंचे और जाते ही अपने आने का विज्ञापन दिलवा दिया। इस विज्ञापन के निकलते ही जिज्ञासु और सत्यग्राही पुरुषतो प्रसन्न हुए परन्तु आग्रही और अभिमानी लोग मन ही मन में कुढ़ने लगे। पौराणिकों और मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थ के लिये कुछ छेड़ छाड़तो हुई परन्तु निष्फल गई। जब मतलब की बात बीच में आती थी तो तरह २ के बहाने करके टाल जाते थे। एक दिन एक पादरी साहब भी सभा में कुछ बोले थे और उन्हों ने वेद के विषय में कुछ प्रश्न किये थे। स्वामीजी उन की चेष्टा से समझ गये कि इनको केवल अपनी ख्याति की अभिलाषा है, सत्यासत्य के निर्णय से कुछ प्रयोजन नहीं है, तब उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा, मैं उत्तर देने को तैयार हूं, परन्तु मैं भी इञ्जील के विषय में कुछ प्रश्न आप से करूंगा। यह सुनकर पादरी साहब चलने लगे, स्वामी जी ने बड़ी कठिनता से उनको ठहराया और उनके प्रश्नों के उत्तर देकर अपने प्रश्न करने को तैयार हुए, परन्तु पादरी साहब किसकी सुनते थे। सभा के नियमों की कुछ परवाह न करके विना कहेसुने उठकर चले गये। देहरादून से रवाना होकर स्वामीजी मेरठ कुछ दिन ठहरे और फिर यहां से आगरे की ओर प्रस्थित हुये।

आगरा व अजमेर का वृत्तान्त।

२५ नवेम्बर १८८० ईस्वी को स्वामीजी आगरे पहुंचे और आते ही व्याख्यान होने लगे, दूर तक ख़बर पहुंच गई कि स्वामीजी आये हैं। पौराणिकों को सब से अधिक भय उत्पन्न हुवा, निदान वे अनेक प्रकार की झूठी गप्पें (अफ़वाहें) उड़ाने लगे परन्तु इन मिथ्या प्रलापों से कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुवा। स्वामीजी ने अपने उपदेशों से लोगों की आंखें खोलदीं और वर्षों के जमे हुये आग्रह को हृदयों से निकाल कर फेंक दिया। यह दशा देखकर पौराणिक लोगों की रही सही आशा टूट गई। एक दिन रोमन कैथोलिक ईसाइयों के लाट पादरी साहब के बुलाने पर स्वामीजी उन से मिलने गये, कुछ देर तक उन से धर्म सम्बधी बात चीत होती रही। प्रसंगानुसार स्वामीजी ने लाट पादरी साहब से पूछा कि आप अभी कहचुके हैं कि हमारी भूलों को इटली के पोप शोधन करते हैं परन्तु यह भी बतलाइये कि पोप की भूल को कौन संशोधन करता है? इस का उत्तर पादरी साहब सिवाय इसके कि, पोप इस संसार में ईश्वर का नायब (प्रतिनिधि) समझा जाता है, और कुछ न देसके। स्वामीजी के सदुपदेश का यह प्रभाव हुवा कि २६

दिसम्बर सन् १८८० ई० को आगरे में आर्य्यसमाज स्थापित होगया। खिज कर पौराणिकों ने पं० चतुर्भुज को बुलवाया, परन्तु पं० चतुर्भुज की योग्यता पहिले ही विदित होचुकी थी, उन में इतनी सामर्थ्य कहां थी कि वह शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होते? जब उन की कलई खुल गई तो वे लज्जित और चुप होकर बैठगये। आगरे से १० मार्च १८८१ ई० को विदा होकर स्वामीजी भरतपुर और जयपुर होते हुये ५ मई १८८१ ई० को अजमेर पहुंच गये। यहां स्वामीजी के कई व्याख्यान हुये। कुछ दिन बाद शहर के बाहर आग लग जाने से कई ग़रीब मनुष्यों के झौंपडे जल गये, स्वामीजी ने अपने श्रोताओं को इन की सहायता के लिये प्रेरित किया, उसी समय उन की आज्ञा का पालन कियागया। स्वामीजी ऐसे कामों को धर्म का काम बतलाया करते थे। पिशावर से पं० लेखराम जी यहां स्वामीजी के दर्शन करने के लिये आये थे और उन से अपने सब सन्देह निवारण कर कर लौट गये। प्रायः राय बहादुर पं० भागराम साहब जज अजमेर स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया करते थे और आरम्भ से अन्त तक तत्परता के साथ उपस्थित रहते थे। राव साहब मसूदा के बुलाने पर २३ जून १८८१ ई० को स्वामीजी मसूदा चले गये।

मसूदा में धर्म प्रचार।

२३ जून को स्वामीजी मसूदा पहुंचे, राव बहादुरसिंह जी मसूदाधीश ने बड़े आदर और सत्कार के साथ स्वामीजी को एक रमणीय वाटिका की बारहदरी में ठहराया। यहां स्वामीजी के कई नम्बरवार व्याख्यान हुये, सारी रियासत में धूम मचगई और तो कोई सामने न आया किन्तु पादरियों से कुछ बात चीत हुई थी। जब स्वामीजी ने उन से कुछ धार्मिक विचार करना चाहा तो वे यह कहकर चलेगये कि इस समय हमारे पास हमारी पुस्तकें नहीं हैं। इस रियासत में स्वामीजी ने हिन्दुओं का एक ऐसा समुदाय पाया जो अपनी जाति के उन लोगों को जो पहिले यवनों के समय में मुसलमान् होगये थे, बेधड़क अपनी लड़कियां ब्याहदेते थे, परन्तु मुसलमान होने के कारण उन की लड़कियां लेते नहीं थे, अर्थात् जान बूझकर अपनी लड़कियों को मुसलमानियां बनाते थे। स्वामीजी ने इस समुदाय के लोगों को बुलवाकर सदुपदेश किया और समझाया कि यह तुम बड़ा अन्धेर कर रहे हो, अपने हाथ से अपनी सन्तान को अपने धर्म का शत्रु बना रहे हो, ऐसा करना महापाप है, स्वामीजी के उपदेश से उन्हों ने दीर्घकाल से चली हुई रीति को एक साथ बन्द करादिया या यों कहना चाहिये कि स्वामीजी के उपदेश से हज़ारों हिन्दू लड़कियां मुसलमानियां होने से बचगईं। इस रियासत में स्वामीजी ने कई यज्ञ कराये। दूसरीबार यहां स्वामीजी २१ सितम्बर १८८१ ईस्वी

को आये थे और १५ दिन ठहरे थे, यद्यपि कोई विशेष व्याख्यान नहीं दिया तथापि लोगों को सदुपदेश करते रहे।

रियासत रायपुर। ठाकुर हरीसिंहजी रायपुराधीश के कईवार आमन्त्रित करने पर १९ अगस्त १८८१ ईस्वी को स्वामीजी ब्यावर होते हुये रायपुर पहुंचे। ठाकुर साहब ने बड़ा आदर और सत्कार किया। बातचीत करते हुये स्वामीजी ने ठाकुर साहब से पूछा कि आपकी रियासत के मन्त्री कौन महाशय हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि शेख़ इलाहीबख्श साहब हैं। वे तो इन दिनों जोधपुर गये हुये हैं पर उनके भतीजे शेख़ करीमबख्शजी उनके स्थानापन्न हैं और वे सामने बैठे हुये हैं। स्वामीजी ने इस अवसर पर अपनी यह सम्मति प्रकट की कि आर्यपुरुषों को चाहिये कि वे मुसलमानों को अपना पार्श्ववर्ती (मुसाहिब) या मन्त्री (वज़ीर) न बनावें, क्योंकि ये लोग दासी पुत्र हैं। यह सुनकर शेख़ साहब बहुत ही रुष्ट हुये और थोड़ी देर बाद शेख़जी की हवेली में बहुत से मुसलमान इसलिये इकट्ठे हुये कि स्वामीजी के साथ फ़ौजदारी करनी चाहिये, क्योंकि उन्होंने प्रकाश्य रीति पर मुसलमानों का अपमान किया है। जब सब अपनी २ कह चुके तो एक विचारशील पुरुष ने यह सम्मति प्रकट की कि इसविषय में हमको किसी प्रकार की धृष्टता और उजड्डपन से काम नहीं लेना चाहिये। पांच सात दिन बाद ईद के अवसर पर हमारे क़ाज़ी साहब आवेंगे, उनसे स्वामीजी की बहस करावेंगे, इस प्रकार सब के सन्मुख या तो उन्हें अपनी बात का प्रमाण (सबूत) देना होगा या जो सच्चीबात होगी वह अपने आप खुल जावेगी। इस पर सब सहमत होगये। ईद के दिन स्वामीजी के आश्रम पर बहुत से मुसलमान क़ाज़ी साहब को लेकर पहुंचे, स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप क्या चाहते हैं? क़ाज़ी साहब फ़र्माने लगे कि अभी थोड़े दिन हुये हैं कि आपने मुसलमानों को दासीपुत्र बतलाया है इसका कारण क्या है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका कारण आप कुरान में देख सकते हैं। इसराईल जिन्हें आप इबराहीम कहते हैं उनकी दो बीबियां थीं एक ब्याही हुई सारह दूसरी उसकी लौंडी हाजरह। इब्राहीम ने हाजरह को भी घर में डाल लिया था सारह से अंगरेज़ लोग हुये और हाजरह से मुसलमान, फिर दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है? यह सुनकर क़ाज़ी साहब ने कहा कि कुरान में ऐसा नहीं लिखा, इस पर स्वामीजी ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि हमारा कुरान लाओ, कुरान में से "सूरत इन्कबूत" दिखलाया। क़ाज़ी साहब अन्त में कहने लगे कि यह ठीक है कि वह लौंडी थी, परन्तु इसराईल ने उससे विवाह कर लिया था। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि कुछ हो वास्तव में तो वह लौंडी ही

थी, फिर आपको दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? इस पर क़ाज़ी साहब बिलकुल निरुत्तर हो गये और सब मुसलमान अपना सा मुंह लेकर वापिस चले गये।

ब्यावर में धर्म प्रचार।

रियासत रायपुर से विदा होकर ९ सितम्बर १८८१ ई० को स्वामीजी ब्यावर पहुंचे और १५ दिन यहां ठहरे, कई व्याख्यान दिये और जिज्ञासुओं के सन्देह निवृत्त करते रहे। इन्हीं के उपदेशों के कारण कुछ दिन बाद यहां आर्यसमाज स्थापित होगया। पादरियों से प्रायः यहां इनकी बातचीत हुवा करती थी, परन्तु उन्होंने प्रतिपक्षी होकर कभी कुछ नहीं कहा, यहां से स्वामीजी मसूदा चलेगये।

रियासत बनेड़ामें धर्म प्रचार।

मसूदे से विदा होकर कुरड़े, रूपाहेली और रायड़े होते हुवे स्वामीजी ६ अक्टूबर १८८१ ई० को रियासत बनेड़े पहुंचे। यहां के राजा साहब ने स्वामीजी का बहुत कुछ मान व सत्कार किया और नित्य उनके उपदेश सुनने आते रहे। इस रियासत में संस्कृत और वेदों का बहुत कुछ चर्चा था, राजासाहब भी संस्कृत जानते थे, इनके दो राजकुमारों से स्वामीजी ने सामवेद का गान सुना और बहुत प्रसन्न हुये, इनकी संस्कृत में स्वामीजी ने परीक्षा भी ली थी और अपने पास से एक पुस्तक पारितोषिक में दी थी। यहां के राजकीय पुस्तकालय "सरस्वतीभण्डार" से स्वामीजी ने अपने निघण्टु का मिलान किया था, कहीं एक दो शब्दों का लिखने में भेद था वह ठीक करलिया। यहां पर चक्रांकितों की स्वामीजी ने खूब पोल खोली थी और कहा था कि यदि शरीर के एकदेश को जलाने से तुम मोक्ष मानते हो तो तुमको चाहिये कि सबके सब एकसाथ भाड़ में कूद पड़ो जिससे कि एकही वार सब की मुक्ति होजावे।

चित्तौड़ में धर्म प्रचार।

रियासत बनेड़े से विदा होकर २६ अक्टूबर १८८१ ई० को स्वामीजी चित्तौड़गढ़ पहुंचे, कविराज श्यामलदासजी ने आतिथ्य का सब सामान इकट्ठा करदिया था। यहां एक तैलङ्ग ब्राह्मण सुब्रह्मण्यशास्त्री से न्याय शास्त्र में स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुवा था, यद्यपि शास्त्रीजी ने प्रकाश्य रीति पर अपने पराजय को स्वीकार नहीं किया परन्तु श्रोताओं के समीप स्वामीजी का पक्ष प्रबल था। यहां स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये आसीन्द के राव अर्जुनसिंहजी भीलवाड़े से राजा फ़तहसिंहजी, शाहपुरे के राजाधिराज नाहरसिंहजी, कानूड़ के रावत उम्मेदसिंहजी और शावड़ी के राजा राजसिंहजी आदि महाशय आया करते थे। महाराणा साहब उदयपुर भी स्वामीजी के उपदेश बड़े ध्यान से सुना करते थे और उनके अनुयायी होगये थे. उन्हों ने उदयपुर चलने के लिये स्वामीजी से बड़ा

आग्रह किया परन्तु स्वामीजी ने कहा कि अभी नहीं, बम्बई से लौटते हुये आवेंगे। चित्तौड़ से रवाना होकर २१ दिसम्बर १८८१ ई० को इन्दौर पहुंचे, परन्तु महाराजा साहब (जो स्वामीजी के भक्त थे) कहीं बाहर गये हुये थे, इसलिये स्वामीजी वहां अधिक नहीं ठहरे। जब महाराजा साहब वापिस आये और उन्हें विदित हुवा कि स्वामीजी हमारे पीछे यहां आये थे तो बहुत पश्चत्ताप करने लगे और उन्हें बम्बई तार दिया कि अब मैं यहां उपस्थित हूं अवश्य पधारें।

बम्बई में धर्मप्रचार।

३० दिसम्बर १८८१ ई० को स्वामीजी बम्बई पहुंचे और समुद्रतट पर एक रमणीय स्थान में निवास किया। इसबार स्वामीजी का पधारना बम्बई आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में था। समाज में दक्षिणी ब्राह्मण हवन करा रहे थे, एक वृद्ध ब्राह्मण इनमें ऐसा था कि जिसे चारों वेद स्वर सहित कण्ठाग्र थे, स्वामीजी ने दो चार मुख्य लोगों से कहा कि आप ब्रह्मा का जो चतुर्मुख विशेषण सुना करते हैं, वह यही होसकते हैं। इस उत्सव मे सामवेद का गान हुवा और स्वामीजी ने व्याख्यान दिये। उस समय बम्बई के बहुत से सेठ व साहूकार स्वामीजी के अनुयायी थे और वे चाहते थे कि यदि स्वामीजी आज्ञा करें तो हम समाजमन्दिर के लिये बहुतसा रुपया दें परन्तु स्वामीजी ने अपने मुंह से किसी को नहीं कहा, उनका कथन था कि यह काम धर्म का है और सब का है, इसमें किसी के कहने सुनने की क्या आवश्यकता है? हां यदि मेरा निज का काम हो तो और बात है, उसे मैं कहता भी अच्छा लगूं। एक सेठजी अपने लड़के को स्वामीजी के पास उपदेश दिलाने लायेथे, स्वामीजी ने उसे कुछ उपयोगी शिक्षायें कीं। यथा प्रातःकाल उठ कर और हाथ मुंह धोकर ईश्वर की प्रार्थना करो फिर अपने माता पिता को प्रणाम करो और जब पाठशाला को जाओ तो अपनी पुस्तकें नौकरों से मत उठवाओ, आप लेजाया करो इत्यादि २।

बम्बई में कई नैमित्तिक सभायें होकर आर्यसमाज के नियम और उपनियम जो लाहोर में स्थिर हुये थे सर्वसम्मति से स्वीकार किये गये और सम्पूर्ण आर्यसमाजों के लिये एक ही आदर्श होगया। इन दिनों यहां के सेठ मथुरादासजी लूजी ने एक विज्ञापन दिया था कि यदि वेदों से कोई मूर्तिपूजा सिद्ध करदे तो मैं उसको पांच हज़ार रुपये पारितोषिक देने के लिये उद्यत हूं। परन्तु किसमें इतना साहस था कि इस पारितोषिक के लिये यत्न करता, इसबार स्वामीजी यहां २३ जून सन् १८८२ ईस्वी तक ठहरे।

खंडवा, इन्दौर और रतलाम में धर्म प्रचार ।

२४ जून १८८२ ई० को स्वामीजी बम्बई से चलकर खंडवा पहुंचे और यहां ३ जुलाई तक स्थिति रक्खी । ४ जुलाई को खण्डवे से इन्दौर पहुंचे, परन्तु इसवार भी महाराजा साहब की अनुपस्थिति के कारण स्वामीजी यहां नहीं ठहरे । ५ जुलाई को रतलाम पधारे और ८ जुलाई तक निवास किया, प्रत्येक स्थान में सदुपदेश का डंका बजता रहा । यहां से बिदा होकर जावरा होते हुए उदयपुर को प्रस्थित हुए ।

रियासत उदयपुर का वृत्तान्त ।

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुराधीश के कई वार बुलाने पर ११ अगस्त १८८२ ई० को स्वामीजी उदयपुर पहुंचे, रियासत की ओर से सवारी आदि का उत्तम प्रबन्ध था । उदयपुर पहुंचकर स्वामीजी सज्जननिवास बाग़ में ठहरे । स्वामीजी के आने के पूर्व महाराणा साहब में कई व्यसन थे । यथा–दिन में सोना, रात में जागना, दिन चढ़े उठना, बहुत विवाहों का करना, राग रंग और भोग विलास में तत्पर रहना, मूर्तिपूजा और कुपात्रों को दान देना इत्यादि । परन्तु स्वामीजी के उपदेश से ये सब अवगुण दूर होगये, यहांतक कि महाराणा साहब दोनों समय स्वामीजी के पास आया करते थे और चार २ पांच २ घण्टे तक उनसे संस्कृत पढ़ा करते थे यथा–वैशेषिकदर्शन, पातञ्जल योगसूत्र और मनुस्मृति आदि और योगाभ्यास का भी आरम्भ करदिया था, स्वामीजी ने उनको दिनचर्या के नियम भी लिख दिये थे और वे उनका पूरा २ पालन भी किया करते थे। प्रत्येक काम के लिये समय नियत करदिया था और वह काम अपने समय पर किया जाता था । स्वामीजी ने महाराणा साहब को यह भी सम्मति दी थी कि रियासत के सम्पूर्ण श्रीमानों के लड़कों की एक अलग पाठशाला बनाई जावे और उसमें उन्हें शास्त्र और शस्त्रविद्या अवश्य सिखलाई जावे, परन्तु खेद है कि स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् महाराणा साहब की अस्वस्थता के कारण यह काम न होसका । रियासत के समस्त न्यायविभागों में देवनागरी का प्रचार करने के लिये बहुत कुछ यत्न किया और प्रचलित कानून में प्रायः शब्द अर्बी के थे जिनके पर्य्याय संस्कृत में वहां के लोगों को मालूम नहीं थे, स्वामीजी ने उन शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करादिया । उदयपुर की चारण पाठशाला में पचास साठ विद्यार्थी पढ़ा करते थे, एक दिन स्वामीजी ने स्वयं उनकी परीक्षा ली और उन्हें कई आवश्यक बातें बतलाईं, विशेष कर वेदाङ्गों के पढ़ने पर बहुत कुछ बल दिया । इस पाठशाला के विद्यार्थियों की योग्यता से प्रसन्न होकर स्वामीजी ने सब को एक दिन भोज भी दिया था । यहां स्वामीजी लोगों को कहा करते थे कि जहांतक सम्भव होस-

के रोग होने पर अपने देश के वैद्यों की चिकित्सा करानी चाहिये और योग्य वैद्यों की न्यूनता को अनुभव करके एक वैद्यशाला का प्रस्ताव भी किया था और उसके लिये चन्दा इकट्ठा करने के भी उपाय सोचे गये थे। यदि दो चार वर्ष भी और जीवित रहते तो इस प्रकार की पाठशाला का बन जाना कुछ बड़ी बात न थी। मरने के पश्चात् समाधि या और कोई चिन्ह बनने बनवाने के स्वामीजी अत्यन्त विरुद्ध थे, एक दिन उन्होंने कविराज श्यामलदासजी से कहा था कि मेरे मरने पश्चात् मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या और कोई चिन्ह कदापि न बनाना। कविराज ने कहा कि महाराज! मैंने तो यह सोच रक्खा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनवाऊं और उसे किसी जगह रखवाऊं ताकि मेरे पश्चात् वह मेरा स्मारक समझा जावे। स्वामीजी ने तुरन्त कहा कि देखना कविराजजी! ऐसा भूलकर भी मत करना, बस यही तो मूर्तिपूजा की जड़ हुआ करती है। एक दिन स्वामीजी के पास महाराणा साहब उदयपुर और बहुत से प्रतिष्ठित जागीरदार और कामदार लोग बैठे हुए थे, स्वामीजी ने मनुस्मृति को प्रमाण देकर कहा कि यदि राजा या कोई अधिकारी पुरुष धर्मानुसार कोई आज्ञा दे तो उसे निर्विवाद मानना चाहिये, यदि अधर्म का कोई काम कराना चाहे तो उसे कदापि नहीं करना चाहिये। इस पर ठाकुर मनोहरसिंहजी रईस सरदारगढ़ ने कहा कि महाराज! ये महाराणा साहब हमारे प्रभु हैं यदि हम इनकी आज्ञा का पालन न करें तो ये हमारी जागीरें उसी समय छीन सकते हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि कुछ हानि नहीं यदि धर्म के लिये संसार की सम्पत्ति और जागीर चली जावे तो चली जावे, परन्तु अधर्म के काम करने और छल कपट से वृत्ति करने की अपेक्षा भीख मांग कर निर्वाह करलेना अच्छा है। उदयपुर में स्वामीजी से पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल, ठाकुर जगन्नाथसिंहजी, पं० ब्रजनाथ, बारेट किशनजी, फतहकरनजी, पं० रामप्रसाद व पं० कर्माश्रयजी संस्कृत पढ़ा करते थे। उदयपुर में स्वामीजी उपदेश किया करते थे कि यदि गाना सुनने की रुचि हो तो वेदों का गान सुनना चाहिये। वेश्याओं को कुतियों से उपमा दिया करते थे, और सब को इनसे बचने और दूर रहने की शिक्षा दिया करते थे। एक अवसर पर रियासत के कुछ ज़मीन्दारों ने स्वामीजी से निवेदन किया कि हमारे अभियोग (मुकद्दमे) में महाराणा साहब से कहकर न्याय कराइये, हम आप के बहुत ही कृतज्ञ होंगे स्वामीजी ने स्पष्ट उत्तर देदिया कि हम संन्यासी हैं, इस बात को आप खुद महाराणा साहब से कहें, हमारा इस प्रकार के सांसारिक झगड़ों में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं है। एक दिन

महाराणा साहब उदयपुर ने एकान्त में विनय पूर्वक स्वामीजी से निवेदन किया कि यदि आप देश कालोचित समझ कर मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो अति उत्तम हो क्योंकि आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिङ्गेश्वर महादेव के अधीन चली आती है, यदि आप स्वीकार करें तो इस मन्दिर के महन्त बन सकते हैं और लाखों रुपये की जायदाद पर आपका अधिकार होजावेगा। यह सुनकर स्वामीजी को बड़ा क्रोध आया और कहने लगे कि महाराणाजी! आप मुझे लालच देकर उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की अवज्ञा करने पर उद्यत कराना चाहते हैं। ये आपके मन्दिर और ये आपकी छोटी सी रियासत (जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जासकता हूं) मुझे किसी दशा में उस परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध नहीं कर सकते जिसके राज्य से कोई कभी किसी प्रकार भी बाहर नहीं जासकता। आप निश्चय रक्खें कि मैं कभी परमात्मा और वेदों की आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता, यह उत्तर सुनकर महाराणा सज्जनसिंह चकित और लज्जित हुए और नम्रता से क्षमाप्रार्थी हुए। अन्त में यहां स्वामीजी ने परोपकारिणी सभा स्थापित की जिसके मंत्री श्यामलदासजी नियत हुए। यहीं पर स्वामीजी ने अपना अन्तिम शिक्षापत्र (वसीयतनामा) लिखकर रजिस्टरी कराया था। जिसका अनुवाद निम्नलिखित है:—

वसीयत नामा परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखित।

स्वीकारपत्र।

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस २३ सज्जन आर्य्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूं और उस को परोपकार सुकार्य में लगाने के लिये अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकार पत्र लिखे देता हूं कि समय पर काम आवे।

इस सभा का नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस २३ महाशय इस के सभासद् हैं:—

(१) श्रीमन्महाराजाधिराज महि महेन्द्र यावदार्य कुल कमल दिवाकर महाराणा

जी श्री १०८ सज्जनसिंह वर्मा जी. सी. एस्. आई. उदयपुराधीश राज मेवाड़ सभापति

(२) लाला मूलराज साहब एम, ए, एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहोर उपसभापति

(३) श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी उदयपुर राज मेवाड़ मन्त्री १

(४) लाला रामशरण दास रईस व उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ मन्त्री २

(५) पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी शर्मा उदयपुर जन्मस्थान मथुरा उपमन्त्री

(६) श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश सभासद्

(७) श्रीराव तख्तसिंह जी बेदले राज मेवाड़ ,,

(८) श्रीमत् राज राणा श्री फतेहसिंह जी वर्मा भीलवाड़ा ,,

(९) श्रीमत् रावत श्री अर्जुनसिंह जी वर्मा आसीन्द ,,

(१०) श्रीमत् महाराज श्री गजसिंह जी वर्मा उदयपुर ,,

(११) श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंह जी वर्मा मसूदा ज़िला अजमेर ,,

(१२) राय बहादुर पं० सुन्दरलाल सुप्रेण्डेण्डेण्ट वर्कशाप अलीगढ़ आगरा ,,

(१३) राजा जयकृष्णदास जी सी. एस्. आई. डिप्टी कलेक्टर बिजनौर मुराबाद ,,

(१४) साहू दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद ,,

(१५) साहू जगन्नाथप्रसाद फर्रुखाबाद ,,

(१६) सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद बिसावर राजपूताना ,,

(१७) लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद ,,

(१८) बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट छावनी मुरार (ग्वालियर) ,,

(१९) लाला साईंदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहोर ,,

(२०) बाबू माधवदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर ,,

(२१) रायबहादुर राजमल राजेश्वरी पं० गोपालराव हरि देशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर बम्बई व प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई—पूना ,,

(२२) राव बहादुर महादेव गोविन्द रानड़े जज पूना ,,

(२३) पंडित श्यामजीकृष्ण वर्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड लण्डन बम्बई ,,

स्वीकार पत्र के नियम ।

(१) उक्त सभा जैसे कि मेरी जीवितावस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्न लिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती है वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे ।

(१) वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में ।

(२) वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशकमण्डली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में ।

(३) आर्यावर्त्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करें और करावें ।

(२) जैसे मेरी उपस्थिति में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब किताब समझने और पड़तालने के लिये भेजा करे और वह सभासद् वहां जाकर कुल आमदनी और खर्च की जांच पड़ताल किया करे और उस के नीचे अपने हस्ताक्षर करे और इस पड़ताल की एक२ प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ त्रुटि देखे तो उस के सुधार के लिये अपनी सम्मति लिखकर प्रत्येक सभासद् के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी२ सम्मति सभापति के पास लिख भेजे और सभापति सब की सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करें, इस कार्य में कोई सभासद् आलस्य या अनुचित व्यवहार न करे ।

(३) इस सभा को उचित है कि जैसा यह परम धर्म और परमार्थ का काम है वैसा ही उस को उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे ।

(४) प्रागुक्त तेईस आर्य सज्जनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जावे अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और होगा । यदि उक्त सभासदों में से कोई सभासद् स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध काम करे या कोई अन्य मनुष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूंठा समझा जाय ।

(५) जैसे इस सभा को वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथा शक्ति रक्षा और उन्नति करने का भी अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के सं-

स्कार का भी अधिकार है। अर्थात् जब मेरा शरीर छूटे तो न उसको गाड़ें न जल में बहावें न जङ्गल में फेंके, सिर्फ चन्दन की चिता बनवावे और जो यह सम्भव न हो तो दोमन चन्दन चार मन घी, पांचसेर कपूर, अढ़ाईमन अगरतगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद के अनुसार जैसा कि संस्कारविधि पुस्तक में लिखा है वेदि बनाकर वेद मंत्रो से जो उस में लिखे हैं भस्म करें। इस के सिवाय और कुछ वेद के विरुद्ध न करें और जो उस समय इस सभा के कोई सभासद् उपस्थित न हों तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही यह काम करे और जितना धन इस में लगे उतना सभा से लेलेवे और सभा उसको देदेवे।

(६) अपने जीवन में मैं और मेरे पीछे यह सभा इस बात का अधिकार रखती है कि जिस सभासद् को चाहे पृथक् करके किसी और योग्य सामाजिक आर्यपुरुष को उसका स्थानापन्न नियत करदे। परन्तु कोई सभासद् सभा से तबतक पृथक् न किया जायगा, जब तक उस के काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाय।

(७) मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकार पत्र की व्याख्या, या उसके नियमों का पालन, या किसी सभासद् के पृथक् करनें और उस के स्थान में अन्य सभासद् को नियत करने या मेरे आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय हो या होवें और यदि सभासदों की सम्मति में विरोध रहे तो बहुसम्मति के अनुसार काम करें और सभापति की सम्मति को सदा द्विगुण समझें।

(८) किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को जबतक अपराध के सिद्ध होने पर भी पृथक् न कर सकेगी जबतक कि उनकी जगह में और सभासदों को नियत न करले।

(९) यदि किसी सभासद् का देहान्त होजाय या वेदोक्त धर्म को छोड़ कर उक्त नियमों के विरुद्ध चलने लगे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उसको पृथक् करके उसकी जगह में किसी और योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्यपुरुष को नियत करें। परन्तु उस समय तक साधारण कामों के अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाय।

(१०) इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा२ निश्चय और विश्वास न हो तो समय का निर्धारण करके लेख द्वारा सम्पूर्ण आर्य समाजों से सम्मति ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

श्रीमान् राजाधिराज सर नाहरसिंहजी वर्म्मा बहादुर
के० सी० आई० ई० शाहपुराधीश

(११) प्रबन्ध का घटाना बढ़ाना या स्वीकार या अस्वीकार करना या किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना या आमदनी व खर्च की जांच पड़ताल करना या अन्य हानि लाभ सम्बन्धी विषयों को सभापति वर्ष भर में या छै महीने में छपवाकर चिट्ठी के द्वारा सब सभासदों में प्रचारित करे।

(१२) यदि इस स्वीकारपत्र के विषय में कोई झगड़ा उठे तो उस को राजगृह में न लेजाना चाहिये किन्तु जहां तक होसके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करें। यदि आपस में किसी प्रकार निर्णय न होसके तो फिर न्यायालय से निर्णय होना चाहिये।

(१३) यदि मैं अपने जीतेजी किसी योग्य आर्य पुरुष को पारितोषक देना चाहूं और उस की लिखत पढ़त कराकर रजिस्टरी करादूं तो सभा को चाहिये कि उस को माने और दे।

(१४) मुझे और मेरे पीछे सभा को सदा अधिकार है और रहेगा कि उक्त नियमों को देश के किसी विशेष लाभ और परोपकार के लिये न्यूनाधिक करें।

हस्ताक्षर—दयानन्दसरस्वती।

पुत्र जन्मोत्सव के अवसर पर महाराणा साहब ने आठसौ रुपये स्वामीजी की प्रेरणा से अनाथालय फ़ीरोज़पुर को भेजे थे। विदा करते समय महाराणा साहब ने दोहज़ार रुपये स्वामीजी की भेंट करना चाहे। परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया, जब महाराणा साहब ने आग्रह किया और यह कहा कि हम संकल्प कर चुके हैं, इसे रख नहीं सकते, तब स्वामीजी इसके लिये दान पात्र सोचने लगे, निदान इस रुपये को परोपकारिणी सभा को देदिया। इस अवसर पर महाराणा साहब ने स्वामीजी से अपनी यह अभिलाषा प्रकट की कि यदि आप षड्दर्शनों का भाष्य (अनुवाद) छपवायें तो इसके खर्च के लिये बीस हज़ार रुपया मुझसे मंगवालीजियेगा। अस्तु, महाराणा सज्जनसिंहजी ने स्वामीजी को अपनी रियासत से बड़ी प्रतिष्ठा और आदर के साथ विदा किया, स्वामी जी के पश्चात् यहां आर्य समाज भी स्थापित होगया, जिसके कई प्रतिष्ठित और प्रभावशाली पुरुष सभासद् हुये।

रियासत शाहपुरे का वृत्तान्त।

१ मार्च सन् १८८३ ईस्वी को स्वामीजी उदयपुर से प्रस्थित होकर नीमाहेड़े और चित्तौड़ होते हुये ९ मार्च को दिन के ४ बजे के समय शाहपुरा में पहुंचे और नाहरनिवास बाग में रेतिया कुए के पास जहां महाराज साहब ने स्थिति का प्रबन्ध कर रक्खा था जा ठहरे। महाराजा साहब शाहपुरा ने

कुछ शंका नहीं होसकती। मैं वहां जाऊंगा और अवश्य वैदिक धर्म का प्रचार करूंगा। इस पर एक प्रतिष्ठित मनुष्य ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि तथापि आप वहां सोच समझ कर और मधुरता से काम लेना, कारण यह है कि वहां के रहने वाले कठोर हृदय और कपटी भी होते हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि मैं पाप के बड़े २ वृक्षों की जड़ें काटने के लिये तीक्ष्ण कुठारों से काम लूंगा न कि उनको बढ़ाने के लिये कैंचियों से उनकी कलम करूंगा। यह अन्तिम उत्तर सुनकर फिर किसी को साहस न हुआ कि कुछ कहसके। स्वामीजी के जोधपुर पहुंचने के सत्रह दिन बाद श्रीमान् महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश मिलने के लिये स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए। आते ही सौ रुपये नक़द और पांच अशर्फियों की भेट दिखाई और तत्पश्चात् फ़र्श पर बैठने लगे, स्वामीजी ने आग्रह किया कि आप हमारे बराबर कुर्सी पर बैठिये, इस पर महाराजा साहब ने कहा आप हमारे स्वामी हैं, हम आप के सेवक हैं, हमें आपके बराबर बैठना शोभा नहीं देता, परन्तु स्वामीजी ने उनका हाथ पकड़ कर अपने सामने कुर्सी पर बिठाया और धर्मोपदेश करने लगे। तीन घण्टे तक बराबर महाराजा साहब स्वामीजी का उपदेश सुनते रहे, अन्त में महाराजा साहब यह कहकर कि आप का यहां पधारना हमारे सौभाग्य से हुआ है, जबतक आप यहां हैं प्रतिदिन उपदेश किया करें। दूसरे दिन से स्वामीजी ने यह नियम बांध लिया कि चार बजे से छै बजे तक मैदान में व्याख्यान देते और इसके पश्चात् कोठी में चले जाते और ८ बजे तक वहां लोगों के सन्देह निवारण करते रहते थे। जोधपुर और उसके आस पास के प्रसिद्ध पण्डित बहुत कुछ कहने सुनने पर भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत न हुए, किन्तु हां उनमें से कोई २ अपने सन्देह निवृत्त करने के लिये आजाया करते थे। यहां चक्राङ्कित सम्प्रदाय की स्वामीजी ने खूब पोल खोली। जोधपुर के प्रायः प्रतिष्ठित और श्रीमान् लोग भी अपनी २ रुचि के अनुसार स्वामीजी से प्रश्न किया करते थे और उनका समीचीन उत्तर सुनकर सन्तुष्ट होजाते थे। मुसलमानों में से नव्वाब मुहम्मदख़ां साहब आया करते थे, यह शीया थे, उन्होंने स्वामीजी से कभी बहस नहीं की जब कभी कोई बात आपड़ती थी तो नव्वाब साहब कहदिया करते थे कि आप तो पहुंचे हुए साधु हैं हमारा आपका क्या मुक़ाबिला? करनैल मुहीउद्दीन व कामदार इलाहीबख़्श भी स्वामीजी से प्रायः बात चीत करने आया करते थे। भय्या फ़ैज़ुल्लाख़ां मुसाहिब आला राज मारवाड़ स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर नाक भौं चढ़ाया करते थे, एक दिन उन्होंने स्वामीजी से स्पष्ट कहदिया कि यदि मुसलमानों का रा-

ज होता तो ऐसे व्याख्यान नहीं देसकते थे और यदि देते तो जीते नहीं रहसकते थे। इससे प्रकट है कि भय्या साहब स्वामीजी से कितना विरोध रखते थे। स्वामीजी ने इसका यह उत्तर दिया था कि अस्तु यह कोई बात नहीं है मैं भी उस समय दो क्षत्रिय राजपूतों की पीठ ठोंक देता वे उन लोगों को अच्छी तरह समझ लेते।

राव राजा शिवनाथसिंहजी और उनके भाई राव राजा मोहनसिंहजी दोनों संस्कृत के विद्वान् थे, इनकी स्वामीजी के साथ शाक्तिक मत और नवीन वेदान्त के विषय में प्रायः बातचीत हुआ करती थी, अन्त में यह मान गये थे और स्वामीजी से बड़ा स्नेह और उनका आदर किया करते थे। पं० शिवनारायणजी प्राइवेट सेक्रेटरी महाराजा साहब जोधपुर स्वामीजी के बड़े भक्त थे और उन्हें हिन्द का फ़िलास्फ़र कहा करते थे। एक दिन स्वामीजी ने सभा में क्षत्रियों के धर्म और उनकी गिरी हुई दशा पर व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान का एक २ शब्द गम्भीर अर्थ को लिये हुए था, इसमें स्वामीजी ने यह भी कहा था कि जो राजा अपनी एक विवाहिता रानी को छोड़कर पराई स्त्रियों या अन्य स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध पैदा करलेते हैं, वे महापाप के भागी होते हैं, उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय है, और वास्तव में उनसे पशु अच्छे हैं। मूर्तिपूजकों से स्वामीजी कहा करते थे कि आप जो एक सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् से मुंह फेर कर मूर्तिपूजा करते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि आप एक सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी सत्ता को नहीं मानते।

स्वामीजी समय के पूरे पाबन्द थे, कभी २ महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश रात के दश बजे तक स्वामीजी के पास बैठे रहा करते थे। दश बजते ही स्वामीजी साफ २ महाराजा साहब से कहदेते कि अब आराम कीजिये, यदि महाराजा साहब कुछ देर और ठहरना चाहते तो वे पुनः कहदिया करते थे कि अब शेष वार्तालाप कल पर रखिये अब समय होगया है।

इसी बीच में स्वामीजी को विश्वस्त रीति पर मालुम हुवा कि महाराजा साहब जोधपुर का एक वेश्या से (जिसका नाम नन्हीजान है) अनुचित सम्बन्ध है, यह वेश्या महाराजा साहब के मुंह लगी हुई थी और रियासत के समस्त कर्मचारी और अधिकारी इससे दबते थे, यहां तक कि रियासत के छोटे और बड़े काम विना इस को सम्मति के नहीं होते थे, यह सुनकर स्वामीजी को बड़ा खेद हुवा। कुछ दिन बाद महाराजा साहब ने उपदेशार्थ स्वामीजी को अपने दीवानख़ास में बुलाया, स्वामीजी ने उनका यह निमन्त्रण बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया, कारण यह था कि वह इस अवसर पर एक विशेष उपदेश करना चाहते थे। संयोग से जिस स-

मय स्वामीजी दीवान ख़ास में पहुंचे उस समय नन्हीजान की पालकी अन्दर थी और वह पालकी के भीतर से महाराजा साहब से बातें कररही थी स्वामीजी के आने की ख़बर सुनकर शीघ्रता से महाराजा साहब ने पालकी उठाने वालों को आज्ञादी कि पालकी लेजाओ, उठाने वालों का इस शीघ्रता में कन्धा ऊंचा नीचा होगया और पालकी टेढी होने लगी तो खुद महाराजा साहब ने अपने कन्धे के सहारे से उसे सीधा करदिया और आज्ञा दी कि जल्दी से पालकी निकाल लेजाओ इतनी शीघ्रता होने पर भी स्वामीजी ने थोड़े अन्तर पर अपनी आंखों से देख लिया कि महाराजा साहब ने अपना कन्धा देकर नन्हीजान की पालकी हमारे आने के कारण उठवादी है। यह दशा देखकर स्वामीजी को बड़ा क्रोध आया, उस दिन स्वामीजी ने अपने उपदेश में स्वदेशीय नरेशों की वर्तमान दशा का चित्र खींचा और यहां तक स्पष्ट कहदिया कि सिंह अब कुत्तों का अनुकरण करने लगे, व्यभिचारिणी स्त्रियां कुत्तियों के सदृश हैं उनसे सम्बन्ध रखना कुत्तों का काम है नकि सिंहों का। महाराजा साहब जोधपुर पर इस उपदेश का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा इन्हीं दिनों में स्वामी जी ने एक आर्य से कहा कि हिन्दू रियासतों की दशा बहुत ही शोचनीय है वे कभी की नष्ट भ्रष्ट होगई होतीं परन्तु जितनी या जो कुछ बची हुई हैं वे उन की रानियों के पातिव्रत्य धर्म के कारण, अन्यथा यदि राजाओं के कर्मों पर निर्भर होता तो कभी का बेड़ा डूब गया होता। कुछ दिन बाद स्वामी जी ने महाराजा प्रतापसिंह जी को एक चिट्ठी लिखी थी जिस में महाराजा साहब जोधपुर के चरित्र का भी संकेत था। उन को शिक्षा की थी कि आप के शिर पर बड़ा भारी बोझ है यदि रियासत की यही दशा रही तो इसका परिणाम अच्छा न निकलेगा। स्वामी जी के उपदेश और कारवाई से नन्हीजान वेश्या क्रोध की अग्नि में जल भुन गई, कारण यह कि उस पर चारों ओर से फटकार पड़ने लगी।

दूसरी बात यह हुई कि चक्राङ्कित सम्प्रदाय की प्रबल समीक्षा से महता विजयसिंहजी वैष्णव बहुत भड़क उठे। तीसरे मय्या फ़ैजुल्लाख़ां पहिले ही स्वामीजी को कहचुका था कि यदि मुसलमानों का राज होता तो लोग आप को जीता न छोड़ते। चौथे ब्राह्मण और पौराणिक पंडित रातदिन स्वामीजी को कोसते थे और कहते थे कि यदि यह कुछ दिन और यहां रहगये तो हमें यहां रहना कठिन होजायगा। ये सब सामान स्वामीजी के विरुद्ध वहां उपस्थित थे, निदान स्वामीजी का काम तमाम करने के लिये नाना प्रकार की अभिसन्धि (साजिशें) होने लगीं। सबसे पहिले स्वामीजी के रसोइये ब्राह्मण देवता को (जिसका नाम धौडमिश्र था

और जो शाहपुरे का रहने वाला था) गांठा गया, दूसरे कल्लू कहार भरतपुर के रहने वाले को अपने हत्थे चढ़ाया। यह एक रात छै सात सौ रुपये का माल चुरा कर खिड़की की राह से भाग गया, रामानन्द ब्रह्मचारी को आज्ञा थी कि खिड़की के पास सोवे, वह उस रात वहां नहीं सोया, पहरे वालों की ओर से जान बूझ कर बेपरवाही होने लगी। जब कभी स्वामीजी उन को किसी अपराध पर डाटते थे तो उस समय हाथ जोड़ कर "जो आज्ञा महाराज" कहदिया करते थे, परन्तु पीछे बात२ मे हंसी उड़ाया करते थे। चोरी का कुछ पता नहीं लगा और न पुलिस के अफ़सरों की ओर से कुछ यत्न किया गया, यह दशा देखकर स्वामीजी यहां से उदासीन हो गये और चलने की मन में सोचने लगे। यह निश्चय करलिया कि २७ सितम्बर को यहां से चल देंगे, परन्तु उस दिन किसी कारणवश न चल सके।

स्वामीजी दिन में सिर्फ़ एक बार भोजन किया करते थे, आमों से उन्हें बड़ी रुचि थी आम खाकर ऊपर से दूध पीलिया करते थे, रात को सोने से पहिले गर्म दूध ठण्डा करके पिया करते थे, २९ सितम्बर की रात को नियमानुसार धौड़ मिश्शर से दूध लेकर पिया और सोगये। थोड़ी देर के बाद उदरशूल और जी मिचलाना प्रारम्भ हुवा (पीछे निश्चित रीति पर मालूम हुवा कि दूध में चीनी के साथ कांच बहुत बारीक पीसकर दिया गया था) प्रातःकाल होने तक स्वामीजीने किसी को नहीं जगाया, वमन होने पर आप ही पानी लेकर मुंह हाथ धोलेते थे। प्रातःकाल को नियम विरुद्ध दिन चढ़े स्वामीजी बिस्तर पर से उठे और निर्बलता से भ्रमण के लिये भी न जासके। अपने लोगों को आज्ञा दी कि हवन प्रारम्भ करो ताकि दुर्गन्धित वायु दूर होजावे। इतने में ही उदरशूल, पेचिश और अतीसार का वेग हो आया, परन्तु इस दशा में भी स्वामीजी ज़रा नहीं घबराये, पूछने पर अपनी वास्तविक दशा बतला देते थे। पहिले डाक्टर सूर्यमल जी का इलाज प्रारम्भ हुवा और उन्हों ने दत्तचित्त होकर बड़े परिश्रम से चिकित्सा की। परन्तु राज की ओर से डाक्टर अली मर्दानखां चिकित्सा के लिये नियत हुये, महाराजा प्रतापसिंह जी की आज्ञा थी कि डाक्टर साहब बड़े योग्य पुरुष हैं उन के इलाज से स्वामीजी को शीघ्र आराम होगा। परन्तु शोक कि उन के इलाज से स्वामीजी की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई, यहां तक कि दिन में तीस २ चालीस २ दस्त होने लगे। डाक्टर सूर्यमल जैसा कुछ इलाज होरहा था, उसे देखकर अपने मन ही मन में कुढ़ते थे और किसी२ से कहदिया करते थे कि मैं लाचार हूं मेरा इलाज नहीं और बड़े तो बड़े ही हैं जो कुछ होरहा है वह दीख रहा है। डाक्टर अलीमर्दान खां के निदान और चिकित्सा की आयुर्वेद के जानने

वाले जैसी तीक्ष्ण समालोचना करते हैं उसका इस अवसर पर वर्णन करना अनावश्यक है, सिर्फ इतना कह देना ही काफी है कि स्वामीजी के साथ इस समय सरासर कपट किया जारहा था। निदान डाक्टर अलीमर्दान खां के इलाज से स्वामी जी इतने कृश और निर्बल होगये कि उनको दिन में कई बार मूर्छा आजाती थी और प्रायः करवट लेना भी कठिन होगया था। मुख, तालु, जीभ, शिर और माथे पर बहुत से छाले पड़गये थे और हिचकियों का तार बन्ध गया, बोलने में भी कष्ट होता था। यह सब कुछ होने पर भी उन की चेष्टा से घबराहट के चिन्ह तक लक्षित नहीं होते थे, कराहने की तौ बात ही क्या थी? कभी आह तक नहीं की। स्वामीजी की दशा को छिपाया जाता था और पूछने पर कुछ का कुछ बतलादिया जाता था, यही कारण था कि डाक्टर अलीमर्दान खां का इलाज बन्द करके किसी और योग्य वैद्य का इलाज शुरुअ नहीं हुवा।

अकस्मात् ११ अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वी को आर्य्य समाज अजमेर के एक सभासद् ने राजपूताना गजट में यह खबर पढ़ी कि जोधपुर में स्वामीजी रोगग्रस्त हैं। यह समाचार उन्हों ने और आर्य्य पुरुषों को सुनाया, पहिले तौ सब ने यही सोचा कि यह किसी शत्रु का काम है अन्यथा यदि स्वामीजी खेदित होते तौ क्या हमें न लिखते या उन के साथ वाले हमें सूचना न देते। ऐसा कभी होसकता है कि ऐसी घटना से हम सब अनभिज्ञ रहें तथापि हृदय सब का व्याकुल होगया और सर्व सम्मति से यह निश्चय हुवा कि शीघ्र जोधपुर पहुंचना चाहिये और यह भेद मालूम करना चाहिये। निदान लाला जेठमल जी अजमेर समाज की ओर से जोधपुर पहुंचे वहां स्वामीजी की दशा देखकर यह बहुत ही घबरागये। स्वामीजी की ओर देखकर कहने लगे कि यह दशा और आपने हम में से किसी को खबर तक नहीं की। स्वामीजी ने बहुत धीरे से कहा कि कोई बात नहीं है, शरीर को कष्ट हुवा ही करता है कोई और बात होती तौ लिखते, हमारी बीमारी का हाल सुनकर आप सब लोग भी घबराजाते इसलिये नहीं लिखा। लाला जेठमलजी तुरन्त अजमेर लौट आये, वहां पहुंचते ही सब को स्वामीजी की दशा से बोधित किया, फिर क्या था चारों ओर तार खटक गये और सारे आर्य्यावर्त्त में कोलाहल मचगया। चारों ओर से सैकड़ों अरजन्ट तार आने लगे, बहुत से लोग सीधे जोधपुर पहुंचे। एक आर्य्य पुरुषने जोधपुर की सारी घटनाओं को विचार कर स्वामीजी को सम्मति दी कि यह जगह विना विलम्ब के छोड़ देने योग्य है, स्वामीजी ने कहा बहुत अच्छा। प्रातःकाल होते ही उन्हों ने महाराजा साहब जोधपुर को कहला भेजा कि हम आबू पहाड़ पर

जावेंगे, महाराजा साहब ने इस के उत्तर में कहा कि ऐसी दशा में मैं क्योंकर आज्ञा दूं ? यदि आप इस समय मेरी रियासत से बाहर जावेंगे तो मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी। परन्तु जब स्वामीजी का संकल्प दृढ देखा तो लाचार चुप होगये ।

१५ अक्टूबर १८८३ ईस्वी को जब स्वामीजी की दशा बहुत ही शोचनीय होगई तब डाक्टर एडम साहब सिविलसर्जन भी इलाज में शरीक किये गये, उन्होंने भी यही सम्मति दी कि इनका आबू पहाड़ पर जाना बहुत अच्छा है। १६ अक्टूबर को स्वामीजी का प्रस्थान निश्चित हुआ। १५ अक्टूबर की शाम को महाराजा साहब जोधपुर अपने मुख्य २ अधिकारियों सहित स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुये और बड़े विनय और अनुराग के साथ कहने लगे कि मेरा यह बड़ा दौर्भाग्य है कि आप ऐसी दशा में यहां से पधारते हैं। यह बात मेरे लिये अनिष्ट है परन्तु मैं इस अवसर पर अधिक आग्रह भी नहीं करसकता। तदनन्तर ढाई हज़ार रुपये नक़द और दो दुशाले विदायगी में स्वामीजी की भेट किये, स्वामीजी ने महाराजा साहब का आग्रह और उत्साह देखकर स्वीकार कर लिये। दूसरे दिन १६ अक्टूबर १८८३ ई० को तीसरे पहर के समय स्वयं श्रीमान् महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश व महाराजा प्रतापसिंहजी स्वामीजी को विदा करने आये, उस समय स्वामीजी पलङ्ग पर सो रहे थे, महाराजा साहब तो पलङ्ग के पास कुर्सी पर बैठ गये और महाराजा प्रतापसिंहजी पलङ्ग के समीप फ़र्श पर बैठ गये। स्वामीजी की आंख खुलने पर धीरे २ बातचीत होने लगी, कामदारों को आज्ञा दी गई कि सोलह कहारों की पालकी तैयार कराई जावे, पालकी के साथ एक पंखाकुली नियत किया गया, दो ख़स के डेरे साथ किये गये, इनके अतिरिक्त और कई सिपाही और सेवक मार्ग में सेवा और शुश्रूषा के लिये साथ किये गये। आबू को तार दिया गया कि स्वामीजी आते हैं, महाराजा साहब जोधपुर की कोठी में ठहरेंगे, सब सामान ठीक २ रहे । सायंकाल के समय स्वामीजी को पालकी में बिठाया गया और वाटिका तक महाराजा साहब जोधपुर पैदल स्वामीजी को पहुंचाने आये । वाटिका के द्वार पर पालकी रुकवा कर अपनी खास फ़लालेन की पेटी अपने हाथों से स्वामीजी की कमर में बांधी इसलिये कि पालकी में आराम करने में कुछ कष्ट नहो, तत्पश्चात् विनय और श्रद्धा से हाथ जोड़ कर स्वामीजी को प्रस्थित किया । और कहा कि जब आप आबू पर रोग से मुक्त हों तो मुझको अवश्य तार द्वारा सूचित कीजियेगा मैं पुनः वहां आप के लेने के लिये आऊंगा; और पीनस के कहारों से कहा कि यदि तुम लोग स्वामीजी महाराज को अतिप्रसन्नता पूर्वक सुख से पहुंचा कर उन की चिट्ठी लाओगे तो तुम

को राज्य से पारितोषिक मिलेगा। ऐसा कह बहुत दुःखी और अश्रुपाती हो महाराजा ज्यों त्यों निजभवन को सिधारे। उस समय महाराजा साहब ने यह भी प्रकाशित कर दिया था कि जो वैद्य स्वामीजी महाराज को चङ्गा कर देगा उसको २०००) दो सहस्र मुद्रा का पारितोषिक इस राज्य से मिलेगा। मार्ग में जहां तक सम्भव था साथियोंने कष्ट न होने दिया, किन्तु तौ भी यात्रा लम्बी थी, कई जगह पर स्वामी जी को चिन्ताग्रस्त होना पड़ा था।

मार्ग में स्वामीजी जहां ठहरते हवन कराया करते थे, एक दिन शाम को अग्निहोत्र होरहा था, इतने में दो वेदपाठी ब्राह्मण कहीं से आकर हवन में शरीक होगये और वेदमन्त्र पढ़ने लगे, चलते समय स्वामीजीने अपने मनुष्य से कहा कि इन को एक२ रुपया भोजनार्थ दे दो। थोड़ी देर पश्चात् कई ब्राह्मण काशी माहात्म्य आदि लेकर आये और पढ़ने लगे, स्वामीजीने आज्ञा दी कि इन्हें अभी यहां से बाहर कर दो और एक पैसा मत दो, पाखण्डियों को कभी पास तक न आने दो।

जिस समय स्वामीजी आबू को जारहे थे उस समय डाक्टर लक्ष्मणदासजी जालन्धर निवासी आबू से अजमेर को आरहे थे। मार्ग में स्वामीजी की दशा अच्छी न देखकर बड़ा साहस करके उनके साथ आबू लौट गये, और २५ अक्टूबर की शाम को स्वामीजी के साथ आबू पहुंचे। यद्यपि अजमेर पहुंचने के लिये उन्हें सर्कारी आज्ञा मिलचुकी थी तौ भी ज्यों त्यों करके दो दिन आबू रहे और स्वामीजी का इलाज करते रहे, परन्तु इनके अफ़सर ने जब अजमेर जाने का बहुत अनुरोध किया तो उन्हों ने इस्तीफ़ा भेज दिया, पर जब यह भी मंजूर न हुआ तौ लाचार अजमेर जाना पड़ा, परन्तु दो तीन दिन के वास्ते दवा और पथ्य आदि सब बतला गये और यह कह गये कि आप अजमेर चले आवें, वहां आप का इलाज बहुत अच्छी तरह से हो सकेगा पहिले तौ स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया, परंतु फिर बहुत कुछ कहने सुनने पर मान गये। आबू पहाड़ पर महाराजा साहिब जोधपुर और शाहपुरे के दो २ मुसाहिब स्वामीजी के पास रहा करते थे और जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डाक्टर एडम साहिब सिविलसर्जन और डाक्टर गुरुचरणदास असिस्टेन्ट सर्जन दो तीन बार स्वामीजी को देखने आये थे। एक दिन खुद महाराजा प्रतापसिंहजी जोधपुर से आबू पर स्वामीजी को देखने आये थे। तारों का यह हाल था कि चारों ओर से बराबर चले आरहे थे, तारघर वाले आश्चर्य में थे कि इतने तार तौ श्रीमान् वाइसराय और गवर्नर जनरल हिन्द के पधारने पर भी कभी नहीं आते।

अजमेर और स्वामीजी का स्वर्गवास

२६ अक्टूबर ८३ ईस्वी को प्रातःकाल स्वामीजी आबू से प्रस्थित होकर उसी दिन रात के तीन बजे अजमेर पहुंचगये। आबूरोड से एक गाड़ी फर्स्टक्लास की स्वामीजी के लिये रिज़र्व कराई गई थी, मार्ग भर कई आर्यपुरुष उनके पास बैठे रहे और जहांतक होसका कष्ट नहीं होने दिया। जब रेलवे स्टेशन अजमेर पर पहुंचे तो अजमेर के आर्यपुरुष पालकी सहित स्वागत के लिये उपस्थित थे। रेलसे उतार कर स्वामीजी को पालकी में लिटादिया और सावधानी से उन्हें एक कोठी में ले आये जो पहिले से इस काम के लिये नियत कर रक्खी थी। उस समय रात के तीन बजे थे अक्टूबर का अन्त था लोगों को सर्दी मालूम होती थी परन्तु स्वामीजी के मुंह से केवल "गर्मी गर्मी" का शब्द निकलता था। कोठी के सब दर्वाज़े खुलवादिये गये तब भी स्वामीजी को शान्ति न हुई। दूसरे दिन से डाक्टर लक्ष्मणदासजी का इलाज शुरू हुवा पर उनकी दशा में कुछ अन्तर न हुवा। एक बार स्वामीजी ने अपने मनुष्यों से कहा कि यहांसे हमको मसूदा लेचलो इस पर सबने कहा कि आराम होने पर हम आपको वहां पहुंचा देंगे इस दशा में बार २ यात्रा करना ठीक नहीं है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि "दो दिन में हम को पूरा आराम पड़ जायगा" यह उत्तर स्मरण रखने योग्य है। अब स्वामीजी के सारे शरीर पर छाले ही छाले दीखने लगे २९ अक्टूबर को स्वामीजी का शरीर अत्यन्त ही निर्बल होगया। अपने सेवकों से कहा कि हमें बैठादो, जब बिठाया गया तो कहा कि छोड़दो, हमें सहारे की आवश्यकता नहीं है सो कितनी देर तक बिना सहारे बैठे रहे। उस समय सांस जल्दी २ चल रहा था पर स्वामीजी उसे रोक २ कर बल से फेंक देते थे और ईश्वर के ध्यान में मग्न हो रहे थे रात को कष्ट अधिक रहा दूसरे दिन ३० अक्टूबर को डाक्टर न्यूमनसाहब बुलाये गये जिस समय उक्त डाक्टर साहब ने स्वामीजी को देखा तो बड़े आश्चर्य से कहने लगे कि धन्य है इस सत्पुरुष को, हमने आज तक ऐसा दिल का मज़बूत कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार नख से शिख तक अपार पीड़ा हो और वह तनिक भी आह वा ऊह तक न करे। उस समय स्वामीजी के कण्ठ में कफ की बड़ी प्रबलता थी, जिसकी निवृत्ति के लिये डाक्टर न्यूमन ने कई उपाय किये परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुवा। ११ बजे दिन से स्वामीजी का श्वास विशेष बढ़ने लगा और कहा कि हम शौच जायँगे उस समय स्वामीजी को चार आदमियों ने उठाया और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया, शौच गये और अपने आप पानी लिया, हाथ धोये, दातन की और कहा कि अब हम को पलंग पर लेचलो आज्ञानुसार पलंग पर ला बिठाया,

कुछ देर बैठ कर फिर लेट गये श्वास बड़े वेग से चलता था और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामीजी श्वास को रोक कर ईश्वर का ध्यान करते हैं उस समय स्वामीजी से पूछा गया कि महाराज ! कहिये अब आपकी तबियत कैसी है ? कहने लगे कि अच्छी है एक मास के पश्चात् आज का दिन आराम का है ।

इस समय लाला जीवनदासजी ने जो लाहोर से स्वामीजी को देखने अजमेर गये थे स्वामीजी से अभिमुख होकर पूछा कि महाराज ! इस समय आप कहां हैं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ईश्वरेच्छा में इसी दिन अजमेर के आर्यपुरुषों ने डाक्टर मुकुन्दलालजी को भी आगरे तार दिया उन्होंने उत्तर दिया कि हम आते हैं ।

स्वामीजी ने चार बजे आत्मानन्दजी को बुलाया, वे आकर सन्मुख खड़े होगये, तौ स्वामीजी ने कहा कि हमारे पीछे की ओर आकर खड़े होजाओ या बैठ जाओ । आत्मानन्दजी उनके सिरहाने आकर बैठ गये, तब स्वामीजी ने कहा कि आत्मानन्द ! क्या चाहते हो ? आत्मानन्दजी ने कहा कि ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे होजावें । स्वामीजी कुछ ठहर कर बोले कि यह देह है इसका क्या अच्छा होगा । और हाथ बढ़ाकर उनके शिर पर धरा और कहा आनन्द से रहना, फिर स्वामीजी ने गोपालगिरि को बुलाया, यह एक संन्यासी काशी से श्रीयुत को मिलने आये थे । स्वामीजी ने कहा कि तुम क्या चाहते हो ? गोपालगिरि ने भी वही उत्तर दिया कि आपका अच्छा होना चाहता हूं । उत्तर में महाराज ने कहा कि भई ! अच्छी प्रकार से रहना ।

जब यह व्यवस्था देखी तौ सब लोग जो अलीगढ़, मेरठ, लाहौर, कानपुर आदि स्थानों से आये हुये थे, सब श्री स्वामीजी के पास आये और सामने खड़े होगये, तब स्वामीजी ने सब लोगों को उस समय ऐसी कृपादृष्टि से देखा कि उसके वर्णन करने को वाणी और लिखने को लेखनी असमर्थ है, वह समय वही था, मानों स्वामीजी हम से कहते थे कि तुम क्यों उदास हो, धैर्य धरना चाहिये । दो २ दुशाले और दो सौ रुपये महाराज ने माँगे, जब लाये गये तौ कहा कि आधा २ भीमसेन और आत्मानन्द को देदो । निदान उनको दिये गये । परन्तु उन्होंने लौटा दिये ।

उस समय श्रीयुत के मुख पर किसी प्रकार का शोक और घबराहट प्रतीत नहीं होती थी । ऐसी वीरता के साथ दुःख का सहन करते थे कि मुंह से कभी हाय या शोक नहीं निकला । इसी प्रकार स्वामीजी को बात चीत करते २ पांच बजगये और बड़ी सावधानी से रहे । इस समय हम लोगों ने श्रीयुत से पूछा कि कहिये अब आप की तबियत का क्या हाल है ? तौ कहने लगे कि " अच्छा है, तेज और अन्धकार

का भाव है" । इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामीजी उस समय सरल बातचीत कररहे थे । साढ़े पाँच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामीजी ने कहा कि अब सब आर्य जनों को जो हमारे साथ और दूर २ देशों से आये हैं बुलालो और हमारे पीछे खड़ा करदो । कोई सन्मुख खड़ा न हो । बस आज्ञा पानी थी यही किया गया ।

जब सब लोग स्वामी जी के पास आगये तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोल दो और ऊपर की छत के दो छोटे द्वार भी खुलवा दिये । इस समय पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आगये । फिर स्वामीजी ने पूंछा कि कौन सा पक्ष क्या तिथि और क्या वार है ? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष की आदि अमावस मङ्गल वार है । यह सुनकर कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की । फिर पहले ही पहले वेद मन्त्र पढ़े तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वर की कुछ उपासना की । फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा सा कथनकर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे, तत्पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लितचित्त सहित कुछ देर तक समाधि युक्त रह नयन खोल यों कहने लगे कि " हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है ! तेरी यही इच्छा है ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ! आहा* ! ! तैने अच्छी लीला की । " बस इतना कह स्वामीजी महाराज ने जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवटली और एक प्रकार से श्वास को रोक एक वार ही निकाल दिया ।

उस समय सन्ध्या के छै बजे थे, दिवाली का दिन था बिक्रम का सम्वत् १९४० कार्तिक वदि अमावस तिथि थी । कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आरम्भ था। ईस्वी सन् १८८३ तारीख़ ३० अक्टूबर और दिन मङ्गल का था । संक्रान्ति के हिसाब से कार्तिक की १५ तारीख़ थी ।

रात्रि भर सारे अजमेर नगर में हाहाकार पड़ा रहा और इसी एक रात्रि में यह खबर भरतखण्ड के प्रायः समस्त नगरों में फैलगई । प्रातःकाल होतेही समस्त आर्या-

---

* नोट– यह " आहा " शब्द उन्हों ने ऐसा कहा था जैसे कि कोई मनुष्य कई बर्षों से बिछुड़े हुए प्यारे मित्र को मिलने पर हर्ष के आवेग में कहा करता है और उस समय की दशा उनकी आन्तरिक प्रसन्नता को प्रकट करती थी और यही कारण है कि उनकी इस विलक्षण दशा ने परम विद्वान् पं० गुरुदत्त को ईश्वरसत्ता का अत्यन्त प्रबल प्रत्यक्ष प्रमाण विन बोले देदिया । विदित हो कि उस समय पं० गुरुदत्तजी एम० ए० चुपचाप खड़े हुए दत्तचित्त होकर इस दशा का निरीक्षण कर रहे थे । और योग सिद्धि का फल देख रहे थे । (आत्माराम)

वर्त्त शोकाक्रान्त होगया। इसी रात्रि में पं० सुन्दरलालजी भी अजमेर पहुंचगये। जैसे तैसे अजमेर वालों की वह रात्रि कटी और प्रातःकाल होते ही विमान रचना की तैयारी की गई। उस के पश्चात् स्वामीजी के मृतकशरीर को अच्छे प्रकार से स्नान कराय चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर पुष्पमाला और वस्त्र पहनाय विमान में अच्छे प्रकार से पधरा दिया। उस समय स्वामीजी का दिव्य मुखारविन्द अवलोकन करने के लिये सैकड़ों मनुष्य चहुं ओर से झपटे परन्तु उनके तेजःपुञ्ज चेहरे को देख कर बेचारे अति विस्मित और शोक समाकुल होरहे। इस प्रकार विमान के समन्तात् खड़ी सुयोग्य मनुष्यमण्डली ने प्रथम बहुकाल तक परमेश्वर से वेदमंत्रों का पाठ किया, तदनन्तर दस बजे के समय विमान उठाया गया और बराबर सब लोग पुष्पवृष्टि करते हुए गाजे बाजे के साथ चल दिये। उस समय सब से आगे स्वामीजी के शिष्य रामानन्द ब्रह्मचारी, देवदत्तजी, गोपालगिरि और पण्डित वृद्धिचन्द्र आदि पंडित जन विमान के आगे२ वेदमन्त्रों का पाठ करते जाते थे। उसके चारों ओर आर्यपुरुषों के यूथ के यूथ उमड़ चले थे। श्रीयुत रायबहादुर पंडित भागरामजी जज अजमेर व रायबहादुर पंडित सुन्दरलालजी सुप्रेन्टेन्डेंट वर्कशाप अलीगढ़ आदि बड़े२ प्रतिष्ठित और भद्रपुरुष मार्ग में यथोचित बड़ी सावधानी से प्रबन्ध करते जाते थे। इस रीति से आगरादर्वाज़े से निकल कर बड़ा बाज़ार, चौक, धानमंडी और दरगाहबाज़ार आदि में होकर स्थान २ पर ठहरते वेदध्वनि करते मलूसर सरोवर के श्मशान में स्वामीजी का विमान जा उतारा। यह स्थान अजमेर नगर से दक्षिण कोणमें एक पहाड़ी के नीचे है और यही आज्ञा स्वामीजी की थी कि नगर के दक्षिण दिशा में हमारा शरीर दग्ध किया जावे। जब वहां सब लोग स्वामीजी का विमान रख कर बैठे और संस्कार विधि में लिखे अनुसार वेदी बनाने का आरम्भ हुआ तो उस परम कठिन अवसर में श्रीयुत् पं० भागरामजी जज ने शोकसागर में डूबे हुये मनुष्यों को धैर्य्य बंधाने के अर्थ श्रीमान् स्वामीजी महाराज की विद्या, परोपकार, देशहितैषिता आदि अनुपम और अद्भुत गुणों की प्रशंसा में एक परमोत्तम व्याख्यान सुनाकर वहांपर एकत्रित हुए सैकड़ों मनुष्यों को भित्तिलिखित चित्र सा करदिया।

वास्तव में पं० भागरामजी का यह सदुद्योग, साहस और धैर्य्य प्रशंसनीय था क्योंकि ऐसे समय पर जब कि बात कहना भी कठिन हो तो व्याख्यान देना कैसा? उस समय पाषाण सम हृदय भी दाडिमवत् विदीर्ण हो गये थे और फूटर कर रुदन करते थे। इस के अनन्तर पं० सुन्दलालजी ने भी अपना हृदय कठोर करके कुछ व्याख्यान देना चाहा और आरम्भ भी किया परन्तु कहते नहीं बना, लाचार हियाहार

चुप हो बैठे इतने में वेदी तैयार होगई और समस्त पुरुष उस के चहुं ओर घुमड़ आये, उन सबों ने मिलकर स्वामीजी के स्वीकारपत्रानुसार २ मन चन्दन, १० मन आम्रादि काष्ठ, ४ मन घी, ५ सेर कपूर, २॥ सेर बालछड़, आध सेर केसर, २ तोला कस्तूरी आदि संचित किये पदार्थ लगाकर तैयार की हुई चिता को रामानन्द द्वारा प्रज्वलित कराय संस्कारविधि लिखित वैदिकरीति से अन्त्येष्टि की, उस समय चिताजन्य सुगन्धि से वह समस्त प्रदेश और समुपस्थितों का मस्तिष्क सुवासित होगया था।

इस प्रकार इस विधान को समाप्त करके चिता पर पहरा बिठला कर सब लोग उक्त सरोवर पर स्नानादि कर अति शोकाक्रान्त सायंकाल को निज निज स्थानों पर गये।

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामीजी का हिसाब किताब, वस्त्र पुस्तकादि पदार्थ जो कुछ कि वेदभाष्य छपने के लिये तैयार होचुका था वह सब श्रीयुत पंड्या मोहनलाल विष्णुलालजी को एक सूचीपत्र के अनुसार (जो स्वामीजी के पुस्तकों में मिला था) सम्हला दिया और जो सभासद् जहां कहीं के उस समय उपस्थित थे उन्होंने उस सूचीपत्र पर अपने २ हस्ताक्षर कर दिये।

इस अवसर पर यह भी लिख देना परमावश्यक है कि श्री १०८ महाराणा उदयपुराधीशजी ने प्रशंसित पंड्याजी को श्रीमान् स्वामीजी की सेवा में भेजने के समय कह दिया था कि यदि जगद्गुरु महाराज का शरीर छुट जाय तो किसी प्रकार से वह चार पाँच दिन तक रक्खा जाय तो अतीव अच्छा होगा, जिससे हमको भी उनका अन्तिम दर्शन होजाय। परन्तु उपस्थित सभ्यों ने यह बात इसलिये स्वीकार नहीं की थी कि डाक्टर से चीर फाड़ करानी पड़ेगी सो यह बात अच्छी नहीं अतः दाहादि सब कर्म्म इसी स्थान पर समस्त भक्त जनों ने श्रीजी महाराज की आज्ञानुसार यथाविधि समाप्त किया॥

स्वामीजी के गुणों का परिचय।

स्वामीजी का कद छः फीट लम्बा था। उनका शरीर दृढ़, पुष्ट एवं स्थूल था, उनके बाल मुंडे हुए थे, एक चादर उनके ऊपर की पोशाक थी और एक धोती नीचे का लिबास। वह एक कम्बल पर बैठा करते थे, बहुत देर तक उनके साथ बात चीत करनेसे हरेक आदमी जानता था कि वह और साधुओं की तरह कोई नशा नहीं पीते थे। उनके शरीर का रङ्ग गेहुंआ सफेदी लिये हुये था। उनकी आंखें न बड़ी न छोटी शान्त और तेज से भरी हुई, उनका चेहरा गम्भीर था वह भूमि पर पद्मासन से बैठना पसन्द करते थे, उनका मुख किसी कदर फैला

हुआ था, आवाज़ सुरीली, उच्चारण स्पष्ट, वक्तृता सरल और मधुर एवं प्रभाव उत्पन्न करने वाली थी। उनकी उपदेशशक्ति अत्यन्त प्रेरणा करने वाली और उनकी तर्कशैली विचित्र और युक्तियुक्त होती थी। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण और स्मृति बढ़ी हुई थी। गद्य पद्य के अनेक लम्बे प्रमाण मुखाग्र होने से उनकी स्मृति की विचित्र शक्ति मालूम होती थी। विरोधियों के क्रोध से उनका हृदय कभी विचलित नहीं होता था। उनकी आकृति प्रत्येकदशा में सौम्य और गम्भीर रहती थी, गालियों के बदले में उन्होंने कभी किसी को गाली नहीं दी। उनकी मधुरभाषिता से उनके विरोधी भी उनकी प्रशंसा करने में बाधित होते थे। उनके गम्भीर पाण्डित्य पर भारतवर्ष के पण्डित जन चकित होते थे और प्रबल युक्तियों से ईसाई मुसलमान भी घबराजाते थे। प्रत्येक विषय पर उनकी सम्मति सुनिश्चित होती थी, समस्त आक्षेपों का पहले से ही मुंह बंद करदिया जाता था। उनकी भाषा सरल और अपने भावों को अच्छे प्रकार प्रकट करने वाली और सर्वसाधारण के समझने के योग्य थी। उनके कथन करने की शैली ऐसी अनुपम, विचित्र और मन को मोहने वाली थी कि सुननेवाले आश्चर्य्य में रहजाते थे। यद्यपि उनकी व्याख्या से कभी २ सुनने वाले हँस पड़ते थे परन्तु तौभी उनके चेहरे पर किसी प्रकार का अभिमान नहीं प्रकट होता था। गम्भीरता और प्रगल्भता अपने भावों के प्रकट करने में सदा दिखलाई जाती थी और कोई कामना चाहे कैसी ही प्रबल क्यों न हो उनको सच्चाई से नहीं हटा सकती थी। एकाग्र चित्त होकर सुननेसे वे बोलने वालों के आशय को शीघ्र और ठीक २ समझ जाते थे। उनकी लोकप्रियता के कारण साधारण मनुष्य भी उनके साथ बोलने को उद्यत होजाते थे। वे स्वभाव में बड़ेही सरल और मिलनसार थे। संसार की चमक दमक उनके मन को ज़राभी नहीं लुभा सकी थी, जब कभी उन को अंग्रेज़ी पढ़ने की सम्मति दीजाती थी वह शुभचिन्तक सम्मतिदाताओं से कहते थे कि जो कुछ मुझमें कमी है उस को आप पूरा करें। और कहते थे कि मैं उन में से हूं जिन्हें चाहें कितना ही विद्या का गौरव क्यों न हो, अवतार बनने के लिये उद्यत नहीं होने का। जैसे कि किन्हीं २ चालाक मनुष्यों ने किया है। उन्होंने संस्कृत परही अपना सन्तोष प्रकट किया, जब कि बाबू केशवचन्द्रसेन से उनकी इस विषय में बात चीत हुई।

स्वामीजी की मृत्युका समाचार समस्त भारतवर्ष में एक दम फैलगया। यही नहीं कि स्वामीजी की मृत्यु का शोक आर्यजाति (हिन्दू कौम) को ही हुआ हो, किन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के हृदय भी इस दुर्घटना से शोकाक्रान्त होगये थे। इस कुसमा-

चार को जो देशहितैषी सुनता था वही शोकग्रस्त हो जाता था। यह शोक समाचार प्रायः भारतवर्षीय समस्त समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ था, जिन में से हम कुछ थोड़े से समाचार पत्रों की नकल यहां छापते हैं। इनमें जो कहीं कहीं यत्किञ्चित पौराणिक भाव हैं वह लेखकों के विश्वासानुसार हैं नाकि हमारे मन्तव्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती का शोकवृत्तान्त।

हिन्दीप्रदीप प्रयाग।

यह भी हम इस हिन्दुस्तान का अभाग ही कहेंगे कि इस के ऐसे हितैषी परलोक यात्रा के लिये दत्तचित्त हो झट पट सिधार गये। सिवाय कतिपय प्रतारक धूर्त ब्राह्मण और कोरे पण्डितों के जो इन की गुप्तनीति के मर्म समझने में सर्वथा असमर्थ हैं और कोई प्रसन्न न हुवा होगा। आर्यसमाज की बांह टूट गई। सरस्वती का भण्डार लुट गया। यहां की बिगड़ी समाज के संशोधन का फाटक ढैगया। यह इन्हीं महात्मा का पुरुषार्थ है कि भारतवर्ष के धर्मतत्व का सर्वस्व वेद जिसे बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण भी केवल पाठमात्र पढ़लेने के (अर्थज्ञान की ओर से निपट मूर्ख थे) और कुछ भी न जानते थे कि इस में क्या चील बिलार भरा है, सिवा "मक्षिका स्थाने मक्षिका" के सो भी केवल पाठमात्र में अर्थ से क्या सरोकार? उसे सब जाति और चारों वर्ण के लोग समझने लगे और अब बहुतों के मन में लगी है कि इस वेद रूपी अगाध महोदधि में गहरी डुबकी मार इस की थाह लेनी चाहिये कि इस में क्या २ रत्न भरे हैं। अतिरिक्त वेद के उद्धार के हिन्दूसमाज की सैकड़ों बिगड़ी बातों के सुधारने में भी कोई कलबल इन्हों ने न छोड़ रक्खा। "क़द्र मरदुम बाद मरदुम" सरस्वती महाशय के न रहने पर अब इन की क़दर लोगों को होगी। कच्चे जौहरी जिन्हों ने हीरे को कांच समझ रक्खा था चाहे जो कहें, पर हमतो अंगरेज़ी (मोटो) सिद्धान्त पर दृढ़ रह दयानन्द की सर्वतोभाव से सराहना ही करेंगे।

हा! आज भारतोन्नतिकमलिनी का सूर्य्य अस्त होगया। हा! वेद का खेद मिटाने वाला सद्वैद्य गुप्त होगया। हा! दयानन्द सरस्वती आर्यों की सरस्वती जहाज़ की पतवारी विना दूसरों को सौंपे तुम क्यों अन्तर्धान होगये? हा! सच्ची दया के समुद्र! हा! सच्चे आनन्द के वारिद! अपनी विद्यामयी लहरी और हितोपदेश रूपी धारा से परितप्त भारतभूमि को आर्द्र कर कहां चले गये। हा! चार दिन के चतुरानन! इस असभ्यता प्रिय मण्डली में आपने अपनी विलक्षण चतुराई को क्यों इस प्रकार सरलभाव से फैलाया। क्या आप नहीं जानते थे कि काल करालने भारत को असाध्य आर्त बनाने के निमित्त ब्राह्मणों से तपः स्वाध्याय विद्याहीन विषय

लम्पट और शिश्नोदरपरायण बनादिया। क्षत्रियों को ऐसा चौपट और लतमर्द करडाला कि वे बेचारे किसी काम के ही न रहे वह धनुर्वेद वह अस्त्रशस्त्रविद्या वह शूरता वीरता वह अमर्ष जो अग्नि की उष्णता के समान उन का स्वाभाविक धर्म था सो अब कहीं देखने सुनने को भी न रहा जिन के पूर्वपुरुषों की सङ्गति से जङ्गल के रीछ और बन्दर भी सुधर कर सद्वीर और योद्धाओं की पदवी को प्राप्त हुये और देवताओं की कोटि में मिल गये, अब उन्हीं की सोहबत सङ्गति में वह विकार होगया है कि बड़े २ स्वाभाविक वीरप्रकृतियों को स्त्रैण कि वा क्लीबभाव सहज में प्राप्त होजाता है। जहां वशिष्ठादि महर्षियों की शिक्षा और नीतिविद्या का विचार होता था तहां ढाड़ी कत्थकों की कथा से कालक्षेप होता है सो ऐसे कौतुकी काल कराल को तुच्छ जान आपने मुनियों की वृत्ति निधड़क हो ग्रहण करली। यह न समझा कि वह निठुर निर्दयी काल आपकी प्रतिज्ञा और सत्यसंकल्प को पूरा होने देगा या नहीं। हा! अब वे परोक्षफलदर्शक शृगालगण जो तुम्हारे सिंहनाद के भय से छिपते फिरते थे आज ऊंटे टीले पर बैठ पूंछ फटकारेंगे और वे उच्छिष्ट भोजी पेटार्थी कौवे जो अपने पेट के कारण तुम्हें वैरी जानते और काँव २ करते डोलते फिरते थे सो सब कैसे आज मन मगन हो, आनन्द बधाई बजायंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस अभागे भारत की भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आप ने अपने जीवन पर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला। क्या महन्त और मठाधीशों के समान आप भी सुखाश्रयी और देहाराम नहीं होसकते थे ?। वैकुण्ठ पहुंचाने का बीमा और स्वर्गीय भोग विलास की हुंडी का ब्यौरा फैलाते तौ हज़ारों लाखों चेले चेलियों के तन मन धन को बात की बात में आप आत्मसात् और समर्पण क्या नहीं करा सके थे ? हा! निर्लेप निःस्वार्थ शिक्षा प्रदायक! हा! बन्धुवात्सल्यकुलकुमुदसुधाकर! इस नीच और खोटे भाव भरे भारत देश में भटकते २ आप कहां से आगये ? हा! स्वामी दयानन्द! आप का यह पवित्र विग्रह योरुपखण्ड के किसी देश में इस गुरु भाव के साथ प्रकट हुआ होता तौ जिस उन्नतिशैल के शिखर तक पहुंचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे उस को अवश्य पूरा कर देते और देश का देश आप का सहकारी और सहायक बन जाता। वे केवल आप के पवित्र नाम और सत्कीर्ति ही के संस्थापन का उद्योग न करते बरन अपने कर्त्तव्य कर्म को उत्तरोत्तर ऐसा चमकाते कि एक दयानन्द रूपी मूल प्रकाण्ड से सहस्रों दयानन्द रूपी शाखा प्रशाखा प्रकट हो जातीं और भारतश्रीविघातक काक शृगालों का क्षणिक प्रमोद जो आपके अन्तर्धान होने का संवाद सुनकर उत्पन्न हुआ है उस का अंकुर ही न जमता। आप

का वह वेदार्थ क्षेत्र और अपूर्व सदाव्रत जो आपने ब्राह्मणों की सोहाग पिटारी से निकाल आर्य मात्र के लिये सुगम करदिया है कभी न बन्द होने पाता। हम को क्योंकर आशा हो कि आप के उस भारी बोझ उठाने और असिधारा पथ पर चलने का फिर भी कोई साहस बांधेगा। हम खूब जानते हैं कि आप उस निर्विवेकी विधाता के मुख में कारिख पोतने गये हैं जिस ने इस पवित्र भारत भूमि को सृज कर उस के योग्य सत्पुरुष न पैदा किया। हा भारतभारतीवनराजकेसरी! इस उजाड़ विपिन को सनाथ किये विना क्यों इस वेग से ऊपर को उठ धाये? क्या कोई पाखण्ड मत सुर लोक में भी फैला है, जिस के निर्दलन के लिये आप झट पट वहां को सिधारे? सच २ आप की पवित्र आत्मा देवताओं के समुदाय पति होने के योग्य थी। इस में कुछ सन्देह नहीं कि आप सरीखे देशहितैषी महात्माओं का पवित्र विग्रह इस असार संसार में चिरकाल तक नहीं रहता। इस बात की प्रत्यक्ष साक्षी के लिये बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं। जिस प्रकार मन्दाग्नि और क्षुधारहित रोगियों के जठरानल धधकाने को सद्वैद्य लोग कटु तिक्त अम्ल रसों का व्यवहार करते हैं, ऐसे ही सद्धर्मविमुख और तत्वभ्रंशित जनों के मुरझाये चित्त की प्रफुल्लता के लिये मूर्ति पूजा खण्डन प्रभृति युक्ति को आप काम में लाये। आप के इस भाव को या तो प्राचीन महर्षिगण जानते होंगे जिन के हार्दिक अभिप्राय के मूल पर आपने इस कष्टसाध्य व्यवसाय को उठाया था। या वे देशहितैषी उन्नतहृदय जानते होंगे जिन के मानसिक सरोरुह पर देशोन्नतिकिरणधारी भगवान् भास्कर का प्रकाश पहुंच गया है।

अब इस प्रसङ्ग के समाप्त करने के पूर्व यह अल्पज्ञ अपना अभीष्ट खोलकर कहता है कि जिस पुरुष के अनुताप से यत्किञ्चित् यह निवेदन किया गया, उसकी मेरी जान पहचान केवल एक बार हुई थी जिसको १३ तेरह वर्ष से अधिक बीते कि यहां वासुकेश्वर पर थोड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत हुई थी, तब से स्वामी जी कई वार यहां पधारे पर इसने अपने को उनकी शिक्षाजनित कर्त्तव्य के अयोग्य बन्धनासक्त समझ फिर उनसे न मिला अब उनके शान्त होने का समाचार सुन उन बातों को कह सुनाया जो आर्य पदधारियों को हृद्गत करनी चाहियें। अब सब सज्जनों से उचितानुचित की क्षमा मांग ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि भारत के जडतान्धकारापहारी दयानन्द सा दूसरा सूर्य्य शीघ्र प्रकट करदे। हमको उस सत्पुरुष के शुद्ध भाव और सत्यसन्धता पर विश्वास होता है कि उक्त सत्पुरुष के आरब्ध कार्यों में कभी विघ्न न होगा किन्तु जिन सज्जनों के भरोसे यह कार्य स्वा-

मीजी छोड़ गये हैं वे लोग इस समर्पित कार्य को बड़ी उत्तमता और उज्ज्वलता के साथ चमकायेंगे। यह कुछ नई बात नहीं है, सदैव से अच्छे २ लोग अपने प्रियतमों को अपना कर्त्तव्य कार्य सौंपते ही आये हैं। देखिये! सन्ध्या समय भगवान् भास्कर जगदन्धकारनाशन कार्य्य अग्निदेव को सौंपकर आप अस्ताचल को सिधारते हैं और सबेरे अग्निदेव सूर्य के भरोसे विश्राम करते हैं। इन दोनों की परस्पर मैत्री और सहायता का कभी विश्लेष नहीं होने पाता।

यह कौन नहीं जानता कि स्वामीजी को सत्य शास्त्र और सद्विद्या का प्रचार और भारतवर्ष की मूर्खतान्धकारनिवारण तन मन से अङ्गीकार था जिसको वे अपने अङ्ग २ और रोम २ से समय प्रति समय प्रकाशित करचुके हैं। इस अवस्था में उन विद्वानों को जो सङ्केत मात्र से प्राणि मात्र के भाव को बूझ सकते हैं उनको वैकुण्ठ वासी स्वामीजी के मुख कमल निःसृत आशयों के मूल पर उनके अभिलषित भाव का समुत्थान कठिन नहीं है। किन्तु जहां ऐसे अविरल विद्वान् विद्यमान हैं कि यदि इस बड़े कार्य की पूर्ति के लिये वे नियुक्त किये जायं तो निस्सन्देह अपनी विद्यामयी धारा से सींच उस वृक्ष में फल लगा सकते हैं जिसको उक्त महात्मा प्रफुल्लित और हरा भरा छोड़ गया है। कुछ आश्चर्य नहीं है कि जिस कार्यसमर्पित मण्डली के सभा शिरोमणि यावदार्यकुलकमलप्रभाकर श्री महाराणा उदयपुराधीश हैं, वह कार्य अवश्य निर्विघ्न और उत्तमता के साथ उन्नतिशैल की चोटी तक पहुंचेगा और सर्वदा सुरक्षित रहेगा।

भारतबन्धु अलीगढ़।

हम को यह सुनकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० कार्त्तिक वदी ३० संवत् १९४० को श्रीमान् दयानन्द सरस्वतीजी महाराज वैकुण्ठ को पधारे। क्योंकि ऐसे २ विद्वानों के इस भूतल पर न रहने से इस भरतखण्ड का अभाग्योदय दिन पर दिन बढ़ता चला जाता है। श्री बाल शास्त्रीजी के मरण से जो दुःख हम भारतवासियों को हुआ था, उसी से हम सब लोग अत्यन्त व्याकुल थे, उसके कुछ दिन पीछे ही "क्षतलवण" न्याय से यह दुःख हम भारतवासियों को उपस्थित हुआ। अब कोई ऐसा प्रबल साहसी सभाचतुर वावदूक सर्वशास्त्रकुशल इस भारतवर्ष में दृष्ट नहीं पड़ता, जो स्वामीजी में निम्नलिखित गुण थे तिन गुणों का आधार हो। एक स्वामीजी महाराज की यह प्रशंसा दर्शनीय थी कि उन्होंने मुसलमानों को यह निश्चय करादिया कि आर्यमत यवन मत की अपेक्षा सनातन और श्रेष्ठतर है। बहुधा देखा गया कि बड़े २ मौलवी जो फ़ारसी और अरबी के यथार्थ ज्ञाता थे वे स्वामीजी की वक्तृता के सन्मुख मूक

होजाते थे। और ऐसी उनकी बुद्धि की स्फूर्ति थी कि जहां किसी ने प्रश्न किया और उन्होंने उसी समय प्रमाण और युक्तिसहित उत्तर दिया। और ऐसा कोई एक भी पण्डित उनके सामने नहीं आया कि जो उनके समान वावदूक और सभाचतुर हो।

इसी प्रकार अंग्रेजों को भी यह उन्होंने दिखा दिया था कि तुम्हारे मत से भी आर्यमत श्रेष्ठ है। यह भी बहुत वार पादरियों के संग उत्तर प्रत्युत्तरों से निश्चित हो चुका था। इनकी विद्वत्ता की विलायत आदि इतर देशों में ऐसी प्रशंसा हुई कि आजतक ऐसी किसी विद्वान् की नहीं हुई। और वेदों का टीका भी आधुनिक किसी पण्डित ने नहीं किया। यद्यपि वह कहीं२ हमारे पूर्वाचार्य्यों के बनाये हुये टीकाओं के प्रतिकूल है तथापि जिसकी हम प्रशंसा करते हैं उनकी उस विद्वत्ता का प्रदर्शक तो अवश्य है। इस से हम भारतवासियों को भारतभूमि का भूषण ही स्वामीजी को समझना चाहिये। परन्तु काल बड़ा बलवान् है जो ऐसे २ ग्राहों को भी ग्रस कर डकार नहीं लेता।

महद्राजसभा उदयपुर।

दोहा—नभ चव ग्रह शशि (१९४०) दीप दिन, दयानन्द सहसत्व।
वय उनसठ वत्सर बिच, भयो तन पञ्चत्व ॥ १ ॥

मनहरनछन्द—जाके जी है जोर ते प्रपंच फिलासिन को अस्त सो समस्त आर्य्य मण्डल तें मान्यो मैं। वेदके विरुद्धी बुद्धी सत्य के निरुद्धी सदा मन्द भद्र आदिन पै सिंह अनुमान्यो मैं। ज्ञाता षट् शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता आर्यविद्या अर्क गत अस्ताचल जान्यो मैं। स्वामी दयानन्दजू के विष्णुपद प्राप्त हूते पारिजात को सो आज पतन परमान्यो मैं ॥ २ ॥ (यह वाक्य साक्षात् श्रीमान् महाराणासाहब विरचित है)

योग को अगार गिरधार दृढ़ आसन को शिक्षक महीपन को त्रिदिवस सिधाइगो। कुटिल कुराहिन को वाम मत चाहिन को हाय पशुहायन को इष्ट दिन आइगो। कहे जयकरण चार वर्ण के विवरण को धर्म निज दयानन्द परम गति पाइगो। तीन वेद शासन को सुमति प्रकाशन को आज सत्यभाषण वासन विलाइगो ॥ ३ ॥

क्षीर नीर आरस अनारस मिलान भये पूरन परीक्षा पार क्यों न भिन्न करतो। विधि से विवेकी बुध संशय विथा के बीच धार धन्य उत्तर हिय में सार भरतो। चारवाक हिंसक चबाय चुम चुम चुंगल में दयानन्द द्वन्द्व फन्द कबहूं न परतो। रहते धरे न मोती मन्त्र वेदवारिधि के राजहंस मण्डल न तरतो ॥ ४ ॥

(कविराज श्यामलदासजी)।

सार षट् शास्त्रन को निगम अधार नित्य पार परलोक है असार जग करिगयो। पिशुनन को पाही और कुटिल कुराही दाही सत्य को सदाही साही नाक नेह धरिगयो। कहे कृष्ण दयानन्द सुमति सुधामी नामी नाम वामी कूर कामिन को काल रूप टरि गयो। हाय हित आर्यन को बाहि के प्रवाह बीच आज वेद वारिधि को सेतु सो बिखरि गयो ॥ ५ ॥

संपादक बनारस प्रेस कवि केदार शर्म्मा।

सोरठा–हाय! हाय!! हा!!! काल, तोसे बस कछु ना चले।
बड़ विक्रम दसभाल, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ १ ॥
महाधनुर्धर धीर, अश्वकला महँ कोउ न भे।
जस अर्जुन वर वीर, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ २ ॥
करण द्रोण पुरु राज, भोज परीक्षित विक्रम।
रघुनृप पाण्डु दराज, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ३ ॥
ऐसे समय मँझार, युगल वीर प्रकटत भये।
सरजंग सर सालार, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ४ ॥
दाया केर निधान, दायानन्द सरस्वती।
वक्ता वेद प्रधान, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ५ ॥

दोहा–दायानन्द सरस्वती, गुर्जर कुल अवतंस।
अबही थोड़ी उम्र में, क्यों तन कियो विधंस ॥ १ ॥
कै प्रतिमा पूजन हिते सुरपुर होत विचार।
ता खण्डन करवे हिते, गये शक्र दरबार ॥ २ ॥
कै नर पुर सब जीत कै, सुरपुर जीतन हेत।
कैंचुलि इव तनु त्यागि कै, भागेऊ कृपानिकेत ॥ ३ ॥
कै कछु मन शंका हुई, वेद अर्थ के मांहि।
सो पूछन हित चलि गये, सत्वर ब्रह्मा पांहि ॥ ४ ॥
दायानन्द सरस्वती, देशोन्नति हित आप।
जितो परिश्रम करिगये, तितो तुम्हारो ताप ॥ ५ ॥
अब तो पण्डित अस अहंहि, लिखत व्यवस्था झूंठ।
धर्म्माधर्म्म गुने नहिं, गथ चाहत हैं मूंठ ॥ ५ ॥
तुम तो चन्दा करि किते, विद्यालय थित कीन्ह।
सज्जनसिंह महेन्द्र कहं, सभाध्यक्ष करि दीन्ह ॥ ७ ॥

गुणग्राहक उपदेशवड़, जस कीन्हेउ सन्मान ।
सानि पान द्रव्यादिते, कोउ नृप नाहिं जहान ॥ ८ ॥
स्वामी जब लों थित रहे, भारत भूमि मँझार ।
सिंह सरिस गर्जत रहे, शंकित शशक अपार ॥ ९ ॥
मूरख मुख भंजन किये, जँगवक्ता बड़ नाम ।
कितने सन्मुख भे नहीं, समुझ शारदाधाम ॥ १० ॥
सज्जन मन रंजन करत, भंजन मत पाखण्ड ।
दिनदिन कीरति गाइहैं, भलजन भारतखण्ड ॥ ११ ॥

कवित्त-चारिहू दिशान नगरान महं जाय जाय, पण्डितन हेरि वाद करिके प्रचारे हैं।
पण्डित विवादमाँहि हो गये परास्त जेते, तेते मनसोहैं करिसोहं न निहारे हैं।
बगरयौ अपार जस सारे नगरान माँहि, विजय बैजन्ती फहरात हिन्द भारे हैं।
विद्या चौदह निधान वक्ता महान् वेद, स्वामीदयानन्द सम नाहिं होनिवारे हैं।१।

देशोपकारक लाहौर। जब कि श्रीमान् स्वामीजी महाराज की इस जहानफ़ानी से रहलत फ़र्माने की खबरे वहशत असर मुवर्रिखे ३० अक्तूबर सन् ८३ बज़रिये तार आर्य्यसमाज मुलतान में पहुंची, तो फ़ौरन मातिमी नोटिस बग़रज़ इज़हार रंज व अलम जारी की गई। मुताबिक़ उसके एक बड़ा मजमा समाज के मकान में जमा हुआ। जिस में अलावा मेम्बरान समाज के बाशिन्दगान् शहर अहलेहिनूद व अहले इस्लाम बकसरत शामिल थे। उस वक्त सब से पहले एक दूकानदार ने बावजूद न होने मेंबर समाज निहायत सोज़ व गुदाज़ से स्वामीजी महाराज के औसाफ़ हमीदा बयान करके निहायत रंज निस्बत वफ़ात उनके ज़ाहिर किया। बाद अज़ां लाला चन्दाराम सेक्रेटरी व काशीप्रसाद वाइस प्रेसीडेंट वग़ैरह चन्द साहबान ने अपनी ऐसी पुरसोज़ तक़रीरें सुनाईं कि जिनसे तमाम हाज़रीन जलसा फूट २ कर रो उठे। और समाज निहायत आह व ज़ारी से बर्खास्त हुआ। इस तौर पर कई तारीखों में यह मातिम वहां होता रहा। और उस में हिन्दू व मुसलमान बराबर जमा होकर ग़मगीन होते रहे। बतौर नमूना यहां पर हम मुंशी वाजिदअली साहब सेक्रेटरी अंजुमन इस्लामिया का एक मज़मून जो उन्होंने लिखा हुआ सुनाया था, बजिंसही हवाले क़लम करते हैं।

ए! आर्यावर्त! तेरी बदक़िस्मती पर मुझे रोना आता है। ए! आर्यावर्त! तेरी यतीमी पर मेरा दिल ख़ून होता है। ए! आर्यावर्त! तेरी बेकसी पर मुझे ग़ैरत आती है। ए! आर्यावर्त! तेरी बेपरोबाली पर मेरा दिल कुम्हलाया जाता है।

कैसी जल्दी तेरे प्यार के सरचश्मे को बन्द कर दिया गया । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हमशीरख्वार परवरिश पाएं । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम इन वाही और तबाही फन्दों से निकलें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम बेजा बेवजह बेज़रूरत और बेसूद क़यूद से रिहाई पावें। ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम उन वाहियात रस्मियात के फन्दों से निजात पाएं । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम आपस के निफ़ाक़ को दूर करें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम बनीनौ इन्सान को अपना भाई समझ कर उन से मोहब्बत करना सीखें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम उलूम अलविया की तहसील करें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम सच्चे धर्म को फिर सीखें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम अपना खोया हुआ नाम फिर हासिल करें । ए ख़ुदा ! क्या तुझे यह मंज़ूर न था कि हम उस पाकधर्म को सीख कर तेरी उन आला नामाअ की कैफ़ियत उठाएं जो तूने अपने बन्दों के वास्ते मख़सूस की हैं ? नहीं२ यह सब कुछ तेरी मर्ज़ी के मुताबिक़ और तेरी मंशा के मुआफ़िक हो रहा था । फिर क्यों तूने हम को इकलख्त इस तरह बे सरो सामान कर दिया यानी हमारे सच्चे हामी और हादी श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज को जो हमें यह सब कुछ सिखाते थे ३० ता० अक्टूबर सन् ८३ ईस्वी के ६ बजे शाम को बुला लिया । दिवाली की रात गो मसनूई चिरागों से रोशन थी लेकिन हक़ीक़ी आफ़ताब आलमताब ग़रूब हुआ । हम बिल्कुल नादान थे, वह हमें हर एक चीज़ शिनाख्त कराता था । हम कम ताक़ती से उठ नहीं सकते थे वह हमें उठाता था । हम बेमायगी इल्म से बात नहीं कर सकते थे वह हमें बोलना सिखाता था । हम एक दलदल अज़ीम में फंसे हुये थे, वह हमें उस में से निकालता था और ख़ुश्क ज़मीन पर लाता था । हम रस्मात की बेड़ियां पैरों में और तास्सुबकी हथकड़ियां हाथों में दिये हुए थे, वह हमको उन से निजात देता था । हम अपने भाइयों से हिक़ारत करते थे, वह हम को रिफ़ाक़त सिखाता था । हम अपनी आखों पर पर्दे और दिलों पर मोहरें रखते थे, वह उनको उठाता था । हम बईहमां कुछ अपने तईं समझे हुये थे, वह हमें बताता था कि धर्म के वास्ते ज़ाहिरी जहान् फ़िज़ूल है । हम उस ग़लत इम्तियाज़ को सवाब जानते थे, उसने उसको ऐब साबित कर दिया । हमने अपना नंग व नामूस गंवा दिया था, वह हमें फिर दिलाना चाहता था । ए ख़ुदा ! हम तुझ से बहुत दूर हो गये थे, वह हमको तुझ से मिलाना चाहता था । लेकिन ए ख़ुदा ! तूही जाने तेरे दिल में क्या आई

कि तूने उसको हमसे इतनी जल्द जुदा कर दिया !!! तेरी बातें तूही जाने। अब भी रहम कर।

विक्टोरिया पेपर स्यालकोट।

शेर—अपने रोने के हमें लिखने हैं दफ्तर सैकड़ों।
ए सबा ! तैयार कर मौजों के दफ्तर सैकड़ों ॥

एशिया कोचक में मुख्तलिफ़ ज़लज़लों के आने और जावा के आतिशफ़िशां पहाड़ों के फटजाने से स्वामी दयानन्द सरस्वती का इन्तिक़ाल कम अफ़सोस की जगह नहीं है क्योंकि ऐसे लायक़ शख्स का जीना जिसका सानी इल्म संस्कृत में कोई न हो, लाखों आदमियों की ज़िन्दगी पर तरजीह रखता है और एक ऐसे शख्स का मरजाना जो एक ऐसे मज़हब के उसूलों से कमायंबग़ी आगाह हो, जो हिन्दुस्तान में ज़ियादेतर फैला हुआ है लाखों आदमियों के मरने से ज़ियादा अफ़सोसनाक है। जिन लोगों का यह ख़याल था कि जो सुर्ख़ी सुबह और शाम के वक्त मशरिक़ और जनूब की तरफ़ नज़र आती है कोई न कोई आफ़त ज़रूर ढायेगी, उनका यह ख़याल सही निकला क्योंकि इससे बढ़कर हादिसा हिन्दू गिरोह पर और क्या होगा। यह हिन्दुओं की कमनसीबी है कि स्वामी साहब जैसा शख्स उनकी नज़रों से जल्द ग़ायब होगया। स्वामी साहब की यह आर्ज़ू कि हिन्दू या आर्य अपने मज़हबी उसूलों से वाक़िफ़ हों और उन्हें मालूम हो कि वेद मुक़द्दिस उन्हें क्या हिदायत देते हैं और उन्हें अपना कैसा तरीक़ बनाना चाहिये। एक ऐसी कोशिश थी जिससे हिन्दुओं के लिये निजात का दर्वाज़ा जल्द खुलने वाला था और वे जल्द तारीकी के ख़यालात को छोड़कर अपने ख़यालात रौशन बनाने वाले थे और उनके ख़ानये दिल में वहदानियत के चिराग़ जलने वाले थे। अफ़सोस है कि ये हसरतें हमारे दिल की दिल ही में रहगईं। वाय हसरता !!!

शेर—तिफ़ली के गिरिये का यह खुला हाल वक्ते मर्ग।
आग़ाज़ ही में रोते थे अंजाम के लिये।

कौन नहीं मरा और कौन नहीं मरेगा मगर ऐसे शख्स का मरना जिसकी पैदायश सिर्फ़ हिन्दुओं को राहेरास्त दिखलाने के वास्ते हुई थी। बेशक एक हादिसा जांकाह वाक़िया है और हिन्दू इस वाक़िये को सुनकर जिस क़दर मातिम करें बजा है। शेर—अपने रोने की हक़ीक़त ऐ सबा। काग़ज़े अबरी से लिखवाते हैं हम।

स्वामी दयानन्द, नाम के संन्यासी नहीं थे बल्कि हक़ीक़त में संन्यासी थे और उनको किसी किस्म का तमा नफ़सानी नहीं था। तमा का न होना कोई छोटीसी तारीफ़ नहीं है बल्कि ऐसी तारीफ़ है कि जो शाज़ व नादिर ही किसी खुशनसीब

के हिस्से में आती है। कहने को तो सब ही क़ानअ व परहेज़गार होते हैं, हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं और खाने के और। हम इस वैशाख अर्थात् अप्रैल के महीने में जब उदयपुर की सियाहत कररहे थे तो वहां मोतिबर लोगों की ज़बानी सुना था कि स्वामी साहब को जो उस ज़माने के क़रीब वहां तशरीफ़ लाये थे दर्बार उदयपुर की तरफ़ से दो हज़ार रुपया पेश किया गया था मगर उन्होंने उसमें से सिर्फ़ किराये का ख़र्च क़बूल किया और बाक़ी तमाम रुपया उस सभा के अग़राज़ के पूरा करने वाले सर्माये में शामिल करवा दिया जो इनके इन्तिक़ाल के बाद हिज़ हाइनेस महाराणा साहब बहादुर वाली उदयपुर की सर्परस्ती में उनकी वसीयत के मुताबिक़ कार्रवाई करेगी और इसका जहां तक हमको मालूमात का ज़ख़ीरा हासिल हुआ है यह मन्शा होगा कि वह उनकी तसनीफ़ात को मुश्तहिर करवाकर अवाम में फैलाये और वेदों के तर्जुमे को मुकम्मिल करवाने की सई करे। कौन कह सकता है कि स्वामी साहब की इस कार्रवाई की पैरवी आसानी से होसकती है, यह नफ़्स इन्सान को दम नहीं लेने देता, दम दम में उसके ख़यालात को बदलता रहता है। मगर जो शख़्स इस्तिक़लाल के साथ एक नई रविश पर क़ायम रहे और ख़सूस ऐसी रविशपर कि जिसपर क़ायम रहना ख़ुदायताला हरएक इन्सान को नसीब करे, वह किस क़द्र मुबारिक समझा जाता है। हम जानते हैं कि इस सभा के प्रेसीडेण्ट वह इल्मदोस्त, मुल्कदार, फरमांरवा हैं जिनकी रियासत राजपूताने में अव्वल दर्जा रखती है और ख़ुदा के फ़ज़ल से वह बज़ाते ख़ुद सभा के अग़राज़ की ताईद के लिये उसकी कार्रवाइयों में बहुत सा रुपया ख़र्च करसकते हैं। मगर ताहम ज़रूरत इस बात की है कि इस सभा की शाखें हरएक प्रेसीडेंसी यानी हरएक सूबे के तमाम बड़े २ शहरों में क़ायम हों, जो स्वामी साहब के अग़राज़ के पूरा होने की कोशिश करती रहें।

इस सभा के मेम्बरों की तादाद में निहायत कसरत हो, बल्कि जो हिन्दू हो वह अगर दोआना माहवार इस सभा की अयानत करने की हिम्मत रखता हो तो भी वह इस सभा का मेम्बर बनाया जावे ताकि स्वामी साहब के भी हिन्दू मज़हब के उसूलों और वेदों की मन्शा और अहकाम से अवाम को आगाह होने के सामान जमा होते रहें और स्वामी साहब के ख़यालात और उनके मालूमात से हिन्दुओं को वाक़िफ़ होने का मौक़ा मिले। हम ख़याल करते हैं कि हिन्दू साहिबान हमारी इस दर्ख़्वास्त को क़बूल फ़र्मावेंगे और ऐसी कोशिश अमल में लावेंगे जिससे यह साबित हो कि गो स्वामी साहब नज़रों से ग़ायब हैं मगर उनके क़ायममुक़ाम इण्डिया

के हर एक हिस्से में मौजूद हैं और हिन्दू मज़हब या आर्य मज़हब की तरक्क़ी के सामान जाबजा मुहय्या कराये जाते हैं। जो लोग ज़ाती तअस्सुब रखते हैं या जिन की आंखों पर खुदी या ग़फलत का पर्दा पड़ा है वह स्वामी साहब की हयात में भी मुख़ालिफ़ रहे और अब भी उनको हमारी इस दर्ख्वास्त के मानने में तअम्मुल होगा, मगर जो लोग हकीकत हाल से आगाह हैं या समझते हैं कि स्वामीदयानन्द क्या थे, या उनके ख़यालात हमारी भलाई का किसकदर मुम्बा हैं या उनकी कोशिश हमारी तरक्क़ी और बहबूदी के लिये कैसी थी या उनके जाबजा फिर कर वाज़ करने से क्या मुराद थी। या वह किस नियत और ख़याल के आदमी थे। या उन्हें हिन्दुओं को किस आलम का दिखलाना मंज़ूर था, वह हमारी इस दर्ख्वास्त से इत्तिफ़ाक़ करेंगे और उनकी जाबजा यादगारें क़ायम करने के ख्वाहां होंगे और चश्मेनम होकर कहेंगे कि या इलाही! हम पर यह क्या ग़ज़ब नाज़िल हुवा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती हमको आंखों के सामने नज़र नहीं आते या हमारी बीनाई में कुछ क़सूर है या तेरी कुदरत ही का यह ज़हूर है।

स्वामीजी के स्वर्गवास होने की ख़बर सुन हमारे आंसू नहीं थमते, कलेजे को धड़कन सी लगी है मगर करें तो क्या करें कोई चारह भी है? आख़िर यह शेर पढ़ते हैं और हैरानी से पुश्त बदीवार का आलम है। शेर— बुज़ुर्ग परवरिश फ़र्मा पहले दाग़ देते हैं। यह कह कि कौन घर ख़ाली रहा मातिम से॥

यहां से आगे अंग्रेज़ी पत्रों की सम्मति है।

बंगाली कलकत्ता। स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे। लोगों ने इनके निर्धारित धर्ममार्ग और तदुपपादित वेदार्थ को सम्मान नहीं दिया तो न दें, परन्तु हम कहते हैं कि धर्मोपदेश करने में उनकी शक्ति और उत्साहादिगुण उनमें निःसंदेह अद्वितीय थे। यद्यपि उन्होंने जन्म से इस असार संसार का परित्याग करदिया था और वे पूरे योगी थे तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उनमें देखने में आया वैसा कदाचित् ही किसी अन्य में देखने में आवे। उनका परलोक होने से केवल उनके संस्थापित समाजों की ही अनिवार्य हानि हुई हो, ऐसा नहीं किन्तु विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु से भरतखण्ड मात्र को इस समय असीम जोखम पहुंची। उनकी अप्रतिम विद्वत्ता कभी किसी को भूल नहीं सकती बल्कि पूर्ण निश्चय है कि सदैव समझदार लोग उन को स्वदेश का भूषण कह कह कर अपने चित्त में हुलसते रहेंगे॥

ट्रिब्यून लाहौर। हमको दारुण शोकसागर में डुबोकर परमधाम में जा विराजे। स्वामीजी महाराज के उपदेशों का प्रकाश केवल आर्यसमाजों पर ही पड़ा हो ऐसा नहीं किन्तु अन्य समस्त मत और सम्प्रदायी लोगों के जी पर भी उनके उपदेशों के साँचे का नक्शा ऐसा जम गया है कि जिससे उन सबका आन्तरिक अभिप्राय साफ तबदील बदल की कोशिश पर कोशिश कर रहा है। उनका तमाम कथन व उपदेश हम सर पर धर बैठे हैं ऐसा नहीं तो भी यह कहे विना निर्वाह नहीं होता कि वे वास्तव में बड़े सुयोग्य पुरुष थे, तथा उनकी बुद्धि अत्यन्त विशाल थी। जिस वसीले से उन्हों ने वे समस्त मत उखाड़ फेंके जिनको कि उनके आचार्यों ने शास्त्रों का मूल बता २ कर चलते करदिये थे। उनका निरन्तर इस जगत् में नाम रहे इस दृष्टि से उनके भक्तजनों ने इस शहर लाहौर में एक ऐंग्लोवैदिककालिज स्थापन करने का विचार किया है इस में बहुत दिन की अपेक्षा है। परन्तु स्वामीजी से प्रीति रखने वाले भी मनुष्य असंख्य ही हैं, वे उतना अवश्य जमा कर छोड़ेंगे ऐसी हमको खूब खातिरी है।

इण्डियन एम्पायर कलकत्ता। आर्यसमाजों के सुप्रसिद्ध संस्थापक आजकल के परम नामवर सुधारक श्रीमान् दयानन्दजी महाराज के लोकान्तर गमन कर जाने की दारुण दुःखदायी वार्त्ता प्रसिद्ध करने का हमको बड़ाही शोक और पश्चात्ताप होता है। उनकी अगाधविद्वत्ता खण्डनमण्डनादि अनुपम कोटिक्रम और परम प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रीति आदि अपूर्व गुण कभी किसी को भूलने वाले नहीं हैं।

हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता। स्वामी दयानन्द सरस्वती का परलोक सुनकर हम को परम शोक है। वे बड़े उत्तम वेदान्ती थे तथापि वेदों की ऋचाओं का नया ही अर्थ करते थे। जिस समय प्रशंसित महाशय संस्कृत बोलते थे तो उनके उस भाषण की मिठाई व सुथाई चित्त को अजीब आनन्द दिया करती थी।

इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता। संस्कृत का पूरा मर्मज्ञ होना आर्यों के धर्म ग्रन्थों की पारंगतता, मनोहर वाक्चातुर्य्य, उत्तम आदरातिथ्य इत्यादि जो २ दिव्यगुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में चाहियें वे सब स्वामी दयानन्द जी में निवास पा रहे थे। धर्म का ठीक २ सुधार होने मात्र की गर्ज़ से जो उन्होंने आर्यसमाज जहां तहां स्थापित किये वे थोड़े ही दिन टिकेंगे, ऐसा कोई भूल कर विचार में न लावे। आगे हिन्दुस्थान में किस प्रकार का धर्म्म चलता होगा? इसका निर्णय करने के समय कभी

कोई स्वामीजी को नहीं भूलेगा। हिन्दूधर्म्म में फिर कर पूर्ववत् शुद्धता लाकर उस में आधे से ऊपरी परमाधुनिक पाखण्डमतों को निकाल बाहर कर देना मात्र केवल स्वामीजी के उद्योग का मुख्य हेतु था।

हिन्दू आब्ज़रवर मद्रास। संस्कृत के सच्चे और पूरे पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सच्चे उत्साह के साथ काम करने वाले एक मनुष्य थे। उनका परलोक होने से भरतखण्ड को बड़ा ज़बरदस्त सदमा बैठा। क्या यह थोड़ा शोक है!!!

टाइम्स पञ्जाब रावलपिण्डी। स्वामी दयानन्दजी में अति प्रचुर परमोदार स्वदेशाभिमान होने के हेतु से उन की याद उन के देशबान्धव निरन्तर करते रहें यह तो परम इष्ट है ही है, लेकिन सत्य और निस्सीम स्वदेशाभिमान के जोड़ में और जो २ गुण दरकार होते हैं वे भी सब उन में विराजमान थे। श्रीशङ्कराचार्य्य और तत्कालीन अन्य इतर विद्यामहासागरों की पूर्ण तुलना के ये पण्डित शिरोवतंस थे। हाल के अति निकृष्ट समय में परमोत्साह, बुद्धिमत्ता, उद्योग और दृढ़ता आदि प्रशंसनीय गुण कहीं किसी मनुष्य में खोजने से नहीं पाये जाते, वे इनमें मानो कूट २ कर परमात्मा ने भरदिये थे। उन्हों का बताया हुआ धर्म्म और उन की स्वीकार की हुई बातों को यदि कोई मान्य न करे तो मत करो, परन्तु अब तक इस भरतखण्ड में जैसे अन्य और कितने ही परम सुप्रसिद्ध महापुरुष होगये हैं उन्हीं की कोटिके इस समय ये एक दयानन्दजी हुये, ऐसा न मानना बड़ी ही बुज़दिली कहावेगी। श्री जगदीश्वर इस कार्पण्यदोष से सब को बचावे।

गुजरातमित्र सूरत। हा! परमप्राचीन रीति की भांति धर्म के सुधार करने वालों में से आज एक भरत खण्ड का अनुपम चमकीला मुकुटमणि खो गया! हा! परमपवित्र सर्वोच्च वेदग्रन्थों का समीचीन विचारयुक्त सभ्य मान्य अर्थ दिखाने वाला दयानन्दाभिधानी भास्कर का अस्त हो गया! हा! इतिहासों में निर्मल कीर्त्तिध्वजा के चमकाने वाले परम पण्डितवर का अवतार आज समाप्त हो गया! इन्हों ने सिद्ध कर दिखाये वेदार्थ की सत्यता में यदि कोई सन्देह माने तो मानो, परन्तु इन का उपदेश करने में औत्सुक्य, भाषा का माधुर्य्य, वाक्चातुर्य्य सब को अपने सन्मुख प्रसन्नता पूर्वक बातकी बात में चुप कर देने की अपूर्व शक्ति, हृदयंगमता, सद्भाव और हेतु की निर्मलता, निश्चय किये हुये विषयों की दृढ़ता, चित्त का सीधा और साधापन, चालढाल और वृत्ति की स्वतन्त्रता, तथैव धर्मभ्रम, मूर्तिपूजा और निरर्थक दम्भ आदि के प्रचारों से घोर संकष्ट सागर में डुबोये गये स्वदेश को फिर

कर उन्नत शिखर पर धर देने की प्रबल उत्कण्ठा आदि सद्गुण अब कहीं दृष्टिगोचर नहीं होने के। ऐसा अनुभव इस देश के प्रत्येक मनुष्य को अब सदैव आता रहेगा। हा शोक !!!

कवि रामदास छबीलदास वर्म्मा बी. ए. एल. एल. बी., बी. सी. एल. एम. आर. ए. एस्. बैरिस्टर एटला कृत संस्कृत कविता।

(स्थान-कैंब्रिज देश यूरुप)

अहो नितान्तं हृदयं विदूयते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम्।
सम्प्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं कविम् ॥ १ ॥

वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, उन्नताशय, मेधावी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती का लोकान्तरगमन सुनकर हमारा हृदय खेद से अत्यन्त खिन्न होता है ॥ १ ॥

दीपपंक्तिचितभूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले।
शोकजालतिमिराकुले तु सत्युत्ससर्ज स शरीरबन्धनम् ॥ २ ॥

दिवाली की रात को दीपावली से पृथ्वीतल के प्रज्वलित होने पर और तारागणों से आकाश के प्रकाशित होने पर, शोकरूप अन्धकार के व्याप्त होने पर अपने शरीर को त्याग दिया ॥ २ ॥

निःशेषपीताखिलशास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निजालैः।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यानविशुद्धचेताः ॥ ३ ॥

स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथन्नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण शास्त्रों के सार को निःशेष रूप से पान करने वाले, वैदिक तपरूप अग्नि से अपने आत्मा को पवित्र करने वाले, केवल ज्ञानरूप अञ्जन से अपने बुद्धिरूप नेत्रों को प्रकाशित करने वाले, एकब्रह्म के ध्यान से अपने चित्त को शुद्ध करने वाले ॥ ३ ॥

अपने देश की उन्नति में एकमात्र तत्पर और स्वप्न में भी स्वार्थबुद्धि को अपने मन में स्थान न देने वाले महात्मा ने अपने समस्त उपयोगी कर्मों को छोड़ कर क्यों स्वर्ग में जाने की इच्छा की ? ॥ ४ ॥

विज्ञाय तस्याद्भुतचारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम् ।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्यगुणैरुपेतम् ॥ ५ ॥

क्या कहीं देवगणों ने उसके अद्भुत और सुन्दर वृत्तान्त को सुनकर और उन से आश्चर्य में होकर उस दिव्यगुणयुक्त पुरुष को उसका दर्शन करने के लिये तो स्वर्ग में नहीं बुला लिया ? ॥ ५ ॥

कृतयुगोचित एष जनः किल न चिरमर्हति वस्तुमसौ मयि ।
मनसि संकलितं कलिनेति किं स च हृतोऽखिलसाधुमनोरथैः ॥ ६ ॥

क्या कहीं कलियुग ने अपने मन में यह विचार कर कि यह महात्मा सत्ययुग में होने योग्य था मुझमें चिरकाल तक रहने के योग्य नहीं है, इन शुभ मनोरथों से तो उसको नहीं हरलिया ॥ ६ ॥

गुणानपेक्षेन निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हृतः सः ।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात् पुनः प्रपन्नः प्रकृतिं निजां वा ॥ ७ ॥

क्या कहीं गुण की अपेक्षा न करने वाले समय ने तो अपना प्रभुत्व दिखलाने के लिये नहीं हरलिया ? । अथवा पिछले कर्मों के योग से मनुष्य शरीर धारण करके फिर अपनी प्रकृति को प्राप्त होगया ॥ ७ ॥

संदेहदोलामधिरूढमेवं मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढं चरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषोऽस्ति ॥ ८ ॥

निदान मेरा यह मन संशयाविष्ट हुआ किसी कारण को निश्चय नहीं कर सका, भला विधाता के विचित्र और गूढ़ चरित्र को कौन मनुष्य जानने में समर्थ है ॥ ८ ॥

दिनानि पूर्वं कतिचिद्य आसीदस्मद्धृतास्मन्नयनोत्सवाय ।
स्मृतेस्सपन्थानमितोऽधुना तत् कथं विधेः स्याल्लसितं प्रमेयम् ॥ ९ ॥

कुछ दिन पहिले जो हमारी आँखों को आनन्द देता था आज वह स्मृति के मार्ग में पहुंच गया, तो फिर विधि का उल्लसित कैसे प्रमेय होसकता है ॥ ९ ॥

तातगेहवसतिर्विमानिता संश्रितश्चरम एव चाश्रमः ।
धर्मतत्त्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥ १० ॥

पितृगृह में रहना जिसने पसन्द नहीं किया और ब्रह्मचर्य से ही जिसने चतुर्थ आश्रम का आश्रय लिया और धर्मतत्व के जतलाने में जिसने मनुष्यों के दुर्वचन भी सहे ॥ १० ॥

स्वं विहाय मुहुरुच्छ्रितं पदं वारिदः श्रयति वाहिनीतटम् ।
केवलं परहिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥ ११ ॥

जिस प्रकार मेघ परोपकार के लिये अपने उच्चपद को त्यागकर निम्नस्थली का आश्रय लेता है, इसी प्रकार परहित के लिये श्रम करने वाले सज्जन अपने अपमान को कुछ नहीं गिनते ॥ ११ ॥

यः पाखण्डमतैकखण्डनरतो वेदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलबहुलेन सततं संसेव्यमानो युधि ।
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान्समारोपय-
द्दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥ १२ ॥

जो धर्मरूप संग्राम में शास्त्रों की बलवती सेना से सेव्यमान हुआ वेदरूप शस्त्रों से पाखण्डमतों का खण्डन करता था और सत्पक्ष और सभाओं के मिष से दिशाओं में विजयस्तम्भों को आरोपण करता था अब उसके समान कहां कौन पुरुष मिल सकता है ! ॥ १२ ॥

एक एव खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद्भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥ १३ ॥

आकाश में सूर्य एक ही है और एक ही चन्द्रमा भी है, पृथ्वी में एक ही वह वेदवित् था, इसमें द्वित्व मैंने कभी नहीं सुना ॥ १३ ॥

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः ।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्बोभवीति विषयो न नेत्रयोः ॥ १४ ॥

सूर्य अस्त होकर फिर हमारे नयनगोचर होगा, चन्द्रमा भी छिपकर आकाश में पुनः दीखेगा, परन्तु यह सत्पुरुषों में अग्रणी पुरुष एकबार गया हुआ हमारे नेत्रों का विषय न होगा ॥ १४ ॥

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम् ।
तच्च्युतस्समहात्मातः स्मृतावेव निधीयताम् ॥ १५ ॥

इन्द्रिय और अर्थों से उत्पन्न हुआ ज्ञान सर्वथा निश्चयात्मक नहीं होता, इसलिये उससे वह महात्मा पृथक् हो गया, अब उसको स्मृति में ही रखना चाहिये ॥ १५ ॥

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायादनारतम् ।
तस्य नामामरं च स्यादित्येतद्व्यवसीयताम् ॥ १६ ॥

जिस से संस्कार की हुई वाणी अनवरत उन्नति को प्राप्त हो और उसका नाम अमर हो ऐसा उद्योग करना चाहिये ॥ १६ ॥

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च ।

साधूनां मरणात्पश्चादभिधानं तु जीवति ॥ १७ ॥

अनेक ऋषि, कवि और विद्वान् नष्ट हो गये, साधु पुरुषों का मरने के पश्चात् नाम जीता है ॥ १७ ॥

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यते जनः ।

उज्जीवितार्षविद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥ १८ ॥

श्रीमद्दयानन्द से बढ़कर और कौन साधु पुरुष दीखता है जिसने हमसे उपेक्षा की हुई आर्षविद्या को जिला दिया ॥ १८ ॥

सैवैषा नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये ।

शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः ॥ १९ ॥

अपने हित की वृद्धि के लिये उस संस्कृत विद्या की पुष्टि करनी चाहिये और शास्त्रतत्व के बोध से युवा पुरुषों की बुद्धियों को शुद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥

(अन्तर्लापिका)

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति-
धर्मः परः कः कवि वाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्बिभेति कः,
स्वामी दयानन्दसरस्वती यमी ॥ २० ॥

प्र० बताओ पद्मिनियों का सूर्य क्या है ? (उ० "स्वामी") प्र० श्रेष्ठ धर्म्म क्या है ? (उ० "दया") प्र० कवियों की वाणी में क्या रहता है ? (उ० "आनन्द") प्र० कण्ठ का आभूषण क्या है ? (उ० "सरस्वती") प्र० यमराज से कौन नहीं डरता ? (उ० "यमी") इन पांचों प्रश्नों का क्रमशः उत्तर श्लोक के चतुर्थपाद में यह आगया कि "स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी" ॥ २० ॥

रागणी जोगिया—ताल शूल

उपज्यो दण्डी छिपे हैं पाखण्डी, डरे हैं घमण्डी धूर्त्त अन्याई ॥ १ ॥
विद्या पाकर निकला दिवाकर, तिमर हटाकर ज्योति दिखाई ॥ २ ॥

आये हैं स्वामी दयानन्द नामी, गर्जे सभा में सिंह की नाईं ॥ ३ ॥
सत्यका मण्डन दम्भका खण्डन, कर पांउ तलक की धूल उड़ाई ॥ ४ ॥
डरे हैं प्रमादी अनीश्वर वादी, पौराणिक दें राम दुहाई ॥ ५ ॥
बड़े बड़े नास्तिक होकर आस्तिक, हाथ जोड़ आये शरणाई ॥ ६ ॥
कर शास्त्रार्थ रच सत्यार्थ, सत्योपदेशों की धूम मचाई ॥ ७ ॥
लोक लोकान्तर मत मतान्तर, कर न सका कोई उन से लड़ाई ॥ ८ ॥
देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर, मान चुके उन की पण्डिताई ॥ ९ ॥
वेदों के बल से युक्ति प्रबल से, कलियुग की काया पलटाई ॥ १० ॥
तप अखण्ड से तेज प्रचण्ड से, रिपुगन की छतिया धड़काई ॥ ११ ॥
योगीन्द्र महर्षि आत्मदर्शी, दिग्विजय जिनके हिस्से में आई, ॥ १२ ॥
अमीचन्द ऐसा होना कठिन है, धर्म्म अवलम्बी वेद अनुयाई ॥ १३ ॥
कष्ट उठाये नहीं घबराये, धर्म्म न हारा यदि विष खाई ॥ १४ ॥

ओ३म्

महर्षि के जीवन पर एक दृष्टि।

महापुरुषों के जीवन दो भागों में विभक्त होते हैं। एक पहिला भाग जिसमें वे शुभ इच्छा वा सत्य संकल्प धारण करते हैं और दूसरा वह भाग जिसमें धारण की हुई इच्छा वा संकल्प की पूर्ति पुरुषार्थ द्वारा करके दिखाते हैं। अथवा यों कहिये कि महापुरुषों के जीवन एक प्रश्नोत्तर के रूप में होते हैं। साधारण पुरुषों के जीवन केवल इच्छा और प्रश्नों के ही संघात होते हैं, परन्तु महापुरुषों के जीवन प्रश्न और उनके उत्तर साथ लिये होते हैं। यदि हम्बोल्ट ने नदी, पर्वत और प्राकृत दृश्यों के तत्व जानने का प्रश्न उठाया तो उसका समाधान करने के लिये उसने दो वार इस पृथिवी की परिक्रमा भी की, यही कारण है कि उसके पुरुषार्थ की स्तुति करने वाले उसको "न्यूटन" से बढ़कर पदवी देते हुये "अरस्तू" से उपमा देते हैं। प्रश्न की उच्चता से उत्तर देने वाले की महिमा का पता लगता है, साधारण प्रश्न के उत्तरदाता का संसार में विशेष मान नहीं होता, हां कठिन से कठिन प्रश्न के समाधान करने वाले को संसार बड़ी से बड़ी पदवी देने के लिये तैयार है। पक्की सड़क पर चलनेवाला कण्टक पूरित मार्ग में चलनेवाले की अपेक्षा शूर नहीं कहला सक्ता, कच्ची सड़क पर चलने वाले की अपेक्षा छुरी की धार पर चलने वाला अधिक सम्मान पाता है।

जब हम उस प्रश्न की ओर ध्यान देते हैं जिसका उत्तर देने के लिये स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन को लगाया तो निस्सन्देह हमें उस प्रश्न का अत्यन्त गूढ़ और कठिन होना स्वीकार करना पड़ता है। वीरों के हृदय उस प्रश्न का नाम सुनकर हिल जाते हैं, कब सम्भव है कि कोई उस प्रश्न के उत्तर देने का साहस करे। नेपोलियन के लिये अपनी वेगवती इच्छा के बल से यूरोप के नरेशों से खिलौनों की तरह खेलना और एल्प्स पहाड़ की चोटियों पर डेरे लगाना सुगम था, परन्तु

वह अन्तिम समय में अपने आप को उस प्रश्न का उत्तर देने के लिये सर्वथा अयोग्य पाता है, जिसका समाधान करने के लिये स्वामी दयानन्द ने बीड़ा उठाया था। सिकन्दर और महमूद से प्रतापी नरेश संसार में रक्त की नदियां बहाते हुये उस प्रश्न के आगे हाथ बांधे दीन हुये खड़े दिखाई देरहे हैं। जिस पशु को कोई छेड़ना नहीं चाहता, उस पर दयानन्द काठी लगाकर सवार होना चाहता है। जिस सिंह का गर्जन सुनकर शूरों का हृदय कांप उठता है उस शार्दूल को पालतू और अधीन बनाने के लिये दयानन्द उद्यत होता है। सहोदरा की मृत्यु ने उसके हृदय को ठोकर लगाई और उसको मृत्यु से छूटने का कठिन प्रश्न समाधान करने के लिये देदिया। मृत्यु क्या है और उससे किस प्रकार मनुष्य बच सकता है? यह प्रश्न उसके मन में बसगया, उसका सारा पुरुषार्थ इस प्रश्न का उत्तर देने और अपने दृष्टान्त से संसार को इस बात का जाग्रत प्रमाण देने के लिये था कि मनुष्य मृत्यु पर इस प्रकार विजय पासकता है। मृत्यु और उसका समाधान यह महर्षि के जीवन का सारांश है।

इस प्रश्न की उच्चता और आवश्यकता उसकी रग २ में समा गई। कोई भी शक्ति पृथिवी पर उसकी न टलने वाली इच्छा और दृढ़ता की ऊर्ध्वगामिनी ज्वाला को बुझाने का काम नहीं करसकती थी। आकाश में उड़ने वाले पक्षी को क्या कोई भूमि में रेंगना सिखा सक्ता है? माता का स्नेह और पिता की विभूति उसकी दृष्टि में जचती नहीं, उसका उद्देश्य महान् है और ये वस्तुयें उस उद्देश्य की सिद्धि में सहायता नहीं देसकतीं। विवाह की कोमल और सुंदर रज्जु से बहुधा उसके माता पिता उसको बांधने का यत्न करते रहे, परन्तु जब विवाह मृत्यु के प्रश्न का समाधान नहीं करसकता तो वह उसके बन्धन में क्योंकर पड़ सकता है? जब देखा कि पिता के गृह में इस महान् प्रश्न की मीमांसा करने का कोई साधन उपस्थित नहीं है तो घर छोड़ वन को प्रस्थान किया। जिस प्रकार जलधारा सागर में पहुंचने के लिये अपने स्वाभाविक वेग से मार्ग के प्रतिबन्धक चटानों को काटती और पत्थरों को बहाती हुई कभी थमती नहीं जबतक कि वह समुद्र से जाकर न मिलजावे, ठीक इसी प्रकार उसकी आत्मरूप धारा सत्य की आकर्षण शक्ति को अपना आदर्श बनाती हुई पद पद पर लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भ्रान्ति और अविद्या के उन्नत चटानों को काटती हुई और उनमें से अपना मार्ग बनाती हुई कहीं भी ठहरती हुई दिखाई नहीं दी, जबतक कि उसने परमानन्द के सागर को नहीं पालिया।

विज्ञान के तत्त्व का अनुसन्धान करने वाले महात्माओं ने प्रायः अपनी समाधि-

स्था बुद्धि के उदाहरण दिये हैं। प्रश्नोंका समाधान करने वाले ज्ञानियों के पास से प्रायः सेनायें निकल जाती हैं परन्तु उनको ध्यानावस्थित होने के कारण उनकी खबर तक नहीं होती। सन् ५७ के भयङ्कर गदर का कोलाहल उस के समीप होता रहा, परन्तु उस की अन्तर्मुख वृत्ति ने कभी आंख उठाकर उस की ओर नहीं देखा, इस समय उस ने वह साधन जन्म से धारण किया हुआ था, जिस से उत्तम साधन संसार के इतिहास में कहीं मिल नहीं सकता। यह बाल ब्रह्मचर्य्य का वह दृढ़, सर्वोत्तम और सर्वार्थ साधक साधन था, जिस की महिमा वर्णन करते हुये वीर धीर शिरोमणि पितामह भीष्मजी महाराजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि "जो जन्म से लेकर मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य रखता है उसको संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो अप्राप्य हो"। जिस ने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य धारण किया हो उस के सन्मुख शारीरिक आत्मिक उन्नति साम्यावस्था में अपना स्वरूप प्रकाशित करदेती है। उसके शरीर की ओर दृष्टि करें तो ६ फीट लम्बा कद, प्राचीन ब्राह्मणों के कद का पुनः दर्शन कराने वाला, सुन्दर और सुडौल शरीर वीर्य रक्षा और मांस मदिरा से रहित पुष्टिकारक दुग्ध आदि शुद्ध भोजन की उत्तमता का प्रत्यक्ष प्रमाण देरहा है। शिरके मध्य भाग की ऊपर को उभरी हुई खोपड़ी को यदि सामुद्रिक विद्या (Phrenology) की सहायता से देखें तो एक विज्ञान से भरे मस्तिष्क का बोधन करा रही है। आंखों से बुद्धिमत्ता टपकती हुई और चेहरे पर ब्रह्मतेज चमकता हुवा * सब के मनको आकर्षित कररहा है। काशी के प्रसिद्ध पण्डित छिप २ कर उन की संस्कृत की शुद्ध वक्तृता को सुनने जाते थे इसलिये कि वह प्रणाली शब्दोच्चारणकी सीखें जोकि ठीक २ वैदिक है। उन का स्वर जो वेद मन्त्रों को गान विद्या के नियमानुसार † अलापता था बतलाता है कि वह किसी राग विद्या के आचार्यसे योग्यता को बांट लाये हैं। स्वामी विरजानन्द के सदृश उनकी स्मरण शक्ति भी आश्चर्य मय थी ‡।

* हमने उनका दर्शन किया और उनसे बात चीत की, उनके दर्शन से जिसकी कान्ति और तेज राजवत् देदीप्यमान् था, हम आकर्षित होगये थे। सच मुच उनका समाज जिस दशा में है उस दशा में न होता यदि उनकी निजावस्था प्रभावशालिनी न होती। ब्रह्म लोग स्वामीजी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे "ब्रह्म अख्बार यूनिटी एण्ड मिनिस्टर" (आर्यपत्रिका १४ दिसम्बर १९९७ ई० से)।

† अग्नि अमो महो इत्यादि मन्त्र जो भूमिकाके पृ० १६१ पर हैं उनको स्वामीजी गज़ल की रीति पर गाया करते थे इनके अतिरिक्त उनमें से भी कई मन्त्र जो वेद संगीत नामक लघु पुस्तक में दिये हैं और जो पुस्तक विरजानन्द प्रेस लाहौर से मिलसकती है, स्वामीजी गान विद्या के अनुसार प्रायः गाया करते थे इस का निश्चय पं० गुरुदत्त जी ने पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या तथा अन्य महाशयों से पूछ कर किया था

‡ उनकी स्मृति के विषय में मैक्सम्मुलर का यह कथन है कि उनको समस्त वेद कण्ठस्थ थे, उन का सारा हृदय वेद विद्या से परिपूर्ण था।

विद्या के आदर्श स्वामी दयानन्द को ग़दर के समय कई प्रकार के गुप्त जौहर दिखाने और गार्फ़ील्ड के समान प्रतिष्ठित होने का अच्छा अवसर प्राप्त था, परन्तु सांसारिक शासकों को रिझाने और नाम के पीछे मरने के लिये वह पैदा नहीं हुवा था, उस को जगत् के शासक की आज्ञा में चलने और अपने आत्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के दृढ़ पैरोंपर न थकने वाला यात्री विषम और कठिन मार्गों को योगियों और ऋषियों की खोज में उल्लंघन कररहा है। हिमालयके बर्फ़ानी चट्टान जोकि रुधिर की गति को जमादेते हैं उन पर से सुक़रातकी तरह नंगेपांव और सुक़रात से बढ़कर नग्नशरीर एक कौपीन धारण किये हुये ब्रह्मचर्य्य के तपोबल से वह विचरता हुवा अपनी वेगवती इच्छा का प्रमाण (सबूत) देरहा है।

विषम और दुर्गम मार्गों में कांटों और झाड़ियों से अपने शरीरको छिद्वाता हुवा और रुधिर से अपने अङ्गों को सींचता हुवा हम्बोल्ट के समान नर्मदा की घाटियों को खोजने जाता है और इस यात्रा में उस से बढ़कर अपनी दृढ़ता और वीरता दिखाता है। हम्बोल्ट एंडीज़ के पहाड़ों में आरामके सामान और खिच्चरों को साथ लेकर जाता है और कहीं अपनी उत्साह वृद्धि के लिये स्पेन के राजा की सहायता पाता है। परन्तु स्वामी दयानन्द अपनी यात्रा में किसी राजे महाराजे की सहायता नहीं लेता और न सुख के साधन लिये हुये है, उस को अकेले ही सूर्यवत् अन्धकार को दूर करना है और ऐसा करने में वह अपने कर्म से आदित्य ब्रह्मचारी के शब्द को सार्थक बना रहा है।

दूसरा पूर्ण साधन जो इस से भी बढ़कर संसार को आश्चर्य में डालने वाला और जिस का ब्रह्मचर्य्य खुद साधन है। जिस का प्रारम्भ ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति के साथ २ होता है और जोकि मनुष्य को परम पवित्र धार्मिक जीवन के विना प्राप्त नहीं होसकता। जिस की भट्टी में ब्रह्मचर्य्य से इकट्ठा किया हुवा वीर्य जलाना पड़ता है। जोकि आत्मा को अपनी निज शक्ति से इन आंखों की सहायता के विना देखने का सामर्थ्य देता और प्रकृतिके भेदों और मृत्युके महा कठिन प्रश्नका सामधान करा सकता है। जिसकी खोज में ही स्वामी दयानन्द को जङ्गल, पहाड़ और नदियों की परिक्रमा देनी पड़ी, जिस की प्राप्ति पर ही मनुष्य, मनुष्यश्रेणी को छोड़ ऋषिश्रेणी में प्रविष्ट हो जाता है, जिसके समान कृष्ण देव कहते हैं कि कोई बल नहीं वह ऋषि मुनियों का परम साधन योग ही है।

अमरजीवन प्राप्त करने के लिये स्वामी दयानन्द आबू और हिमालय के योगिराजों से इस महाविद्या को धारण करता रहा । उनको श्रुति बतला रही थी कि "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" ईश्वरदर्शन के विना मृत्युञ्जय की पदवी नहीं मिल सकती और योगदृष्टि के विना आत्मा ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता । अतः उनके प्रश्न का अन्तिम समाधान उनकी योगसमाधि पर निर्भर था । उनकी मेधा, अद्भुतस्मृति, योगसमाधि, वेदविद्या, परोपकार, शूरवीरता, दृढ़इच्छा, पूर्णब्रह्मचर्य, धार्मिकजीवन, कठिनयात्रा, साधनशीलता, संन्यास, निष्कामकर्म और महान् आत्मिकबल से पाखण्ड का खण्डन करते हुये निष्पक्ष होकर वेदोक्त मत का मण्डन करना और अन्त को मृत्यु पर विजय पाते हुये भय और क्लेश की जड़ को योगबल से काट कर दिखा देना, ये सब बातें दर्शा रही हैं कि वह मनुष्यश्रेणी से नहीं किन्तु ऋषिश्रेणी से सम्बन्ध रखते थे, उनके पवित्र, धार्मिक और समुन्नत जीवन में हमें ऋषिमुनियों के जीवन का दृष्टान्त मिलता है, उनके जीवन की स्थिति एक शब्द में यह कहदेने से वर्णन हो सकती है कि वह "महर्षि" थे ।

मनुष्य अपने दोषों को गुणों से बदलने का यत्न करते हैं, वे अपनी विद्या को अपने दोषों के छिपाने का साधन बनाना चाहते हैं और अपनी त्रुटि को सरलता से स्वीकार करने में तो वे अपनी मानहानि समझते हैं किन्तु अपनी सारी योग्यता उसकी पुष्टि करने में लगाते हैं । यूरोप के कई फ़िलास्फर और विद्वान् लोग अपने पक्ष की सिद्धि के लिये थ्यूरी और सिद्धान्त घड़ते हुये लज्जित नहीं होते । काशी के पण्डित मुंह से निकले हुये झूंठे वाक्य की सिद्धि के लिये अपना सारा विद्याबल लगाते हुये अधर्म से नहीं रुकते । मान और प्रतिष्ठा के लिये हाथ पांव मारने वाले आत्मसाक्षिता का गला घोटते हुये बड़े २ विद्वान् और पण्डित ऐसे विचित्र दम्भ करते हैं कि जिससे उनकी बाह्य प्रतिष्ठा में अन्तर न पड़े । परन्तु ऋषियों के इतिहास दम्भ से सर्वथा शून्य होते हैं और हमें स्वामी दयानन्द के ऋषि होने का दृढ़ प्रमाण इससे बढ़कर और क्या मिल सकता है कि उन्होंने जगत्प्रसिद्ध होने पर भी अपनी पूर्वावस्था की निर्बलताओं को अपने मुंह से पूना में अपना जीवनचरित्र सुनाते हुये विना किसी संकोच के स्वयं वर्णन किया है । यही नहीं किन्तु जब मुरादाबाद में वैदिकधर्म का उपदेश कर रहे थे तो भूल में एक शब्द मुंह से अशुद्ध निकल गया । एक लड़के ने उनको कहा कि स्वामीजी आपने भूल की है, क्या और कोई मनुष्य ऐसी प्रतिष्ठा रखता हुआ लड़के की बतलाई हुई भूल को स्वीकार करने

का साहस कर सका है ? किन्तु स्वामी दयानन्द ने विना संकोच के सरल वाणी से कहा कि हां मैंने भूल की है। उस लड़के ने दूसरे दिन फिर कई मनुष्यों के सामने कहा कि स्वामीजी कल आपने अमुक शब्द अशुद्ध बोला था, तो उस समय भी कहने लगे कि हां हम से भूल हुई थी और जब देखा कि यह लड़का वार २ ठट्ठा करने के लिये इसी बात को दुहराये जाता है तो कहा कि हमने भूल स्वीकार करली, परन्तु तुम अभीतक बाललीला किये जाते हो।

आजकल पण्डित और विद्वान् शब्द के अर्थ यह समझे जाते हैं कि जो अपने बराबर के पण्डित को मूर्ख और अपने से बढ़िया पण्डित को विक्षिप्त बतलावे। विद्वानों के हृदय दग्ध होजाते हैं और पण्डितों की आंखें लाल होजाती हैं, जब वे अपने सामने किसी और पण्डित की बड़ाई सुनते हैं। परन्तु ऋषि जीवन ईर्ष्या द्वेष से रहित होते हैं, ऋषि लोग अपने दोषों को निवारण करने और दूसरों के गुणों को ग्रहण करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं। वे किसी की बड़ाई सुनकर जलते नहीं किन्तु प्रसन्न होकर गुणी जन के पास उसके गुणों की भिक्षा लेने को जाते हैं। महर्षि दयानन्द की यात्रा बतला रही है कि उन्होंने केवल वाणी से नहीं किन्तु कर्म से भी इस बात को सिद्ध किया था। जहां जिस योगी वा विद्वान् की बड़ाई उनके कान में पहुंची तुरन्त श्रद्धा की भेट लेकर उस पण्डित वा योगी की सेवा में अपनी न्यूनता को पूर्ण करने के लिये उपस्थित हुए और फिर जीवन पर्य्यन्त अपने शिक्षा देने वाले गुरुओं की प्रशंसा करते रहे। स्वामीजी आबू * के भवानीगिरि के योगिराजों और हिमालय की केदारघाटी के गंगागिरि की † जिन्होंने उनको योगविद्या के गूढ़ रहस्य सिखलाये थे और मथुरा के स्वामी विरजानन्द की प्रशंसा करते हुये नहीं थकते थे। वे जिसमें गुण देखते थे उसकी सदा प्रशंसा करते थे चाहे वह मनुष्य विद्यादि गुणों में उनसे छोटा भी क्यों न हो। एक समय की वार्ता है कि मुरादाबाद में यह रोग की दशा में पलंग पर लेटे हुये थे, एक वैद्य चरक सुश्रुत के

* पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि स्वामीजी ने जो अपनी अस्वस्थता के दिनों में आबू पर जाने के लिये विशेष आग्रह किया था उसका कुछ गूढ़ आशय था। अनुमान होता है कि उनके योगविद्या के सिखाने वाले योगिराज वहां हों और वे उनसे मिलना चाहते हों।

† आज तक भी पर्वतों में योगिराज विद्यमान हैं, परन्तु हमारा उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं इसलिये हम उनको नहीं जानते। सन् १८८९ ई० में पं० गुरुदत्तजी ने एक सच्चिदानन्द नामक योगिराज की खबर दी थी कि वे पूर्ण आर्य हैं और नेपाल के पहाड़ों में विचर रहे हैं, सच है बीजनाश किसी विद्या का नहीं होता।

जानने वाले शाहजहांपुर से वहां आये और आकर फ़र्श पर बैठ गये, जब स्वामीजी से उनका वार्तालाप हुआ तौ उनकी योग्यता से स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और अ-स्वस्थ होने पर भी पलंग से उठ बैठे और पास के कमरे से कुरसी खुद उठाकर ले-आये और बड़े आदर सत्कार से वैद्यजी को यह कहते हुए उस पर बैठाया कि हमें मालूम न था कि आप ऐसे विद्वान् हैं *

एकवार स्वामीजी कन्नौज में गये और वहां पण्डित हरिशङ्करजी से शास्त्रार्थ हुआ। एक प्रसंग पर शास्त्रीजी ने कहा कि मीमांसा में ऐसा लिखा है, स्वामीजी ने कहा कि ऐसा कदापि नहीं है। इसपर शास्त्रीजी के मुख से निकला कि यदि ऐसा न हो तौ हम शिखा सूत्र त्याग कर संन्यास ग्रहण करलेंगे अन्यथा आपको संन्यास त्यागना होगा, स्वामीजी ने स्वीकार करलिया। पण्डितजी घर आये और पुस्तक जो देखी तौ वास्तव में जो स्वामीजी कहते थे वही उसमें निकला इसपर पण्डितजी ने सब पण्डितों और प्रतिष्ठित लोगों को बुलाकर कहा कि हम स्वामीजी से हार गये, अब हम संन्यास धारण करते हैं। लोगों ने सलाह करके कहा कि ऐसा न करना चाहिये किन्तु स्वामीजी के पास जाकर कहिये कि जो हम कहते थे वही पुस्तक में है, इसपर हम लोग दुन्द मचाकर आपकी जय बोल देवेंगे। पण्डितजी ने यह स्वी-कार न किया और कहा कि हमसे कदापि झूंठ न बोला जायगा। निदान आपने स्वामीजी के पास जाकर अपनी भूल स्वीकार की और कहा कि हमको संन्यास दीजिये हम हारगये। इसपर स्वामीजी ने सब लोगों के समुदाय में कहा कि हमने आज तक ऐसा सत्यवादी और धार्मिक पण्डित नहीं देखा। प्राचीन समयके प-ण्डितों का नमूना यही है †

महर्षि की यह बातें वर्णन करते हुये हम अचानक उपनिषदों के समय में जा पहुंचते हैं। जहां हम देखते हैं कि ऋषि लोग विद्या और तप से युक्त होने पर भी सरलभाव से अपनी निर्बलता को स्वीकार करते हैं और प्रश्नकर्ता को उस के प्रश्न का उत्तर न देसकनेकी दशा में स्पष्ट कहदेते हैं कि हमारा इस विषय में गम्य नहीं है और फिर आप ऋषि होने पर इस प्रश्न का समाधान करने के लिये किसी और ऋषि की शरण ढूंढ़ते हैं। जहां हमें जाबालि से ब्राह्मण लोग लज्जा की परवाह न करते हुये सचर कहते हुवे दिखाई देते हैं। उस समय जब कि लोग उनको गङ्गातट पर कृष्णावतार की पदवी देना चाहते थे, जब कि थियासोफिस्ट उनको परम स-

* साहू श्यामसुन्दरजी रईस मुरादाबाद इन वैद्यराज को लेगये थे।

† देखो सद्धर्मप्रचारक जलन्धर ता० २१ हाड़ सं० १९५४ वि० पृ० ६।

हायक की उपाधि प्रदान कररहे थे। ऐसे समय में जब कि साधारण लोग महन्त और गुरु बनकर राजाओं से भी अपनी गद्दियों को पुजवा रहे थे जबकि राजपूताने के एक महाराजा ने उनको एकलिङ्ग की बड़ी भारी गद्दी बतलाई थी तौ इन सब गद्दियों और पदवियोंको लात मारकर परे फेंकते हुये, आर्य्यसमाजके संस्थापक होने पर भी अपने को केवल उसका उपदेशक और सभासद् बतलाते हुये क्या वह सच मुच अपने ऋषिपन का बोधन नहीं करारहे ?

एक बार उन से जब किसी सज्जनने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर क्यों नहीं एक शास्त्र अपना रचकर संसार में नाम छोड़ जाते तौ ऋषिश्रेणी का आत्मा उत्तर में कहता है कि आगे जो शास्त्र बने हुये हैं उन में कौनसी न्यूनता है जिस को पूरा करने के लिये मैं अपना नया शास्त्र रचूं और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में अपना समय व्यर्थ गवाऊं।

मान की तरङ्ग संसार में ऐसी प्रबल रूप से बहरही है कि बड़े२ राजे महाराजे विद्वान् और पण्डित इसमें मूर्छित होकर बहते हुये दीख पड़ते हैं। कहीं२ सुकरात और न्यूटन से मान को लात मारने वाले और सचाई के साथ यह कहने वाले कि हम विद्या के अपार समुद्र के किनारे कङ्कर चुन्ने वाले बच्चे हैं, दिखाई पड़ते हैं। स्पेन्सर और ग्लैडस्टोन से मनुष्य जो पदवियों और उपाधियों को तिलाञ्जलि दें कहीं २ मिलते हैं। परन्तु ऋषिश्रेणी में कोई प्रविष्ट नहीं होसकता जब तक कि वह लोकैषणा (मान की अभिलाषा) वित्तैषणा (धन कीतृष्णा) और पुत्रैषणा (सन्तान की इच्छा) को सर्वथा त्याग न करदे, स्वामी दयानन्द कभी ऋषिश्रेणी में परिगणित न होता यदि वह इन एषणाओं से रहित न होता।

एकवार संयुक्तप्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर में किसी सज्जन ने उनसे कहा कि स्वामीजी आपतौ ऋषि हैं, उत्तर में स्वामीजी ने कहाकि तुम ऋषियों के अभाव में मुझे ऋषि कह रहे हो, परन्तु सच जानो यदि मैं कणाद ऋषि के समय में उत्पन्न होता तौ उस समय के विद्वानों में भी गणना होनी कठिन थी। अठारह घण्टे की समाधि लगाने वाला * पूर्ण योगी दयानन्द जिसको धर्मदिवाकर † के कथनानुसार लोग "परमयोगी और जड़भरत का ‡ अवतार" कहते थे कहीं भी अपने आपको लोगों में योगी प्रसिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता, भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता है। उसका होना ही उसकी सुगन्धि को प्रकट कर

* देखो दयानन्द दिग्विजयार्क।

† धर्मदिवाकर मासिक पत्र कलकत्ता भाग१ अङ्क ८ पृष्ठ १२४ से १२७ तक मार्गशिर संवत् १९४०।

‡ जडभरत एक पूर्ण योगी और महर्षि का नाम है।

देता है, किन्तु काग़ज़ के बने हुये बनावटी गुलाब को गुलाबी रंगत और इत्र लगाने की ज़रूरत है ताकि वह धोखे से अपने आपको गुलाब सिद्ध कर सके। योग और योगसिद्धि के नाम से भोगी पुरुषों ने संसार को लूट खाया, योग और योगसिद्धि का नाम लेते हुये ठगों ने लोगों को मनघड़त लीला दिखा कर विश्वास दिलाने की चेष्टा की है कि यह सिद्धियां (करामातें) हैं और हम सृष्टिक्रम को तोड़ सकते हैं, योगसिद्धि की झलक दिखाने पर भी लोग गुरु बनकर मूर्खों से चरण पुजवाते हैं। परन्तु झूठी सिद्धि और भूत प्रेत की भ्रान्ति को काटने वाला विद्या की ठेकेदारी और ठगी को संसार से मिटाने वाला सच्चा योगी दयानन्द हठयोग के हथखण्डों से लोगों को सावधान करता हुवा राजयोग की सच्ची महिमा और पवित्र उद्देश्यों का प्रकाश करता है जिससे कि आत्मा की पूर्ण शक्तियां सृष्टिक्रम के अनुसार (न कि विरुद्ध) प्रकट होसकती हैं। महर्षि उस योगविद्या का प्रतिपादन करता है जो योग कि विना धार्मिक पवित्र जीवन प्राप्त किये सिद्ध नहीं होसकता और जिस योगबल से मनुष्य वैदिक सूर्य्य की ज्योति को अनुभव करने पर मंत्रदृष्टा ऋषि कहलासक्ता और इसी साधन से ईश्वरदर्शन करता हुवा मृत्यु को अपने वश में कर सकता है। एक अमरीकन * का कथन है कि सचाई मनघड़त कहानी से भी अधिक प्रभावोत्पादक है। बिजली की शक्ति जिससे पांच मिनट के भीतर सैकड़ों मील के समाचार मिल सकते हैं वास्तव में किसी उपन्यास की मनघड़त कथा से अधिक प्रभावशालिनी और विस्मयोत्पादिका है। परन्तु यदि इसी बिजली के गुण किसी पन्थाई और नाम के भूखे पुरुष को मालूम होजाते तो वह बिजली का मन्दिर बनवाकर और आप उसका पुजारी बनकर रोम के पोप की तरह लोगों को लूटकर खा जाता और इस विद्या का वह प्रचार जो इस समय नियमानुसार होरहा है कभी न होता। योगविद्या जिस में बिजली से बढ़कर आत्मा की शक्तियां दिखाई देती हैं यद्यपि विचित्र और विलक्षण है तथापि विद्युत् विद्या के समान नियत सिद्धान्तों पर निर्भर है। यही योग यदि किसी थियासोफ़िस्ट या पन्थाई को लेश मात्र भी आजाय तो वह लोगों को कौतुक (तमाशे) दिखाने का यत्न करेगा और इस विद्या का ठेकेदार बनकर लोगों की सम्पत्ति छीनना चाहेगा। यही योग यदि किसी विद्याप्रिय मनुष्य के पास हो तो वह लोगों को इस विद्या की प्राप्ति के उपाय और क्रियायें सिखलावेगा न कि लोगों को आश्चर्य्य में डालने के लिये कौतुक की रीति पर अपनी सिद्धियां दिखावेगा और न केवल नाम के लिये एक सच्ची विद्या के प्रचार को रोकेगा।

* ऐंड्रो जेक्सन डेविस।

कौतुक और अनुभव में वही भेद है जोकि खेल और साधन में है। प्रोफेसर विद्यार्थी को अनेक साधनों से बिजली की शक्ति का अनुभव कराते हैं किन्तु बाज़ार में पैसे या नाम के लिये या खेल की रीति पर बिजली की शक्ति को दिखाने वाला बाज़ीगर है। प्रोफ़ेसर यदि स्वतंत्र है तो बाज़ीगर परतंत्र। प्रोफ़ेसर विद्यावृद्धि के लिये योग्यपात्र में दान करता है परन्तु बाज़ीगर स्वार्थ के लिये स्वांग भर कर दिखाता है। उपयोग का दूसरा नाम साधन और कौतुक का दूसरा नाम खेल है। उपयोग अधिकारी पुरुषों को विद्या सिखाता है परन्तु कौतुक हँसी ठट्ठा और समय को व्यर्थ खोने के लिये दिखाया जाता है। प्रयोग पात्र के सामने किया जाता है पर कौतुक में यह नियम नहीं। "क" "ख" पढ़ने वाले विद्यार्थी को प्राण और रयि (आकर्षण और उत्सर्जन) विद्युत् भेदों के समझाने से क्या लाभ? किन्तु बुद्धिमान् योग्य विद्यार्थी ही इनके तत्व को समझ सकता है, कौतुक में योग्य अयोग्य पात्र कुपात्र का विचार नहीं है। उपयोग से विद्या की प्राप्ति अभीष्ट है विपरीत उसके कौतुक से वाह वाह और बहुत अच्छा इन शब्दों के सिवाय और कुछ सिद्धि नहीं होती। हिमालय या आबू के सच्चे योगी तमाशा दिखाते नहीं फिरते किन्तु अधिकारी स्वयं उनके पास जाकर साधनों के द्वारा योगविद्या सीख सकते हैं। स्वामी दयानन्द योगविद्या के आचार्य थे न कि बाज़ीगर। वह योगविद्या की वृद्धि चाहते थे और इसलिये अधिकारियों को ढूंढते थे। रुड़की में जब किसी आर्य सज्जन ने उनसे योगविद्या की महिमा सुनकर इस विद्या को सीखना चाहा तो उन्होंने जो उत्तर दिया उसका आशय यह था कि पहिले इस विद्या के अधिकारी बनलो पीछे सीखलेना। रुड़की में तो उस आर्य सज्जन ने सीखने की रुचि प्रकट की थी, परन्तु अन्य स्थानों में कोई बिरला ही जिज्ञासु मिलता था, हां योगसिद्धि का कौतुक देखने वाले सर्वत्र अधिकता से मिलते थे। स्वामीजी कभी कौतुक की रीति पर दिखाने के लिये इस विद्या का आडम्बर रचने वाले न थे। दो चार पुरुषों ने जिन्होंने साधन द्वारा इस विद्या को सीखना चाहा था और जो अधिकारी थे, उनको उनकी योग्यता के अनुसार स्वामीजी ने योगक्रिया सिखलाई थी, परन्तु किसी की अभ्यर्थना पर इसका कौतुक नहीं दिखाया। एक वार सिण्ट साहब ने स्वामीजी से कहा कि हमें कुछ योग की सिद्धियां दिखाओ, तो उन्होंने अस्वीकार किया जैसा कि उनके निम्नलिखित पत्र से विदित होता है:-

जो मैंने सिन्ट साहब से कहा था वह ठीक है, क्योंकि मैं इन इन्द्रजाल की बातों को देखना दिखाना उचित नहीं समझता, चाहे वे हाथ की चालाकी से हों

चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये बिना किसी को भी उसका महत्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन सन्देह और आश्चर्य में पड़ कर उस आडम्बरी की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं * और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते, जैसे सेन्ट साहब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूं, चाहे वह प्रसन्न रहें या अप्रसन्न। क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त हो जाऊं तो सब मूर्ख और पण्डित मुझ से यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग की आश्चर्यमय सिद्धियां दिखलाइये जैसे अमुक को आपने दिखलाया। ऐसी संसार की कौतुक लीला मेरे साथ भी लगजाती जैसी मैडम एच् पी ब्लवस्टकी के पीछे लगी हुई है। अब जो कोई इनकी विद्या व धर्मात्मता की बातें हैं कि जिनसे मनुष्यों के आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं, उनके पूछने और ग्रहण करने से दूर रहते हैं, किन्तु जो कोई आता है वह यही कहता है कि मैडम साहब! आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं, किन्तु कोई चाहे तो उसको योग-रीति सिखा सकता हूं कि जिसके अनुष्ठान करने से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।

जिस प्रकार विद्याशक्ति है उसी प्रकार योग भी आत्मिक शक्ति है, यदि कोई बिजली की विद्या का उपयोग चोरी के लिये करने लगे तो विद्या का कुछ दोष नहीं किन्तु दोष उसके अनुचित उपयोग करने वाले का है। परन्तु पूर्णवैद्य कभी बिजली की विद्या को किसी की हानि अथवा तुच्छकार्य की सिद्धि के लिये नहीं लगाता, इसी प्रकार योगविद्या से योगी लोग ईश्वर का दर्शन करते हैं न कि उसको तुच्छ बातों में लगाकर उसका अनुचित प्रयोग। किन्तु जो विद्या का अनुचित उपयोग करते हैं, समझना चाहिये कि वह पूरे विद्वान् नहीं। यूरोप और अमेरिका में योग विद्या का एक तुच्छ अंश जानने वाले साप्रिच्यूलिस्ट लोगों ने पाखण्ड का एक तूफ़ान उठा रक्खा है। मूर्खों को बतलाते हैं कि मरे हुये जीव हमारी इच्छानुसार हमारे मन में प्रेरणा करने को आते हैं और इस प्रकार के अनेक दम्भ रचकर लोगों की गांठ कतरते हैं। इन सप्रिच्यूलिस्ट लोगों की ठगलीला की पोल † अमेरिका के एंड्रो जैक्सन डेविस ने भले प्रकार खोल कर दिखाई है। प्रत्येक बुद्धिमान् मेस्मरेज़म और सप्रिच्यूलिज़म् के ठगों से सावधान हो सकता है यदि वह अपनी बुद्धि को काम में लावे। जो योगविद्या का तमाशा दिखलाते हैं वे योगी नहीं किन्तु दूकानदार

* यह पत्र १४ जुलाई सन् १८८० ई० को स्वामीजी ने करनैल आलकट को लिखा था।

† देखो पुस्तक "दी फ़ान दीन" पृ० २०६ से २२० तक।

हैं, इन दूकान्दारों से बचकर हमें अधिकारी बनकर सच्चे योगियों का अन्वेषण करना चाहिये।

संसार में यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि योगी जो चाहे सो कर सकते हैं, सृष्टि नियमों को तोड़ना योगियों के लिये कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु महर्षि स्पष्ट शब्दों में योग का महत्व दिखलाते हुये इस बात का इस प्रकार खण्डन करते हैं:-

जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तौ साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवन रूप जगत् शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता, जब साधन न होते तौ सिद्ध कहां से होता? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होजावे तौ भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है जिसमें अनन्तसिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं होसकता। क्योंकि जीव का परमावधि तक ज्ञान बढ़े तौ भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला होता है, अनन्तज्ञान और समर्थ्य वाला कदापि नहीं होसकता। देखो कोई भी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलने हारा नहीं हुआ है और न होगा, जैसा अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का प्रबन्ध किया है इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं होसकता *।

जहां स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में अनेक विद्याओं का वर्णन किया है वहां उन्होंने योगविद्या का भी वर्णन किया है। योग से आत्मबल किस प्रकार बढ़जाता है, इसको निम्न लिखित वचन दर्शा रहे हैं:—

"हे जगदीश्वर! जिसमें सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के व्यवहारों को जानते, जो नाश रहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलकर सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग विज्ञान युक्त होकर विघ्न आदि क्लेशों से पृथक् रहे" †

वेदभाष्यभूमिका के उपासना विषय में योगशास्त्र के सूत्रों की व्याख्या करते हुये महर्षि योग के परमबल की आचार्यवत् उत्तमता दर्शारहे हैं। प्रतिमा पूजन नामी लघु पुस्तक में महर्षि ने योगशास्त्र के कई सूत्रों का आशय दिखाया है जोकि वास्तव में पढ़ने से ही सम्बन्ध रखता है, उदाहरण की रीतिपर हम उस पुस्तक में से निम्नलिखित लेख उद्धृत करते हैं:-

* सत्यार्थप्रकाश आठवां समुल्लास पृ० २१९।

† प्रतिमा पूजन विचार अर्थात् स्वामीजी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ पृ० १९ से १८ तक।

इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणा आदि तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं, सो हृदय में ही योगी परमाणु पर्य्यन्त जो पदार्थ हैं, उन को योग ज्ञान से जानता है, बाहर के पदार्थों से किञ्चिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है और से नहीं, इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें । क्योंकि जब योगी चित्तवृत्तियों को निरुद्ध करता है, बाहर और भीतर से उसी समय द्रष्टा जो आत्मा है उस चेतनस्वरूप में ही स्थित हो जाता है अन्यत्र नहीं * ।

निम्नलिखित वचन उनके एक पत्र में जो कि उन्होंने मैडम साहबा को लिखा था, पाये जाते हैं, जिससे विदित होता है कि योग की परमविद्या इस समय भी आर्यावर्त में विद्यमान है ।

"जो सत्यधर्म, सत्यविद्या और ठीक २ सुधार की और परमयोग आदि की बातें सदा से जैसी आर्यावर्तीय मनुष्यों और वेदादिशास्त्रों में थीं और हैं, वैसी कहीं न थीं और न हैं । अब विचारिये कि थियोसोफिस्टों को एतद्देशनिवासियों के मत में मिलना चाहिये किम्वा आर्यावर्तियों को थियासोफिस्ट होना चाहिये"

निम्नलिखित वचन उस पत्र में पाये जाते हैं जो उन्होंने करनैल साहब को लिखा था जिनसे विदित होता है कि वह ऋषियों के समान निष्कामवृत्ति से कर्म करते थे †

"मैं अपने सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूं, सिवाय उपदेशक के और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता, तुम मुझको कहीं सभासद् लिख देते हो कहीं कुछ लिखदेते हो । मैं कुछ बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहता और जो मैं चाहता हूं वह बहुत बड़ा काम है । सो आशा है कि ईश्वर की दया और सज्जन तथा विद्वानों की सहायता से कृतकृत्य हूंगा" । "चाहे कोई हो जबतक मैं न्यायाचरण देखता हूं मेल करता हूं और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है फिर उससे मेल नहीं करता, इसमें हरिश्चन्द्र हो वा अन्य कोई हो" ।

गंगा के तट पर स्वामीजी का मगर, मच्छ के पास निर्भय बैठे रहना बतला रहा है कि उन्होंने अहिंसा सिद्ध करली थी । उनके जीवनचरित्र में इस बात के पुष्ट और पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं कि वे पूर्ण योगी थे । मृत्यु के भयको योगबल से काटने

* यहां पृ० २०८ का अन्तिम नोट देखो और उसके स्थान में निम्न लिखित नोट समझोः—
सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास पृ० १८४ ।

† यह पत्र १९ मार्च सन् १८७७ ई० को लिखा था ।

का दृष्टान्त अपनी मौत से देना, पूर्ण योगी होने पर सिद्धियां दिखाने और कौतुक रचने से भागना, सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में ईश्वर को प्रत्यक्ष प्रमाण से देखने की विधि दर्शाना इत्यादिक अनेक बातें उनके परमयोगी होने का बोधन करा रही हैं। पूर्णयोगी और पूर्ण ब्रह्मचारी होने के कारण ही वे समस्त विद्याओं के मर्मज्ञ थे। भ्रान्तिनिवारण में उनके यह वचन कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से लगभग तीन हज़ार ग्रन्थों को मानता हूं" बतला रहे हैं कि उनका बोध कैसा विशाल और गम्भीर था? जब वे तीन हज़ार के लगभग प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य्य नहीं कि उन्होंने उस से दुगुने ग्रन्थ पढ़े हों। यही नहीं कि वह व्याकरण के पण्डित थे, किन्तु ज्योतिष, गणित, कविता, पदार्थविद्या और आयुर्वेद आदि सर्व विद्याओं के ज्ञाता और तत्त-द्विषय के उच्च से उच्च संस्कृत के प्रामाणिक ग्रन्थ पढ़े हुये थे *। कोई मनुष्य यथार्थ रीति से पूर्ण विद्वान् हुये विना वेदों का भाष्य करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता और जब उन्होंने ऋषियों की रीतिपर वेदों का भाष्य किया तो निस्सन्देह वह पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्य्यन्त सर्वविद्याओं के मूल-सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे। यदि मिस्टर हरबर्ट स्पेन्सर फ़िलास्फ़र है तो क्या वह वर्त्तमान सायन्स के सिद्धान्तों से अपरिचित है? यदि मनुष्यश्रेणी के फ़िलास्फ़र के लिये सम्पूर्ण विद्याओं के तत्व का जानना आवश्यक है तो क्या पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी के लिये सर्वविद्याओं का निर्भ्रान्त जानना कठिन है? हम उन को ज्ञान, कर्म और उपासना के शिखर पर बैठा हुवा पाते हैं। संसार उनके चरित्र में ऋषि शब्द की परिभाषा पढ़ रहा है, पूर्ण उन्नत आत्मा पूर्ण उन्नत शरीर के साधन से परोपकार करता हुवा उनके दृष्टान्त से दृष्टिगोचर होरहा है। उनकी उच्चदशा को देखते हुये प्रश्न उठता है कि वे किन साधनों से ऐसी उच्चावस्था को प्राप्त हुये? तो उनका जीवनचरित्र उत्तर देता है कि पूर्णब्रह्मचर्य और पूर्णयोग से।

मृत्युञ्जय † की मृत्युपर यूरोप और अमेरिका के प्रतिनिधि ‡ का संशय मिटाना।

स्वामीजी ने जिन सार्वजनिक वैदिकसिद्धान्तों का प्रचार और उपदेश किया,

* स्वामी जी अंगरेजी, फ़ार्सी आदि बिलकुल नहीं पढ़े हुये थे।

† मृत्युञ्जय = मौत को जीतने वाला अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती।

‡ प्रतिनिधि = स्थानापन्न।

उस उपदेश ने जहां सर्व साधारण और संस्कृतज्ञों को आर्य बनाया वहां उस ने कई अंगरेज़ी के विद्वानों को भी आर्य बनादिया । उनके जीवन में ही अनेक पुरुष आर्यधर्म के महत्व को समझ गये थे, परन्तु मृत्युञ्जय की मौत का पंडित गुरुदत्त से अंग्रेज़ी सायन्स के पूर्ण विद्वान् की संशयात्मिक काया को बिन बोले पलटादेना अत्यन्त आश्चर्यदायक बात है । पाश्चात्यविद्या में प्रवीण होने से यदि हम पण्डित गुरुदत्त एम, ए, को यूरोप और अमेरिका का प्रतिनिधि कहें तो अनुचित न होगा । वह जो रातदिन मिल, हक्सले, टिण्डल, डार्विन, स्पेन्सर आदि अनेक यूरोपियन विद्वानों के ग्रन्थों को विचार पूर्वक पढ़ने से उनके भावों को हृदय में धारण किये हुये था, उसको योगिराज की मृत्यु पर ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला कि किस प्रकार एक सच्चा आस्तिक और पूर्ण योगी मृत्यु के भय से रहित होकर ईश्वर उपासना के परमबल से क्लेश की जड़ को काटता हुवा आनन्द में मग्न होकर परलोक गमन करता है । इस अद्भुत मृत्यु ने पं० गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता का न केवल प्रमाण ही दिया किन्तु अनुभव भी करा दिया । इसी मृत्यु ने उस प्रतिनिधि को स्पष्ट जतला दिया कि योगी ही मृत्यु को जीत सकते हैं, उस वेद रूप सूर्य के प्रकाश का जिसका उपदेश मृत्युञ्जय अपने जीवन में करता था, पण्डितजी को महत्व दिखलाकर उनके मुंह से कहलादिया कि "वर्तमान पश्चिमीय सायन्स (विज्ञान) की जहां समाप्ति होती है वहां वेदविद्या का आरम्भ होता है" । इसी घटना ने संसार को प्रत्यक्ष दिखा दिया कि वेदों की महती विद्या को ग्रहण करने के लिये किस प्रकार अनेक विद्याओं में प्रवीण एम, ए, विद्यार्थी बनता है । हमें यह नहीं समझना चाहिये कि पं० गुरुदत्त को ऋषि की मौत ने पूर्ण आर्य्य बना दिया, किन्तु गम्भीर दृष्टि से देखें तो यूरोप और अमेरिका के विद्वानों के प्रतिनिधि के संशय मिटादिये जिसके सूक्ष्म अर्थ यह हैं कि यूरोप और अमेरिका के वैज्ञानिक सिद्धान्तों ने वैदिक सूर्य की शरण ली । यदि ऋषि के प्रकट किये वैदिक सिद्धान्त एक गुरुदत्त के संशय निवृत्त करते हुये उस को शान्ति देसकते हैं तो इसका आशय यह है कि वैदिकसिद्धान्त यूरोप और अमेरिका की संशयात्मक काया को पलटा देते हुये शान्ति प्रदान करसकते हैं । यदि कोई भारतनिवासी जो कि पौराणिक मत का अनुयायी हो अंगरेज़ी फिलासोफी के पढ़ने से पौराणिक भ्रमजाल को अपने मन से दूर कर देता है तो उस का अर्थ यह है कि अंगरेज़ी फिलासोफी पुराणों की शिक्षा पर विजय पाती है । इसी प्रकार यदि अंगरेज़ी फिलासोफी के ज्ञाता सच्चे मन से वैदिक सिद्धान्तों की शरण लेते हैं तो उस से यह अभिप्राय निकालना कि वैदिक

सिद्धान्त पश्चिमीय सिद्धान्तों पर विजय पाते हैं, कुछ कठिन नहीं। यदि पश्चिमीय विज्ञान और साहित्य के विद्वान् पं० गुरुदत्तने वेदों की शरण ली तो इस का स्पष्ट आशय यह है कि यूरोप और अमेरिका ने वेदों का आश्रय लिया।

महर्षि के उद्देश्यपर अमेरिका के एक विद्वान् की निष्पक्ष सम्मति।

प्रेम से चित्तको आकर्षण करने वाले परोपकारी की मृत्यु के समाचार सुनकर कौन पुरुष था जो कि सचमुच रुधिर के आंसू न बहाता हो। जिन लोगों ने उन के दर्शन किये या उनका उपदेश सुना या उनके रचित ग्रन्थ देखे थे, वे उन की मृत्यु का समाचार सुनने पर आश्चर्य और शोक के समुद्र में डूब रहे थे। पांच सहस्र वर्ष के पश्चात् पृथिवी की पुरानी राजधानी आर्य्यावर्त्तको महर्षिके उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु कर्मगति ने इस सौभाग्य को छीन लिया। कहां बूढ़ा भारतवर्ष अपने सुपुत्र के यश को सुनकर प्रफुल्लित होरहा था और कहां उस को उस के वियोग का दिन देखना पड़ा। महर्षि की मृत्यु कोई साधारण मृत्यु न थी, चारों ओरसे तार और शोकपत्र उद्वेग से भरे हुये अजमेर में पहुंच रहेथे। इन तारों और पत्रोंकी बहुतायत उस शोक के बाहुल्य को प्रकट करती थी, जो कि भारतसन्तान ने उन की मृत्यु पर अनुभव किया था। देशहितैषी अजमेर ने लिखा था कि हमारे पास इतने शोकपत्र और तारों की भरमार हुई है कि यदि हम उन को वर्ष भरतक अपने पत्र में मुद्रित किये जावें तो भी समाप्त न हों *। यहां के सिगनेलर वारंवार यही कहते थे कि ऐसे कौन दयानन्द सरस्वती हैं जिन के इतने तारों के मारे हम को एक क्षण भर का भी अवकाश नहीं मिलता, इतने तार तो कभी लाट साहब के आनेपर भी नहीं आते। "थियोसोफिस्ट" पत्र ने उन के परलोकगमन की खबर सुनकर यह लेख प्रकाशित किया:—

"हमारेपत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को जिस में कि योगक्रिया की शक्तियें विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उन की मृत्यु से भारतवर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी, क्या वह योगी न थे? क्या वह ब्रह्मर्षि नहीं थे? हम शपथपूर्वक कहते हैं कि स्वामीजी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहिले ही से था। उनके अन्तिम शिक्षापत्र (वसीयतनामे) की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने करनल आलकाट और मुझ सम्पादकके पास भेजीं (वे दो लिपियां हमारे पास उन

* देशहितैषी मासिक पत्र अजमेर खं० २ अं० ८ पृ० १०।

के पूर्व मित्रभाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने हम से मेरठ में कई वार कहा कि हम सन् १८८४ ई० नहीं देखेंगे"।

प्रसंगवश हम यहां पर उन समाचारपत्रों के नाम प्रकाशित करते हैं कि जिन्हों ने स्वामीजी की मृत्यु पर अपनी पूरी २ सहानुभूति और शोक प्रकट किया थाः—

देशहितैषी अजमेर, वङ्गवासी, हिन्दीप्रदीप प्रयाग, भारतबन्धु अलीगढ़, सारसुधानिधि कलकत्ता, भारतमित्र कलकत्ता, ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका लाहोर, धर्मदिवाकर कलकत्ता, खत्रीहितकारी बनारस, आर्य्यदर्पण, आर्य समाचार, पताका, ट्रिब्यून लाहोर, इण्डियनइम्पायर कलकत्ता, इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता, हिन्दू मदरास, टाइम्स पंजाब रावलपिण्डी, बङ्गाली कलकत्ता, हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता, पायोनियर इलाहाबाद, सिविलएण्डमिलिटरी गज़ट लाहोर, थियासोफ़िस्ट, इण्डियन मिरर कलकत्ता, गुजरातमित्र सूरत, आर्य्य मेगज़ीन, आर्य्यपत्रिका, गुजराती सुराष्ट्र दर्पण, राजपूताना गज़ट अजमेर, अंजुमन पंजाब लाहोर, कोहनूर लाहोर, विक्टोरिया पेपर स्यालकोट, क़ैसरी जालन्धर, आफताब पंजाब, देशोपकारक; इत्यादि।

अनेक छन्दोवित् कवियों ने श्लोक, कवित्त, दोहे, छन्द चौपाई और लावनी आदि उनकी मृत्यु पर बनाईं. परन्तु सब में उत्तम चौ० नवलसिंहजी की वह प्रसिद्ध लावनी है जिसकी टेक निम्नलिखित हैः—

"दयानन्द आनन्द कन्द भये पाखण्डिन के मतटारन।
हुये जगत विख्यात चहूँदिशि परमारथी तरनतारन" ॥ *

मोनियर विलियम्स व मेक्समुलर से कई विदेशियों ने स्वामीजी और उनके उद्देश्य के विषय में अपनी सम्मति प्रकट की किन्तु विदेशियों के लेखों में सब से अधिक निष्पक्ष सम्मति अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् एंड्रो जैक्सन डेविस की है जिसको उक्त महाशय ने अपनी पुस्तक में † लिखा है और जिसका अनुवाद निम्नलिखित हैः—

अमेरिका के परम विद्वान् एण्ड्रोजक्सन डेविस की सम्मति।

"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जोकि सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के चीतल मैदानों, अफरीक़ा के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन प-

* देखो चौ० नवलसिंहकृत सभाप्रसन्न।

† देखो बी, ओण्ड दी वेली पृ० ३८३ एंड्रोजैक्सन डेविसरचित।

र्वतों और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सबको जलाने वाली और सबको इकट्ठा करने वाली आगकी ज्वालायें दिखाई देती हैं। इसका चर्चा निम्नस्थ देशों से उठा है, अपने सुख और उन्नति के लिये इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है। पृथिवी पर मनुष्य ही एक ऐसी व्यक्ति है जो आग को जलाकर उसे स्थायी बना सकता है, जोकि पार्थिवसृष्टि में वागीश (नातिक) भी यही है, अतएव अपने घरों में नारकीय अग्नि भड़काने में सब से प्रथम है। हां प्रोमिथस की तरह नारकीय घरों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाले ईश्वरीय अग्नि को लाने के लिये भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्निको देखकर जो निस्सदेह राज्यों, साम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी, मैं अत्यन्त आनन्दित होकर एक उत्साहमय जीवन व्यतीत कर रहा हूं। सब ऊंचे २ पहाड़ जल उठेंगे, घाटियों के रमणीय नगर भुन जायेंगे, प्यारे घर और प्रेमपूर्ण हृदय साथ २ पिघलेंगे, पाप पुण्य संयुक्त होकर यों अन्तर्हित होंगे, जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस। असीम उन्नति की विद्युत् से मनुष्य का हृदय हिल रहा है, आज उसकी केवल चिनगारियां आकाश की ओर उड़ती हैं, वक्ताओं, कवियों और ग्रन्थ निमार्ताओं की शिक्षाओं में इधर उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं।

यह आग सनातन आर्य्यधर्म को स्वाभाविक पवित्रदशा में लाने के लिये एक भट्टी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक परमयोगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिये चारों ओर बेग से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाईयों ने भी जिन के धर्म की आग और पवित्र दीपक पहिले पूर्व में ही प्रकाशित हुये थे, एशिया के इस नए प्रकाश के बुझाने में हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैलगई। सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जलकर भस्म होजायगा, यहांतक कि रोग के स्थान में आरोग्यता, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य होजायगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूं। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।

आर्यसमाज ही महर्षि का स्मारक है ।

पांच सहस्र वर्ष हुये कि पाताल देश निवासी आर्यावर्त निवासियों से सम्बन्ध (नाते रिश्ते) करते थे, परन्तु जब अविद्यान्धकार के बढ़ने पर लोगों ने जलयात्रा करनी छोड़दी तौ अमेरिका वाले आर्यावर्त और यूरोप आदि देशों को और इन देशों के निवासी अमेरिका वालों को भूल गये और ऐसे अन्धकार में पड़े कि एक दूसरे की सत्ता (स्थिति) से भी अज्ञ होगये, परन्तु उस अन्धकार में पुरुषार्थी "कोलम्बस" ने प्राचीन यूनानियों के पथ का अनुसरण करके अमेरिका का पता लगाया। यद्यपि "कोलम्बस" ने अमेरिका को बनाया नहीं किन्तु भूले हुवों को बतलाया है तौ भी आज "कोलम्बस" के नाम के साथ अमेरिका सम्बन्ध रखता है और अमेरिका का नाम लेते हुये तत्काल "कोलम्बस" का स्मरण होआता है ।

पांच सहस्र वर्ष पहिले आर्यधर्म-सभायें (आर्यसमाज) पृथिवी पर सब जगह थीं, क्योंकि वेदों में आर्यधर्मसभा के स्थापन करने की विधि है। परन्तु समय आया जबकि लोग "आर्य" नाम के साथ "आर्यसमाज" को भूल गये, आज कैसा शुभ समय है कि महर्षि दयानन्द के उपकार से हम अपने आर्य नाम को पाते हुये आर्यसमाज को विद्यमान देखते हैं। मुसलमान, ईसाई, नास्तिक, जैनी, पौराणिक आदि किसी के भी सन्मुख आप "आर्यसमाज" का नाम लेदीजिये वह सुनते ही झट आप को "दयानन्द" का नाम सुनादेगा। यदि कोई अमेरिका से "कोलम्बस" के नाम को जुदा नहीं करसकता तौ क्या कोई आर्यसमाज से उसके पुनर्जन्म दाता "स्वामी दयानन्द" का नाम अलग कर सकता है? यदि आर्यसमाज का नाम लेते ही "स्वामी दयानन्द" का स्मरण होआता है तौ वास्तव में आर्यसमाज से बढ़कर कोई स्वामीजी का स्मारक चिन्ह नहीं होसकता ।

अमेरिका जैसे दूरदेशों में चलेजाओ, वहांभी आर्यसमाज के साथ स्वामी दयानन्द और स्वामी दयानन्द के साथ आर्यसमाज का नाम जुटा हुआ पाओगे। अमेरिका के विद्वद्वर शिरोमणि "डेविस" अपने लेख में स्वामी दयानन्द से आर्यसमाज को पृथक् नहीं कर सकते। जहां वह स्वामीजी को शुद्ध अग्नि के जलाने वाले की पदवी प्रदान करते हैं उस के साथ ही वह आर्यसमाज को उस अग्नि की भट्टी बतलाते हैं। यदि अमेरिका में बैठे थियासोफ़िस्ट स्वामीजी को अपना सहायक बनाते हैं तौ वह थियासोफ़िकल सोसाइटी को स्वामी दयानन्द के "आर्यसमाज" की शा-

का साथ ही बतलाते हैं। मैक्सम्युलर अपने पुस्तक में * स्वयं यह प्रश्न उठाता है कि "दयानन्द सरस्वती कौन था ?" और फिर आपही उत्तर देता है कि "दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज का संस्थापक और आचार्य्य था" संसार में प्रायः लोग कुंवे तालाब, सराय और मकान बनाते हैं इसलिये कि ईंट और पत्थर उनके नाम को स्मरण कराते रहैं। जो वस्तु किसी के नाम को स्मरण करासके वह उसकी स्मारक समझी जाती है और इस दशा में आर्यसमाज से बढ़कर स्वामी दयानन्द का कोई स्मारक नहीं होसकता।

यह नियम नहीं कि जो वस्तु किसी के नाम को किसी प्रकार स्मरण करासके वही उसका स्मारक समझी जावे किन्तु वास्तविक स्मारक वह है जो किसी महात्मा के उद्देश्य और सिद्धान्त के प्रचार करने से उसका स्मरण करासके। स्मारक से केवल किसी उद्देश्य का साधारणतः नाम लेदेना ही पर्याप्त नहीं होता, किन्तु विशेष रूप से उस मुख्य कार्य का प्रचार करना स्मारक का मुख्य अभिप्राय होता है, जिस काम को कि कोई महापुरुष अपने जीवन में करता रहा हो। यदि कोई "प्रोफ़ेसर टिण्डल" के नाम पर एक सदाव्रत खोलदे तौ वह सदाव्रत साधारण पुरुषों की दृष्टि में शायद "टिण्डल" का स्मारक हो और उसमें टिण्डल की मूर्ति भी स्थापित कीगई हो, परन्तु विचारशील पुरुष उसको टिण्डल का स्मारक नहीं कह सकते। इसमें सन्देह नहीं कि सदाव्रत खोलना एक अच्छा काम है परन्तु यह काम विज्ञान (सायन्स) के प्रचारक " टिण्डल " के उद्देश्य से सम्बन्ध न रखता हुआ उसका स्मारक नहीं कहला सकता। स्मारकचिन्ह वह होना चाहिये कि जो अपने उद्देश्य द्वारा उसका बोधन करा सके जिसका कि वह स्मारक है।

निदान स्मारक में उस महापुरुष का उद्देश्य पूर्ण होना चाहिये। यदि कोई ऐसी शाला हो जिसमें यह शिक्षा दीजावे कि मनुष्य शनैः २ बन्दर से मनुष्य के रूप में परिणत होता गया तौ निःसन्देह यह शाला डार्विन की यथार्थ स्मारक होगी। किसी महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध या उद्देश्य को पूर्ण न करने वाला स्मारक उसके जीवन को कलङ्क लगा सकता है। जैसे-यदि कोई गिर्जा "ब्रैडला" के नाम पर बनाया जावे तौ साधारण लोगों में वह गिर्जा ब्रैडला का स्मारक कहला सकता है, किन्तु यदि विचार से देखें तौ यह स्मारक जो कि "ब्रैडला" के उद्देश्य के विरुद्ध है, उसको कलङ्कित करने वाला है। लोग उस शिक्षा को जो कि गिर्जा में दीजावे सुनकर भ्रान्ति से कह सकते हैं कि ब्रैडला भी इसी प्रकार अपने जीवन में बाइबिल का

* ब्यायोग्रेफ़िकल ऐसेज़ पृष्ठ १८३।

प्रचार करता रहा होगा किन्तु वह बाइबिल की शिक्षा के अत्यन्त विरुद्ध था । इसी प्रकार यदि कणाद या पतञ्जलि के नाम पर कोई अंगरेज़ी स्कूल खोलदे तो यह स्कूल कणाद और पतञ्जलि का स्मारक नहीं होसकता चाहे उसके साथ इन महात्माओं का नाम लगा हो ।

किसी महात्मा के उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ कोई कार्यालय उस महात्मा का स्मारक कहला सक्ता है अन्यथा नहीं । यह आवश्यक नहीं कि उस कार्यालय के साथ महात्मा का नाम भी हो, यदि नाम नहीं और उद्देश्य पूर्ण होरहा है तो संसार विना संकोच के उसको स्मारक कहता है, जैसे कि आर्यसमाज । यद्यपि इसके साथ महर्षि दयानन्द का नाम नहीं लगा हुआ तथापि महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण करने से उसका स्मारक बनरहा है । परन्तु दयानन्द प्रेस, दयानन्द हस्पताल, दयानन्द बाज़ार, दयानन्द स्कूल, दयानन्द साबुन और ऐसी ही अनेक वस्तु जोकि महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकतीं, कभी महर्षि का स्मारकचिन्ह कहलाने के योग्य नहीं होसकतीं, चाहे उनके साथ महर्षि का नाम क्यों न लगा हुआ हो ।

स्थूलदर्शी पुरुषों ने संसार के इतिहास में स्थूलपदार्थ स्मारक समझे हैं । यथा-यवन (मुसलमान) मदीने को अपने पूर्वजों का स्मारक समझते हैं । ईसाई लोग सूली की मूर्ति को अपने गुरु का स्मारक बतलाते हैं । बौद्ध लोग बुद्धकी मूर्ति को उस का स्मारक ठहराते हैं । संसार की मूर्ख जातियों के आचार विचार को इकट्ठा किया जावे तो सार यह निकलता है कि वे किसी स्थूल पदार्थको अपने किसी महात्मा का स्मारक चिन्ह बनाते हैं । परन्तु वे स्थूलपदार्थ भी भिन्न २ हैं जो कि उन के विचार में स्मारकचिन्ह का काम देते हैं । यही नहीं कि लोग स्मारक के विषय में भूले हुये हैं किन्तु साधारण बातों को भ्रम से कुछ का कुछ समझे हुये हैं । दृष्टान्त के लिये सुरूपता को ही लेलीजिये और देखिये कि किस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध लोगों ने सुरूपता कल्पित करली है । यथा-चीनी उस स्त्री को सुरूपा जानते हैं जिस के पांव बहुत ही छोटे हों और इस कारण उस से चला ही न जावे । यूरोपियन लोग उस स्त्री को रूपवती मानते हैं जिसकी कमर पतली हो । हबशी लोग उसे रूपवान् बतलाते हैं जिस के होंठ उभरे हुये हों । परन्तु वैद्य (डाक्टर) लोग बतलाते हैं कि समता या आरोग्यताका नाम सुरूपता है । ठीक इसी रीति पर संसार ने स्मारक के भिन्न २ आदर्श (पैमाने) घड़ लिये हैं. परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि कोई स्थूल पदार्थ किसी चेतन महात्मा का स्मारक नहीं हो स-

कता यदि मान भी लें कि कोई स्थूलवस्तु किसी महात्मा की स्मृतिप्रवर्त्तक हो-सकती है तो यह स्मारक बहुत कम हर्ष और लाभ का देनेवाला होगा और इस-की अपेक्षा वह स्मारक जिस से उस के उद्देश्य की पूर्ति हो अत्यन्त हर्ष और म-हा लाभ का देनेवाला सिद्ध होता है। जैसे दो मनुष्य स्वामी दयानन्द का स्मारक बनाते हैं एक तो मूर्तियां बना कर बेचता है और दूसरा विद्यालय खोलकर ब्रह्मच-र्य आश्रम की नींव डालता है। यदि मूर्ति या फोटो लोगों को उन के स्मरण कराने से कोई लाभ पहुंचा सकती है तो यह लाभ उस लाभ की अपेक्षा जो विद्यालय पहुंचा सकता है बहुत ही तुच्छ समझना चाहिये। विचार कर देखें तो महात्माजन अ-पने रूप, अपने नाम, अपनी मूर्ति या अपने कुल की बड़ाई बेचने नहीं आते, किन्तु वह उच्च उद्देश्यों का प्रचार करते हुये अपने नाम और शरीर तकका मोह नहीं क-रते। वह चाहते हैं कि सच्चे और हितकारी नियमों का पालन करके लोग लाभ उ-ठावें, इसलिये उनका सच्चा स्मारकचिन्ह वही हो सकता है जो कि उन नियमों या उद्देश्यों की महिमा का लोगों को उन के समान ही बोधन कराता रहे।

स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्तिका साधन है इसको हिन्दू पौराणिक लोग भी वाचिक ही नहीं किन्तु कार्मिक रीति पर मानते हैं। यदि वह यह समझते हैं कि उनकी काली देवी रक्त बहाने वाली और हिंसा करने वाली थी तो वे उसके मंदिर में (जो उसका स्मारक रूप है) अब तक भी सहस्रों निरपराध प्राणियों के गले काटते हुये अपने इस कर्म से लोगों को इस बात की शिक्षा देरहे हैं कि हम काली के उद्देश्य को इस मन्दिर में (जो उसका स्मारक है) पूरा कर रहे हैं। इसके अ-तिरिक्त वैष्णव लोग अपने मन्दिरों में कभी शाक्तिक मतकी शिक्षा नहीं देते। जैनी अपने मन्दिरों में जिनको वे अपने तीर्थंकरों का स्मारक समझते हैं कभी पुराणों की शिक्षा नहीं देते। बौद्धमन्दिरों में कभी पौराणिक लोगों की मूर्तियां नहीं रक्खी जा-तीं। शंकराचार्य के मठों में कभी अद्वैतवाद के विरुद्ध प्रचार नहीं किया जाता। नि-दान जो स्मारकचिन्ह किसी ने किसी महात्मा का मान रक्खा है वह उस स्मारक रूप कार्यालय को उस महात्मा के उद्देश्यके विरुद्ध नहीं चलाता, किन्तु उस स्मा-रक को उसके उद्देश्य की पूर्ति का (चाहे वह उद्देश्य कैसा ही अपवित्र या भ्रामक क्यों न हो) साधन बनाता है। स्वामीजी उस कार्यालय के साथ सम्बन्ध रखते थे जिससे उनका उद्देश्य पूर्ण होता रहे। यदि वह देखते थे कि कोई स्थापना हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करती तो वे स्वयं उसके विरुद्ध और तोड़ने वाले हो जाते थे। फर्रुखाबाद आदि स्थानों की पाठशालायें इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त

हैं। यद्यपि इन पाठशालाओं में अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्ष ग्रन्थ उत्तमता से पढ़ाये जाते थे, परन्तु जब विद्यार्थी आर्षग्रन्थ पढ़ने पर भी पौराणिक के पौराणिक ही बनकर निकलने लगे तो स्वामीजी ने इन शालाओं को तोड़ देना ही उचित समझा। इससे हमें जानना चाहिये कि कोई स्थापना जो कि स्वामीजी के उद्देश्य को पूर्ण करने का साधन नहीं है वह उनकी कभी यादगार कहला नहीं सकती। सम्भव है कि मनुष्य किसी कार्यालय को (जो उनके नाम से प्रसिद्ध है) उनका स्मारक समझले परन्तु इस बात का निश्चय करने के लिये कि यही स्मारक है, मनुष्य को उस कार्यालय के उद्देश्य और कार्य प्रणाली की पड़ताल करलेनी चाहिये। हम ब्राह्मणका नाम सुनकर किसी व्यक्ति विशेष का आदर करने के लिये उद्यत हो जाते हैं परन्तु उसकी ब्राह्मण संज्ञा को छोड़ कर उसके काम की पड़ताल करें तो फिर निश्चय हो सकता है कि यह ब्राह्मण है या नहीं। इसी प्रकार किसी महात्मा के सच्चे स्मारक को जानने के लिये हमें उसके नाम को छोड़कर उस उपदेश और शिक्षा को देखलेना चाहिये जो उस में दी जावे। इस कथन से यह सिद्ध है कि सच्चा स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन हुआ करता है और इस तत्व को समझते हुये हम पाते हैं कि आर्य्यसमाज जहां महर्षि के नाम को स्मरण कराने वाला है वहां उनके उद्देश्य की पूर्ति का निस्सन्देह प्रबल और सब से उत्तम साधन है।

पं० गुरुदत्तजी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि "ईंट पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवादेने से उस ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता। किन्तु यदि ऋषियों का स्मारक बनाना चाहते हो तो उन उद्देश्यों का प्रचार करके दिखाओ जिन का प्रचार अपने जीवन में वे ऋषि स्वयं करते रहे हैं"। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धान्तों का संसार में प्रचार हो जावे।

यदि स्वामीजी अपना शिक्षापत्र (वसीयतनामा) न छोड़ते तो स्यात् कोई कहसकता कि हमें स्वामीजी का उद्देश्य विदित नहीं, परन्तु जब उनका वसीयतनामा मौजूद है तो कोई भी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता। यह वसीयतनामा कह रहा है कि यदि स्वामीजी कुछ काल और जीते तो वे निम्न लिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपना समय लगाते:-

स्वामीजी का उद्देश्य जो कि वसीयतनामे में लिखा है:—

(१) वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।

(२) वैदिकधर्म के उपदेश और शिक्षा के लिये उपदेशक मण्डली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में।

(३) आर्य्यावर्त्त के अनाथ और दीन मनुष्यों की शिक्षा और पालन में इस सभा को अपना धन और पुरुषार्थ लगाना चाहिये।

महर्षि के इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आर्य्यसमाज विद्यमान है, अतएव आर्य्यसमाज के सिवाय कोई भी उस का सच्चा स्मारक नहीं है। आर्य्यसमाज में सम्मिलित होने के लिये स्वयं महर्षि लोगों को बुलारहा है* आर्य्यसमाज ऐसा सच्चा स्मारक है कि इस का बुनयादी पत्थर स्वयं महर्षि ने अपने हाथ से रक्खा है, इस यादगार का चर्चा पृथिवी भर में फैलाहुआ है। आर्य्यसमाज की वृद्धि से वैदिक धर्मकी उन्नति होसकती है। कभी वह दिन भी आवेगा जब कि भूगोल के सब द्वीपों में आर्यसमाज रूपी वृक्ष की शाखायें फैलेंगी। वह दिन आवेगा जब कि हम "उपदेशक मण्डली" की दृढ नींव रखने के लिये पुरुषार्थ करते हुये महर्षि की शिक्षा (वसीयत) को पूरा करने से ऋषि सन्तान कहलाने के अधिकारी बनेंगे। स्वामीजी यदि जीवित रहते तो वे स्वयं इस " उपदेशक मण्डली " को अच्छी पुष्टदशा में करजाते, परन्तु उन्होंने पं० गौरीशङ्कर शर्म्मा को वैदिकधर्मसभा जयपुर का वैतनिक उपदेशक नियत करके इस महान् कार्य की जड़ आप जमाई थी, अब इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आर्य्यसमाजों ने वेदप्रचार फण्ड स्थापित किया है ताकि देश२ और नगर२ में वैदिकधर्म का प्रकाश और अविद्यान्धकार का नाश होसके।

यदि कलकत्ते की एसियाटिक सोसाइटी के सभ्यों के† पुरुषार्थ से यूरोप को प्राचीन शास्त्रों के महत्व का लेश मात्र परिचय मिला है तो उक्त सोसाइटी से कई गुणा बढ़कर आर्य्यसामाजिक पुरुषार्थ के द्वारा यूरोप, अमेरिका आदि सब देशों को वेदादि सत्य शास्त्रों की महिमा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा यदि आज पश्चिमीय लोग एसियाटिक सोसाइटी के कृतज्ञ हैं तो कल इस से बढ़कर आर्य्यसमाज और उस के जन्मदाता महर्षि दयानन्द के कृतज्ञ होंगे।

---

* देखो सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३८६.

† सर विलियम जौन्स, वेलकिन्सन, केरी, फारिस्टर, और कोलब्रूक आदि एसियाटिक सोसाइटी के सभासद् जिन्होंने कि संस्कृत का पता पश्चिम वालों को दिया है। सायन्स आफ लैंग्वेज पृ०२२०

महर्षि की ग्रन्थरचना और वैदिकशिक्षा।

स्वामीजी के जीवन के दो भाग हैं, एक वह भाग जिस में अमृत का जिज्ञासु अमृतसिन्धु की खोज में फिरता रहा। दूसरा वह भाग है जिस में कि अमृतपान कर लेने के पश्चात् मनुष्यमात्र को उस अमृतके छकानेका यत्न करता रहा। दोनों भागों में हम उन्हें पुरुषार्थ करते हुये पाते हैं। पहिले भाग में अपने लिये और दूसरे भाग में औरोंके लिये। दोनों भागों में हम साधन देखते हैं, पहिलेमें अपने लिये, दूसरे में औरों के लिये। दोनों भागों में हम उन्हें यात्रा करतेहुये पाते हैं। दोनों भागों में हम उन्हें कष्ट और विघ्नों के जाल में घिरा हुआ पाते हैं। पहिले भाग को यदि बीज कहें तो दूसरा भाग उस का फल है। दोनों भागों में हम उन्हें कृतकार्य होता हुआ देखते हैं। पहिले भाग में यदि उनके साधन ब्रह्मचर्य और योग थे तो दूसरे भाग में हम उन को वाणी और लेख के साधन काम में लाते हुये पाते हैं। यदि पहिले उन्नति के साधन थे तो पिछले प्रचार के साधन हैं।

यदि कोई प्रश्न करे कि महर्षि ने पिछले भाग में वाचिक और लेखबद्ध उपदेश के काम को अपने हाथ में क्यों लिया? क्या इसके सिवाय और कोई उत्तम साधन न थे तो हम कहेंगे जैसे अपनी उन्नति के ब्रह्मचर्य और योग पूर्ण और अनुपम साधन हैं वैसे ही संसारोन्नति के लिये वाचिक और लेखबद्ध उपदेश सर्वोत्तम और अद्वितीय साधन हैं। वाचिक उपदेश वह परमोत्तम साधन है जिसको कि प्राचीन समय में आश्रमियों के शिरोमणि संन्यासी लोग ग्रहण किया करते और इस उपदेश बल से सब मनुष्यों का कल्याण किया करते थे। ऋषि लोग जहां वाचिक उपदेश करते थे वहां आवश्यकतानुसार लेखबद्ध उपदेश भी करते रहे हैं। क्या महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी, महर्षि पतञ्जलि का योगदर्शन, ब्रह्मवेत्ता ऋषियों की उपनिषदें, शतपथ आदि ब्राह्मण, निरुक्त, निघण्टु, आदि पुस्तकें उन के लेखबद्ध उपदेश का फल नहीं हैं?

ऋषि समय को छोड़कर हम अन्धकार के समय में भी दीपक का प्रकाश फैलाने वालों को इन दोही साधनों से काम लेते हुये पाते हैं। बुद्ध ने इसी उपदेश के बल से धर्म के साधन संसार में प्रचार किये और आज पचास करोड़ से अधिक मनुष्य उपदेश के महत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शंकर, ईसा, मुहम्मद, डार्विन आदि अनेक पुरुषों ने वाचिक और लेखबद्ध उपदेश से ही काम लिया है। उपदेशके इस

महत्व को स्वयं महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इस प्रकार वर्णन किया है:—

"सदुपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है" मैडम साहबा के नाम एक पत्र में उनके इस प्रकार वचन मिलते हैं जिनसे भी उपदेश के महत्व का बोधन होरहा है "हम आर्यों और आर्यसामाजिकों की कदापि हानि नहीं होसकती क्योंकि यह बात नवीन नहीं है। हम लोग जब से सृष्टि और वेद का प्रकाश हुआ है, उसी समय से आज पर्यन्त उसी बात को मानते आते हैं। क्या हुआ कि अब थोड़े समय से अपनी अज्ञानता और उत्तम उपदेशकों के विना बहुत से आर्य वेदोक्त मत से कुछ २ विरुद्ध और बहुत से अनुकूल आचरण भी करते हैं, अब जिसकी प्रसन्नता हो अपनी और सब की उन्नति के लिये इस आर्यसमाज में मिलैं" सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि:— "इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अङ्कुर उगे थे वे बढ़ते २ वृद्ध होगये, जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त में अविद्या फैलकर परस्पर लड़ने झगड़ने लगे क्योंकि जब उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है, फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सदुपदेश करते हैं तब ही अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।"

बुद्धिमान् कारीगर भुजायंत्र (लीवर) से काम लेने वाले बड़े भारी बोझों को सुगमता से उठा सकते हैं और लीवर का मूल मनुष्य की भुजा में विद्यमान् है। एक फिलास्फ़र ने लीवर की विचित्र भारवाहिनी शक्ति का महत्व दिखलाने के लिये कहा था कि मुझे पूरा २ सामान और लीवर देदो मैं पृथिवी को उठा सकता हूं। इस कथन में अत्युक्ति है परन्तु जब हम यह कहैं कि सदुपदेश मनुष्य जाति को ऊपर उठाने का एक निर्दोष और दृढ़ लीवर है तो इस में कुछ भी अत्युक्ति नहीं ऐसे महान् उपदेश के लीवर को लिये हुए महर्षि गिरी हुई मनुष्य जाति के उठाने का प्रयत्न करता रहा और कृतकार्य हुआ।

उसके वाचिक उपदेश का फल यदि आर्यसमाज हैं तो लेखबद्ध उपदेश का फल उसके रचित ग्रन्थ हैं। वाचिक उपदेश वह अपने जीवन में ही हमें सुना सकते थे, परन्तु उनकी लेखबद्ध रचना आज उनके वाचिक उपदेश के स्थान में काम कररही

है। इस समय लोग उनके वाचिक उपदेश को नहीं सुन सकते परन्तु उनकी रचना को पढ़ सकते हैं। सच पूछो तो उनके ग्रन्थ ही आज हमें उनकी ओर से उपदेश देते हुये स्वस्ति और शान्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं। इसके पूर्व कि हम उन सिद्धान्तों का वर्णन करें जिनकी कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में शिक्षा दी है यह बतलाना आवश्यक है कि ये सिद्धान्त उनके निजकल्पित या नूतनरचित नहीं हैं, किन्तु प्राचीनता में सृष्टि के समानान्तर और सहयोगी हैं। इन सिद्धान्तों का होना ईश्वरीयज्ञान वेद पर निर्भर है, इनका दूसरा नाम वैदिक सत्यसिद्धान्त है। ये वे सच्चे सिद्धान्त हैं जिनको कि मनुष्यजाति आदि सृष्टि से महाभारत के समय तक मानती रही है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि तक जितने ऋषि, महर्षि, मुनि, महामुनि पृथिवी पर हुये सब निर्विवाद मानते रहे। यही नहीं किन्तु ये वे सत्सिद्धान्त हैं कि जिनको अब भी बुद्धिमान् लोग मान रहे हैं और भविष्य काल में भी मानेंगे। इन सिद्धान्तों का मूल केवल सत्य पर है। सृष्टिक्रम इनकी सचाई का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ये किसी जातिविशेष सम्प्रदाय विशेष और व्यक्तिविशेष से सम्बन्ध रखने वाले मन्तव्य नहीं हैं। ये ईरान, चीन, भारतवर्ष आदि किसी देश की सीमा में बद्ध होने वाले नियम नहीं हैं और नहीं यह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैनी आदि किसी सम्प्रदाय विशेष के मन्तव्य हैं। जैसे संसार के लिये एक ही पवन, एक ही जल, एक ही सूर्य लाभदायक है वैसे ही मनुष्य मात्र के लिये ये एक ही आत्मिकसूर्य के समान हैं। सचाई से कोई विरोध नहीं कर सकता, दो और दो को सब चार ही कहेंगे, सब देशों में लोग सप्ताह के सात दिन और वर्ष के बारह महीने मानते हैं। ठीक इसी प्रकार इन वैदिक सिद्धान्तों का पालन प्रत्येक मनुष्य करसकता है। आंख सूर्य के प्रकाश को ग्रहण करती है, आत्मा सचाई का ग्राहक है। वैदिक सचाई प्रकृति की पाठ्य पुस्तक है। इन मन्तव्यों का तत्त्व समझने के लिये प्रत्येक मनुष्य को महर्षि के निम्नलिखित शब्द अवलोकनीय हैं:-

"सर्वतंत्र सिद्धान्त या मनुष्य का धर्म वह है जिसको कि सदा से सब मानते आये, अब मान रहे हैं और भविष्य में भी मानेंगे। जो कि उस का कोई भी विरोध नहीं कर सकता। इसलिये उस को नित्य और अनादि धर्म कहते हैं। बुद्धिमान् लोग किसी मूर्ख की बात या मत की बहकावट को नहीं मान सकते। सत्यवादी, सत्यकारी, सब के हितैषी और निष्पक्ष विद्वान् जिन सिद्धान्तों को मानते हैं वही सब को मानने योग्य हैं और ऐसे लोग जिन को नहीं मानते वे अमन्तव्य होने से प्रामाणिक नहीं होते। वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक म-

हर्षियों के माने हुये ईश्वर आदि जो सिद्धान्त हैं उन को मैं भी मानता हूं और सब भद्र पुरुषों के सन्मुख रखता हूं। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं जो कि तीनों कालों में सबके लिये समान रूप से मन्तव्य हो। मेरा प्रयोजन कदापि किसी नवीन कल्पित सिद्धान्त या मत चलाने का नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और झूठ को छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं भी आग्रही होता तो आर्यावर्त के प्रचलित मतों में से किसी एक का पक्ष ले लेता, परन्तु आर्यावर्त या अन्य देशों में जो अधर्म की बातें हैं उनको ग्रहण और धर्म की बातों का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं, क्योंकि ऐसा काम मनुष्यता से बाहर है। मनुष्य वही है जो विचार से काम लेता हुआ अपने समान ही अन्यों के सुख दुःख और लाभ हानि को समझै, अन्यायी बलवान् से भी न डरै और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने पूरे सामर्थ्य से धर्मात्माओं की (चाहे वे कैसे ही दरिद्र, निर्बल और गुणहीन क्यों न हों) रक्षा, उन्नति और सहायता करता रहे और अन्यायी चाहे पृथिवी का राजा, धनवान्, बलवान् और गुणवान् ही क्यों न हो, उसकी हानि, अवनति और उपेक्षा सदा किया करे अर्थात् जहांतक होसके वहांतक अन्यायाचरण करने वालों की शक्ति का ह्रास और न्यायाचरण करने वालों की सहायता सदा करता रहे। इस काम में चाहे उसको कैसा ही कष्ट और दुःख उठाना पड़े चाहे प्राणतक भी चले जावें परन्तु इस मनुष्यता से पृथक् कभी नहो।"

जिन सिद्धान्तों या मन्तव्यों की वह शिक्षा देते रहे उनका दूसरा नाम सर्वतंत्र सिद्धान्त है, इनको ही हम वैदिकधर्म कहते हैं। इन्हीं को स्वामीजी स्वयं मानते और दूसरों को मनवाते थे, इन्हीं का उपदेश वह अपने ग्रन्थों में कर गये हैं। यह जान लेने के पश्चात् कि वह सार्वजनिक धर्म की शिक्षा देते रहे अब हमें निदर्शन की रीति पर उन सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

सब से प्रथम उन्होंने संसार को ईश्वर के विषय में वेदोक्त शिक्षा दी।

रसना उत्तम अन्न को चखती हुई उसे स्वीकार करती है, परन्तु विष के चखने पर उसको कदापि स्वीकार नहीं करती। आमाशय (मेदा) जहां अन्न को पचाता है वहां विष को वमन या विरेचन के द्वारा अपने से पृथक् करता हुआ अपनी अरुचि प्रकट करता है। कान यदि सुरीले राग को आकर्षण करते हैं तो भयंकर शब्द

या रुदन से घबराते हैं। नाक यदि सुगन्ध को ग्रहण करती है तो दुर्गन्ध से बचना चाहती है। प्रत्येक इन्द्रिय अपनी प्राकृतिकदशा में अनुकूल का ग्रहण और प्रतिकूल का त्याग करने के लिये उद्यत है। परन्तु इन इन्द्रियों से बढ़कर एक और प्रधान इन्द्रिय है जिसका नाम बुद्धि है और जो आत्मा को आत्मिक अर्थों के ग्रहण करने या न करने में सदा सहायता देती है। मन्तव्य और सिद्धान्त इसी प्रधानेन्द्रिय के सन्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। उनमें से जो आत्मा के भोग्य होने के योग्य होते हैं उनको यह स्वीकार करती और जो उसके लिये विष का प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं, उनको त्याग करदेती है। पांच सहस्र वर्ष से लगातार मनुष्य की इस प्रधानवृत्ति को घूंस (रिशवत) देने की मतमतान्तर वालों ने चेष्टा की ताकि यह विष को भोजन और भोजन को विष कहदे। सम्प्रदायों के आचार्यों ने इस प्रधानवृत्ति का गला घोटना चाहा और उनके प्रचारकों ने आत्मा की इस भीतरी आंख को फोड़ना चाहा इसलिये कि वे अपने मनघड़त मन्तव्यों का विष आत्मा को भोजन के मिष से देसकें। इस समय संसार में पुरानी, जैनी, किरानी, कुरानी, सारे मतवादी सहमत होकर कहरहे हैं कि धर्म (मत) से बुद्धि का कुछ सम्पर्क नहीं, जिसका अर्थ यह है कि वे आत्मा को बुद्धि की आंख से अन्धा करके अपने मत का प्रकाश दिखलाना चाहते हैं। तर्क के सामने ठहर नहीं सकते। मनुष्य की बुद्धि इन मतों के सिद्धान्तों को कदापि स्वीकार नहीं करसकती। इसके विपरीत वैदिकधर्म तर्क से पुष्ट होता है, वेदों में कोई बात भी ऐसी नहीं जिसको कि मनुष्य की बुद्धि स्वीकार न करसके। संसार भर में एक वैदिकधर्म ही है जो कि आत्मा की आंख (बुद्धि) को फोड़ना नहीं चाहता। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि:-"मैं वेदों में कोई बात बुद्धिविरुद्ध वा दोष को नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत निर्भर है *" यही नहीं कि दयानन्द की यह निज की सम्मति हो किन्तु सम्पूर्ण ऋषि मुनि ऐसा ही मानते हैं। महर्षि कणाद लिखते हैं कि "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" † अर्थात् वेद का कोई मन्त्र बुद्धि के विरुद्ध नहीं। महर्षि मनुजी लिखते हैं कि "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतर:" अर्थात् जो तर्क से सिद्ध हो वही वेद का मत है अन्य नहीं। निरुक्तकार यास्क महर्षि कहते हैं "तर्कमेव ऋषिः" ‡ अर्थात् तर्क ही हमारा ऋषि है। वेदों में भी कई मन्त्र ऐसे हैं जिनमें मनुष्य को बुद्धि से काम लेने की शिक्षा

* सत्यार्थप्रकाश पृ० ५९९, ६०० (तृतीय एडीशन) भ्रान्तिनिवारण पृ० ५।

† वैशेषिक दर्शन अ० ६ सू० १।

‡ निरुक्त अ० १३ खं० १२।

की गई है। इसलिये वैदिकधर्म के मन्तव्य वही समझ सकते हैं जो अपनी बुद्धि से काम लेते हैं। जो इस प्रधान और ऋषि पदवी धारण करने वाली बुद्धि को आत्मा की आंख मानते हैं। जिन की आत्मिक चक्षु फूट गई हो, वे यदि वैदिकसिद्धान्तों को न समझ सकें तो इसमें वेदों का कुछ दोष नहीं किन्तु उन्हीं का दोष है।

किरानी और कुरानी लोग एक कल्पित ईश्वर को मानते हैं जिसके गुण कभी बुद्धि स्वीकार नहीं करसकती। दुष्टबुद्धि रखने वाले नास्तिक और जैनी लोग अन्धकार में पड़े हुये ईश्वर से ही विमुख हो बैठे हैं। पौराणिक लोगों ने अपनी भ्रान्ति और कल्पितगुणों का संघात ईश्वर को मान रक्खा है। अद्वैतवादियोंने बुद्धि का असदुपयोग करके सब को ईश्वर ही ईश्वर बनादिया। अब संसार सचमुच नास्तिक है, यदि जैनी, चारवाक, बौद्ध और यूरोप के प्रकृतिपूजक ईश्वरवादी न होने से नास्तिक हैं तो पुरानी, किरानी, कुरानी, अद्वैतवादी और थियासोफिस्ट भी ईश्वर को अन्यथा माननेसे आस्तिक नहीं होसकते। क्योंकि यदि किसी वस्तु का न जानना अविद्या है तो किसी का उलटा जानना भी अविद्या से पृथक् नहीं होसकता।

पश्चिमीय विज्ञान की पुकार मचाने वाले आधुनिक नास्तिक यद्यपि तर्क की आंख से देखना चाहते हैं परन्तु अन्धेरे में आंख से कौन देख सकता है। यदि पुरानी, किरानी, कुरानी आदि आंख को फोड़ना चाहते थे तो ये पश्चिमीय प्रकृतिवादी आंख की रक्षा करना चाहते हैं। यदि वे अन्धे होने के कारण नहीं देख सकते थे तो ये अन्धेरे के कारण देखने से वञ्चित हैं। सायन्स के दीपक के प्रकाश में बुद्धि काम करती हुई एक परिमित सीमा तक देख सकती है उस से आगे नहीं। पश्चिमीय सायन्स और नास्तिकपन प्रकृति और क्रिया को दो अनादि वस्तु मानकर थक गया है और इस से परे दीपक के प्रकाश में देखने की उस को शक्ति नहीं। प्रोफ़ेसर टिण्डल अपनी अवस्था को इस प्रकार वर्णन कररहा है "हम जहां प्रकृति की उत्पत्ति को नहीं जानते वहां क्रिया की उत्पत्ति को भी नहीं जानते, जहां प्रकृति है वहां क्रिया है क्योंकि हम केवल क्रिया के ही द्वारा प्रकृति को जानते हैं।" हम संसार में कोई वस्तु बढ़ा नहीं सकते और नहीं उस से घटा सकते हैं, पश्चिमीय विज्ञान ईश्वर के एक गुण क्रिया को अनुभव करके थकगया है और उस से परे नहीं जासका। क्रिया को प्रकृति से भिन्न अनादि मानते हुये सायन्स इसके विषय में अधिक जानने से वंचित है, परञ्च वैदिकसूर्य का प्रकाश हमें दर्शा रहा है कि उक्त क्रिया ईश्वर ही की सत्ता से प्रकृति में भरपूर होरही है। जिस परमेश्वर के गुणों का पश्चिमीय जगत् को ज्ञान नहीं और पूर्वीय जगत् को उलटा ज्ञान होरहा

है। वेद बतलाता है कि:—"तदेजति तन्नैजति" * अर्थात् वह परमेश्वर सब को चला रहा है और आप अचल है" उपनिषद् वेद के आशय की इस प्रकार पुष्टि कर रही है कि:-"स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" जिस के अर्थ यह हैं कि "वह परमेश्वर ज्ञान, बल और क्रिया का भण्डार है"।

कोई २ नास्तिक इस प्रकार कहा करते हैं कि:-"इस संसार का बनाने वाला न था, न है और न होगा, किन्तु अनादिकाल से यह सृष्टि ऐसी ही चली आरही है न कभी यह बनी और न कभी नष्ट होगी" इस का उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं कि "विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया नहीं हो सकती, पृथिवी आदि पदार्थों में विशेष प्रकार की बनावट दीखती है, यह बनावट अनादि नहीं होसकती। जो वस्तु मिलकर बनी हो वह संयोग से पूर्व बनी हुई नहीं होती और फिर वियोग होने के पश्चात् वैसी नहीं रहती। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पत्थर और धातु हीरा और फौलाद आदि को तोड़ टुकड़े कर गला या जला कर देखो कि इन में अलग २ परमाणु मिले हुये हैं वा नहीं, यदि मिले हैं तो समय पाकर पृथक् भी अवश्य होंगे"† ।

(प्रश्न) स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, जैसे अन्न और जल के परस्पर मिलने और सड़ने से कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, एवं बीज, मिट्टी और पानी के मिलाप से वृक्ष, तृण और पत्थर आदि बन जाते हैं। जैसे समुद्र और वायु के मेल से लहरें और लहरों से झाग तथा हल्दी, चूना और नीबू के रस मिलने से रोली बन जाती है, वैसे ही यह सब सृष्टि तत्वों के स्वभाव और संयोग से उत्पन्न हुई है, इसका बनाने वाला कोई भी नहीं। (उत्तर) यदि स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति होती तो विनाश कभी न होता। यदि विनाश भी स्वभाव से ही मानोगे तो उत्पत्ति कभी न होगी। यदि दोनों गुण परमाणुओं में मिश्रित मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश का क्रम कभी न चल सकेगा। यदि कर्त्ता के होने पर उत्पत्ति और विनाश मानोगे तो यह कर्त्ता उत्पन्न और नष्ट होने वाले परमाणुओं से पृथक् मानना पड़ेगा। यदि स्वभाव में ही उत्पत्ति और नाश की शक्ति होती तो फिर किसी नियत समय पर उत्पत्ति और नाश का होना सम्भव न था। यदि स्वभाव से ही उत्पत्ति हो रही है तो फिर इस पृथिवी के समीप दूसरी पृथिवी, चन्द्र, सूर्य आदि लोक

* यजुर्वेद अ० ४० मं० ५।

† सत्यार्थप्रकाश पृ० २१८ अष्टमसमुल्लास।

क्यों नहीं बन जाते और जिन २ पदार्थों के मिलाप से जो २ वस्तुयें उत्पन्न होती हैं, वे ईश्वर के बनाये हुये बीज, अन्न और जल आदि के संयोग से पत्थर, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे हलदी, चूना और नीबू का रस दूर२ से आकर स्वयं नहीं मिलते, किन्तु किसी के मिलाने से मिलते हैं और उस पर भी ठीक परिमाण से मिलाने पर रोली बनती है, न्यूनाधिक या उलट पुलट करने से नहीं बन सकती, ऐसे ही भौतिक परमाणुओं को ज्ञान और क्रमपूर्वक परमेश्वर के मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयमेव कुछ भी नहीं बन सकते, अतएव स्वभाव से सृष्टि नहीं बनती किन्तु परमेश्वर के बनाने से बनती है* "।

सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि:-"विना चेतन परमेश्वर के बनाये ज्ञान और कर्म से रहित भौतिक परमाणु स्वयमेव आपस में मिल कर नियमपूर्वक उत्पन्न नहीं होसकते। जो स्वभाव से ही उत्पन्न होते हों तो दूसरे सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और तारे आदि लोक अपने आप क्यों नहीं बन जाते?" यही नहीं कि उन्होंने केवल अनीश्वरवादियों के आक्षेपों का ही उत्तर दिया हो, किन्तु वह पौराणिक आदि † लोगों को भी (जिन्होंने कि अपनी रुचि के अनुसार ईश्वर को भी मान लिया है) वेदों के प्रमाण देते हुए यथार्थ रीति पर ईश्वर का वास्तविक स्वरूप बतलाते हैं। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में उन्होंने निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी आदि शब्दों की व्याख्या की है और इस व्याख्या में उन्होंने धार्मिक जगत् के प्राचीन और गूढ़रहस्यों को खोलकर स्पष्ट करदिया है। मतवादी लोग दयालु और न्यायकारी शब्दों को परस्पर विरुद्ध मान रहे थे परन्तु योगिराज की व्याख्या ने बतला दिया कि दयालु और न्यायकारी वास्तव में एकार्थवाचक हैं न कि भिन्नार्थद्योतक। सम्प्रदायी लोग सर्वशक्तिमान् शब्द के अर्थ भ्रान्ति से यह समझे हुये थे कि ईश्वर मनुष्य का अवतार धारण करके संसार में प्रकट होता है परन्तु महर्षि की सच्ची वेदोक्त व्याख्या ने ऐसे भ्रम जालों को काट कर लोगों को बतला दिया कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् इसलिये है कि वह अपने काम में दूसरों की सहायता नहीं लेता, न यह कि वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव को बदल देता है। ऐसे मिथ्याज्ञान ने संसार में लोगों को ईश्वर से विमुख कराकर नास्तिक बना दिया था। और सैकड़ों वर्ष से धार्मिक जगत् इस गूढ़ रहस्य के खोलने में असमर्थ

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २२८।

† आदि शब्द से इञ्जील और कुरान के मानने वाले आजाते हैं।

दिखाई देता था। पर आज उस महर्षि की कृपा से इन गूढ़ सिद्धान्तों का मर्म सब को विदित होगया।

जो लोग कहा करते थे कि कारण का भी कारण होना चाहिये अर्थात् ईश्वर का भी ईश्वर होना चाहिये, उनका उत्तर महर्षि एक सरल दृष्टान्त के द्वारा देते हैं, जिससे मनुष्य को फिर कोई संशय शेष ही नहीं रहता। महर्षि अष्टम समुल्लास में लिखते हैं:-"क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी होसकता है? सूर्य सब पदार्थों को दिखाता है, परन्तु सूर्य को देखने के लिये कभी किसी ने दूसरे सूर्य की आवश्यकता अनुभव नहीं की। इसी प्रकार ईश्वर सबका निमित्तकारण है उसका निमित्तकारण और कोई नहीं हो सकता।" पश्चिमीय सायन्स ने लोगों को इतना तो बतादिया कि प्रकृति और क्रिया दोनों एक दूसरे से भिन्न अनादि पदार्थ हैं जिस का स्पष्ट आशय यह है कि प्रकृति और क्रिया (अर्थात् क्रिया का प्रवर्तक ईश्वर) दोनों स्वरूप से अनादि और नित्य हैं। कोई मनुष्य कभी यह प्रश्न नहीं करेगा कि प्रकृति की प्रकृति और क्रिया की क्रिया क्या है? निदान मूल का मूल हो नहीं सकता, अतः ईश्वर का ईश्वर पूछना सरासर भ्रान्ति और भूल है।

वेद और शास्त्रों के प्रमाणों तथा प्रबल युक्तियों से महर्षि, अनादि प्रकृति और अनादि जीवों के अधिष्ठाता, सृष्टि के कर्त्ता, जीवों के पाप पुण्य के फल प्रदाता अनादि सच्चिदानन्द ईश्वर को सिद्ध करते और उसका आत्मा से प्रत्यक्ष होना बतलाते हुये वे ईश्वर के गुण आर्यसमाज के दूसरे नियम में इस प्रकार लिखते हैं:—

"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी चाहिये।" इसी बात को वह सारगर्भित रीति से सत्यार्थप्रकाश के अन्त में भी लिखते हैं, जिस से कि उनका अभिप्राय मतवादी और नास्तिक दोनों को यह दिखलाने का है कि हम सृष्टिकर्त्ता वेदोक्त ईश्वर को इस प्रकार मानने वाले हैं। "ईश्वर को कि जिस के ब्रह्म परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिस के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार फलप्रदाता आदि लक्षण युक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।" महर्षि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में शास्त्रोक्त प्रमाणों से बतलाते हैं कि "सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, ब्रह्मचर्य्य आदि महासाधनों का प्रयोजन इसी ईश्वर की प्राप्ति कराना

है । " मुक्ति जोकि मनुष्य जन्म का अन्तिम सर्वोत्तम फल है, वह ईश्वरप्राप्ति ही का नाम है । सम्पूर्ण शुभकर्म जो किये जाते हैं उन का फल आत्मा को शुद्ध करके ईश्वर दर्शन के योग्य बनाना है । वर्णाश्रम धर्म, विद्या और पुरुषार्थ सब ईश्वरप्राप्ति के साधन हैं । जीव कभी मृत्यु के भय से रहित होकर आनन्द नहीं पासकता जब तक कि वह ईश्वरका दर्शन न करले । आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में चलने की योग्यता देती है । वेदोक्त ईश्वर के भूलने और उसकी उपासना से रहित होने के कारण ही आज भूगोल श्मशान का रूप बनरहा है । ईश्वर को न जानने अथवा अन्यथा जानने के कारण ही आज मनुष्य जाति में द्वेषाग्नि भड़क रही है, हिंसा और अन्याय के कारण आज पृथिवी लहूलहान होरही है । ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करने का नाम धर्म है, परन्तु आज इस धर्म के अभाव से अर्थ, काम और मोक्ष के स्थान में अधर्म, अनर्थ, कुकाम और बन्ध के नरक में मनुष्यजाति व्याकुल होरही है । नास्तिक, मन्दमति, और पन्थाई लोगों ने संसार को ईश्वर से विमुख कराकर पाप और पीड़ा के समुद्र में गिरा दिया है । पांच सहस्र वर्ष के पश्चात् संसार ने परम हितकारी शिरोमणि सिद्धान्त के सच्चे अर्थ आज स्वामी दयानन्द के प्रताप से समझे । सुखों की सिद्धि का आस्तिक पन रूपी बीज, आज स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, मूर्तिपूजा, मनुष्यपूजा और भूतपूजा आदि की जड़ काटते हुये, मन्दिरों, गिर्जों, मस्जिदों और पैगूडों को तर्क के प्रबल भूकम्प से गिराते हुये, पूर्वीय भ्रान्तिजाल और पश्चिमीय प्रकृतिपूजा के अन्धकार को वेद के सूर्य से छिन्नभिन्न करते हुये, बोदिया है । भूगोल पर से क्लेश और मृत्यु के परम दुःख को जीतने वाला ईश्वरसत्ता का परमसिद्धान्त दर्शादिया है । आनन्द की इच्छा करनेवाले आत्माओं के लिये इस से बढ़कर मङ्गल समाचार और क्या होसकता है ? कि महर्षि के ग्रन्थ और वेदभाष्य उस परमात्मा के महत्त्व को निर्भ्रान्त रीति से प्रकाश कररहे हैं । महर्षि का यह परम उपकार भावी सन्तान स्मरण करती हुई अपने जीवन से उनका धन्यवाद करेगी ।

तीन पदार्थ अनादि हैं ।

बहुत से मतवादी कहरहे थे कि केवल एक ईश्वर ही ईश्वर है, उससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं और साथ ही इसके वे यह भी मानते थे कि वह ईश्वर निर्दोष और शुद्ध है । जब उनसे प्रश्न होता (कि संसार में लोग पाप, व्यभिचार और हिंसा करते हुये दिखाई देते हैं और यदि सब कुछ ईश्वर ही है तो यह हिंसा

और व्यभिचार क्या तुम्हारा ईश्वर ही कररहा है ?) तो सुनकर वे निरुत्तर होजाते थे क्योंकि यदि ईश्वर के अतिरिक्त वे जीवात्मा को भी अनादि मानते होते तो इस का उत्तर देसकते, परन्तु जब कि वे जीवात्मा को अनादि मानते ही न थे तो क्या उत्तर देसकते थे ? यही नहीं कि जीव को ईश्वर से पृथक् नहीं मानते थे किन्तु प्रकृति को भी ईश्वर ही मानते थे और जब उन से कहाजाता कि प्रकृति में ज्ञान नहीं क्या तुम्हारा ईश्वर भी ज्ञानरहित है ? तो फिर सिवाय मौन के और कुछ बन न पड़ता था । असत् से सत् के सिद्धान्त को अपने सहारे के लिये लेते थे, परन्तु जब इस का प्रमाण मांगा जाता था और कहाजाता था कि रेत में से तेल क्यों नहीं निकलता ? तो फिर असमर्थ होकर चुप होजाते । साम्प्रदायिक जगत् इस प्रकार मतों के गोरखधन्धे को सुलझाना चाहता था, पर सुलझाने का यत्न करते हुये अपने आप को और उलझन में फंसाता था ।

नास्तिक लोग जीवात्मा को भौतिक तत्वों का ही परिणाम मान रहे थे और आजकलके एव्यूलेशन(evolution)के जंगी राग में यह स्वर अलापते हुये सुनाई देते थे कि मरकर फिर कुछ नहीं रहता । मृत्युके पश्चात् शरीरसे पृथक् जीव कोई वस्तु रहनेवाली नहीं है। और न कोई संसार का अधीश्वर है जोकि जीवोंको शुभाशुभ कर्मों का फल देवे । परन्तु जब उन से प्रश्न होता कि यदि मृत्यु के साथ ही जीव का अन्त होजाता है तो संसारसे सदाचार और भलाईकी जड़ काट देना चाहिये। क्योंकि बुरे और भले कर्मों का न फल मिलता है और न कोई देने वाला है । अनाथों को सताओ और मां बाप को तरसाओ, न्यायका गला घोटो, मद्य, मांस और व्यभिचार की पूजा करो, जो जी में आवे सो करो कोई कर्म फल नहीं, कोई जीवात्मा नहीं और कोई परमात्मा नहीं । परन्तु यह सुनकर कट्टर नास्तिक भी घबरा जाते और अपने आचरण से उत्तर देते कि सदाचारके विना संसार का कार्य्यालय आज नष्ट भ्रष्ट हो सकता है, सत्य और न्यायके विना समाजका एकपल भी जीना असम्भव है। नास्तिकोंके मस्तिष्क डार्विन की घड़न्त को कि लट्ठबाजी ही सृष्टिक्रम है, सोचते थे परञ्च उनके हृदय उनके मस्तिष्क का विरोध करते हुए न्यायके पक्षपाती बन रहे थे । उनके हृदय और मस्तिष्क में ही घोर संग्राम और घबराहट होरही थी । उन की घबराहट और बढ़जाती थी जब उन को कहा जाता था कि ज्ञान प्रकृतिका गुण नहीं फिर जीव में जिसको तुम भौतिक परमाणुओं का परिणाम कहते हो कहां से आगया? और यदि ईश्वर कर्मफलदाता नहीं तो सारे जीव एकसी दशा में ही क्यों नहीं ? इस प्रकार के प्रश्नोंके उत्तर देने में नास्तिक असमर्थ थे । सायन्स के दीपक

ने प्रकृति के नित्यत्व और अनादित्व को मनवाते हुये भाव से भावका होना मनवा रक्खा था, परन्तु इन उलझनों का सुलझाना दीपक का काम न था।

धार्मिक या नास्तिक जगत् इस प्रकार अन्धेरे में टटोल रहा था कि महर्षि दयानन्द ने वेदमंत्र * सुनाते हुये तर्कके प्रबल आकर्षण से भटकते हुये अशान्त आत्माओं को स्थिर करते हुये बतला दिया कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि पदार्थ हैं। जिस प्रकार अग्नि सूक्ष्म होने के कारण लोहे में रह सकता है, उसी प्रकार प्रकृति और जीवों में परम सूक्ष्म परमात्मा व्यापक होकर अनादि काल से उनका अधिष्ठाता बन रहा है। जीव प्राकृत साधनोंसे कर्म करता है ईश्वरके न्याय से फल को प्राप्त होता है।

शब्द, अर्थ और सम्बन्धरूपी वेद ईश्वरोक्त है।

जैसे सूर्य के प्रकाश से दाह को पृथक् नहीं कर सकते वैसे ही भाषा को ज्ञान से अलग नहीं कर सकते। जहां शब्द है वहां अर्थ है। जहां भाषा है वहां ज्ञान वर्त्तमान है। सोचना यह है कि ज्ञान और भाषा मनुष्य ने बनाई है या ईश्वर की ओर से उस को यह उपहार मिला है। मिसर के बादशाह "सामीटीकस" ने इस बात के जाननेके लिये कि मनुष्य कहांतक भाषा बनाने में कृतकार्य्य होसकता है दो सद्यःप्रसूत (नौज़ाईदह) बच्चोंको एक गडरियेके सुपुर्द किया और आज्ञाकी कि इनको सिर्फ़ बकरी का दूध पीने के लिये दिया जाय और इनके सामने कोई शब्द किसी भाषाका मुंहसे न निकाला जाय। गडरियेने इस आज्ञाका पालनकिया और जब बच्चे बड़े होगये देखा कि वे कोई भी भाषा नहीं जानते। सवाबीन, द्वितीय फ्रेडरिक, चतुर्थ जेम्स और अकबर से बादशाहों ने भी मनुष्य की भाषा जाननेके लिये यही परीक्षाकी और विफलमनोरथ हुये। इन परीक्षाओं ने बुद्धिमानों को बतला दिया कि भाषा मनुष्योंके लिये बनी बनाई तैयार होती है। बच्चों का काम भाषा बनाना नहीं किन्तु बनी बनाई भाषा का प्रयोग सीखता है। †

डार्विन और उसके सहयोगी हक्सले, विजविड और केनिनफ़ार ने इस बात के सिद्ध करने की चेष्टा की कि भाषा ईश्वर का दिया हुआ उपहार नहीं, किन्तु शनैः २ ध्वन्यात्मक शब्दों और पशुओं की बोली से उन्नति करके इस दशा को पंहुची है। डार्विन के इस मन्तव्य का प्रबल खण्डन प्रोफ़ेसर "नायर" ने किया और

* ऋग्वेद मं० १ सू० १६४ मं० २० (सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास)

† सायन्स आफ़ लैंग्वेज मैक्सम्युलर रचित पृष्ठ ४८१।

अब मैक्सम्युलर भी इसविषय में डार्विन का प्रतिपक्षी है। मैक्सम्युलर हमें बतलाता है कि भाषा ध्वनि या पशुओं की बोली से नहीं बनी है। प्रोफ़ेसर "पाट" भी बड़ी उत्तमता से डार्विन के सिद्धान्त का खण्डन करते हुये बतलाते हैं कि "भाषा के वास्तविक स्वरूप में कभी किसी ने परिवर्तन नहीं किया, केवल बाह्य स्वरूप में कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। किसी भी पिछली जाति ने एक "धातु" भी नया नहीं बनाया जैसे कि प्राकृत जगत् में किसी ने कोई नया तत्त्व (परमाणु) नहीं बढ़ाया। हम कह सकते हैं कि एक प्रकार से हम उन्हीं शब्दों को बोल रहे हैं जो कि सर्गारम्भ में ही मनुष्य के मुंह से निकले थे।

लाक, एडमस्मिथ, ड्यूगल्डस्टुवर्ट आदि के कथनानुसार मनुष्य बहुत कालतक गूंगा रहा। संकेत और भ्रूविक्षेप से काम चलाता रहा और जब काम न चला तो फिर भाषा बनाली और परस्पर संवाद करने से शब्दों के अर्थ नियत करलिये। परन्तु इन तीनों का खण्डन मैक्सम्युलर ने यह कहते हुये करदिया है कि "मैं नहीं समझता कि किस प्रकार विना भाषा के परस्पर संवाद उनमें प्रवृत्त रह सका पूर्व इसके कि वे सहमत हुये"। आगे चलकर मैक्सम्युलर हमें बतलाता है कि "मेरा मुख्य उद्देश्य इस बात का सिद्ध करना है कि भाषा मनुष्य की बनावट नहीं"। हम "अफ़लातून" से सहमत होते हुये कह सकते हैं कि शब्द अनादि काल से बने बनाये हैं और "अफ़लातून" के शब्दों में हमें इतना और बढ़ा देना चाहिये कि "अनादि काल के अर्थ ईश्वर की ओर से हैं"।

मनुष्य को अपनी आद्यावस्था में वन्य पशुओं के समान सांकेतिक रीति पर केवल अपनी इच्छायें और भावनायें प्रकट करने की शक्ति नहीं दी गई थी किन्तु उसको अपने मनके भावों को वाणी द्वारा प्रकट करने की शक्ति दी गई थी और यह शक्ति मनुष्य ने स्वयं उत्पन्न नहीं की किन्तु यह आत्मिकशक्ति थी। भाषाओं का विज्ञान हमें इस बात को सिद्ध कर दिखाता है कि संसार भर में एक ही भाषा बोली जाती थी।

"कोलरिज" का कथन है कि "भाषा मनुष्य का एक आत्मिकसाधन है"। ट्रीनिच * कहता है कि "मैं अत्युक्ति नहीं करता जब कि यह कहूं कि वह नवयुवक जो जान लेता है कि शब्द एक जीवित जाग्रत शक्ति हैं, वह यह ज्ञान प्राप्त करलेने पर मानो एक नई शक्ति को प्राप्त करता हुआ एक नई सृष्टि में प्रविष्ट होजाता है।"

* स्टडी आफ़ वर्ड्स. आर. सी. ट्रीनिच डी. डी. विरचित।

भाषा के वास्तविक तत्व को वर्णन करते हुए वह इस बात का कि यह ध्वन्यात्मक शब्दों की अनुकृति करने से शनैः २ बनी है, खण्डन करता है और बतलाता है कि ऐसी दशा में भाषा एक आकस्मिक घटना के समान होजाती है और साथ ही कहता है कि यदि यह मनुष्य की बनावट है तो अत्यन्त ही अशिक्षित जातियों में भाषा न होनी चाहिये। क्योंकि जो रोटी तक नहीं पका सकते, उनमें भाषा क्यों पाई जावे? परन्तु भाषा की हम यह दशा नहीं पाते, क्योंकि दक्षिण "अफ़रीका" के जंगली या "पायन" प्रान्त के नरमांसभोजी जो कि जंगलीपन की अन्तिम सीमा पर हैं, ये भी भाषा रखते हैं और उसी के द्वारा व्यवहार करते हैं। परन्च इस बात का यथार्थ उत्तर कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न हुई, यह है कि "ईश्वर ने मनुष्य को वाणी दी, ठीक वैसे ही जैसे कि उसने उसको बुद्धि दी। क्योंकि मनुष्य का शब्द विचार ही है जो कि बाहर प्रकाश होता है"। ईश्वर ने मनुष्य को तोते के समान शब्द पढ़ाये नहीं किन्तु उसको शक्ति दी और फिर उस शक्ति को उत्तेजित किया। जंगली मनुष्यों की भाषायें प्रत्येकदशा में इस बात को सिद्ध कररही हैं कि वे किसी महान् और उत्तम वाणी के खण्डहर (अपभ्रंश) हैं, जंगलियों की भाषा उनकी आकृति के समान भयंकर बनगई। चिरकाल आत्मघात करने से यह लोग अधोगति को प्राप्त हुए और किसी भारी परिवर्तन के कारण पृथिवी के उन प्रान्तों से जो कि सभ्यता के केन्द्र थे निकाले जाकर पहाड़ की दुर्गम घाटियों और समुद्र के विषम टापुओं में रहने लगे, तब प्रत्येक उत्तम भाव नष्ट हुआ और साथ ही शब्द जो उन भावों को प्रकट करते थे, नष्ट होगये। "भाषा के विज्ञान का नाम व्याकरण है और शब्द ऊट पटांग संकेत नहीं हैं"। आगे चलकर "ट्रीनिच" बतलाता है कि "बच्चे स्वाभाविक ही यौगिक शब्द बोलते हैं और शब्दों के वास्तविक अर्थ जानने के लिये हमें उन शब्दों के धात्वर्थ अवश्य जान लेने चाहियें, अन्यथा शब्द विस्मृत होजावेंगे। जैसे कविता का वास्तविक भाव "हूमर" की रचना में टपकता है वैसे एक २ शब्द और अक्षर में कविता भरी हुई है"।

अधिक विस्तार न करते हुये हम पाते हैं कि एव्यूलेशन (evolution) के मानने वालों का यह भ्रम कि भाषा ध्वनि से बनी है वैसा ही अयुक्त और मिथ्या है जैसा कि बन्दर से मनुष्य का बनना। बादशाहों ने परीक्षाओं से सिद्ध किया और इसी परिणाम (नतीजे) पर पहुँचे कि वाणी मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता। "अफ़लातून" से फ़िलास्फ़र वाणी को मनुष्यकृत नहीं बतलाते थे और आधुनिक भाषातत्ववेत्ताओं ने भी अन्धेरे में टटोलते हुए इस बात का पता लगाया है, कि भाषा मनुष्यकृत

नहीं है। पृथिवी में नौसौ ९०० के लगभग भाषायें इस समय प्रचलित हैं और इतनी भाषाओं में धातुओं की बनावट एक प्रकार की मालूम करने पर मैक्समूलर से विदेशीय इस बात को मानरहे हैं कि संसार की भाषा कभी एक ही थी। हम उन नियमों और रीतियों को जो कि मैक्समुलर एवं अन्य जर्मन फिलास्फरों ने प्रयुक्त की हैं, ठीक नहीं मानते। इन फिलास्फरों ने बीच की इबरानी आदि भाषाओं को आर्यभाषा के वंश से पृथक् वर्णन किया है। सो दीपक के प्रकाश में जितना काम उन्होंने किया है उससे बढ़कर उनसे आशा करना ही व्यर्थ है। एक स्थल पर "मैक्समुलर" बतलाता है कि शब्द के बिगड़ने में मनुष्य का आलस्य ही कारण है। इसी बात को हम अधिक विस्तार के साथ इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं कि शुद्ध वाणी अपनी स्वाभाविकदशा से मनुष्य की अविद्या और स्वतंत्रता के कारण अधोगति रूप बिगाड़ को प्राप्त होती गई। परन्तु स्वतंत्रता के उचित प्रयोग करने पर मनुष्य स्वाभाविकदशा से आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि स्वभाव का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, हां उसके अनुकूल चल सकता है।

दृष्टान्त से इस बात को यों समझना चाहिये कि गंगोत्तरी का जल प्रकृति के उदर से निकलता हुआ पवित्र होता है। मनुष्य की मलिनता और बनावट के कारण वह गदला और मटीला होता हुआ चला जाता है, परन्तु मनुष्य यदि पूरी सावधानी रक्खे तौ गंगोत्तरी के जल को उसी दशा में रख सकता है, उसको अधिक उत्तम बनाना उसकी शक्ति से बाहर है क्योंकि मनुष्य स्वभाव के अनुकूल चल सकता है न कि उसका अतिक्रमण कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों का अनुचित प्रयोग अपनी अविद्या और स्वतंत्रता से करता हुआ उन स्वाभाविक पवित्र वस्तुओं को विगाड़ देता है, परन्तु किसी दशा में स्वाभाविक दशा से उन्नति नहीं कर सकता। स्वाभाविकदशा में प्रत्येक वस्तु एक ही रूप में रहसकती है, परन्तु बनावटी और बिगड़ी हुई दशा में उसके अनेक रूप होसकते हैं, इसलिये अनेक शाखायें एक ही मूल का पता देती हैं। मेज, चौकी, चारपाई, किवाड़ और कलम यद्यपि रूप और आकार में भिन्न २ हैं तथापि सब एक ही लकड़ी की बनी हुई हैं। इसी प्रकार यूनानी, लाटिनी, इबरानी, अरबी, फारसी इत्यादि भाषायें यद्यपि वर्णों की आकृति और लिपि में एक दूसरे से भेद रखती हैं, परन्तु वास्तव में सब एक मनुष्य की ही स्वाभाविक, सब से प्राचीन और पूर्ण भाषा की बिगड़ी हुई या बनावटी अवस्थायें हैं।

मैक्समुलर के इस लेख में त्रुटि है कि वह समैटिक (semitic) भाषाओं को आर्य्यन भाषाओं से पृथक् श्रेणी में रखता है जबकि वे भाषायें आर्यभाषा से बिगड़ कर नहीं वर्ना तो मानना पड़ेगा कि वे मनुष्य की बनाई हुई हैं और इस बात को मैक्समुलर आदि कभी स्वीकार नहीं करसकते कि कोई मनुष्य नवीन भाषा बना सकता है। जब ऐसा है तो मानना पड़ेगा कि समैटिक भाषायें उन भाषाओं की कृत्रिम अवस्थायें हैं जो भाषायें कि उनसे पहिले प्रचलित होंगी। हम इस बातको अधिक विस्तार पूर्वक सिद्ध कर सकते हैं कि समैटिक भाषायें निस्सन्देह आर्य भाषाओं से ही सम्बन्ध रखती हैं, परन्तु ग्रन्थ विस्तार हो जाने का भय ऐसा करने से हम को रोकता है। उक्त सम्मति रखता हुआ भी अन्त में जाकर मैक्समुलर स्वयं यह कहता है कि "यह सच हो सकता है कि आर्षभाषाओं के धातु, रूप और अर्थ में समैटिक, भरालआटक, बन्टो और ओशीनिया की भाषाओं से मिलते हैं"। और फिर इस कठिन और आवश्यक प्रश्न का कि मनुष्य की एक ही भाषा थी यह उत्तर देता है कि "निस्सन्देह एक थी"। परन्तु वह भाषा कौनसी एक थी या है? इसका निश्चित उत्तर देना "मैक्समुलर" की शक्ति से बाहर है।

यूरोप में एक समय था जब कि लोग मानते थे कि "इबरानी" भाषा से संसार की समस्त भाषायें निकली हैं, परन्तु "लेबेन्स" ने लोगों को इस बात से हटा दिया और "हर्विस" ने इस बात का प्रबलरूप से खण्डन किया। "हर्विस" ने यह भी कहा कि जैसे यूनानियों ने भारतनिवासियों से विद्या सीखी है साथ ही शब्द वा भाषा भी उधार ली होगी। "हर्विस" के सिद्धान्तों को पुष्ट करने वाला "एडलिंग" था। इसके पश्चात् यूरोप के इतिहास में भाषाविज्ञान के सम्बन्ध में एक विचित्र समय आता है। इस समय को "संस्कृत के जानने" का समय कहते हैं। जैसे अमेरिका के ज्ञान ने यूरोप को नई पृथिवी के दर्शन कराये थे, इसी प्रकार संस्कृत के परिज्ञान ने फ़िलास्फ़रों को एक वैज्ञानिक जगत् का पता बतलादिया। "संस्कृत जो कि आर्यों की एक प्राचीनभाषा है इसका विज्ञान होना बिजुली की चमक के समान था।" संस्कृत के पदलालित्य और अर्थगाम्भीर्य की साक्षी देने वाले बढ़ने लगे और यूरोप में इसकी जिज्ञासा बहुत कुछ फैलगई। सरविलियम जोन्स जब भारतवर्ष में आया तो संस्कृत की केवल बाह्य छटा देखकर कहने लगा कि "यह भाषा अत्यन्त रमणीय और अपूर्व है। यूनानी से भी अधिक मनोरम और लाटिनी से भी अधिक गम्भीर और दोनों से बढ़कर ललित और दोनों से बहुत सम्बन्ध रखती है" इन शब्दों को सुनकर लोग चकित होगये, पादरियों ने शिर हिलाये, विद्वानों को सन्देह

होगया और फिलास्फर घबरा उठे और मन में कहने लगे कि संसार के ऐतिहासिक क्रम को यह नूतन आविष्कार लौट पौट करदेगा। निदान इस परिज्ञान से लार्ड "मानबाडो" जो कि मिसरीभाषा को सब भाषाओं का उद्गम बतला रहा था ऐसा घबराया "मानो कि संस्कृत के विज्ञान की बिजली उस पर टूट पड़ी" और आज संस्कृत ने जो मान और गौरव यूरोप में प्राप्त किया है उसका अनुभव निम्नलिखित पत्र से हो सकता है:—

तब श्रीयुत पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा ने देशदशा पर अत्युत्तम प्रकार से व्याख्यान दिया। इस देश के प्राचीन सौभाग्यका वर्णन कर वर्त्तमान समय के दौर्भाग्य को जताया और कहा कि "वह समय ऐसा था कि देश२ के मनुष्य इसदेश में आकर विद्याग्रहण करते थे ... ... इस में कुछ सन्देह नहीं कि संस्कृतविद्या सब विद्याओं की शिरोमणि है उसकी प्रशंसा, उसका आदरभाव जैसा कुछ यूरोप और अमेरिका आदि देशों में होता है, हमारे देश में इस का लेशमात्र भी नहीं। औक्सफोर्ड में सर्कार को छोड़कर केवल धनी और साहूकार लोग चालीस लाख रुपया प्रतिवर्ष इसी विद्या की शिक्षा के लिये देते हैं, अब कहो उस एक नगर की उपमा इस देश के कौन से नगर को देवें। इस के अतिरिक्त संस्कृतविद्या का प्रत्यक्ष प्रभाव यह देखलो, यदि मुझको संस्कृतविद्या न आती तो मैं यूनानी और लाटनी भाषा ऐसी शीघ्रता से न सीख सकता। लण्डन नगर में मिस्टर "ग्लेडस्टोन" से मेरी भेंट हुई तो मैंने उनको अपनी संस्कृत की योग्यता दिखलाई, तब वे मुझ से कहने लगे कि मैं इस बातका बड़ा शोक करता हूं कि मेरी आयु अधिक होगई, यदि मैं दस वर्ष भी कम होता तो संस्कृत का आरम्भ कर देता, आर्य्यभ्रातृगण! देखो अन्य देशी पुरुष संस्कृत का कैसा आदर करते हैं?"*

यूरोप के विद्वान् "सायन्स आफ लैंग्वेज" की उत्पत्ति का कारण संस्कृत के पर्यालोचन को बतला रहे हैं और दिनरात संस्कृत के रत्नों की खोज में लगे हुये हैं, संस्कृत के महत्त्व के कारण उन की दृष्टि में "भारतवर्ष" का गौरव है और इसीलिये इस देश के दर्शन की बड़ी अभिलाषा रखते हैं। विद्वान् "हम्बोलट" मरते दिन तक सभ्यता की प्राचीनभूमि "आर्य्यावर्त्त" के दर्शन को तड़पता रहा और आज यूरोप और अमेरिका में संस्कृत के लिये विद्वानों की आश्चर्य्यजनक श्रद्धा उत्पन्न होरही है। परन्तु संस्कृत के पूर्ण गौरव को जानना और उस की गुप्त एवं

* देश हितैषी अजमेर खण्ड २ अंक १० बाबत माघ सं० १९४० वि०।

आश्चर्य्यमयी शक्तियों को अनुभव करता उसके अत्यन्त पवित्र, मनोहर और अकृत्रिम वेदरूप शब्दों के दर्शन करना पश्चिमीय विद्वानों की शक्ति से बाहर था। उसका दर्शन कराना महर्षि दयानन्द के हाथ में था, महर्षि ने बतलादिया कि संसार भरकी समस्त भाषाओं की माता वैदिक शब्दों के रूप में विराजमान होरही है। "वेदभाष्यभूमिका" आदि ग्रन्थों में वेदों के महत्व और संस्कृत के प्राचीनत्व को बड़ी उत्तमता से सिद्ध कियागया है। भूगोल की समस्त भाषाओं की जननी का नाम "वेदवाणी" या "संस्कृतभाषा" है, जिस का आज सब पर महर्षि ने प्रकाश कर दिया। यदि संस्कृत के विज्ञान ने बिजलीके सदृश कल्पित रचनाओं के दुर्ग तोड़ने से विद्वानों को आश्चर्य्य में डाला था तो वैदिक शब्दों का तेजोमय पुंज फ़ाइलालोजी (philology) के दीपक को मात करता हुवा जिज्ञासुओं को पांच सहस्र वर्षों के बाद मनुष्य की सब से पहिली, अकृत्रिम, पूर्ण और स्वाभाविक भाषापर अधिकार दिलायगा। जिस भाषा को "अफ़लातून" से विद्वान् नैसर्गिक बतलाते थे, जिस एक भाषा की कई शताब्दियों से संसार को आवश्यकता और खोज लग रही थी, आज उस जीती जागती स्वाभाविक वेदवाणी के दर्शन स्वामी दयानन्द ने करा दिये। सब प्रकार के संशय भ्रम मिटाते हुये पाणिनि, पतञ्जलि और जैमिनि आदि महर्षियों की युक्ति और प्रमाण के बल से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शब्द को नित्य सिद्ध करके दर्शा दिया, महर्षि का यह उपकार पश्चिमीय और पूर्वीय जगत् की काया पलट देगा। अपूर्ण और कृत्रिम भाषाओं को लोग तिलांजलि देते हुये एक वेदवाणी की शरण लेंगे और फिर द्वितीयवार एशिया, यूरोप, अफरीका, अमेरिका और ओशीनिया आदि सब पृथिवी के स्थलों पर वैदिकशब्दों की ध्वनि सुनाई देगी और अंगरेज़ी, फारसी, अरबी, ईरानी, मिसरी, यूनानी लाटिनी, फरांसीसी, जरमन और हिन्दोस्तानी आदि ९०० के लगभग भाषायें परस्पर सहमत होकर वेदवाणी को राजसिंहासन सौंपेंगी महर्षि का उपकार मनुष्यजाति को वेदवाणी से सुभूषित करते हुये दिखाई देगा। यद्यपि कई शताब्दियों के लगातार पुरुषार्थ के पश्चात् पृथिवी पर यह समय आवै परन्तु इस के आने में कोई सन्देह नहीं हो सकता क्योंकि स्वाभाविक वस्तु के सामने कृत्रिम पदार्थ ठहर नहीं सकते, अतएव ये कृत्रिम दीपकजो पांच हजार वर्षके बीच में जलाये गये हैं, ऐश्वरीय वैदिकसूर्य के प्रकाश के सामने ठहर न सकेंगे।

हम पहिले कह चुके हैं कि प्रकाशको अग्नि से कोई पृथक् नहीं कर सकता। जहां शब्द है वहां उनके अर्थ और ज्ञान भी है। यदि पृथिवी की भाषाओं की माता

वेदवाणी है तो संसार के विज्ञान का समुद्र वैदिक ज्ञान को कहना चाहिये । यदि वेदवाणी ईश्वरोक्त है तो वैदिकज्ञान भी ईश्वरीय होना चाहिये । विज्ञान की उत्पत्ति का इतिहास इस प्रश्न का कथञ्चित् स्पष्टरूप से विवरण कर सके, इसलिये हम विज्ञानोत्पत्ति के विषय में कुछ आन्दोलन करना चाहते हैं । पूर्व हम सिद्ध कर आये हैं कि भाषा मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता किन्तु ईश्वर की ओर से बनी बनाई भाषा सृष्टि की आदि में मनुष्य को "वेदवाणी" के रूप में दीगई थी । अब हम इस प्रश्न पर आलोचन करना चाहते हैं कि "मनुष्य विना किसी के सिखलाने के ज्ञान प्राप्त कर सकता है या नहीं" ? संसार भर का अनुभव इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मनुष्य विना सिखाये कुछ नहीं सीख सकता । जिस प्रकार भाषा को एक से दूसरा सीखता चला आया है उसी प्रकार ज्ञान को एक से दूसरा मनुष्य प्राप्त करता आया है और करता जायगा । जहां मनुष्य में नई भाषा के बनाने की शक्ति नहीं, वहां उसमें नवीन ज्ञान के भी उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है । कोई अनुमान, कोई सिद्धान्त, कोई मन्तव्य संसार में मनुष्य नया नहीं बना सकता और न उसमें बनाने की शक्ति है । एक पश्चिमीय विद्वान् यह कह रहा है कि "जो मनुष्य किसी सायन्स या विज्ञान के इतिहास का अवलोकन करे या आप कई वर्ष तक बराबर किसी सायन्स की उन्नति को ध्यान पूर्वक देखता रहे वह भली भान्ति जान सकता है कि उस में नवीनता (originality) की झलक कितनी और कैसी सूक्ष्म हुआ करती है" । मनुष्य के ज्ञान की उन्नति घड़ी के पैण्डलम या लंगर के सदृश है या यों कहो कि मनुष्य का ज्ञान एक चक्र में भ्रमण करता हुआ वार २ उसी स्थान पर आजाता है और इस दशा के होने पर भी हम आशा किया करते हैं कि शायद पहिले की अपेक्षा आगे बढ़ जावें" ।

सच तो यह है कि कोई भी मनुष्य original (नवीनता का उत्पादक) नहीं कहला सकता और नहीं ओरिजिनेल्टी (नवीनता) मनुष्य का गुण हो सकती है । नवीनता एक अयथार्थक भ्रान्ति है जो कि विद्वानों को मोहित कर रही है तत्वतः कोई वस्तु नहीं । इस बात को सुनकर कोई कह सकता है कि भला यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य कोई नया आविष्कार नहीं करता ? क्या हम सुनते नहीं कि "न्यूटन" ने पृथिवी के आकर्षण का नया सिद्धान्त मालूम किया ? पूर्व इसके कि हम इस बात का उत्तर दें यह जान लेना आवश्यक है कि "न्यूटन" ने जो सिद्धान्त मालूम किया वह वही सिद्धान्त है जिसका वर्णन सिद्धान्तशिरोमणि के रचयिता "भास्कराचार्य" ने "न्यूटन" के जन्म से कई हज़ार वर्ष पहिले अपने पुस्तक

में किया था। "भास्कराचार्य" कहते हैं कि "पृथिवी में आकर्षण की शक्ति स्वाभाविक है। इस आकर्षण के कारण पृथिवी किसी भारी निराधार वस्तु को अपनी ओर खींचती है जो वस्तु कि गिरती हुई मालूम होती है वह वास्तव में पृथिवी की ओर उसके आकर्षण के कारण जारही है।"

और यही नहीं कि भास्कराचार्य्यजी ने यह सिद्धान्त नया मालूम किया हो किन्तु प्रत्येक ऋषि मुनि इस सिद्धान्त से विज्ञ था और ऋषि मुनियोंने इस सिद्धान्त को विज्ञान के भण्डार वेदोंसे अवगत किया था। वास्तव में बात यह है कि सम्पूर्ण जीव स्वाभाविक गुणों के योग से एक जैसे हैं, परन्तु प्राकृतिक मलिनता के योग से अनेक जीव मलिन आदर्शवत् होजाते हैं; कोई उन में (जो प्रकृति के गुणों में लिप्त नहीं होते) स्वच्छ भी रहते हैं। ईश्वरीय ज्ञान अपना प्रभाव स्वच्छ आत्माओं पर पहुंचा सकता है और शुद्ध बुद्धि रखने वाले आत्मा ही सृष्टिक्रम और उस के भेद को समझ सकते हैं और उनका पदार्थों के तत्व को समझ लेना उनकी बड़ाई और संसार के लिये नयापन या नवीनता हुवा करती है। सेब को गिरते हुये "न्यूटन" के देश में कौन नहीं देखता था परन्तु पेट के पोषक सेब को गिरते हुये देखकर खाने को दौड़ते होंगे। साधारण लोगों को गिरने की क्रिया के हेतु की न तो जिज्ञासाही थी और न अन्तःकरण की मलिनता के कारण वे उसको समझ सकते थे, हां पतनक्रिया के हेतु को समझना "न्यूटन" का काम था और यह काम उस ने नया नहीं किया, किन्तु प्रत्येक आत्मा बुद्धि रखता हुवा सृष्टि के नियमों को इस से भी बढ़कर समझता और प्रकाश करता रहा है। जिन को आज पश्चिमीय जगत् नवीनता के उत्पादक बतलाता है, हम उनको शब्दों के गूढ़ अर्थ समझने की योग्यता या बुद्धि रखने वाले कहते हैं। आकर्षण शब्द के गूढ़ अर्थ समझने वाला यूरोप में "न्यूटन" था, किन्तु जिस बुद्धि के होने पर न्यूटन ने इस शब्द के अर्थ को अनुभव किया उसी और उस से बढ़कर बुद्धि रखने वाले लाखों ऋषि, मुनि आकर्षण के अर्थ अनुभव कर चुके थे और आगे को भी करेंगे। कभी २ शब्दों के अर्थ सृष्टि में अनुभव करने वाले इस प्रकार महापुरुष कहलाते हैं और कभी२ ऐसा होता है कि ज्ञान के बीज को संसार में विस्तार रूप वृक्ष और शाखाओं के स्वरूप में परिणत करने वाले ओरिजिनल मैन (नवीनता के उत्पादक) कहलाये हैं। भाफ को मूर्ख से मूर्ख बुढ़िया खिचड़ी पकाती हुई नित्य देखती है और इतना भी जानती है कि जब पानी उबलने लगता है तो ढकना गिरजाता है, परन्तु उसकी स्थूल बुद्धि ढकने के गिरने के कारण को जानना नहीं चाहती और

यदि जान भी ले तो इस भाफ को किसी और प्रकार उपयोग में नहीं लासकती। परन्तु "जेम्सवाट" ने खड़कते हुये ढकने का कारण भाफ को जानलिया, यद्यपि उसको एक घराने की बुढ़िया व्यर्थ समय खोने के लिये कोस रही थी। भाफ के गुण जानलेने पर भी वह स्टीम एंजिन तबतक न बनासका, जबतक उसको "न्यूकोमन" के बनाये हुये एञ्जिन के संस्कार का अवसर न मिला।

कोई बुद्धिमान् किसी सिद्धान्त के तत्त्व को जानता हुआ या शब्द के गूढ़ अर्थ को अनुभव करता हुआ अपनी तीव्रबुद्धि (originality) का परिचय देता है और कोई उसी के द्वारा पदार्थों के गुणों को जानकर उनके संगत करने से कलायंत्र बनाता हुआ संसार को लाभ पहुंचाता है। विषय भोग की अधिकता से बुद्धि मलिन होती हुई मनुष्य को पशुतुल्य बनादेती और शुद्ध सात्विकबुद्धि उसको उच्चश्रेणी में पहुंचा देती है। "एण्ड्रो जैक्सन डेविस" से विद्वान् इस बात को मानते हैं कि वास्तव में कोई भी मनुष्य "ओरेजिनल" नहीं कहला सकता क्योंकि वैज्ञानिक सिद्धान्त या परिभाषाओं में वृद्धि वा ह्रास हो नहीं सकता। जैसे आदर या सत्कार का सिद्धान्त सर्वदा एक सम है, भाषा भी जोकि आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और अनादि है। भाषा के मुख्य उद्देश्य में कभी उन्नति का होना सम्भव नहीं क्योंकि उद्देश्य सर्वदेशी और पूर्ण होते हैं और किसी प्रकार भी उन में परिवर्तन नहीं हो सकता, वे सदैव अखण्ड और एकरस रहते हैं। *

स्वभाव में कोई भी विकार नहीं है, अतएव स्वाभाविक पदार्थ स्वच्छ और निर्दोष होते हैं और यही "अफलातून" का मत था। स्वाभाविक मा के पेट से निकला हुवा बच्चा कृत्रिमदशा में रहने वाले बच्चों से अधिक पवित्र होता है। वे जीव जिन्होंने सृष्टि की आदि में अमैथुनी शरीर धारण किये थे उनसे बढ़कर पवित्रबुद्धि रखने वाले और शुद्धात्मा कोई जीव नहीं होसकते। वे जीवात्मा स्वभावज कहलाने के योग्य थे, क्योंकि उस समय स्वभाव का स्वच्छ पट बनावट और मानुषी निर्बलता के धब्बे से कलुषित नहीं हुआ था। जो ज्ञान कि उस समय के ऋषि अपनी मेधा में धारण कर सकते थे, जो शक्ति कि शब्दों के गूढ़ अर्थ अनुभव करने की उनमें थी, वह शक्ति मैथुनी सृष्टि के ऋषियों में कदापि नहीं होसकती। उन ऋषियों के आत्मा अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में स्वाभाविक और अनायास लब्ध उच्चसाधनों से युक्त थे। मैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होने वाले जीव उन ईश्वरीय पुत्रों से बढ़-

* देखो हारमोनिया भाग ५ पृष्ठ ७३ एण्ड्रो जैक्सन डेविस विरचित ।

कर शुद्ध मेधा नहीं धारण कर सकते, इसलिये जो शब्दार्थ का ज्ञान उन पवित्रात्माओं ने अनुभव किया था उसका नाम आदर्श ज्ञान और उसी को पूर्णज्ञान कह सकते हैं। इस आदर्श और पूर्णज्ञान में उन सब विद्याओं का मूल विद्यमान था जिसको कि जीवात्मा अपनी उन्नतावस्था में ग्रहण करके विस्तार देसके। जिस प्रकार जलकी गंगा गंगोत्री से निकलकर अशुद्ध और मलिन होती गई, ठीक इसी प्रकार ज्ञान की गंगा अमैथुनी सृष्टि के आदि महर्षियों के हृदयों से अपनी स्वाभाविक स्वच्छदशा में निकली थी, इसके पश्चात् वह जीवों की अविद्या के कारण मलिनदशा में दीखने लगी। स्वभाव और पूर्णता पर उन्नति करना असम्भव है इसलिये उस समय से लेकर आगामी प्रलय पर्यन्त कोई भी ऋषि इस आदर्श ज्ञान की अपेक्षा उन्नति नहीं कर सकेगा। जहां तक दौड़ कर टांगोंवाला पहुंच चुका है, वहां रेंगने वाले का पहुंचना कठिन है। अमैथुनी सृष्टि स्वच्छ और अभ्रान्त दशा का दूसरा नाम है, दिन रात के चौबीस घण्टों में जो प्रातःकाल है, उसके बराबर और कोई समय का भाग नहीं हो सकता। जो गूढ़विचार मनुष्य का आत्मा प्रातःकाल के समय कर सकता है वह कभी मध्यान्ह या अपरान्ह में नहीं कर सकता। संसार के विज्ञानवित् और विद्वान् प्रातःकाल के इस महत्व को स्वीकार करते हैं। कवि और योगी इसी प्रातःकाल में अद्भुत रचना और सिद्धि प्राप्त किया करते हैं। वे महर्षि जिनको कि सृष्टि के प्रातःकाल में काम करने का अवसर मिला था, उनके बराबर आगामी काल के वे महर्षि जिनको कि मध्यान्ह या अपरान्ह का समय मिला हो कब हो सकते हैं? सृष्टि के प्रातःकाल में जीवात्मा जहां तक ऊंचे जा सकते थे, वहां तक मध्यान्ह और सायंकाल में कब जासकते हैं? प्रातःकाल का समय दिन भर के लिये आदर्श है। वसन्तऋतु सब ऋतुओं का राजा है, अमैथुनी सृष्टि के ऋषि मैथुनी सृष्टि के ऋषियों के गुरु हैं। प्रातःकाल यदि पूर्ण रीति पर ज्ञान धारण करने के लिये है तो शेष दिन उस ज्ञान के अनुसार कर्म करने के लिये समझना चाहिये। किन्तु यदि हम कल्पना भी करलें कि मध्यान्ह में भी आत्मा उतना ही गूढ़ विचार कर सकता है जितना कि प्रातःकाल में करता था तो भी इससे प्रातःकाल के बराबर मध्यान्ह हो सकता है बढ़कर नहीं। अर्थात् जल अपने धरातल से ऊंचा नहीं जासकता और जहां तक ऊंचा जाता है उससे उसके धरातल का पता लगता है। आत्मा के स्वाभाविक गुण और अवस्था में कभी न्यूनाधिकता नहीं हो सकती। अतएव वह ज्ञान जो आदिसृष्टि में मनुष्य को ईश्वरीय प्रेरणा से स्वच्छ आत्माओं के द्वारा मिला था, उसकी अपेक्षा उन्नति करना मानो स्वभाव या ईश्वरीय कामों में तुच्छ

मनुष्य का हस्तक्षेप करना है जो कि कभी सम्भव नहीं। मैथुनी सृष्टि के ऋषि यदि पूर्ण उन्नति करें तो उस ज्ञान के निकट तक पहुंच सकते हैं, उससे ऊपर जाना तो सर्वथा असम्भव है। और उसके पार्श्वतक पहुंचने के लिये भी मैथुनी सृष्टि के ऋषियों को उस आदि ज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। मलिन काच प्रकाश का आकर्षण नहीं कर सकता, जितना काच स्वच्छ होगा, उतनाहीं वह प्रकाश को धारण कर सकेगा। आज यदि मलिनात्मा वैदिकसूर्य के ज्ञानरूप प्रकाश को धारण नहीं कर सकता, तो उसकी मलिनता का दोष है न कि प्रकाश का और यदि कहीं कोई बुद्धिमान् उस प्रकाश के अंश को अपनी शुद्धता के कारण धारण करके संसार को अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाता हुआ ओरेजनेलटी (नवीनता) का परिचय दे तो हमें यह कभी न कहना चाहिये कि उसने प्रकाश नया बनाया है। किन्तु यह कहना चाहिये कि प्रकाश को धारण या आकर्षण करने की बुद्धि उसमें है। मेधावी पुरुष अपने साधनों की उत्तमता का उदाहरण देते हैं न कि स्वाभाविक ज्ञान के सूर्य को बनाया करते हैं। ज्ञान के सूर्य को न कोई घटा सकता है न बढ़ा सकता है, जीव शुद्ध साधनों के होने पर केवल उसके तेज को अनुभव कर सकता है।

यदि मनुष्य विज्ञान या प्रकाश को नया बना सकते तो आज तक संसार में नये से नये सिद्धान्त निकलते आते। परन्तु संसार का इतिहास वैज्ञानिक चक्र में घूमता हुआ इस बात को सिद्ध कररहा है कि एक सिद्धान्त के अनुभव करने वाले मनुष्यों ने उत्तम साधनों की उपस्थिति में विद्या का प्रचार किया था किन्तु मलिन साधनों की विद्यमानता में लोग उसी सिद्धान्त को अनुभव न कर सकने पर मूर्ख रहगये और फिर समय आया कि कोई साधनशील उसी सिद्धान्त को पुनरपि अनुभव करने पर खड़ा हुआ और संसार उसको भ्रान्ति से नया सिद्धान्त, नई थ्यूरी, नया मन्तव्य और नया प्रकाश कहने लगा। इस लिये संसार से इस भ्रान्ति का दूर करना कि सिद्धान्त, थियूरी और प्रकाश या मन्तव्य नए नहीं होते बहुत आवश्यक है। सत्य वह है जो तीनों काल में एक रस रहे, दो और दो मिलकर चार होते हैं, इस सत्य सिद्धान्त को कौनसा सायन्स है जो उन्नति कर के दो और दो को पांच बतलावे या घटा कर तीन कर सके। सच्चे नियमों से बढ़कर कोई उन्नति नहीं कर सकता। सचाई की ओर प्रवृत्ति का नाम उन्नति है। वैदिक सिद्धान्त या वैदिक सत्य ज्ञान पर कोई नया मन्तव्य या कल्पना नहीं चढ़ सकती। किन्तु उसकी पुष्टि करती हुई उसके समीप आरही है। यूरोपमें आज एक सिद्धान्त निकलता है और कल उसका खण्डन होजाता है, इसका अर्थ यह है कि वह सिद्धान्त सत्य नहीं था, अन्य-

था सत्य का खण्डन कौन कर सकता है और यह कहना कि वैज्ञानिकसिद्धान्त नवीन उत्पन्न होते हैं ऐसा ही निर्मूल है जैसा कहा जावै कि प्रकाश नया उत्पन्न होता है। पानीका गुण जो सृष्टि की आदिमें था वही आज है, यदि उससमय से लोग पानीको ठण्डा कहते चलेआये हैं तौ आज इसका कोई खण्डन नहीं कर सक्ता।

विज्ञान के तत्त्व का इतिहास दो सिद्धान्तों को प्रकट कर रहा है प्रथम यह कि विज्ञानको मनुष्य स्वयं उत्पन्न नहीं करसकता किन्तु किसी दूसरेके सिखाने से सीखता है। द्वितीय यह कि वारवार प्राचीन सिद्धान्त ही विद्वानों के द्वारा प्रचरित होते रहे हैं और एक भी नवीन सिद्धान्त या वैज्ञानिक नियम कभी संसार पर प्रकट नहीं हुवा। यदि आर्य्यावर्त्त और मिसर के शिष्य " पीथागोर्स " ने पश्चिमीय जगत् को पृथिवी के गोलाकार होने और घूमने का विज्ञान दिया तौ सिकन्दरिया के " टालिमी " ने अपने अशुद्ध और अपूर्ण साधनों के कारण इस ज्योति को अनुभव न कर सकने पर लोगों को पृथिवी के चौरस और स्थिर होनेका उपदेश दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी में एक साधनशील " कूपरनीकस " नामक पुरुष ने फिर " पीथागोर्स "के सिद्धान्तकी उत्तमता अनुभव की और " पीथागोर्स "का मण्डन और " टालिमी " का खण्डन किया। " कूपरनीकस " के पश्चात् डेन्मार्क के ज्योतिषी " टेची बरहेई " ने इस सत्य सिद्धान्त की पुष्टि की और सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी के " केपलर " और इटली के " गैलेलियो " ने उसी सत्य का मण्डन किया। परन्तु " कूपरनीकस" और "केपलर" के समय में लोग भ्रम से यह समझते रहे कि हमें कोई नया सिद्धान्त बताया जारहा है और इसी भ्रान्ति के कारण वीर " गैलेलियो "की अत्यन्त अवज्ञा और हानि उन पादरियोंके पूर्वजोंने की थी जो आज अपने मिशन स्कूलों में पृथिवी के गोल होने की शिक्षा देते हुये उन्हीं अपने पुरुषाओं की मूर्खता का स्वयं खण्डन कररहे हैं।

आजकल वैज्ञानिक जगत् भूगर्भ विद्या (geology) के प्रचारक " लायल " के सिद्धान्त को भ्रान्ति से नया बतला रहा है परन्तु सत्यग्राही * पुरुष मानते हैं कि " लायल " के भूगर्भविद्या सम्बन्धी सिद्धान्त के वे कारण कि जिनसे भूगर्भ सदैव परिणाम को प्राप्त होरहा है अपना काम नित्य प्रति कररहे हैं। यही प्राचीन सिद्धान्त " अरस्तू " का था और " जानरे " के द्वारा यह सिद्धान्त वर्त्तमान दशा को पहुंचा और अब " लायल " ने इसके प्रचार से पुरानी भूगर्भविद्या का लेशमात्र

* थिंगर टीबी दी मेम्बर डान डेली लाइफ़, जान फिम्बस एफ़. एस. ए. विरचित पृ० १३५.

बोधन कराया है । "पीथागोर्स" ने भक्ष्य भोज्य के विषय में ऋषियों के सिद्धान्त का प्रचार करते हुये कहा था कि मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, इसी सिद्धान्त को पश्चिम में अफ़लातून, सेनेका, प्लोटार्क, ट्रीटोलैन, पूरफ़ी, कोरनारो, रे, वाल्टियर, रौसो, पेली, न्यूटन, शेली, लामर्टिन और शोपिनहार आदि कई विद्वानों ने प्रचार किया और सदा लोग इस को नया सिद्धान्त समझ कर इस का विरोध करते रहे हैं,परन्तु वीर उसको सहते हुये आगे बढ़ते गये ।

यही नहीं कि मनुष्य कोई सत्य सिद्धान्त दूसरों से सीखता हुवा चला आरहा है किन्तु एक वैज्ञानिक विषय की रचना किसी दूसरे वैज्ञानिक विषय की व्याख्या हुवा करती है । विद्वान् "मिल" का कथन सत्य है कि * "रोमियों की विद्या और चरित्र यूनानियों की विद्या और चरित्र का अनुकरण है" जिन्हों ने भ्रान्ति और अविद्या का प्रचार किया है वे यदि परस्पर न मिलें तौ आश्चर्य्य नहीं क्योंकि दस और दस को बीस कहने वाले सौ मनुष्य सहमत होसकते हैं, परन्तु १८,१७,१५,१३, आदि कहने वाले मनुष्य कभी एक सम्मति नहीं रख सकते । इसलिये हम डार्विन, माल्थस आदि के मिथ्या सिद्धान्तों का इस अवसर पर वर्णन नहीं करसकते, यदि उन के सिद्धान्त सत्य होते तौ हम दिखा सकते थे कि यह पहिले भी वर्त्तमान थे किन्तु भ्रान्ति, अशुद्धि और अन्धकार का वर्णन करना हमारा प्रयोजन नहीं ।

वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका की सभ्यता (जोकि विद्या और व्यवसाय का फल है) कोई नई नहीं किन्तु संसार का इतिहास बतलाता है कि इस प्रकार की सभ्यता प्रत्येक समय में किसी न किसी जाति में रही है । अब हम सभ्यता के विषय में इतिहास की साक्षियां संक्षेप से वर्णन करेंगे जिनके पढ़ते ही बुद्धिमान् जानलेंगे कि पृथिवी के भिन्न २ देशों की प्राचीन सभ्यता आजकल की सभ्यता से बढ़कर थी ।

चीन और बाबल की सभ्यता मिलती है और "कन्फ्यूशस" की शिक्षा ने चीन में लोगों को एक परमेश्वर का मानने वाला बनाया और उस ने पितृयज्ञ, परोपकार और न्याय आदि की शिक्षा दी । काग़ज़ बनाने और छापने के काम में बहुत प्राचीन समय में चीनियों ने बड़ी उन्नति की थी, रेशमी और रुई के उत्तम वस्त्र बनाने में वे परम प्रवीण कारीगर थे । प्राचीन चीन के पश्चात् यदि प्राचीन मिस्र पर एक दृष्टि डालें तौ पता लगता है कि आधुनिक सभ्यता से बढ़कर उस पुराने समय

* सब जेक्शन आफ़ विमन. जे. एस्. मिल विरचित पृ० १६२.

में वहां सभ्यता वर्त्तमान थी । मिस्र के प्राचीन राजा का नाम " मैनीज़ " है, मिस्र वह देश था कि जिस की वैज्ञानिक सम्पत्ति के भिखारी बनकर यूनान से "अफ़लातून" जैसे विद्वान् आया करते थे । प्राचीन मिस्र के राजे पुरोहितों की सम्मति पर चला करते थे, राजा के लिये सन्ध्या आदि समय नियत थे, राजप्रबन्ध की उत्तमता के कारण कभी प्रजा में वैमनस्य नहीं होता था और वहां की वर्णव्यवस्था बिलकुल यहां की सी थी, सब से बढ़कर पुरोहितों का पद था, फिर सिपाहियों का, उनसे उतर कर काश्तकारों और सौदागरों का और सबसे नीचे नौकरों का दर्जा था, मिस्र के रथ और घोड़े बहुत ही उत्तमकक्षा के थे । जीवन और मरण के प्रश्न पर बड़ी गंभीरता से विचार किया करते थे । राजाओं ने प्रजोपकार के लिये नहरें खुदवाईं और जहाज़ बनवाये थे । लेखन, व्याकरण, ज्योतिष, रेखागणित, रागविद्या और आयुर्वेद में लोगों ने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था और वे निस्सन्देह मानते थे कि मनुष्य का आत्मा अजर अमर है । आवागमन और मुक्ति को हिन्दुओं के समान मानते थे । मिट्टी और काच के पात्र और जहाज़ बनाने आदि के काम में बड़े निपुण थे । वे तुला (तराजू) को काम में लाते थे और लीवर (भुजायंत्र) से भारी बोझ उठाया करते थे । आरे, छैनी उत्तम से उत्तम चिमटे, पिचकारी और अस्त्रों के बनाने वाले थे; सोने और धातुओं को गलाकर काम में लाते थे । नील नदी पर रंग विरंगे बादबानों से लहराते हुये जहाज़ उनके महत्त्व को जताते थे । घण्टे, कुठारी और चीर फाड़ के सब ही शस्त्र उनके यहां प्रयोग में आते थे, स्वच्छ और उत्तम कागज़ बना कर रंग बिरंगी स्याहियों से लिखा करते थे । कपड़े रंगने में बड़े चतुर थे, प्राचीन मिसरी लोग उत्तम कक्षा के बुद्धिमान्, कारीगर और परिश्रमी थे, उनकी स्त्रियां चूड़ियों और अंगूठियों से भूषित रहा करती थीं, शिर के बाल लम्बे और गुथे हुये रखती थीं । शीशे, कंघे तथा अन्य अलंकार के उपकरण सब उनको प्राप्त थे । चान्दी, पीतल और मिट्टी के बरतनों में खाना खाते थे और खाने के समय भजन गाये जाते थे, चङ्ग, तम्बूरा और सारंगी आदि बाजों पर बड़े आनन्द से गाते थे और मुर्दों को जिस मसाले में रखकर सुरक्षित रखते थे उस का ज्ञान आजतक पश्चिमीय लोगों को नहीं हुवा, मिस्र के मीनार उनके इंजीनियरिङ्ग के जीवित जाग्रत प्रमाण हैं ।

चालडियन्, ईसरियन् और बाबुल वालों की सभ्यता भी बहुत पुरानी ह और मिस्र से कम नहीं । चाल्डिया विद्या, व्यवसाय और उसके फल सभ्यताका घर था,

गणित और ज्योतिष में विशेष अभिज्ञता उन्होंने प्राप्त की थी। तोल के बाट ऐसे उत्तम बनाये थे कि आज तक यूरोप में वैसे ही बनाये जाते हैं और पानी की घड़ी से समय का मान किया करते थे। मिसर वालोंने यूनान को और यूनानने रोमको और रोम ने वर्त्तमान यूरोपको सभ्यता सिखलाई और इसका हम दृढ़ प्रमाण पाते हैं कि मिस्रियों ने भारतवर्ष से सभ्यता सीखी थी। आर्य्यावर्त्त की सभ्यता मिसर से बढ़कर थी। यद्यपि महाभारत के युद्ध ने सामान्यतःपृथिवी को और विशेषतः भारत को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था, तथापि हम भारतवर्ष को उच्च से उच्च सभ्यता का घर इतिहास के प्रमाणों से पाते हैं। दोसौ जहाज़ भारतवर्ष के समुद्र के तटों पर प्रति समय प्रस्तुतरहते थे। ब्राह्मण और वैश्यलोग इन जहाज़ों में बैठकर सुमात्रा, जावा और चीन को जाया करते थे। वणिज व्यापार में सौदागर बिना छल कपट के कार्य्यसिद्धि किया करते थे। कपट और प्रतिज्ञाभङ्ग दोष से कोसों दूर भागते थे। "ह्यूमसाम" के समय तक लोग चारों वेदों को परम प्रमाण मानते थे और ३० वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचारी रहा करते थे। उस समय शब्दविद्या, शिल्पविद्या चिकित्साविद्या, हेतुविद्या और अध्यात्मविद्या प्रचलित थीं। अरब के लोगों ने यहीं से अङ्कविद्या और बीजगणित सीखा और यह विद्या " पाटिया " के " लिपोनार्डो " के द्वारा वर्त्तमान यूरोप में पहुंची, त्रिकोणमिति विद्या में भी हिन्दू (आर्य) ही पृथिवी के आदिगुरु हैं। त्रैराशिक, भिन्न, दशमलव आदि गणितविद्या भी इन्हीं के प्रताप से संसार में फैली है, डाक्टर " वाइज " का कथन है कि " भारतवासियों ने ही हम को शारीरिकविद्या सिखलाई "। " नियार्कस " का कथन है कि " यूनानियों को सांप के काटे की चिकित्सा विदित न थी और ब्राह्मण उसकी चिकित्सा जानते थे " मुर्दे की चीर फाड़ के लिये अनेक उपशस्त्र (औज़ार) काम में लाये जाते थे और १२७ औजार तो ऐसे सूक्ष्म और उत्तम थे जो बाल को लम्बा रखकर दो भागों में विभक्त करदें।

आर्य्यावर्त्त के विषय में "जेकालियट" कहता है कि " मैं अपने ज्ञानके नेत्रों से आर्य्यावर्त्त को अपनी राजनीति, अपने संस्कार, अपने आचार और अपना धर्म, मिस्र, ईरान, यूनान और रोम को देते हुये देखरहा हूं मैं " जैमिनि " और " व्यास " को 'सुकरात' और 'अफ्लातून' से पहिले पाता हूं " "प्राचीन भारतवर्षके महत्व का अनुभव करने के लिये यूरोप में प्राप्त किया हुआ विज्ञान और अनुभव किसी काम नहीं आता, इसलिये हमें आर्य्यावर्त्तका प्राचीन महत्त्व जाननेके लिये ऐसा यत्न करना चाहिये जैसा कि एक बच्चा नये सिरे से पाठ पढ़ता है " आगे चलकर " जेका-

लियट " पृथिवी के कुछ देशों के नाम इसप्रकार बतलाता है और कहता है कि यह संस्कृत के नाम हैं:—

नाम		संस्कृत
स्पार्टन	...	स्पर्द्धा जिसके अर्थ मुक़ाबले के हैं।
स्वीडन	...	सुयोद्धा (सिपाही)
स्कैण्डिनेविया	...	स्कन्धनिवासी
नार्वे	...	नारावाज (मल्लाहोंका देश)
ओडन	...	योधन से (योद्धा)
बाल्टिक	...	वालाटक (वीरोंका समुद्र)

निदान हम मिस्टर " बाइरायट" से सहमत हैं*जो कहते हैं कि "मिसरी, भा, रतवासी, यूनानी और इटली वाले वास्तव में किसी एक ही केन्द्र से बिखरे होंगे और यही लोग अपना धर्म, आचार और विज्ञान चीन और जापान में लेगये होंगे क्या हम यह नहीं कह सकते मेक्सिको † और पीरू ‡ में भी मैं अनुमान करता हूं कि मिस्र के पुरोहित नील से गंगा और यमुना को आते होंगे। और यह निश्चय है कि वे यहांके ब्राह्मणोंसे ⌣ मिलनेके लिये आते होंगे ठीक वैसेही जैसे कि यूनान के विद्वान् उनसे मिलने को जाया करते थे अर्थात् विद्याग्रहण करनेके लिये "

" दबस्तान " का रचयिता वर्णन करता है कि " प्राचीन ईरानियोंके पूर्व पुरुष "हिन्दू " थे" और वह कहता है कि " इसमें सन्देह नहीं कि"महाबाद या मनु"की पुस्तक जो देववाणी में लिखी गई है उस से अभिप्राय वेद का है, अतएव ज़रदुश्त केवल संशोधक (रिफ़ार्मर) था हम भारत में ईरानके प्राचीन धर्म की जड़ पाते हैं। "

" यह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक बात है कि पीरू निवासी (जिनका पूर्वपुरुष "अङ्कुस" सूर्यवंशी कहलाने का अभिमानी था) अपने बड़े त्यौहार को "रामोत्सव" के नाम से पुकारते हैं जिससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि दक्षिणीय अमेरिका में वही जाति निवास करती थी जो कि एशिया के दूर २ देशों में रामके

* एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग १ पृ० २६८।

† उत्तरीय अमेरिका के एक नगर का नाम है।

‡ दक्षिणीय अमेरिका के एक नगर का नाम है।

⌣ एसियाटिक रिसर्चेज़ भाग १ पृ० २७१।

चरित्र और कथा लेगई है"। "भारत के मन्दिर और खण्डहर बतलाते हैं कि अफ़रीका और भारतवर्ष का निकट सम्बन्ध था। मिस्र की मीनारें और बुद्ध के मन्दिरों के बनाने वाले एक ही कारीगर होंगे" "उन मन्दिरों पर अक्षर कुछ हिन्दी और कुछ अबीसीनिया या इथोपिया के मालूम होते हैं इससे पता लगता है कि इथोपिया और हिन्दोस्तान एक ही विस्तृत वंश से सम्बन्ध रखते होंगे। इस की पुष्टि में यह भी कहा जासकता है कि बंगाल और विहार के पहाड़ी लोग अपनी आकृति और छवि में विशेषतः होंठ और नाककी बनावट में वर्त्तमान अबीसीनिया वालों से बहुत कुछ समता रखते हैं"। "हिन्दू (आर्य) बहुत प्राचीन समय से फ़ारिस, इथोपिया, मिस्र, फ़ेन्शा, यूनान, टस्कनी, सीथिया, गाथ, केलट, चीन, जापान और पैरो निवासियों से सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हम कह सकते हैं कि या तो यह जातियें हिन्दुओं की बस्तियां होंगी या उनमें से किसी ने सब को बसाया होगा। यह हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि वे सब एक ही केन्द्र से आये होंगे"।

एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग २ में विलियम जौन्स कहते हैं कि "मैं ज़िन्दावस्था के शब्दों को देखकर अचम्भे में रह गया। दस शब्दों में ६ या ७ शुद्ध संस्कृत के हैं, यहां तक कि विभक्तियां भी व्याकरण के नियमानुसार हैं जैसे "युष्माकम्" का "युष्मद्"। फिर कहते हैं कि "ईरान और पृथिवी का पहिला राजा महाबाद था जिसने लोगों को चार भागों में विभक्त किया था अर्थात् पुरोहित (ब्राह्मण) सिपाही (क्षत्रिय) सौदागर (वैश्य) सेवक (शूद्र)"।

"मिस्र में दो प्रकार के अक्षर थे, एक लौकिक जो भारतीय प्रान्तों के अक्षरों से मिलते हैं दूसरे वैदिक जो देवनागरी जैसे विशेष कर संस्कृत के अक्षरों से मिलते हैं। मिस्र की मीनारें, बाबुल का बुर्ज महादेव की मूर्ति के लिये बनाये गये थे। ब्राह्मण और ड्रुइड * एक ही हैं। सब बातें मिलकर सिद्ध करती हैं कि भारतवासी और चीनी वास्तव में एक ही हैं" (भाग २ पृ० ३७९)।

शुक्रनीति और महाभारत आदि के देखने से उस समय की सभ्यता अर्थात् विद्या और गुणों का पता लगता है, जिस समय को यूरोप के बने हुये इतिहास पहुंच नहीं सकते। मिस्र व यूनान की सभ्यता उस उच्चसभ्यता के आगे जो कि छै हज़ार वर्ष पहिले आर्यावर्त में थी, सचमुच अधूरी प्रतीत होती है। उस पूर्ण सभ्यता पर दृष्टि देने से चारों ओर आर्यों का बुद्धिकौशल ही दिखाई पड़ता है। यदि

* इंगलैंड के प्राचीन पुरोहित ड्रुइड कहलाते थे।

आजकल रेल वर्तमान सभ्यता का उत्तम निदर्शन है तो उससे बढ़कर विमान और अश्वयान आदि का उस समय में प्रचार होना आजकल के लोगों को आश्चर्य में डाल देता है। यदि आजकल सिपाही लोग डायनामाइट और तोपों की प्रशंसा करते हैं तो उस समय के आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र इससे बढ़कर अपनी योग्यता को प्रकट कर रहे हैं। शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के पूर्ण साधन निस्सन्देह बतला रहे हैं कि मनुष्य प्राचीन समय में पूर्ण विद्वान् हुआ करते थे। यूरोप और अमेरिका के आधुनिक सभ्यता और उन्नति के मन्दिर को देखकर स्थूलदर्शी पुरुष यह समझते हैं कि यह नया मन्दिर यूरोप या अमेरिका ने स्वयं बनाया है, परन्तु बुद्धिमान्, परीक्षक और इतिहासवेत्ता बतला रहे हैं कि इस मन्दिर में एक२ विद्या संबन्धी ईंट पुरानी लगी हुई है। बीसियों प्रामाणिक इतिहास और उनके प्रमाण उपस्थित हैं, जिनको विस्तार के भय से हम लिख नहीं सकते परन्तु उन सबका सारांश यह है कि पृथिवी में सम्पूर्ण विद्याओं और क्रियाओं के आदिगुरु ब्राह्मण लोग और संसार को उच्चसभ्यता के सिखलाने वाले भारतनिवासी हैं।

ये प्रमाण बतला रहे हैं कि कोई भी विद्या या क्रिया कभी किसी सभ्यजाति ने ऐसी नहीं निकाली जो कि उससे पहिले किसी और सभ्यजाति में न हो और एक जाति दूसरी से सभ्यता सीखती चली आई है। इन प्रमाणों से बढ़कर अत्यन्त ही प्राचीन समय का एक और प्रमाण मनुस्मृति में मिलता है, जिसमें लिखा है कि "पृथिवी के सब लोग सम्पूर्ण विद्याओं को आर्यावर्त के विद्वानों से सीखें" इससे पाया जाता है कि एक समय था जब कि वास्तव में संसार भर के मनुष्य आर्यावर्त में शिक्षा पाने के लिये आते थे। यहां पर पहुंच कर फिर वही प्रश्न सन्मुख आ जाता है कि मन्वादि महर्षियों ने जो कि जगद्गुरु थे, विद्या कहां से सीखी ? इस का उत्तर निर्भ्रान्त रीति से स्वयं महर्षि लोग देते हैं कि सब प्रकार की विद्या ऋषियों ने वेद से सीखी है। अब प्रश्न होता है कि वेद क्या वस्तु है ? इस का उत्तर ऋषि देते हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और वास्तव में यह सत्य है क्योंकि हमने साधारण रीति पर देख लिया कि मनुष्य विद्या या विज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सक्ता किन्तु किसी दूसरे विद्वान् से सीखता चला आया है। यहां तक कि हम आदि सृष्टि के विद्वानों के पास पहुंचते हैं और पाते हैं कि उन्होंने विद्या ईश्वर से ही अवश्य प्राप्त की होगी क्योंकि जड़ प्रकृति में विद्या रह नहीं सकती और जब अभाव से भाव हो नहीं सकता तो प्रकृति चेतन जीवात्मा को विद्या सिखा नहीं सकती। प्रकृति के

अतिरिक्त दूसरी वस्तु जीवात्मा है, परन्तु संसार का इतिहास स्पष्ट शब्दों में और हमारा अनुभव निस्सन्देह साक्षी देरहा है कि एक जीवात्मा स्वयं शिक्षित होने पर ही दूसरे को शिक्षा देसकता है, परन्तु स्वयमेव कोई जीवात्मा शिक्षित नहीं हो सकता। इसलिये आदि सृष्टि में आदि पुरुष न जड़ जगत् से और न अन्य जीवों से विद्या सीख सकते थे, किन्तु निस्सन्देह उसी से उन्होंने विद्या सीखी जो कि विद्यामय और विद्या का भण्डार है और जिसको परमेश्वर कहते हैं, फिर उन्हों ने ब्रह्मा आदि ऋषियों को वह ज्ञान सिखाया और जिस प्रकार मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति का क्रम प्रचलित हुआ उसी प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को विद्या सिखाता रहा।

भाषा की परीक्षा करते हुये हमने वैदिक शब्दों को मनुष्य की स्वाभाविक भाषा सिद्ध किया था और विद्या की परीक्षा ने भी हमें बतलादिया कि विद्यारूप सहस्र धारा नदी का स्रोत भी वही ज्ञान है जिसको कि वेद के शब्द बोधन करा रहे हैं। मानो वैदिकशब्द मनुष्य की स्वाभाविकभाषा और वैदिकज्ञान मनुष्य का स्वाभाविकज्ञान है। जैसे शरीर का जीव से सम्बन्ध है वैसे ही शब्द का अर्थ से लगाव है, जैसे दाह का प्रकाश से मेल है वैसे शब्द का अर्थ से सम्बन्ध है। शब्द का पर्याय भाषा और अर्थ का पर्याय ज्ञान है। शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध का नाम वेद है।

वेदोत्पत्ति के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "वेदभाष्यभूमिका" में सारगर्भित हेतु दिये हैं, जिनके पढ़ने से मनुष्य के सब सन्देह स्वयं निवृत्त हो जाते हैं और जिज्ञासु को वेदों के ईश्वरोक्त होने का पूर्ण निश्चय हो जाता है। कोई ऐसी शंका नहीं जिसका समाधान उत्तमरीति पर उस पुस्तक में न किया गया हो, जो लोग कहा करते थे कि "ईश्वर निराकार है उससे शब्दमय वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं"? उनके उत्तर में महर्षि लिखते हैं:—

"मनमें मुखादि अवयव नहीं हैं, तथापि जैसें उस के भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यवहार में होता है वैसे ही परमेश्वर में जानना चाहिये और जो सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसीका सहाय ग्रहण नहीं करता। जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुवा था उस समय निराकार ईश्वर ने सम्पूर्ण जगत् को बनाया तब वेदों के रचने में क्या शङ्का रही। जैसे वेदों में अत्यन्त सूक्ष्म विद्याओं का रचन ईश्वर ने किया है वैसे ही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यन्त आश्चर्य रूप रचन किया है तो क्या वेदों की रचना निराकार

ईश्वर नहीं करसकता ?" फिर महर्षि दर्शाते हैं कि "वेदों को पुस्तकों में लिखकर सृष्टि की आदि में ईश्वरने प्रकाशित नहीं किया था, किन्तु अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा महर्षियों के ज्ञानमें प्रेरित किया था। जैसे बाजेको कोई बजावे या काठकी पुतली को नचावे उसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्त मात्र किया था क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु इस से यह जानना कि वेदों में जितने शब्दार्थ सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं" *।

पाणिनि, पतञ्जलि, जैमिनि, कणाद, गौतम, वात्स्यायन और कपिल आदि महर्षियों के प्रमाण वेदों के अनादि होने में देते हुये महर्षि लिखते हैं कि "जब २ परमेश्वर सृष्टिको रचता है तब२ प्रजा के हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब २ सृष्टिका प्रलय होता है तब २ वेद उस के ज्ञान में सदा बने रहते हैं इसलिये उनको सदैव नित्य मानना चाहिये।"

वेद यदि ईश्वरोक्त ज्ञान है तो सृष्टि ईश्वरीय कर्म, इसलिये वेद के शब्दों के अर्थ सृष्टि नियमानुकूल होने से सत्य और उनके विरुद्ध होने से मिथ्या कहलाते हैं, वेद के सच्चे कोष सृष्टि के नियम हैं और सृष्टिनियमों के बोधक वेद हैं। सृष्टिनियमों का दूसरा नाम वेदार्थ है। सृष्टि की पुस्तक को देखने वाली आंख मनुष्य की बुद्धि है और वेद उस आंख के लिये सूर्य का काम देता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में आंख प्राकृत पदार्थों को निर्भ्रम देख सकती है वैसे ही सृष्टि की विद्या को बुद्धि वेदरूप सूर्य के सहारे से ही निर्भ्रान्त रीति से प्राप्त करसकती है। इस वैदिकसूर्य के लुप्त होने से पांच सहस्र बर्ष से पृथिवी पर अन्धकार छाया हुवा था और इस अन्धकार की अवस्था में जो मतमतान्तर और भिन्न २ भाषायें उत्पन्न हुई उनका वर्णन हम पूर्व कर चुके हैं, सूर्य के अभाव में दीपकों ने जो काम किया उसका कुछ वर्णन दर्शा चुके हैं। परन्तु मनुष्य जाति के सौभाग्य का उदय हुवा कि वेदका सूर्य, बुद्धि की आंख को सत्य का निर्भ्रान्त मार्ग दर्शाने के लिये चिरकाल के पश्चात् महर्षि दयानन्द के प्रताप से उदय होगया है। अन्धेरी रात फट गई, सूर्य का उदय होगया है, दीपक सब फीके पड़गये। इस वेद की ज्योति को सर्वत्र फैलाने के लिये आर्यसमाज प्रस्तुत है, वेदमार्ग पर पृथिवी के सब मनुष्यों को लाने के लिये आर्यसमाज का झण्डा फहरा रहा है। वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिये महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ हैं। वेदमन्त्रों के अर्थों को अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु,

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित पृ० १२.

निरुक्त तथा शतपथादि आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण से दर्शाने के लिये महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य है। ईश्वर के वचन और कर्म में अविरोध दिखाना सदैवकाल से ऋषियों का सिद्धान्त रहा है और उसी सिद्धान्त का महर्षि ने आज संसार को उपदेश किया है। सायण, महीधर आदि मनुष्य अपनी मिथ्या कल्पना का अन्धकार के समय में भ्रम से वेदार्थ बतला रहे थे अब उनके भाष्य तथा उनके अनुयायी मैक्समूलर आदि पश्चिमीय शिष्यों के भ्रान्त अर्थ निस्सन्देह मृत्यु को प्राप्त होगये हैं। वह समय आवेगा जब कि योगी लोग बुद्धि के उत्तम साधन को लेकर वैदिकशब्दों के अर्थ आर्ष ग्रन्थों की सहायता लेते हुये सृष्टि में ढूंढेंगे और शेष वेदभाष्य जिसको महर्षि दयानन्द नहीं करगये उस को कोई ऋषिश्रेणी का मेधावी, योगी और व्याकरणादि शास्त्रों का पूर्ण पण्डित ही पूर्ण करेगा। सृष्टि में वेद मन्त्रों के अर्थों को समाधिस्थ बुद्धि से दर्शन करने वाले ही ऋषि कहलाते हैं और ऋषि का ही दूसरा नाम मन्त्रद्रष्टा है, मन्त्रद्रष्टा होने के कारण ही स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द ऋषि और महर्षि कहलाये हैं।

शब्दार्थसम्बन्ध रूपी श्रुतियों को आदि सृष्टि से लेकर अनेक वर्षपर्यन्त लोग श्रवण द्वारा ग्रहण करते और स्मृति के पुस्तकालय में सुरक्षित रखते हुये अपने जीवन में वेद के एक२ शब्द के अपने आचरण से अर्थ दिखाते थे, परन्तु समय आया जब कि लोगोंने प्रमाद से अपने साधनों को निर्बल करलिया और जब वे वेदको श्रुति की दशा में न रख सके तब ऋषियों ने उस श्रुति के बोधन कराने वाले अक्षरों में वेद को लिखकर चार पुस्तकों के स्वरूप में परिणत किया और ये चार पुस्तक ऋक्, यजुः, साम, अथर्व के नाम से प्रकरणानुसार प्रसिद्ध हुए। अमैथुनी सृष्टि में पुस्तक की आवश्यकता नथी परन्तु मैथुनी सृष्टि में आवश्यकता होने के कारण पुस्तकबद्ध हुये। इस विषय में स्वामीजी ने एक व्याख्यान पूना में दिया था उसके संक्षिप्त विवरण में यह वचन लिखे हुये हैं:—

"इक्ष्वाकु के समय में लोग अक्षर, स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को बिलकुल कण्ठस्थ करने की रीति कुछ २ बन्द होने लगी, जिसलिपि में वेद लिखे जाते थे उसका नाम देवनागरी ऐसा है।" *

* ता० २९ जुलाई १८७५ ई० को एक व्याख्यान स्वामी जी ने पूना में दिया था, उस के संक्षिप्त नोट एक रिपोर्ट की रीति पर राजस्थान आर्यपुस्तकप्रचारिणी सभा की ओर से लाला रामविलास जी ने मुद्रित कराये हैं। देखो व्याख्यान नं० ८।

सर्व विद्याओं के मूल, धर्म के दर्शक, मनुष्यमात्र के लिये सूर्यवत् ज्ञान रूपी प्रकाश के फैलाने वाले ईश्वरोक्त वेदों की शिक्षा महर्षि दयानन्द ने वाचिक और लेखबद्ध उपदेश द्वारा सबको दी और सारा पुरुषार्थ उनके ही सत्यार्थप्रकाश करने और भाष्य रचने में अर्पण करदिया। आर्य्यसमाजका सर्वस्व और मूलधन वेद है, आर्य्यसमाजका तीसरा नियम बतला रहा है कि "वेदका पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है।" आर्योंके लगातार पुरुषार्थसे अवश्य एक दिन वह आवेगा जब कि भूगोल पर रहने वाले मनुष्य सब सत्यविद्याओं के मूल वेद की शरण लेते हुये अन्धकार से आच्छादित पृथिवी को वेद के तेज से स्वर्णमयी बनाते हुये अपने मनुष्य जीवन को सफल करेंगे।

सत्यार्थप्रकाश पर एक दृष्टि।

निदर्शन की रीति पर तीन सिद्धान्तों का वर्णन करते हुये हमने दिखा दिया कि महर्षि ने किस उत्तम और सारगर्भित रीति से सूत्रवत् वैदिकसिद्धान्तों को समझाने के लिये अपने ग्रन्थों का निर्माण किया है। यदि एक एक वैदिकसिद्धान्त को पूर्ण रीति पर मनुष्य जानना चाहे तो उसके लिये महर्षि के पुस्तक पर्याप्त हैं। अब हम दर्शाना चाहते हैं कि किन २ विषयों को उन के ग्रन्थ प्रतिपादन करते हैं।

अन्धेरे में सोये हुये लोगोंको जगाने की आवश्यकता है पूर्व इसके कि वह सूर्यके प्रकाश को देख सकें। भूले हुये पथिक को सीधे मार्ग में चलाने से पहिले आवश्यक है कि उसको बतलाया जावे कि तू उलटे मार्ग में जारहा है वहां से लौट कर इधर सीधे मार्ग में चला आ। सत्यार्थप्रकाश मतमतान्तरोंकी अविद्या में सोये हुये पुरुषों को जगाता हुआ वैदिकसूर्य के प्रकाश का दर्शन कराता है। यह उलटे मार्ग में जाने वाले यात्रियों को उच्चैः स्वर से वेदके सत्य मार्ग में जाने के लिये कह रहा है। जब मनुष्य सत्यार्थप्रकाश को आद्योपान्त पढ़ता है तो वह संसार के मत मतान्तरोंको तिलाञ्जलि देता हुआ वैदिकसूर्य की शरण में आजाता है। सत्यार्थप्रकाश प्रभात के तारे के समान है जो कि अपने उदय से रात्रि की समाप्ति करता हुआ सूर्योदय की आशा दिलाता है। सत्यार्थप्रकाश उस मनुष्य के समान है जो सोये हुये लोगों के सामने अपना एक हाथ उठाकर सूर्योदय को बतला रहा हो और दूसरे हाथ से उनको उठाने के लिये झटका देता जाय। सत्यार्थप्रकाशके दो भाग हैं एक पूर्वार्द्ध दूसरा उत्तरार्द्ध। पहिला भाग वेदरूप सूर्य को हाथ उठा कर बतला

रहा है और दूसरा मानो दूसरे हाथ से मतमतान्तरोंका आलस त्यागनेके लिये झटका दे रहा है। यदि किसी सोने वालेको हिलाते ही रहो कि उठो उठो तो वह करवट बदल कर इधर उधर देखकर कहता है कि कहीं सूर्य नहीं दीखता अभी तो रात है मैं नहीं उठता, परन्तु जब उठाने वाले का एक हाथ सूर्यको दिखला रहा हो और दूसरा हाथ उसको हिला रहा हो तो सोने वाले आंख खोलते ही सूर्य को चढ़ाहुआ देख कर उठने का यत्न करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश उस वैद्य के समान है जो एक हाथ में औषध की बोतल और दूसरे हाथ में रोगी के लिये पथ्य लिये खड़ा हो । यदि उत्तरार्द्ध औषध है तो पूर्वार्द्ध पथ्य है। यदि उत्तरार्द्ध मतमतान्तरों के रोगों का खण्डन करता है तो पूर्वार्द्ध सत्य वैदिकमत की आरोग्यता का मण्डन कर रहा है । जागते हुये पुरुषों के लिये केवल मण्डन हुआ करता है, परन्तु सोये हुये लोगों के लिये मण्डन और खण्डन दोनों की आवश्यकता है। मण्डन का संकेत (इशारह) वह देख सकते हैं जिन की आंखें खुली हुई हैं परन्तु आंख खुलवाने के लिये खण्डन रूप हिलाना काम करता है। कोई २ महाशय यह कहा करते हैं कि " किसी का खण्डन नहीं करना चाहिये, केवल अपना मण्डन करादिया । लोग स्वयमेव अपने हानि लाभ को सोच लेंगे, हम क्यों किसीका मन दुखायें ? " यह कथन प्रत्येकदशा में ठीक नहीं है हम मानते हैं कि जागतेहुये पुरुष को मण्डनकी आवश्यकता है, परन्तु सोये हुये को जिसकी आंखें देख नहीं सकतीं, पहिले जगाने की आवश्यकता है। सोये हुये पुरुष कभी २ हिलाने पर बड़बड़ाया करते हैं, पर जगाने वाले इस बड़बड़ाने से कब रुकते हैं ? हानिलाभ को जो सोच सकता है वह जागरहा है, उस के लिये निस्सन्देह मण्डन की आवश्यकता है। परन्तु सोया हुआ आलस्य के मद में हानि लाभ को जान नहीं सकता उसको जनाने की आवश्यकता है। डाक्टर या वैद्य जब रोगी को चिरायता, कोनेन आदि कड़वी ओषधि देता है इसलिये कि वह भयानक ज्वर से मुक्त हो तो मूर्ख रोगी का मुंह बनाना या डाक्टर को गाली देना कभी डाक्टर को अपने शुभ काम के छोड़ने की प्रेरणा नहीं कर सकता। ओषधि पिलाते हुये रोगी का पिलाने वालों को लातें मारना उन को उसकामसे विमुख नहीं बना सकता। नीरोग पुरुष केवल भोजन खाया करते हैं परन्तु रोगी भोजनके अतिरिक्त ओषधि का भी उपयोग किया करते हैं। मण्डनरूप भोजन नीरोग पुरुषों के लिये है परन्तु खण्डनरूप ओषधि और मण्डन रूप पथ्य ये दोनों रोगीके लिये आवश्यक हैं।

उत्तम उपदेशक डाक्टर के समान रोगियों को औषधि और भोजन दोनों दिया करते हैं। वे उनके कटुवचनों पर ध्यान न देते हुये उनको नीरोग बनाने की चिन्ता में रहते हैं। महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति में लिखा है कि " हे धृतराष्ट्र! मीठी बातें करने वाले चाटुवादी बहुत हैं किन्तु पथ्य रूप कल्याण कारी कटु वचन के कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं " । चाटुवादिता का नाम उपदेश नहीं है, उपदेशक का काम मूर्खता की बोदी भित्तिको खण्डन के तीक्ष्ण शस्त्रों से गिराकर मण्डन के मसाले से नवीन मन्दिर का निर्माण करना है। पृथिवी भर के रिफार्मरों को देखिये, उपदेशकों के ग्रन्थों को पढ़िये, वे सदा इन दोनों से साथ२ काम लेते रहे हैं। महात्मा " सुक़रात " का उपदेश हमारे सामने इसीबात को पुष्ट कर रहा है। निम्नलिखित शब्दों में " सुक़रात " अपने देशनिवासियों को सम्बोधित करता है:—

"एथेन्स निवासियो! मैं तुम्हारा सर्वोपरि मान करता हुवा तुमको प्यार करता हूं परन्तु मैं तुम्हारी अपेक्षा ईश्वर की आज्ञापालन करूंगा। जबतक मुझ में प्राण और शक्ति है मैं ज्ञानचर्चाको बन्द नहीं करसकता तुमको और तुममें से प्रत्येक को सदुपदेश करने से रुक नहीं सकता। इसलिये हे मेरे स्वदेशनिवासियो! मैं कहता हूं कि चाहे मुझे छोड़ो या मारो, पर इस बात का निश्चय रक्खो कि मैं अपने जीवनोद्देश्य को पलट नहीं सकता। एकवार तो क्या चाहे कई वार मुझे इस उपदेश के लिये मरना पड़े तो भी मुंह न मोडूंगा।"

उपदेशक " सुक़रात " को विष का प्याला दिया गया और उसने हर्षपूर्वक पीते हुये प्राण त्याग दिये, परन्तु अन्त समय तक उपदेश करने से न रुका। वह आत्मा को अजर अमर बतलाता हुवा यूनान के मतमतान्तरों और कुरीतियों का खण्डन करता था। धनवान् और शक्तिमान् लोग उसकी उस खण्डनरूप कटु औषधि को बुरा बतलाते हुये उसके शत्रु बनगये, यहां तक कि उसको मरवा डाला परन्तु आज पश्चिमीय जगत् से पूछो तो वह "सुक़रात" को यूनान का भूषण मान रहा है।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में ईश्वर की आज्ञा पालते हुये मनुष्यजाति के उद्धार के लिये उपदेश किया, चारों ओर से ईंटें और पत्थर खाता हुआ महर्षि वेदोपदेश से नहीं रुकता, पान और मिठाई में विष दिया गया परन्तु परमवीर अपने उद्देश्य से एक इंच भी नहीं सरकता। परोपकारी लोगों को यहां तक प्यार

करता है कि उनकी रोगनिवृत्ति के लिये औषध उनकी गालियां खानेपर भी देने से नहीं रुकता, परञ्च सुकरात के सदृश देशनिवासियों से बढ़कर ईश्वराज्ञा पालन में तत्पर है। कोई वस्तु भी उसको सत्य से हटा कर असत्य की ओर नहीं लेजासकती, विष खाकर प्राण देदिये परन्तु आयु भर चाटुवादिता को छोड़कर सदुपदेश ही किया और मरने पर भी सत्यार्थप्रकाश में भाविनीप्रजाके लिये वह ओषधि और पथ्य दोनों छोड़गया। महर्षि ने संसार को अन्धकार में सोते हुये अनुभव किया था इसलिये वह खण्डन से जगाना चाहता था। महर्षि ने संसार में मनुष्यजाति को रोग में ग्रस्त पाया था इसलिये वह खण्डन की कटु ओषधि से काम लेना चाहता था। जब वह जोधपुर में पधारे तो कई लोगों ने कहा कि महाराज ! यहां कोमलता से काम लेना, उस समय महर्षिके यह वचन कि "मैं पापके वृक्षोंकी जड़ निहन्ने से नहीं काटता किन्तु कुल्हाड़ी से काटता हूं" उनकी परमबुद्धिमत्ता और पूर्ण हित को दर्शारहे हैं। दीर्घ रोगी को यदि अत्यन्त कड़वी ओषधि दीजावे तो उस से वैद्य की परम बुद्धिमत्ता और पूर्ण हित प्रकट होता है। रोग की दशा में ओषधि कड़वी लगती है परन्तु आरोग्य होने पर रोगी आयु भर वैद्य का कृतज्ञ बन जाता है। मूर्खता से लोग स्वामी जी को कहें कि उन्होंने खण्डन से लोगोंका जी दुखाया, परन्तु वे रोगी जो इस ओषधि के प्रभाव से चंगे होचुके हैं वे आयु भर उन के उपकार को नहीं भूल सकते। संसार भर के लिये सत्यार्थप्रकाश ऋषि के उपदेश को लिये हुये विराजमान है, इसका उद्देश्य अन्धकार से निकालकर मनुष्यजाति को प्रकाश के दर्शन कराना है।

सत्यार्थप्रकाश के लिखते समय महर्षि के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुये होंगे, उनका अनुमान पण्डित गुरुदत्तजी के कथनानुसार उनकी प्रतिज्ञा से विदित होता है जिस में वह अपने सत्यसङ्कल्प और शुभकामना का हमें बोधन करा रहे हैं। योगिराज के सिवाय और कौन मनुष्य इस मंत्रका उच्चारण अपनीदशा में कर सकता है ? इस में वह परमेश्वर से प्रतिज्ञा करते हैं कि "हे परमेश्वर ! आप ही अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, मैं आप को ही प्रत्यक्षब्रह्म कहूं क्योंकि आप सर्वत्र व्याप्त होकर सब को नित्य ही प्राप्त हैं। जो आप की वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है, उसी का मैं सबके लिये उपदेश व आचरण भी करूंगा, सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्य ही करूंगा, सो आप मेरीरक्षा कीजिये, सो आप मुझ सत्यवक्ता आप्त की रक्षा कीजिये कि जिस से आप की आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म औरजो उस से विरुद्ध है वही अधर्म है धर्म

से प्रीति और अधर्म से घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये मैं आप का बड़ा उपकार मानूंगा "।

ईश्वर को प्रत्यक्ष कहने के अधिकारी योगिराज की इस प्रतिज्ञा के सम्बन्धमें हमारा लेख करना ऐसा है कि सूर्य के प्रकाश को दीपक से दिखाना, इसलिये हम इस पर अधिक लेख न करते हुये केवल इतनाही कहेंगे कि महर्षिने ईश्वरकी आज्ञा पालन करने के लिये ही इस व्रत को धारण किया था।

प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकार आदि नामों की व्याख्या है।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि उसके नाम की व्याख्या करते हैं जिस की आज्ञा पालन के लिये उन्होंने अपने आप को अर्पण किया था। "ओ३म्" परमात्मा का सर्वोत्तम नाम बतलाते हुये वह "ओ३म्" की अकार मात्रा को विराट्, अग्नि, विश्व। उकार को हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस। मकार को ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ का वाचक बतलाते हैं। देव, कुबेर, पृथिवी, आकाश, वसु, रुद्र, जल, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, यज्ञ, गुरु, अज, देवी और निरञ्जन आदि नाम व्याकरण की रीति से ईश्वर के ही बतलाते हुये वह पौराणिक लोगों के मङ्गलाचरणके कल्पित क्रम का खण्डन करते हुये वेद उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों के प्राचीन ढंग को इन शब्दों में बतलाते हैं कि " वेद और आर्ष ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता हां उन में ओ३म् तथा अथ शब्द तो देखने में आते हैं " " श्रीगणेशाय-नमः " इत्यादि शब्द ग्रन्थारम्भ में लिखने की रीति प्राचीन समय में न थी और " हरिः ओ३म् " का प्रयोग भी ग्रन्थारम्भ में पौराणिक और तांत्रिक लोगोंकी मिथ्याकल्पना से ही प्रचलित हुवा है, इसलिये " ओ३म् " या " अथ " शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखने चाहियें।

द्वितीय समुल्लास में सन्तान की शिक्षा और रक्षा का वर्णन है।

शतपथ के प्रमाण से इस समुल्लास में वह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य के तीन शिक्षक हैं प्रथम माता, द्वितीय पिता, तृतीय आचार्य। जो कि बचपन में पड़े हुये संस्कार चिरस्थायी होते हैं इसलिये वे अनुरोध करते हैं कि सन्तान को उत्तम शिक्षा प्रारम्भ ही से माता पिता करते रहें और भूत प्रेत आदि भ्रान्ति युक्त बातों से

उनको न डरावैं और ऐसा यत्न करें कि बालक ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय बनें। जन्म पत्र का यथार्थ चित्र दिखलाते हुये, सूर्य्यादि ग्रहपीड़ा के भ्रम से बचने की शिक्षा करते हैं और लिखते हैं कि "माता, पिता और आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहैं कि जो२ हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन२ का ग्रहण करो और जो२ दुष्ट कर्म हों उनका त्याग करदिया करो"। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उस से कुछ न्यून भोजन करें, मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहैं, अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें, इत्यादि बहुत से शिक्षारत्नों से यह समुल्लास जटित हो रहा है *।

तृतीयसमुल्लास में ब्रह्मचर्य्य, पठनपाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने की रीति है।

आठ प्रकार के मैथुनों से संन्तानों को बचाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य की शिक्षा करते हुये महर्षि मनु के वचनानुसार पुत्र पुत्रियों को वेदविद्या से युक्त करना दर्शाते हैं, फिर गायत्रीमन्त्र का उपदेश करते हुये स्नान, आचमन, प्राणायाम की विधि वर्णन करते हैं। प्राणायाम के विषय में लिखते हैं कि "प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन हो जाते हैं, पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र अर्थात् सूक्ष्म हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े से काल में समझकर उपस्थित करलेगा, स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।" फिर सन्ध्योपासना के विषयमें लिखते हैं कि "न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें"। होम की विधि और होम के लाभ प्रबल युक्तियों से बतलाते हुये महर्षि लिखते हैं कि "प्रत्येक मनुष्य को सोलह२ आहुति और छैः२ माशे घृतादिक प्रत्येक आहुति का प्रमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्य्यवर शिरोमणि ऋषि महर्षि, राजे म-

* दूसरे समुल्लास में जो निर्बल स्त्रियों को दूध पिलाने का निषेध किया है, उससे यह न समझना चाहिये कि वह आरोग्य और बलवती स्त्रियों को भी दूध पिलाने से रोकते हैं क्योंकि वे लिखते हैं कि दाई आदि दूध पिलावें, इसलिये ग्रन्थकर्त्ता का आशय निर्बलस्त्रियों को जो कि प्रसूत के समय और भी निर्बल हो जाती हैं दूध पिलाने से रोकने का है नकि आरोग्य और हृष्टपुष्ट स्त्रियों को।

हाराजे लोग बहुतसा होम करते और कराते थे, जबतक होम करने का प्रचार रहा तबतक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जावे"। फिर बतलाया है कि ब्रह्मचर्य्य आश्रम में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

छान्दोग्य उपनिषद् के लेखानुसार ब्रह्मचर्य्य तीन प्रकार का वर्णन किया है। पहिला कनिष्ठ, जो २४ वर्षतक का ब्रह्मचर्य्य है, २४ वर्ष ब्रह्मचर्य्य रखने वाले की आयु का परिमाण ७० या ८० वर्ष बतलाते हैं। दूसरा मध्यम, जो कि ३६ वर्ष का है और तीसरा उत्तम, जोकि ४८ वर्ष तक धारण किया जाता है। उत्तम ब्रह्मचर्य्य को उत्तम रीति से धारण करने वाला अपनी आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा सकता है। कई विद्वान् बतलाते हैं * कि प्राचीन अरब निवासी, ब्राज़ील के रहने वाले और ब्राह्मण लोग दोसौ या तीन सौ वर्ष तक जीते थे। प्रोफ़ेसर "ह्यूफ़लैण्ड" का कथन है कि "जिसको युवा होने में देर लगे उसकी आयु भी अधिक होगी"। डाक्टर "फ्लन्स्टन" † का कथन है कि "प्रायः जन्तु उससे छैगुना जिया करते हैं, जितनी देर कि उनको युवा होने में लगती है"। योगदर्शन के भाष्य ‡ में लिखा है कि "श्वास ही के आश्रय से प्राणियों का जीवन है उसी को निरोध करने से मनुष्य की आयु दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी तक हो सकती है और निम्नलिखित कोष्ठ से दिखलाया है कि जो प्राणी कम श्वास लेता है वह अधिक जीता है।

नाम प्राणी	संख्या श्वास प्रतिमिनट	आयु का परिमाण वर्षों में
खरगोश	३८	८
बन्दर	३२	२१
कुत्ता	२९	१४
घोड़ा	१९	५०
मनुष्य	१३	१००
सांप	८	१२०
कछुवा	५	१५०

उक्त बातों को विचारते हुये हम कह सकते हैं कि ४८ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य रखने वाला परमयोगी योगबल से १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा

* पुस्तक फ़ूटस् एण्डफ़ीरन एशिया पृ० ९९।

† मेडिकल एसे नं० १ पृ० २२।

‡ योगदर्शनभाष्य पं० रुद्रदत्तजी सम्पादक आर्यावर्त दानापुर विरचित पृ० ६ व ७।

सकता है। किस आयु का ब्रह्मचारी किस आयु की ब्रह्मचारिणी से विवाह करे इस के विषय में महर्षि दर्शाते हैं कि विवाह की अवस्था स्त्री पुरुष दोनों की एकसी न होनी चाहिये किन्तु निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहियेः—

ब्रह्मचारी की आयु	ब्रह्मचारिणी की आयु
२५	१६
३०	१७
३६	१८
४०	२०
४४	२२
४८	२४

स्त्री को प्रायः १३ वर्ष की आयु से मासिक धर्म आरम्भ हो जाता है और वह १६ वर्ष की आयु में सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाती है। परन्तु जहां लड़की १६ वर्ष की वय में विवाह के योग्य होती है वहां लड़का २५ वर्ष में विवाह के योग्य होता है। स्त्री जहां पुरुष से पहिले युवति हो जाती है वहां उससे पहिले ही सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य भी हो जाती है। डाक्टर "होलब्रूक" एम, डी, का कथन है कि "आरोग्यवती स्त्रियां प्रजनन शक्ति ४० और ४५ वर्ष के भीतर खो बैठती हैं"। उक्त साम्य गम्भीरविद्या और बुद्धि का फल है। सायन्स प्रतिदिन इसकी पुष्टि कर रहा है और अनुभव इसकी उत्तमता की साक्षी दे रहा है।

जिन बातों से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी को बचना चाहिये उनका वर्णन महर्षि इस प्रकार करते हैं कि "ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अंजन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान और बाजा बजाना, द्यूत, (जुवा खेलना) निन्दा, मिथ्याभाषण और परहानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ दें। सर्वत्र एकाकी सोवें, वीर्यस्खलित कभी न करें, जो कामना से वीर्यस्खलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्यव्रत का नाश करदिया।

सत्यकी परीक्षा ५ प्रकार की वर्णन करते हुये महर्षि प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों की विशेष व्याख्या दार्शनिक रीति से करते हैं कि जिस को पढ़ कर मनुष्य शास्त्रों की महिमा और ऋषियों की अलौकिक बुद्धि का परिचय प्राप्त करता है। पश्चिमीय सायन्स का यह कथन कि ६४ तत्व है मिथ्या प्रतीत होता है जब कि कणाद महर्षि के

सूत्र पाठक के दृष्टिगोचर होते हैं वास्तव में तत्त्व (भूत) केवल पांच ही हैं। एक अमरीकन विद्वान् * इस बात को अनुभव करता हुवा दिखलाई देरहा है कि भूत पांच ही होने चाहियें और उन के ५ नाम वह अपने पुस्तक में लिखता है। अंग्रेजी भाषा की अपूर्णता के कारण यद्यपि उसका लेख इतना स्पष्ट नहीं जितना कि शास्त्रकारों का होता है। तथापि वह लेख पश्चिमीय लोगों को ६४ तत्वों के विश्वास से हटाने वाला है। इसी विषय पर एक और पुस्तक में आलोचना कीगई है † जिसका सारांश यह है कि पश्चिमीय सायन्स ने आजतक केवल एक " तेज " भूत का ही पता लगाया है शेष भूतों का उसको ज्ञान नहीं। इनका गम्भीर आशय समझने के लिये प्रत्येक पुरुष को यह समुल्लास ध्यान से पढ़ना चाहिये। वर्त्तमान पश्चिमीय सायन्स यह भी निश्चित नहीं कह सकता कि भूत ६४ ही हैं इससे अधिक नहीं, उसकी यह अनिश्चितदशा बतला रही है कि वह दीपक के प्रकाश में टटोल रहा है। हम जब यूरोप के विद्वानों को सृष्टि के पदार्थों का विवेचन करता हुआ पाते हैं तब यह आशा होती है कि एक दिन उन को यह सत् सिद्धान्त कि "भूत पांच ही हैं" स्वीकार करना पड़ेगा। पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि "मनुष्य के पांच ज्ञानेन्द्रिय इस बात को जतला रहे हैं कि भूत पांच ही हैं।" इसी स्थान पर महर्षि मन और आत्मा का लक्षण बतलाते हुये दार्शनिक गम्भीर सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। जिसने पश्चिमीय सायन्स और फिलासफी को समाप्त करलिया हो, वह इन सूत्रों के समझने में अपने आप को असमर्थ पाता हुआ पं० गुरुदत्त जी के वचनों में सहसा कह उठता है कि " जहां पश्चिमीय सायन्स की समाप्ति होती है वहां वैदिक विज्ञान का आरम्भ है।" कौनसा सूक्ष्म विषय है जिसको ऋषियों ने इन सूत्रों में बद्ध नहीं करदिया, समुद्र को तूम्बी में बन्दकरने की कहावत यहीं पर चरितार्थ होती है। महाभारत युद्ध से पहिले समय की विद्या का अनुभव करने के लिये यह सूत्र दृष्टान्त का काम दे रहे हैं। इस के पश्चात् महर्षि निम्नलिखित पठनपाठनविधि का वर्णन करते हैं, जिससे भलीभांति यह जाना जासकता है कि हमें अपनी सन्तानों को ब्रह्मचर्य्यावस्था में कौन २ से ग्रन्थ पढ़ाने चाहियें। " अब हम पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्र रूप है, माता पिता सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायीके सूत्रों का पाठ, फिर पदच्छेद, फिर समास और अर्थ उदाहरण सहित जो २ सूत्र

* स्टीलर की ए. जे. डेविस विरचित पृ० ५७-८७.

† नेचर्स फ़ायन फोर्सेज बाबू रामप्रसाद एम.ए. मेरठ निवासी विरचित. पृ० ३ ।

आगे पीछे के प्रयोग में लगें, उन का कार्य सब बतलाया जावे। एक बार इसीप्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा कर धातुपाठ अर्थ सहित और दश लकारोंके रूप पढ़ावें। पाणिनि ऋषि ने एक सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धोंकी विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण पढ़ाकर पुनः दूसरीबार शंकासमाधान पूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीयावृत्ति करावें। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावें डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़कर तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर अन्य शास्त्रों को शीघ्र और सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी और मनोरमा आदि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं होसकता। महर्षि लोगों का आशय जहांतक होसके सुगम अर्थात् जिसके ग्रहण करने में थोड़ा समय लगे इस प्रकार का होता है। विपरीत इस के क्षुद्राशय लोगों का आशय ऐसा होता है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी। जैसे पहाड़का खोदना और कौड़ी का पाना और आर्ष ग्रन्थोंका पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल्य रत्नों का पाना।

व्याकरण को पढ़कर यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छै या आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें, अन्य नास्तिक कृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्य्यकृत छन्दोग्रन्थ को चार महीने में सीख सकते हैं, वृत्तरत्नाकर आदि क्षुद्र ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति, बाल्मीकीयरामायण और महाभारत के विदुरनीति आदि अच्छे २ प्रकरण जिन से दुष्ट व्यसन दूर हों, एक वर्ष के भीतर पढ़लें। तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त इन षट् दर्शनों को जहांतक बनसके ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्या युक्त पढ़ें पढ़ावें। परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दस उपनिषदों को अवश्य पढ़लेवें ये सब दो वर्ष के भीतर पढ़लेवें। पश्चात् छै वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ के सहित चारों वेदों को स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और क्रिया सहित पढ़ना योग्य है। इस प्रकार वेदोंको पढ़कर आयुर्वेद जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषिप्रणीत वैद्यकशास्त्र है उस को अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञान पूर्वक चार वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राज सम्बन्धी काम करना

है, इसके दो भेद हैं एक राजसम्बन्धी दूसरे प्रजासम्बन्धी । राजकार्य में सब सेना के अध्यक्ष शस्त्र अस्त्र विद्या नाना प्रकार के व्यूहों का रचना जो कि युद्ध के समय क्रिया करनी होती है उस को यथावत् सीखें । इस राजविद्याको दो वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं, उस में स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम, तान आदि वादित्र वादन पूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भडुवे, वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के समान व्यर्थ आलाप कभी न करें । अर्थवेद कि जिस को शिल्पविद्या कहते हैं, उस को पदार्थ, गुण, विज्ञान, क्रिया, कौशल, नानाविध पदार्थों के निर्माण पूर्वक सीखें । तत्पश्चात् दो वर्ष में ज्योतिःशास्त्र सूर्य्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों को जिन में बीजगणित, अङ्कगणित, भूगोल, खगोल, और भूगर्भविद्या है उस को यथावत् सीखें । तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यंत्रकला आदि को सीखें । परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्तादि विधायक फलित ग्रन्थ हैं उनको कल्पित समझ कर कभी न पढ़ें न पढ़ावें । ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ाने वाले करें कि जिससे २० या २१ वर्ष के भीतर समग्र विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त होकर मनुष्यलोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें । जितनी विद्या इस रीति से २० या २१ वर्ष में आसकती है उतनी अन्य प्रकार से १०० शतवर्ष में भी नहीं आसकती ।

इस समुल्लास के अन्त में इस प्रश्न का कि क्या स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ना चाहिये युक्ति और प्रमाण से समीचीन उत्तर देते हुये महर्षि निश्चय कराते हैं कि सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है ।

चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहस्थाश्रम का विषय है ।

स्वयंवर की प्राचीन मर्यादानुसार दूर देशों में विवाह करने के लाभ दर्शाते हुवे आठ प्रकार के * विवाहों का वर्णन महर्षि मनुके वचनानुसार करते हैं । बीच में ही वर्णव्यवस्था का गुण कर्मानुसार होना दर्शाते हुये, ब्राह्मण को पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना लेना बतलाते और फिर इनकी व्याख्या करने के पश्चात् लिखते हैं कि यह १५ कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें । प्रजारक्षा, दान, धृति आदि ११ क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण बतलाये हैं,

* मानवीय प्रकृति का पूर्ण अनुभव करने पर महर्षियों ने आठ प्रकार के विवाह नियत किये थे. विद्वान् एन्ड्रोजैक्सन डेविसने हारमोनिया के चौथे भाग में सात प्रकार के विवाहोंका आर्यसिद्धान्तानुकूल होना वर्णन किया है। अत्यन्त समीप होने से आठवें को भी सातवेंके अन्तर्गत हीं समझ लेना चाहिये ।

इसी प्रकार वैश्य और शूद्र के गुण कर्म का पृथक् २ वर्णन किया है। आजकल के कई विद्वान् जोश में आकर प्रत्येक मनुष्य के लिये हल चलाना (जोकि वैश्य का कर्म है) आवश्यक बतलाते हुये भूल करते हैं। प्रोफेसर "फ़िसक"* का कथन है कि विद्वानों को जीविका की चिन्ता से मुक्त होना चाहिये। डार्विन के विषय में लिखा है कि उस को जीविका कमाने की चिन्ता न थी, वह अपनी ग्रन्थरचना में लगा रहता था। भूगर्भविद्या (geology) का प्रचारक "लायल" भी रोटी कमाने की चिन्ता से मुक्त होकर वैज्ञानिक पर्यालोचन में तत्पर रहता था। आज संसार इस देश के वर्ण विभाग और गुण कर्म विभाग की प्रशंसा कर रहा है और अपने वर्ताव से उन लोगों की भूल दिखा रहा है जो कि एक ही वर्ण में मनुष्यजाति को रखना चाहते हैं।

महर्षि ने इस समुल्लास में स्त्री पुरुष के परस्पर व्यवहार की रीति को वर्णन करते हुये प्राचीन आर्य्य परिवार का आदर्श दिखा दिया है। साथ ही गृहस्थ के पांच नित्यकर्मों का (जिन को कि पंचयज्ञ कहते हैं) वर्णन किया है। ठगों और पाखण्डियों से सावधान रहने की शिक्षा करते हुये गृहस्थों को शुभ गुणों के धारण करने की आवश्यकता जतलाई है। जहां उन्हों ने गृहाश्रम के मूल विवाह का आदर्श सब के सामने रक्खा है वहां आपत्काल में द्विजों के लिये नियोग का वर्णन किया है। यह नियोग की आज्ञा वेदमन्त्रों से दिखाते हुये उस की विधि स्मृतियों से बतलाई है। जो लोग वर्तमान अवस्था में (जब कि वर्णाश्रम धर्म का अभाव है) नियोग का प्रचलित होना भ्रम से माने हुये हैं उनको अनेक प्रकार के संशय (जिनका मूल किसी युक्ति वा प्रमाण पर नहीं किन्तु उनकी भ्रान्त मति वा रूचि पर निर्भर है) उत्पन्न होरहे हैं। परन्तु जो लोग समझते हैं कि वर्णाश्रम धर्म के पुनः प्रचलित होने पर नियोग को प्रचार देना चाहिये उनको यह आपत्काल का धर्म जिस का अभिप्राय पापको दूर करने का है अत्यन्त ही बुद्धिसम्मत और उचित मालूम देता है। सच तो यह है कि लोग आज विवाह के उद्देश को ही नहीं समझ सकते। उन के रसिकमस्तिष्क में विवाह विषयासक्ति का एक साधन है, जब वे विवाह को ही विषयासक्ति का साधन मानते हैं तो उनसे आशा करना कि वे नियोग की उत्तमता को समझ सकें, हमारी भूल है। कमलवाय वाले को सारा संसार ही पीला दीखता है, पापी हृदय शुद्ध नियमों को पापयुक्त ही अनुभव करते हैं। आपत्काल की

* चार्लस डार्विन हिज़ लाइफ़ एण्ड वर्क पृ० २६ हम्बोल्ट पुस्तकालय प्रकाशित।

दशा में आर्य्य लोग नियोग किया करते थे। इतिहास बतलाता है कि पाण्डुराजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने नियोग किया था, यही नहीं किन्तु महर्षि व्यास ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मरजाने के पश्चात् उनकी स्त्रियों के साथ नियोग किया था। जैसे निद्रा से आरोग्यता का अनुभव किया जासकता है और स्वप्न से मन की दशा को जांच सकते हैं वैसे ही नियोग समाज की सच्चरित्रता को प्रकट करता है। नियोग के महत्व को वही समझ सकते हैं जोकि निष्पक्ष होकर वर्तमान विवाह के वेष में विषयासक्ति का अनुभव कर सकते हैं। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ऋतुकाल में स्त्रीसङ्ग करना विवाह और इस के विपरीत सब कुचेष्टा, विषयासक्ति वा व्यभिचार है चाहे वह विवाह के वेष में क्यों न की जावे। ब्रह्मचर्य्य की जड़ पर कुल्हाड़ा रखने वाले बनावट और दिखावट के रोग में फंसे हुये लोग यदि ऋषियों के उन वेदोक्त कार्य्यों को जोकि पापनिवृत्ति के लिये हैं उलटा न समझें तो कौन समझे। जब संसार बनावट के रोग से मुक्त होकर विवाह के उच्च आदर्श को धारण करेगा, * उसी दिन उनको आपत्काल की दशा में नियोग की आवश्यकता सूझेगी और फिर प्रतीत होगा कि ऋषियों के काम सृष्टिक्रम पर निर्भर होने के कारण छिद्र-रहित हैं।

पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का वर्णन है।

वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म के अभाव से जो दुर्गति इस समय यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों की हो रही है उसको वर्णन करने के लिये एक अलग पुस्तक चाहिये। उसको वर्णन करने की अपेक्षा हम फ़िलासफर "हैनरी जार्ज" से लेकर "एडवर्ड विलयम" तक कई ग्रन्थरचयिताओं के लेखों से भले प्रकार जान सकते हैं। सोशियलइज्म़ (सामाजिकधर्म) के प्रचारक अपने लगातार उद्योग से उत्तम सामाजिक अवस्था के लिये हाथ पांव मार रहे हैं। "रिची" से विद्वान् वीरता के साथ बतला रहे हैं कि समाज की दशा को उत्तम बनाने के लिये † डार्विन का सिद्धान्त बिलकुल निकम्मा है। दरिद्रता वर्तमान पश्चिमीय सभ्यता के साथ ऐसी लगी हुई है जैसे कि वृक्ष के साथ पत्ते लगे हुये होते हैं। पश्चिम में वर्णाश्रम के स्वप्न देखने

---

* डाक्टर ट्राल एम्. डी. और लोईकोन जैसे अनेक डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति है।

† डार्विनइज़्म एण्ड पोलिटिक्स डेवेड, जी. रिची एम. ए. विरचित और हम्बोट पुस्तकालय प्रकाशित।

वाले आये दिन लोगों को आशा दिला रहे हैं कि पृथिवी पर वह दिन आवेगा जब कि भारतीय वर्णाश्रम धर्म के अनुसार संसार अपना आचार व्यवहार करेगा और प्रत्येक अपने योग्य काम करने से एक दूसरे की सच्ची सहायता करता हुआ दिखाई देगा और मनुष्य इस भूमि को सुख विशेष के कारण स्वर्ग कहेंगे। परन्तु इन स्वप्नों के देखने वालों को ऋषियों के वर्णाश्रम का पता तक नहीं।

हर्ष की बात है कि इन स्वप्नों को जाग्रत में लाने वाला, यूरोप और अमेरिका के सामाजिक संशोधन करने वालों को मंगलसमाचार देनेवाला, जाति और समय का यथोचित विभाग करने वाला वर्णाश्रम रूप सिद्धान्त महर्षि दयानन्द के उपकार से आज प्रकट होगया है। महर्षि ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य्य और चौथे में गृहस्थाश्रम का वर्णन किया था। इस पांचवें समुल्लास में जीवन के शेष भागों का (जिनको कि वानप्रस्थ और संन्यास कहते हैं) वर्णन किया है। जल में रहकर कम्बल के समान जल से निर्लेप रहने का उपाय ऋषियों ने ही इस आश्रम व्यवस्था के बल से हस्तगत किया था। संसार में रहकर संसार को परमार्थ का साधन बनाना ऋषियों का ही काम था। आज जहां मनुष्य को मृत्युसमय पर्य्यन्त प्रायः रोटी कमाने की चिन्ता लगी रहती है, वहां सब प्रकार के भय को दूर करते हुये वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण ही समाज से यथोचित पुरस्कार (पेन्शन) पाये हुये प्राचीन आर्य लोग अपनी आयु का अर्द्धभाग परमार्थ के लिये लगाते थे। लोकैषणा को त्यागने वाले पुरुष ही वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं और इस तीसरे आश्रम में तप आदि उत्तम साधनों के द्वारा आत्मिक शक्तियों को बढ़ाते हुये उस सब से अन्तिम और सब से बड़े आश्रम के कि (जिस में लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा इन तीनों एषणाओं का त्याग करना पड़ता है) अधिकारी बनते हैं। इस समुल्लास को पढ़ते हुये शिष्य के ज्ञाननेत्रों के सन्मुख ऋषियों का समय आजाता है जिस समय में कि लोग ब्रह्मचर्य्य और गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुये वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में मुक्ति के लाभार्थ प्रविष्ट होते थे।

षष्ठ समुल्लास में राजधर्म का वर्णन है।

इस समुल्लास के आदि में महर्षि विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा और राजार्य्यसभा का वर्णन करते हुये राजार्य्यसभा के सभापति का नाम राजा बतलाते हैं। प्राचीन समय में जब कि शूद्र गुणकर्म की उत्कृष्टता से ब्राह्मण और ब्राह्मण गुणक-

र्म की हीनता से शूद्र होजाता था यह समझना कि सभापति या राजा का पुत्र ही राजा बनाया जाता होगा सर्वथा भ्रम है। इक्ष्वाकु राजा हुआ तो इस लिये नहीं कि वह राजकुल में उत्पन्न हुआ था अथवा उस ने बलात्कार से राज्य प्राप्त किया हो किन्तु सारी प्रजा ने उसे उसकी योग्यतानुकूल राजसभा में अपना अध्यक्ष बनाया।

राजा सगर सुशील और नीतिमान् था इस राजा का "असमंजस" नामक पुत्र बड़ा दुष्ट और मूर्ख था उसने एक दरिद्र के बालक को पानी में फेंक दिया। इस अपराध का न्याय राजार्य्यसभा के सन्मुख होने पर राजा ने उसे दण्ड दिया और उसे एक कारागार में जो निर्जन वन में था रक्खा। इसी का नाम न्याय है * इस समुल्लास में दण्ड, राजकर्त्तव्य, राजाओं के व्यसन, मंत्री, दूत आदि राजपुरुषोंके लक्षण, युद्ध, कर, न्याय, साक्षी, अपराधियों का ताड़न आदि अनेक विषयोंको महर्षि मनु के प्रमाणानुसार वर्णन किया है। ईरान, मिस्र, यूनान और रोम ने राजधर्म की वेदोक्त शिक्षा मनुस्मृति से ही ग्रहण की थी जिसका कि वर्णन इस समुल्लास में भर रहा है। इस समुल्लास की समाप्ति पर महर्षि निम्नलिखित प्रश्नोत्तर लिखते हैं (प्रश्न) संस्कृतविद्या में पूरी राजनीति है वा अधूरी ? (उत्तर) पूरी है क्योंकि जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी यह सब संस्कृत विद्या से ही लीगई है।

सप्तम समुल्लास में ईश्वर और वेद का विषय है।

एक सच्चिदानन्द ईश्वर को वेदोक्त प्रमाणों से सिद्ध करते हुये उसके गुणों की अत्युत्तम व्याख्या करने से लोगों के संशय निवारण करनेके पश्चात् महर्षि स्तुति प्रार्थना व उपासना का भेद और विधि बतलाते हैं। ईसाई ब्रह्म आदि लोग पाठमयी प्रार्थना से ईश्वर प्राप्ति भ्रम से मान रहे हैं, परन्तु महर्षिने दर्शा दिया है कि सच्ची प्रार्थना को वेदमंत्रों ने संकल्प के नामसे बोधन कराया है और संकल्प या वैदिक-प्रार्थना शुभगुणों के धारण करने की इच्छा का नाम है केवल मुख से उच्चारण करने का नाम प्रार्थना नहीं। इसबात को दर्शाने के लिये वह लिखते हैं कि "मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उस का वैसा ही अनुष्ठान व आचरण भी करना चाहिये"। प्रार्थना के पश्चात् अष्टाङ्ग योग की रीति से उपासना का वर्णन किया है। इसी समुल्लास में अद्वैतवाद का प्रबल खण्डन करते हुये जीव और ब्रह्म के स्वरूप का भिन्न २ निरूपण किया है जिस के पढ़ने से अद्वैतवाद का शब्दमय जाल

* व्याख्यान नं० ८ पृ० ८।

तोड़ने के लिये मनुष्य समर्थ होजाता है। अन्त में शब्दार्थ सम्बन्ध रूप अनादि वेद के ईश्वरोक्त होने पर युक्ति और प्रमाण देते हुये वेदोत्पत्ति का वर्णन किया है। निर्भ्रान्त वचनों के मूल्यवान् रत्न युक्ति और प्रमाण के स्वरूप में यहां भी चमकते हुये मनुष्य के मन को वेदज्योति से प्रकाशित करते हुये आनन्द का मार्ग दर्शा रहे हैं। पुराणों की मिथ्या कल्पना और अद्वैतवाद का भ्रमजाल इस समुल्लास के वज्रप्रहार से छिन्नभिन्न होते हुये "सत्यंजयति नानृतम्" इस आर्षवचन की सत्यता को दर्शा रहे हैं।

अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का वर्णन है।

वेदोक्त प्रमाणों से ईश्वर को उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकर्ता सिद्ध करते और ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन पदार्थों को अनादि दर्शाते हुये नास्तिकों की अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रबल खण्डन करते हैं। आदि सृष्टि में मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये सायन्स के अनेक विज्ञानसम्बन्धी प्रश्नों का समाधान कर दिया है। रैव्यूलेशन (revolution) पश्चिमीय अन्धकार इस समुल्लास के सामने कपूर होता हुआ दिखाई देरहा है। यूरोप के विद्वान् सृष्ट्युत्पत्ति के विषय को जानने के लिये अन्धेरे में हाथ पांव माररहे हैं, किन्तु यह समुल्लास अन्धकार को निवारण करता हुआ बुद्धि को वैदिक ज्योति का निर्भ्रान्त तेज दर्शा रहा है। तिब्बत को मनुष्य जाति का पहिला निवासस्थान * बतलाते हुए महर्षि "आर्य्य" शब्द का निरूपण करते हैं और आर्य्यावर्त्त की सीमा मनुस्मृति से बतलाते हुए वह पृथिवी के भ्रमण और आकर्षण का वेद से निरूपण करते हैं। ईश्वर को ब्रह्माण्ड का आधार दर्शाने के पश्चात् वह सूर्य चन्द्रादि लोकों में मनुष्यादि सृष्टि का होना बतलाते हुए ईश्वर की रचना का प्रयोजन दर्शा रहे और बड़े से बड़े सूक्ष्म प्रश्न इन गूढ़ विषयों के सम्बन्ध में स्वयं उठाकर फिर उनका पर्य्याप्त उत्तर देते हुए वेद शास्त्रों की महिमा का बोधन करा रहे हैं।

नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या और बन्ध, मोक्ष का वर्णन है।

पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि "यदि सत्यार्थप्रकाश का मूल्य १०००) रु० होता तो भी मैं उसको अपनी जायदाद बेचकर खरीदता। जिधर देखता हूं उधर ही

* हारमोनिया भाग ५ पृ० ३२८ में प्रोफेसर "ओकन" मानता है कि पहिले सृष्टि वहां हुई थी जहां अब सब से ऊंचा पहाड़ है और स्वीकार करता है कि निसन्देह हिमालय के समीप।

सत्यार्थप्रकाश में वह २ विद्या की बातें भरी हुई पड़ी हैं जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित होजाती है। मैंने ग्यारह बार सत्यार्थप्रकाश को विचारपूर्वक पढ़ा है और जब २ पढ़ा नये से नये अर्थों का भान मेरे मन में हुआ है। उक्त पं० जी इस समुल्लास को पढ़ते हुए सदा महर्षि के योगबल की प्रशंसा किया करते और कहा करते थे कि विना पूर्ण योगी के कौन निर्भ्रान्त रीति से ऐसा गूढ़ कठिन और महान् सूक्ष्मविषय लिखसकता है।

इस समुल्लास में विद्या अविद्या की व्याख्या करते हुए महर्षि मनुष्यजन्म के परमोद्देश्य मुक्ति का वर्णन करते हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों की विवेचना जिस योगबल से महर्षि ने दर्शाई है उसको समझना और उसके अनुसार वर्ताव करना भी योगियों ही का काम है। मुक्ति का वर्णन करते हुए योगिराज ऋग्वेद के एक मंत्र के प्रमाण से लिखते हैं कि मुक्त जीव महाकल्प के पश्चात् मुक्ति से लौटकर संसार में आते हैं प्रबल युक्तियें इसकी पुष्टि में देते हुए पूर्ण रीति पर निश्चय कराते हैं। यद्यपि यह बात प्रायः मतावलम्बियों को आश्चर्य में डालने वाली है तथापि बुद्धिमान् पुरुष * इसकी उत्तमता की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते। इस समुल्लास में आवागमन का वर्णन प्रबल युक्तियों द्वारा करते हुए निश्चय करा दिया है कि जन्म अनेक हैं और अन्त में बड़ी योग्यता से वृक्ष, कृमि, कीट, पशु, मनुष्य आदि नाना योनियों का वर्णन किया है जिनको कि जीव कर्म फल भोग के लिये प्राप्त होता है।

दशम समुल्लास में आचार अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन है।

"मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रिय चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराते हैं उनको रोकने में प्रयत्न करै, जैसे घोड़े को सारथि रोककर शुद्ध मार्ग में चलाता है इसी प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटा कर धर्ममार्ग में सदा चलावे"...... "माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना पूजा कहलाती है और जिस २ कर्म से जगत् का उपकार हो वह२ कर्म करना और हानिकारक छोड़देना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक

* गार्नेट एल, एल, डी, टामस कारलायल के जीवनचरित्र के पृष्ठ १७३ पर लिखता है कि कारलायल उन्नति को चक्र में घूमती हुई मानता था नकि एक सीधी रेखा के आगे बढ़ने के समान।

लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करें। आप्त जो सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है"। (प्रश्न) आर्य्यावर्त निवासियों का स्वदेश से भिन्न अन्य देशों में जाने से आचार नष्ट होजाता है वा नहीं? (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषण आदि आचार करना है वह जहां कहीं करेगा, आचार और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार से भ्रष्ट कहावेगा। "पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको देश देशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो यह बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फंसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट होजावेगी। इसलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जासकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें। *

एक स्थल पर महर्षि लिखते हैं कि "मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं से ही पूरित है उनके हाथ का न खावें।" गाय, बकरी आदि पशुओं के पालने के लाभ उत्तमता से वर्णन करते हुये लिखते हैं कि "इस से मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से ... पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, भेड़, गधे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं, इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा।"

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छलकपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसाधर्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोग करना भक्ष्य है।

उत्तरार्द्ध।

सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध में वेदविरुद्ध पुरानी, जैनी, किरानी और कुरानी (जोकि संसार भर के मतों के मूल हैं) के खण्डन का विषय है।

* मांस मनुष्य का स्वाभाविक और उपयोगी भक्ष्य नहीं इस बात को डाक्टर अनाकिङ्गस फ़ोर्ड एम, डी, ने अपने ग्रन्थ "परफ़ेक्ट वे आफडायट" में सिद्ध किया है, जिसमें ट्राल निकलसन आदि अनेक पाश्चिमीय डाक्टर इस बात की पुष्टि कररहे हैं कि मांस वीरता और बल देने वाला पदार्थ नहीं।

एकादश समुल्लास में आर्यावर्तीय मत मतान्तरों का वर्णन है ॥

वाममार्ग, नवीन वेदान्त, भस्मरुद्राक्ष तिलक, मूर्तिपूजा, गयाश्राद्ध, जगन्नाथ, तीर्थ, रामेश्वर, कालियाकन्त, सोमनाथ, द्वारिका, ज्वालामुखी, हरिद्वार, बद्रीनारायण, गंगास्नान, नामस्मरण, गुरुमाहात्म्य, अठारहपुराण, सूर्यादिग्रहपूजा, एकादश्यादि व्रत, शैवमत, शाक्तमत, कबीरपन्थ, नानकपन्थ, दादूपन्थ, रामसनेहपिन्थ, गोकुलिये गोसाईं, स्वामीनारायणमत, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज आदि अनेक विषयों पर लिखते हुये महर्षि ने युक्ति और प्रमाण के अद्भुत बल से इन सब मत मतान्तरों का जिस उत्तमता से खण्डन किया है वह गिरी हुई भारत सन्तान के पढ़ने योग्य है। जिन रोगों ने आर्यावर्त को गिराते२ वर्तमान दुर्दशा को पहुंचादिया है उनरोगों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करते हुये महर्षि इस समुल्लास में पतित आर्यावर्त को वैदिक सिद्धान्तों के बल से उठने का मार्ग दर्शा रहे हैं।

द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैन मत का वर्णन है।

प्रकृतिपूजक चारवाकों के हेतुओं का खण्डन करते हुये, सृष्टिकर्ता परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने के पश्चात् बौद्धमत का खण्डन किया है, फिर जैनमत की पोल दर्शाते हुये आस्तिक और नास्तिक का संवाद प्रश्नोत्तर की रीति पर लिखा है। इस संवाद को पढ़कर भला कौन मनुष्य है जो ईश्वर से विमुख रहसक्ता है? जैनियों की मुक्ति उनके साधुओं के लक्षण और उनकी विद्यारहित बातों को उनके ग्रन्थों के प्रमाणों से ही दर्शाया है। यूरोप के वर्तमान अनीश्वरवादी प्रसिद्ध नास्तिकों के तर्क और युक्तियों का समीचीन उत्तर इसी समुल्लास में सविस्तर आ जाता है। चीनआदि देशों में बौद्धमत, भारतवर्षमें जैनमत और यूरोप आदि देशोंमें चारवाक और नास्तिकपन पाया जाता है। गम्भीरदृष्टि से देखें तो ये सब एक नास्तिकपन के ही नानारूप हैं और इस भयंकर नास्तिकपन से बचाने के लिये महर्षि का पुरुषार्थ इस समुल्लास में विद्यमान है।

त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का निरूपण है।

बाइबिल की परीक्षा युक्ति बल से करते हुये महर्षि इस परीक्षा के अन्त में लिखते हैं कि "अब कहांतक लिखें इनकी बाइबिल में लाखों बातें खण्डनीय हैं यह तो थोड़ासा चिन्हमात्र ईसाइयों की धर्मपुस्तक का दिखलाया है, इतनेही से बुद्धिमान्

लोग बहुत समझलेंगे, थोड़ीसी बातों को छोड़ शेष सब झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसाही बाइबिल पुस्तक भी माननीय नहीं होसकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में ग्रहण होजाता है। "

चतुर्दश समुल्लास में यवनमत का निरूपण है।

इस समुल्लास में महर्षि कुरान की शिक्षा की प्रमाणों से परीक्षा करते हुए समाप्ति पर लिखते हैं कि "अब इस कुरान के विषय को लिखकर बुद्धिमानों के सन्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है? मुझ से पूछो तो यह पुस्तक न ईश्वर न विद्वान् का बनाया और न विद्या का होसकता है। यह तो बहुत थोड़ासा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गंवावें, जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि शास्त्रों के अनुकूल होने से जैसे मुझ को ग्राह्य है, वैसे ही अन्य भी मत के हठ और पक्षपात से रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके विना जो कुछ उसमें है, वह सब अविद्या, भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शान्तिभङ्ग कराकर उपद्रव मचा मनुष्यों में विरोध फैला परस्पर दुःख अवनति करने वाला विषय है और पुनरुक्ति दोष का तो कुरान मानो भण्डार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करें कि सब से सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मत मतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मत होकर सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।

मन्तव्यामन्तव्य विषय।

पहिली वार के छपे हुए सत्यार्थप्रकाश में वैदिकसिद्धान्त के विरुद्ध जो लेख शोधकों की भूल से छपगया था, वह स्वामीजी का सिद्धान्त नहीं था, क्योंकि स्वामीजी ने उसका प्रतिवाद संवत् १९३५ के छपे ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के टाइटिल पेजों पर निम्नलिखित विज्ञापन देकर किया है:—

विज्ञापन।

" सबको विदित हो कि जो २ बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो २ मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र और मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से

लिखे हैं, वे उन २ ग्रन्थों के मतों को जताने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षीवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो २ बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूं क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है और जो २ ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में "पितर आदिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मरगये हैं उनका तो अवश्य करे।" तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ "मरे हुये पितरों का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापागया है **सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपगया है**। उसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि **जीवितों** की श्राद्ध से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परमधर्म है और जो २ मरगये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते माता पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेदमंत्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेकर १२ अङ्क के पृ० २६७ तक छपा है, वहां देखलेना।"

उक्त विज्ञापन में जो शब्द स्थूलाक्षर हैं उनको पाठक विशेष ध्यानपूर्वक पढ़ें। यह भी विदित हो कि भूमिका का ग्यारहवां अङ्क संवत् १९३४ में इस विज्ञापन देने के पूर्व छप चुका था और उस के पृष्ठ २५१ पर स्वामीजी ने प्रमाणों के अतिरिक्त मृतकों के श्राद्ध का सर्वथा खण्डन और जीवित पितरों के श्राद्ध का मण्डन किया है। महर्षि के समस्त ग्रन्थ स्पष्ट शब्दों में पुकार कर कहरहे हैं कि वह कोई भी वेद और युक्तिविरुद्ध सिद्धान्त नहीं मानते थे। परन्तु दूरदर्शिता से जिनको कि वह मानते थे लिख भी गये हैं। इन सिद्धान्तों को लिखने के पश्चात् स्वामीजी इन शब्दों में सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति करते हैं:—

"सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त होजावै जिस से सब लोग सहज में धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

वेदभाष्य पर एक दृष्टि ।

जैसे साधन का साध्य से सम्बन्ध है, जैसे सीढ़ी घर की छतपर पहुंचाने वाली है, वैसे सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तक पहुंचने का साधन है, वेदभाष्यकी आवश्यकता को दर्शाना सत्यार्थप्रकाश का काम है। वह पुरुष जो मत मतान्तरों के भ्रम जाल से निकल कर वैदिकज्योति की महिमा सत्यार्थप्रकाशमें अनुभव करलेता है वह वेदभाष्य के प्रकाश को चाहता है। वहभूख जो सत्यार्थप्रकाशके अवलोकनसे उत्पन्न होती है उसकी तृप्ति करना वेदभाष्य का काम है। सत्यार्थप्रकाश यदि मार्ग है तो वेदभाष्य एक आश्रम है जहां बटोही जाना चाहता है। जिस प्रकार प्रत्येक पुस्तक की भूमिका होती है उसी प्रकार चारों वेदों के भाष्य की एक भूमिका ३७६ पृष्ठों की पृथक् पुस्तकाकार महर्षि ने तैय्यार करके छपवाई और उसका नाम ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका रक्खा। इस भूमिका में जो २ संस्कृत में लेख है वह महर्षि का और जो उसका भाषानुवाद है वह अनुवादकों का किया हुवा है। इस अनुवाद में बहुत सी त्रुटियां रहगई हैं, सम्पादक सद्धर्मप्रचारक जालन्धर के कथनानुसार पृ० २०५ पर जो संस्कृत महर्षि ने लिखी है उसका अनुवाद पृ० २०६ पर जो भाषामें किया गया है वह संस्कृत से मिलता नहीं है।

महर्षि ने इस भूमिका में पहिले इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि वेद क्या है? और वेदोत्पत्ति का महान् सूक्ष्म विषय सारगर्भित रीति से निरूपण करने के पश्चात् वेदमन्त्रोंके प्रमाणों से वेदोंके विषयोंको दर्शातेहुये वेदोंका सच्चा महत्व बोधन कराया है। ब्रह्मविद्या, धर्म, सृष्ट्युत्पत्ति, पृथिव्यादिलोकभ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्यप्रकाशक, गणितविद्या, स्तुति प्रार्थना याचना समर्पण, उपासना, योग, मुक्ति, नौका विमान तार आदि विद्या, वैद्यकशास्त्र, पुनर्जन्म, विवाह, नियोग, राजप्रजाधर्म, वर्णाश्रम, पंचमहायज्ञ का मूलवेद में दर्शाने के पश्चात् वह प्रामाण्याप्रामाण्य ग्रन्थों का विषय लिखते हुये, केवल वेद को सूर्यवत् स्वतःप्रमाण और शेष सब ग्रन्थों को परतःप्रमाण ठहराते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि वेद सूर्य्य के जानने के लिये किसी और ग्रन्थरूप दीपक की आवश्यकता नहीं, परन्तु अन्य ग्रन्थों को प्रामाणिक मानने के लिये उनका वेदानुकूल होना आवश्यक है और जिस प्रकार विष संयुक्त अन्न को कोई नहीं खाता उसी प्रकार अप्रामाणिक ग्रन्थों को जिन में कि असत्य का विष मिल रहा है अवश्य त्यागने के लिये महर्षि उपदेश करते हैं। फिर निदर्शन की रीति पर उन वैदिक अलंकारों का वर्णन करते हैं जिनको कि न समझकर इन अलंकार युक्त मन्त्रों के रूढि (कल्पित) अर्थ लेने वाले पौराणिक

लोगों ने मिथ्या कथा रचली हैं। अतः पश्चात् वेदों के पढ़ने सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र अर्थात् ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र पर्य्यन्त बतलाते हुये निम्नलिखित प्रश्नोत्तर वेदभाष्य के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

(प्रश्न) क्योंजी जो तुम यह वेदों का भाष्य बनाते हो सो पूर्वाचार्यों के भाष्य के समान बनाते हो वा नवीन ? जो पूर्वरचित भाष्यों के समान है तब तो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहिले ही से बने बनाये हैं और जो नवीन बनाते हो तो उस को कोई भी न मानेगा, क्योंकि जो विना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है, यह बात कब ठीक हो सकती है ? (उत्तर) यह भाष्य प्राचीन आर्य्यों के भाष्य के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण, उव्वट, सायण और महीधरादि ने भाष्य बनाये हैं वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता, क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी और जो यह मेरा भाष्य बनता है, सो तो वेद, वेदाङ्ग, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार होता है क्योंकि जो वेद के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है, यही इसमें अपूर्वता है। क्योंकि जो प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में वेदों से भिन्न शास्त्र गिनआये हैं वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं। वैसे ही ११२७ वेदों की शाखा भी उनके व्याख्यान ही हैं उन सब ग्रन्थों के प्रमाण युक्त यह भाष्य बनाया जाता है और दूसरा इसके अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो २ भाष्य उव्वट, सायण, महीधरादि ने बनाये हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेद व्याख्यानों से विरुद्ध हैं, तथा जो २ इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंगरेज़ी, जर्मन, दक्षिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेद के व्याख्यान बने हैं, वे भी अशुद्ध हैं। जैसे देखो सायणाचार्य्य ने वेदोंके श्रेष्ठ अर्थों को न जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड काही प्रतिपादन करते हैं, यह उनकी बात मिथ्या है। इसके उत्तर में जैसा कुछ इसी भूमिका के पूर्व प्रकरणों में संक्षेप से लिख चुके हैं सो देख लेना......... ऐसे ही सायणने और भी बहुत मन्त्रों की व्याख्या में शब्दों के अर्थ उलटे किये हैं ....उसी प्रकार महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से अत्यन्त विरुद्ध व्याख्यान किया है।

जब इन्हीं लोगों के व्याख्यान अशुद्ध हैं, तब यूरोपखण्डनिवासी लोगों ने जो उन्हीं की सहायता लेकर अपनी देश भाषा में वेदों के व्याख्यान किये हैं, उनके अनर्थ का तो क्या ही कहना है ! तथा जिन्हों ने उन्हीं के अनुसार व्याख्यान किये हैं

इन विरुद्ध व्याख्यानों से कुछ लाभ तो नहीं दीख पड़ता किन्तु वेदों के सत्यार्थ की हानि प्रत्यक्ष ही होती है । परन्तु जिस समय चारोंवेदों का भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानों के दृष्टिगोचर होगा तब सब किसी को उत्तम विद्यापुस्तक वेद का परमेश्वर रचित होना भूगोल भर में विदित होजावेगा और यह भी प्रकट होजावेगा कि ईश्वरकृत सत्यपुस्तक वेद ही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है ? ऐसा निश्चय जान कर सब मनुष्यों की वेदों में परमप्रीति होगी इत्यादि अनेक उत्तम प्रयोजन इस वेदभाष्य के बनाने में जान लेना "।

" इस भाष्य में पद पद का अर्थ पृथक् २ क्रम से लिखा जावेगा कि जिस से नवीन टीकाकारोंके लेख से जो वेदों में अनेक दोषों की कल्पना कीगई हैं उन सबकी निवृत्ति होकर उन के सत्य अर्थों का प्रकाश होजायगा । तथा जो २ सायण, माधव, महीधर और अंगरेज़ी वा अन्य भाषा में उल्थे वा भाष्य किये जाते वा किये गये हैं तथा जो २ देशान्तर भाषाओं में टीकायें हैं उन अनर्थ व्याख्यानों का निवारण होकर मनुष्यों को वेदों के सत्य अर्थों के देखनेसे अत्यन्त सुख लाभ पहुंचेगा । क्योंकि विना सत्यार्थप्रकाश के देखे मनुष्यों की भ्रमनिवृत्ति कदापि नहीं हो सकती । जैसे प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में सत् और असत् कथाओं के देखनेसे भ्रम की निवृत्ति होसकती है ऐसे ही यहां भी समझ लेना चाहिये, इत्यादि प्रयोजनों के लिये इस वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ किया है । "

फिर महर्षि बतलाते हैं कि " वेदों के चार भाग भिन्न २ विद्याओं के कारण हैं । ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है जिससे उनमें प्रीति बढ़कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त होसके......तथा यजुर्वेद में क्रियाकाण्ड का विधान लिखा है सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् होसकती है ...... तथा सामवेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है, इसलिये उनके चार भाग किये हैं । निरुक्त के प्रमाणों से वेदमंत्रों की प्रयोगशैली वतलाते हुये गानविद्या सम्बन्धी वैदिकस्वर का वर्णन किया है, फिर वैदिकव्याकरण के उन नियमों को जिनसे कि वेदमंत्रोंके अर्थ जानने में विशेषसहायता मिलती है प्रमाण पूर्वक दर्शाते हैं । इसके आगे वैदिक अलंकारोंका वर्णन है फिर इस वेदभाष्यभूमिका की समाप्ति करते हुये अन्त में यह वचन लिखते हैं:—

" यह भूमिका जो वेदों के प्रयोजन अर्थात् वेद किस लिये और किसने बनाये उन में क्या २ विषय हैं इत्यादि बातों की अच्छी प्रकार प्राप्ति कराने वाली है, इस

को लोग ठीक२ परिश्रम से पढ़ें और विचारेंगे उनको व्यवहार और परमार्थ का प्रकाश, संसार में मान और कामना सिद्धि अवश्य होगी । इस प्रकार जो निर्मल विषयों के विधान का कोष और सच्छास्त्रों के प्रमाणों से युक्त भूमिका है उस को मैंने संक्षेप से पूर्ण किया, अब इस के आगे उत्तम बुद्धि देने वाले परमात्मा की भक्ति में अपनी बुद्धि को दृढ़ करके प्रीति के बढ़ाने वाले मन्त्रभाष्य का प्रमाणपूर्वक विस्तार करता हूं ।"

" आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ मार्गशिर शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं । इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है, ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिस से सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जावे वह ऋग् और वेद अर्थात् जो यह सत्यासत्य ज्ञान का हेतु है । इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है ।

ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक२ अष्टक में आठ२ अध्याय हैं, सब अध्याय मिलकर ६४ होते हैं......आठों अष्टक के सब वर्ग २०२४ होते हैं......तथा इस में दश मण्डल हैं, दसों मण्डलों में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८९ मन्त्र हैं ।

मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र
१	२४	१९१	१९७६	६	६	७५	७६५
२	४	४३	४२९	७	६	१०४	८४१
३	५	६२	६१७	८	१०	१०३	१७२६
४	५	५८	५८९	९	७	११४	१०९७
५	६	८७	७२७	१०	१२	१९१	१७५४

ऋग्वेदभाष्य के आरम्भ के एक मास पश्चात् अर्थात् संवत् १९३४ पौष सुदी १३ गुरुवार के दिन महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया । यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं और सब अध्यायों के कुल मन्त्रों की संख्या १९७५ है ।

दोनों भाष्यों में सब से पहिले, मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द, फिर मूल मन्त्र, उस का पदच्छेद, प्रमाण सहित मन्त्र के पदों का अर्थ, अन्वय अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना और अन्त में भावार्थ अर्थात् मन्त्र का जो मुख्य प्रयोजन है वर्णन किया गया है । दोनों भाष्यों में संस्कृत और भाषा दोनों प्रकार का लेख है, संस्कृत

तौ महर्षि की ओर से है परन्तु उस की भाषा अनुवादकों की बनाई हुई है। कोई अनुवादक महर्षि के संस्कृत का अभिप्राय उत्तमता से नहीं प्रकट करसके और बहुत जगह भाषा संस्कृतार्थ से भिन्न होगई है। इसलिये मन्त्रों के अर्थ को जानने के लिये हमें महर्षि के संस्कृत लेख को ही प्रामाणिक समझना चाहिये। पं० गुरुदत्तजी सदा मन्त्रों के अर्थ जानने के लिये महर्षि की संस्कृत को प्रामाणिक कहा करते थे, किन्तु अनुवादकों की भाषा को वह प्रामाणिक नहीं मानते थे।

संवत् १९३९ में वैदिक यन्त्रालय की ओर से निम्नलिखित एक विज्ञापन छपाथा *

"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामीजी महाराज ने यजुर्वेद भाष्य बनाकर पूराकर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेद भाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र ही पूरा होगा।" परन्तु हमारे भाग्य में कहां था कि महर्षि ऋग्वेद भाष्य को अन्त तक पूरा करलें, उन की मृत्यु ने इस काम को पूरा न होने दिया और संवत् १९४१ के चैत्र मास में यन्त्रालय ने विज्ञापन † दिया कि महर्षि यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद का सातवें मण्डल पांचवें अष्टक के पांचवें अध्याय के तीसरे वर्ग के दूसरे मंत्र तक का भाष्य छोड़ परम धाम को पधार गये। आज यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण छपा हुवा मिल सकता है, परन्तु ऋग्वेदभाष्य अभीतक उतना नहीं छपा जितना कि महर्षि तैय्यार करगये थे।

सर्वविद्याओं के मूल का दर्शक, निरुक्त, निघण्टु, शतपथादि आर्ष ग्रन्थों के आशय का प्रचारक, सृष्टि के अखण्ड और अटल नियमों में वेदार्थ को जताने वाला महर्षि का वेदभाष्य रूपी अद्भुत ग्रन्थ आज अन्धकार से पीड़ित भूमण्डल को निर्भ्रान्त निष्कलङ्क वेद सूर्य के दर्शन का मङ्गल समाचार देरहा है। अंधेरे में यदि लोग मार्ग नहीं देख सकते तौ प्रकाश मार्ग दिखाता है, किन्तु जो प्रकाश में मार्ग देखता हुवा भी उसमें चलने का पुरुषार्थ नहीं करता उससे बढ़कर मन्दभाग्य और कौन होसकता है? सत्यासत्य मार्ग के दिखलाने में सहाय देना सूर्य्य का काम है परन्तु असत्य से बचकर सत्यमार्ग में पुरुषार्थ से चलना मनुष्यों का अपना काम है। महर्षि के वेदभाष्य के होने पर भी लोग यदि दुःख में रहैं तौ वेदभाष्य रूपी सूर्य्य

* देखो ऋग्वेदभाष्य अंक ४६ व ४७।

† यजुर्वेदभाष्य अंक ९२ व ९३।

का दोष नहीं, किन्तु उन मनुष्यों के अपने आलस्य या कर्मफल का दोष है। प्रकाशमय दिन में भी जो पथिक साधनशील होकर अपने मार्ग को पूरा नहीं करता तो वह अपराधी है नकि सूर्य्य। वेद स्वयं उपदेश देरहे हैं * कि जो मनुष्य वेदों के मुख्य तात्पर्य परमात्मा को नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से भी सुख को प्राप्त नहीं होसकता। वास्तव में सूर्य्य से पुरुषार्थ करने वाले ही लाभ उठा सकते हैं, साधन और पुरुषार्थ रहित अन्धे और आलसी पुरुष नहीं। जिसकी बुद्धि की आंख फूट गई हो उसके लिये शास्त्र का सूर्य्य † भी क्या करसकता है? आजकल कई अंगरेजी पढ़े हुये जो वेदमंत्रों का स्वर सहित पाठमात्र भी नहीं करसकते वे समाचारपत्रों की भ्रान्ति साधारण दृष्टि से महर्षि के वेदभाष्य को देखते हैं और उस के सरल संस्कृत लेख को छोड़कर अनुवादकों के अप्रामाणिक भाषा लेख में से भी केवल भावार्थ दो मिनट में पढ़कर व्यवस्था देदेते हैं कि इस में तो कोई नई विद्या की बात प्रतीत नहीं होती यह भाष्य साधारण पुस्तक ही है। सूर्य्य के तेज और प्रकाश की साक्षी वही मनुष्य देसकता है जो नीरोग होने पर सन्मार्ग में पुरुषार्थ से चलना चाहे। परन्तु साधनरहित आलसी पुरुष सूर्य की महिमा को कब अनुभव करसकता है? वेदभाष्य की उत्तमता पूर्वोक्त प्रकार के अंग्रेज़ी पढ़े लोग जो उसके समझने के साधनों से रहित और जिनके विषयानुरक्त हृदय में विद्यामृत के पान की इच्छा तक नहीं है, जो रात दिन पश्चिमीय अनुकरण और वेश (फ़ैशन) की पूजा में निमग्न और तामस आहार व्यवहार में लम्पट हैं, जो अपने विचार और अपनी सात्विकबुद्धि से काम लेना नहीं चाहते, जो कथनमात्र मनुष्य को अल्पज्ञ बतलाते हुये स्वयं पश्चिमीय साधारण मनुष्यों के भ्रान्तियुक्त विचारों को निर्दोष ईश्वरीय ज्ञान से बढ़कर मानरहे हैं। इस प्रकार के वेशपूजक, साधनरहित यदि वेदभाष्य के रत्नों की उत्तमता और महत्व को न समझ सकें तो हमें आश्चर्य न करना चाहिये, क्योंकि वे उसके समझने के यथार्थ उपाय ही काम में नहीं लाते। हमें स्मरण रखना चाहिये कि वेद का भाष्य या अनुवाद वैदिक आशय को एक और भाषा के स्वरूप में प्रकट कर सकता है परन्तु उसके यथार्थ भाव को कोई भाष्य सुगम नहीं बना सक्ता। किसी पुस्तक के भाष्य या अनुवाद करने से उस पुस्तक का विषय सुगम नहीं होजाता और उस विषय के तत्त्व को समझने के लिये

* ऋग्वेद मं० १ सू० १६४ मं० ३९ देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० ६९।

† यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥ (चाणक्यनीति)

हमें साधनों की उपेक्षा नहीं करनी पड़ती। हां यह ठीक है कि अंगरेज़ी आदि कृत्रिमभाषा का अनुवाद किसी और भाषा में उसके विषय को पूर्ण रीति पर व्यक्त करसके परन्तु स्वाभाविक वेदवाणी के विषय में यह बात घट नहीं सकती। क्योंकि वेदवाणी ईश्वरोक्त होने से सर्वाङ्ग संपूर्ण और अन्य सब भाषायें उसका विकार उससे गिरी हुई अपूर्ण दशा में हैं। यदि कोई मंत्रों का ऐसा भाष्य करदे कि जिससे फिर मंत्रों के पढ़ने और समझने की आवश्यकता न रहे तो इसका आशय यह है कि मनुष्य ऐसा दीपक बना सकता है जोकि सूर्य के प्रकाश को फीका कर के स्वयं सूर्य का काम देसकता है। क्या कृत्रिम वस्तु कभी अकृत्रिम वस्तु का काम देसकती है? कदापि नहीं। उत्तम बनावट वह है जो अधिकतर स्वाभाविक दशा के अनुकूल हो। यदि कोई अत्युत्तम कृत्रिम दाँत बना सकता है तो इसका आशय यह है कि वह दांत अधिकतर स्वाभाविक दांतों से मिलते हैं यह कभी नहोगा कि बनावट (चाहे कैसी ही उत्तम क्यों नहो) स्वभाव का अतिक्रमण करसके। स्वाभाविक वेद के गूढ़ाशय को जानने के लिये महर्षि का भाष्य साधनवत् सहायक का काम देसकता है नकि वह स्वयं वेद की जगह लेसकता है। दूरवीक्षण यंत्र सूर्य के दर्शन का एक साधन है नाकि वह आपही सूर्य है। वेदरूप सूर्य्य का प्रकाश दिखलाने के लिये महर्षि का भाष्य एक अत्युत्तम दूरवीक्षण यंत्र है भाष्यरूप साधन का परमोद्देश्य वेदार्थ के जताने में सहायता देना है और यह सहायता भी उन्हीं को मिलसकती है जो वेदार्थ के समझने की इच्छा रखते हुये निष्पक्ष सात्विकबुद्धि से युक्त विद्यादि साधनों को लिये हुये अमृतपान के लिये अत्यन्त पुरुषार्थी हों। पूर्वोक्त प्रकार के आलसी लोग जो वेदरूप सूर्य के प्रकाश में सन्मार्ग में चलने का पुरुषार्थ करना नहीं चाहते उनको महर्षि का भाष्य भी उस प्रकाश के ग्रहण कराने में सहायता नहीं देसकता। जैसे वेदार्थ समझने के लिये वेदाङ्ग, उपाङ्ग और आर्षग्रन्थ साधन हैं, वैसे ही महर्षि का भाष्य भी जोकि वेदाङ्गादि आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल रचागया है, वेदार्थ समझने के लिये एक साधन है, साधन की महिमा साधनशील ही जानते हैं, उत्तम साधन की आवश्यकता पुरुषार्थी और जिज्ञासु पुरुष ही जान सकता है। महर्षि के वेदभाष्यरूप महान् साधन का महत्त्व पं० गुरुदत्तजी ने अनुभव किया था। जहां पश्चिमीय सायन्स और विज्ञान उन को निर्भ्रान्त सत्य का मार्ग दर्शाने के लिये साधन का काम नहीं देसकते थे, वहां उनकी महर्षि के वेदभाष्य ने वेदार्थ जानने के लिये साधनवत् अपूर्व सहायता की। वेदभाष्य रूप साधन की सहायता लेकर वह वेदमंत्रों के गूढ़ अर्थों का विचार करते

थे। एक मंत्र के आशय को समझने के लिये वेदभाष्य तथा वेदाङ्गों और उपाङ्गों की सहायता लेकर पं० गुरुदत्तजी कमसे कम दो घण्टे लगाते थे और फिर यह कहते थे कि आज हमने दो घण्टों में एक मंत्र के अर्थ समझे हैं। पं० गुरुदत्त जी कहा करते थे कि वेदभाष्य भी सूत्रवत् संक्षिप्त शब्दों में महान् विषय को प्रतिपादन कर रहा है।

यदि गुरुदत्त से सात्विकबुद्धि धर्मात्मा विद्वान् को वेदार्थ जानने के लिये वेदभाष्य अपूर्व सहायता देता था तो कोई कारण नहीं कि वैसे ही साधनशील धर्मात्मा पुरुषों को वेदभाष्य वेदार्थ जानने के लिये अपूर्व सहायता न दे। सायण, महीधरादि टीकाकारों के भाष्य वेदार्थ समझने के लिये साधन का काम नहीं देते, किन्तु वेदार्थ से कोसों दूर लेजाकर टीकाकारों की निजकल्पना और घड़न्त जनाने के साधन न रहे हैं। वेदों की स्वच्छ ज्योति को इन मिथ्याभाष्यों के कलङ्क से बचाकर निर्मल शुद्ध दशा में दर्शाने के लिये महर्षि दयानन्द का भाष्य महान् साधन का काम देरहा है। यह कल्पनाओं के विघ्नों को वेदार्थ समझने के मार्ग से हटाता हुआ वेदों के सूर्यवत् निर्भ्रान्त अर्थों का प्रकाश कररहा है। महर्षि के इस परमोपकार को भाविनी आर्यसन्तति गौरव की दृष्टि से देखती हुई इसके महत्त्व को अनुभव करेगी। अन्धकार से पीड़ित मनुष्य जाति को पांच सहस्र वर्षों के पश्चात् ऐसा उत्तम और महान् साधन वेदार्थ जानने के लिये महर्षि के उपकार से मिला है। मिस्र के मीनार आज लोगों को आश्चर्य में डालते हुए कारीगरों के अपूर्व कौशल का बोधन करारहे हैं, वैसे ही महर्षि का भाष्य बुद्धिमानों को आश्चर्यमय प्रतीत होता हुआ महर्षि के परम योगबल का जिससे उन्होंने वेदों की सर्वविद्यायें साक्षात् की थीं बोधन करावेगा।

इस वेदभाष्य रूपी साधन द्वारा हम सब विद्याओं के आदिमूल वेद पर पहुंच जाते हैं। पूर्णज्ञान, पूर्णकर्म और पूर्णउपासना के शान्तिदायक अमृत से वेद पूरित होरहा है। यह भाष्य बतला रहा है कि वेद एक ऐसा गम्भीर अथाह सागर है जिसके गर्भ में असंख्य बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, वेदभाष्य के साधन से वेद सागर में सूक्ष्मबुद्धि प्रवेश करके अनेक विद्यारूप रत्नों को धारण करसकती है, वैदिक रत्नों की यह अटूट खानि है जिसको कि खोदने से अनेक विद्या रूप रत्नों को ऋषि मुनि प्राप्त करते थे। संसार में कोई विद्यारत्न नहीं जो इस ईश्वरीय खानि से न निकला हो और अब भी अनेक विद्यारत्न इस में ऐसे गुप्त भरे हैं कि यदि कोई महर्षि के वेदभाष्य को साधन बनाकर उन रत्नों को निकालना चाहे तो पृथिवी को

आश्चर्यमय जगमग २ करने वाले स्वच्छ रत्नों से भूषित कर सकता है। तृण से लेकर सूर्यपर्यन्त, कीट से लेकर ईश्वर पर्यन्त कोई भी विद्या नहीं है जिसका कि वेद में वर्णन न हो, कोई भी कलायंत्र न है और न होगा जिसका कि बीज रूप मूल वेदों ने न दर्शाया हो। अन्धकार में पड़े हुए लोग रेल तार को (जो वैदिकज्ञान के अंश से बने हैं) देखकर फूले नहीं समाते, परन्तु जब बुद्धिमान् शिल्पीजन वेदमंत्रों को विचारेंगे तो वह ऐसे विमान बना सकेंगे कि जो ६००० वर्ष हुए पृथिवी पर उपस्थित थे। पश्चिमीय पदार्थविद्या या सायन्सने जो आज उन्नतिकी है वह उस पदार्थविद्या के सन्मुख जो कि वेद में भर रही है तुच्छ प्रतीत होती है। वर्त्तमान् समय की समग्र शिल्पविद्या उस महान् शिल्पविद्या के सन्मुख जोकि यजुर्वेद में मूल रूप से पूरित होरही है, वास्तव में तुच्छ है। जगत्गुरु आर्यावर्त्त ने वेद के बल से ही सर्वप्रकार की ऐसी उत्तमविद्या सिद्ध की थीं जिन का कि वर्णन करते हुये आज मनुष्य की बुद्धि चकित होजाती है। आगामी समय में वेद का आश्रय लेकर ही मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओं और क्रियाओं में बड़े २ अपूर्व कौशल दिखावेगा, जिन को देखकर छः हजार वर्षों से भूले हुए समय का चित्र आंखों के सन्मुख आजावेगा,। आज पुरुषार्थी बुद्धिमानों की आवश्यकता है कि वे ऋषियोंके अथाह भंडार से सच्चे रत्न निकाल कर लोगों को दर्शा सकें। पं० गुरुदत्तजी ने इस खानि से रत्न निकालते हुए प्राण त्याग दिये। अहो!! कैसा शुभ अवसर है कि महर्षि ने भाष्य रूपी साधन हमें इस खान के खोदने के लिये देदिया है, अब केवल रत्नों को धारण करने के लिये स्वच्छपात्र की आवश्यकता है, बुद्धि को पात्र बनाते हुए यदि हम पुरुषार्थ करें तो सन्देह नहीं कि संसार को उन छिपे हुए रत्नों का फिर प्रकाश दिखला सकें। संसार के भोगों को लात मारकर ऋषि मुनि इन रत्नों को पाने के लिये एक २ मंत्रको आयु भर विचारा करते थे। वेद के एक २ शब्द के गूढ़ अर्थ सृष्टि में पढ़ने के लिये ऋषि लोग अपना जीवन समर्पण करते थे। वेदों का महत्त्व दिखलाने, उन की रक्षा या प्रचार करने के लिये ऋषियोंका जीवन होता था। प्राचीन ऋषियोंके अनुपद चलते हुये महर्षि दयानन्द ने भाष्य रूप साधन से वेदोंकी महिमा दर्शाने, उनकी रक्षा और प्रचार करने के लिये अपने आप को अर्पण करदिया और आज उनके वियोग के पश्चात् उन का वेदभाष्य अन्धकार से पीड़ित मनुष्य जाति के लिये वैदिकसूर्य की ज्योति दिखाने के लिये परमसाधन का काम देरहा है।

———०———

महर्षि विरचित शेष ग्रन्थ ।

(१) वेदाङ्गप्रकाश ॥

महर्षि पाणिनि ने वैदिक शब्दों के नियमों को दर्शाने और वेदकी रक्षा करने के लिये अष्टाध्यायी की रचा जो व्याकरण शास्त्रका मूल कहलाता है। रेखागणितकी रचना पश्चिमीय जगत् में अद्भुत मानी जाती है, किन्तु गणितज्ञ रेखागणितकी महिमा को भूल जाता है जब कि वह अष्टाध्यायी के सूत्रों की रचनाको देखता है। योगीश्वर पाणिनिने शब्दविद्या के अगाध समुद्र को सचमुच एक छोटेसे पात्र में बन्द कर के दिखा दिया है। अष्टाध्यायी का गौरव इससे अधिक और क्या होसकता है कि योगिराज पतञ्जलि का महाभाष्य ग्रन्थ उसकी ही व्याख्या है। यदि आजकल संस्कृत का पूर्ण प्रचार होता तो अष्टाध्यायी के आशय को जानने के लिये महाभाष्य पर्य्याप्त था, परन्तु वैदिक संस्कृत के विशेष प्रचार न होने के कारण महर्षि दयानन्द को जो आर्ष ग्रन्थों का प्रचार करना चाहता था, इस वेदाङ्गप्रकाश के रचने की आवश्यकता पड़ी। जिस प्रकार वेदभाष्य वेदों के अर्थ दर्शाता है उसी प्रकार यह वेदाङ्गप्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है, अष्टाध्यायीकी उत्तमता दर्शाना और उस के पढ़ने की रुचि दिलाना इस वेदाङ्गप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है। वेदार्थ जाननेके लिये अष्टाध्यायी और निघण्टु आदि प्रधान साधनहैं और इन प्रधान साधनों में रुचि दिलाने वाला वेदाङ्गप्रकाश है।

इसके १६ भाग हैं जिनके नाम यह हैं (१) वर्णोच्चारणशिक्षा (२) संस्कृतवाक्यप्रबोध (३) व्यवहारभानु (४) सन्धिविषय (५) नामिक (६) कारकीय (७) सामासिक (८) स्त्रैणताद्धित (९) अव्ययार्थ (१०) आख्यातिक (११) सौवर (१२) पारिभाषिक (१३) धातुपाठ (१४) गणपाठ (१५) उणादिकोष (१६) निघण्टु। इन में से संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु स्वामीजी के रचे हुये हैं और निघण्टु जो कि वेदों का प्राचीन कोष है महर्षि यास्क का बनाया हुआ है शेष महर्षि पाणिनि की रचना अर्थात् अष्टाध्यायी के भाग हैं। वैदिकशब्दों के अर्थ जानने के लिये निघण्टु अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक कोष है। निघण्टु की भूमिका में महर्षि स्वयं इस प्रकार लिखते हैं कि "यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था अब छापने से प्राप्त होने लगा है, इससे बड़ा उपकार यह होगा कि जो पुराण वालों ने अर्थ का अनर्थ किया है, सो इन आर्षग्रन्थों से निवृत्त होकर सबके आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा।" दृष्टान्त की रीति पर महर्षि लिखते हैं कि "पौराणिक लोगों ने वृत्र,

शंबर और असुर शब्द दैत्य के पर्याय मान रक्खे हैं, किन्तु निघण्टु में यह शब्द मेघ के पर्याय हैं।" निम्नलिखित चक्र इस बात को और भी स्पष्ट करता है:—

शब्द	पौराणिक अर्थ	नैघण्टुक अर्थ
अहि	सर्प	मेघ
अद्रि	पहाड़	"
गिरि	"	"
पर्वत	"	"
अश्मा	पाषाण	"
ग्रावा	"	"
शचीपति	इन्द्र राजा	वाणी, कर्म और प्रज्ञाका पालनेवाला
गया	मृतकों के पिण्डदेने का स्थान	अपत्य, धन और गृह
घृताची	वेश्या	रात्रि
वराह	शूकर	मेघ
धारा	जलप्रवाह	वाणी
गौरी	महादेवकी स्त्री	"
स्वाहा	अग्नि की स्त्री	"
स्वधा	पितरों की स्त्री	अन्न
शची	इन्द्र की स्त्री	वाणी, कर्म और प्रज्ञा
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान्
श्राद्ध	मृतकों की तृप्ति का कर्म	जिस क्रियासे सत्यका ग्रहण हो

आगे महर्षि लिखते हैं कि "अब कहां तक लिखें मनुष्य लोग जब इस कोष को पढ़ेंगे तब नवीन पुराणादि ग्रन्थों का मिथ्यापन और वेदों का सत्य तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति स्वयं हो जायगी"।

सन्धिविषय और वाक्यप्रबोध आदि ग्रन्थोंमें शोधने वालोंकी शीघ्रता और असावधानी के कारण कई अशुद्धियां छपगई थीं, परन्तु द्वितीय वार छपने पर यह पुस्तक शुद्ध छपे हैं। वेदाङ्गप्रकाश के उन भागों में जोकि द्वितीयवार नहीं छपे अभीतक अशुद्धियां वनी हुई हैं जोकि यन्त्रालय के कर्मचारियों तथा संशोधकों की असावधानी को प्रकट कर रही हैं। वेदाङ्गप्रकाश स्वामीजी की आज्ञा व प्रेरणा से अधिकतर पण्डित लोगों ने निर्माण किया है इसी कारण कई प्रकार की अशुद्धियां

रह गई हैं जोकि आशा है द्वितीयवार छपने पर निवृत्त हो जावेंगी। वेदाङ्गप्रकाश का परिमाण सत्यार्थप्रकाश से दुगुना है। इसके पढ़ने से जहां अष्टाध्यायी, महाभाष्य और निघण्टु के पढ़ने में प्रीति उपजती है, वहां साथ ही पश्चिमीय (western) (फ़िलालोजी) के मूल का पता लग जाता है। वर्तमान फ़िलालोजी की कल्पनायें इसके आगे विनाश को प्राप्त होकर जिज्ञासु की आर्षग्रन्थों पर श्रद्धा उत्पन्न करादेती हैं। अष्टाध्यायी का पढ़ने वाला व्याकरणशास्त्र को अच्छे प्रकार समझने के लिये महर्षि के इस वेदाङ्गप्रकाश से अपूर्व सहायता लेसकता है और व्याकरण शास्त्र के प्रधान साधन द्वारा मनुष्य सुगमता से वेदार्थ को जान सकता है। सन्धिविषय में महर्षि का इस प्रकार लेख है जिससे इस प्रधान साधन का प्रयोजन विदित हो रहा है:—

"व्याकरणादि शास्त्रोंकी प्रवृत्ति नित्यशब्द, नित्यअर्थ और नित्यसम्बन्ध के जनाने ही के लिये है।" व्याकरणशास्त्र के पढ़ने के १८ प्रयोजन आगे इसी लेख में महर्षि दर्शाते हैं, सब से पहिला प्रयोजन रक्षा है जिस के विषय में वह इस प्रकार लिखते हैं "(रक्षा) मनुष्य लोगों को वेदों की रक्षा के लिये व्याकरणादि शास्त्र पढ़ने चाहियें क्योंकि इन के पढ़ने ही से लोप, आगम और वर्ण विकार आदि का यथावत् बोध होकर वेदों की रक्षा कर सकते हैं"......"(आगम) सब मनुष्योंको अवश्य उचित है कि साङ्गोपाङ्ग वेदोंको पढ़कर यथोक्त क्रिया करके सुखलाभको प्राप्त हों। सो व्याकरणादि के पढ़े विना कभी नहीं होसकता, क्योंकि सब विद्याओं की प्राप्ति करने में व्याकरण ही प्रधान है, प्रधान में किया हुवा पुरुषार्थ सर्वत्र महान् लाभकारी होता है।"......" (उतत्वः) जो मनुष्य व्याकरणादि विद्या को नहीं पढ़ता वह विद्यायुक्त वाणी के दर्शन से रहित होकर देखता हुवा अन्धे और सुनता हुवा बहरे के समान होता है और जो इस विद्या के स्वरूप को प्राप्त होता है उसी को विद्या परमेश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का स्वरूप यथावत् जना देती है।

(२) एक और अपूर्व ग्रन्थ महर्षि रचनेवाले थे।

वेदाङ्गप्रकाश के सन्धिविषय में महर्षि का यह लेख है "यह १८ प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं किन्तु इन को प्रमाण और विस्तार पूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे।" इस संकेत को पाकर हम अनुमान करते हैं कि महर्षि ने वेदाङ्गप्रकाश के अतिरिक्त अष्टाध्यायी का भाष्य करने का पूरा विचार करलिया था परन्तु शोक वह काल कराल की विचित्र गति से पूरा न होसका।

(३) पञ्चमहायज्ञविधि ।

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है, इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है जिनके नाम यह हैं (१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) पितृयज्ञ (४) भूतयज्ञ (५) नृयज्ञ........ इन नित्यकर्मों के फल यह हैं । ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना, जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह सिद्ध होते हैं, इन को प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है ।

ब्रह्मयज्ञ का दूसरा नाम सन्ध्योपासन, देवयज्ञ का अग्निहोत्र, पितृयज्ञ का तर्पण और श्राद्ध, भूतयज्ञ का बलिवैश्वदेव और नृयज्ञ का अतिथिसेवा है । ब्रह्मयज्ञ मनुष्य को ज्ञान, कर्म और उपासना के बल से युक्त करता हुआ उसको अपनी और दूसरों की भलाई के लिये अन्य चार यज्ञों का सामर्थ्य देता है । इन पांच यज्ञों का करनेवाला अपनी उन्नति के साथ २ औरों की उन्नति और दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है । यदि ब्रह्मयज्ञ में ईश्वर के ध्यान करने से आत्मा निज उन्नति करता है तो उसके साथ २ पापकर्म से बचने और दूसरों को हानि न पहुंचाने की प्रतिज्ञा करता है, इसलिये ब्रह्मयज्ञ मनुष्य की आत्मोन्नति और सामाजिक उन्नति का मूल है । हवन करने से जहां मनुष्य बल पुष्टि देनेवाले सुगन्धित पदार्थों का सार स्वयं आकर्षण करता है वहां वह प्राणिमात्र की रोग निवृत्ति * के लिये इस सुगन्धि † का विस्तार करता है । इसलिये देवयज्ञ मनुष्य की निज आरोग्यता और सामाजिक आरोग्यता का कारण है । पितृयज्ञ करने से मनुष्य जहां अपने आत्मा के प्रेमगुण की उन्नति करता है वहां औरों के सेवा सत्कार से मनुष्य समाज को लाभ पहुंचाता है, इसी प्रकार भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ करने से मनुष्य अपने प्रेम की उन्नति करता हुवा दूसरों की बराबर उन्नति करता है ।

---

* " सब प्रकार के डिसइन्फ़ीकटन्ट पाउडर (छिड़कने की औषधियां) यथा फ़ीनायल आदि दुर्गन्धि को दूर नहीं करतीं किन्तु वायु को दुर्गन्धित और भारी बनाने में सहायता देती हैं । " देखो " हीन्युसायन्स आफ़ हीलिंग " लोइकुना विरचित ।

† कोई २ लोग कहा करते हैं कि गन्धक जलाने से वायु शुद्ध होजाता है परन्तु अनुभव बतला रहा है कि जब दियासलाई रगड़ते वक्त गंधक की दुर्गन्धि नाक में पहुंचती है तो सहन नहीं होसकती, इसलिये गंधक के जलाने से कभी वायु शुद्ध नहीं होता । इसविषय को प्रोफ़ेसर अलकजेण्डर बी. एल. एल. डी. ने अपने पुस्तक " इनटेलक्ट एण्ड हीसन्स " में लिखा है जहांकि वह गन्धक की दुर्गन्धि को स्वास्थ्यनाशक कहता है ।

कई लोग इन पांच यज्ञों को केवल निजोन्नति के साधन मानते हैं, यदि वे विचार से काम लें तो उन को प्रतीत होगा कि ये अपनी और दूसरों की उन्नति के बराबर साधन हैं। जो लोग इन पंचयज्ञों को केवल दूसरोंकी उन्नतिका साधन कहते हैं, वे भी इस बात को नहीं समझते कि किस प्रकार दूसरों की उन्नति करते हुये हम अपनी उन्नति करते हैं, औरों का उपकार करने से निजप्रेमकी शक्ती उन्नत होती है। निष्काम कर्म करने वाले इसी विश्वास को मन में रखते हुये सन्तोष धारण करते हैं। वे समझते हैं कि यद्यपि लोग हमारे उपकार की प्रशंसा न करें तो भी हम अपनी उन्नति परोपकार करने से अवश्य कर रहे हैं मन में दूसरे की हानि का संकल्प तक लाने से निश्चित हम अपनी हानि करते हैं औरोंपर क्रोध करने से हम आप ही अशान्त होते हैं। जैसे मनुष्य, ज्ञान या विद्यादान से अपनी विद्या की उन्नति करता है वैसे ही प्रेम के दान से निज प्रेम रूपी स्वभाव की उन्नति करता है। यदि कोई अतिथि आदि की सेवा प्रेमपूर्वक करता है तो ऐसा करनेके साथ ही वह अपनी प्रेमशक्तिकी उन्नति करता है। सामुद्रिकविद्या के जानने वाले, मनुष्य के मस्तिष्क के तीन बड़े भाग करते हैं। आगे के भाग को जिसे ललाट कहते हैं ज्ञान का साधन * बीच के ऊपरले भाग को उपासना का साधन और पीठ की ओर के पिछले भाग को प्रेम या कर्म का साधन बताते हैं और इन तीनों भागोंकी उन्नति करना मनुष्य का धर्म है। जो ज्ञान के साथ २ उपासना, कर्म या प्रेम की उन्नति नहीं करता वह स्वस्थ या नीरोग कहलानेका अधिकारी नहीं। साम्यावस्था (harmony) का नाम पूरी आरोग्यता है और वह ज्ञान, कर्म और उपासना में सम और साथ २ उन्नति करने से प्राप्त होती है। सामुद्रिक बतलाते हैं कि मनुष्य स्त्री, पुत्र, भाई, बाप और प्राणीमात्र से जो प्रेम करता है तो इसलिये कि इस प्रेम का तत्त्व उस के आत्मा में भररहा है और मस्तिष्क का पिछला भाग इस प्रेम का आधार रूप साधन बनाया गया है। इसलिये इस बात को भले प्रकार जान लेना चाहिये कि जो मनुष्य प्रेमपूर्वक किसी की सेवा करता है तो ऐसा करने से वह जहां दूसरे को सुख पहुंचाता है वहां साथ ही अपनी प्रेमशक्ति की उन्नति करता है, या यों कहो कि दूसरों से प्रेम करना अपनी प्रेमशक्ति को दृढ़ करने के लिये व्यायाम का काम देता है।

यदि आस्तिक अन्याय का आचरण नहीं करता तो क्या इससे उसकी और मनुष्य समाज दोनों की उन्नति नहीं होती? यदि भूतयज्ञ करने वाला रोगियों की

* देखो हारमोनिया भाग ५ ए. जी. डेविस विरचित।

सेवा करता है तो क्या इस कर्म से वह अपनी और दूसरों की उन्नति नहीं करता। सच तो यह है कि अपनी उन्नति के साथ दूसरों की उन्नति ऐसी लिपटी हुई है जैसी वृक्ष के साथ लता, एक को दूसरे से कोई पृथक् नहीं कर सकता। कोई कह सकता है कि महर्षि दयानन्द अठारह घण्टे की समाधि केवल अपनी उन्नति के लिये लगाते थे, हम कह सकते हैं कि अपनी सच्ची उन्नति करने से वह अपने आपको मनुष्यसमाज की उन्नति करने के योग्य बना रहे थे। विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य अपनी सच्ची उन्नति में सामाजिक उन्नति का बीज बोता है। ब्रह्मचर्याश्रम जो कि मनुष्य की निज उन्नति का एक साधन है, वही संन्यास आश्रम का जिसमें औरों की उन्नति की जाती है मूल है। जिस कक्षा तक कोई अपनी उन्नति करता है, उस कक्षा तक ही वह मनुष्य समाज का उपकार कर सकता है। जो लोग कहते हैं कि सामाजिक उन्नति करो और साथ ही बतलाते हैं कि जो समय पंच महायज्ञों के करने में लगाते हो, उसको देशभक्ति के अर्पण करदो, वे लोग सामाजिक उन्नति का अर्थ ही नहीं समझते। हिंसक मनुष्य यदि अपने दुर्गुण को ईश्वर की उपासना से नष्ट करना नहीं चाहता तो हम नहीं जानते कि वह सिवाय समाज को हानि पहुंचाने के क्या लाभ पहुंचा सकता है। ब्रह्मयज्ञ आदि कर्म मनुष्य की अपनी और सामाजिक उन्नति के बराबर साधन हैं, इसीलिये महर्षि मनु की आज्ञा है कि जो नित्य सन्ध्योपासन नहीं करता उसको द्विज पदवी से पतित करदेना चाहिये। परन्तु आज पश्चिमीय दीपक के प्रकाश में काम करने वाले कहते हैं कि हम चाहे सन्ध्या करें या न करें, हम चाहें शुद्धाचारी बनें या न बनें तो भी हम सामाजिक उन्नति के लिये काम कर सकते हैं जो कि सर्वथा अयुक्त है।

राजनैतिक संशोधक (पोलिटिकल लीडर) भी निज आत्मिक उन्नति के अंश को जीवन में दिखाते हुए ही समाज को अपने से जोड़ सकते हैं। यदि सदाचारी होने से "पारनल" आयरलैण्ड का लीडर बन रहा था तो दूसरी अवस्था में वह इस पदवी पर न रहसका। सामाजिक उन्नति को यदि फल कहें तो स्वात्मोन्नति उसका बीज है, बीज की रक्षा करने से फल की आशा होसकती है। समाज की काया पलटाने के लिये अपनी काया पलटाने की पहिले आवश्यकता है, पञ्च महायज्ञ आदि नित्यकर्मों का पालन करने वाला मानो नित्य अपनी और मनुष्य समाज की उन्नति कररहा है।

(४) संस्कारविधि ॥

कर्म दो प्रकार के हैं नित्य और नैमित्तिक, नित्यकर्मों का विधान पंचमहायज्ञविधि में और नैमित्तिक कर्मों का विधान संस्कारविधि में है। महर्षि लिखते हैं कि "संस्कारों में केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस कर के शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होती हैं, इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अत्युचित है।

कई लोग भ्रम से संस्कारों को केवल परंपरा की रीति समझते हुये कहा करते हैं कि केवल समाज की प्रसन्नता के लिये हमें संस्कारों का करना उचित है अन्यथा अपनी उन्नति इन से कुछ नहीं हो सकती। हम इस के उत्तर में कहेंगे कि संस्कार शुद्धक्रिया का नाम है न कि अन्धी रीति का और शुद्धक्रिया सदा अपनी और समाज की उन्नति की जड़ हुआ करती है। सार्थकविधि या क्रियायें संस्कारों की पूर्णता का साधन हैं। संस्कारकर्ता सदा अपनी और दूसरों की भलाई करता है। जैसे यदि कोई ऋतुगमनविधि का पालन करता हुआ गर्भाधान संस्कार करता है तो ऐसा करने से जहां वह अपनी स्त्री की आरोग्यता को नहीं बिगाड़ता वहां अपनी भी आरोग्यता की रक्षा करता है। कामासक्त पुरुष अपनी स्त्री को ही दुःख नहीं देता, किन्तु वीर्य का नाश करने से अपने बलबुद्धि का भी नाश करबैठता है। उत्तम और बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने ही से हमारी उन्नति और भलाई है। यदि "शाहजहां" ने विना संस्कार या शुद्धक्रिया के "औरंगज़ेब" को उत्पन्न किया तो उसके हाथ से दुःख भी आप ही भुगता। यदि राजा शन्तनु की धर्मपत्नी गंगा ने गर्भाधान की शुद्धक्रिया से भीष्म को गर्भ में धारण किया था तो सपूत भीष्म ने माता पिता की सेवा करते हुये पिता की प्रसन्नता के लिये आयुभर ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया था। इन संस्कारों के करनेसे जहां हम सन्तानको उत्तम और सदाचारी बनाते हैं वहां अपनी भलाई का भी बीज बोदेते हैं। यदि कोई परोपकारके लिये यज्ञ करने से मेह बर्साता है तो क्या वृष्टि होतीहुई उसके क्षेत्रको नहीं सींचती, औरों की भलाई में मनुष्य की अपनी भलाई सदा जुटी रहती है।

संस्कारविधि में निम्नलिखित १६ संस्कारोंका वर्णन है (१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जातकर्म (५) नामकर्म (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) कर्णवेध (९) चूड़ाकर्म (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ (१२) समावर्तन (१३) विवाह (१४) गृहाश्रम (१५) वानप्रस्थ (१६) संन्यास। मु-

सलमान और इसाईमत की पुस्तकों में १६ संस्कारों का वर्णन नहीं और न यह लोग किसी वैज्ञानिक मूल पर कोई संस्कार करते हैं। इन के विवाह को हम एक सामाजिक रीति कह सकते हैं नकि संस्कार। गर्भाधान जोकि पहिला संस्कार है इसकी आवश्यकता आज सायन्स के दीपक के प्रकाश में काम करने वाले अनुभव कररहे हैं। एक पश्चिमीय प्रसिद्ध डाक्टर के निम्नलिखित वाक्य हमारे कथन की पुष्टि कररहे हैं:—

"उत्तम सन्तान का उत्पन्न करना और सन्तान को सच्चरित्र बनाना ऐसा उत्तम काम है कि आजतक इस पृथिवी पर नहीं हुवा *। हम उस पुरुष और स्त्री की कहां तक प्रशंसा करें जो संसार में उत्तम सन्तान को उत्पन्न करते हैं।" दीपक के प्रकाश रखने वाले इस पश्चिमीय डाक्टर को क्या ख़बर है कि १६ संस्कारों के प्रताप से हमारे पूर्वज सन्तान को जन्म से मृत्यु पर्यन्त बराबर उत्तम और सच्चरित्र बनाते थे। इसके विचार में गर्भाधान संस्कार तो आजतक इस पृथिवी पर नहीं हुवा, परन्तु आज महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि रचकर प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध करदिया है कि एक गर्भाधान तो क्या किन्तु १५ पन्द्रह अन्य संस्कार भी सन्तान को उत्तम और सच्चरित्र बनाने के लिये प्रत्येक को करने चाहियें।

प्रत्येक संस्कार के अवसर पर शान्तिदायक वेदमंत्रों का पाठ और सामवेद का गान आत्मिक प्रसन्नता के लिये और हवन यज्ञ का करना शारीरिक आरोग्यता के लिये उचित है। गान व हवन ये दो संस्कारों के परम साधन हैं, जिस प्रकार होम का धुवां शरीर को बल और पुष्टि देता है उसी प्रकार विज्ञान और ईश्वरीय गुणोंसे भराहुवा वेदमंत्रोंका गान आत्माको तुष्टि और पुष्टि देता है। ठीक युद्ध के समय लड़तेहुये शूरों में शूरताकी आगभड़कानेके लिये उत्साहवर्द्धक गीत गायेजाते हैं, जितने गीत के शब्द उत्साहवर्द्धक और प्रभावोत्पादक होते हैं उतनेही परिमाण से शूरयोद्धा युद्धक्षेत्र में अपना पराक्रम दिखलाते हैं। सर्प जैसे तिर्यक् जन्तु भी राग के बल से मोहित होजाते हैं राग का जो प्रभाव आत्मा पर होता है उसे कोई बुद्धिमान् † अस्वीकार नहीं करसकता। सामान्य (न अधिक न कम) गाने वाले

* डाक्टर होलब्रूक एम. डी. रचित "पार्टीवीरशेन विदाउट पेन" नाम पुस्तक पृ० १०९।

† मुसलमान लोग गान विद्या के विपरीत हैं।

की छाती और फेफड़े दृढ़ होजाते हैं * फेफड़ों की रक्षा के लिये बोलना और गाना एक प्रकार के व्यायाम हैं ।

प्रत्येक संस्कार के लिये महर्षि ने प्रमाण एकत्र करके रखदिये हैं, संस्कारविधि के अवलोकन से प्रकट है कि जो अपव्यय लोग आतिशबाज़ी, बाग़बहारी इत्यादि में विवाह या अन्य संस्कारों के अवसर पर किया करते हैं, उनकी आज्ञा शास्त्रों ने नहीं दी । सोलह संस्कारों के अतिरिक्त मृतक शरीर को जलाने के लिये अन्त में अन्त्येष्टि कर्म की विधि लिखी है । मुसलमान ईसाई आदि जो लोग धर्म से बुद्धि का कुछ सम्बन्ध नहीं मानते, वे मृतक को पृथिवी में गाड़ने से जलवायु को दूषित करते हैं, परन्तु वेद बतलारहा है कि मृतकशरीर को जलाकर भस्म कर देना चाहिये ।

ब्रह्मयज्ञादि नित्यकर्म करने वाले को अपनी जाति के स्त्री पुरुषों को एकत्र करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इन संस्कारों के अवसर पर जाति के स्त्री पुरुषों का एकत्र होकर संस्कार की साधारण क्रिया में सहायता देना आवश्यक है । पितृयज्ञ में जिनकी सेवा करनी अभीष्ट है उनके विना अन्य लोगों को निमंत्रण देने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इन संस्कारों में जाति के लोगों तथा इष्टमित्रों को सुशोभित होना आवश्यक है । इन्हीं वेदोक्त संस्कारों के प्रताप से ऋषि मुनि और महात्माजन पृथिवीपर जन्म लिया करतेथे और आज इन्हीं के अभाव से दीन, मलीन और बलहीन सन्तान पृथिवी का भार बन रही है । संस्कारों का मूल गर्भाधान है और गर्भाधान स्त्री पुरुष के ब्रह्मचर्य्य के विना हो नहीं सकता । इसलिये संस्कारोंकी प्रणाली को पुनः प्रचलित करने के लिये हमें ब्रह्मचर्य्य की दृढ़ नींव डालनी चाहिये ।

(९) गोकरुणानिधि ।

"यह ग्रन्थ इसी अभिप्रायसे रचा गया है कि जिससे गवादि पशु जहां तक सामर्थ्य हो बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सब को सुख बढ़ता रहे" ।

इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं एक समीक्षा, दूसरा नियम, तीसरा उपनियम । गाय, भैंस, बैल, ऊंट, बकरी, घोड़ा, हाथी, सुवर, कुत्ता, कुक्कुट, मोर आदि से जो२ लाभ होते हैं उनको युक्ति पूर्वक दिखाते हुये महर्षि लिखते हैं कि "इत्यादि शुभ गुण

* डाक्टर अनाकिंग्स फोर्ड एम. डी. का कथन है कि सायं प्रातः का गाना छाती के लिये अच्छा व्यायाम है । देखो "रायल रोड टू ब्यूटी" नाम पुस्तक ।

युक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काट कर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघातक, अनुपकारी, दुःख देने वाले और पापी जन होंगे"। "इसीलिये यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि हे पुरुष ! तू इन पशुओं को कभी मत मार"।...... "इसी लिये ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त आर्य्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं"।

बेजुबान पशुओं का प्रतिनिधि आगे चलकर मांसभक्षकों से इन शब्दों में अपील कर रहा है:— "हे मांसाहारियो ! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ?" इसके पश्चात् महर्षि प्रश्नोत्तर की रीति पर मांसाहारियों के बड़े २ आक्षेपों का ऐसा यौक्तिक और समीचीन उत्तर देते हैं कि वह मनुष्य जिसने यूरोप और अमेरिका की फलाशिनी सभाओं के उत्तम से उत्तम पुस्तक पढे हैं वह भी वास्तव में महर्षि के उत्तरों को पढ़कर विस्मित हो जाता है। निम्नलिखित संक्षिप्त वाक्य महर्षि के लेख से उद्धृत करते हैं इसलिये कि लोग मांस भक्षण के विषय में वेदों का सिद्धान्त जान सकें।

"मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं"। (पृ० १०) "किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिये"। (पृ० ११) "इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये"। (पृ० ११) "इसीलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि मारने की विधि नहीं लिखी"। (पृ० १२) गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के सात नियम और कई उपनियम लिखकर (जिनमें दारिद्र्य और दुर्भिक्ष के हटाने और सुभिक्ष और शान्ति के बढ़ाने के उपाय वर्णित हैं) महर्षि इस महोपकारी ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

(६) आर्य्योद्देश्यरत्नमाला।

सुगम और संक्षेप रीति से कठिन और गूढ़ विषयों को केवल भाषा जानने वालों के कान तक पहुंचाने के लिये महर्षि ने यह पुस्तक आर्य्यभाषा में रचा है। ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, सत्यभाषण, मिथ्याभाषण, विश्वास, अविश्वास, लोक, परलोक, जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, विद्या, अविद्या, सत्पुरुष, सत्सङ्ग, तीर्थ, स्तुति, निन्दा, प्रार्थना, उपासना, सगुणनिर्गुणोपासना, मुक्ति, मुक्ति के साधन, कर्ता, कारण, उपादान कारण, निमित्त कारण, साधारण कारण, कार्य्य, सृष्टि, जा-

ति, मनुष्य, आर्य्य, आर्य्यावर्त्त देश, दस्यु, वर्ण, वर्ण के भेद, आश्रम आदि सौरत्न इस माला में महर्षि ने बड़ी उत्तमता से पिरोये हैं। प्रत्येक मनुष्य को यह सिद्धान्त रूपी रत्नों की माला मन में धारण करनी चाहिये। माता पिता जो सन्तान को सोने चांदी की माला पहिनाते हैं जिससे कि उनके प्राण जाने का भय है, उसकी जगह यदि वे उनके आत्मा को यह रत्नमाला पहिनावें तो वास्तव में उनकी सन्तान अत्यन्त रमणीय और विद्यारत्न से अलंकृत और सुभूषित होजावे।

(७) भ्रमोच्छेदन

महर्षि दयानन्द दिग्विजय करते हुये कई बार काशी में पहुंचे और वहां के प्रसिद्ध पौराणिक पण्डितोंसे शास्त्रार्थ किये और विजय पाई, परन्तु कभी राजा शिवप्रसादजी सितारहहिन्द महर्षि के सामने शास्त्रार्थ के लिये न आये। संवत् १९३६ में एकबार उक्त राजा साहब का साधारण रीतिपर स्वामीजीसे समागम हुआ और इस समागम के पश्चात् सवाचार महीने तक स्वामीजी काशी में वैदिकधर्म का उपदेश करते रहे परन्तु इतने दीर्घकालमें भी राजासाहब अपने सन्देह निवृत्त करने के लिये कभी न आये। परन्तु जब राजा साहब ने सुना कि स्वामीजी काशी से जाने वाले हैं तो एक पुस्तक बना और स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति उसपर लिखा कर प्रकाशित करदी। इस पुस्तक में राजाजी ने कई आक्षेप (जो कि उनके पौराणिक गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी ने उनको बताये थे) किये हैं। यद्यपि यह पुस्तक राजा शिवप्रसाद साहब के नाम से छपी है परन्तु वास्तव में स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर से समझनी चाहिये, क्योंकि राजा साहब संस्कृत विद्या के पण्डित नहीं थे और नही वे इस प्रकार के विद्या सम्बन्धी प्रश्न करने की योग्यता रखते थे। महर्षि दयानन्द इस पुस्तक के उत्तर में भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक कभी न लिखते यदि स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति उसपर न लिखी होती। निम्नलिखित वाक्य महर्षि के इस अभिप्राय को बोधन कर रहे हैं:—

"जो राजाजी स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं"।

महर्षि के भ्रमोच्छेदन के पढ़ने से प्रकट होता है कि किस प्रकार काशी के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द सत्य के बल से पराजित होतेहुये इस बात को

सिद्ध करते हैं कि सत्यरूपी हीरे के आगे पाखण्ड रूपी चट्टान किस प्रकार खण्ड खण्ड होता है।

(८) भ्रान्तिनिवारण।

महर्षि के वेदभाष्य पर कई आक्षेप पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न स्थानापन्न प्रिन्सिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता ने एक पुस्तक में लिखकर छपवाये थे, उस पुस्तक के उत्तर में महर्षि ने "भ्रान्तिनिवारण" पुस्तक रचा। जिस योग्यता और विद्वत्ता से महर्षि ने पौराणिकों के प्रसिद्ध पण्डित के आक्षेपों का सन्तोषजनक और यौक्तिक समाधान किया है उसका अनुभव वही लोग कर सकते हैं जिनको इस पुस्तक के पढ़ने का अवसर मिला हो। भ्रान्तिनिवारण की भूमिका भी अत्यन्त रोचक और शिक्षादायक है, उसमें से कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं इसलिये कि पाठक महर्षि के आत्मबल का अनुभव कर सकें और जानलें कि वह किस के भरोसे पर चारों ओर अकेला अपने विपक्षियों पर विजय पारहा था।

"विदित हो कि जो मैंने संसारके उपकारार्थ वेदभाष्य बनानेका आरम्भ किया है कि जो सब प्राचीन ऋषियों की कीहुई व्याख्या और अन्य सब ग्रन्थों के प्रमाण युक्त बनाया जाता है, जिससे इस बात की साक्षी वे सब ग्रन्थ आज पर्य्यन्त विद्यमान हैं......जो मैं निरा संसार ही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिसके आधीन मनुष्य के जीवन मरण और सुख दुख हैं तो मैं भी ऐसे ही व्यर्थ वाद विवादों में मन देता। परन्तु क्या करूं मैं तो अपना तन, मन, धन, सब सत्य के ही प्रकाशार्थ समर्पण करचुका, मुझ से चाटुता (खुशामद) करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार को लाभ पहुंचाना ही मुझको चक्रवर्ति राज्य के तुल्य है। मैं इस बात को प्रथम ही भली प्रकार जानता था कि न्यारिये के समान बालू से सुवर्ण निकालने वाले चतुर कम होंगे, किन्तु मलिन मछली के सदृश निर्मल जल को गदला करने और बिगाड़ने वाले बहुत हैं परन्तु मैंने इस धर्म कार्य का सर्वशक्तिमान् सर्वसहायक, न्यायकारी परमात्मा की शरण में सीस धरकर उसी के सहायावलम्ब से आरम्भ किया है।

(९) आर्याभिविनय।

इस में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अच्छे प्रकार लिखी गई है। पहिले मूलमन्त्र और नीचे सुगम आर्यभाषा में अर्थ लि-

खा है. नित्यकर्म में श्रद्धापूर्वक पाठ कर ईश्वरभक्ति से चित्त को शान्त कर के सन्तुष्ट होने में उपयोगी है।

(१०) व्यवहारभानु।

इस में व्यवहार के अनेक विषयों की शिक्षा आर्यभाषा में लिखी है, जहां २ उचित समझा संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं। बालक, युवक और वृद्ध सब को इस ग्रन्थ का देखना लाभदायक है, विशेष कर पढ़ने पढ़ाने में निन्दनीय व्यवहारों का त्याग और अध्यापक शिष्यों को जैसे वर्त्तना चाहिये वैसा उपदेश है, इस कारण पढ़ने पढ़ाने वालों को विशेष उपयोगी है।

(११) वेदविरुद्धमतखण्डन।

इस में वल्लभाचार्य मत (जो वैष्णवमत का एक भेद है) की प्रश्नोत्तर द्वारा अच्छे प्रकार समालोचना कर उस को वेदविरुद्ध सिद्ध किया है,पहले यह पुस्तक केवल संस्कृत में था, अब नीचे आर्यभाषा भी कीगई है,इससे सब कोउपयोगी है।

(१२) स्वामिनारायणमतखण्डन।

गुजरात आदि देशों में स्वामी नारायणका मत फैला है, यह वैष्णवमत का एक भेद है, इस का खण्डन प्रश्नोत्तर की रीति से संस्कृत में आर्यभाषा सहित किया है

(१३) वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी।

इस में जीव ब्रह्म की एकता और जगत् मिथ्या कहने वाले आधुनिक कल्पित वेदान्तमत का खण्डन और वेदान्तके प्रसिद्ध महावाक्यादि का ठीक २ अर्थ किया गया है।

(आत्माराम)

ओ३म्

स्वामीजी का पत्रव्यवहार

अब हम पाठकों के परिचयार्थ स्वामीजी का वह पत्रव्यवहार कि जो भिन्न २ स्थानों से अनेक महाशयों के साथ हुआ था यहां प्रकाशित करते हैं।

(१) रमा * के साथ पत्रव्यवहार

श्रीयुतरमांप्रति श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रथमं पत्रम्।

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमार्हायै श्रुतशास्त्रविद्याभ्यासापन्नायै श्रीयुतरमायै दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् ॥

शमत्रास्ति। तत्रत्यं भवदीयमेधमानं च नित्यमाशासे।

अभ्यस्तसंस्कृतविद्याया भवत्याः शुभां कीर्त्तिं निशम्योत्पन्नस्वान्तानन्देन मया श्रीमतीम्प्रति लेखद्वाराभिप्रायं प्रकाश्यैवमेव भवत्या अभिप्रायं विज्ञातुमिच्छामि सद्यः स्वाभिप्रायविज्ञापनेन मामलङ्करोतु ॥

इदानीमग्रे च भवती किं किं कर्त्तुं चिकीर्षति। किं यथा लोकश्रुतिरस्ति सा ब्रह्मचारिणी वर्त्तत इतीदमेवं विद्यते न वा ? सा यत्र कुत्र जनतायां सुशोभितं शास्त्रोक्तलक्षणप्रमाणान्वितं विद्वदाह्लादकरं वक्तृत्वं करोतीत्येतत्तथ्यं न वा ? ॥

श्रुतं मया सा स्वयंवरविधिना विवाहाय स्वतुल्यगुणकर्मस्वभावसहितं कुमारं पुरुषोत्तममन्विच्छतीति सत्यमाहोस्विन्न ? किमेतदकृत्वा ब्रह्मचर्य्ये स्थातुमशक्यमस्ति।

यथाऽऽर्य्यावर्त्तीयाः सत्यो विदुष्यो गार्ग्यादयः कुमार्य्यो ब्रह्मचर्य्ये स्थित्वा स्त्रीजनादिभ्यो यावान् सुखलाभः प्रापितस्तथा तावान् विवाहे कृतेऽनेकप्रतिबन्धकप्राप्त्या प्रापितुमशक्यः। एवं सत्यपि स्वसमानवरं पुरुषं प्राप्य विवाहं कृत्वा यथाऽ-

* यह रमाबाई वही हैं जिन्होंने आजकल पूना में ईसाइयों की ओर से बिधवाश्रम खोल रक्खा है।

नेकाः स्त्रियः सन्तानोत्पत्तिपालनस्वगृहकृत्यानुष्ठाने प्रवर्त्तन्ते तथैव भवत्या इच्छास्ति वा पुनरपि कन्यकाभ्योऽध्यापनस्य स्त्रीभ्यः सुशिक्षाकरणेच्छास्ति ॥

श्रीमती वंगदेशनिवासं कृत्वाऽन्यत्र यात्रां न करोति किमत्र कारणम् ? यावदुपकारः सर्वत्र गमनागमनेन जायते न तादृगेकत्र स्थिताविति निश्चयो मे ॥

यद्यत्रागमनाभिलाषास्ति चेत्तर्ह्यागम्यतां यावानस्यां यात्रायां मार्गे धनव्ययो भविष्यति तावान् भवत्या अत्र प्राप्तेऽवश्यं लभ्येत । यद्याजिगमिषाऽत्र वर्त्तते तर्हि ततो गमनात्प्राक् पत्रद्वारा समयो विज्ञाप्यतामतोऽत्र भवत्याः स्थित्यर्थं स्थानादिप्रबन्धः स्यात् ॥

यदि श्रीमत्युपदेशाय सर्वत्र यात्रां चिकीर्षेत्तर्ह्येतत्स्थानादिनिवासिन आर्य्या भवत्याः सर्वेआर्य्यावर्त्तयात्रार्थे योगक्षेमाय च धनं दातुं शक्नुवन्ति नात्र काचिच्छङ्कास्ति ॥

यदि भवती पत्रं प्रेषयेदथवाऽऽगच्छेत्तर्हि निम्नलिखितस्थानस्य*सूचनया पत्रं भवती वाऽऽगन्तुमर्हतीत्यलमतिविस्तरलेखेन विदुषीं प्रति ॥

रसरामाङ्कचन्द्रेऽब्द आषाढस्य शुभे दले ।
षष्ठ्यां शनौ शिवं पत्रं लिखितं मान्यवर्द्धकम् ॥

श्रीयुतरमा के प्रति श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामी का प्रथमपत्र ॥

स्वस्ति, श्रीमती श्रेष्ठोपमार्हा श्रुतशास्त्रा विद्याभ्यासापन्ना श्रीयुता रमा के प्रति दयानन्द सरस्वती स्वामी की आशीर्वादें अतिशय करके हों। यहां कल्याण है आशा है कि आप भी वहां सदा कल्याणसे वर्द्धित होरही होंगी ॥

संस्कृतविद्या का अभ्यास की हुई आप की कीर्ति सुन कर मनमें आनन्द हुआ श्रीमती पर पत्र द्वारा अपना अभिप्राय प्रकाश कर, आप का भी अभिप्राय इसी प्रकार जानना चाहता हूं। आशा है कि आप शीघ्र अपना अभिप्राय प्रकाश कर मुझे अलंकृत कीजियेगा ॥

अब और आगे आप क्या २ करना चाहती हैं। जैसे लोकश्रुति है कि आप ब्रह्मचारिणी हो क्या यह ऐसा है वा नहीं ॥

आप जहां तहां सभाओं में सुशोभित, शास्त्रोक्त लक्षण और प्रमाणों से युक्त और विद्वान् जनोंके आह्लाद करनेवाली वक्तृताओंको करती हैं यह ठीक है वा नहीं।

---

* मेरट छावनी बाबू छेदीलाल गुमास्ते कमसरयट के द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास पहुंचे। परन्तु इतना लिखना बहुत है कि (मेरठ स्वामी दयानन्द सरस्वती) बराबर पहुंचेगा।

मैंने सुना है कि आप विवाह के लिये स्वयंवरविधि से अपनेतुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले कुमार उत्तम पुरुष को ढूण्ड रही हैं यह सत्य है वा नहीं? क्या विवाह करने के विना ब्रह्मचर्य में रहना अशक्य है?

जैसे आर्यावर्तीय सती विदुषी गार्गी आदि कुमारियों ने ब्रह्मचर्य में स्थित होकर स्त्रीजनों को जितना सुख लाभ प्राप्त कराया है वैसा उतना सुख आप विवाह करने पर अनेक प्रतिबन्धों के कारण प्राप्त नहीं करा सकेंगी ऐसा होनेपर आपकी क्या …ा है कि स्वसमान वर पुरुष को प्राप्त कर विवाह करें और जैसे अनेक स्त्रियें सन्ता…त्ति पालन स्वगृहकृत्य के अनुष्ठान में प्रवृत्त होती हैं वैसे आप भी प्रवृत्त हों वा यह इच्छा है कि कन्याओं को पढ़ावें और स्त्रियों को सुशिक्षा करें।

श्रीमती वङ्गदेश में रहकर और स्थानों पर यात्रा नहीं करतीं इसमें क्या कारण है? मेरा निश्चय है कि जितना उपकार सर्वत्र गमन आगमन से हो सकता है उतना एक स्थान में रहने से नहीं हो सकता ॥

यदि यहां आने की इच्छा हो तो आजाइये इस यात्रा में जितना धन व्यय रास्ते में होगा उतना आप को यहां मिल जावेगा। यदि यहां आना होतो चलने से पूर्व पत्र द्वारा समय की सूचना दें यतः यहां आप की स्थिति के लिये स्थान आदि का प्रबन्ध होजावे ॥

यदि श्रीमती की इच्छा हो कि सर्वत्र उपदेश के लिये यात्रा करें तो आर्यावर्त्त में सर्वत्र यात्रा के अर्थ और योगक्षेम के लिये इसस्थान के निवासी आर्यपुरुष आपको धन दे सकते हैं इसमें कुछ भी शंका नहीं ॥

यदि आप पत्र भेजें अथवा आवें तो निम्नलिखित स्थान*की सूचना के अनुसार पत्र भेजें वा आप आवें ॥ ॥ विदुषी के प्रति अधिक लेख से क्या?

१९३६ वर्ष, आषाढ़मास, शुक्लपक्ष, षष्ठीतिथि, शनिवार को यह मान्यवर्द्धक शिवपत्र लिखा गया ॥ [१]

श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिनं प्रति श्रीयुतरमायाः प्रथमं पत्रम्।

श्रीमदखण्डज्ञानविज्ञानभास्करप्रभासितरोदसीषु श्री श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिपादप्रान्तेषु सानेकप्रणतिसमुदाचारोचितसम्मानपुरःसरं निवेदनम्। आर्य्यपाद! अधुनैव श्रीमत्पादानां सानुग्रहानुकम्पासूचकं पत्रमवाप्य दुःसहशोकादितापपरिशुष्कमपि मदीयं हृदयं सुधासिक्तमिव शान्तिमलब्ध ॥

* देखो नोट पेज नम्बर २९८।

कायं श्रीमत्पदानां देवदुर्लभोऽनुग्रहः ? क्वेयं महत्पादरजः कणिकोपमाया अप्यनर्हा वराकी ? क्वास्यां तत्रभवदनुग्रहप्राप्तेराशाऽपि ? । इदम् परमस्मिन्नकिञ्चित्करे जने दयां कुर्वतां जयति महतामनुपममौदार्यमेव ॥

साम्यं हि सर्वत्र सतान्दयाया नीचोच्चताया गणना न तत्र ।
किन्नाम छायां प्रति संहरन्ति पादाश्रिते नीचतमेपि शालाः ॥

अद्य प्रायश्चिचतुर्वत्सराणि यावदन्तरार्यावर्त्ते समागताया मम निरन्तरं श्रृण्वन्त्याः श्रीमत्पदानां ज्ञानगौरवमतीव सौत्सुक्यमासीन्मनस्तत्रभवत्पाददर्शनाय । परमेतावन्तं कालं न जाने तत्र भवत्पादाश्चतुर्थाश्रमपरिग्रहा अतो वालिशधियं स्त्रियं मां दर्शनदानप्रसादेनानुग्रहीष्यन्ति वा न वेति संशयदोलारूढमनाः कथमपि निजग्राह हृदयौत्सुक्यवेगम् । अद्य भवत्पादानां पत्रमन्तर्द्धे मम संशयान्धताम् ॥

महत्पादैरनुयुक्तो ममोदन्तोन्तराभिलाषश्च यथा जनप्रवादमहमद्यावधि कुमारी । यावज्जीवं कौमार्यमेवावलम्ब्यमिति ममाभिलषितम् । भविष्यति काले प्रबलविधिनियोगवशात्किं भविष्यतीति न वेद्मि ॥

सनातनभारतवर्षभूषणानि ललनारत्नानि गार्ग्याद्या आजन्मब्रह्मचारिण्यो ब्रह्मवादिन्यश्च यथा स्वजातिदेशोन्नतिं साधयन्तिस्म तदुपममहत्तमकर्मनामग्रहणमपि मादृशबालिशमतौ बालिकामात्रायां न शोभत इत्येतत् स्फुटमेव । मास्तु तत् परं नानादेशपर्यटनेन श्रीमत्पादसदृक्षप्रगाढप्रेक्षावन्महद्दर्शनैश्च ज्ञानलवमर्जयितुमीहे ॥

प्रायो वत्सरद्वितयं यावद्वङ्गदेशे रमणीयतरब्रह्मपुत्रपुलिनबहुवृहत्तरशिखरिवनविभागपरिवेष्टिते आसामप्रदेशे च प्राकृतिकसौन्दर्य्याकृष्टदृष्टिः ससहोदराऽहमुवास । अधुना श्रीमत्पादेष्वावेदयन्त्या विदीर्यते हृदयं मम सोदर्यो भ्राता आजन्मसहचरोऽद्य सार्धमासद्वितयमतीयाय लोकान्तरितः । तदीयदुःसहशोकाकुलहृदया सम्प्रति कञ्चित्कालं निभृते स्थाने वस्तुमीहे तथा कृते स्वान्तं स्थिरीभविष्यतीत्याशासे ॥

अत्रान्तरे मासात् सार्धमासाद्वा परे तत्र भवत्पाददर्शनेन जन्म कृतार्थीकरिष्यामि किमधिकेन श्रीमत्पादेषु तदत्रैवाद्य विरम्यते इति शिवम् ॥

आषाढशुक्ल १ भृगुवासरे ————— श्रीमच्चरणरेणोः
१८०२ मितशाके । ————— रमायाः ।

श्रीयुत दयानन्दसरस्वती स्वामी के प्रति श्रीयुतरमा का पहिला पत्र।

श्रीमान् जिन्हों ने द्युलोक और पृथिवी में अखण्ड ज्ञान और विज्ञानका सूर्य प्रकाशित किया उन श्री श्री दयानन्दसरस्वती स्वामी के पादप्रान्तों में अनेक प्रणाम के साथ और सम्यक् उदाचार (सम्बोधन करने के सम्यक् आचार) और उचित सन्मान के साथ निवेदन है ॥

हे आर्यपाद ! अभी श्रीमत्पादों के अनुग्रहयुक्त अनुकम्पासूचक पत्र को पाकर दुःसह शोक आदि तापों से दग्ध हुवा भी मेरा हृदय अमृत से सींचे गये के समान शान्ति को प्राप्त हुवा।

श्रीमत्पादों का देवदुर्लभ अनुग्रह कहां और महान्पुरुषों के पादरज की कणिका की उपमा के भी अयोग्य यह बराकी (बेचारी) कहां ? और इस दासी में आप श्रीमानों के अनुग्रहप्राप्ति की आशा भी कहां ? यह तो मुझ जैसे अकिञ्चित्कर जन पर दया करने वाले महान् पुरुषों की अनुपम परम उदारता ही सर्वत्र जय पा रही है क्योंकि सत्पुरुषों की सर्वत्र दया समान होती है वहां नीच उच्च की गणना नहीं। क्या वृक्ष की शाखायें पादाश्रित अत्यन्त नीच पर से भी कभी अपनी छाया को हटा लेती है ॥

आज मुझे आर्यावर्त्त में आए प्रायः तीन चार वर्ष हुए तब से मैं श्रीमत्पादों के ज्ञान गौरव को बराबर सुनती रही और आप के चरणों के दर्शन के लिये मन अतीव उत्सुक था परन्तु इतने काल तक इस संशयके दोला (पगूरा) पर आरूढ़ मन ने हृदय उत्साह के वेग को रोके रक्खा कि न जाने चतुर्थ आश्रम में स्थित श्रीमत्पाद इस बालबुद्धि मुझ स्त्री पर दर्शनदान के प्रसादसे कृपा करेंगे वा नहीं। आज भवत्पादों के पत्र ने मेरे संशय के अन्धकार को दूर कर दिया ॥

महत्पादों ने मेरा वृत्त और अभिलाषा पूछी है, जनप्रवाद के अनुसार आज पर्यंत मैं कुमारी हूं। मेरीअभिलाषा है कि यावत्जीवन कुमारी रहूं। परन्तु नहीं जानती कि भविष्यत्काल में प्रबलविधि के नियोगवश से क्या होगा ॥

सनातन भारतवर्ष की भूषण स्त्रीरत्न गार्गी आदि आजन्म ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मवादिनी स्त्रियां जैसी स्वजाति और देश की उन्नति साधती थीं यह स्पष्ट है कि उनकी उपमावाले महत्तम काम का नाम ग्रहण भी मुझ बालिशमति बालिका मात्र

में शोभा नहीं देता । वह नहीं सही परन्तु नाना देशों के पर्यटन से और श्रीमत्पादों के सदृश अति बुद्धिमान् महापुरुषों के दर्शन से ज्ञानलव प्राप्त करना चाहती हूं ॥

प्रायः दो वर्ष तक वङ्ग देश और रमणीयतर ब्रह्मपुत्र के पुलिन (रेतले किनारे) और बहुत बड़े पर्वतों के वन विभागों से परिवेष्टित आसाम देश में प्राकृत सौन्दर्य्य से आकर्षित दृष्टि वाली सहोदर के साथ मैं रही थी । अब श्रीमत्पादों की सेवा में निवेदन करते हुए मेरा हृदय विदीर्ण होता है कि आज अढाई मास हुए कि सहोदर भ्राता आजन्म सहचर लोकान्तर को पधारे । अब मैं उसके दुःसह शोक से व्याकुल हृदय होकर कुछ काल तक निभृत स्थान पर रहना चाहती हूं और आशा करती हूं कि ऐसा करने पर चित्त स्थिर होजावेगा ॥

इतने में मास वा डेढ़ मास के पश्चात् श्रीमत्पादों के दर्शन से जन्म को कृतार्थ करूंगी ।

श्रीमत्पादों की सेवा में अधिक लेख से अलम् करके आज यहीं बस करती हूं इति शिवम् ॥

आषाढ शुक्ल १ शुक्रवार — श्रीमत् चरणरेणु
१८०२ शक — रमा का,

श्रीयुतरमां प्रति दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां द्वितीयं पत्रम् ॥

श्रीमदनवद्याभ्यस्तसुविद्यालङ्कारपरिशोभितायै भारतवर्षीयेदानीन्तनस्त्रीजनानां निवारितमूर्खत्वादिकलङ्कादृष्टान्तस्वरूपायै सत्यसौजन्यार्द्रतासभ्यार्य्यविद्वद्वर्य्यस्वभावान्वितप्रकाशितस्वाभिप्रायलेखायै प्रियवरमनसे श्रीयुतरमायै दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः स्वाशिषो भूयासुस्तमाम् ॥

शिवमत्रास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे ॥

यद्भवत्याः प्रेमास्पदानन्दप्रदं पत्रमागतं तत्समालोक्यातीव संतुष्टिं प्राप्तोऽहं पुनरपि श्रीमत्यै यत्किञ्चित्कष्टं दातुं प्रवर्त्ते तत्क्षन्तुमर्हसि । महदाश्चर्य्यमेतद्यदानंदवर्द्धनाय भवतीं प्रति पत्रं प्रेषितं तत्प्रत्युत्तरितमागतं सद्धर्षशोककरं कुतो जातमिति प्रतिभाति नः कस्य श्रीमत्या आर्जवलेखं दृष्ट्वा सुखं सनाभ्यस्य मरणं श्रुत्वा दुःखं च न जायेत ॥

परन्त्वेवं जाते सत्यपीदानीमशक्ये सांसर्गिकसंयोगवियोगात्मकजन्ममरणस्वरूपे लोकव्यवहारे भवती शोचितुं नार्हति ॥

श्रीमत्याः कुत्रत्यं जन्म ? कियदायुः ? किं किमधीतं श्रुतं च ? किं संस्कृतादार्य्यावर्त्तीयभाषाभ्यो भिन्ना काचिदन्यदेशभाषाभ्यस्तास्ति न वा ? । क्वास्ति निजं गृह-

मभिजनश्च मातापितरौ विद्यमानौ नो वा ?। मृताद्बन्धोरन्ये ज्येष्ठाः कनिष्ठा वा भ्रातरो भगिन्यश्च संति न वा ?। यो मृतः स स्वतो ज्येष्ठः कनिष्ठो वा ?। अधुनाऽनघायाः संनिधौ स्वजातीयः पुरुषः स्त्री वा काचिद्वर्त्ततेऽथवैकाकिनी च॥

अहो कुतोऽस्मदीयं पत्रं काकतालीयन्यायवत्सुखदुःखसंयोगसूचकं जातमिति विस्मयामहे। परन्तु विद्वद्वर्य्यायां भवत्यां शोकस्य लेशोपि स्थातुमनर्हं इति निश्चित्य मृडयामः॥

यदि मार्गव्ययार्थो धनापेक्षास्ति तर्हि सद्यो विज्ञाप्यतामियद्धनमत्र प्रेषणीयमिति नात्र शङ्कितुं लज्जितुं योग्या वर्त्ततेऽपूर्वपरिचये कथं धनार्थं लिखेयमिति। यदि स्वसमीपे वर्त्तते तर्हि लेखितुं न योग्यम्। यथा मया पूर्वपत्रे लिखितं तथैवात्र प्राप्तायां श्रीमत्यां लब्धव्यमित्येवानवद्ये कार्य्यमस्तु। यथा भवत्यात्र स्वशुभागमनसूचना द्विविधा कृता तत्राद्यायां प्रतिज्ञायां मासात्पर इति वचसि यदि शक्यमत्रागन्तुं तर्ह्यत्यन्तं वरमिति नियोजनम्। अहमप्यत्र पञ्चविंशतिर्दिनानि स्थातुमिच्छाम्येतदन्तराले समयेऽत्रागमिष्यति चेत्तर्हि मत्समागमो भविष्यति। पुनरितो यत्र गमिष्यामि तस्यापि सूचनां श्रीमतीं प्रति विज्ञापयिष्यामीत्यलमधिकलेखेन विपश्चिद्विचक्षणायाम्॥

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासे सिते दले।
पौर्णमास्यां बुधे वारे लिखित्वेदं ह्यलङ्कृतम्॥

श्रीयुतरमाके प्रति श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामी का द्वितीय पत्र।

श्रीमती अनविद्या और अभ्यास की हुई उत्तमविद्या के अलंकार से शोभिता, भारतवर्षीय वर्तमान समय की स्त्रीजनों के मूर्खत्व आदि कलङ्क के निवारण के लिये दार्ष्टान्तस्वरूपा, सत्त्व सुजनता आर्द्रता और सभ्य आर्य विद्वानों से वरने योग्य स्वभाव युक्त अपने अभिप्राय को लेख द्वारा प्रकाशिका, प्रिय और वर मन युक्ता श्रीयुता रमा के प्रति दयानन्दसरस्वती स्वामी के आशीर्वाद अतिशय करके हों।

यहां कल्याण है आपके कल्याण की नित्य आशा करता हूं। आपका प्रेमास्पद आनन्दप्रद पत्र मिला उसके देखने से अतीव सन्तोष हुआ, श्रीमती को थोड़ा सा कष्ट देता हूं उसे क्षमा करेंगी। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि आनन्दवर्द्धन के लिये आपके प्रति पत्र भेजा गया उसके प्रत्युत्तर में आया हुआ पत्र आते ही हर्ष और शोक का करने वाला क्यों हुआ। कौन है जो श्रीमती के आर्जव लेख को देखकर सुखी

न हो और श्रीमती के भाई का मरण सुनकर दुःखी न हो ? परन्तु ऐसा होने पर भी अब आप इस अशक्य सांसर्गिक संयोगवियोगात्मक जन्ममरणस्वरूप लोकव्यवहार में श्रीमती शोक करने योग्य नहीं हैं।

श्रीमती का जन्म कहां का है ? आयु कितनी है ? आपका अधीत और श्रुत क्या२ है ? संस्कृत और आर्यावर्तीय भाषाओं के अतिरिक्त कोई अन्य देशभाषा क्या आपने अभ्यास की है वा नहीं ? आपका निज गृह कहां है और अभिजन (वंश के लोग) कहां रहते हैं ? माता, पिता विद्यमान हैं वा नहीं ? मृतबन्धु के सिवाय ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता और भगिनियां हैं वा नहीं ? जो मरगया है वह आप से बड़ा था वा छोटा ? अब आप निर्दोषा के पास स्वजातीय पुरुष वा कोई स्त्री है अथवा एकाकिनी हैं ?

अहो हम आश्चर्य में हैं कि हमारा पत्र काकतालीय न्याय की भांति किस प्रकार सुख दुःख संयोग का सूचक हुआ ! परन्तु इस विचार से हमको संतोष है कि आप में जो विद्वानों से सत्कार के योग्य हैं शोक का लेश भी नहीं ठहर सकता ॥

यदि मार्गव्यय के अर्थ धन की अपेक्षा है तो शीघ्र सूचित कीजिये कि कितना धन वहां भेजा जावे आपको ऐसी शंका वा लज्जा नहीं करनी चाहिये कि पूर्व परिचय के विना किस प्रकार आप धन के अर्थ लिखें। यदि अपने पास है तो लिखना योग्य नहीं, जैसे मैंने पूर्व पत्र में लिखा है वैसे ही आपको यहां आने पर मिल जावेगा। हे निर्दोषे ! इसी प्रकार कार्य हो ॥

यथा आपने अपने शुभ आगमन की सूचना दो प्रकार की लिखी है यदि उनमें से पहिली प्रतिज्ञा यह है कि मास के पीछे यदि इस वचन के अनुसार आना शक्य हो तो यह नियोजना अत्यन्त श्रेष्ठ है। मैं भी २५ दिन तक ठहरना चाहता हूं यदि आप इस समय के बीच आवेंगी तो मेरा समागम होगा इसके पीछे जहां जाऊंगा उसकी सूचना श्रीमती को लिखूंगा ॥

इति विदुषी विचक्षणा के प्रति अधिक लेख से अलम् ॥

१९३७ आषाढ़मास शुक्लपक्ष पौर्णमासी बुधवारको लिखकर अलङ्कृत किया गया ॥

५१
/४०

श्रीयुतरमाया द्वितीयं पत्रम् ।

कलकता
१-८-८०

श्रीमद्नवद्योदारसौजन्यगुणप्रवणीकृतसमस्तलोकेषु श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिपादप्रान्तेषु ॥

विहितानेकप्रणातिसमुदाचारोचितसम्मानपुरःसरं निवेदनम्। आर्यपाद! यथासमयन्तत्र भवत्प्रेषितमनुग्रहपत्रद्वितयमवाप्य सातिशयितमाह्लादितास्मि ॥

परमद्यावधि तत्प्रत्युत्तरप्रदाने मदीयदुर्भाग्यवशादसमर्थाऽभवम् । कारणमत्र प्रबलतरा शिरोवेदना जूर्तिश्च । इतः श्रीमत्पाददर्शनार्थं सार्धमुहूर्त्तद्वयपरिमितसमये पूर्वरात्रे वाष्पीययानमारुह्य प्रयियासुरस्मि । तदयमुदंतः श्रीमदाज्ञामनुवर्त्य प्रथमत एव पत्रद्वारा विज्ञाप्यते ॥

अथ श्रीमत्पादैरनुयुक्तो मदीय उदन्तः स यथा—

भारतवर्षस्य दक्षिणपश्चिमस्यां दिशि श्रीमतो मैसूरराज्ञो विषये सह्यपर्वतशिरसि गङ्गामूलनाम्नि स्थाने मदीयं जन्म। अतीयाय द्वाविंशतिः समा वयः सम्प्रति वर्त्तमानं त्रयोविंशतितममब्दम् ॥

अध्ययनस्येयत्ता तु साधारणत एवानुमेया श्रीमद्भिः कचटतपादिवर्णपर्य्यन्तैव । नातोऽन्यत्किमपि वक्तुमुत्सहे । न मया काचिद्विदेशीयभाषाऽवगता । निजावासस्तु पूर्वोल्लिखिते मैसूरप्रदेशएव जन्मस्थानात्किञ्चिद्दूरेऽस्ति पर्वतोपत्यकायाम्। अभिजनश्च तत्रैवाल्पीयानवशिष्टः, पितरौ लोकान्तरितौ । सम्प्रति प्रमीतः सनाभिर्मेत्तः षडब्दं ज्यायानासीत् । अभिजने केवलं सापत्नौ भ्रातरौ स्तः । अधुना न कोपि मत्सन्निधौ सजातीयो जनः । केवलमेका परिचारिका भृत्यश्चैकस्तथैकः कृतकभ्राता चास्ति सह ॥

श्रीमत्पादकृपया पाथेयन्धनमस्ति दिनचतुष्टयपञ्चकान्तरालएव श्रीमत्पाददर्शनेनात्मजन्मकृतार्थीकरिष्यामीति सङ्कल्पितं परमतो दैवेच्छा । किमधिकेन श्रीमत्पादेषु इति ॥ नितान्तमनुगृहीता रमा।

श्रीरमा का द्वितीय पत्र ॥

कलकत्ता
१-८-८०

जिन श्रीमानों ने समस्त लोक को अनवद्य और उदार सुजनता के गुण में झुका दिया है उन श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी के पादप्रान्तों में विहित अनेक प्रणाम सम्यक् उदाचार और उचित सम्मान के साथ यह निवेदन है ॥

आर्यपाद! श्रीमानों के भेजे दो अनुग्रह पत्रों को यथासमय पाकर मैं अत्यन्त आह्लादित हूं परन्तु आज तक उनके उत्तर देने में अपने दुर्भाग्य से असमर्थ रही। इसका

कारण शिर की बड़ी पीड़ा और ज्वर था अब श्रीमत्पादों के दर्शनार्थ पूर्वरात्रि के २॥ अढाई मुहूर्त व्यतीत होने पर वाष्पीय यान में चढ़कर चलने की इच्छा है । और श्रीमानों की आज्ञानुसार यह समाचार पहले ही पत्र द्वारा सूचित करदेती हूं ॥

अब श्रीमत्पादों ने जो मेरा वृत्त पूछा है वह निम्नलिखित है:—

भारतवर्ष के दक्षिण पश्चिम दिशा में श्रीमत् मैसूर राजा के देश में जो सह्य पर्वत है उसकी चोटी पर गङ्गामूल नाम स्थान में मेरा जन्म हुआ । २२ वर्ष आयु व्यतीत हो गई अब तेईसवां वर्ष वर्त्तमान है ॥

श्रीमान् मेरे अध्ययन की सीमा तो साधारणतः क च ट त प आदि वर्ण पर्य्यन्त ही अनुमान करलें इससे अन्य कुछ भी कहने का उत्साह नहीं होता है, मैंने कोई विदेशीय भाषा नहीं पढ़ी । निज आवास पूर्वलिखित मैसूर देश में ही जन्म स्थान से कुछ दूरी पर पर्वत की उपत्यका में है और वंश भी वहां ही अल्प शेष है। माता पिता लोकान्तर को पधार गये हैं । अब जो भ्राता मरा है वह मुझसे ६ वर्ष बड़ा था । वंश में केवल सौतेले दो भाई हैं । अब कोई भी सजातीय जन मेरे पास नहीं है । केवल एक परिचारिका एक भृत्य तथा एक कृतकभ्राता साथ है ॥

श्रीमत्पादों की कृपा से मार्गधन है चार पांच दिन के भीतर ही श्रीमत्पादों के दर्शन से अपना जन्म कृतार्थ करूंगी यही संकल्प है । आगे दैवेच्छा। श्रीमत्पादों के प्रति अधिक से क्या, इति ॥

निश्रान्त अनुग्रहीता रमा ।

श्रीयुत रमायाः तृतीयं पत्रम् ।

श्रीमत्सु श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिपादप्रान्तेषु सविनयप्रणतिनिवेदनम् ॥

आर्यपाद! श्रीमतामुपदेशपत्रमवाप्य मनाक् विस्मितास्मि । सम्पूर्ण शिक्षिता एव ब्राह्मणा इति मुहुरुपदिशतामपि भवतामियमधेदृशी परापरविरुद्धा कथमिव वाक् प्रसरति ? । यदि नाम गोमहिषाश्वाश्वतरादिजातीनामिव वर्णानामपि न सम्भवव्यत्ययस्तदा 'यः कोपि सुशिक्षितो ब्राह्मणस्तद्विपरीतश्च शूद्रश्चाण्डालो वेति' वादस्तु केवलमुन्मत्तप्रलपितमेव । यद्येतदीदृक् तदत्रोल्लिखितादाग्रहान्निवर्त्तितुमुचितं श्रीमतामभ्रान्तपक्षावलम्बिनां यतो-'मनस्येकं वचस्येकं कर्म्मण्येकं महात्मनाम्'। अतो विरुद्धाचरणे 'मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्म्मण्यन्यत्' । इत्यापतति ।

यतोऽधुना भवन्तः केवलं वचसैव सुशिक्षितानां ब्राह्मणत्वमितरेषाञ्च शूद्रत्वं प्रतिपादयन्ति न कर्म्मणा । अह ह !! किमद्याप्ययं (ब्राह्मणवंशजो ब्राह्मणः शूद्रवंशजः शूद्र इति वंशानुक्रमिकः) कुसंस्कारः श्रीमतां हृदयावकाशे जागर्त्ति ? यर्हि लोकसङ्ग्रहार्थमेतादृगाचरितं भवतामपि स्यात्तर्हि तदर्थमेव केवलं मिथ्याप्ररोचनादिनाऽज्ञानां सन्मार्गप्रवर्त्तनाशयेन पौराणिकीः कथा बहुषु पुराणेषु स्मृतिषु च यथामतमनेकानि वचांस्युपन्यसद्भिः प्रत्नैः पुराणस्मृतीतिहासादिप्रवर्त्तकैः किमिव कस्यापराद्धम् ? येन तेऽधुना भवदादीनां विज्ञानामवज्ञाभाजना भवन्ति ॥

भवतान्तु मतमेतत् यत् "असत्यात्सत्यं न सम्भवतीति" दृश्यते च प्रत्यक्षमेवैतत्प्रमाणम् । भवद्भिरध्यापितास्मि च "कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः" इति तत्कथमन्यथा ?

यदि लोकसंग्रहार्थं भवतां भवदनुयायिनाञ्चासति वंशानुक्रमिके वर्णादौ निश्चयप्रवृत्तिस्तदा तत्र सतो ज्ञानतारतम्येन वर्णकल्पनादेर्जातु न सम्भवः ॥

अहन्त्र मूर्खानां परिभवाद्बिभेमि यत आशासे शिक्षितमात्रा मान्न दूषयिष्यन्तीति । यत्र भेतव्यमज्ञाग्रहान्धलोकाद् यत्र चापन्हवः सत्यस्य तादृशि लोकसङ्ग्रहे न प्रवृत्तिर्म्मदीया, किम्बहुना सर्वेषामपि सुशिक्षितानाम् ॥

अस्मि श्रीमत्पदाशिषा सर्वतः कुशलिनी । सदैवमेवानुग्रहपत्रप्रेषणादिनानुग्रहीतव्योयमनुगतः श्रीमदनुकम्पाभाजनं जन इति शिवम् ॥

नितान्तमनुग्रहीता,

रमा ।

श्रीरमा का तृतीयपत्र* ॥

श्रीमान् श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी के पादप्रान्तों में विनय और प्रणाम के साथ निवेदन ॥

आर्य्यपाद ! श्रीमानों के उपदेश पत्र को पाकर मैं थोड़ी सी विस्मित "सम्पूर्ण शिक्षित ही ब्राह्मण होते हैं" इसका बार २ उपदेश करते हुए भी आप की ऐसी परस्पर विरुद्ध वाणी किस प्रकार चलती है ? यदि गौ, भैंस, अश्व

* रमा के द्वितीय और तृतीय पत्र का जो स्वामी जी ने उत्तर दिया था सो व नहीं हो सका अतः न छप सका । संग्रह कर्त्ता ॥

आदि जातियों की भांति वर्णों का भी व्यत्यय सम्भव नहीं है तो आपका यह वाद "कि जो कोई सुशिक्षित है वह ब्राह्मण, इसके विपरीत शूद्र वा चाण्डाल होता है" केवल उन्मत्तप्रलाप ही है। जब यह ऐसा है तो अभ्रान्त पक्ष को अवलम्बन करने वाले श्रीमानों को उचित है कि ऊपर लिखे आग्रह से हट जावें यतः महात्माओं का लक्षण है कि मन में एक, वाणी में एक और कर्म्म में एक हों। इसके विरुद्ध आचरण से "मन में और, वाणी में और, कर्म्म में और" इस वचन का आपतन होता है॥

क्योंकि अब आप केवल वचन से प्रतिपादन करते हैं कर्म्म से नहीं कि "सुशिक्षित ब्राह्मण होते हैं और इतर शूद्र" अहह! आजतक भी कि ब्राह्मणवंश में उत्पन्न ब्राह्मण और शूद्रवंश में उत्पन्न शूद्र यह वंशानुक्रमिक कुसंस्कार श्रीमानों के हृदयाकाश में जागरित है॥

जब कि आप का भी लोकसंग्रह (लोकोपकार) के लिये ऐसा आचरण हो तो उसी लिये ही केवल प्राचीन पुराण, स्मृति, इतिहास आदि के प्रवर्तकों ने मिथ्यारोचक वचन आदि से अज्ञों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने की आशा से पौराणिक कथाओं और बहुत स्मृतियों में यथामत अनेक वचनों को उपन्यास किया तो बताओ किसका अपराध किया जिससे भवदादि विज्ञों के वे अवज्ञा का भाजन हो-रहे हैं॥

आपका तो यह मत है कि "असत्य से सत्य पैदा नहीं होसक्ता" और यह प्रमाण प्रत्यक्ष भी देखा जाता है। और आपने मुझे पढ़ाया है कि "कार्य्य के गुण कारणगुणपूर्वक ही होते हैं अर्थात् जो गुण कारण में होते हैं वही कार्य्य में प्रकट होते हैं" पस यह किस प्रकार अन्यथा होसकता है यदि लोकसंग्रह के लिये आपकी और आपके अनुयायियों की असत् वंशानुक्रमिक वर्ण आदि में निश्चय प्र-त्ति रही तो ज्ञान के तारतम्य (केवल बराबर उपदेश) से कभी भी सत् वर्ण की ापना होने की सम्भावना नहीं॥

मैं मूर्खों के परिभव से नहीं डरती क्योंकि मुझे आशा है कि शिक्षित मात्र र दोष नहीं देंगे। जिस लोकसंग्रह में मूर्खों और आग्रह से अन्धे हुए लोकों कया जावे और सत्य को छिपायाजावे तो उस लोकसंग्रह में मेरी बरन् ्क्षितों की प्रवृत्ति नहीं होसकती॥

त्पदों के आशीर्वाद से मैं कुशल हूं आशा है श्रीमान् अपने दयापात्र

इस अनुचर जन पर सदैव अनुग्रह पत्र भेजने आदि से कृपा किया करेंगे। इति शिवम् ॥ नितान्त अनुग्रहीता रमा

(२) थियोसोफ़िकल सोसाइटी के साथ पत्रव्यवहार ॥

जिन दिनों सन् १८७५ व ७६ ई० में स्वामीजी बम्बई में व्याख्यान देरहे थे उन दिनों में प्रायः अमेरिकन लोग वहां आया करते थे और प्रायः इन लोगों से संवाद भी हुवा करते थे और यही कारण है कि जब वे लोग अमेरिका पहुंच गये तो बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई द्वारा उनसे पत्रव्यवहार हुवा और उसके पीछे स्वामीजी से भी होता रहा यह एक दैवकृत संयोग की बात है कि जिस साल बम्बई में आर्य्यसमाज ने जन्म लिया उसी वर्ष अमेरिका में थियोसोफ़िकल सोसाइटी स्थापित हुई। स्वामीजी और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के नेताओं में जो परस्पर पत्रव्यवहार हुवा उस को हम पाठकों के ज्ञातार्थ यहां अविकल प्रकाश करते हैं।

एच्. एस्. आलकाट साहब का प्रथम पत्र स्वामीजी के प्रति ॥

ब्राडवे नं० ७१ शहर न्यूयार्क (अमेरिका) ता० १८ फरवरी सन् १८७८ ई०

सेवा में-अत्यन्त माननीय पण्डित दयानन्दसरस्वती आर्यावर्त।

स्वामीजी महाराज! अमेरिका तथा अन्यप्रान्तों के कई विद्यार्थी जो कि आन्तरिकाविद्या (अध्यात्मविद्या) की उत्कट जिज्ञासा रखते हैं, अपने आपको आपके चरणों में रखकर यह प्रार्थना करते हैं कि आप उनके हृदयोंको प्रकाशित करें। यद्यपि वे भिन्न २ देशों और भिन्न २ व्यवसाय और आजीविका के मनुष्य हैं तथापि सब एकही उद्देश विज्ञान को प्राप्त करने और उन्नत होजाने में सहमत हैं। इसी अन्तर में तीन वर्ष हुये उन्हों ने एक अपनी सभा बनाई जिसका नाम थियोसोफ़िकल सोसाइटी अर्थात् ब्रह्मान्वेषिणी सभा रक्खा। जोकि उन्होंने ईसाईधर्म में ऐसी कोई बात न देखी कि जो उनकी व्यावहारिक या प्राकृतिक बुद्धि को आश्वासन (तसल्ली) दे और सर्वत्र उसके हानिकारी विश्वासों के बुरे प्रभाव और दुष्परिणाम देखे और ऐसे पूरे पाये जोकि दम्भ से भरे हुये, घाऊघप्प और दम के तोड़ने वाले हैं। और

ऐसी पूजा करनेवाले देखे कि बुरा और अपवित्र जीवन रखते हैं और देखा कि पाप को छिपाते हैं और क्षमा करदेते हैं और भलाई और पवित्रता को अलग रख देते हैं और जोकि ये सब बातें संप्रति ईसाई उपनिवेशों में सर्वसाधारण के लिये हानिकारक हैं, इसलिये हम उनके समुदाय से पृथक् होगये हैं और प्रकाश के लिये पूर्व की ओर झांकते हैं और हमने अपने आपको ईसाईधर्म का प्रबलशत्रु प्रसिद्ध किया है। हमारे इस धार्मिक उत्साह व साहस को देखकर सर्वसाधारण की वृत्ति हमारी ओर आकर्षित हुई है और वे अधिकारप्राप्त जन वा समाचारपत्र जिनका सांसारिक अभिलाष वा सामाजिक स्वार्थ ईसाईधर्म से मिला हुवा है, हमारी निन्दा करते हैं और नास्तिक, काफ़िर और गंवार कहते हैं। अठारह महीने व्यतीत हुये इस बड़े शहर में जिसमें दसलाख से अधिक ईसाइयों की आबादी है हमने एक को अपने समुदाय में से दफ़न किया और आग और रोशनी और पुरानी छाल जो कि सांप के साथ गई थी मये और अलामतों के इस्तअमाल किया, छै महीने के बाद हमने लाश को उसके कुछ दिन के आराम की जगह से निकाल कर उसको अपने पूर्वज आर्य्यों की रीति के अनुसार जलाकर भस्म करदिया। हम सिर्फ़ नवयुवक और जोशीले पुरुषों की ही मदद नहीं चाहते हैं किन्तु उनकी भी जो अनुभवी और स्वामी हैं, इसलिये हम आपके चरणों में शिर नवाते हैं जैसे कि बच्चे मां बाप के चरणों में पड़ते हैं और कहते हैं कि हे गुरो! हमारी ओर देख और हमको बतला कि हम क्या करें, हमको अपनी शिक्षा और सहायता दें।

यहां लखूखा मनुष्य हैं जो आत्मिकप्रकाश से वञ्चित हैं और अनुचित वासना और नास्तिकता के अंधेरे में पड़े हुये हैं और वे आपही अपनी भुलावट, पक्षपात और व्याकुलता पर सन्तोष नहीं करते किन्तु अपनी संपत्ति, अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और ठण्डे न होने वाले जोश से पूर्वीय प्राचीन धार्मिक साहित्य से घोर संग्राम करना चाहते हैं और मूर्ख मनुष्यों को ईश्वर की प्राप्ति का झूठा और बनावटी मार्ग ग्रहण कराने में अपना समय लगाते हैं। हमारी सभा के सभासदों की पहुंच केवल समाचार पत्रों तक है। हम चाहते हैं कि सब ईसाई देशों में पूर्वीय साहित्य का ठीक२ स्वरूप दिखलावें और उन समुदायों में जिनको कि ईसाई बुतपरस्त और गंवार कहते हैं सच्चा प्रभाव उस धर्मका कि झूठे पादरी उसके स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत करते हैं, प्रकट करदें, जिनको कि पूर्वीय मनुष्य कहते हैं और जोकि संस्कृत एवं अन्य प्राचीन भाषाओं को सीखते हैं। वेदों तथा और पवित्र पुस्तकों के अनुवाद करने में कांट फांट व छल करते हैं। हमारी इच्छा यह है कि हम शुद्ध अनुवाद

जिसको कि विद्वान् पण्डित लोग करैं, उनकी व्याख्याओं के सहित छपवा देवें। यदि आप हमारी सभा से पत्रव्यवहार करना स्वीकार करलें तौ हमको अत्यन्त कृतार्थ और गौरवयुक्त करैं। आपकी कृपा और सहायता से हमको बड़ा लाभ होगा हम अपने आपको आपकी शिक्षा के अधीन रखते हैं। शायद हम किसी और प्रकार से आपको उस पवित्र काम के पूरा करने में जिसमें कि आप इस समय तत्पर हैं, सहायता दें। क्योंकि हमारे युद्ध का मैदान हिन्दोस्तान तक है, हिमालय से लेकर रासकुमारी तक ऐसा काम है जिसको कि हम करसकते हैं। स्वामीजी! आप अपने सजातीयों के वेष और बहुरूप से हमारे दिलों को खूब जानते हैं आप हमारे दिलों की तरफ़ ध्यान दीजिये और देखिये कि हम सच कहते हैं, सोचिये कि हम आपके पास नम्रभाव से आते हैं न कि अभिमान से और सच जानिये कि हम आपकी शिक्षा मानने के लिये और उस धर्म के पूरा करने के लिये कि जो आप हम को बतलावें सर्वथा उद्यत हैं। यदि हम आपको एक पत्र लिखें तौ आप जान जायेंगे कि ठीक २ क्या हम जानना चाहते हैं और वह वस्तु जिसकी हमको आवश्यकता है, हमको देंगे। सभा की ओर से हे महाशय! मैं अपने आपको बड़े विनय के साथ हेनरी. एस्. आलकाट सभापति ब्रह्मान्वेषिणी सभा लिखता हूं।

श्री थियोसोफ़ीकेलसोसाइट्याख्यसभासदः प्रति श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रथमं पत्रम्।

स्वस्तिश्रीयुतानवद्यगुणालङ्कृतेभ्यः सनातनसत्यधर्म्मप्रियेभ्यः पाखण्डमतनिवृत्तचित्तेभ्योऽद्वैतेश्वरोपासनमिच्छुभ्यो बन्धुवर्गेभ्यो महाशयेभ्यः श्रीयुतहेनरीएस् ओलकाटाख्यप्रधानादिभ्यः श्रीमन्मेडमएच्पीविलावस्टक्याख्यमन्त्रिसहितेभ्यःथीयोसोफीकेलसोसाइटयख्यासभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतिस्वामिन आशिषो भवन्तुतमाम्॥

शमत्रास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे॥

यच्छ्रीमद्भिः श्रीमन्महाशयमूलजीठाकरशीहरिश्चन्द्रचिन्तामणितुलसीरामयादवज्याभिधानानां द्वारा पत्रं मन्निकटे संप्रेषितं तद्दृष्ट्वाऽत्यन्त आनन्दो जातः॥

अहो अनन्तधन्यवादार्हैकस्य सर्वशक्तिमतः सर्वत्रैकरसव्यापकस्य सच्चिदानन्दानन्ताखण्डाजानिर्विकाराविनाश्यन्यायदयाविज्ञानादिगुणाकरस्य सृष्टिस्थितिप्रल-

यमुख्यनिमित्तस्य सत्यगुणकर्म्मस्वभावस्य निर्भ्रमाखिलविद्यस्य जगदीश्वरस्य कृपया पञ्चसहस्रावधिसंवत्सरप्रमितव्यतीतात् कालान्महाभाग्योदयेनासमक्षव्यवहाराणामस्मत्प्रियाणां पातालदेशे निवसतां युष्माकमार्य्यावर्त्तनिवासिनामस्माकं च पुनः परस्परं प्रीत्युद्भवोपकारपत्रव्यवहारप्रश्नोत्तरकरणसमय आगतः ॥

मया श्रीमद्भिः सहातिप्रेम्णा पत्रव्यवहारः कर्तुं स्वीक्रियते । अतः परं भवद्भिर्यथेष्टं पत्रप्रेषणं श्रीयुतमूलजी ठाकरश्याख्यहरिश्चन्द्रचिन्तामण्यादिद्वारा मन्निकटे कार्य्यम् । अहमपि तद्द्वारा श्रीमतां समीपे प्रत्युत्तरपत्रं प्रेषयिष्यामि । यावन्मम सामर्थ्यमस्ति तावदहं साहाय्यमपि दास्यामि ॥

भवतां यादृशं कृश्चीनाख्यादिसंप्रदायेषु मतं वर्त्तते तत्र ममापि तादृशमेवास्ति । यथेश्वर एकोस्ति तथा सर्वैर्मनुष्यैरेकेनैव मतेन भवितव्यम् । तच्चैकेश्वरोपासनाकरणाज्ञापालनसर्वोपकारं सनातनवेदविद्याप्रतिपादितमाप्तविद्वत्सेवितं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं सृष्टिक्रमाविरुद्धं न्यायपक्षपातरहितधर्म्मयुक्तमात्मप्रीतिकरं सर्वमताविरुद्धं सत्यभाषणादिलक्षणोज्ज्वलं सर्वेषां सुखदं सर्वमनुष्यैः सेवनीयं विज्ञेयम् ।

अतो भिन्नानि यानि क्षुद्राशयछलविद्यास्वार्थसाधनाधर्म्मयुक्तैर्मनुष्यैरीश्वरजन्ममृतकजीवनकुष्ठादिरोगनिवारणपर्वतोत्थापनचंद्रखण्डकरणादिचरित्रसहितानि प्रचारितानि सन्ति तानि सर्वाण्यधर्म्ममयानि परस्परं विरोधोपयोगेन सर्वसुखनाशकत्वात् सकलदुःखोत्पादकानि सन्तीति निश्चयो मे ॥

कदैवं परमेश्वरस्य कृपया मनुष्याणां प्रयत्नेनैतेषां नाशो भूत्वाऽऽर्य्यैः परम्परया सेवितमेकं सत्यधर्म्ममतं सर्वेषां मनुष्याणां मध्ये निश्चितं भविष्यतीति परमात्मानं प्रार्थयामि ॥

यदा श्रीमतां पत्रमागतं तदाहं पञ्चालदेशमध्यवर्त्तिलवपुरेन्यवात्सम् । अत्रात्याय्र्यसमाजस्था बहवो विद्वांसः श्रीमतां पत्रमवलोक्यातीवाऽऽनन्दिता जाताः । नाहं सततमेकस्मिन् स्थाने निवसामि तस्मात् पूर्वोक्तद्वारैव पत्रप्रेषणेन भद्रं भविष्यति॥

यद्यपि बहुकार्य्यवशान्ममावकाशो न विद्यते तथापि भवादृशानां सत्यधर्म्मवर्धने प्रवर्त्तितशरीरात्ममनसां सर्वप्रियकरणे कृतैकनिष्ठानां सत्यधर्म्मोन्नत्या सर्वमनुष्यप्रियस्य कर्तॄणां दृढोत्साहयुक्तानां श्रीमतामभीष्टकरणाय मयावश्यं समयो रक्षणीय इति निश्चित्य परोपकाराय भवन्तो मया सहाहं च श्रीमद्भिः सह सुखेन पत्रव्यवहारं कुर्य्यामेत्यलमतिविस्तरलेखेन बुद्धिमद्वरेषु ॥

श्रीमन्महाराजविक्रमस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरे एकोनविंशतितमे १९३५ संवत्सरे वैशाखकृष्णपक्ष ५ पञ्चम्यामादित्यवासरे पत्रमिदं लिखितमिति वेदितव्यम् ॥

(२१ अप्रेल सन् १८७८ ई०)

(दयानन्दसरस्वती)

श्री थियोसोफीकेलसोसाइटी के सभासदों के प्रति श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी का प्रथम पत्र ॥

श्रीयुत हेनरी एस ओलकाट नाम प्रधान और श्रीमती मेडम ऐच. पी. ब्लैवस्टकी नाम मन्त्री सहित, स्वस्ति श्रीयुत प्रशंसित गुणोंसे अलङ्कृत, सनातन धर्म्म के प्रिय, पाखण्डमतों से निवृत्तचित्त, अद्वैत ईश्वर की उपासना के इच्छुक बन्धुवर्ग महाशय थियोसोफीकलसोसाइटी नामक सभा के सभासदों को स्वामी दयानन्द सरस्वती के बहुत आशीर्वाद हों ॥

यहां कल्याण है और आपके कल्याण की नित्य आशा करता हूं ॥

श्रीमानों ने जो पत्र श्रीमान् महाशय मूलजी ठाकर श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और तुलसीराम यादव जी महाशयों द्वारा मेरे पास भेजा उसको देख कर अत्यन्त आनन्द हुआ ॥

अहो महाभाग उदय हुये कि एक अत्यन्त धन्यवाद के योग्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र एकरस, व्यापक, सच्चिदानन्द, अखण्ड, अज, निर्विकार, अविनाशी न्याय-दया-विज्ञान आदि गुणोंकी खान, सृष्टि स्थिति प्रलय के मुख्य निमित्त, सत्य गुण-कर्म्म-स्वभाव, निर्भ्रम, सर्वविद्यावान् जगदीश्वर की कृपा से वह समय आगया कि ५ सहस्र वर्षों से पीछे असमञ्ज व्यवहार करने वाले हमारे प्रिय पाताल देश निवासी आप लोग और आर्य्यावर्त्त निवासी हम लोग पुनः परस्पर प्रीति और उपकार उत्पन्न करने वाले पत्रव्यवहार और प्रश्नोत्तर करने लगे ॥

मैं अति प्रेम से आप श्रीमानों के साथ पत्रव्यवहार करना स्वीकार करता हूं। इस के पीछे आप श्रीयुत मूलजी ठाकर श्री नामक हरिश्चन्द्र चिन्तामणिद्वारा मेरे पास यथेष्ट पत्र भेजा करें। मैं भी उनके द्वारा श्रीमानों के पास प्रत्युत्तर पत्र भेजा करूंगा। जितना मेरा सामर्थ्य है उतनी सहायता भी करूंगा ॥

कृश्चियन नाम आदि सम्प्रदायोंके विषयमें जैसी आपकी मति वैसीही मेरी भी है ॥

जैसे ईश्वर एक है वैसे सब मनुष्यों का मत भी एक होना चाहिये, और वह मत यही होसकता है कि जिस में एक ईश्वरकी उपासना और उसकी आज्ञा पालन का विधान हो, जो सर्व उपकारक हो, जो सनातन वेदविद्या से प्रतिपादित, आप्त विद्वानों से सेवित, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध सृष्टिक्रम के अविरुद्ध (अनुकूल) हो, जो अन्याय और पक्षपात रहित धर्म्मों से युक्त आत्मा की प्रीति करने वाला सर्व मतों से अविरुद्ध सत्य भाषण आदि लक्षणों से उज्ज्वल, सब को सुखों का देने वाला और सब मनुष्यों से सेवन करने के योग्य हो ॥

मेरा निश्चय है कि इस से भिन्न जो धर्म्म जिन में ईश्वर का जन्म मृतकों को जिवाना, कुष्ठादि रोगों का निवारण करना, पर्वतों का उठाना, चन्द्र का खण्ड करना आदि चरित्र हैं, उनका प्रचार छली क्षुद्राशय अविद्वान् स्वार्थसाधनतत्पर मनुष्यों ने किया है ॥

परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि कब आपकी कृपा से मनुष्य यत्न करेंगे और इन (पाखण्डमतों) का नाश होगा और परम्परागत आर्यों से सेवित एक सत्यधर्म्म सर्व मनुष्यों में निश्चित होगा ॥

जब श्रीमानों का पत्र आया तब मेरा निवास पाञ्चाल देश के लवपुर में था। यहां भी आर्य्यसमाजस्थ बहुत विद्वान् श्रीमानों का पत्र देख अति आनन्दित हुए। मैं एक स्थान पर सदा नहीं रहता हूं अतः पूर्वोक्त द्वारा पत्र प्रेषण अच्छा होगा। यद्यपि मुझे अवकाश नहीं तथापि जिन्होंने सत्यधर्म्मके वर्द्धन में शरीर, आत्मा, मन को लगाया हुआ है सब के प्रिय करने में जिनकी एक निष्ठा है जो सत्य धर्म्म की उन्नति से सब मनुष्यों का प्रिय कररहे हैं उन आप जैसे दृढोत्साही श्रीमानों के अभीष्ट करने के लिये अवश्य मुझे समय रखना चाहिये अतः यह निश्चय हुआ कि परोपकार के अर्थ आप मेरे साथ पत्रव्यवहार करें और मैं आप के साथ ॥

वर बुद्धिमानों के सन्मुख अति विस्तार पूर्वक लेखकी आवश्यकता नहीं ॥

विदित रहे कि श्रीमन्महाराज विक्रम के १९३५ संवत्सर वैशाख कृष्णपक्ष की पञ्चमी आदित्यवार को यह पत्र लिखा गया ॥

(२१ अप्रेल १८७८ ई०)

दयानन्द सरस्वती।

श्रीयुत बा० हरिश्चन्द्रचिन्तामणिजी के प्रति एच्० पी० ब्लैवस्टकी और एच्० एस्० आलकाट के पत्र ॥

मेरे प्यारे भाई ! जोकि मैं शहर न्यूयार्क से रुखसत होने को भी हूं ताकि इच्छित आराम समुद्र पर पाऊं और यह सम्भव नहीं है कि मैं वापिस आजाऊं यूरोप और आर्यावर्त को । आया मैं लण्डन में एक महीना या एक वर्ष ठहरूंगी यह ईश्वर को मालूम है, इसलिये मैंने अपनी कुछ पुस्तकें सीधे बम्बई में भेजने का प्रबन्ध करलिया है । कोई ढाई सौ जिल्दें और इतनी विना जिल्द के हैं, सभापति ने कुछ अपनी तरफ़ से दी हैं । यदि मैं किसी कारण विशेष से वहां स्वयं न आसकी तो आप कृपा करके आर्य्यसमाज के किसी पुस्तकालय की भेंट कर दीजिये । कारण विशेष से मेरा अभिप्राय मृत्यु है क्योंकि सिवाय मौत के और कोई वस्तु हम को आर्यावर्त में ठीक समय पर पहुंचने से रोक नहीं सकती । मैंने यह इरादा कर लिया है कि जब मैं अपने वतन (आर्यावर्त) में पहुंचूंगी तो बहुतसी पुस्तकें ऐसे समाज की भेंट करूंगी जिस समाज को कि आप बतलावेंगे और मुझे आशा है कि मैं बहुतसी पुस्तकें इङ्गलैण्ड से लाऊंगी, स्काट साहब भी लावेंगे । मैं आशा करती हूं कि आप मेरे लिखने पर और इतना कष्ट देने पर क्रुद्ध न होंगे, परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं इसक़दर हर्ष के श्वास कभी नहीं लेती हूं जैसे कि इस समय जब कि मैं आर्यावर्त को लिखती हूं या आर्यावर्त की चिट्ठियां मेरे पास आती हैं । मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं अपने प्राण और मन का एक भाग आर्यावर्त को हर समय भेज रही हूं ।

न्यूयार्क २१ मई ७८ ई० ह० एच्० पी० ब्लैवस्टकी

मेरे प्यारे भाई ! मैं अपनी बहनकी चिट्ठी में कुछ पंक्तियां अपनी ओर से अधिक करके सूचना देता हूं कि मैंने चिट्ठी के मज़मून को पढ़ा और उसके उचित अनेक प्रस्तावों को मैं बहुत पसन्द करता हूं । इस प्रस्ताव के सुझाते वक्त कि हमारी सोसाइटी आपके आर्यसमाज की एक शाख प्रसिद्ध हो जावे और पण्डित दयानन्द सरस्वती के और मेरी शासनाओं के आधीन रहे । मैं ऐसे उस्ताद (आचार्य) और रहनुमा (पथप्रदर्शक) की जैसे कि वह बुद्धिमान् और स्पष्टवक्ता हैं, अधीनता प्रकट करता हूं हमको बहुत कुछ करना है पहिले उसके कि हम बड़े २

फलों की आशा करें और इसरीति पर हम बड़ी २ बातों का चमत्कार दिखला सकेंगे। आप मुझको अपना भाई समझें।

न्यूयार्क २१ मई १८७८ ई० ह० एच्० एस्० आलकाट

आर्यसमाज के सभासदों के प्रति थियासोफीकल सोसाइटी के सेक्रेटरी का पत्र ॥

सेवा में—

सरदारान आर्यसमाज—

सभ्यजनो! मैं आपको विनय के साथ सूचना देता हूं कि ब्रह्मान्वेषिणी सभा के अधिवेशन में जो कि न्यूयार्क में २२ मई १८७८ ई० को सभापति ने ईवल्डर साहब उपसभापति के प्रस्ताव और एच्. पी. व्लेवस्टकी के पत्र व्यवहार की पुष्टि से सब ने एकमत होकर यह निर्धारण किया कि यह सभा आर्यसमाज के उस प्रस्ताव को कि उसके साथ मिल जावे और उस सभा का नाम ब्रह्मान्वेषिणी सभा आर्य्यसमाज आर्यावर्त होजावे, स्वीकार करती है और यह भी निर्धारित हुआ कि ब्रह्मान्वेषिणी सभा अपनी और अपनी शाखाओं के लिये (जो अमेरिका, यूरोप और अन्य उपनिवेशों में हैं) स्वामी दयानन्द सरस्वती पण्डित को आर्यसमाज का आचार्य संस्थापक (बानी) और सरदार मानती है आप की सम्मति और आज्ञाओं का जो कि आप कृपा करके दें मैं प्रतीक्षक (मुन्तज़िर) हूं।

न्यूयार्क २२ मई १८७८ ई० ह० अगस्टस् गस्टम् रिकार्डिङ्ग सेक्रेटरी

बा० हरिश्चन्द्रचिन्तामणि के प्रति एच्० एस्० आलकाट के ३ पत्र।

सेवा में—

बाबू हरिश्चन्द्रचिन्तामणिजी

प्यारे भाई! आपकी चिट्ठी २१ अप्रैल ७८ की आई जिसका अभिप्राय यह मालूम होता है कि हम आपके उस उत्तर की प्रतीक्षा न करें कि आया आप हमारी ब्रह्मान्वेषिणी सभा का अपने आर्यसमाज की शाख होजाना पसन्द करते हैं वा नहीं, सभा का कल एक अधिवेशन संगठित हुआ जिसमें बहुत से सभासद् उपस्थित

हुए थे, सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि आपका प्रस्ताव दोनों सभाओं के मिलजाने और उस सभा का नाम बदल जाने का स्वीकार किया जावे। ज़रूरी ज़ाब्ता सर्टीफ़िकेट इसके साथ भेजा जाता है और आपसे प्रार्थना की जाती है कि आप उसको अभीष्ट पद पर पहुंचावें। अपरञ्च-एक पाण्डुलिपि (मसव्विदा) नई तरह के डिप्लोमा का जो कि हम जारी करना चाहते हैं (इस शर्त पर कि आप और कोई अच्छी तजवीज़ न निकालें) भेजता हूं। इस नये ढंग के डिप्लोमे का छपवा देना इस अभिप्राय से कि देखने की तकलीफ़ दूर होजावे, उचित समझता हूं और जो कि आर्यसमाज का माननीय आचार्य हम से इतनी दूर है कि हरएक डिपलोमे को हम उसके हस्ताक्षर के लिये नहीं भेज सकते। इसलिये हम विनय के साथ यह प्रार्थना करते हैं कि वह नियत स्थान पर संस्कृत या किसी और भाषा में जैसा कि उनका दस्तूर है, हस्ताक्षर करदें कि वे भी शेष डिप्लोमे के साथ छपजावें। यदि वह अपनी या आर्यसमाज की मुहर काम में लाते हों तो कृपया उसपर लगादें, हम उसको भी छपवालेंगे। हमारा यह इरादा है कि दुनियां भर में अपने मेम्बरों में हरएक के पास नया डिप्लोमा भेजें कि उसको बजाय पुराने के रक्खें। मैं अपने सहयोगियों(ब्रह्मान्वेषिणी सभाके सभासदों) के इस बात पर एकमत होने से कि ये दोनों मिलजायें, बहुत प्रसन्न हूं। विशेष कर प्रोफ़ेसर वल्डर की स्वीकृति से कि जो हमारे विद्वान् और पहिले उपसभापति हैं। यदि आप उनको जानते होते तो निस्सन्देह आप भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते।

न्यूयार्क २३ मई १८७८ ई० ह० हेनरी. एस्. आलकाट सभापति

सेवा में- हरिश्चन्द्र चिन्तामणि-

प्यारे भाई ! हम आज स्वामी दयानन्द सरस्वती का कृपापत्र अपनी ज़ाब्ते की चिट्ठी के उत्तर में पाने से बहुत प्रसन्न हुवे। हमारा बड़ा गौरव केवल इस बात से ही नहीं हुआ कि उन्होंने हमारे डिप्लोमे को स्वीकार करलिया। किन्तु इस बात से भी कि उन्होंने अपनी सम्मति को हमारे पास अनुग्रहपूरित शब्दों में लिखकर भेजा। मैं आप से पूर्ण रीति पर उस हर्ष का कि जो हमारे और आर्यसमाज के बीच में भाईचारा होजाने से उत्पन्न हुआ है, वर्णन नहीं कर सकता। जैसे कि पथिक को बीचोंबीच जंगल में जहां कि जंगली जानवर उसके चारों ओर हों, बचाने वाले की आवाज़ सुनकर हर्ष होता है वैसे ही आपके श्रेष्ठ समाज का उत्तर समुद्र

को पार उतर कर हमारे पास आया। क्योंकि इन ईसाइयों से बढ़कर शत्रु हमारे लिये (जिनको वे काफ़िर और मूर्तिपूजक कहते हैं) और कौन जानवर हैं। जब कि आपके अनुग्रह का हाथ हमारे ऊपर है तो हम शत्रुओं का कुछ भी भय नहीं करते। मेरा प्रणाम.........

न्यूयार्क २९ मई १८७८ ई० ह० एच्० एस्० आलकाट सभापति

बनाम- हरिश्चन्द्र चिन्तामणि-

प्यारे भाई! हर मेम्बर के पास नये डिप्लोमे भी भेजदिये जाते बशर्ते कि महामान्य स्वामी हमारे नाम के परिवर्त्तन और आर्यसमाज के साथ मिलजाने को पसन्द करलेते, अब जब वह पसन्द करलेंगे तो नये डिप्लोमे पुरानों के बदले भेज दिये जावेंगे। मैं मान्यवर और प्रसिद्ध आचार्य के उत्तर का (दोनों सभाओं के संयोग के विषय में) प्रतीक्षक हूं।

न्यूयार्क ३० मई १८७८ई० हस्ताक्षर एच्. एस्. आलकाट सभापति

स्वामीजी के प्रति एच्० एस्० आलकाट साहब का द्वितीय पत्र ॥

सेवा में-

अत्यन्त गौरवान्वित महामान्य पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी

महामान्य आचार्य! वह कृपापत्र जो आपने अनुग्रह करके हमारे भाई हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई के कहने से भेजा, हमारे पास सकुशल पहुंचा आपने जो आशीर्वाद हमारे लिये दिया और हमारे परिश्रम को सराहा और हमारी मङ्गल कामना की, इससे ब्रह्मान्वेषिणी सभा के समस्त सभासद् और उसके अधिकारियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बदले में यही आवश्यक है कि हम अपने उत्साह से भरी हुई यह आशा प्रकट करें कि आपका शरीर इस पृथिवी पर जबतक कि आप का शुभ काम पूरा न हो जावे, बनारहे और मनुष्यजाति आपकी उत्तम शिक्षाओं के सुनने और उनसे लाभ उठाने में सर्वदा यत्न करती रहे।

(२) महामान्य! आपके यहां पूरी भलाई अर्थात् ईश्वर की सभा और गुणों के वर्णन से हमको मालूम होता है कि हम पश्चिम के तुच्छ विद्यार्थी अपने आर्य पितृपितामह की शिक्षा के उलटे अर्थ नहीं लगाते हैं। वह परब्रह्म जिसका कि

तुम अपने शिष्यों को ध्यान करना बतलाते हो, वही एक नित्य पवित्र आत्मा है, जिसको कि हमने इन ईसाइयों को बतलाया है कि तुम्हारी उपासना की मुख्य वस्तु है बजाय उस निर्दय और अस्थिर चित्त मौलाक अर्थात् 'जेहुवा' के। परन्तु औरों को बतलाना कठिन है, जब कि हमको आप सीखने की अत्यन्त आवश्यकता है। दिन ब दिन हमको अपनी अयोग्यता अधिक मालूम होती जाती है और यदि हमको इस बातकी सत्यता का विश्वास न होता कि जिस मनुष्य ने कुछ भी सत्य सीखा है, उसको अपने जिज्ञासु भाई से छिपा न रक्खे तो हम बिलकुल सर्वसाधारण की दृष्टि से अलग रहने की तरफ़ झुके हुये होते, जबतक कि हम अपेक्षित समय इस बहुमूल्य विद्यारत्न के सीखनें मे (जिसका कि आपने वचन दिया है कि हम तुमको सिखलावेंगे) न लगादेते।

(३) मैंने उचित रीति पर अपने भाई हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास वह प्रस्ताव (रिज़ोल्यूशन) जोकि इस सभा में सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ कि ब्रह्मान्वेषिणी सभा आर्यसमाज की शाख़ होजावे और उसका नाम इसी ढंगपर बदल जावे, बशर्ते कि आप हमारी काररवाई को पसन्द करें भेज दिया, चूंकि हम जानते हैं कि हम लोग आर्यों के वंश (नस्ल) से हैं और हमारी विद्या संसार और परमार्थ की आर्यों के यहां से आई है। हम आस्तिकों को गौरव होगा यदि आप इस बातकी आज्ञा देदें कि हम अपने आपको आपका शिष्य बतलावें और पश्चिम में सत्य २ वृत्तान्त आर्यसमाज और उसके सिद्धान्तों का फैलावें, हम को आज्ञा दीजिये कि हम आपका 'गुरु' 'पिता' और 'आचार्य' नाम धरें और हम ऐसे काम करने की चेष्टा करेंगे जिनसे कि ऐसे बड़े अनुग्रह के पात्र हों। वैदिक फ़िलासफ़ी के विषय में हम बिलकुल अबोध (बालक) हैं, हमें सिखलाइये कि हम लोगों से क्या कहें और उसको किस प्रकार बतलावें, हम आपके आदेश की प्रतीक्षा करते हैं और उसका पालन करेंगे।

(४) जो कुछ कि आपकी सम्मति में हमारे लिये करना या किये जाना आवश्यक या उचित मालूम हो, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यथाशक्ति किया जायगा।

यहां के मनुष्य तुच्छ, दुराग्रही और अज्ञानी हैं, उनकी धार्मिक उपासना शरीर, इन्द्रिय और उनके भोगों की तरफ अर्थात् भय, अभिमान, लालच, ईर्ष्या और द्वेष की तरफ़ झुकी हुई है। उनके मन्दिर और गिरजा एक दूसरे से भड़क में बात

करते हैं। पाप और दुराचार मखमल और रेशमी पोशाकों और मुलायम तकियों के पलंग के कोनों में सुरक्षित बैठे हैं, इनके महन्त और पुजारी दुराचारी और दुःशील मनुष्यों के अधीन हैं और ऐसों से जो खूब देते हैं और बहुत कुछ प्रतिज्ञा करते हैं, स्वर्ग में ईश्वर और देवताओं के साथ सदा निवास करने का वचन देते हैं। परन्तु तो भी हर शहर और कस्बे में बहुत से जिज्ञासु और विचारशील स्त्री पुरुष भी हैं जोकि प्रसन्नता से आर्यसमाज में शामिल हो जाते यदि उनको उसके होने और उस सच का जोकि वह बतलाने के लिये उत्पन्न हुआ, ज्ञान होता। चूंकि यहां पर कोई स्वामी या पण्डित नहीं है जोकि वेदि पर से उपदेश करे, इसलिये ऐसे मनुष्यों के हृदयों पर हमको चाहिये कि अखबारों के द्वारा प्रभाव डालें जो कुछ कि हम अपनी तुच्छ शक्ति से कर सकते हैं, हम करने के लिये उद्यत और इच्छुक बैठे हैं, जब कि आपकी शिक्षायें हमारे पास आवें, हम प्रार्थना करते हैं कि हमको वे शिक्षायें शीघ्र दीजिये, जितना शीघ्र कि आपको अपने बहुत से आवश्यक कामों के दबाव से अवकाश मिले।

(५) आप आर्यावर्त्त के समस्त समाजों को यह विश्वास दिला दीजिये कि दूर इस पृथिवी के परली ओर स्त्री और पुरुषों का एक समूह ऐसा है जिनके कि तुम्हारे जैसे ही धार्मिक विचार और सिद्धान्त हैं और जो तुम्हारे जैसा ही पुनर्जन्म के विषय में विश्वास रखते हैं हम सहानुभूति के उस सम्बन्ध द्वारा जोकि विचार की अनुकूलता से एक हृदय से दूसरे हृदय तक फैलता है आर्य भाइयों को भ्रातृस्नेह और परस्पर विश्वास का सन्देश भेजते हैं।

(६) हम आप से पूछते हैं कि आर्यसमाज के उद्देश्य और नियम क्या हैं, और उस की कारखाई किस रीति पर होती है, कौन भरती होते हैं और विशेषकर कौन भरती नहीं होते और भिन्न २ धार्मिक सम्प्रदायों के साथ और मनुष्य समुदाय के साथ इस देश में और यूरोप में हमारी क्या नीति (पालिसी) होनी चाहिये। कौन पश्चिमीय भाषाओं की पुस्तकें हम को ब्रह्मविद्या के जिज्ञासुओं को पढ़ने के-लिये बतलानी चाहिये? मनुष्य, उसकी उत्पत्ति, परिणाम और शक्तियें क्या हैं और सृष्टि (कुदरत) क्या वस्तु है ? वे नियम जो कि आर्यावर्त्त में प्रचलित किये गये हैं कहां तक परिवर्त्तन कियेजावें जिससे कि पाश्चात्य देशीय भिन्न २ देशकालके अनुकूल होजावें। हम को विशेषतः यह जानना आवश्यक है कि हम आजकल के उन

लोगों से जो कि केवल जीव को ही मानते हैं और जिनकी संख्या (तादाद) लखूखा है, उन के प्रादुर्भावों (अर्थात् संसार की कोई वस्तु नहीं है, सिर्फ मन की बनावट है) उन के कारण और प्रभावों, उनके सम्बन्ध, स्वभाव उस के लाभ और हानि के विषय में क्या कहना चाहिये । जीवित मनुष्य सदा इस बात की प्रयत्न करते देखे गये हैं कि उस आवरण को जो कि कबर के किनारे और चिता के ऊपर पड़ा हुआ है, फाड़ दें । मनुष्य का हृदय सदा इस बात का विश्वास चाहनेवाला मालूम होता है कि मृतक हमारी सहानुभूति की पहुंच से बाहर नहीं चले गये हैं, न मां अपने बच्चों के विषय ऐसा विचार कर सकती है कि मेरे मृत बच्चे सदा के लिये मेरी गोद से अलग होगये, न स्त्री अपने पति का, न भक्त अपने प्रेष्ठ का । यह ऐसी तीक्ष्ण और उन्मत्तता की चाहना है कि जिसके कारण पश्चिमीय आधुनिक विचार ऐसे लोगों के जो केवल जीव को ही मानते हैं, इस क़दर उन्नति पागये हैं, और उनके मानने वालों ने हमारा सब से अधिक मुक़ाबिला किया है । सम्बन्ध अर्थात् जीवात्मा और शरीर से संयुक्त वस्तुकी शक्तियां हज़ारहा हैं, जिनकी बनावट और मक़नातीसी (आकर्षण करने वाली) शक्तियों की सहायता से बुद्धियें पीछे इन करामात दिखलाने वालों से बातचीत, लिखावट और कड़की आवाजों और भुतानियों के द्वारा बातचीत करतेहैं,लाखों विश्वास करते हैं कि हमारे मरे हुये सम्बन्धी ही हम से बातें कररहे हैं और अपनी भौतिक स्थूल मूर्तियां दिखला रहे हैं । हम पूछते हैं कि उन लोगों और उनकी ऐसी बातोंके साथ हम कौनसा वर्त्ताव वर्तें । उनको समझानेके लिये हम को विशेष कर सच और विश्वास दिलाने वाली बातें करनी चाहियें । तुम्हारी चिट्ठी से अर्थात् उस हिस्से से जहां पर कि आप एक मृतकको जीवन दान देने और कोढ़ियों को अच्छा करदेने, पहाड़ को उठाने और चान्द को तोड़ने, इन सब बातों को बतलाते हैं कि इस से नास्तिकता की गन्ध आती है और बहुतसी आपत्तियें इन बातों से उत्पन्न होती हैं । मैं साफ़२ यह समझता हूं कि आप सिद्धियों (मुअजिज़ों) को झूंट समझते हैं, आप उसको व्यवहार की निपुणता (चालाकी) और मनुष्य की अपनी आत्मिक शक्तियों का बहुत नीचे का दर्जा समझते हैं, यह बुद्धिमानी की बात है और हम इस बुद्धिमानी को समझते हैं । परन्तु यहां के निवासी अन्यत्र के निवासियों के समान विज्ञान (Philosophy)के विरुद्ध हैं और करामात को चाहते हैं, उनकी मनोवृत्ति और इन्द्रियों के द्वारा ही हम उनके हृदयों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं जीवात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई शक्तियां ही उनको करामात जान पड़ती हैं और फिलासफ़ी की बहस वे स्वीकार नहीं करते । शायद हम

बहुत उत्तम साधन प्रयोग मे नहीं लाये, इस विचार से कि शायद यही बात है कि हम शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये आपके चरणों में शिर झुकाते हैं।

(७) मैं समझताहूं कि बहुत उन्नति होजायगी जबकि हम पश्चिम की पब्लिक के सामने वैदिक फ़िलासोफी का अकाट्य, प्रकाशमान और चित्ताकर्षक वृत्तान्त खोलेंगे। अमेरिका का एक अत्यन्त योग्य सम्पादक (जोकि हमारी सभा का एक मेम्बर है और जिसके अखबार के पचास हज़ार पर्चे बिकते हैं) कहता है कि "आजकल के समय में पूर्वीय धार्मिक विचारों की बड़ी आवश्यकता है और इससे यह प्रकट होजावेगा कि ईसाईधर्म के सिद्धान्त, गाथायें और रीतियां कहां से निकलतीं हैं और कि प्रत्येक नया धर्म आर्यों के धर्म से किस प्रकार बनगया"। एक मेम्बर जोकि भाषाओं के कोष और साहित्य का पूर्ण विज्ञान रखता है इस विषय पर कि "अंगरेज़ी भाषा कहां से निकली और कहां जाकर ठहरेगी" एक पुस्तक प्रकाशित करने को है। वह उलाहना देता है कि ईसाई विशप 'हीर' ने "ज़िन्दावस्था" के तर्जुमों को बहुत बिगाड़ा और उसने कहा है कि जब तुम आर्यावर्त को जाओ तो पश्चिम वालों के लिये साफ़ साफ़ हाल सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुये लोगों का और फिर उनका स्थान परिवर्तन और भाषाओं की उत्पत्ति का लिखकर भेजना। सीखने के लिये पश्चिम वालों को पूर्व वालों से वास्तव में इसक़दर सीखना है कि मैं नहीं जानता कि क्योंकर अपनी लेखनी को आपसे वह प्रश्न पूंछने में रोकूं, मैंने अभी इतने प्रश्न लिखदिये कि यदि आप अपने बहुमूल्य समयके आधे भागको उनके उत्तर में व्यय करें तो भी पर्याप्त हो, किन्तु आपके साथ बहुत से विद्वान् पण्डित और आर्यलोग रहते होंगे जोकि समानदेशीय और समानधर्म होनेके कारण हमको कुछ बहुमूल्य सहायता देने के लिये सम्मत होंगे, हम आपसे इसक़दर दूर हैं और चिट्ठी लिखना गुरु शिष्य की बातचीत का ऐसा तुच्छ और अपर्याप्त ढंग है कि हम में से कितने ही सभासद इस बात की आवश्यकता को अनुभव करते हैं कि आर्यावर्त को बहुत शीघ्र शिक्षा पाने के लिये जावें और अपने आपको अपने सजातियों में उपदेश करने के योग्य बनावें। हम आशा करते हैं कि वहां दो या तीन वर्ष में हम इतना सीख जावेंगे, जितना कि हम यहांपर बीस वर्ष शिक्षा पाने पर भी न सीखते। यदि मनुष्य का जीवन अल्प नहोता, जिसके कारण से कि हममें से उन मनुष्यों को जो युवा हैं या युवावस्था को अतिक्रमण करगये हैं, यदि हम भलाई करसकते हैं तो कोई क्षण हमें व्यर्थ न खोना चाहिये। परन्तु जबतक हम

अमेरिका से चलें, हम बड़ी जिज्ञासा और नम्रता के साथ चाहते हैं कि आप हमको उक्त विद्या और शिक्षा जिसके हम जिज्ञासु हैं, देवें।

(८) नम्र होकर और आपकी नीरोगता और प्रसन्नता का प्रार्थी होकर मैं अपनी सभा की ओर से अपने आपको आपकी आज्ञा से आपका तुच्छ शिष्य और अनुयायी हेनरी, एस. आलकाट सभापति ब्रह्मवेत्त्री सभा लिखता हूं।

ब्राडवे नं० ७१ शहर न्यूयार्क ५ जून सन् १८७८ ई०

श्रीथियोसाफिकल सभायाः प्रधानादीन् प्रति श्री स्वामिनः द्वितीयं पत्रम्।

स्वस्तिश्रीमच्छ्रेष्ठगुणाढ्येभ्यः सर्वहितं चिकीर्षुभ्यो विशुद्धाचारसहितेभ्य एकेश्वरोपासनातत्परेभ्यस्तेनोक्तवेदविद्याप्रीत्युत्पन्नेभ्यः प्रियवरेभ्यः पातालदेशनिवासिभ्योऽस्मद्बन्धुवर्गेभ्य आर्य्यसमाजैकसिद्धान्तप्रकाशथियोसोफीकलाख्यसभापतिभ्यः श्रीयुतहेनरीएस् औलकौटसंज्ञकप्रधानादिभ्यस्तत्रत्यसर्वसभासद्भ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भवन्तुतमाम्॥

अत्रत्यं शमीश्वरानुग्रहतो वर्त्तते तत्र भवदीयं च नित्यमाशासे॥

मया श्रीमत्प्रेषितानि पत्राणि सर्वाण्यार्य्यसमाजप्रधानश्रीयतहरिश्चन्द्रद्वारा प्राप्तानि तत्रत्यं वृत्तान्तं विदित्वा ममात्रत्यानामार्य्यसमाजप्रधानमन्त्रिसभासदां चात्यन्त आह्लादो जात इति। एतदुत्तमकार्य्यप्रवृत्तावीश्वराय सहस्रशो धन्यवादा देयाः। येनाद्वितीयेन सर्वशक्तिमताऽखिलजगत्स्वामिना सर्वजगज्जनकधारकेन परमात्मना बहुकालात्पाखण्डमतदुष्टोपदेशभावितपरस्परविरोधान्धकारसहितमनसां भवदादीनामस्मदादीनां च भूगोलस्थानां सर्वेषां मनुष्याणामुपरि पूर्णकृपान्यायौ विधाय पुनस्तद्दुःखनिमित्तकपटारूढमतविच्छेदनाय स्वोक्तेषु सर्वसत्यविद्याकोशेषु वेदेषु प्रीतिरुत्पादिताऽतो वयं सर्वे भाग्यशालिनः स्म इति निश्चितं विज्ञाय सकृपाकटाक्षेणास्माकमिदं सर्वहितसम्पादिकृत्यं प्रतिक्षणमुन्नतं करिष्यतीति प्रार्थयामहे॥

१—यच्छ्रीमत्प्रेषितसभाप्रतिष्ठापत्रस्योपरि मया स्वहस्ताक्षराणि मुद्रितं च कृत्वा श्रीमतः प्रति पुनः प्रेषितं तद्भवन्तः सद्यः प्राप्स्यन्ति। यच्च श्रीमद्भिर्लिखित-

मार्य्यावर्त्तीयार्य्यसमाजशाखाथियोसोफीकलसुसायटीति नाम रचितं तदस्माभिरपि स्वीकृतमिति विजानीत ॥

२—सर्वैर्मनुष्यैर्यथेश्वरोपासना चतुर्वेदभूमिकायां प्रतिपादिता तथैवानुष्ठेयेति। तत्रोक्तस्यायं संक्षेपः ॥

सर्वमनुष्यैः शुद्धदेशस्थितिं कृत्वात्ममनःप्राणेन्द्रियाणि समाधाय सगुणनिर्गुणविधानाभ्यामीश्वर उपासनीयः ॥

एतस्या उपासनायास्त्रयोऽवयवाः । स्तुतिः प्रार्थनोपासना चेति । एतेषामेकैकस्य द्वौ द्वौ भेदौ स्तः ॥

तत्र यया तदीयगुणकीर्त्तनेन सहेश्वरः स्तूयते सा सगुणा स्तुतिः॥ तद्यथा—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ य० अ० ४० मं० ८ ॥

(स पर्य्यगात्) यः परितः सर्वतोऽगाद्व्याप्तवानस्ति (शुक्रम्) सद्यः सर्वजगत्कर्त्ताऽनन्तवीर्य्यवान् (शुद्धम्) न्यायसकलविद्यादिस्वगुणसहितत्वात् पवित्रः (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) सर्वात्मनां साक्षी (परिभूः) सर्वतः सामर्थ्ययोगेन सर्वोपरि विराजमानः (स्वयम्भूः) सदा स्वसामर्थ्ययोगैकरसत्वाभ्यां वर्त्तमानः (शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः) सर्वदैकरसवर्त्तमानाभ्यो जीवरूपाभ्यः प्रजाभ्यः (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्) वेदोपदेशेन यथावदर्थानुपदिष्टवानस्ति । एवमादिना स सगुणरीत्या सर्वैः स्तोतव्यः ॥

यत्र यत्र क्रियया सह सामानाधिकरण्येनेश्वरगुणाः स्तूयन्ते सा सा सगुणा स्तुतिरिति मन्तव्यम् ॥

अथ निर्गुणा ॥

(अकायम्) अर्थाद्यो न कदाचिज्जन्मशरीरधारणेन सावयवो भवति (अव्रणम्) नाऽस्य कर्हिचिच्छेदो भवति । (अपापविद्धम्) यो न कदाचित्पापकारित्वेनान्यायकारी भवति ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ १ ॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ २ ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते

॥ ३ ॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १३ । अनु० ४ । मं० १६ । १७ । १८ । २० ॥

अत्र नवभिर्नकारैर्द्वितीयत्वसंख्यावाच्यमारभ्य नवत्वसंख्यावाच्यपर्य्यन्तस्य भिन्नस्येश्वरस्य निषेधं कृत्वैकमेवेश्वरं वेदोऽवधारयति ॥

यथा सर्वे पदार्थाः स्वगुणैः सगुणाः स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणाःसन्ति तथेश्वरोऽपि स्वगुणैः सगुणः स्वविरुद्धगुणैर्निर्गुणश्चेति ॥

एवमादिना यया " न " इति निषेधसामानाधिकरण्येन सहेश्वरः स्तूयते सा निर्गुणा स्तुतिर्विज्ञेया ॥

अथ प्रार्थना ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० अ० ३२ । मं० १४ ॥

हे अग्ने सर्वप्रकाशकेश्वर कृपया त्वं यां मेधां देवगणा विद्वत्समूहाः पितरो विज्ञानिनश्चोपासते स्वीकुर्वन्ति तया मेधया स्वाहया सत्यविद्यान्वितया भाषया चान्वितं मामद्य कुरु सम्पादय ॥

येन मनुष्येण विद्याबुद्धिर्याचिता तेन सर्वशुभगुणसमूहो याचित इत्येवमादिसगुणरीत्या परं ब्रह्म प्रार्थनीयम् ॥

अथ निर्गुणा ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः । आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि॥१॥ ऋ० १ । १०४ । ८ ।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ २ ॥ ऋ० १ । ११४ । ७ ॥

मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ३ ॥ ऋ० १ । ११४ ॥ ८ ॥

हे रुद्र दुष्टरोगदोषपापिजननिवारकेश्वर स्वकरुणया त्वं नोऽस्मान् मावधीः। स्वस्वरूपानन्दविज्ञानप्रेमाज्ञापालनशुद्धस्वभावात्कदाचिद्दूरे मा प्रक्षिप त्वं च मा परादा दूरे मा तिष्ठ नोऽस्माकं प्रियाणि भोजनान्यभीष्टान् भोगान् मा प्रमोषीः पृथङ् मा कुरु। हे शक्र सर्वशक्तिमँस्त्वं नोऽस्माकमाण्डा गर्भान् मा निर्भेद्भययुक्तान् मा कुरु। हे भगवन् नोऽस्माकं सहजातुषाणि सहजेनानुषङ्गीणि पात्राणि सुखसाधनानि मा निर्भेन्माविदीर्णानि कुरु ॥ १ ॥

हे रुद्र सर्वदुष्टकर्मशीलानां जीवानां तत्तत्फलदानेन रोदयितरीश्वर त्वं नोऽस्माकं महान्तं विद्यावयोवृद्धं जनं मा वधीर्मा हिंसय । उतापि नोऽस्माकमर्भकं क्षुद्रं जनं मा वधीर्मा वियोजय । हे भगवन् नोऽस्माकमुक्षन्तं विद्यावीर्य्यसेचनसमर्थं मा वधीः । उतापि नोस्माकमुक्षितं विद्यावीर्य्यसिक्तं जनं सद्गुणसम्पन्नं वस्त्वन्तरं वा मा वधीः । नोऽस्माकं पितरं पालयितारं जनकमध्यापकं वोत मातरं मान्यकर्त्रीं जनयित्रीं विद्यां वा मा रीरिषो मा विनाशय । नोऽस्माकं प्रियास्तन्वः सुखरूपलावण्यगुणसहितानि शरीराणि मा रीरिषो मा हिंसय ॥ २ ॥

हे रुद्र सर्वरोगविदारकेश्वर त्वं कृपया नोऽस्माकं स्तोके ह्रस्वे तनये मा रीरिषः । नोऽस्माकमायौ मा रीरिषः । नोऽस्माकं गोषु पशुष्विन्द्रियेषु मा रीरिषः, नोऽस्माकमश्वेष्वग्न्यादिवेगवत्पदार्थेषु मा रीरिषः । त्वं भामितः पापानुष्ठानेनाऽस्माभिः क्रोधितो नोऽस्माकं वीरान् मा वधीः । हे रुद्र हविष्मन्तो वयं सदं ज्ञानस्वरूपं त्वामिदेव हवामहे गृह्णीम इति इत्येवमादिना निर्गुणरीत्या प्रार्थनीय इति ॥ ३ ॥

अथ सगुणोपासना ॥

न्यायकृपाज्ञानसर्वप्रकाशकत्वादिगुणैः सह वर्त्तमानं सर्वत्र व्याप्तमन्तर्यामिणं यथास्तुतं यथाप्रार्थितं परमेश्वरं निश्चित्य तत्रात्ममनइन्द्रियाणि स्थिरीकृत्य दृढा स्थितिस्तदाज्ञायां च सदा वर्त्तमानमिति सगुणोपासनम् ॥

अथ निर्गुणोपासना ॥

सर्वक्लेशदोषनाशनिरोधजन्ममरणशीतोष्णक्षुत्तृट्शोकमोहमदमात्सर्य्यरूपरसगन्धस्पर्शादिरहितं परमेश्वरं ज्ञात्वा स सर्वज्ञतयाऽस्माकं सर्वाणि कर्माणि पश्यतीति भीत्वा सर्वथा पापाननुष्ठानमित्येवमादिना निर्गुणोपासना कार्या ॥

एवं स्तुतिप्रार्थनोपासनाभेदैस्त्रिधारूपां सगुणनिर्गुणलक्षणान्वितां मानसीं क्रियां कृत्वेश्वरोपासनं कार्य्यमिति ॥

३-अथार्य्यशब्दार्थः। यो विद्याशिक्षासर्वोपकारधर्म्माचरणसमन्वितत्वाज्जनैर्ज्ञातुं संगन्तुं प्राप्तुमर्हः स आर्य्यः ॥

आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः ॥ अ० ६। २। ५८ ॥

वेदेश्वरयोर्वेदितृत्वेन तदाज्ञानुष्ठातृत्वं ब्राह्मणत्वम् ॥

अष्टमं वर्षमारभ्याष्टचत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्ते समये सुनियमजितेन्द्रियत्वविद्वत्संगसुविचारैर्वेदार्थश्रवणमनननिदिध्यासनपुरःसरं सकलविद्याग्रहणाय ब्रह्मचर्य्यसेवनं पश्चादृतुकाले स्वस्त्र्यभिगमनं परस्त्रीत्यागश्च कुमारत्वम् ॥

एतदर्थवाचिनोः परस्थितयोरेतयोः सामानाधिकरण्येन पूर्वस्थितस्यार्य्यशब्दस्य प्रकृतिस्वरत्वशासनादेतस्यैतदर्थवाचित्वं सिद्धमिति विज्ञेयम् ॥

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ॥ ऋ० १। ५१। ८ ॥

वेदविद्भिर्वेदेष्वार्य्यशब्दार्थं दृष्ट्वोत्तमपुरुषाणामार्येति संज्ञा रक्षिता। यदा सृष्टिवेदौ प्रादुर्भूतौ तदा नामरक्षणचिकीर्षाभूत्। पुनर्ऋषिभिः श्रेष्ठदुष्टयोर्द्वयोर्मनुष्यविभागयोर्वेदोक्तानुसारेण द्वे नाम्नी रक्षिते श्रेष्ठानामार्येति दुष्टानां दास्यवेति। अस्मिन् मन्त्रे मनुष्यायेश्वरेणाज्ञा दत्ता हे मनुष्य त्वं बर्हिष्मते उत्तमगुणकर्मस्वभावविज्ञानप्राप्तये श्रेष्ठगुणस्वभावकर्म्माचरणपरोपकारयुक्तान् विदुष आर्यान् विजानीहि। ये च तद्विरुद्धा दस्यवः सन्ति तानपि दुष्टगुणस्वभावकर्माचरणान् परहानिकरणतत्परान् दस्यूँश्च विजानीहि। एतान् सव्रतान्सत्याचरणादियुक्तानार्यान् रन्धय संसाधय विद्याशिक्षाभ्यां च शासत् शाधि। एवमव्रतान् सत्यानुष्ठानाद्विरुद्धाचरणान् रन्धय हिन्धि दण्डेन शासत् शाधि ताडय ॥

अनेन स्पष्टं गम्यते आर्यस्वभावविरुद्धा दस्यवो दस्युस्वभावविरुद्धा आर्या इति ॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणाधमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२॥ ऋ० १। ११७। २१ ॥

अश्विनावध्वर्यू दस्युं दुष्टं मनुष्यमभिधमन्तौ मनुषायार्यायोरु बहुविधं विद्याशिक्षासिद्धं ज्योतिश्चक्रथुः कुर्यातम् ॥

अत्रापि मनुष्यनाम्नी आर्यदस्यू इति वेद्यम्। एते नाम्नी प्राङ्मनुष्यसृष्टिसमये किञ्चित्कालानन्तरं वेदाज्ञानुसारेण विद्वद्भी रक्षिते ॥

हिमालयप्रान्त आद्या सृष्टिरभूत्। यदा तत्र मनुष्याणां वृद्धया महान् समुदायो बभूव तदा श्रेष्ठमनुष्याणामेकः पक्षोऽश्रेष्ठानां च द्वितीयो जातः। तत्र स्वभावभेदादेतयोर्विरोधो बभूव पुनर्ये आर्यास्त एतद्देशमाजग्मुः पुनस्तत्संगेनास्या भूमेरार्य्यावर्त्तेति संज्ञा जाता। आर्य्याणामावर्तः समन्ताद्वर्त्तनं यस्मिन् स आर्य्यावर्त्तो देशः। तद्यथा—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्य्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १ ॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥
मनु० अ० २। श्लो० १७। २२ ॥

देवनद्योर्देवानां विदुषां संगसहितयोः सरस्वतीदृषद्वत्योर्या पश्चिमप्रान्ते वर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थं सागरमभिगच्छन्ती सिन्धुनद्यस्ति तस्याः सरस्वतीति संज्ञा। या प्राक् प्रान्तवर्त्तमानोत्तरदेशाद्दक्षिणदेशस्थितं समुद्रमभिगच्छन्ती ब्रह्मपुत्रनाम्ना प्रसिद्धा नद्यस्ति तस्या दृषद्वतीति संज्ञा एतयोर्मध्ये वर्त्तमानं देवैर्विद्वद्भिरर्य्यैर्मर्य्यादीकृतं देशमार्य्यावर्त्तं विजानीत ॥ १ ॥ तथा च यः पूर्वसमुद्रं मर्य्यादीकृत्य पश्चिमसमुद्रपर्य्यन्ते विद्यमानो हिमालयविन्ध्याचलयोरुत्तरदक्षिणप्रान्तास्थितयोर्मध्ये देशोऽस्ति तमार्य्यावर्त्तं बुधा विदुः। आर्य्याणां समाजो या सभा स आर्य्यसमाजः। दस्युभावत्यागायार्य्यगुणग्रहणाय च या सभा साप्यार्य्यसमाजसंज्ञां लभते। अतः किमागतं सर्वासां शिष्टसभानामार्य्यसमाजनामरत्नं परमं भूषणमस्ति। नात्र काचित् क्षतिरिति विजानीमः ॥

४—स्वयं सत्यशिक्षाविद्यान्यायपुरुषार्थसौजन्यपरोपकाराद्याचरणे वर्त्तेत तत्रैव प्रयत्नतो बन्धुजनानपि वर्त्तयेत्। इति संक्षेपत उत्तरम्। एतस्य विस्तरविज्ञानन्तु खलु वेदादिशास्त्राध्ययनश्रवणाभ्यामेव वेदितुं योग्यमस्ति। ये च मया वेदभाष्यसंध्योपासनार्य्याभिविनयवेदविरुद्धमतखण्डनवेदान्तिध्वान्तिनिवारणसत्यार्थप्रकाशसंस्कारविध्यार्य्योद्देश्यरत्नमालाद्याख्या ग्रन्था निर्मितास्तद्दर्शनेनापि वेदोद्देश्यविज्ञानं भवितुमर्हतीति विजानीत ॥

५—यच्चेतनवत्वं तज्जीवत्वम् । जीवस्तु खलु चेतनस्वभावः । अस्येच्छादयो धर्म्माः । सतु निराकारोऽविनाश्यनादिश्च वर्त्तते । नाऽयं कदाचिदुत्पन्नो न विनश्यति । एतस्य विचारो वेदेष्वार्य्यकृतग्रन्थेषु च बहुभिर्हेतुभिः कृतोऽस्ति । अत्र खलु विस्तरलेखावकाशाभावात् स्वल्पः प्रकाश्यते ॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥ य० अ० ४० । मं० २ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणीति जीवस्य शतवर्षपर्य्यन्तं प्रयत्नकरणं धर्म्मः । जिजीविषेत् जीवितुमिच्छेदितीच्छाधर्म्मः ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥ यजु० अ० ६ । २२ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति सुखेच्छाकरणात् सुखं धर्म्मः ॥

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्त्विति दुःखत्यागेच्छाकरणाद्दुःखं धर्म्मः । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति द्वेषो धर्म्मः ॥

वेदाहमेतं पुरुषम् ॥ यजु० । अ० ३१ । मं० १८ ।

इति ज्ञानं धर्म्मः ॥

जीवश्चेतनस्वरूपत्वाद्यद्यदनुकूलं तत्तत्सुखमिति विदित्वा सदेच्छति । यद्यत् प्रतिकूलं तत्तद्दुःखमिति ज्ञात्वा सदा द्वेष्टि सुखप्राप्तये दुःखहानये च सदा प्रयतते । एतदन्तर्गताः सूक्ष्मा बहवोऽन्येऽपि जीवस्य धर्म्माः सन्तीति वेद्यम् ॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति ॥ न्या० । १ । १० ।

जीवस्यैतानि लिंगानि धर्म्मलक्षणानि सन्तीति ज्ञातव्यम् ।

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि ॥ वैशेषिक० अ० ३ आ० २ सू० ४ ॥

कोष्ठ्यस्य वायोर्निस्सारणं प्राणः । बाह्यस्य वायोराचम पानः । नेत्रस्यावरणं निमेषः । तदुद्घाटनमुन्मेषः । जीवनं प्राणधारणम् । मनोज्ञानम् गतिरुत्क्षेपणाद्यनुष्ठानम् ॥ इन्द्रियान्तरविकाराः । इन्द्रिय संयोजनं कस्माच्चिद्विषयान्निवर्त्तनम् । अन्तर्हृदये व्यापारकरणम् । विकाराः । क्षुत्तृड्ज्वरादिरोगादयः । धर्मानुष्ठानमधर्मानुष्ठानं च । संख्याजात्यभिप्रायेणैकत्वं व्यक्त्यभिप्रायेण बहुत्वम् । पूर्वानुभूतस्य ज्ञानमध्येऽङ्कुरं

संस्कारः । परिमाणं परमसूक्ष्मत्वम् । पृथक्त्वमस्यान्योऽन्यं भेदः । संयोगो मेलनम् । वियोगः संयुज्य पृथग्भवनं वियोगत्वमिति च जीवधर्माः ॥

मानसोऽग्निर्जीव इति महाभारतस्य मोक्षधर्मान्तर्गते भरद्वाजोक्तौ वर्त्तते । अस्यायमर्थः । यो मनस्यन्तःकरणे भव इच्छादिज्ञानान्तसमूहप्रकाशसमवेतः पदार्थोऽस्ति तस्य जीवसंज्ञेति बोध्यम् । अयं खलु देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणाद्भिन्नश्चेतनोऽस्ति कुतः । अनेकार्थानां युगपत् संधातृत्वात् । तद्यथा । अहं यच्छ्रोत्रेणाश्रौषं तच्चक्षुषा पश्यामि । यच्चक्षुषाऽद्राक्षं तद्धस्तेन स्पृशामि । यद्धस्तेनास्पाक्षं तद्रसनया स्वदे । यद्रसनयाऽस्वदिषि तद्घ्राणेन जिघ्रामि । यद् घ्राणेनाघ्रासिषं तन्मनसा विजानामि । यन्मनसाऽज्ञासिषं तच्चित्तेन स्मरामि । यच्चित्तेनास्मार्षं तद्बुद्ध्या निश्चिनोमि । यद्बुद्ध्या निरचैषं तदहङ्कारेणाभिमन्य इत्यादिप्रत्यभिज्ञया सहवर्त्तमानं यदस्ति तदात्मस्वरूपं सर्वेभ्यः पृथगस्तीति वेदितव्यम् । कुतः यः स्वस्वविषये वर्त्तमानैरन्यविषयाद्भिन्नवर्त्मभिः श्रोत्रादिभिः पृथक् पृथग्गृहीतानां शब्दार्थानां वर्त्तमानसमये सन्धातास्ति स एव जीवोऽस्त्यतः नह्यन्यदृष्टस्यान्यः स्मरति नहि श्रोत्रस्य स्पर्शग्रहणे साधकत्वमस्ति न च त्वचः शब्दग्रहणे, परन्तु श्रोत्रेण श्रुतो घटस्तमेवाहं हस्तेन स्पृशामीति यस्य पूर्वकालदृष्टस्यानुसंधानेन पुनस्तस्यैवार्थस्य प्रत्यभिज्ञया वर्त्तमाने दर्शनमस्ति स उभयदर्शिनः सर्वसाधनाभिव्यापकस्य सर्वाधिष्ठातुर्ज्ञानस्वरूपस्य जीवस्यैव धर्म्म उपपद्यत इति मन्तव्यम् ॥

एवमादिप्रकारेण बहूनामार्य्याणां वेदशास्त्रबोधसमाधियोगविचाराभ्यां जीवस्वरूपज्ञानं बभूव भवति भविष्यति वेति ॥

६—यदायं शरीरं त्यजति तदा मरणं जातमित्याचक्षते नहि खलु तस्यदेहाभिमानिनो जीवस्य वियोगाद्विना मरणं सम्भवति । शरीरं त्यक्त्वायं खल्वाकाशस्थः सन्नीश्वरव्यवस्थया स्वकृतपापपुण्यानुसारेण शरीरान्तरं प्राप्नोति ॥

यावत्पूर्वं शरीरन्त्यक्त्वाऽऽकाशे गर्भवासे बालाज्ञावस्थायां वा तिष्ठति न तावदस्य किञ्चिद्विशेषविज्ञानमुपपद्यते । किन्तु यथा निद्रामूर्च्छां गतो जीवो वर्त्तते तथा तत्रास्य गतिरिति ॥

यद्येतस्य वार्त्ताकरणे कपाटताडने परशरीरावेशे सामर्थ्यं वर्त्तते तर्हि स कथं न पुनः प्रियं स्थानं धनं शरीरं वस्त्रभोजनादिकं प्रियान् स्त्रीपुत्रपितृबन्धुमित्रभृत्यपशुयानादीन् प्राप्नोति ॥

यद्यत्र कश्चिद् ब्रूयाद्यदा सम्यग्ध्यानं कृत्वा तमाह्वयेत् । तर्हि तत्समीपमागच्छेत् । अत्र ब्रूमः । यदा कस्यचित्कश्चित्प्रियो म्रियते तदा स तस्य प्राप्त्यर्थमहर्निशं

सम्यग्ध्यानं करोति पुनः स कथं नागच्छति । यदि कश्चिद्ब्रूयात्पूर्वसम्बन्धिनः प्रति नागच्छत्यन्यान् प्रत्यभ्यागच्छतीति । नैतदुपपद्यते । कुतः । पूर्वसम्बन्धिनः प्रति प्रीतेर्विद्यमानत्वेनासम्बन्धिषु प्रीतेरदर्शनात् ॥

नेदमनधिष्ठातृकं स्वतन्त्रं जगत्सम्भवति । सर्वस्यास्याधीशस्य न्यायकारिणः सर्वज्ञस्य सर्वेभ्यो जीवेभ्यो पापपुण्यानां फलप्रदातुरीश्वरस्य जागरूकत्वात् । अतः श्रीमद्भिर्यो मृतकस्य प्रतिबिम्बो मत्समीपे प्रेषितः । तत्र कापट्यधूर्त्तत्वव्यवहारो निश्चीयत इति । यथेन्द्रजाली चातुर्य्येणाश्चर्यान् विपरीतान् व्यवहारान् सत्यानिव दर्शयति तथाऽयमस्तीति प्रतीयते । यथा कश्चित्सूर्य्यचन्द्रप्रकाशे स्वच्छायायां कण्ठशिरस्सउपरिनिमेषोन्मेषवर्जितां स्थिरां दृष्टिं कृत्वा किञ्चित्कालानंतरं शुभ्रमाकाशं प्रत्यूर्ध्वं पुनरेवमेवनिमषोन्मेषवर्जितां दृष्टिं कुर्य्यात्स स्वस्माद्भिन्नां स्वच्छायाप्रतिबिम्बरूपां महतीं मूर्त्तिं पश्यति तथैवाऽयं व्यवहारो भवितुमर्हति । संस्कृतविद्यायां भूतशब्देन यः कश्चित्सशरीरः प्राणी वर्त्तित्वा न भवेत्तस्य ग्रहणमस्ति ॥

यस्तु खलु निर्जीवो देहः समक्षे वर्त्तते यावद्यस्य दाहादिकं न क्रियते तावत्तस्य प्रेत इति संज्ञा । ईश्वरेण समः कश्चिन्न भूतो न भविष्यतीत्याप्तवाक्यम् ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ म० अ० ५ श्लो० ६५ ॥

अत्र भूतशब्देन भूतस्थस्य ग्रहणम् । "प्रेतस्य" " प्रेतहारै " रेताभ्यां पदाभ्यां मृतकशरीरस्य प्रेतइति नाम । यथा पितृमेधं समाचरन्निति पदेन मृतकस्य पितृशरीरस्य दाहवद्गुरोर्मृतक शरीरस्य दाहकरणं पितृमेधसंज्ञां लभते तथा मृतकानां शरीराणां विधिवद्दाहकरणं नृमेधइति विज्ञेयम् इदं प्रसंगादुक्तम् ॥

यथा भूतप्रेतेष्विदानींतनानामभिप्रायोस्ति तथेदं नैव सम्भवति । कुतः । समूलतोऽस्य मिथ्यात्वेन भ्रान्तिरूपत्वात् । नात्र कश्चित्संदेह इदमस्ति नास्तिवेति किंतु सर्वमिदं कपटजालमिति विजानीमः । अत्रालमति विस्तरेणैतावतैवाधिकं भवद्भिर्विज्ञेयमिति ॥

७-भवन्तो यां शिक्षां मत्तो गृहीतुमिच्छन्ति सा परमार्थव्यवहारविषयभेदेनातिविस्तीर्णास्ति । पत्रद्वारालिखितुमशक्या । सा संक्षेपतो मद्रचितेषु लिखितास्ति । विस्तरशस्तु वेदादिशास्त्रेषु । परन्त्वेतदुत्तरदानाय मया श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणीन् प्रति लिखितं मद्रचितस्य स्वल्पस्यार्य्योद्देश्यरत्नमालाग्रन्थस्येंगलण्डभाषया विवर्ण

कृत्वा भवतां समीपे सद्यः प्रेषयन्त्विति ते तत्र शीघ्रं प्रेषयिष्यन्तीति बुध्यध्वम् । तद्दर्शनेन श्रीमतामुद्देशतो सदुपदेशशिक्षा भविष्यति ॥

८-वेदोक्तानुसारेण वक्ष्यमाणरीत्या मृतकक्रिया कर्तव्या । तद्यथा । सेयं संस्कारविधिग्रन्थे विस्तरशः प्रतिपादिता तथाप्यत्र संक्षेपतो लिख्यते ॥

यदा कश्चिन्मनुष्यो म्रियेत तदा मृतकं शरीरं सम्यक् स्नपयित्वोत्तमसुरभिणाऽनुलेप्य सुगन्धियुक्तैर्नवीनैः शुद्धैर्वस्त्रैराच्छाद्य मलीनानि वस्त्राणि पृथक् कृत्वा श्मशानभूमिं नीत्वा तत्र यावानूर्ध्वबाहुकः पुरुषस्तावद्दीर्घां पार्श्वतो व्यायाममात्र विस्तीर्णामूरुदघ्नीं गम्भीरां वितस्तिमात्रीमधस्तादेतत्परिमाणां वेदिं रचयित्वा जलेनाभ्युक्ष्य शरीरभारसमं घृतं वस्त्रपूतं कृत्वा तत्र प्रतिप्रस्थमेकैकरत्तिकापरिमाणां कस्तूरीमेकमाषपरिमाणं केशरं च संपेष्य यथावन्मेलयेत् । चन्दनपलाशाम्रादिकाष्ठानि गृहीत्वा वेदिगर्त्तपरिमाणैनैतेषां खण्डान् कृत्वाऽधस्तादर्धवेदिं पूरयित्वा तदुपरि मध्यतो मृतकं देहं संस्थाप्य कर्पूरगुग्गुलचन्दनादि चूर्णान् मृतकदेहाभितो विकीर्य्य पुनस्तैरेव काष्ठैस्तदुत ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रीं वेदिं संचित्य तन्मध्येऽग्निस्थापनं कुर्य्यात् । तद्घृतं स्वल्पं स्वल्पं गृहीत्वा यजुर्वेदस्यैकोनचत्वारिंशाध्यायस्थं प्रतिमन्त्रमुच्चार्य्याभितो दाहयेत् । पुनर्य्यदा भस्मीभूतं शरीरं भवेत्तदा ततो निवर्त्य जलाशयं स्वं स्वं गृहं वा प्राप्यस्नानादिकं कृत्वा निःशोकाः संतो यथायोग्यं स्वानि स्वानि कार्य्याणि कुर्य्युः । पुनर्य्यदा दाहदिवसात्तृतीये दिवसे सर्वं शीतलं भवेत् तदा तत्र गत्वा सास्थि सर्वं भस्म गृहीत्वा स्थानान्तरे शुद्धदेशे गर्त्तं खनित्वा तत्र तत्सर्वं संस्थाप्य खनितगर्त्तमृदाऽऽच्छादयेत् । एतावानेव वेदोक्तसनातनोत्तमतमो मृतकसंस्कारोऽस्ति नातोऽधिकोन्यूनश्चेति ॥

एवमेव यानि स्वमित्रशरीरास्थीनि भवतः समीपे स्थितानि संति तान्यपि क्वचिच्छुद्धभूमौ गर्त्तं खनित्वा तत्र स्थापयित्वा मृदाच्छादनीयानीति ॥

९—पत्रद्वयमिङ्गलेण्डाख्यदेशे यथालिखितस्थाने प्रेषितम् ॥

१०—यदा युष्माकं निश्चयः स्यात्तदा सभानामविपर्य्यासः कार्य्यः । विदुषां सभाया अयं नियमोस्ति यत् किञ्चिन्नूतनं कार्य्यं कर्त्तव्यं तत्सर्वमुत्तमान् विदुषः सभासदः प्रति निवेद्य तदनुमत्या कार्य्यमिति यद्यत्सर्वोपकारविरुद्धं सभाकृत्यं तत्तन्नैव कदाचिदाचरणीयम् । यद्यत्तु खलु परिणामानन्दफलं तत्तदचिरादेव पुरुषार्थेन समयं प्राप्य कर्त्तव्यम् । तस्माद्यदावसर आगच्छेत्तदा तत्रत्यसभाया आर्य्यसमाजेति नामरक्षणे न काचित्क्षतिरस्तीति मतं मे ॥

११—अत ऊर्ध्वं श्रीमन्तो यद्यत्पत्रं मत्समीपे प्रेषयेयुस्तत्तन्मन्नामांकितं प्रेषणीयम् । परन्तु पूर्वलिखितेन श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणयादिद्वारैव प्रेषणीयम् । तत्रायं क्रमः । पत्रोपरिमन्नामपत्रावरणपृष्ठोपरि श्रीयुतहरिश्चन्द्रचिन्तामणीनां नाम लिखित्वा प्रेषणीयम् ॥

सच्चिदानन्दादिलक्षणाय सर्वशक्तिमते दयासागराय सर्वस्य न्यायाधीशाय परब्रह्मणेऽसङ्ख्याता धन्यवादा वाच्याः । यत्कृपया भवद्भिः सहाऽस्माकमस्माभिः सह भवतां च संप्रीत्युपकारसमयः प्राप्तः एतममूल्यं समयं प्राप्य यूयं वयं चैवं प्रयतामहे यतो भूगोलमध्ये मनुष्याणां पाखण्डमतपापाचरणविद्यादुराग्रहादिदोषनिवारणेनैकं सनातनं वेदप्रमाणसृष्टिक्रमानुकूलं सत्यं मतं प्रवर्त्तेतेति ॥

पत्रद्वाराऽतीव स्वल्पं कार्य्यं सिध्यति । यावत्समक्षे परस्परं वार्ता न भवन्ति न तावत्समस्तो लाभो जायते । परन्तु यस्येश्वरस्यानुग्रहेण पत्रद्वारा वार्त्ताः प्रवृत्ताः सन्ति तस्यैव कृपया भवतामस्माकं च कदाचित्समक्षेऽपि समागमो भविष्यतीत्याशासे किं बहुना लेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

भूतकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभोमासासितेदले । शुक्ररुद्रतिथौ सम्यक् पत्रपूर्तिः कृता मया ॥

संवत् १९३५ श्रावणवदी ११ शुक्रवासरे पत्रमिदमलङ्कृतमिति विज्ञेयम् ।

२६ जुलाई १८७८ ई० दयानन्दसरस्वती ।

थियोसोफ़ीकल सोसाइटी के सभापति आदि के प्रति स्वामीजी का द्वितीय पत्र ॥

स्वस्ति श्रीमान् वर्यगुणाढ्य सर्वहितचिकीर्षु विद्वदाचारसहित एकेश्वरोपासनातत्पर, ईश्वरोक्तवेदविद्याप्रीत्युत्पन्न प्रियवर पातालदेशनिवासी हमारे बन्धुवर्ग आर्य्यसमाज के साथ एक सिद्धान्त के प्रकाश करने वाली थियोसोफ़ीकल नाम वाली सभा के पति श्रीयुत हेनरी एस् औल्काट संज्ञक प्रधानादिकों और वहां के सर्वसभासदों को स्वामी दयानन्द का आशीर्वाद हो ॥

यहां ईश्वर के अनुग्रह से कल्याण है और नित्य यही आशा है कि वहां आप कल्याणपूर्वक हों ॥

श्रीमानों के प्रेषित सर्व पत्र आर्य्यसमाज के प्रधान श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि द्वारा मुझको प्राप्त हुए । वहां का वृत्तान्त जानकर मुझे और यहां के आर्य्यसमाज के प्रधान, मन्त्री और सभासदों को अत्यन्त आनन्द हुआ, इस उत्तम

कार्य्यप्रवृत्ति पर ईश्वर को सहस्रशः धन्यवाद देते हैं जिस अद्वितीय सर्वशक्तिमान् अखिल जगत्स्वामी सर्वजगत्जनक और धारक परमात्मा ने भवदादि और अस्मदादि भूगोलस्थ सर्व मनुष्यों पर जिन के मन बहुत काल से पाखण्डमतों के दुष्ट उपदेशों से उत्पन्न परस्पर विरोध से अज्ञान युक्त होरहे थे, पूर्ण कृपा और न्याय विधान कर उन दुःखों के निमित्त और कपटयुक्त मतों के विच्छेद के लिये स्वोक्त सर्व सत्य विद्या के कोष वेदों में प्रीति उत्पन्न की। इस से हमको निश्चित मालूम होता है कि हम सब भाग्यशाली हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप कृपा कर सर्वहित सम्पादन करने वाले कृत्य को प्रतिक्षण उत्पन्न करेंगे ॥

(१) श्रीमानों ने जो सभा प्रतिष्ठा पत्र भेजा था उस पर मैंने हस्ताक्षर कर मोहर करा श्रीमानों के प्रति लौटादिया है वह आपको शीघ्र ही मिल जावेगा। निश्चित जानिये कि हमें स्वीकार है जो श्रीमानों ने लिखा कि आप ने उसका नाम आर्य्यावर्तीय आर्य्यसमाज की शाखा थियोसोफ़ीकल सोसाइटी रक्खा है ॥

(२) सर्व मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वरोपासना उसी प्रकार से करें जिस प्रकार चारों वेदों की भूमिका में प्रतिपादन कीगई है । तत्रोक्त का संक्षेप यह है:—

सर्व मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध देश में स्थित हो आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों को समाधान कर सगुण और निर्गुण विधानों से ईश्वर की उपासना करें ॥

उपासना के तीन अवयव फिर प्रत्येक के सगुण, निर्गुण दो भेद ।

इस उपासना के तीन अवयव हैं । स्तुति, प्रार्थना और उपासना इनमें से प्रत्येक के दो २ भेद हैं ॥

स्तुति ।

सगुण स्तुति का लक्षण उदाहरण ।

उन में से जिस विधि द्वारा ईश्वर के गुण कीर्तन करके उस की स्तुति की जाती है वह सगुण स्तुति कहाती है जैसे:—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ य० अ० ४० । मं० ८ ॥

मन्त्रार्थद्वारा सगुण स्तुति का उदाहरण

(स पर्य्यगात्) जो सर्व और व्याप्त (शुक्रम्) सद्यः सर्व जगत् कर्त्ता और अनन्त वीर्य्य वाला (शुद्धम्) न्याय और सकल विद्या

आदि सत्य गुणों के सहित होने से पवित्र (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सर्व आत्माओं का साक्षी (परिभूः) सर्वत्र सामर्थ्य के योग से सर्व के ऊपर विराजमान (स्वयम्भूः) सदा स्वसामर्थ्य के योग और एक रस होने से वर्तमान है (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) और जिसने सर्वदा एकरस वर्तमान जीवरूप प्रजा को (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्) वेद के उपदेश द्वारा यथावत् अर्थों का उपदेश किया है। इस प्रकार की सगुण रीति से उस ईश्वर की सब को स्तुति करनी चाहिये ॥

पुनः अन्य शब्दों द्वारा लक्षण।

जहां २ क्रिया के साथ समानाधिकरण भाव से ईश्वर के गुण स्तवन किये जाते हैं उस२ को सगुण स्तुति माननी चाहिये ॥

अथ निर्गुण स्तुति ॥

शेष मन्त्र द्वारा निर्गुण स्तुति का उदाहरण।

(अकायम्) अर्थात् जन्म लेकर वा शरीर धारण करके जो कभी अवयवी नहीं होता (अव्रणम्) कभी उसको छेद नहीं होता (अपापविद्धम्) कभी पापकारी होकर अन्यायकारी नहीं होता ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ १ ॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ २ ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ३ ॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १३ । अनु० ४ । मं० १६ । १७ । १८ । २० ॥

अन्य मन्त्र द्वारा उदाहरण।

इस मन्त्र में नौ "नकारों" द्वारा द्वितीय संख्या के वाच्य से लेकर नव संख्या के वाच्य तक भिन्न ईश्वर का निषेध करके एक ही ईश्वर को वेद निश्चय कराता है ॥

जैसे सब पदार्थ स्वगुणों (अपने २ गुणों) से सगुण और स्वविरुद्ध (अन्य) के गुणों से निर्गुण होते हैं वैसे ईश्वर भी स्वगुणों से सगुण और स्वविरुद्ध (अन्य) के गुणों से निर्गुण होता है ॥

निर्गुण स्तुति का लक्षण।

इसी प्रकार जिस से "न" इस निषेध समानाधिकरण भाव से ईश्वर की स्तुति की जाती है वह निर्गुण स्तुति जाननी चाहिये ॥

अथ सगुणप्रार्थना ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० अ० ३२ । मं० १४ ॥

मन्त्रार्थः। हे (अग्ने) सर्व प्रकाशक ईश्वर आप कृपया (अद्य माम्) आज मुझे (तया मेधया) उस बुद्धि से (स्वाहया) और सत्य विद्यायुक्त भाषा से (मेधाविनम् कुरु) युक्त करें (यां मेधाम्) जिस बुद्धि को (देवगणाः) विद्वान् (पितरः च) और विज्ञानी (उपासते) उपासते हैं ॥

जिस मनुष्य ने विद्या और बुद्धि की याचना की उसने सब शुभगुणों की प्रार्थना की इस प्रकार सगुण रीति द्वारा परब्रह्म से प्रार्थना करनी चाहिये ॥

अथ निर्गुणप्रार्थना ॥

मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः। आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि॥१॥ ऋ० १। १०४। ८।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ २ ॥ ऋ० १ । ११४ । ७ ॥

मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ॥ ३ ॥ ऋ० १ । ११४ ॥ ८ ॥

मन्त्रार्थ। (१) हे इन्द्र (रुद्र) दुष्ट रोग, दोष और पापी जन के निवारण करने वाले ईश्वर अपनी करुणा से (मा नः वधीः) हमको मत मारो अर्थात् अपने स्वरूप, आनन्द, विज्ञान, प्रेम, आज्ञापालन और शुद्ध स्वभाव से मुझे कभी दूर मत करो, आप (मा परादाः) दूर मत ठैरो, (नः) हमारे (प्रियाणि भोजनानि) अभीष्ट भोगों को (मा प्रमोषीः) पृथक् मत करो, (हे शक्र) हे सर्वशक्तिमन् आप (नः अण्डाः मा निर्भेत्) हमारे गर्भों को भय युक्त मत करो, (मघवन्) हे भगवन् (मा नः सहजानुषाणि पात्राभेत्) हमारे स्वाभाविक अनुषङ्गी सुख साधनों को मत विदीर्ण करो ॥ १ ॥

(२) हे (रुद्र) सर्व दुष्ट कर्म्म और स्वभाव वाले जीवों को तदनुकूल फल देकर रुलाने वाले ईश्वर (नो महान्तम् मावधीः) आप हमारे विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध जनों की मत हिंसा करो (उत मानः अर्भकम्) हमारे क्षुद्र जनों को भी हमसे

जुदा मत करो (मा नः उक्षन्तम्) हे भगवन् हमारे विद्या सेचन समर्थ और वीर्य्य सेचन समर्थ युवा जनों को मत मारो। (उत मा नः उक्षितम्) हमारे विद्यासिक्त शिष्य, वीर्य्यसिक्त बालक जनों को वा सद्गुण सम्पन्न दूसरी वस्तु को भी मत मारो (मानो वधीः पितरम्) हमारी पालना करने वाले जनक वा अध्यापक को (मा उत मातरम्) मान्य करने वाली जननी वा विद्या को विनाश मत करो (मा नः प्रियाः तन्वः रीरिषः) हमारे सुख रूप लावण्य गुणों सहित शरीरों को मत हिंसा करो ॥ २ ॥

(३) हे (रुद्र) सर्व रोगों को विदारण करने वाले ईश्वर (मानस्तोकेतनये) आप कृपया हमारे छोटे बेटों का नाश मत करो (मा न आयौ) हमारी आयु को मत नाश करो (मा नः गोषु मा नः अश्वेषु रीरिषः) हमारे पशु और इन्द्रियों का हमारे अग्नि आदि वेगवान् पदार्थों का मत नाश करो (वीरान् मानो भामितो वधीः) पापों के अनुष्ठान से हमसे क्रोधित किये हुए आप हमारे वीरों को मत मारो (हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे) हे रुद्र ईश्वर हम भक्ति के साथ सदा ज्ञानस्वरूप आपही को ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार निर्गुण रीति से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये ॥

अथ सगुणोपासना ॥

सगुणोपासना के लक्षण ।

स्तुति और प्रार्थना के अनुसार न्याय, कृपा, ज्ञान, सर्व प्रकाशकता आदि गुणों के साथ वर्तमान सर्वत्र व्यापक, अन्तर्य्यामी, परमेश्वर का निश्चय करके उसमें आत्मा, मन, इन्द्रियों को स्थित कर दृढ़स्थिति को और उसकी आज्ञा में सदा वर्तमान होने को सगुणोपासना कहते हैं ॥

अथ निर्गुणोपासना ॥

परमेश्वर को सर्वक्लेश, द्वेष, नाश, निरोध, जन्म, मरण, शीतोष्ण, क्षुधा, तृष्णा, शोक, मोह, मद, मात्सर्य और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से रहित जानना और इस भय से कि वह परमेश्वर अपनी सर्वज्ञता से हमारे सर्व काम देख रहा है सर्वथा पाप का अनुष्ठान न करना। इस प्रकार से निर्गुणोपासना करनी चाहिये ॥

इस प्रकार सगुण और निर्गुण लक्षणों से युक्त स्तुति, प्रार्थना, उपासना भेद से तीन रूपवाली मानसिक क्रिया करके ईश्वरकी प्रार्थना करनी योग्य है ॥

आर्य शब्द का अर्थ ॥

जिसको लोक, विद्या, शिक्षा, सर्वोपकार और धर्माचरण से युक्त होने के कारण जानना और उसकी संगति करना चाहते हैं उसको आर्य्य कहते हैं ॥

इस विषय में अष्टाध्यायी का प्रमाण ।

आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः ॥ अ० ६ । २ । ५८ ॥

ब्राह्मण शब्द के अर्थ । वेद और ईश्वर का वेत्ता होकर उसकी आज्ञा का अनुष्ठान करना ब्राह्मणपन है ॥

कुमार के अर्थ । आठवें वर्ष से लेकर अड़तालीस वर्षतक सुनियम, जितेन्द्रियपन, विद्वानों के सङ्ग और सुविचार द्वारा वेदार्थ के श्रवण, मनन और निदिध्यासन के साथ सकल विद्या के ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य्य सेवन तत्पश्चात् ऋतुकाल में स्वस्त्रीगमन और परस्त्रीत्याग को कुमारपन कहते हैं ॥

सूत्रार्थ । इस अर्थ के वाचक ब्राह्मण और कुमार पद जब परे हों तो समानाधिकरण भाव से पूर्व स्थित आर्य्य शब्द का प्रकृति स्वर होता है "आर्य्य" पूर्व पद के प्रकृति स्वर शासन से यही सिद्ध होता है कि इस आर्य्य शब्द के यही (जो ऊपर वर्णन हुये) अर्थ हैं ॥

आर्य्य शब्द के अर्थ में वेद का प्रमाण ।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ॥ ऋ० १ । ५१ । ८ ॥

आर्य दस्यु । वेद के जानने वालों ने वेदों में आर्य्य शब्द के अर्थ देख कर उत्तम पुरुषों का नाम आर्य्य रक्खा । जब सृष्टि और वेद प्रादुर्भूत हुए तब नाम रखने की इच्छा हुई, फिर ऋषियोंने श्रेष्ठ और दुष्ट दो विभाग वाले मनुष्यों के वेदोक्त अनुसार दो नाम रक्खे । श्रेष्ठों का नाम आर्य्य और दुष्टों का नाम दस्यु ॥

मन्त्रार्थः । इस मन्त्र में ईश्वर ने मनुष्य को आज्ञा दी है कि "हे मनुष्य तू (बर्हिष्मते) उत्तम सुख्य कर्म और स्वभाव की प्राप्ति के लिये (विजानीहि आर्यान्) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव, श्रेष्ठ आचरण और परोपकारसे युक्त विद्वानों को आर्य्य जान । (ये च दस्यवः) और जो उनके विरुद्ध दुष्ट गुण कर्म स्वभाव, दुष्ट आचरण से युक्त और परहानि करने में तत्पर हैं उन को दस्यु जान । इस सव्रत

अर्थात् सत्याचरणादि युक्त आर्यों को (रन्धय) सिद्धि प्राप्ति कर और (शासत्) विद्याशिक्षा से शासना कर । (अव्रतान्) एवं सत्य अनुष्ठान से विरुद्ध आचरण वालों को (रन्धय) नाश कर (शासत्) और दण्ड से शासना कर अर्थात् ताडना कर ॥

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य्यों के स्वभावविरुद्धों की दस्यु संज्ञा है और दस्युओं के स्वभावविरुद्धों का आर्य्य नाम है ॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा । अभि दस्युं बकुरेणाधमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२॥ ऋ० १ । ११७ । २१ ॥

भावार्थ — (अश्विनौ) अध्वर्यु (दस्युम्) दुष्ट मनुष्य को (अभिधमन्ता) अग्नि से जलाते हुये (मनुषाय आर्य्याय) आर्य मनुष्य के लिये (उरु ज्योतिः चक्रथुः) विद्या और शिक्षा से सिद्ध बहु प्रकार के प्रकाश को करें ॥

ज्ञात रहे कि इस मन्त्र में भी मनुष्यों के दो नाम वर्णित हैं आर्य और दस्यु। पहिले मनुष्य सृष्टि के समय कुछ काल पीछे वेद की आज्ञानुसार विद्वानों ने यह दो नाम रक्खे ॥

हिमालय के प्रान्त में आद्य सृष्टि हुई जब वहां मनुष्य की वृद्धि से महान् समुदाय होगया तो श्रेष्ठ मनुष्यों का एक पक्ष अश्रेष्ठों का दूसरा पक्ष बन गया ॥

आर्यावर्त्त शब्द की व्युत्पत्ति — जब वहां स्वभाव के भेद से उन दोनों का विरोध होगया, तो जो आर्य थे वे इस देश को आए उनके संगसे इस भूमि का नाम आर्यावर्त्त होगया । जिस देश में सब ओर आर्यों का वर्तन (वास) हो वह आर्यावर्त्त देश कहलाता है ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्य्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १ ॥
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥
मनु० अ० २ । श्लो० १७ । २२ ॥

आर्य्यावर्त्त के विषय में मनु का प्रमाण — देव (विद्वानों के संग से देव नाम से प्रसिद्ध) नदियों में से जो पश्चिम प्रान्त में वर्त्तमान, उत्तर देश से दक्षिण देशस्थ सागर में

जाने वाली सिन्धु नदी है उस का नाम सरस्वती है। जो प्राक् (पूर्व) प्रान्त में वर्त्तमान, उत्तर देश से दक्षिण देशस्थ समुद्र में जाने वाली ब्रह्मपुत्र नाम से प्रसिद्ध नदी है उस का नाम दृषद्वती है। इन दोनों के मध्य में वर्तमान देव अर्थात् विद्वान् आर्यों से मर्यादीकृत देश है उस को आर्यावर्त जानो ॥ १ ॥

और तथा जो देश पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक वर्त्तमान उत्तर दक्षिण प्रान्त में स्थित हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में है उस को बुद्धिमान् आर्यावर्त जानते हैं ॥

आर्य्यसमाज किस को कहते हैं

जो सभा आर्य्यों की समाज है उसको आर्य्यसमाज कहते हैं। दस्यु भाव के त्याग और आर्य्य गुणों के ग्रहण के लिये जो सभा है उस का नाम भी आर्य्यसमाज है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि सब शिष्ट सभाओं का नाम आर्य्यसमाज रखना परम भूषण है और हमें निश्चय है कि इस में हानि कुछ नहीं ॥

(४) मनुष्य को चाहिये कि सत्यशिक्षा, सत्यविद्या, न्याय, पुरुषार्थ, सौजन्य और परोपकार आदि के आचरण में स्वयं वर्ते और यत्न करे कि उसी में बन्धु जन भी वर्तें यह संक्षेप से उत्तर दिया गया। परन्तु इसका विस्तार पूर्वक ज्ञान वेद आदि शास्त्रों के अध्ययन और श्रवण से ही जाना जासका है विज्ञात रहे कि मैंने जो वेदभाष्य, सन्ध्योपासन, आर्य्याभिविनय, वेदविरुद्धमतखण्डन, वेदान्तिध्वान्तिनिवारण, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थ बनाए हैं उनके देखने से भी वेदों के उद्देश्य जाने जासक्ते हैं ॥

जीव का स्वरूप

जो चेतनवान् होना (है) वह जीवपन (है)। क्योंकि जीव का तो स्वभाव चेतनत्व है ॥

जीव के धर्म्म

इच्छादि इस (जीव) के धर्म्म हैं वह तो निराकार अविनाशी और अनादि है न कभी उत्पन्न हुआ न कभी नष्ट होता है। इस (बात) का विचार वेदों और आर्य्य ग्रन्थों में बहुत हेतुओं से किया गया है यहां विस्तारपूर्वक लेख का अवकाश नहीं इसलिये यहां बहुत थोड़ा प्रकाशित करते हैं ॥

मन्त्रद्वारा जीवके धर्म्मोका वर्णन

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥ यजु० अ० ४० मं० २ ॥

प्रयत्न | यहां "कर्म्म को कर्त्ता हुआ हो" इस वेद वचन से शतवर्ष पर्यन्त "प्रयत्न" करना जीव का धर्म्म (प्रतीत होता है) ॥

इच्छा | "जीने की इच्छा करे" इस से "इच्छाधर्म्म" ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥ यजुः अ० ६ । २२ ॥

सुख | "हमारे लिये जल और ओषधिये कल्याणकारी हों" । इस वचन में सुख की इच्छा करने से "सुखधर्म्म" ॥

दुःख | "उस (शत्रु) के तांई दुःखदायी हों" इस वचनानुसार दुःख त्याग की इच्छा करने से "दुःखधर्म्म" ॥

द्वेष | जो हम से द्वेष करता है जिसके साथ हम (विद्वान्) द्वेष करते हैं इस से "द्वेष धर्म्म" ॥

वेदाहमेतं पुरुषम् ॥ य० ३१ । १८

ज्ञान | मैं (जीव) उसमहान् पुरुष को जानता हूं इससे "ज्ञानधर्म्म" ।

जीव चेतन स्वरूप है इसी लिये जो २ उस के अनुकूल होता है उस २ को "सुख" जानकर सदा उसकी इच्छा करता है । जो२ प्रतिकूल है उस२ को "दुःख" जानकर सदा उससे "द्वेष" करता है । सुख प्राप्ति और दुःख हानि के लिये सदा "प्रयत्न" करता है । ज्ञात रहे कि इन धर्म्मों के अन्तर्गत अन्य बहुत सूक्ष्म जीव के धर्म्म हैं ॥

न्यायदर्शन का प्रमाण | **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति ॥ न्याय० । अ० १ । सू० १० ॥**

सूत्रार्थ | इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान यह आत्मा के लिङ्ग हैं ज्ञात रहे कि जीव के ये लिङ्ग उसके धर्म्मों के लक्षण हैं ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ वैशेषिक० अ० ३ आ० २ सू० ४ ॥

वैशेषिक दर्शन का प्रमाण

(प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनः, गति, इन्द्रिय, अन्त-विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये आत्माके लिङ्ग हैं) ॥

धर्म्मों के लक्षण

कोष्ठस्थित वायु का बाहर निकालना " प्राण " है । बाह्यवायु का आचमन करना " अपान " नेत्रों का मींचना " निमेष " नेत्रों को खोलना " उन्मेष " प्राणों को धारण करना " जीवन " ज्ञान अर्थात् जानना " मनस् " उत्क्षेपण ऊंचा फेंकना आदि की क्रिया " गति " किसी विषय से इन्द्रियों का संयोग और किसी विषय से वियोग " इन्द्रिय " हृदय में व्यापार होना " अन्तर् " क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग " विकार " धर्म्म का अनुष्ठान " धर्म्म " अधर्म कर्म को करना " अधर्म " जाति अभिप्राय से एकत्व व्यक्ति अभिप्राय से बहुत्व " संख्या " पूर्व अनुभूत का ज्ञानके मध्य में अङ्कित (चिह्नित) होना " संस्कार ", परम सूक्ष्म होना परिमाण " एक दूसरे से इसका भेद " पृथक्त्व " मिलना " संयोग ", मिलकर पृथक् होना " वियोग " यह जीव के धर्म्म हैं ॥

मानसोऽग्निर्जीव इति ।

महाभारत का प्रमाण ।

महाभारत के मोक्ष धर्म्म अन्तर्गत भारद्वाज की उक्ति का यह वचन है, इसका अर्थ यह है कि जो पदार्थ मनस् अर्थात् अन्तःकरण में वर्तमान इच्छा से लेकर ज्ञान पर्य्यन्त सब धर्मों के प्रकाश से युक्त है उसकी जीव संज्ञा समझनी चाहिये ॥

यह (जीव) निःसंदेह देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से भिन्न चेतन है । कैसे ? इसलिये कि एक समय में अनेक अर्थों को जो सन्धान करता है, यथा जिस को मैंने कान से सुना है उसको आंख से देखता हूं, जिसको आंख से देखा है उस को हाथ से छूता हूं, जिसको हाथ से छूआ है उसका रसना से स्वाद लेता हूं जिस का रसना से स्वाद लिया है उसको नासिका से सूंघता हूं, जिसको नासिका से सूंघा है उसको मन से विचारता हूं, जिसको मन से विचारा है उसको चित्त से स्मरण करता हूं, जिसको चित्त से स्मरण किया है उसको बुद्धि द्वारा निश्चय करता हूं, जिसको बुद्धि से निश्चय किया है उसका अहङ्कार से अभिमान करता हूं, पस मानना पड़ता है कि जो इस प्रकार की प्रत्यभिज्ञाओं से वर्तमान है वह आत्मस्वरूप सर्व से पृथक् है । कैसे ? इसलिये कि श्रोत्रादि इन्द्रिय अपने २ विषय मे वर्तमान हैं और उनका मार्ग अन्य इन्द्रियों के विषयों से भिन्न है पस उन उन

इन्द्रियों से पृथक् २ अर्थ ग्रहण होते हैं उनका वर्तमान समय में जो सन्धान करने वाला है वह जीव है क्योंकि अन्य के देखे हुए को अन्य स्मरण नहीं करसकता तथा स्पर्श के ग्रहण में श्रोत्रसाधक नहीं और शब्द के ग्रहण में त्वक् साधक नहीं। परन्तु श्रोत्र से जिस घट को सुना था उसी को हाथ से छूता हूं इस प्रकार पूर्वकाल में जिस अर्थ को देखा वा अनुभव किया था फिर उसको प्रत्यभिज्ञा से अर्थात् पहचान कर वर्तमान समय में अनुसन्धान से ज्ञान होता है कि यह वही पदार्थ है। इस प्रकार का धर्म उस जीव ही का मानना पड़ता है जो उभयदर्शी (सर्व इन्द्रिय के व्यवहारों को देखनेवाला) सर्व साधनों में व्यापक सर्व का अधिष्ठाता और ज्ञानस्वरूप है ॥

इस प्रकार से जीव के स्वरूप का ज्ञान बहुत आर्य्यों को वेदशास्त्र के बोध और समाधियोग वा विचार से हुआ, होता है, होगा, ॥

मरण का लक्षण। जब यह जीव शरीर को त्यागता है तब कहते हैं कि मरण हुआ। देहाभिमानी उस जीव के वियोग विना मरण सम्भव नहीं होता ॥

मरण के पीछे अन्य जन्म प्राप्ति ॥ यह जीव देहत्याग कर आकाश में स्थितहोता है फिर ईश्वरव्यवस्था से अपने पाप पुण्य के अनुसार अन्य शरीर को पाता है ॥

जीवमरण के पश्चात् पुनर्जन्म के पूर्व जीव की अवस्था ॥ पूर्वशरीर को त्याग कर (जीव) जबतक आकाश, गर्भ, बाल अवस्था वा अज्ञ अवस्था में रहता है तब तक उसको विशेष ज्ञान नहीं होता किन्तु जैसे निद्रा वा मूर्छा प्राप्त जीव होता है वैसी वहां इसकी हालत होती है ॥

यदि इसका ऐसा सामर्थ्य हो कि (किसी से) वार्ता करे, कपाटों को खटखटाए, वा दूसरे के शरीर में प्रवेश करसके तो फिर क्यों प्रिय स्थान, धन, शरीर, वस्त्र और भोजन आदि वा प्रिय स्त्री, पुत्र, पिता, बन्धु, मित्र, भृत्य, पशु और यान आदिको प्राप्त न होजावे ॥

(प्र०) यदि इस विषय में कोई यह कहे कि जब सम्यग्ध्यान करके उसको कोई बुलावे तो उसके पास वह आजावे ॥

(उ०) इसका उत्तर यह है कि जब किसी का कोई प्रिय मरता है तब वह उसकी प्राप्ति के लिये दिनरात सम्यग्ध्यान करता है फिर वह क्यों नहीं आता ॥

इस पर यदि कोई कहे कि पूर्व सम्बन्धियों के पास नहीं आता औरों के पास आता है, यह बात ठीक नहीं होसक्ती किसलिये कि पूर्व सम्बन्धियों में उस के लिये प्रीति विद्यमान होती है असम्बन्धियों में प्रीति का अभाव देखा जाता है ॥

यह जगत् अधिष्ठाता के बिना स्वतन्त्र नहीं होसक्ता किसलिये कि इस सब जगत् का अधीश न्यायकारी, सर्वज्ञ, सब जीवों को उनके पाप पुण्य के अनुसार फल देने वाला ईश्वर सदैव जागरित है ॥

मृतक का प्रतिबिम्ब नहीं होसकता।

पस श्रीमानों ने मेरे पास मृतक का जो प्रतिबिम्ब भेजा है निश्चित उसमें कपटपन और धूर्तपन का व्यवहार है जैसे इन्द्रजाली चातुर्य से आश्चर्य विपरीत व्यवहारों को सत्य की नाईं दर्शाता है वैसे यह भी प्रतीत होता है जैसे (यदि) कोई पुरुष सूर्य वा चन्द्रके प्रकाश में अपनी छाया में कण्ठ वा शिर के ऊपर निमेष उन्मेष से रहित स्थिर दृष्टि करे अर्थात् टकटकी लगावे फिर कुछ काल के पीछे शुद्ध आकाश की ओर इसी प्रकार टकटकी लगाकर देखें तो अपने से भिन्न अपनी छाया की प्रतिबिम्ब रूप महता मूर्ति को देखता है वैसे ही यह व्यवहार समझना चाहिये ॥

भूत शब्द के अर्थ

संस्कृत विद्या में भूत शब्द के अर्थ यह हैं कि जो कोई शरीर और प्राण के साथ रह कर (फिर उनके साथ) न रहे ॥

प्रेत शब्द के अर्थ

और जो निर्जीव देह सामने है जिसका जब तक दाह आदि नहीं होता तब तक उसकी प्रेत संज्ञा है ॥

१—यह आप्त वचन है किः—

भूत और प्रेत शब्दों के अर्थों में प्रमाण।

ईश्वरेण समः कश्चिन्न भूतो न भविष्यति ॥

अर्थ-ईश्वर के समान न "भूत" हुआ न होगा ॥

२—गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।

प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥

मनु० अ० ५ श्लोक ६५ ॥

अर्थ—शिष्य गुरु के प्रेत (देह) का पितृमेध (दाह) करके (प्रेतहारैः) देह उठाने वालों के साथ दश दिन में शुद्ध होता है ॥

यहां भूत शब्द से भूतकाल में स्थित का ग्रहण है । " प्रेत " और " प्रेतहारैः " इन पदों से मृतक के शरीर का प्रेत नाम होता है । जिस प्रकार " पितृमेध को करना " इन पदों से मृत पिता के शरीरदाह की तरह गुरु के मृतशरीर का दाह "पितृमेध" कहाता है उसी प्रकार मृतकशरीरों के दाह करने का नाम "नृमेध" जानना चाहिये । यह बात प्रसङ्ग से कही गई ।

जैसे इस समय के लोगों का अभिप्राय " भूत प्रेत " शब्दों के व्यवहार से है वैसे कभी सम्भव नहीं । जिसलिये कि मूल से मिथ्या होने के कारण यह भ्रान्तिरूप है " भूत प्रेत है वा नहीं " इस विषय में सन्देह कोई नहीं वरन हम जानते हैं कि यह सब कपट जाल है । इस विषय में हम अति विस्तार नहीं करते इतने से आप अधिक विशेष जान लेंगे ।

(७) आप जिस शिक्षा को मुझ से लेना चाहते हैं वह परमार्थ और व्यवहार विषय के भेदों से बहुत बड़ी है पत्र द्वारा लिखी नहीं जा सकती संक्षेप से मेरे रचे (ग्रन्थों) में लिखी है विस्तार से तो वेदादि शास्त्रों में है । परन्तु इसके उत्तर देने के लिये मैंने श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा है कि वे मेरे रचे बहुतछोटे ग्रन्थ आर्योद्देश्य रत्नमाला को इंग्लेंडीय भाषा में विवर्ण करके आप के पास शीघ्र भेजें निश्चय रक्खें कि वे शीघ्र भेजेंगे । उसको देखकर मेरे उपदेश की शिक्षा उद्देश मात्र मोटी २ आप को होजावेगी ॥

(८) वेदोक्त अनुसार वक्ष्यमाण रीति से मृतककी क्रिया करनी चाहिये । यद्यपि संस्कारविधि ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक उसका प्रतिपादन है तथापि यहां संक्षेप से लिखते हैं:—

जब कोई मनुष्य मरजावे तो चाहिये कि मृतक के शरीर को सम्यक् स्नान करा उत्तम सुगन्धि से अनुलेप कर सुगन्धि युक्त शुद्ध नवीन वस्त्र पहना मलीन वस्त्र उतार श्मशान भूमि में लेजावें वहां वेदी इतने परिमाण की बनावें कि जितना पुरुष ऊर्ध्वबाहु (पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे) हो उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो उतनी चौड़ी, उरु (थल) तक गहरी और नीचे १२ अङ्गुल हो फिर जल को छिड़कावें तत्पश्चात् शरीर के बराबर घृत को वस्त्र से छाने उसमें प्रति सेर घृत में एक रत्ती कस्तूरी और एक २ माशा केसर पीस कर यथावत् मिलावें, चन्दन, पलाश, आम्रादि काष्ठों को लेकर वेदी के गढ़े के परिमाण से इनके खण्ड करें नीचे से आधी वे-

दी को पूरकर उसके ऊपर मध्य में मृतक के देह को रक्खें, कर्पूर, गुग्गुल, चन्दन आदि के चूर्ण को मृतक की देह के चारों ओर बखेरें फिर उन्हीं काष्ठों से तट से ऊपर वितस्तिमात्र वेदी चिन कर अग्नि लगावें ॥

उस घृत को थोड़ा २ लेकर यजुर्वेद के उनतालीसवें अध्याय के प्रति मन्त्रको उच्चारण कर चारों ओर जलावें । फिर जब शरीर भस्मीभूत होजावे तो वहांसे लौटकर जलाशय वा अपने २ गृह में पहुंचकर स्नान आदि कर निःशोक हो यथा-योग्य अपने २ कार्य करें । फिर जब दाहदिन से तृतीय दिन सारा शरीर शीतल होजावे तो वहां जाकर अस्थि (हड्डियों) समेत सब भस्म को लेकर शुद्ध देश में किसी स्थान पर गढ़े को खोदकर वहां उस सब को रख गढ़े को मट्टी से ढाँप दें । इतना ही वेदोक्त सनातन उत्तमोत्तम मृतक संस्कार है इससे न्यूनाधिक नहीं ॥

इसी प्रकार चाहिये कि आप के पास जो अपने मित्रों के शरीरों की हड्डियें हैं उनको भी कहीं शुद्ध भूमि में गढ़ा खोदकर रखादें और मट्टी से गढ़े को ढकादें ॥

(९) दोनों पत्र इङ्गलैण्ड देश में यथालिखित स्थान पर भेज दिये हैं ॥

(१०) जब आप का निश्चय हो तब सभा का नाम बदलें । विद्वानों की सभा का यह नियम है कि जब कुछ नूतन कार्य्य करना हो तो उत्तम विद्वान् सभासदों को सब निवेदन कर उनकी अनुमति से उसे करना चाहिये । जो सभाका काम स-र्वोपकार के विरुद्ध हो वह २ कभी नहीं करना चाहिये परन्तु हां जिस २ का फल परिणाम मे आनन्द देने वाला हो वह शीघ्र ही समय पाकर पुरुषार्थ से करना चा-हिये । पस मेरी मति में इस में कुछ हानि नहीं कि जब अवसर मिले तब वहां की सभा का नाम " आर्य्यसमाज " रक्खा जावे ॥

(११) इस के पीछे श्रीमान् जो २ पत्र मेरे पास भेजें उस पर मेरा नाम लि-खकर भेजें परन्तु वह पूर्व लेखानुसार श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा भेजा जावे । उसमें क्रम यह हो कि पत्र के ऊपर मेरा नाम पत्रावरण के ऊपर श्रीयुत ह-रिश्चन्द्र चिन्तामणि का नाम हो ॥

सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त सर्वशक्तिमान् दयासागर सर्वके न्यायाधीश परब्रह्म को असंख्यात धन्यवाद कहना चाहिये कि जिसकी कृपा से आपके साथ हमारा और हमारे साथ आपका सम्यक् प्रीति और उपकार का समय प्राप्त हुआ इस अमूल्य समय को पाकर आप और हम ऐसा प्रयत्न करें जिस से भूगोल के बीच सब मनुष्यों

के पाखण्डमत, पापाचरण, अविद्या, दुराग्रह आदि दोष निवृत्त हो एक सनातन सत्यमत जो वेद सृष्टिक्रम और प्रमाणों के अनुकूल है प्रचलित हो ॥

पत्र द्वारा बहुत थोड़ा कार्य्य सिद्ध होता है जब तक समक्ष परस्पर वार्त्ता न हो तब तक पूरा लाभ नहीं होसक्ता परन्तु आशा है कि जिस ईश्वर की कृपा से पत्र द्वारा वार्त्ता प्रवृत्त हुई है उसही के अनुग्रह से आपका और हमारा कभी समक्ष भी समागम होगा। बुद्धिमानों के आगे बहुत लिखने से क्या लाभ ॥

संवत् १९३५ श्रावणवदी ११ शुक्रवार को मैंने यह पत्र लिखा ॥

(ता० २६ जुलाई सन् १८८०) दयानन्द सरस्वती।

परिणाम।

इसके पश्चात् कर्नल आलकाट व मैडम ब्लैवस्टकी आदि आर्यावर्त्त में आपहुंचे और मेरठ, बनारस और बम्बई आदि कई स्थानों पर स्वामीजी से मिलते व उपदेश लेते रहे। समाज भी इनका यथायोग्य सत्कार करता रहा, परन्तु इनका अभिप्राय तो कुछ और ही था। यह केवल स्वामीजी द्वारा अपनी प्रसिद्धि करवाकर अपना नया मत खड़ा करना चाहते थे, सो ऐसा ही किया। और मिथ्याविश्वास व अविद्यान्धकार में फंसी हुई आर्यसन्तान को भूत, प्रेत, कल्पित महात्मा, करामात आदि अनेक ढकोसलों को पश्चिमीय खोल पहना २ कर और भी गढ़े में गिराने का यत्न करने लगे। यहां तक कि इस देश की कोई भी ऐसी खुराफात न होगी, जिसको यह साइन्स के नाम से सिद्ध करने को तैयार न हों। मित्र के वेष में शत्रुता इसी को कहते हैं, परन्तु भोले भाले प्रशंसा के भूके लोग इनके फंदे में फंसने लगे। स्वामीजी ने इनको बहुत समझाया, इनकी योगविद्या व करामात पर शास्त्रार्थ के लिये कहा, परन्तु यह कब मानने वाले थे, लाचार आर्य्यसमाज से इनका विशेष सम्बन्ध रखना उचित न समझ इनकी पोल खोल दी और निम्न लिखित विज्ञापन देदिया।

थियोसोफ़िस्टों की गोलमाल पोलपाल ॥

(१) क्योंकि जोर इन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठियों में प्रसिद्ध लिखा था कि हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा हुई, उससे यह लोग बदलगये ।

(२) इन्होंने कहाथा कि वेदोक्त सनातनधर्म के ग्रहण और विद्यार्थी होकर संस्कृत विद्या पढ़ने को आते हैं, सोतो नकिया किन्तु अब किसी धर्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म की जिज्ञासा की, न आजतक संस्कृत विद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है ॥

(३) इन्हों ने कहा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फ़ीस आवेगी वह आर्यसमाज के लिये होगी और बहुतसी पुस्तकें भेंट की जावेंगी, वह तो कुछ भी न किया परन्तु जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास ७००) रुपये भेजे थे वह भी निगल के बैठ रहे, पुस्तकों का दान करना तो दूर रहा किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और शिवनारायण आर्यसमाज मेरठ के सभासदों ने उनके सत्कार में स्थान, मान, सवारी और खान पान आदि में सैकड़ों रुपये खर्च किये, इतने पर भी एच, पी, मैडम ब्लैवस्टकी और एच, एस, करनेल आलकाट साहब ने जो एक पुस्तक उनको दिया था उसके ३०) रु० झट लेलिये और लज्जित भी न हुये । इसके सिवाय सहारनपुर, अमृतसर और लाहोर आदि के आर्यसमाजों ने बहुतसा सत्कार किया वह भी इन्होंने नहीं समझा और स्वामीजी ने भी जहांतक बना इनका उपकार किया उसको नमान कर व्यर्थ लिखते हैं कि हमने स्वामीजी का बहुत सहाय किया, परंतु स्वामीजी कहते हैं कि कुछ भी नहीं किया और जो किया हो तो प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं सो कुछ भी प्रकट नहीं करते फिर कौन मानसकता है ?

(४) प्रथम इन्होंने अपने पत्रों में और यहां आकर स्वामीजी और सबके सामने ईश्वर को स्वीकार किया, फिर उसके विरुद्ध मेरठ में स्वामीजी और अनेक भद्र पुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते, क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है ? तब स्वामीजी ने कहा कि तुम ईश्वर के मानने का खण्डन करो और हम मण्डन करें जो सच हो उसको मान लीजिये, तब इन्होंने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया ॥

(५) जब ये आर्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचारपत्र "Indian spectator" में तारीख़ २४ जुलाई सन् ७८ ईस्वी में छपवाया था कि न हम बुधिष्ट, न हम क्रिश्चियन और न हम ब्राह्मण अर्थात् पुराण मत के मानने वाले हैं, किन्तु

हम आर्यसामाजिक हैं, अब इससे विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बुधिष्ट थे और अब भी हैं, क्या यह कपट और छल की बात नहीं है और जनवरी सन् ८० ई० की चिट्ठी से सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को मानते थे और आठ महीने के पश्चात् उसी सन् के अक्टूबर महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते यह उनका छल नहीं तो क्या है ?

(६) यहां आकर प्रथम थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा स्वीकार कर के पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्यसमाज की शाखा और न आर्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है किन्तु जो एक दूसरे वेद की शाखा दोनों के साझे की है, इस से विरुद्ध अब छाप के प्रसिद्ध किया कि हमारी सोसाइटी अभी आर्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्य समाज से बाहर हैं। क्या यह भी उनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब उन्होंने बम्बई में सोसाइटी बनाई थी, उस में स्वामीजी के कहने, सुनने और लिखने विना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब ये प्रथम मेरठ में मूलजी के साथ मिले थे तब स्वामीजी ने कहा था कि विना हमारे कहे सुने तुमने सोसाइटी में हमारानाम क्यों लिखा ? जहां लिखा हो काट दें, तब करनेल आलकाट साहब ने कहा कि हम इस के आगे ऐसाकाम कभी न करेंगे, जहां लिखा है वहां से निकाल भी देंगे। फिर जब काशी में मिले, तब तक उन्हों ने सोसाइटी से स्वामीजी का नाम नहीं निकाला था, तब स्वामीजी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहां हमारा नाम लिखा हो वहां से शीघ्र निकालदो जब इन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या लिखें तब स्वामीजी ने तार में ही उत्तर दिया कि जैसा हमने प्रथम वैदिकधर्म उपदेशक लिखा था, वैसा लिखो। न मैं तुम्हारी वा अन्य किसी सभाका सभासद् हूं, किन्तु एक वेदमार्ग को छोड़ के किसी का संगी मैं नहीं हूं, इस पर भी जब वे शिमले में थे, तब ब्लैवस्टकी ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिसको कोई सभ्य स्विकार न करेगा, क्या यह उनको योग्य था ? स्वामीजी ने कभी उनको न लिखा था और न कहा था, उस पर भी इन्होंने स्वयम् स्वामीजी का नाम लिख लिया था क्या यह लज्जा की बात नहीं है ?

(७) जो इन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज से पीछे आर्यसमाज के सभासदों को अपनी सोसाइटी में भरती होने को कभी न कहेंगे, इसी के दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलालजी अम्बाले तक उन के साथ गये, तब मार्गमें बहुत समझाते गये कि आप हमारी सोसाइटी के साथ हूजिये और पत्र शिमलेसे बाबूजी के पास भेजा कि आप सोसाइटी के सभासद् हूजिये।

ऐसी २ छलकपट की बातें देखकर स्वामीजी ने आर्यसमाज मेरठ के वार्षिक उत्सव में व्याख्यान दिया था कि इनकी सोसाइटी में किसी वेदानुयायी को सभासद् होने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि जैसे नियम आर्यसमाज के हैं वैसे उनकी सोसाइटी के नहीं। इस पर शिमले से मैडम ब्लैवस्टकी ने असभ्यता और झूठ की भरी हुई चिट्ठी लिखी और स्वामीजी ने भी इसका उत्तर यथायोग्य दिया। इस के पश्चात् स्वामीजी ने विचारा था कि जब हम बम्बई में जावेंगे, तब उनसे सब बातों का खुलासा करलेंगे, ऐसा ही आर्यसमाज बम्बई चाहता था। जब स्वामीजी बम्बई में पहुंचे, तब बहुत से सभासद् और करनैल आलकाट साहब भी स्टेशन पर आये थे, जब स्वामीजी स्थान पर आपहुंचे, पश्चात् उनसे स्वामीजी की बहुतसी बातें हुई और स्वामीजी ने यह भी विदित करदिया कि आपसे और भी बहुत विषयों में बातें करनी हैं तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया। जब कुक साहब के विषय में बातचीत करने के लिये स्वामीजी के पास आये, तब भी कहा कि आपका और हमारा विचार हो जाना चाहिये था, तब करनैल अलकाट साहब ने कहा कि हां करेंगे। इस पर भी स्वामीजीने पानाचन्द आनन्दजी और राव बहादुर पं० गोपालराव हरिदेश मुख द्वारा कहलाया कि आपलोग मुझसे बातचीत करने को आवें, नहीं तो हमको प्रसिद्ध भाषण देना होगा। पानाचन्द आनन्दजी से इन्होंने पूछके स्वामीजी से कहा कि २७ मार्च ८२ को करनैल आलकाट साहब बातचीत करने को आवेंगे फिर भी न आये और बम्बई से जयपुर पहुंचकर पत्र लिखा कि मैं नहीं आसका, परन्तु मैडम ब्लैवस्टकी आपसे बातचीत करलेंगी, वह भी नहीं आई ॥

तब स्वामीजी का भाषण आर्यसमाज और थियोसाफिकल सोसाइटी के पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् उनकी थियोसाफिकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था अब क्या है, इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्यसमाज बम्बई ने एक दिन पूर्व नोटिस छपवाकर प्रसिद्ध करदिया तो भी मैडम ब्लवस्टकी ने स्वामीजी के पास आकर बातचीत न की, तब स्वामीजी ने भाषण दिया।

इस पर अपने थियोसोफिकल पत्र में लिखते हैं कि हम से विना कहे, सुने स्वामीजी ने व्याख्यान दिया, क्या यह बात उनकी झूठ नहीं थी, इसमें उनकी चिट्ठियां पढ़ पढ़ाकर सुनाई कि जिसमें उनका पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार प्रकाश किया और यह कहा कि ये लोग कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ। ऐसा कहते हैं कि हम आर्यावर्त देश की उन्नति करने के लिये आये हैं, परन्तु उन्नति के बदले उनके काम

अवनति कारक विदित होते हैं। देखो स्वामीजी ने अनेकवार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफ़िस्ट समाचार में भूत, प्रेत, पिशाच आदि का होना लिखते हो, यह विद्या के विरुद्ध व असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो, क्योंकि यह समाचार इस देश और यूरोप में भी जाता है सब लोग जान जायेंगे कि आर्यावर्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के मानने वाले हैं। इस बात को अब तक नहीं माना और पूर्व पत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे, क्या इस बात को भी कोई सच कर सकता है।

(९) जो पत्र कुक साहब को लिखा था वह करनैल आलकाट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामीजी ने लिखवाया इस में (most divine) अर्थात् कौनसा धर्म अधिक सम्बन्ध ईश्वर से रखता है, यह स्वामीजी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था। जब उनके गये पश्चात् स्वामीजी ने इस पत्र की नकल पढ़वाई तो अशुद्ध विदित हुआ, फिर इस पर स्वामीजी के पास करनैल साहब आये और तब वह शब्द कटवा दिया अर्थात् उसके स्थान में ऐसा लिखवाया कि जब आप और मुझ से संवाद होगा तब विदित होजायगा कि कौन धर्म ईश्वर प्रणीत है और कौनसा नहीं, इतने पर भी उन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया क्या ऐसी बात उनको कर्त्तव्य थी ? देखो यह उनकी सोसाइटी के नियमों में—" थियोसोफिस्ट अर्थात् ईश्वर के मानने वाले, इस सोसाइटी में फीस नहीं ली जाती, इस धर्म से कोई धर्म उत्तम न कहना न जानना और सदा कृश्चियन धर्म के विरुद्ध रहना चाहिये " जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिस ने यह सब बनाया है उस ईश्वर को मानना दस २ रुपये फीस लेना और जिस धर्म का व्याख्यान देते हैं, उसी को सब से उत्तम कहने लगजाते हैं क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है ?

अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं इतने नमूने ही से सब कोई समझ लेंगे, परन्तु उस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि उनकी सोसाइटी और उनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्यावर्त देश और आर्यसमाजों को सिवाय हानि के कुछ भी लाभ नहीं, क्योंकि इन लोगों का अन्तरीय अभिप्राय क्या है ? इसको ये ही जानते होंगे जो इनका अन्तर ही निष्पक्ष होता तो ऐसा पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार क्यों करते ? जब ये भयङ्कर नास्तिक, वाचाल और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्यावर्त देश और आर्यसमाजस्थ पुरुषों को उचित है कि इनसे सम्बन्ध और देशोन्नति की आशा न रक्खें।

देखो और भी थोड़ा सा उनके प्रपञ्च का नमूना-प्रथम स्वामीजी का नाम लेते थे जब स्वामीजी उनके जाल में न फंसे तो अब कोटहूमीलाल का नामलेते हैं कि जिस को न किसीने देखा और न पूर्व सुनाथा, जो कभी उसके नाम से स्वार्थसिद्ध न होगा तो गोत्र कोटूहूमीसिंह नाम शायद लेंगे, अब कहते हैं कि वह हमारे पास आता बातें और चमत्कार दिखलाता है देखो इनका यह फोटो (चित्र) है, चिट्ठियां और पुष्प ऊपरसे गिरते हैं, खोई हुई वस्तु निकलती है इत्यादि सब बातें उनकी झूंठ हैं। क्योंकि दूसरी को तो जाने दो, परन्तु जब प्रथम करनैल साहब मैडम के साथ बम्बई में आये थे, तब कुछ वस्त्र आदि की चोरी हुई थी, उस के लिये बहुतसा यत्न पुलिस आदि से कराया था, उनको क्यों नहीं मंगवालिया ? जब अपने पदार्थ न मंगवा सके तो शिमले की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा । जब स्वामीजी और मैडम से मेरठ में योग विषय में बात हुई थी, तब कहाथा कि योगशास्त्र और सांख्य की रीति से मैं योग करती हूं, तब स्वामीजी ने उनसे उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी, तब कुछ भी उत्तर न देसकीं, अर्थात् जैसे बाज़ीगर तमाशा करते हैं उसी प्रकार की इनकी भी बातें हैं, जो योग को थोड़ा भी करते हैं वह भीतर और बाहर से सरलता का व्यवहार करते हैं न कि छल और कपटयुक्त व्यवहार । जो योगविद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मानकर भयङ्कर नास्तिक क्यों बन जाते, इनके योगविद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है । इसलिये यही निश्चय है कि इनकी सोसाइटी और उसकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं इसलिये इनसे पृथक् रहना अति उत्तम है ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

उन पत्रों की नकल जो स्वामीजी के हस्ताक्षरों से वैदिक प्रेस में आये ।

उर्दू पत्र ।

ओ३म्

लाला शादीरामजी आनन्दित रहो-

वाज़ह होकि ख़त तुम्हारा आया हाल मालूम हुवा और तुमने जो टिकट १०॥) के और तीन फ़र्मे नामिक के भेजे सो पहुंचे ख़ातिर जमा रक्खो, हमने इस माहका ऋग्वेद का भी अङ्क देखा उसमें भी ग़लती बरआमद होती हैं मगरहां फ़र्मे अख़ीर में बेशक ग़लतियां कम हैं अगर इसी तरह ज्वालादत्त ख़याल करेगा और काम में दिल लगावेगा तौ आयन्दह ग़लती बिलकुल न रहेगी उस को ताकीद करदो कि प्रूफ़ को चार पांच दफ़े देखा करे और एक मात्रा की भी ग़लती न रहा करे तब छापने का हुक्म दिया करे, प्रूफ़ हमारे ग्रन्थ माफ़िक़ दुरुस्त होजाना चाहिये अगर वह ज़ियादह शुद्ध न करे तो अशुद्ध भी न करना चाहिये, उस की नज़र शोधने में बहुत मोटी है देखो नामिक के नोट में "छन्दस्युभयथा" ऐसा लिखना चाहिये था कि उस ने बजाय इस के "छन्दस्युथा" छपवादिया है ऐसा ग़ाफ़िल होना उस को लाज़िम नहीं अगर वह कहे और पसंद करे कि मैं भाषा नहीं बना सकता सिर्फ़ शोधाकरूंगा तो हम को क़बूल है, हम भाषा का बनाना उस पर से मौक़ूफ़ कर देंगे और सिर्फ़ शोधने ही पर रख लेंगे और जो तनख़्वाह भीमसेन को देते थे यानी ५) उस को भी, बल्कि दो ज़ियादह यानी ७) माहवारी देवेंगे क्योंकि हम ख़ूब जानते हैं कि वह बजुज़ लिखने और श्लोक बनाने के और कुछ नहीं कर सकता पस अब उस को तुम बख़ूबी ताकीद करदो कि कोई एक भी ग़लती न रहने पावे अगर अब की मर्तबा एक भी ग़लती रही तो हम उस पर बेशक व शुबहा दण्ड करेंगे। और यह भी तहरीर करो कि बनारस में आज कल सबजज यानी जजमातहत या सदर आला कौन है जनाब रामकाली चौधरी साहब हैं या और कोई साहब हैं और हम सब तरह आनन्द में हैं ।

मुकर्रिर यह है कि हम तुम्हारे पास ऋग्वेद व नामिककी शुद्धि अशुद्धि नमूने के तौर पर लिख कर रवाने करते हैं, ज्वालादत्त को देदेना और तुम भी देखना कि किस कदर गलती निकलती हैं।

आगरा ७ फरवरी ८१ ई० दयानन्द सरस्वती

उर्दू पत्र ।

ओ३म् ।

मास्टर शादीरामजी–

आप पण्डित ज्वालादत्तजी को खूब समझा देवें कि व्याकरण में कुछ जरूरत "नवीनरचना" की नहीं है। जैसे अब नामिक छपता है वैसे ही छपने दो और नामिक के बाद कारकीय छपेगा और पण्डित ज्वालादत्त के शोधने में बहुत गलती रहती हैं उनको ताकीद करो कि खूब गौर से शोधें ताकि गलती न रहे।

आगरा २२ दिसम्बर ८१ ईस्वी दयानन्द सरस्वती

नागरी पत्र ।

पण्डित सुन्दरलाल असिस्टेन्ट पोस्टमास्टर जनरल प्रयाग आनन्दित रहो–

मैं आप परोपकार प्रिय धार्मिक जनों को सब लोगों के उपकारार्थ गाय बैल और भैंस की हत्या के निवारणार्थ एक तो सही करने का और दूसरा जिसके अनुसार सही करनी करानी है दोनों पत्र भेजता हूं इसको आप लोग उत्साहपूर्वक स्वीकार कीजिये जिससे आप महाशय लोगों की कीर्त्ति इस संसार में सदा विराजमान रहे इस काम को सिद्ध करने का विचार इस प्रकार किया गया कि दो करोड़ से अधिक राजे महाराजे और प्रधान आदि महाशय पुरुषों की सही कराके आर्यावर्त्तीय श्रीमान् गवरनर जनरल साहब बहादुर से इस विषय की अर्ज़ी करके उपरि लिखित गाय आदि पशुओं की हत्या को छुड़वा देना मुझको दृढ़ निश्चय है कि प्रसन्नता पूर्वक आप लोग इस महोपकारक काम को शीघ्र करेंगे अधिक प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि जहां २ उचित समझें वहां २ भेजकर सही करा लीजिये पुनः नीचे लिखे स्थान में रजिस्टर कराके भेज दीजिये (लाला रामशरणदास रईस मन्त्री आर्य्यसमाज मेरठ महल्ला कानूनगोयान) अलमतिविस्तरेण धर्मिवरशिरोमणिषु ॥

चैत्र कृष्णा ८ चन्द्रवार संवत् १९३८ ह० दयानन्द सरस्वती

ओ३म् ॥

प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदान आनन्दित रहो ।

विदित हो कि ता० ४ सेप्टेम्बर का लिखा हुआ पत्र तुम्हारा पहुंचा समाचार ज्ञात हुये। टैप के विषय में एक पत्र आज भेज चुके हैं उस के अनुसार प्रबन्ध करना। जो कहीं पद छूट जाता है वह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है। हम प्रायः इस बात में ध्यान नहीं देते क्योंकि यह सहज बात है। अच्छा जहां कहीं रह जाया करे तुम देख लिया करो कि किस२ मंत्र में क्या २ छूटा। और यहां लिख के भेज दिया करो।

उदयपुर नौलखाबाग सम्वत १९३९ दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

मुन्शी समर्थदानजी आनान्दत रहो।

पत्र तुम्हारा आया समाचार विदित हुआ। अब तुम बहुत शीघ्र नया टैप मंगाओ नहीं तो सत्यार्थप्रकाशादि सब पुस्तक बिगड़ जायंगे चाहे दोनों ओर से मंगाओ पर शीघ्र मंगाओ हम लिख चुके हैं कि गत महीने में कितने फर्म छपे और अख्यातिक तथा पारिभाषिक आदि पुस्तक मंगाये हैं क्यों नहीं भेजे वा उत्तर दिया? अब शीघ्र भेजो। और कोश के विषय में जो तुमने लिखा सो हम ऐसा कोश नहीं बनाते हैं कि सब कोशों से सब शब्दों का संग्रह करते हों किन्तु उणादि के ऊपर अनुकूल सुगम संस्कृत में वृत्ति बनाई है उसके प्रत्ययों के प्रसंग में जो अन्य शब्द आये हैं वे भी लिख दिये हैं। सो बनके तो तैयार होगया है सूचीपत्र बाकी है। निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है और निरुक्त तथा ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना। और ज्वालादत्त के पास भाषा बनाने के लिये अब भेजें वा ऐसा ही रक्खोगे ५ भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के फारम भेजे थे सो पहुंच गये। परन्तु सत्यार्थप्रकाश अक्षरों के घिस जाने से अच्छा नहीं छपता ॥

मि० मार्ग शुदी १० मंगल १९३९ दयानन्द सरस्वती

ओ३म् ॥

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

हम उदयपुर से फाल्गुनवदी ७ गुरुवार के दिन घड़ी रात से राज की चार घोड़े की डाक बग्गी में चल के शाम के ५ बजे नीमाहेड़े पहुंच कर ९ बजे रात के

चित्तौड़ में पहुंच गये रेल में बैठ कर। यहां तीन दिन ठहरेंगे पश्चात् जहां जायंगे तुमको ख़बर देंगे अब उदयपुर का वर्तमान लिखते हैं जब से हम उदयपुर में पहुंचे उस दिन से बहुत आनन्दित रहे और नित्य, प्रीति श्रीमान् महाशयों की बढ़ती ही गई मनुस्मृति के सप्तम अष्टम नवम पर्यन्त राजधर्म सब याथातथ्य पढ़लिये अन्य बहुत से महाभारतस्थ विदुर प्रजागर तथा ६ शास्त्रों के मुख्य २ विषय और चलते वक्त थोड़ासा व्याकरण का विषय और अन्वय की रीति भी पढ़ली जैसा कि राजाओं को सत्यप्रतिज्ञ और पुरुष परीक्षक और गुणज्ञ तथा स्वगुण स्वदोष के मानने वाले होने चाहिये वैसे श्रीमान् महाशयार्य्यकुलदिवाकरों को मैंने देखा बहुत से राजा मुझ से मिले परन्तु जैसी प्रसन्नता मेरी और उदयपुराधीश की परस्पर रही और आगे के लिये भी दृढ़ रहेगी वैसी अन्य से बहुत न्यून सम्भावना है अब जिस समाचार को तुम पूंछा करते थे वह निम्नलिखित जानो। संस्कृत के अपने जो कि वेदाङ्गप्रकाशादि हैं उनका प्रचार राजकीय पाठशाला तथा चारणों की पाठशाला में कर दिया है।

वो जो प्रसिद्ध वा रहस्य में राजधर्म ईश्वर तथा वैदिकधर्म्म प्रचार और शरीर राजनीति आदि विषयों में उपदेश मैंने किया है उसका आचरण बहुतसा करलिया और करने की प्रतिज्ञा भी की है।

गत पञ्चमी मंगलवार के दिन सायङ्काल ७ बजे बड़े २ सर्दार तथा कामदारों की सभा बुला के स्वीकारपत्र जो कि मेरठ में हमने रजष्टर कराया था उसमें से एच. एच. कर्नैल ओलकाट साहब तथा एच पी ब्लैवस्टकी मुन्शी इन्द्रमणि को पृथक् करदिये और डाक्टर बिहारीलालजी का शरीर छूट गया इनके ठिकाने में अन्य पांच सभासद् और बढ़ा दिये अर्थात् प्रथम अठारह थे अब तेईस होगये उन में से सभापति श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर श्रीयुत महाराणाजी और उपसभापति लाला मूलराज एम. ए. मन्त्री कविराज श्यामलदासजी आदि नियत हुये हैं उसकी एक प्रति पर श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाकर सब ने माननीय प्रतिष्ठित माना है यह बात महा लाभदायक और बहुत बड़ा काम देगी अब सर्कारी राज में भी इसकी रजिस्टरी करालें सो रजवाड़ों में और अंगरेजी राज में भी बड़ा माननीय होगा और राजकीय यन्त्रालय उदयपुर में छपकर सभासदों के पास एक २ प्रति पहुंचेगी और जियादह छपेंगी तो अन्य योग्य पुरुषों के पास भी भेजदी जायंगी यह तुम्हारे पास इसलिये भेजते हैं कि अपने परामर्श, अनु-

मति और महाराणाजी को धन्यवाद लेखपूर्वक पत्र अन्त में और आदि में यह स्वीकार पत्र अच्छे कागज़ पर और अच्छे टैप में छपवाकर योग्य २ वेदभाष्य के ग्राहक और भारतमित्रादि समाचार पत्र और मुख्य २ पुस्तकालय में भेज दो और जब छप चुकेगा तब हम भी लिखेंगे कि फ़लाने २ के पास भेज दो।

और एक पत्र हमारे पास आने वाला है कि उसको एक अच्छे कागज़ पर छापकर तुम को सब आर्य्यसमाजों के पास भेजना होगा और वे श्रीमान् महाराणा जी के पास भेज देंगे और कुछ २ अपने आनन्द प्रदर्शक बातें लिखकर भेजेंगे तो अच्छा होगा।

बारह सौ रुपये कलदार धर्मार्थ वेदभाष्य के सहाय में और एक दुशाला मुझको तथा पांचसौ रुपये कलदार आर्य्यसमाज फ़ीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये और सौ रुपये कल्दार वहां जो लड़कियां कसीदा का काम करती हैं उनको पारितोषिक के लिये और सौ रुपये कल्दार और साधारण दुशाला रामानन्द ब्रह्मचारी को दिया अर्थात् उन्नीससौ कल्दार रुपये और दो वस्त्र प्रदान किये।

इन बारहसौ रुपयों को उन्हीं के पास रक्खे हैं इस प्रयोजन के लिये कि इसी मुख्य स्थान से प्रधान वैदिकधर्म प्रचार होवे और उसको पूर्णसहाय मिले इसका नाम वैदिकनिधि रक्खा है और मेरे नाम से स्थापित हुआ ऐसा खाता राज कोष में और महद्राज सभा में लिखित हो गया। इत्यादि सब उत्तम बातें वहां की यात्रा से हुई जिसको तुम सुन कर बड़े आनन्दित होगे इसलिये प्रथम तुमको लिखा इसके आगे जो २ वर्त्तमान होगा तुमको लिखा जायगा और गोरक्षा में भी पूरा सहाय निश्चित मिलेगा।

चित्तौड़गढ़

मि० फाल्गुन वदी १० रविवार सं० १९३९

तदनुसार ता० ४ मार्च सन् १८८३ (दयानन्द सरस्वती)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

१-पत्र तुम्हारा आया वर्तमान विदित हुआ जैनियों की पुस्तक का बंडल प्राप्त होने से निश्चय हुआ।

२-ईश्वरानन्द कहीं अन्यत्र चला गया है वह बड़ा चंचल है बहुत लोगों के कहने से हमने दीक्षा दी और तुम लोग भी प्रसन्न हुए परन्तु प्रसन्नता का काम करे जब ठीक है।

३-कम्पोजीटर के निकालने से बहुत हानि हुई परन्तु जैसे बने उन सब को जो कि पूर्व थे रखलो किसी का ॥) आना किसी का १) रुपया अधिक बढ़ा कर रखलो क्योंकि वेदाङ्गप्रकाश और सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छपना चाहिये।

४-तुमको हम निश्चित कहते हैं कि बाहर का काम किसी का मत छापो सत्यार्थप्रकाश और वेदाङ्गप्रकाश के छपने में देर होने का कारण बाहर का काम है और देशहितैषी और भारतसुदशाप्रवर्त्तक और प्रयागसमाचार सबका छापना बन्द करदो और उन को लिख दो कि तुम्हारी इच्छा हो जहां छपवाओ क्योंकि हम ने पहलेही लिखा था कि जब हमारे निज काममें हर्कत होगी उसी वक्त हम बन्द कर देंगे सो हर्कत बहुत होती है क्योंकि यह यन्त्रालय रोजगारके वास्ते नहीं है केवल सत्यशास्त्रों को छापकर प्रसिद्ध करने के लिये है न कि व्यापारके लिये यहां छापनेको बहुत है जितना चाहो उतना छापो इन समाचार आदि के छापने में समय खोना कुछ उचित नहीं हम को आशा है कि तुम भी इस बात को प्रसन्न कर लोगे क्योंकि तुम को प्रसन्न करना अवश्य है और पंडितजी की यही प्रसन्नता है।

५-तुम्हारे कलके पत्र में पुस्तकों का बंडल लिखा हुआ नहीं आया है आवेगा तब देख करके मान्यपत्र पर यदि तुम्हारा लेख मानने योग्य होगा तो रहने देंगे नहीं तो नहीं और वैदिकनिधि के विषय में तुमने लिखा सो ठीक है क्योंकि उन्हीं लोगों के दस्तखत से छपना ठीक है और धन्यवाद पत्र तथा मान्यपत्र पर प्रयाग समाज के प्रधान और मन्त्री के दस्तखत होना चाहिये।

६-ऋग्वेद के पत्रे १५७८ से लेके १६९७ तक पण्डित ज्वालादत्त को भाषा बनाने के लिये देदेना और उसने १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनाना स्वीकार किया है सो बराबर बनाया करे।

मि० वै० शु० ३ सं० १९४० ह० दयानन्द सरस्वती

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

हम ज्येष्ठबदि ४ शनिवार के दिन शाहपुरे से चलकर ज्येष्ठबदि १० गुरुवार के दिन जोधपुर पहुंचकर फैज्जुलाखांजी के बाग में ठहरे हैं। वेदभाष्य के टाइटल पेज

पर जोधपुर का नोटिस छाप देना और देशहितैषी को भी हमने कह दिया है कि वैदिक यन्त्रालय को मत भेजो और प्रयागसमाचार भी बन्द करदो यदि बन्द न करोगे तो हम दंड करदेंगे क्योंकि बहुत वक्त हम लिख चुके हैं सभा में जो बाहर के काम के छपने की अनुमति हो तो स्वीकार न किया जावे। ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छाप देना श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह जी वर्माने ३०) रु० माहवारी सदा के लिये ज्येष्ठबदि ४ शनिवार के दिन से वैदिकधर्म उपदेशकों के लिये देना स्वीकार करलिया है और २००) रुपये चित्तौड़ी कि जिस के १५०) कल्दार होते हैं वेदभाष्य के सहाय में प्रदान किये और मनुस्मृति के सप्तम अष्टम तथा नवमाध्याय जो कि राजधर्मविधायक हैं पढ़ कर योगशास्त्र वैशेषिक और न्यायशास्त्र के मुख्य विषय भी पढ़चुके परन्तु न्यायशास्त्र कुछ कम रहगया जोधपुर को शीघ्र आने से और हम लिख चुके हैं कि वेदभाष्य के ग्राहकों का रजिष्टर जो कि तुम्हारे पास वर्तमान है नकल करके भेजदो और टाइप शीघ्र मंगवावो और यदि १५०) रु० सेवकलाल कृष्णदास ने नहीं दिये हों तो तुम्हारे पाससे भेजदो और टाइप शीघ्र मंगवावो इस के लिये हम पण्डितजी को लिखदेंगे वह इस बात में तुमको कुछ नहीं कहेंगे और तुम भी लिखदेना कि स्वामीजी की आज्ञा से हमने भेजे हैं और रामानन्द के कहने से विदित हुआ कि लखनऊ का कम्पोजीटर दुष्ट है ऐसे आदमियों को यन्त्रालय में नहीं रहने देना चाहिये और यह पत्र बाबू विश्वेश्वरसिंह जी को भी सुना देना और जो छापने को सत्यार्थप्रकाश है उसको १ मास पहले हमको लिखभेजोगे तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पत्रे पहुंचेंगे। और यहां का विशेष समाचार आगे लिखा जायगा।

मि० ज्येष्ठबदि १० सं० १९४० ह० (दयानन्द सरस्वती)

जोधपुर

ओ३म्

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

आर्यराज बंशावली के पत्र तुमने भेजे सो पहुंचे उसी समय हम सत्यार्थप्रकाश १२ समुल्लासको भेजना चाहते थे इसलिये हम शोध नहीं सके और तुम इस का जोड़ मात्र शोध लेना जो राजाओं के आयु के वर्ष मास दिन हैं उन को वैसे ही रखना क्योंकि अन्य पुस्तक से भी हम ने इस को मिलाया है जो कि यहां जोधपुर में एक मुन्शी के पास था और इस के साथ मोहनचन्द्रिका १९—२० किरण भे-

जते हैं परन्तु यह भी अशुद्ध छपा है इसलिये नीचे और ऊपरके जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना आयुके वर्ष मास दिन नहीं। दिन वैसे ही रहने देना जैसे कि हैं २७२ से लेके ३१९ तक १२ समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिये भेजते हैं-जो जोधपुर के मुन्शी की पुस्तक से मिलाई है वह भी भेजते हैं।

मिती आ० बदी १ सं० १९४० (दयानन्दसरस्वती)

जोधपुर राज मारवाड़

ओ३म्

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

आज संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं सम्भाल के छपवाना और एक तीन पत्र का एक पत्र है वह जिस प्रकार जोड़ा है उसी प्रकार छपेगा वह गड़बड़ न हो इसलिये जोड़ा है इसी लिये तीनों का एक अंक रक्खा और हम ने भीतर प्रतीक के अंक पृष्ठांक अर्थात् फलाना मन्त्र वा फलाने कर्म फलाने पृष्ठ में करना। अपने लिखे पृष्ठों के अनुसार अंक लिखे हैं परन्तु लिखे और छपे एक से पृष्ठांक नहीं होंगे इस लिये छपे पृष्ठों के अनुसार वे पृष्ठांक बना लेने और विषय सूचीपत्र भी छपे पीछे बनेगा और एक सामग्री सूचीपत्र अर्थात् फलाने संस्कार में फलानी फलानी सामग्री संग्रह की जायगी जैसा कि इस संस्कारविधि में लिखा है और अवकाश मिला तो सामग्री सूचीपत्र तो हम ही यहां से लिख भेजेंगे अब हम यहां से अमावस्या के दिन रवाना होके आश्विन सुदी ४ चौथ को मसूदे में पहुंच जायंगे यदि वर्षा का प्रतिबन्ध नहीं हुआ और जो प्रतिबन्ध हुआ तो तुम को चिट्ठी लिख देंगे और सत्यार्थप्रकाश जोकि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुंचते समय भेज देंगे और मुम्बई से टैप आया वा नहीं और यदि नहीं आया तो प्रत्युत्तर भी आया वा नहीं।

मिती आश्विन बदी ८ सोमवार सम्वत् १९४०

जोधपुर राज मारवाड़ (दयानन्द सरस्वती)

ओ३म्।

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेके ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते हैं सम्भाल लेना आश्विन बदी ८ सोमवार संवत् १९४०

को संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं पहुंचे होंगे और पहुंचने पर रसीद भेजदेना बाकी तुम्हारे पत्रों के उत्तर व समाचार पश्चात् लिखेंगे।

मिती आश्विन बदी १३ शनि संवत् १९४०

जोधपुर राज मारवाड़ दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

विदित हो कि कई एक पत्र भेज चुके हैं एक का भी प्रत्युत्तर नहीं मिला क्या कारण है तुम्हारा शरीर तो स्वस्थ है जैसा हो वैसा शीघ्र लिखो और भेजे हुये पत्रों का भी उत्तर भेजना आज अत्यन्त अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिये निकाल दिया है उस को मुख न लगाना लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान मत देना

मार्ग बदी ५ रवि दयानन्द सरस्वती

उदयपुर

भीमसेन के पत्र

श्रीयुत प्रतिष्ठित स्वाच्र्य स्वामी जी महाराजा भगवन् अभिवादये।

विदित होकि एक पत्र आप के निकट भेज चुका हूं अनुमान है कि पहुंचा होगा। अब प्रार्थना यह है यद्यपि मेरी जीविका लगगई और सब संसार के लोग जीविका तो करते ही हैं। परन्तु मेरा चित्त अब कहीं नहीं लगता क्योंकि आप जैसे शुद्ध पुरुष मुझको कोई नहीं दीखते। पहिले यह विचार नहीं किया यही मेरी भूल है और आपका यह कहना बहुत सत्य है कि जब तक मनुष्य को धक्का नहीं लगता तब तक बुद्धि नहीं आती। अब मेरा यही विचार है कि आप का संग मैंने बहुत किया और आपको भी मेरे समान ठहरने वाला कम ही मिला होगा। अब मेरे ऊपर कृपा कर के मेरे दोष आप निःशेष जानते हैं और कुछ मैं भी जानता हूं सो आप चित्त से हटा दीजिये। क्योंकि मैं सब दोषों को समूल छोड़ दूंगा। जिन जिन बातों से मेरी आप

की बुद्धि में विरोध पड़ता था सो वे बातें अब कदाचित किंचित् भी न करूंगा। अब मेरे पूर्वानुभूत अपराधों को क्षमा करके अपने चरण कमलों के दर्शन कराइये।

' भवदनुग्रहकांक्षी
भीमसेन शर्म्मा
रामानन्द को नमस्ते

श्रीयुत प्रतिष्ठिताचार्य्य श्रीस्वामिन्‌भगवन्नभिवादये

पत्र आपका आया देखके चित्त को अति प्रसन्नता हुई । इस मेरी जीविका लगजाने का निर्णय चौधरी जालिमसिंह भी जानते हैं। और ठाकुर कुंवर जवाहर सिंहजी को अब अग्निहोत्र सन्ध्या आदि बताया है सो करने लगे और मनुस्मृति का उपदेश सबको यहां सुनाता हूं। यही मेरा मुख्य अभिप्राय है कि मैंने अब तक यहां आकर विरुद्ध काम कोई भी नहीं किया और आपसे भी संबंध क्यों न रहना चाहिये । दूसरी जगह जैसी जीविका होसकती है उससे जीविका भी कुछ कम आपके संबंध में नहीं है। ठीक २ मैं कहता हूं कि आपका चित्त मुझसे भले ही बिगड़ गया हो परन्तु मेरा चित्त आपकी ओर से बिलकुल नहीं हटा था जो ऐसा होता तो मैं आपको पत्र नहीं लिखता मैं तो चले आने पर भी यही समझता था कि आप से मैं सर्वथा विरुद्ध नहीं हूं जो कदाचित् जीविका दूसरी जगह करलेता और करलूं तो भी मैं आपसे संबन्ध बनाए रहना ही चाहता हूं। इसी कारण आपके निकट से आकर कोई विरुद्धाचरण नहीं किया और इस विषय में जालिमसिंह आदि कई पुरुषों की सम्मति भी ऐसी ही रही कि स्वामीजी से सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिये मैं केवल जीविका ही नहीं चाहता आपके सम्बन्ध में और भी बहुत बातें अच्छी देखता हूं। अब मेरा खास मनोर्थ यह है कि आपके सम्बन्ध में रहकर आगे वा पीछे कुछ भी प्रतिकूल नहीं वर्त्तूंगा आपसे कोई बात का हठ भी न किया करूंगा और मैं जैसा लिख चुका हूं वा लिखता हूं यह बात विश्वास के योग है इस में इस समय लिखने के सिवाय और दूसरा दृढ़ प्रमाण क्या देसकता हूं किसी मनुष्य की एक आध प्रतिज्ञा मिथ्या किसी कारण से होजाय और बहुतसी प्रतिज्ञा ठीक हों तो प्रतिज्ञा पर ही विश्वास करना होता है जब आप अपने सम्बन्ध में रखकर फिर चार छ महीना बर्ताव देखेंगे तो प्रत्यक्ष से निश्चय होजावेगा । एक मनुष्य का स्वभाव सदा एकसा नहीं बना रहता देशकाल वस्तु भेदसे बदल भी जाता है। और जैसी

बुद्धि मनुष्य की प्रथम हो और बीच में किसी कारण से बदल कर फिर पूर्वावस्था को स्वीकार करे तो फिर उस में दृढ़ता हो जाती है फिर चलायमान नहीं होता जिस समय पर बीच में मेरी बुद्धि में भ्रम पैदा हो गये थे तब जरूर ही आपके बहुतेरे कथनों को विरुद्ध जानने लगा था सो आप से भी कहदिया करता था कि मेरी बुद्धि इन २ विषयों में विरुद्ध है सो मैं जब आप के समीप से यहां आया तब अपनी इच्छा से और मेरे अभिप्राय को सुन जान के चौधरी जालिमसिंहजी तथा भाई धर्मदत्तजी आदि सज्जनों के इस कथन से कि एकान्त में बैठ के नवीन पुराणादि ग्रन्थों की बातों को तथा शास्त्रों को स्वामी जी के कथन से मिलाकर निश्चय करो पीछे जैसी मन्शा हो वैसा आचरण करना। इस में छः महीने से विचार ही करता रहा अब मेरे चित्त में यही निश्चय हुआ कि आपका उपदेश बहुत सत्य है आप मेरे स्वभाव को जानते हैं कि जैसा मेरे भीतर कुछ होता था वैसा आप से कह दिया करता था सोई अब भी जानिये जो मेरा चित्त आप की ओर ठीक न होता तो मैं अब भी नहीं लिखता। इस बात को आप भी जानते हैं कि चतुर्भुज आपके विरुद्ध सम्बन्ध से कितनी जीविका कर लेता है जो विरुद्ध किया चाहता तो चतुर्भुज से विद्या में कम नहीं था और आप के विरुद्ध पक्ष में मेरे सहायकारी भी बहुत थे यहां भी मनुस्मृति से भिन्न कोई कथा पुराण मैंने नहीं बांची। एकान्त में सत्यासत्य निश्चय के लिये भागवत आदि का विचार तो अवश्य किया फिर आप क्यों कहते हैं कि जीविका ही करना तेरा प्रयोजन है जीविका अब भी मेरे लिये बहुत है इसी कारण चित्त अब मेरा स्थिर है मेरा चित्त नहीं लगता इस का अभिप्राय यह है कि आप की ओर मेरी प्रीति अधिक बढ़ी और आप मुझ से अप्रसन्न रहे तो चित्त अच्छा नहीं रहता था अब जो आप प्रसन्न रहें तो मेरा चित्त यहां वा अन्यत्र सर्वत्र स्थिर है। मैं अभी हाल यह नहीं कहता कि अभी मेरी जीविका लगादें किन्तु जो आप के पास पण्डित मौजूद हैं और अधिक पण्डित रखने की कुछ आवश्यक्ता न हो तो दो चार महीने में वा जब मेरे लिये कुछ काम समझें तब आज्ञा देवें आज्ञा देते ही शीघ्र उपस्थित होऊंगा। इस पत्र में मैंने अपने हृदय का सब आशय खोलदिया है अब मुझ को आशा है कि इस पत्र का उत्तर शीघ्र और अवश्य देंगे।

(इत्यलंबुद्धि मतमेषु) शमस्तूभयत्र

रामानन्द ब्रह्मचारी को

नमस्ते — आप से कृपा कांक्षी

तुह्मारा लेख अच्छा है — भीमसेन शर्म्मा

मि० भाद्रकृष्ण १२ बुधवार

ओ३म्

रामानन्द ब्रह्मचारी नमस्ते।

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया समाचार जाने मेरे लिये श्री स्वामीजी महाराज की आज्ञा लिखी सो भी जानी। चित्त प्रसन्न हुआ मैंने उस पत्र का उत्तर श्री स्वामीजी महाराज के नाम यथाभिप्राय लिख भेजा था आज १७ दिन हुये बड़ी आशा थी कि अब शीघ्र उत्तर आवेगा सो न जाने क्या कारण हुआ मेरा पत्र ही न पहुंचा वा कुछ अकृपा बनी रही यदि अकृपा रही तो अब किस प्रकार मिट सकती है वैसा ही करूं यदि पत्र न पहुंचा हो तो मेरा अभिप्राय यही था कि बहुत पुस्तकों के देखने एकान्त में बिचारने कृतघ्नता आदि दोषों के भय और बहुत सज्जनों के कहने से विचार होकर सब प्रकार आप का सिद्धान्त वेदानुकूल निश्चय होने से आपकी ओर विशेष प्रीति बढ़ी अब कोई कारण आपकी ओर से चित्त नहीं हट सकता फिर जीविका भी अन्यत्र करने में कुछ विरोध होता है सो नहीं सहा जाता। मेरा लेख ही हाल सत्य मानिये फिर समीप आचरण करने से आपको प्रत्यक्ष हो जायगा यह सब हाल श्री स्वामीजी महाराज को सुनाकर जैसी आज्ञा देवें सो शीघ्र कृपा करके अवश्य उत्तर देदीजिये।

मि० भाद्र शु० १४ शनिवार — ह० भीमसेन शर्मा

फुटकर पत्र।

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो।

मैनेजर भारतमित्र श्रीकृष्ण खत्री ने एक आर्य्यपंचांग नामक ग्रन्थ बनाना चाहा है उसमें आर्य्यधर्म्म के प्रयोजन जिस २ स्थान पर समाज हैं जिस दिन आरम्भ हुआ और जिस दिन वार्षिक उत्सव होता है और मन्त्री का नाम उसमें लि-

खना चाहते हैं सो हमने तुम्हारा नाम लिख दिया है। यदि वह तुम्हारे पास पत्र भेजे तो जहां तक तुम जानते हो पूर्वोक्त विषयों में सहाय देना और जो उन्होंने समाजस्थ पुरुषों की संख्या और हमारा इतिहास भी लिखना चाहा है सो तो अब इस समय उनको नहीं मिलसक्ता और समाजस्थ पुरुषों की संख्या बतलाने में कुछ लाभ नहीं इसलिये पूर्वोक्त विषयों में सहाय मांगें तो देना क्योंकि वह प्रसिद्ध समाचार का सम्पादक है और उसकी प्रीति भी अधिक दीखती है चाहे स्वार्थ वा परमार्थ से।

मिती भाद्रवदी ३० सम्वत् १९४० (दयानन्द सरस्वती)

जोधपुर मारवाड़

ओ३म्।

नकल मानपत्र की जो श्रीमान् महाराणा सज्जनसिंहजी वर्म्मा उदयपुराधीश ने स्वामीजी को अर्पण किया।

स्वस्तिश्री सर्वोपकारक कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु-आपका अठे सात मास का निवास सूंचित अत्यन्त आनन्द में रह्यो क्योंकि आप की शिक्षा की प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूंकेही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्यों में निसन्देह लाभ प्राप्त होवाकी म्हां का सभ्य जनां सहित दृढ़ाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वा श्रेष्ठ पुरुषां का दृढ़ होवे है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो यो आप में यथार्थ मिल्यो। अब म्हे आप का वियोग को संयोग तो नहीं चावां परन्तु आपका शरीर अनेक मनुष्यां के उपकारक है जिस से अवरोध करणो अनुचित है तथापि पुनरागमनसुं आप भी म्हाका चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करेगा। इत्यलम्

फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे सं० १९३९ वि० हस्ताक्षर महाराणा

सज्जनसिंहस्य

नकल मानपत्र जो श्रीमान् राजाधिराज नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश ने स्वामीजी को अर्पण किया।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारक कारुणिक परमहंस श्रीपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की वारम्वार नमस्तेऽस्तु।

अपरंच-यहां आप का विराजना सर्द्धाद्वयमास पर्य्यन्त हुआ तथापि आप के सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते, परन्तु योधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की, पुनः सत्याचरण असत्य का त्याग और आप के मुखारविन्द से श्रवण करने की अभिलाषा देखकें आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रगट हुआ है, यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आप का पधारना ही उत्तम है।

यही समझ के यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे। इत्यलम्।

ज्येष्ठ कृष्ण ४ चतुर्थी सं० १९४० वि० हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य

ओ३म्

श्री १०८ महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती जी के गुरु श्रीस्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डीजी का

जीवनचरित्र

(श्रीयुत धर्मवीर स्वर्गवासी पं० लेखराम जी आर्यपथिक कृत)

यौगिक शब्दों के पारस पत्थर की खोज करने वाले ऋषि विरजानन्द सरस्वती स्वामी ॥

पञ्जाबदेश के कर्तारपुर प्रान्त के एक छोटे से गङ्गापुर नामी ग्राम में व्यास नदी के किनारे महाराजारणजीतसिंह के राज्य समय में एक नारायणदत्त नामी ब्राह्मण सारस्वत भारद्वाजगोत्री शारद जाति का रहता था। कौन जानता था कि इस के गृह में वह मणि उत्पन्न होगी कि जो पृथिवी परसे घोर अंधकारको दूर करने में प्रका ा काम करेगी। कौन कह सक्ता था कि नारायणदत्त का नाम संसार के इतिहासम लिखा जायगा। और किस को ज्ञात था कि आर्य्यों के गुप्त विद्या भण्डार तथा मनुष्यमात्र के मुख्य धन वेद के विश्वास को प्रचार करने की विधि का पारस पत्थर इस के सपूत के हाथ पड़ेगा। प्रायः १०० सौ वर्ष व्यतीत हुवे कि नारायणदत्तके यहां संवत् १८५४ विक्रमी में एक बालक ने जन्म लिया। पांच वर्ष की अवस्था में यह बालक विस्फोटक (चेचक) रोग से ग्रस्त हुआ। इस दुःखदायक रोग के कारण बालक चक्षुहीन हो गया। आठ वर्ष की अवस्था पर्यन्त इस को पिता सारस्वत और संस्कृत पढ़ाते रहे। ११वर्ष की आयु तक उक्त बालक का पालन पोषण माता पिता द्वारा होता रहा। परन्तु बारहवें वर्ष में इस को माता पिता के देहान्त होने के कारण अपने भ्राता

के शरण में आना पड़ा। परन्तु इस अधोगति के कराल काल में प्रायः भ्राता शब्द का शत्रु और भ्रातृपत्नी का दुःखदायिनी अर्थ माना जा चुका था। बारहवें वर्ष ही में भाई भौजाई उस अन्धे बालक को रोटी के स्थान में गाली देने लगे। और दुःखों से बालक का प्राण सङ्कट में पड़ गया। भाई भौजाई की कठोरता के कारण उस १२ वर्ष के बालक ने अन्त में बन का मार्ग पकड़ा। और सदा के लिये उन से विदा हुआ। दुःखों पर दुःख झेलता हुआ वा कर्मफल भोगता हुआ, यह लड़का अति कठिनता से हृषीकेश में पहुंचा। उस समय इस की आयु लगभग १५ वर्ष की थी। देश काल का व्यवहार जानने तथा भ्राता तक का विरुद्ध होना समझ उदास और निराश हो जगत्पिता की शरण में तत्पर होकर अपने दग्ध हृदय को शान्ति देने लगा। तथा च कहा जाता है कि तीन वर्ष गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का परम जप उत्तम रीति से करते हुये मन और अन्तःकरणरूपी चक्षु में ज्ञान का अञ्जन लगा कर प्रकाशित किया। खाने पीने के लिये जो कुछ फल फूल मिल जाते उसे खालेते नहीं तो भूंखे रह कर समय व्यतीत करते। भिक्षा कभी किसी से न मांगते थे। परन्तु अत्यन्तावश्यकता पर किसी मठ से कुछ अन्न लेलिया करते थे। ये नवयुवक बाल्यावस्था को समाप्त करके एक तपस्वी की अवस्था को प्राप्त होगये। हृषीकेश उस समय आज कल के समान घनी वस्ती और सुखदायक स्थान न था, इस कारण हानिकारक पशु चारों ओर रात्रि को गर्जा करते थे। परन्तु वह धैर्यवान् ईश्वराश्रित ऐसी भयानक जगह में ही तपस्या द्वारा प्रज्ञाचक्षु प्राप्त करने का यत्न करते थे। जब इसी प्रकार तीन वर्ष साधन और तपस्या में व्यतीत होगये तो एक रात्रि को इन्हें स्वप्न में ऐसा प्रकट हुआ कि "जो तुम को होना था वह होगया अब यहां से चल जावो" तथाच-वह नवयुवक तपस्वी बड़े साहस से उस भयानक वन को पार कर के १८ वर्ष की अवस्था में हरद्वार आ पहुंचा। तथा यहां पर एक विद्वान् गौड़ स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से इन की भेंट हुई। तथा इसी स्थान पर उनसे इन विरक्त वीर ने संन्यास ग्रहण किया और अपना नाम विरजानन्द रक्खा। यह स्वामी उत्तरदेशीय पहाड़ के निवासी थे इन से संन्यास लेने के पश्चात् विरजानन्द जी ने विद्योपार्जन का विचार किया। तपस्या करने के पश्चात् इन की कविता शक्ति जाग उठी थी, इस से इन्होंने रामचरित्र सम्बन्धी श्लोक रचे॥

बहुत काल तक हरद्वार में रह कर एक ब्राह्मण से मध्यकौमदी षड्लिङ्ग पर्यन्त पढ़ी। और इस के पश्चात् स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया। यहां तक कि स्वयं भी मध्यकौमदी पढ़ाने लग गये। वहां से चल कर कुछ दिन कनखल

ग्राम में रहे, और किसी की सहायता से यहां पर सिद्धान्तकौमुदी विचारते और विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। कनखल से गंगा के किनारे २ काशी को पधारे, जहां पर एक वर्ष से कुछ अधिक ठहर कर मनोरमा, शेखर, न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रन्थ पढ़े। अपने अध्ययन के साथ ही विद्यार्थियों को भी बराबर पढ़ाते रहे। वहां अपनी विद्या के कारण प्रज्ञाचक्षु स्वामी की उपाधि से प्रतिष्ठित हुये। वहां से गयानगर की ओर २२ वर्ष की आयु में पैदल प्रस्थान किया। मार्गमें एक स्थान पर इन को दुष्ट चोरों ने चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया। दैवयोग से वहां दक्षिण देश गवालियर राज्य के सरदार एक पण्डित सहित उतरे हुये थे। इन की चिल्लाहट पर उक्त सरदार के नौकरों ने पुकारा, तिस पीछे विरजानन्दजी ने सर्व वृत्तान्त संस्कृत में सुना दिया जिस के सुनते ही पण्डित झट पट सहायतार्थ पहुंच गये और चोरों से महात्मा को बचा लिया। वे डरपोक चोर भाग गये। और सरदार के नौकर लोग स्वामीजी को डेरे पर ले आये। बड़े आदर सत्कार से प्रज्ञाचक्षु स्वामी का पांच दिवस पर्यन्त उन्होंने आतिथ्य सत्कार किया। छठे दिन यहां से विदा हो स्वामीजी गया को पधारे। दीर्घ काल तक गया में वेदान्त शास्त्र पढ़ने पढ़ाने से विज्ञान बढ़ाने के पश्चात् बङ्गाल की राजधानी कलकत्ता को गये और वहां से लौटते हुये सोरों ग्राम में जो गंगा के तट पर है, बहुत दिन तक विचार में निमग्न रहे॥

इन्हीं दिनों अलवर के महाराज विनयसिंह सोरों में गङ्गास्नान को आये थे। जिस समय वे स्नान कर रहे थे उस ही समय पर ये गङ्गा में खड़े हुये मधुर उच्च स्वर से शङ्कराचार्य का विष्णुस्तोत्र पाठ कर रहे थे। महाराजा इन की सुरीली रसीली मनोरञ्जनी वाणी सुन के मोहित हो गये और पत्थर सदृश स्थिर हो के सुनते रहे। जब यह समाप्त करके जल से बाहर निकले तो महाराजा ने निवेदन किया कि भगवन्! आप मेरे साथ अलवर को चलें। स्वामीजी ने यह कहते हुए कि "आप राजा हैं और मैं त्यागी हूं मेरा आप का कोई सम्बन्ध नहीं" अङ्गीकार न किया।

तत्पश्चात् महाराजा विनयसिंहजी स्वामीजीके पास बाग में स्वयं ही गये। तथा बहुत कुछ प्रार्थना करने से विद्या पढ़ने की प्रतिज्ञा करने पर स्वामीजी उन के साथ गये। महाराजा ने उस समय प्रतिज्ञा करली थी कि मैं प्रतिदिन तीन घण्टा पढ़ा करूंगा। तथा यदि मैं किसी दिन न पढ़ूं तो आप निःसन्देह चले आइयेगा। इस नियम पर प्रज्ञाचक्षुजी इन के साथ अलवर को गये और वहां तीन चार वर्षतक महाराजा को पढ़ाने तथा स्वयं भी ज्ञान ध्यान करने में लगे रहे।

गम्भीर बुद्धि और सत्यवादी होने के कारण इस राज्य में स्वामीजी का धर्मात्मा लोग अति मान करते थे। परन्तु स्वार्थी और मिथ्या प्रशंसा करने वाले (खुशामदी) ब्राह्मण इनकी आकृति से भी घृणा करते थे। तथा इसी लीला में मग्न रहते थे कि येनकेन प्रकारेण विरजानन्दजी को महाराजा की दृष्टि से गिरा देवें परन्तु महाराजा उनको सच्चा अपूर्व साहसी (बेधड़क) चित्तवाला जानते हुये सर्वदा उनकी पूरी प्रतिष्ठा करते थे। यद्यपि महात्मा को ज्ञात हो गया था कि बुभुक्षित लोग द्वेषाग्नि से जलते हुये गुप्तरूप से महाराजा के कानों तक मेरी निन्दा पहुंचा रहे हैं, परन्तु उक्त महात्मासिंह सदृश निडर अपने कार्य में तत्पर रहे, तथा कदापि सिद्धान्तों से गिरने का नाम तक न लिया। महाराजाजी ने स्वामीजी के रहने को एक बहुत सुन्दर गृह दिया था। तथा पुस्तकें और अन्य आवश्यक सामग्री भी एकत्रित करदी थी। मानो कई सहस्र का धन स्वामीजी के हाथ में था॥

महाराजा अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन स्वामीजी से पढ़ने को आया करते थे, परन्तु एक दिन नाच तमाशे आदि में लगे रहने के कारण विना सूचना पढ़ने को न गये। स्वामीजी उचित समय पर अपने स्थान पर महाराजा की बाट देख रहे थे परन्तु न तो महाराजा स्वयं ही गये और न किसी दूत द्वारा कहला भेजा। अनन्तर जब महाराजा बहुत समय बिता कर आये तो व्रतधारी तपस्वी ने जो आप नियम में चलना और अन्यों को नियम में चलाना चाहते थे, प्रतिज्ञा न पालने के विषय में महाराजा से अपनी अप्रसन्नता प्रगट की। और सरल वाणी से कहने लगे कि आपने प्रतिज्ञा भङ्ग की है, परन्तु मैं प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सक्ता। अतएव मैं अब यहां नहीं रह सक्ता। महाराजा उनको रक्खा चाहते थे परन्तु वे व्रतधारी प्रतिज्ञा तोड़ कर कब रह सक्ते थे? तथाच एक दिन स्वामीजी विना सूचना दिये ही वहां से चल पड़े तथा सहस्रों के धन और पुस्तकों को वहां ही छोड़ा। केवल भविष्यत् व्यय के लिये ढाईसहस्र रुपया अपने सङ्ग लेलिया और भरतपुर में पहुंचे॥

यहां महाराजा बलवन्तसिंह के यहां षट्मास पर्यन्त रहे और जब विदा होने लगे तो महाराज ने आदर सत्कार के लिये ४००) रुपया और एक दुशाला भेंट किया। वहां से मुरसान ग्राम में आये और राजा साहब टीकमसिंहजी मुरसान निवासी के अतिथि हुये। तत्पश्चात् सोरों स्थान को गये जहां पर इनको रोग ने घेर लिया और यह ऐसे रोगी हो गये कि जीवनाशा तक न रही परन्तु विरजानन्दजी को संसार में किसी गुप्त कोष की कुञ्जी सौंपनी थी। यदि ये महात्मा उस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाते तो कौन मान सक्ता है कि संसार में कभी भी विरजानन्द

जी का नाम सुना जाता । शनैः २ रोग घटने लगा और स्वामीजी फिर संसार में विचरने लगे ॥

वहां से चलकर स्वामीजी संवत् १८९३ वि० में यमुना नदी के तट पर मथुरा नगर को पधारे । यहां पर गताश्रम नारायण के मन्दिर में कई दिन विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे और तत्पश्चात् अपना ही एक निवासस्थान किराये के गृह में नियत करके नियमपूर्वक पाठशाला बनाके सिद्धान्तकौमुदी मनोरमा न्याय मुक्तावली न्याय कोष व कई वैदिक ग्रन्थ पढ़ाने लगे ॥

कुछ दिनों पश्चात् ऐसा हुआ कि वैष्णव सम्प्रदाय के विख्यात आचार्य जिन का नाम रङ्गाचार्य था मथुरामें आये और उन्होंने सेठ राधाकृष्णजी को अपना शिष्य किया । जिन दिनों रङ्गाचार्य मथुरा में थे उन्हीं दिनों का वृत्तान्त है कि इनके गुरु कृष्ण शास्त्री दक्षिण से पधारे थे । कृष्ण शास्त्री न्याय और व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् थे । एक दिन शास्त्रीजी के दो विद्यार्थियों (लक्ष्मणज्योति और सुरमुरिया पण्ड्या) का शास्त्रार्थ विरजानन्दजी के दो विद्यार्थियों (चौबे गङ्गादत्त और रंगदत्त) से हो पड़ा कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थियों ने पूंछा कि "अजाद्युक्तिः" इस वाक्य में कौन समास है । स्वामीजी के विद्यार्थियों ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष है । कृष्णशास्त्री के विद्यार्थियों ने कहा कि नहीं सप्तमीतत्पुरुष है । इस झगड़े को दोनों ने जाकर अपने २ गुरुओं से कहा । कृष्ण शास्त्री ने विद्यार्थियों से कहा कि इसमें सप्तमी तत्पुरुष होसक्ता है षष्ठीतत्पुरुष नहीं बनसक्ता । दण्डी विरजानन्दजी ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष है सप्तमी नहीं इस बात पर दोनों ओर वालों का शास्त्रार्थ होना स्थिर हुआ । तथा २००) दो २ सौ रुपये प्रत्येक की ओर से हार जीत के रक्खे गये । सेठ राधाकृष्ण जी इसमें मध्यस्थ बने जिन्होंने १००) एकसौ रु० अपनी ओर से भी रख दिया । यह कुल ५००) सेठजी की दुकान में जमा कर दिया गया और गताश्रम नारायण का मन्दिर शास्त्रार्थ के लिये नियत हुआ । नगर में दावानल के सदृश इस शास्त्रार्थ की चर्चा सर्वसाधारण में फैल गई तथा मथुरानिवासी जिनको चौबे और पहलवानों के दङ्गल देखने का अभ्यास था अब विद्यारसिक पहलवानों के युद्ध देखने के सच्चे अभिलाषी होरहे थे । नियत दिवस को सन्ध्या समय सब लोग इस विद्या के अखाड़े को देखने के लिये एकत्रित हुये तथा च नियत समय पर दण्डीजी ने अपने विद्यार्थी भेजे कि यदि कृष्ण शास्त्री आये हों तो हम चलें परन्तु कृष्ण शास्त्री न आये । जब दण्डीजी के विद्यार्थी गये तो सेठजी ने दोनों ओर के विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ आरम्भ करादिया तथा कुछ देर शास्त्रार्थ कराने के पश्चात् यह प्रसिद्ध करदिया

कि दण्डीजी हार गये तथा यमुनामैया की जय २ करने वाले लड़कों को रुपैया बांटना आरम्भ करदिया । सत्यप्रिय सज्जनगण आश्चर्य करके चकित रहगये कि यह क्या हुआ तथा दण्डीजी क्यों हारगये और कृष्ण शास्त्री क्योंकर जीत गये जब कि इन दोनों का शास्त्रार्थ ही नहीं हुआ । इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण शास्त्री ने डूबते को तिनके का सहारा समझ के यह ढोंग बनाया था । परन्तु दण्डीजी की पराक्रम शालिनी बुद्धि इस बात का निर्णय किये विना कब रहसकी थी । यह कब सम्भव था कि दण्डीजी अन्याय और अधर्म की कार्यवाही की पोल न खोलैं । तथाच महाराज दण्डीजी ने मथुरा के कलेक्टर श्रीमान् अलेग्ज़ण्डर साहब से मिल कर कहा कि यातो सेठजी से मेरा रुपया दिलवा दीजिये नहीं तो कृष्णशास्त्री से शास्त्रार्थ कराइये । इस पर उक्त श्रीमान् ने यह उत्तर दिया कि इस में हम हस्तक्षेप नहीं कर सकते । सेठ धनाढ्य है अतएव आप उस से झगड़ा न करैं, जिस विषय में आप १) व्यय करेंगे उस में वह १०००) कर सकता है ॥

सेठजी ने इस बीच व्यवस्था विक्रेता पण्डितों के पास शास्त्रार्थ पत्र भेजा और उन से व्यवस्था मांगी कि किस का पक्ष सच्चा और किस का झूंठा है । इस समय पं० काकाराम शास्त्री, गौड़ स्वामी, काशीनाथ शास्त्री, आदि विद्वान् काशी में जीवित थे । इन उक्त विद्वानों को घूंस देकर सेठ ने इन धर्म विक्रय करने वाले जीवित देहधारियों परन्तु मृतसदृशों से अपने पक्ष की पुष्टि में हस्ताक्षर लेलिये । जब दण्डीजी ने अपना पत्र उन के पास भेजा तो उन्हों ने उत्तर दिया कि यद्यपि आप का पक्ष सत्य है परन्तु हम प्रथम से सेठजी के पत्र (काग़ज़) पर हस्ताक्षर कर चुके हैं अतएव आप का उत्तर नहीं दे सक्ते । पण्डितों की ओर से यह उत्तर देख कर दण्डी जी के मन में धर्म और आचार से रहित विद्वानों की ओर क्या २ विचार हुये होंगे ? क्या उस समय दण्डीजी के शुद्ध मन ने अनुभव नहीं किया होगा कि भारतवर्ष के शिरोमणि पण्डित आत्मघात करते हुये, ऋषिसन्तान को कलङ्कित कर रहे हैं । क्या उन के सरल हृदय में शोक नहीं हुआ होगा कि टके के बदले धर्म बिक रहा है । इस महान् पापाचार को देख कर दण्डीजी के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और धन्य है वह उचित क्रोध जो पाप नष्ट करने के लिये सरल आत्मा में उत्पन्न हो । उनके मन में यह विचार हुआ कि कुछ यह आवश्यक नहीं कि और नगरों के पण्डितों ने भी टके को ही धर्म (ईमान) मान रक्खा हो । अतएव आगरादि स्थानों के पण्डितों की सम्मति लेना आवश्यक है । सम्भव है कि वह निष्पक्षता से सत्य को प्रकट करैं । तस्मात् उसी धुनि में वे आगरा को गये । और सदर बोर्ड (उ-

च कचहरी) में साहब बहादुर से मिले । उन दिनों वहां चरणजीव शास्त्री धर्म-शास्त्र की व्यवस्था देने वाले थे जिनको सर्कार से ३००) रु० मासिक मिलता था। दण्डीजी उनसे भी मिले और कहा कि या तो तुम मेरे रुपये दिला दो नहीं तो मेरे पत्र पर हस्ताक्षर करो। उन्होंने भी वही उत्तर दिया कि हम भी हस्ताक्षर कर चुके हैं। आप झगड़ा न करें, आप को रुपया कदापि न मिलेगा। कहते हैं कि इनको सेठजी ने उक्त स्वार्थ निमित्त ३००) दिये थे। जब दण्डीजी ने देखा कि इस समय पाप प्रबल होरहा है और सत्य की कोई नहीं सुनता तो हार थक कर घर जा बैठे कौन जानता था कि यह घटना उनके जीवन में नहीं २ वरन संसार के इतिहास में एक अद्भुत परिवर्तनशालिनी होगी। कौन कह सक्ता था कि सेव का गिरना न्यूटन * महाशय को पुनर्वार आर्यसिद्धान्त का दर्शन करायेगा। किसने जाना था कि ढकने का खड़कना † स्टीम इञ्जन (धुंवे की कलों) आदि की उत्पत्ति का चिन्ह बनेगा। कौन जानता था कि ‡ कोलम्बस महाशय का मार्ग भूलजाना सहस्रों वर्ष से गुप्त भूभाग का दर्शन करायेगा? महान् पुरुषों के इतिहासों में साधारण घटनायें ही उनके भविष्यत् असाधारण होने के लिये आदि स्तम्भ प्रमाणित हुई हैं। और सचमुच वही अवस्था विरजानन्दजी के साथ इस धांधली की पराजय से हुई।

एमर्सन महाशय का यह कथन ठीक है कि मनुष्य में शक्ति उसकी दुर्बलता से उत्पन्न होती है तथा मनुष्य को जब अति दुःख और पीड़ा होती है तभी वह उत्तम और बड़े २ कार्यों के करने योग्य बन जाता है। मानो दुर्बलता और पराजय जीवित आत्मा में शक्ति उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखती है। तथा इस धींगाधींगी की पराजय ने विरजानन्द के जीवित आत्मा पर ठीक यही परिणाम डाला यद्यपि वह जानते थे कि मैं सत्य पर हूं परन्तु इन के पास और कोई उत्तम साक्षी न था जो उन के पक्ष की अच्छी तरह पुष्टि करता और काशी तथा आगरा के धर्मविक्रेता पण्डितों

* ये इंगलेण्ड देशीय विद्वान् थे, सेव फल का वृक्ष से नीचे पृथिवी पर गिरना देख कर इन्होंने इस बात पर विचार दौड़ाया कि यह फल नीचे क्यों गिरा ऊपर क्यों न चला गया। अनन्तर उन्होंने यह सिद्ध किया कि आकर्षण शक्ति से ऐसा हुआ और साइन्स विद्या का मूल यही है ॥

† पानी और आग से भाफ द्वारा रेलादि का चलना जो विद्या है इसको एक यूरुपदेशीय ने इस तरह प्रकट किया कि एक समय दाल की बटुली के ऊपर रक्खा हुआ ढकना हिलने लगा इससे उसने यह सिद्धान्त निकाला कि आग से पानी भाफ बन कर बड़ी भारी शक्ति रखता है। तत्पश्चात् उसने रेल के इञ्जन की कल निर्माण की।

‡ कोलम्बस नामी स्पेनदेशवासी भारतवर्ष की खोज के लिये समुद्र में चले थे परन्तु जहाज़ दूसरी ओर चला गया इससे अमेरिका अर्थात् पाताल देश का पता लग गया ॥

के विरुद्ध सब के सामने सत्य की साक्षी देसकती। इस प्रकार की साक्षी ढूंढने के निमित्त वह इधर उधर संस्कृत के ग्रन्थों की छान बीन करने लगे। वह चाहते थे कि किसी ऋषि की साक्षी मिले। जिस से कि यह आर्यसिद्धान्त कि "सत्य की जय होती है" सत्य ही प्रमाणित (साबित) हो जावे॥

इस खोज ही में थे कि दण्डी जी ने प्रातःकाल एक दक्षिणी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी पाठ करते हुये सुना यह ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ करता था परन्तु भित्ति (दीवारों) पर पाठ का क्या प्रभाव पड़ सक्ता है। किन्तु जब इस पाठ की ध्वनि विरजानन्दजीकी धर्म प्रिय जिज्ञासु आत्मा के निष्पक्ष श्रोत्रों में पहुंची तब वह आत्मा मानों समाधिस्थ होकर महर्षि पाणिनि के अनमोल सूत्रों को सुनने लगा। जब तक उस (पण्डित) ने अष्टाध्यायी का सम्पूर्ण पाठ समाप्त न किया तब तक एक चित्त विरजानन्द जी की वृत्ति उसी में खचित रही, और तत्पश्चात् सुने हुये पाठ को विचारा उन के आत्मा के उस समय के हर्षका अनुमान कौन कर सकता है जिस समय कि इनको निश्चय होगया था कि अष्टाध्यायी ही निसन्देह ऋषिकृत ग्रन्थ है तथा यही ५००० पांच सहस्र वर्ष से संस्कृत विद्या के गुप्त बहुमूल्य कोष के प्रकट करने का एक मात्र साधन है।

कोलम्बस महाशय ने अमेरिका की पृथिवी को सृजा नहीं था किन्तु खोज मात्र किया था। इञ्जन बनाने वाले ने भाफ को उत्पन्न नहीं किया वरन उस के गुणों को जाना। ठीक इसी प्रकार विरजानन्द जी ने अष्टाध्यायी को रचा नहीं किन्तु पूर्व विरचित इस अष्टाध्यायी की महिमा को जिस का नाममात्र साधारण पण्डित लोग भाफ सदृश जानते थे, अनुभव किया।

भाफ की महिमा अनुभव करने वाले ने संसार में क्या कर दिखाया और ऋषिकृत अष्टाध्यायी के गुणों और महिमाको अनुभव करनेवाले विरजानन्द अब क्या कुछ नहीं करेंगे। अष्टाध्यायी ने जिज्ञासु को निश्चय करा दिया और साक्षी देदी कि तू सत्य पर है और कृष्णशास्त्री झूठा है अष्टाध्यायी पश्चिमीय हिन्द, (अमेरिका वा पाताल) के टापू के सदृश थी जो कि ऋषियों के समय को प्रख्यात करने वाले विरजानन्द के हस्तगत हुई (जो ऋषियों का समय) ५ पांच सहस्र वर्ष से गुप्त था। परन्तु जैसे (अमेरिका के मिलने पर) ब्राज़िल व मैक्सको ज्ञात हुये विना कब रह सकते थे वैसे ही अष्टाध्यायी के मिलजाने पर उस की व्याख्या महाभाष्य जो अष्टाध्यायी से घना सम्बन्ध रखती है विरजानन्द के हाथ लगगई। तथा इन्हीं दो पुस्तकों के मनन ने उन को दो और ज्योतिस्तम्भ जिन का नाम निरुक्त और निघ-

एडु हैं दर्शा दिये । तथाच वे संसार को आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र आर्यों की विद्याओं और कलाओं तथा सर्वोन्नतियों और उन विद्याओं और कलाओं के नित्यस्रोतरूपी वेदों तक का मार्ग और श्रेष्ठ मार्ग अष्टाध्यायी महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त को बतला रहे हैं उनका परोपकारी, परिश्रमी, सत्यप्रिय आत्मा इस अमूल्य धन को सर्वसाधारण तक पहुंचाने का विचार कर रहा है ॥

तथा इसी कारण से विरजानन्द ने अपनी आयु संवत् १९१४ से लेकर मरण पर्यन्त आर्षिकृत ग्रन्थों के प्रचार के लिये व्यतीत की ॥

मिस्र देश की पुरानी सभ्यता और प्राचीनता के विषय में पश्चिमीय भूभाग (योरोप देश) ने तब से ठीक २ विश्वास किया कि जब रोज़ीटा स्टोन उनके हाथ लगा । कहते हैं जब नैपोलियन के सिपाही मिस्र में जा रहे थे तो एक बूशर नामी सिपाही ने रोज़िटा स्थान पर यह पत्थर प्राप्त किया जिस का नाम अब सांसारिक इतिहास में रोज़ीटा का पत्थर है । इस पर विचित्र (अनोखी) भाषा व चिह्नों द्वारा कुछ लिखा हुआ था तथा यूनानी भाषा में भी कुछ बातें थीं । डाक्टर टामसनेग और फेन फ्रासिस ने लगातार प्रयत्न करते २ इसको पढ़ा । इस लेख का पढ़ना ही था कि योरोप देश को मिस्र की पुरानी भाषा का पता लग गया । जिसे सिखाने वाला अध्यापक अब कोई जीवित नहीं । इस पत्थर के लेख ने जादू का काम किया तथा सर्व पश्चिमी भूभाग वालों ने एकमत हो निस्सन्देह कह दिया कि मिस्रदेश अत्यन्त उच्च कक्षा का सभ्य और विद्याओं तथा कलाकौशलादि का एक मात्र अनुपम घर था । यदि यह पत्थर उन विवेचना करने वाले पश्चिम भूभागियों के हस्तगत न होता तो फिर प्राचीन मिस्र के विषय में लोगों को सिवाय इसके और कुछ विचार न होता कि वे (मिस्र देशीय) अर्द्धशिक्षित और महामूर्ख थे । इस पत्थर की प्रतिष्ठा पश्चिम देशीय ही जानते हैं तथा अब इङ्गलैंड देश को अभिमान (फ़ख्र) है कि यह पत्थर अन्त में उसके भूपति श्री महाराजा जार्ज ३ तीसरे के हाथ आ गया ॥

बड़े ऊंचे २ स्तम्भ (मीनार) वाले देश का पुराना इतिहास जैसे इस पत्थर की सहायता विना जानना कठिन था वैसे ही वरन उससे सहस्रगुणा अधिक कठिनता सुवर्णमयी आर्यावर्त्त की प्राचीन विश्वासजनक तथा मनुष्यमात्र की अमूल्य सम्पत्ति (मीरास) वेद को जानना विवेचकों के लिये था । ऋषि मुनियों का पुराना समय तथा उस समय के प्राचीन मुख्य धारा वेद के स्वरूप को लोग कैसे जान सके । यदि विरजानन्द अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का पारस

पत्थर न खोज देते, इस पारस पत्थर का पता लगाने वाले विरजानन्द का नाम संसार के इतिहास में अति प्रतिष्ठा से लिया जायगा। इस पारस पत्थर के मिलने का ही यह फल हुआ कि संसार को पता लग गया कि वेदों में मूर्त्तिपूजा, मनुष्यपूजा, अग्नि और अन्य तत्वपूजा नहीं है। वह वेद जिनको कि अन्धेरे में टटोलने वाले पुरुषों ने केवल प्रार्थनाओं की व्यर्थ पुस्तक समझ लिया था इस पारस पत्थर की सहायता से विद्यारूपी ज्योति को अनुपम प्राकृतिक सूर्य्य जाने गये हैं तमोमयी संसार को सचमुच सुवर्णमयी कर दिया और इसी कारण हम अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का नाम पारस पत्थर रखते हुये विरजानन्द के बाधित हैं। ऋषियों की भाषा तथा वेदों का अर्थ समझने के लिये हर एक विवेचक को इस पत्थर की आवश्यता है। और जितने भाष्य मैक्समूलर, विल्सन आदि साहबों ने इस पारसपत्थर की सहायता विना किये हैं वह मनुष्य को सुवर्णमयी समय का पता देने की जगह में लोहे के तुल्य अन्धकारमय समय की ओर आकर्षण करते हैं। संसार के प्राचीन इतिहास को जानने के लिये इस पारस पत्थर की प्रत्येक सत्यप्रिय को आवश्यकता है। मनुष्य की सच्ची स्वाभाविक भाषा समझने के लिये इस की सहायता उपयोगी है। तथा इस पारस पत्थर का ज्ञात होना सांसारिक इतिहास में एक बड़ा भारी स्मारक रहेगा॥

जब कि मथुरा में यह घटना हो चुकी तो इस के षट्मास पश्चात् कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थी लक्ष्मण ज्योतिषी बहुत बीमार हुए और उन का पाप उनको भय देने लगा। कहते हैं कि जब मृत्युप्राय थे तो उन्होंने सेठ जी से कहा कि कदाचित् दण्डी जी ने मुझ पर कोई मारण मोहन मन्त्र चलाया है। उन को प्रसन्न करना उचित है। तदनुसार सेठ जी ने दण्डी जी को कहला भेजा कि आप ५००) की जगह १०००) सहस्र रुपये ले लें और क्षमा करें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि हमारा यह धर्म नहीं है। किसी मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता यह तुम को केवल भ्रम है। यदि वह मेरे उद्योग से बच जावे तो मैं सहस्र अपने पास से देने को उद्यत हूं। अनन्तर दूसरे दिन लक्ष्मण ज्योतिषी की मृत्यु हो गई अष्टाध्यायी और महाभाष्य की महिमा को जानने पर वे अपने व्यतीत परिश्रम को जो कि सिद्धान्तकौमुदी आदि तुच्छ ग्रन्थों के पढ़ाने में व्यय हुआ व्यर्थ बीता समझते थे। जिस सूत्र ने प्रथम उन को शास्त्रार्थ निमित्त सत्यसाक्षी दिया वह यह है-"कर्तृकर्मणोः कृति"

सूर्य का दर्शन करने वाले का चित्त जैसे बनावटी धुएंदार ज्योति (चिराग़) से घृणा करने लगता है इसीप्रकार दण्डी का हाल हुआ॥

मनोरमा, शेखर, न्यायमुक्तावली, सारस्वत, चन्द्रिका, पञ्चदशी आदि नवीन बनावटी ज्योतियों के तुच्छ, प्रकाश को अष्टाध्यायी आदि ऋषि मुनि कृत सूर्य ग्रन्थों के सामने (मुक़ाबले) बिलकुल व्यर्थ ही समझने लगे। अपनी पाठशाला में ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ाते व तुच्छ ग्रन्थों की ओर से मनुष्योंके चित्त को हटाते थे। उस समय उन के विद्यार्थी पुण्डरीक, गोपीनाथ दाक्षिणी, सोमनाथ चौबे, गङ्गादत्त तथा रङ्गदत्त आदि थे।

तदन्तर संवत् १९१५ में युगलकिशोर, चिरञ्जीवलाल, सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, नन्दनजी चौबे हुए। और ये सब अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ते थे। परन्तु ऋषि विरजानन्द की पूर्ण अभिलाषा परोपकार करने की थी। वे चाहते थे कि जिस प्रकार होसके संसार भर में ऋषिकृत ग्रन्थों और ईश्वरकृत वेदों का प्रचार हो जिससे भूला हुआ संसार सन्मार्ग को पासके। उनको यह बात अच्छे प्रकार विदित होचुकी थी कि मेरे वश में सूर्य का प्रकाश है जिसके सामने कोई बड़ी, चमकीली ज्योति भी नहीं ठहर सकती। परन्तु इस प्रकार के सामान पास वर्त्तमान न थे कि वे अपने महानुभाव को पूरा करने में कृतकार्य होते। तथापि यह अपना मन्तव्य (इरादा) उन्होंने कई वार प्रकाश किया। तथा च एक वार्त्ता (वाक़या) उनके इस ऋषिभाव प्रमाण में अत्यन्त ही अद्भुत है॥

संवत् १९१७ के अन्त और संवत् १९१८ के आदि में आगरा नगर में राजाओं का दर्बार हुआ था जिसके उत्सव में महाराज रामसिंहजी जयपुराधीश भी आगरा में पधारे थे। उन्होंने दण्डीजी महाराज को बुलाया और सत्कारपूर्वक अपने यहां ठहराया तीसरे दिन जब महाराजा जयपुर से दण्डीजी का मिलाप (मुलाक़ात) हुआ तो उस समय पं० केदारनाथ शास्त्री बूंदी के पं० पुरन्दरसिंह रीवां के पं० राजजीवन ओझा त्रिहुत के नैयायिक ये सब महाराजा के पास सुशोभित थे जब दण्डीजी गये इन्हें देख कर महाराज अपने सिंहासन से नीचे उतर द्वार तक आकर स्वयं दण्डीजी का हाथ पकड़ के अपने साथ लेगये तथा राजसिंहासन पर उनको बैठाकर आप उनका मान रखते हुए नीचे बैठे। उस समय दण्डीजी के साथ दो विद्यार्थी युगलकिशोर व जगन्नाथ चौबे थे।

विद्यार्थियों ने जाकर महाराज की सेवा में दण्डीजी की ओर से एक यज्ञोपवीत एक नारियल और कुछ मथुरा के पेड़े भेंट किये। भेंट स्वीकार करने के पश्चात् महाराजा ने दण्डीजी से वार्त्तालाप करना आरम्भ किया। अन्य बातें करते

हुये यह प्रार्थना की कि किसी प्रकार आप हमें व्याकरण पढ़ा दो कि जिस से हमको वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो तथा आधुनिक सम्प्रदाय का विषय हमारे मन से दूर हो। दण्डीजी ने कहा कि आप नहीं पढ़ सके। हां यदि ३ घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करो तो पढ़ सके हो। यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा करें तो हम पढ़ाने का वचन (वादा) दे सके हैं। जिस पर महाराजा रामसिंहजी मौन हो रहे और कुछ जबाब न दिया। फिर महाराजा बोले कि अष्टाध्यायी और महाभाष्य मुझे नहीं आ सके, परन्तु आप अन्य ग्रन्थ बना कर उनकी जगह में पढ़ावें। तब दण्डीजी ने कहा कि इनका कोई अन्य ग्रन्थ नहीं बन सका। जैसे सूर्य्य के प्रतिबिम्ब को कोई तोड़ कर नया नहीं कर सका यही अवस्था ठीक २ इन ग्रन्थों की है। तब महाराज रामसिंहजी ने कहा कि कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिससे मेरी कीर्त्ति हो, दण्डीजी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम सभा करें। तीन लक्ष रुपये आप का व्यय होगा। गवर्नर जेनेरल साहब से प्रथम आज्ञा ले लें तत्पश्चात् जब सब पृथिवी के पण्डित एकत्र हों तो पण्डितों के लिये उचित दक्षिणा नियत करना योग्य है और शास्त्रार्थ का विषय यह हो कि अष्टाध्यायी, महाभाष्य, व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी मनोरमा आदि ग्रन्थ मनुष्यकृत और अशुद्ध हैं। तथा न्याय मुक्तावली आदि और भागवतादि पुराण रघुवंशादि काव्य, वेदान्त में पञ्चदशी आदि और नवीन सम्प्रदायी जितने ग्रन्थ हैं सब अशुद्ध हैं॥

जब सब विद्वान् एकत्र होंगे तो सब के सामने हम दोघण्टे में सब को निश्चय करादेंगे, तथा आप को विजयपत्र दिलवा देंगे। अतएव ऐसे शास्त्रार्थ की सफलता में विक्रमादित्य सदृश आप के नाम का शक (संवत्) प्रवृत्त करादेंगे तब राजा ने प्रतिज्ञा की कि मैं सार्वभौम सभा करूंगा। इस समय महाराजा के दीवान पं० शिवदीनसिंह बोले कि आप जयपुर पधारें। दण्डीजीने उत्तर दिया कि आप न कहें यदि राजा रामसिंहजी कहें तो हम चलें परन्तु महाराजा रामसिंहजी ने कुछ उत्तर न दिया चुपके सुनते रहे। उस समय दण्डीजी ने यह भी कहा कि यदि तुम इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्ति होगी। नहीं तो जिस प्रकार कुत्ते और गधे मरजाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे मरने पश्चात् तुम्हें कोई भी याद न करेगा। इतना कह कर दण्डीजी उठ खड़े हुये। चलते समय महाराजा रामसिंहजी ने २००)रुपये दो सुवर्ण मुद्रा (अशर्फी) और एक दुशाला भेट किया परन्तु उन्होंने नहीं लिया और यह कह कर चल दिये कि हम रुपये लेने को नहीं आये इस की हमें कुछ परवाह नहीं। षट् मास पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने दो सो रुपये और दुशा-

लादि सब वस्तुएं मथुरा में भेज दिया और ॥) आठ आना प्रति दिन इन के व्यय के निमित्त दिये जाने की आज्ञा कर दी । इसी प्रकार ।) प्रति दिवस महाराज विनयसिंहजी भी दिया करते थे और दण्डी जी इस में अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे।

परोपकारी विरजानन्द जी विद्यार्थियों को पिता के समान पढ़ाया करते थे । उनके सुधार के लिये उनको दण्ड देते और शुभाचरण की ओर नित्य रुचि दिलाते थे । परन्तु उन की अत्यन्त इच्छा यह थी कि मेरा कोई भी विद्यार्थी ऐसा उत्कृष्ट हो सके जो परोपकार के लिये अपना जीवन लगाता हुआ मनुष्य जाति और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग विस्तृत कर सके । संवत् १९१७ के चैत्र मास में एक सत्य के जिज्ञासु विद्यार्थी स्वामी दयानन्द नामी उनके समीप आगये । जिस प्रकार रेखागणित (उक्लेदिस) से अनभिज्ञ मनुष्य अफलातून का शिष्य नहीं हो सका था उसी प्रकार व्याकरण का न जानने वाला विरजानन्द का शिष्य नहीं हो सका था । व्याकरण जानने के कारण ही ऋषि विरजानन्द ने विद्यार्थी दयानन्द को शिष्य बनाया। तत्पश्चात् कौमुदी आदि ग्रन्थ जो उन के पास थे, यमुना नदी में फेंकवा दिये । और जब दयानन्द जी यमुना में निश्चय ग्रन्थ बहा कर आगये तो ऋषि ने कहा कि अपनी बुद्धि से भी इन ग्रन्थों के विचार को पृथक् कर दो । तब अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा। दण्डी जी ने यह निश्चय कर लिया था कि भागवतादि पुराणों और सिद्धान्त आदि अनार्षग्रन्थों ने संसार में अत्यन्त मूर्खता और स्वार्थपरता का राज्य फैला रक्खा है। इसी कारण वे इन भ्रष्ट ग्रन्थों के कर्त्ताओं की ओर से अपने विद्यार्थियों को अत्यन्त घृणा दिलाना चाहते थे । तथाच इस कार्य की पूर्त्ति के लिये उन्होंने एक जूता रख छोड़ा था और सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता भट्टोजिदीक्षित की मूर्त्ति को वे सब विद्यार्थियों से जूते लगवाते थे । क्योंकि उन का कथन था कि इसी नीच ने संस्कृत विद्या की कुञ्जी अष्टाध्यायी के प्रचार को रोकने के लिये यह क्षुद्र ग्रन्थ बना रक्खा है । कभी भागवत पुराण की पुस्तक को यह कहते हुये, अपने पांव लगा देते थे कि इन पुराणों ने ही भ्रम जाल फैला कर लोगों को विद्या बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन कर दिया है । सब से बढ़ कर उच्च कक्षा की प्रतिष्ठा वे वेदों की किया करते थे तथा इन्हीं को सूर्यवत् स्वतः प्रमाण कहते थे ॥

अष्टाध्यायी, महाभाष्य व्याकरण में दण्डीजी ने पूर्ण योग्यता प्राप्त की कि भारतवर्ष में कोई भी इन की तुल्यता का घमण्ड नहीं कर सका था । इन की तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्ति उच्च कक्षा की थी । नियमपालन में ऐसे पक्के थे मानो नियम के अवतार ही थे । सत्य से प्रेम और असत्य से अति घृणा इनके मन का सङ्कल्प

था । इनकी विद्या की ख्याति दूर २ तक फैली थी तथा मथुरा की अद्भुत वस्तुओं में यात्री लोग इन दण्डीजी को भी मानते थे ।

इन की श्रेष्ठ विद्वत्ता की प्रशंसा से आकर्षित होकर ही स्वामी दयानन्द ने इन को अपना गुरु धारण किया था और निश्चय दयानन्द ऐसे महान् आत्मा की तृप्ति ऐसे ही विद्या के सूर्य से हो सकती थी ।

एक बार प्रिन्स आफ वेल्ज़ श्री महाराणी राजराजेश्वरी के युवराज मथुरा में आये, और इन्होंने यहां के पण्डितों को अपने समीप बुलाया, दण्डीजी अपने विद्यार्थियों सहित गये । वहां अंगरेजों ने उन से कुछ पूछा तथा एक अंगरेज ने जो स्यात् उच्चाधिकारी था, वेद की श्रुति बहुत भद्दे और अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी । सुनते ही दण्डीजी ने कहा कि न जाने ऐसे अशुद्ध उच्चारण करनेवाले को वेद पढ़ने का अधिकार किस ने देदिया, दण्डी जी का सत्य कथन सुन के वह अंगरेज महाशय अप्रसन्न नहीं हुये । वरन उन्होंने इनकी वीरता का बखान किया और कहा कि हम ने ऐसा साहसी पुरुष कोई नहीं देखा । संवत् १९२० में गोपाललाल गोस्वामी गोकुल वाले ने दण्डीजी को बुलाया क्योंकि उनके यहां बम्बई के विख्यात् पण्डित गट्टूलालजी अष्टावधानी ठहरे थे ।

दण्डीजी गयाप्रसाद व दामोदरदत्त विद्यार्थियों सहित वहां गये । इस समय इन्हों ने गट्टूलाल जी से दण्डीजी का सम्भाषण कराया और शास्त्रार्थ का विषय "एधितव्यम्" था । दण्डीजी ने एधितव्यम् वाला श्लोक चौबे दामोदरदत्त से लिखवाया और स्वयं भाष्य किया जिससे गट्टूजी को परास्त किया । इस पर गोसांई जी ने इन का बहुत ही आदर सत्कार किया व कहा कि मथुराजी दूर हैं नहीं तो हम प्रत्येक दिन आकर दर्शन करते व पढ़ते । काशी में जोकि पण्डितों की राजधानी थी दण्डीजी की अद्भुत विद्या और शास्त्र बल की चर्चा फैल गई तथा जिन विद्यार्थियों की कठिनतायें काशी में न्यून नहीं हो सकी थी वे काशी छोड़ कर मथुरा में विरजानन्दजी का शरण लेने लगे और देशदेशान्तरों के विद्यार्थी तथा पण्डित लोग इन से लाभ उठाने के लिये आने लगे । तथा व्रजकिशोर विद्यार्थी जो बराबर सात वर्ष काशी में पढ़े थे, काशी छोड़कर दण्डीजी से मथुरा में अष्टाध्यायी का आरम्भ किया । तदनन्तर पं० उदयप्रकाश पं० हरिकृष्ण पं० दीनबन्धु पं० गणेशीलाल ये सब दण्डीजी के विद्यार्थी बने ।

इन्हीं दिनों का वृत्तान्त है, कि ग्वालियर के विख्यात वैयाकरण पं० गोपालाचार्य्य महाराज मथुरा में पधारे, सेठ गुरुसहायमल ने इनकी वैयाकरण की शोभा सुन कर इन्हें एकसौ रुपया भेंट किया ॥

स्वामी विरजानन्दजी ने सेठजी से कहा कि पण्डित समझ कर आप जितना चाहें उन्हें दान दें, परन्तु यदि आप वैयाकरण के विचार से देते हो तो हमें भी निश्चित करादें कि वे निस्संदेह वैयाकरण हैं । गुरुसहाय ने इसका कुछ उचित उत्तर न दिया परन्तु विश्वेश्वर शास्त्री ने जो कि काशी के पण्डित थे उस समय मथुरा में वर्त्तमान थे, इस बात को उचित समझा और गोपालाचार्य्यजी से दण्डी जी का शास्त्रार्थ ठहराया । इस विख्यात शास्त्रार्थ के मध्यस्थ रङ्गाचार्य्य हुये । तथा वृन्दावन में रङ्गाचार्य्यजी के मन्दिर में दोनों दल एकत्र हुये । विषय यह था कि दो प्रकार के भाव महाभाष्य में लिखे हैं । आभ्यन्तर और बाह्य । गोपालाचार्य्य कहते थे कि महाभाष्य में नहीं हैं । दण्डीजी कहते थे कि महाभाष्य में हैं, तथाच दण्डी जी ने रङ्गाचार्य्य को सब पण्डितों के सामने दोनों भाव आभ्यन्तर और बाह्य महाभाष्य के "सार्वधातुके यक्" इस सूत्र में बतला दिये । जिससे दण्डीजी की विद्वत्ता का यश सब पण्डितों में फैल गया । व इससे भी रङ्गाचार्य्यजी ने दण्डीजी की अत्यन्त ही प्रशंसा की । इस महान् विजय से दण्डीजी को और भी दृढ़ निश्चय होगया कि ऋषिकृत ग्रन्थों के सामने मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं ठहर सक्ते और जहां तक होसके संसार में वेद वेदाङ्ग उपाङ्ग का प्रचार करना उचित है ॥

दण्डीजी जैसे कौमुदी आदि व्याकरण के तुच्छ ग्रन्थों का खण्डन बड़ी पुष्टता से करते थे उसी प्रकार अति पुष्टता से मथुरा जैसे स्थान में रहकर भी जो हिन्दुओं का विख्यात मूर्त्तिस्थान है, मूर्त्तियों पन्थों तथा सम्प्रदायों और इन सब के मूल पुराणों का भी खण्डन करते थे ॥

जब कहीं किसी सम्प्रदाय का झगड़ा होता था तो लोग सम्प्रदाय का मूल जानने के लिये दण्डीजी की सहायता लेते थे । तथाच महाराजा रामसिंहजी के यहां से प्रायः दण्डीजी की सेवा में लिखित प्रश्न आया करते थे और दण्डीजी सम्प्रदायियों के खण्डन के विषय में पत्र लिखा करते थे । इनके पत्रों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कई सम्प्रदायी लोग राजाज्ञा से देश से निकाल दिये गये ॥

बड़े २ विख्यात पण्डित शास्त्री नैयायिक महाराज के निकट देश देशान्तरों से अपना बल दिखाने आये और शास्त्रार्थ में पराजय को प्राप्त हुये ॥

एक समय का वृत्तान्त है कि कोई तीव्रबुद्धि (ज़हीन) पण्डित दण्डीजी की बुद्धि की तीव्रता सुन के ईर्ष्या से पीड़ित दण्डीजी का पराजय करने के हेतु आया और इस ढंग से वार्त्तालाप आरम्भ किया कि अपने आप को बहुत थोड़ा कहना पड़े और दण्डीजी को बहुत। जब दण्डीजी कहचुकते तो यह तीव्रबुद्धि पण्डित कह देता कि महाराज आपने कौन सी बढ़िया बात कही है यह तो दासको भी विदित है। तथाच दण्डीजी के कथन के एक २ शब्द को सुना देता, थोड़े ही मिनटों में दण्डी जी ताड़ गये कि यह कोई चालाक पण्डित है। फिर जो कुछ कथन किया उस में दण्डीजी ने साधारण संस्कृत शब्दों के स्थान में उनके ही समान वेद शब्द जो गणपाठ में आये हैं अधिकता से रक्खे तब चुप हो गये गणपाठ का संस्कृत इस चालाक पण्डित ने पूर्व नहीं सुना था अतएव तीव्र होने पर भी सारा कथन तो क्या आधे को भी याद न रख सका। और कहने लगा कि महाराज आप निश्चय विद्या के सूर्य्य हैं। मैंने कई बड़े से बड़े पण्डितों को इस ढङ्ग से पराजित करदिया था परन्तु आप की प्राचीन संस्कृत तथा वैदिक शब्दों की योग्यता मुझ को एक पग भी चलने नहीं देती। जिन शब्दों का मुझे संस्कार ही नहीं और न जिनके अर्थ समझ सका हूं उनको मेरी बुद्धि कैसे स्मरण रख सक्ती॥

मुरसान में रङ्गाचार्य्य के गुरु अनन्ताचार्य्य से दण्डीजी का एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ जोकि तीन मास तक होता रहा परन्तु अन्त को अनन्ताचार्य्य भाग गये और ज़बानी शास्त्रार्थ करने की शक्ति न रख कर कहने लगे कि अब गृह को जाकर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करूंगा॥

बाल ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होनेके कारण उनका मस्तिष्क एक पुस्तकालय का काम देता था, जिस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक एक वार सुना बस वह उन का होगया, वे अपनी सारी विद्या कण्ठ रखते थे, कविता करने में ये बड़े प्रवीण थे परन्तु इन को ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार की अभिलाषा थी अतएव कोई अपनी नवीन रचना नाम के निमित्त छोड़ना कदापि न चाहते थे। दुःखों और शारीरिक कष्टोंको इन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के कारण सहा ही नहीं बरन जीता हुआ था। तथा यह अखण्ड ब्रह्मचारी ही होने का कारण था कि उन्होंने संसार की काया पलटाने के लिये ऋषियों के सदृश वैदिकप्रकाश को दर्शा दिया॥

दण्डी जी का भोज्य सदा साधारण ही रहा। आदि में वे कई वार दूध या केवल खरबूजा या केवल पूरी या केवल नारङ्गी और कई बार सौंफ़ दूध में पकाकर कुछ दिन ही नहीं बरन एक मास तक खाया करते थे। दण्डीजी मालकङ्-

नी और लौङ्ग अधिक खाया करते और कहते थे कि यह बुद्धिवर्द्धक वस्तुयें हैं। भिन्न २ ऋतुओं में वैद्यक शास्त्रानुसार कोई २ विशेष वस्तु खाना छोड़ देते थे ॥

एक बार जब कि उनका सब शरीर सूज गया था तो गङ्गा के किनारे वैद्यक शास्त्र में लिखी एक औषध * का सेवन करते थे यहां तक कि शरीर के ऊपरी भाग की बहुत खाल उतर गयी और फिर दुबारा कञ्चनकाया होगई। वे कभी२ मेथीका साग आध पाव घी डाल कर खाते व कभी कभी सवासेर दूध और छटांक सोंठका सेवन करते थे ॥

छुहारे की गुठली कुटवा कर दूध में डाल कर उस दूध को पीते थे। एक समय सन्दूक में सङ्खिया पड़ा हुआ था सेंधा नमक के विचार से तोला भर सङ्खिया खा गये। खाने के थोड़ी देर पश्चात् बिष चढ़ने लगा। मकान पर चार बड़े मटके पानी के भरे हुये थे। शनैः २ उन मटकों में से लोटे से पानी निकाल कर सर पर डालते रहे। सन्ध्या तक यही क्रिया करते रहे जिस से सर्वथा क्लेश रहित होगये।

मिस्टर पोस्टली साहब जब स्वल्पकालिक कलक्टर होकर मथुरा में आये तो एक दिन सैर करते हुए विरजानन्द जी के गृह के नीचे से निकले। उनके सहवर्त्ती ने दण्डी जी की विद्वत्ता की अतिप्रशंसा की। जिस को सुन कर वे दण्डी जी से मिलने को गये और दण्डी से कहने लगे कि यदि हमारे करने योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा कीजिये। दण्डी जी ने कहा कि यदि हमारी सेवा कर सक्के हो तो भट्टोजिदीक्षित के जितने बनाये हुये कौमुदी के ग्रन्थ हैं उनको भारतवर्ष से या केवल मथुरा से लेकर आग में फूंक दो या यमुना में प्रवाह कर दो ॥

एक समय आधी रात के लगभग विचारते हुये किसी सूत्र का समाधान मन में ठीक होगया। मारे हर्ष के गृह से उठे और विद्यार्थी उदयप्रकाश के गृह के द्वार पर जाकर पुकारा। गुरुजी का शब्द सुन वह जागा और पूंछने लगा कि महाराज आज्ञा कीजिये। कहने लगे कि इस समय मुझे अमुक सूत्र का समाधान याद आया है जो शेषजी से भी नहीं होसका है। यह हर्ष सूचना देने आया हूं। ऐसा न हो कि भूल जाऊं अतएव उचित है कि लिख लो। तथाच उसने लिख लिया ॥

उनका ऊंचान (क़द) मियाना (मध्यम) और वर्ण गौर मिलित था। जब ७१ वर्ष के हुये तो अपनी सब पुस्तकें बरतन, कपड़े और तीन सौ रुपया नक़द यानी सब ५२५) के द्रव्य को अपने विद्यार्थी युगलकिशोर के नाम रजिस्टरी करादी।

* नोट–भिलावां इस औषध का नाम प्रायः ज्ञात होता है। ठीक २ पढ़ा नहीं जाता (आत्माराम)

कहते हैं कि मृत्यु से दो वर्ष पूर्व योगी विरजानन्द ने विद्यार्थियों से कह दिया था कि मैं शूल की पीड़ा से अमुक दिन शरीर त्यागूंगा । और जो एक दो सेठ मरने से कुछ दिन पूर्व मिलने को आये उनसे कहा कि भविष्य में यहां न आना ॥

ऋषियों के छोड़े हुए ग्रन्थ रूपी धन का प्रेमी, वेदों की निष्कलङ्क ज्योति को ऋषिकृत ग्रन्थों के सहारे से दर्शाने वाला ब्रह्मचारी, यौगिक शब्दों के सच्चे पारस पत्थर से तमोमयी लोहे को चमकते हुए सुवर्ण में बदलने वाला ऋषि, मूर्त्तिपूजा के गढ़ में रहकर मूर्त्तिपूजा की जड़ पर कुल्हाड़ा मारने वाला वीर, योग समाधि से आत्मशक्तियें बढ़ाने वाला महात्मा, परोपकार की रक्षा से विद्यार्थियों के मन में वैदिकज्योति पहुंचाने वाला गुरु, विना शोक के परलोक गमन को उद्यत होता है ॥

तथा कुंवार के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को सोमवार के दिन विक्रमीय संवत् १९२५ में अपने पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ कर सज्जनों के हृदय अपने वियोग से सदैव के लिये भेदन कर जाता है ॥

इस ऋषि का विद्यारूपी प्रकाश उसके सब विद्यार्थियों के लिये समान था परन्तु मट्टी व कांच पर एक ही प्रकाश का भिन्न २ प्रभाव पड़ता है ऋषि के अनेक विद्यार्थियों में से केवल एक दयानन्द सरस्वती के ही शुद्ध हृदय ने उस प्रकाश को अपने अन्तर प्राप्त करके फिर अपने में से उस प्रकाश को निकाल जगत् में फैला दिया ॥

ऋषि विरजानन्द का महत्त्व और श्रेष्ठता उन वचनों से प्रकट हो सकती है जोकि उनकी मृत्यु के समाचार सुनने पर उन के योग्य विद्यार्थी स्वामी दयानन्दसरस्वती ने अपने मुख से इस प्रकार निकाले थे कि " आज व्याकरण का सूर्य अस्त होगया । "

हीरा (मणि) की महिमा सर्राफ़ (रत्नपरीक्षक) से पूछिये । सुक़रात की योग्यता अफ़लातून जानता था । ऋषि विरजानन्द की महिमा ऋषि दयानन्द पहिचानता था । यदि किसी मिथ्याप्रशंसक (खुशामदी) के ये वचन होते तो हम उस को अयुक्त कह सकते थे परन्तु ऋषि दयानन्द का उनको सूर्य कहना कुछ कारण वश सम्भव है । योगी विरजानन्द का महत्त्व इससे भी बढ़ कर हमको तब प्रतीत होता है जब हमको यह ज्ञात होता है कि परोपकारी बाल ब्रह्मचारी आर्यसमाज का आदिकर्त्ता (बानी) वैदिकधर्म का दर्शक महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अन्त

और वेदभाष्य के प्रत्यङ्क की समाप्ति में अपने को अभिमान (फ़ख़) से स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्य लिखता है ॥

विवेचक लोग स्वामी दयानन्द के गुरु परम * विद्वान् ऋषि विरजानन्द के परोपकार को नहीं भूल सके। तथा सत्यप्रिय लोगों के ज्ञान नेत्रों के सन्मुख महात्मा विरजानन्द निष्कलङ्क ज्योति का प्रकाश करने के निमित्त पुराणादि मिथ्या कपोलकल्पित और कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के विघ्नों को शूरवीर के सदृश आर्ष ग्रन्थरूपी खड्ग बल के द्वारा एक हाथ से काटता और दूसरे से वेदशास्त्रों के गुप्त कोषों की यौगिक कुञ्जी जो कि महाभारत के घोर युद्ध पश्चात् लुप्त प्रायः होगई थी मनुष्यमात्र के हाथ में देने के लिये एक अद्भुत परोपकारी विद्यार्थी स्वामी दयानन्द को सौंपता हुआ सचमुच ऋषि के रूप में दृष्टिगोचर होगा।

---

* सत्यार्थप्रकाश के अन्त में यह शब्द स्वयं श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने उनके महत्त्व में प्रयोग किया है ॥

ओ३म्

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ यजु० अ० ४० मंत्र ६ ॥

"पदार्थः—(यः) विद्वान् जनः (तु) पुनरर्थे (सर्वाणि) अखिलानि (भूतानि) प्राण्यप्राणिरूपाणि (आत्मन्) परमात्मनि (एव) (अनुपश्यति) विद्याधर्मयोगाभ्यासानन्तरं समीक्षते (सर्वभूतेषु) सर्वेषु प्रकृत्यादिषु (च) (आत्मानम्) अतति सर्वत्र व्याप्नोति तम् (ततः) तदनन्तरम् (न) (वि) (चिकित्सति) संशयं प्राप्नोति ॥"

"हे मनुष्यो (यः) जो विद्वान् जन (आत्मन्) परमात्मा के भीतर (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी अप्राणियों को (अनुपश्यति) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने पश्चात् ध्यान दृष्टि से देखता है (तु) और जो (सर्वभूतेषु) सब प्रकृत्यादि पदार्थों में (आत्मानम्) आत्मा को (च) भी देखता है वह विद्वान् (ततः) तिसपीछे (न) नहीं (विचिकित्सति) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥"

नारीनवरतन

—◇◇◇—

स्त्री शिक्षा का १ सरल पुस्तक

जिसको

मुनशी देवी प्रशाद मुनसिफ राजजोधपुर

ने

निर्माण किया

सम्बत् १९५०

सन् १८९४ ई०

पहिलीबार ५०० कापी छपीं

अकबर बादशाह का इतिहास

यों तो इस भारतबर्ष में अनेक यवन बादशाह प्रजाको पीड़ा देने में प्रसिद्ध होगये हैं पन्रतु जिसने कि इस देश के बाशियों को सुख दिया न्याय और नीति से राज किया गो हिन्सा बन्द करदी तीर्थके कर माफ़ किये पण्डितों और कवियों को आदर मान दिये ऐसेमहा धीर बीर तो १ अकबर बादशाहही हुए हैं हमनें इनके ५० बर्ष के राज्यशासन का पूरा २ इतिहास सम्बत् १६१२ से लेकर सम्बत् १६६२ तक लिखाहै जो ३५२ पृष्टों में समाप्त हुआहै आजतक ऐसा पुस्तक इनके हाल का भाषा में तैयार नहीं हुआ था और मूल्य भी इस अमूल्य पदारथ का थोड़ाही रक्खा है जो बिना इन्डेक्स तो ॥) है और इन्डेक्क सहित १) है

दूसरी किताबें

१ माहाराजा मानसिंघ कछवाहेका जीवन चरित्र चित्र सहित ≈)

२ मारवाड़ के राव मालदेवजी का जीवन चरित्र चित्र सहित −)

३ विद्यार्थी विनोद जिसमें अकलमंदी और सभा चातुरीकी बातें विद्यार्थियों की सिक्षा के लिये लिखी गई हैं ≡)

४ स्वप्न राजस्थान, इसमें राजपूताने की अगली पिछली हालत का चित्र बहुत अच्छी तरह से दिखाया गयाहै और उसकी उन्नति और दुरस्ती इन्तजाम के भी उपाय बताये गये हैं कीमत ।≈)

५ मारवाड़ का भूगोल जिसमें तमाम जरूरी जानने के लायक अहवाल मारवाड़ के मुल्क और राजका परगनेवार दरजे है जो राज के स्कूलों में भी पढ़ाया जाता है कीमत ।)

६ मारवाड़का नकशा ।) और भूगोल के साथ ।=)

७ खण्डान्तर पर्य्यटननिर्णय इसमें बलायत जाने वालोंके सुभीते के लिये यह बात सिद्ध की गईहै कि बलायत जाना धर्म और शिष्ट

नारीनवरतन

भूमिका

एक समय कई छोटी २ लड़कियां तीजों के मेले में गई थीं यह मेला १ बाग़में होता था वह मौसम बहार का था रूखों के पुराने पत्तेझड़ कर नई कौंपलें फूटी थीं फूल भी रंग २ के खिल रहे थे उनको देखकर कुछ लड़कियों ने कहा कि आओ हारही बनायें खाली बैठे क्या करें तब एक सुघड़ लड़की बोल उठी कि हार तो मालन बहुत लेआवेगी हमको तो गहने बनाने चाहिये यह बातसब को पसंद आई फिर किसी ने चंपाकली बनाई किसीने गजरा गूंथा और किसी ने करन फूल बनाये १ लड़की सबसे चतुर थी उसने ९ रंग के फूल इकट्ठे करके नवरत्न बनाया यह सब में बढ़चढ़कर था इससे उसकी तारीफ़हुई और वहभी फूली २ फिरतीथी औरकहती थी देखो मेरानवरत्न ऐसा और भी किसीके पासहै ! इसनवरत्नमें गुलाब लालकी जगह मोगरा पुखराज की जगह चंपालहसनियेकी जगह नीलोफ़र नीलमकी जगह औरमोतिया हीरे की जगह था इस बात से और सब लड़कियां खिसयानी होगईं तब उनके एक प्रोहितने पुचकार कर कहा कि ए भोली बेटियो ! तुम क्यों इतनी उदास होती हो यह नवरत्न तो कल मुरझा जावेगा और परसों तक तो इसका खोजभी न रहेगा मैं तुमको ऐसा नवरत्न बताता हूं जो कभी मैला भी न हो और हमेशा तुम्हारे साथ रहे और तुम्हारी शोभा को दिन २ बढ़ावे लड़कियां यह सुनतेही हरी होगईं और उन्होंने पूछा वह नव रत्न कहां है जल्दी हमको दो तोहम भी सबको उसी तरह बताती फिरें प्रोहित जी ने कहा कि प्यारी बच्चियो ?

वह नवरत्न ऐसा नहीं है कि तुम उसको दिखलाती फिरो लोग आप उसके देखने को तुम्हारे पास आवेंगे लड़कियों ने कहा अच्छे प्रोहितजी ! भला वह नवरत्न ऐसा कैसा है कि जिसके आप इतने बखान करतेहो प्रोहितजीने कहा कि वह शील रूपी नवरत्नहै जिसकी शोभा किसी से भी नहीं बखानी जाती जिस किसी को मिलजाता है फिर वही वह सबमें दिखाई देने लगता है परंतु उसका मिलना ज़रा मुशकिल है घड़ी भर की महनत में हाथ नहीं आता मैं उसके एक २ रत्नके मिलनके उपाय तुमको बताताहूं सुनो

पहिला रतन

तड़केही जागने और लिखने पढ़ने की शिक्षा

अय लाड़ली लड़कियो ! तुम तड़केही उठा करो उस समय के जागनेमें बड़ालाभ है सुबहकी हवा आदमीके बदनको ताज़ा करतीहै उससे तबीअत में तेज़ी और फुर्ती आती है जो लड़कियां दिन निकले तक सोती हैं बुराकरती हैं शाम से पहिले सोना और दिन निकले पीछे उठना धर्म और नीति के विरुद्ध है उठे पीछे जल्दी से हाथ मुंह धोकर पिछला पाठ यादकरो जब वह अच्छी तरह से याद होजावे तो आगे को देखो इस बातसे तुम्हारी बुद्धि दिन २ खुलेगी फिर पाठशाला में जाकर अदबसे बैठ जाओ और जो पाठ मिले उसको दिल लगाकर याद करो और उसके मायने और मतलबको अच्छीतरहसे समझकर आपसमें चर्चा भी कियाकरो कि चर्चा करनेसे एक तो विद्या बढ़तीहै और दूसरा यह लाभभी होता है कि जो कोई शब्द या अर्थ किसी के चित्त से उतर गयाहो तो मालूम होजाता है अपनी साथ वालियों से पूरा मेलरक्खो पढ़ने के समय व्यर्थ बातें मत करो कि इससे वह समय अकारथ जावेगा और पाठ भी याद न होगा मास्टर का कोप और साथ पढ़ने वालियों

में उपहास सिवाय में होगा जब लिखने का समय आवे तो लिखो लिखने में भी इन बातों का ख़याल रहे !

एक तो यह कि अक्षर सुंदर और स्पष्ट लिखो कि झट पढ़ने में आजावें

दूसरे लिपि बहुत दिव्य होना चाहिये जहां तक बने साफ़ और सही लिखना सीखो घसीट लिखने की आदत मत डालो क्योंकि ऐसा लिखा हुआ मुशकिल से पढ़ा जाता है

तीसरे लिखकर पढ़ लिया करो कि जो कहीं कोई अक्षर रहगया हो तो मालूम हो जावे

चौथे जो आशय लिखो वह खुली बोली में होना चाहिये जो सबकी समझ में आजावे टूटे फूटे और बेढंगे लेख को कोई पसंद नहीं करता है

पांचवें बहुत कठिन शब्द नहीं लिखना चाहिये कि पढ़ने वाला न उलझे

छठे एक २ शब्द को बार २ नहीं लाना चाहिये कि इससे लिखने वाले की कम इल्मी साबित होती है

हिसाब के सीखने म खूब दिल लगाना चाहिये क्योंकि यह बहुत काम आता है बड़े लोगों ने कहा है कि जो हिसाब नहीं जानता वह इनसाफ़ नहीं करसक्ता

क़ायदा हरेक बातका सीखो और यादरक्खो उस्तादों ने हरेक विद्या और हरेक कला के क़ायदे बांध दिये हैं जो जिस चीज़का क़ायदा जानता है उसमें उसको बहुत सुभीता होता है जैसे एक मुसाफ़िर दिल्ली के किसी कारख़ाने में जा बैठा वहां खाती काम करते थे शाम के वक्त़ लकड़ी चीरने वाले को तो ।) मज़दूरी के मिले और बताने वाले को ।।) मुसाफ़िर ने यह देखे

कर कहा कि इस शहर में बड़ा अन्याय है कि जिसने दिन भर मिहनत करके लकड़ियां चीरीं उसको तो ।) दिये और जो बैठा हुआ मुंह से कुछ २ बताता रहा वह ॥) लेगया वहां वालों ने जबाब दिया कि भाई वह इसकामका क़ायदा जानता है और यह निरा मज़ूदर है

लिखने पढ़ने में जो लाभ है उनकी कुछ गिन्ती नहीं जब तुम लिख पढ़ जाओगी तो आप समझ लोगी

दूसरा रतन

मां बापकी सेवा और शील

अय प्यारी लड़कियो ! मा बाप और बड़े बूढ़ों की सेवा करन.. और उनका हुक्म मानना तुम्हारा धर्म है वे जो बात तुमसे कहते हैं वह तुम्हारेही फ़ायदे की होती है चाहिये कि उस बातको कान देकर सुनो और हमेशः उनके कहने में रहो दुनिया में मा बाप के बराबर प्यार करने वाला कोई नहीं है जब तुम उनकी सेवा करोगी और कहना मानोगी तो वे ज़ियादातर तुमको प्यार करेंगे अच्छा खिलावेंगे और अच्छा पहिनावेंगे उनकी आशिषसे तुम फलो फूलोगी जिस आदमी से कि उसके मा बाप राज़ी नहीं होते उससे परमेश्वर भी प्रसन्न नहीं होता तुमको उचित है कि तड़के उठतेही उनको दण्डवत् कर लिया करो और जहां जाओ उनसे पूछकर जाओ और जो वे शिक्षा के वास्ते कुछ बुरा भला कहें तो उस से बुरा मत मानो सिर झुकाकर उनकी सब बातें सुनलो क्योंकि वे वास्तव में बुरा नहीं कहते सोचो तो तुम्हारे लिये सरासर भला है क्योंकि जिस जगह आग लगती है वही जगह गर्म होती है उनका दिल जलता है जब कहते हैं तुम्हारी भूख प्यास दुःख शोक और पीड़ा का जितना वे दर्द करेंगे और कोई नहीं करेगा हर आदमी के ऊपर मा

बाप का इतना हक्क होता है कि जिससे ऊरण होना सहज नहीं है भला ज़रा उनकी मिहनतोंका तो बिचारकरो कि किस कष्टसे उन्हों ने तुमको पाला है रातकोरात और दिनकोदिन नहीं समझा हर वक्त तुम्हारी तरफ़ ध्यान रक्खा जबज़राभी तुम्हारी तबियत बीमार होगई तो उनके होश जाते रहे खाना पीना भूल गये और तुमको हकीम बैद स्याने और भोपे के यहां लिये २ फिरे दवा दारू करने में रुपये पैसे का मुंह नहीं देखा कोड़ी कंकरी करदी जब तक तुमको आराम न हुआ उनके जी में जी नहीं आया इसी तरह और भी हज़ारों मिहनतें तुम्हारे पीछे उन्हों ने उठाई और बड़ी २ तकलीफें सहीं तब कहीं जाकर तुम इतनी बड़ी हुईहो अब तुम इस मिहनत और जान झोंकने के बदले उनकी ऐसी बन्दगी करो कि वे प्रसन्न होवें और अपने दिल में यह समझें कि हमने जो इतनी मिहनत करके इनको पाला था तो यह आज हमारे काम आई और परमेश्वरकी कृपा से हमारी मिहनत व्यर्थ नहीं गई मां बाप के राजी होने से सब लोग तुम्हारी तारीफ़ करेंगे और फिर जब तुम बूढ़ी होओगी तो तुम्हारी सन्तानभी इसी तरह तुम्हारी सेवा करेगी सबको अपना बदला इसी दुनियां में मिल जाता है अगर तुम अपने मां बाप को बेराज़ी रक्खोगी तो तुम्हारी औलाद भी तुमको कलपाती रहेगी और जब तुम औलाद वाली होओगी और जो प्यार तुमको उससे होगा तो उस वक्त तुम समझोगी कि हमारे मां बापको भी हमारे साथ यही मोह माया थी इस बिषय में एक सेठके बेटे का दृष्टान्त तुमसे कहता हूं तुम सचेत होकर सुनो

एक सेठका बैटा अपने मां बाप की मोहब्बत को नहीं मानता था यहां तक कि उसके भी औलाद होगई वह एकदिन दोपहर के वक्त कोठे पर चढ़ा हुआ पतंग उड़ा रहा था उसके बापने बहुत कहा कि

इस समय धूप है छत पर मत खड़ाहो लू लग जावेगी परन्तु उसने कुछ न माना तब सेठ ने उसके बेटे को डोर पतंग देकर कहा जा इस कपूत का पतंग काट दे वह लड़का उससे भी ऊंची छत्तपर चढ़कर पतंग उड़ाने लगा उसके बाप ने यह हाल देखकर एकआदमी से कहा कि कवरजी के पांव जलते होंगे उसको छांव में लेजा सेठ यह बात सुन रहा था उसी वक्त गुस्से होकर बोला कि अरे नालायक! तूतो मां बापकी मुहब्बतको मानताही नहींथा अब अपने बेटे को धूप में फिरने से क्यों रोकताहै अपने दिलमें समझले कि जैसे उसके लिये तेरा दिल जलता है वैसेही तेरे लिये हमारा दिल जलता है यह सुनकर वह बहुत शरमाया और उसी दम उस ने मां बापसे माफी मांगी फिर उनकी ऐसी सेवा और शुश्रूषा की कि वे जब तक जिये उस्से राज़ी रहे

तीसरा रतन

अच्छी संगत और अच्छी बातों के अंगीकार करने की शिक्षा

अय बाली बच्चियो! तुम इस उमरमें दिल लगाकर विद्या पढ़लो नहीं तो फिर ऐसा अवसर हाथ न आवेगा विद्या और बुद्धि सीखने के लिये यही समय उत्तम होता है इस वक्त का सीखाहुआ तमाम उमर नहीं भूलता और इस उमर में जैसी आदत डालो पड़ सक्ती है सो तुम सरलता सुशीलता में निपुण होने का श्रम करो जिससे सब लोग तुम्हारे बखान करें बुरी बातोंसे बचो और बुरे आदमियों के पास मत बैठो कि इनबातों से तुम अच्छी गिनी जाओगी किसी ने लुकमानहकीमसे पूछा कि तुमने अदब किससेसीखा जबाबदियाकि बे अदबोंसे पूछा कैसे, कहा जोकाम उनका मुझको पसंद न आया मैं उससे अलग रहा

संगत का फल ज़रूर लगजाता है अच्छी का अच्छा और बुरीका बुरा, देखो सूरदासजी ने इस विषयमें क्या अच्छा कहाहै

दोहा

सीप गयो मोती भयो कदली भयो कपूर।
अहिफण गयो तो विष भयो संगत को फल सूर १

अच्छी बातों को कभी मत छोड़ो क्योंकि उनका फिर प्राप्त होना कठिन है जो लोग कि अशराफ हैं वे कभी अच्छी बातों को नहीं छोड़ते मैं यहां पर १ दृष्टांत कहताहूं सो सुनो

एक भला आदमी किसी का नोकरथा वह जब अपने मालिकको देखता सलाम करलेता उसने एक दिन कहा कि भाई मैं तेरे सामने दिनमें १००बेर होऊंगा तू कहां तक सलाम करेगा वह बोला मुझे हज़ार बेर सलाम करना मंजूर है जो एक बेरभी न करूंगा तो मेरी आदत बिगड़ जायगी और होते २ यहां तक नौबत पहुंचेगी कि फिर सलाम करना मुझको दूभर होजावेगा

मां बाप की दौलत और आमदनी पर घमण्ड मत करो क्योंकि यह बात कुछ कामकी नहीं है और जहां तक होसके विद्या और विनय प्राप्त करो कि विद्यावान धनवानों से सदा सुखी रहते हैं और उनका मन विद्या धन से ऐसा छक जाता है कि वे इसअसार संसार के क्षणभंगुर धन और संपति का कभी परेखा भी नहीं करते इसी तरह वे अपनी सन्तानको भी झूठी टीप टापकी अपेक्षा विद्या और शीलके भूषण से ही भूषित करना अच्छा समझते हैं मैं यहां पर एक कथा कहताहूं सुनो

एक समय सुलतान रूम के महलमें कुछ खुशीथी जिसमें तमाम औरतें उसके घराने की आई थीं जिन्हों ने अपने २ लड़के और लड़कियों को उत्तमोतम वस्त्र और आभूषण पहिना कर रत्नों में

जड़ दिया था परंतु सुलतान की बेगम ने अपने बेटे की पोशाक भी नहीं बदली थी इस पर सब ओरतों ने उससे कहा कि क्या आप को अपने बेटे से प्यार नहीं है या संतान से जी भर गया जो शाहजादे की ऐसी गतगुमा रक्खी हैं कि उसमें और गरीबों के लड़कों में कोई अन्तर नहीं रहा है और हम आपकी टहलनी हैं तो भी देखो अपनी सन्तान को कैसी ओढ़ी पहिनी रखती है बेगम यह सुनकर मुसकराई और बोली किमैंने अपने लड़के को विद्याके दिव्य वस्त्र और विनयके अमूल्य माल्यादि भूषण पहना दियेहैं अबउसको ऊपर के लिफाफे और टीप टापकी कुछ आवश्यक्ता नहीं है इसबात से सब ओरतों ने कान पकड़ लिया और फिर किसी ने कुछ न कहा

चोथा रतन

बुद्धि की प्रशंसा में

बुद्धि एक बड़ा अमूल्य रत्न है परमेश्वर ने मनुष्य को जो बल दिये हैं उनमें बुद्धिका बल अतुल है जिससे सदा सहायता मिलती है और बुद्धिसे ऐसी २ अनोखी २ बातें होती हैं कि देखने और सुननेवाले चकित रह जातेहैं सब लौकिकव्यौहारोंकी जड़ बुद्धिहैऔर बुद्धिही सारी विद्याओंकी भी जड़है क्योंकि कोई विद्या बुद्धिके बिना नहीं आती है बड़े लोगों ने कहा है कि अकल बड़ी करामात है और यह सच बात है देखो फिरंगियों ने अकल के ज़ोर से क्या २ कलें और कारीगरी की चीजें निकाली हैं जिनको देख कर विद्या विहीन पुरुषों को बड़ाही अचरज होता है और बुद्धिमान लोग उनको अकल के चमतकार से समझ कर कुछ बहुत ज़ियादा अचंभा नहीं करते देखो रेलगाड़ी तार फोटूग्राफ और विजली वगैरह सब बुद्धिके

ही चमतकार हैं बुद्धि का प्रकाश थोड़ा बहुत सब जगह ही नज़र आता है कोई जगह इस से खाली नहीं है जिनको हम पशु समझ कर अनादर करदेते हैं बुद्धिका अंश उनमें भी है और इसकी थाह भी नहीं दुनिया पैदा हुई उस दिन से अबतक अनंत बुद्धिमान हो-गये और उन्हों ने अपनी बुद्धिके बलसे अनेक बातें नई निकलीं तो भी इसका अन्त नहीं आया यह अबतक वैसेही नये २ चमतकार दिखाये चली जाती है परन्तु मनुष्यको उसके वास्ते योग्यता प्राप्त करना अवश्य है ।

बुद्धि एक पुरुष या एक देश के ऊपर भी बंद नहीं है परमेश्वर ने थोड़ी बहुत सबको ही दी है इसका प्रचार पहिले २ तो भारत वर्ष में था फिर चीन और मिस्रमें हुआ पीछे यह यूनान और फ़ारस में पहुंची अब यूरोप और अमरिकामें बिराजरहीहै जहां यह जातीहै वहां बिद्या भी अपना घर बना लेती है और धन भी वहीं फट पड़-ता है और जहां से कूच करती है वहां से विद्या धन संपति और सभ्यतादि सब धीरे २ खिसक जातेहैं सारांशयहहै किबुद्धि मनुष्यके प्रत्येक मनोर्थ सिद्ध होने का हेतुहै जैसे लड़ाई के समय में लोहा सोने से जियदा काम आताहै वैसे ही बुद्धि हरेक समय में सोने से ज़ियादा काम आती है सो अय अच्छी लड़कियो ! तुम बुद्धिको काम में लाकर विद्या पढ़ो इस उमर में तुम्हारी बुद्धि सर्व प्रकारके विकारों से निर्मल है जो तुम उसको पढ़ने लिखने में लगाओगी तो तुम को बहुत लाभ कारी होगी परमेश्वर ने यह अमूल्य पदार्थ मनुष्यों को इसी वास्ते दिया है कि वे इसके द्वारा उन बातों की खोजना करें जिनसे इस लोक और परलोक में उनका कल्यान हो

पांचवां रतन

विद्याकी प्रशंसा में

हे सुकमार कुमारियो! विद्या अति उत्तम पदार्थ है पृथ्वीकी कोई बस्तु इसकी बराबरी नहीं करसक्ती है मनुष्य जितना मान और सनमान विद्या से पाता है उतना और किसी बस्तुसे नहीं पाता और विद्याही के प्रभाव से उसका नाम चिरस्थायी होजाता है जिस से और लोगों को शिक्षा होती है सिवाय इसके विद्यासे दोनों लोकों के मनोर्थ सिद्धि होते हैं

श्लोक

विद्या ददाति बिनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वा द्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् १

विद्यावान चाहे कितनाही भूखा नंगा हो सब उसका सत्कारही करेंगे हरेक सभा में उसको आदर से बैठावेंगे और उसकी थोड़ीसी बेर के सत्संग को भी बहुत समझेंगे शान्ति भी विद्या से ही प्राप्ति होती है विद्यावानों का चित्त सांसारिक विषयों में जियादा लगा लिपटा नहीं होता उनके पास जो मन चाहा धन माल न हो तो भी उनको इस बात का कुछ परिताप नहीं होता

जगत में ३ प्रकार की सृष्टि होती है, देवता मनुष्य और पशु, पर समझ और बूझ में देवता मनुष्य से और मनुष्य पशु से बढ़कर है और पशु सब से अधम है कि सिवाय खाने और सोने के और कुछ नहीं जानता अब बिचार कीजिये कि मनुष्य जिसका दरजा यदि १ से अधिक है तो दूसरे से न्यून है जो विद्या और बिबेक प्राप्त करने पर कमर बांधे और सदगुण तथा सत्व्यवहारों का उपार्जन करे तो देवताओं के बराबर हो जावे और सबसे उत्तम कहलावे जो इस के बिरुद्ध इल्म सीखने में प्रमाद रक्खे और अविद्या में अपने दुर्लभ

मनुष्य जन्म को खो देवे तो पशु से भी अधम है किस लिये कि वह तो पैदाही ऐसा हुआ है और यह अपने हाथों से जानवर बना है इससे सिद्ध हुआ कि विद्या इस मिट्टी के पुतले को इस लोक और परलोक में कृतार्थ करके नीच पदसे उच्च पदको पहुंचाती है मनुष्य को चाहिये कि हर अवस्था में खूब मिहनत करके विद्या पढ़े कि जिसके प्रकाश से हृदय का अंधेरा दूर होजावै किसी ने किसी पण्डित से पूछा कि विद्या कबतक पढ़नी चाहिये उसने कहा कि जबतक अविद्या बाक़ी रहै

लोग जिसको करामात और दिव्य दृष्टि कहते हैं वह भी विद्या ही है कि विद्यासे आदमी को १०००० बरस पीछे के हाल खुल जाते हैं और १००० बरस आगे की सूझने लगती है

अगले ज़माने में लोग विद्या पढ़ने के वास्ते दूर २ जाते थे विजातीय और विदेशी आदमियों के बड़े २ अहसान उठाते थे और बरसों उनकी सेवा करते थे जो दैव सानुकूल होता तो हर तरह के कष्ट और संताप सह कर जीते जागते घर पहुंते नहीं तो नहीं क्यों-पहिले रस्ते ऐसे साफ़ नहीं थे और जंगलों में हाकिमोंकी भी इतनी धाक नहीं थी कि जितनी अब है इसके पीछे १ ऐसा समय भी था कि लोग इल्म के वास्ते तरसते थे और इल्म उनको नहीं मिलती थी उस वास्ते कि हाकिमों की बे बन्दोबस्ती और रस्तों की लूटमार से किसी को इतनी फ़ुर्सत और हिम्मत नहीं होती थी कि घर से बाहर निकलकर इल्म पढ़े और घर पर पढ़ाने वालों को बैठा कर विद्या पढ़ना तो बहुतही कठिनथा क्योंकि उस समय के हाकिम साधारण लोगों को इल्म नहीं पढ़ने देते थे और एक समय यह है कि तुम्हारे दयालु और कृपालु हाकिमों ने जगह २ स्कूल और पाठशाला तुम लोगों के

वास्ते खोल रक्खे हैं और उनको जितना खयाल तुम्हारे लिखाने पढ़ाने का है तुम्हारे मा बापको भी उतनाही होगा बरन मेरी समझ में तो उससे बहुत कम है क्योंकि वे अपने लड़कों को तो कुछ पढ़ाना चाहते भी हैं परन्तु तुम्हारे पढ़ानेसे जीचुराते हैं और सरकार दोनों कोही बराबर विद्याधन का लाभ पहुंचाया चाहती है और उसको इस कोशिश से सिवाय इस बातके और कुछ मतलब नहीं है कि हिंदुस्तान के मर्द औरत भी इंग्लिस्तान की प्रजा के समान लिखपढ़ जावें क्योंकि यह नामदार सरकार जो इल्म की अत्यन्त कदर करती है अपनी प्रजाको मूर्ख रखना नहीं चाहती इस वास्ते रात दिन तुम्हारे लिखाने पढ़ाने की फिक्र में रहती है तुमको चाहिये कि ऐसी प्यारी प्रतिपाल करने वाली सरकार की दिल और जान से आज्ञाकारिणी बनो कि जिसने गांव २ पाठशालायें बनादीहैं किजिनसे तुमको घर बैठे इल्म कीप्राप्ति होजावे और उसके वास्ते कहीं बाहरजानेकी तकलीफ और लोगों की खुशामद करनी न पडै

तुम खुशी से पाठशालाओं में जाओ और जो इल्म चाहो सो पढ़ो इसमें तो तुम्हाराही लाभ है सरकार का तो कुछ लाभ सिवाय इसके नहीं कि वह अपनी प्रजाको लिखा पढ़ाकर सभ्य बनाने में यसस्वी होगी और यहभी समझना चाहिये कि अंगरेजी सरकार तुमसे हरगिज़ ऐसे बेफ़यदा और निकम्मे हुक्मों की तामील कराना नहीं चाहती जैसा अगले बादशाह और हाकिम कराते थे हां इल्म पढ़नेके लिये तोअलबत्ता तुमसे परिश्रम कराना चाहती है और उसमें सरासर तुम्हाराही फ़ायदा है

दोहा

विद्या जसको मूल है विद्या सुखको धाम ।
विद्या से ईश्वर मिले विद्या से चिर नाम १
विद्या विधि सूँसीखिये बाल अवस्था माँहि ।
विद्यासे जससुखमिले विद्याबिन कछुनाँहि २
अष्टसिद्धि नवनिद्धिबर ऋद्धि बुद्धि अरुमुक्ति ।
विद्या से येसब मिलें कहे वेद की सुक्ति ३
सार पदारथ जगतमें कहै पदारथ च्यार ।
विधना विद्याकोतदपि रच्यो पदारथ सार ४

छठा रतन

अय प्यारी बाच्चियों! परंपरा से हरएक काम के लिये एक समय ठहरा हुआ है और तुम देखतीहो कि हरएक बात अपनेही समय पर होती है बाज़े कामों के समय आदमी को मालूम नहीं होते कि वे कब आवेंगे तो भी बहुधा कामों के समय तो ऐसे हैं कि जिनको मामूली कहना चाहिये और जिनको सब लोग जानते हैं जैसे सूरजको तुमने कभी उस समय तक निकलते नहीं देखा होगा कि सुबह का सुहाना समा अच्छी तरह से तुम्हारे आंगनमें न फैल गया हो और गुलाब की प्यारी और नाज़ुक कलियां उसी वक्त चटकती देखी होंगी कि जब चेतके महीने की भीनी २ रात और ठण्डी २ सुबह तुमको अपनी शोभा दिखाती है तुम चिड़ियोंकी सुहानी चेच हाटको सुनकर हठ करके कह सक्तीहो कि अब प्रातःकालका समय है और आकाश पर रंग २ के अनोखे और चमकदार सुनहरी बादलों को देखकर बतादोगी कि शाम पड़गई तुमने काली २ मतवाली घटायें देखकर बहुत बेर कहदिया होगा कि बरसातकी ऋतु आगई और धूपकी तेज़ी और हवा की गर्मी से जान लिया होगा किजाड़ा

जातारहा ऐसे ही लिखने पढ़ने का समय यही बाल्यावस्थाहै इस वक्त तुमको थोड़ेसेही परिश्रममें इल्मकी बहुतकुछप्राप्ति होसक्तीहै और जब यहसमयनिकलगया और तुमनेउसकी कुछकदर न की और जवानी या बुढ़ापे में इल्म पढ़ाना चाहा तो उस समय में बहुत कम यह आशा हो सक्ती है कि तुमको इल्म आवे क्योंकि वह समय पढ़ने का नहीं है इस में १ दलील यहभी है कि इल्म पढ़नेके लिये संसार के सारे झगड़े बखेड़ों से बिल्कुल बे फिकरी चाहिये और यह सब बातें बचपनही में होती हैं कि उस समय तुम लोगों का दिलकिसीबखेड़े में फसाहुआ नहींहोता सोतुम ऐसे अच्छे और अनमोल समयको हाथसे न जाने दो और जहां तक तुमसे बन पड़े परिश्रम करके कुछ इल्म पढ़लो जो तुम्हारी जवानी और बुढ़ापे में काम आवे अगर उस समय को तुम बेपरवाई से खेल कूद में खो दोगी तो उसकी हानि अभी तो तुमको मालूम नहीं होगी परन्तु फिर जब तुम होश सम्भालोगी और अपना अच्छाबुरा समझने लगोगी तो उस समय के व्यर्थ जाने पर निहायत पछताओगी और उमर भर सोच करती रहोगी और यह भी आशा नहीं कि फिर तुम अभ्यास करके ऐसेही सुभीते से इल्म पढ़लोगी जैसे कि अब पढ़सक्तीहो किस लिये कि स्यानी होने के पीछे ईश्वर जाने क्या २ बनाव बनें और कैसे २ झगड़े बखेड़े आगे आवैं आदमी की सदा एकसी नहीं रहती जो फुरसत और बेफ़िकरी बचपन में होती है वह मरते दम तक फिर कभी नहीं मिलती किसी ने क्या खूब कहा है

सदा दोर दोरा दिखाता नहीं
गया वक्त फिर हाथ आता नहीं १

यहभी कहावत है कि वक्त के बोये मोती उपजते हैं और हर काम अपने समय परही अच्छा लगता है क्या नहीं देखती हो कि बूढ़ा तोता हरगिज़ नहीं पढ़ता उसको लाख पढ़ाओ और जो बच्चा होता है वह अलबत्ता पढ़जाता है इसी तरह अपने हाल पर बिचार करलो कि तुमको जो कुछ इल्म हुनर प्राप्ति होगा वह बचपनही में होगा तुम और किसी अवस्था में उसकी आशा मत रक्खो दूसरे इस समय तुम्हारी बुद्धि निर्मल और जीभ भी कोमल है जिससे हर बात यादकर सक्तीहो बड़ी होजाने पर यह बात फिर कहां, सुना है कि एक बेर १ मनुष्य ने मिट्टी का प्याला कुम्हार को चित्र करने के लिये दिया कुम्हार ने कहा कि इस पर चित्र नहीं होंगे उसने कहा फिर तूने दूसरे प्यालों पर कैसे किये हैं कुम्हार ने जवाब दिया कि उनपर चित्र किये थे जब वे कच्चे थे और यह पकचुका है इसलिये अब इसपर मैं कुछ नहीं कर सक्ता अगर करूंगा तो यह टूट जावेगा

ऐसे ही गीली लकड़ी को तो जैसे चाहें वैसे मोड़ सक्ते हैं परतु सूखी हरगिज़ नहीं मुड़ेगी यही फरक बच्चों औ बूढ़ों में भी है कि बच्चों की तो बुद्धि और जीभ कोमल होती हे जिससे हरएक बात उनको जल्दी आजाती है और बूढ़ों को आना कठिन है

सातवां रतन
मिहनत की प्रशंसा

वह पदार्थ किजिससे बड़े २ कामपार पड़तेहैं और मुश्किल २ बातें सुगम होजातीहैं मिहनतहै मिहनतसेही तो आदमी पहाड़को तोड़कर

तोड़ कर रासता निकाल लेता है और मिहनतसे ही पाताल फोड़ कर पानी निकाललाता है संसार के सारे कामोंकी जड़ मिहनतहै मिहनत बिना कोई काम नहीं बनता और न बगैर मिहनत के कोई अपनी मुराद को पहुंचता है सारे छोटे बड़े काम रात दिन की मिहनत मांगते हैं यहां तक कि बगैर मिहनत के किसी को रोटी भी नहीं मिलती

गरीब और अमीर सब अपने २ तौर की मिहनत करते हैं कोई काम हो उसमें जितनी मिहनत की जावे उतनाही ज़ियादा वह फ़ायदा देता है परन्तु लिखना पढ़ना तो रात दिनकी मिहनत और तन तोड़ने से आता है १ पाठशाला में १०० विद्यार्थी पढ़ते हैं पर जो ज़ियादा मिहनत करता है वही जल्दी सबक याद करलेता है और गुरूभी उसी से विशेष प्रसन्न रहताहै और जो लड़के साव-धान होते हैं वे भी उसकी देखादेखी मिहनत करने लगते हैं कि उसके बराबर पढ़जावें औ गुरूके कोप से बचें मिहनत से वे कठिन ग्रंथ समझ में आजाते हैं कि जिनके देखने का कभी काम भी न पड़ा हो और मिहनत नहीं करने से पढ़ा पढ़या भी यादनहीं रहता सो अब अय लड़कियो! तुम पढ़ने लिखनेमें खूब मिहनत करो और आलसको कभी अपने पास न आने दो लिखने पढ़ने में जितनी मिहनत करोगी उतनाही तुम्हारा ज़िहन बढ़ेगा और विद्या की भी वृद्धि होगी यह लड़कपनकी मिहनत बुढ़ापे तक तुमको काम आवेगी और यह उमर ऐसी है कि इसमें जो कुछ मिहनत करो थोड़ी है क्योंकि वह इस समय बहुत भारी मालूम नहीं होती परन्तु जवानी में इल्म का परिश्रम बहुत भारी लगता है और उतना फ़ायदा भी नहीं देता जितना लड़कपन में देता है देखो जो पाठ तुम पढ़ती हो उसमें मिहनत न करो तो कभी तुमको याद नहीं होता और

जो मिहनत करतीहो तो १—२ घंटे ही में खूब याद होजाता है यदि बिचार करो तो लिखने पढ़ने में उतनी मिहनत नहीं पड़ती जितनी कम फ़ायदे के कामों में पड़ती है पढ़ना तो केवल जीभ को कुछ बेर हिलाने से याद होजाता है परंतु उसमें दिलको लगा हुआ रखना ज़रूर है क्योंकि बग़ैर दिल लगाने के ज़बान से पढ़े जाना ऐसा है जैसे कोई आंखे मूंदकर पुस्तक लिखे क्योंकि वह हाथसे कुछही लिखेगा तो सही पर वह लिखना कुछ काम नहीं आवेगा इसी तरह पुस्तक को बिना चित्त लगाने के पढ़तो लोगी परन्तु याद नहीं होगी

आगे के पाठको देखना और नहीं पढ़ी हुई पुस्तकको पढ़ना और उसका आशय समझना और कठिन शब्दों का अर्थ लगाना यह सब दिलकी मिहनतसेही सम्बन्ध रखता है लिखना हाथ और दिल की मिहनत से आता है कि जो लिखे हाथको थांभकर धीरे २ लिखे जल्दी न करे जल्दी करने से अक्षर बिगड़ते हैं और जो कोई बारता लिखे तो सोच और समझ कर लिखे

बस लिखने पढ़ने में इतनीही मिहनत पड़ती है इसमें जितनी फ़ुरती और परिश्रम करो उतनाही लाभ है कि जल्दी से लिखपढ़ कर होशियार होजाओगी मिहनत तुम्हारे वास्ते कृतार्थ होने को पूरा वसीला है क्योंकि मिहनत से कठिन काम पार पड़ जाता है जैसा कि डच जाति के लोगोंने जो मुल्क हाईलेण्डमें रहते हैं अपनी मिहनत के जोर से समुद्र की बहुतसी ज़मीन छीनली है और उन हज़ारों बीघे ज़मीन में कि जहां किसी वक़्त पानीही पानी दीख पड़ता था और दरयाई जानवर तिरते फिरते थे खेतियां बोडाली हैं कैसे अचंभे की बात है कि कोई तो ज़मीन किसी से तलवारें मारकर लेता है और डच लोगों ने मिहनत करके

समुद्र से ली है और वे लोग अब भी अपनी मिहनत को बराबर आगे बढ़ाये चले जाते हैं उनका इरादा है कि लाल समुद्र की उस बड़ी खाड़ी को जो उनके देश के पासहै बंदे बांधकर समुद्र से अलग कर लेवें और धुंए की कलों से उसका पानी उलीच कर फैंक देवैं और इस तरकीब से उन्हों ने बंदे बांध २ कर अबतक बहुतसा पानी समुद्र का निकाल कर फैंक दिया है यदि यह पानी सुखाडाला गया तो हाईलेण्ड और फ्रीज़रलेण्डका मुल्क दूना बढ़ जावेगा अब ज़रा गौर और इनसाफ करना चाहिये कि मिहनत कितना उमदा फल देती है

दोहा

मिहनत मह पद पाइये.मिहनत महत प्रताप।
मिहनत नर सुख धन लहै बिन मिहनत संताप १
महिमा मिहनत की अखय कहबे में नहिं आय।
मिहनत मारग सिंधु में कढ़े तो लंका जाय २
मिहनत मूल मुरादकी मिहनत तजो न कोय।
मिहनत से दौलत. मिले मिहनत से सुख होय ३
मिहनत से मोती मिले मोती उगले भूमि।
मिहनत जल पत्थर तिरे गाड़ी खेंचे धूमि ४
मिहनत करि हे बालगण विद्या पढ़हु निशंक।
विद्या सों सदगुण लहहु गुणसों सुख भरि अंक ५
हे बर बाला गण सुघड़ विद्या तजो न भूलि।
विद्या गुण की खान है विद्या जस को मूल ६

आठवां रतन

आपस के मेल मिलाप के विषय में

अय मेरी अच्छी लड़कियो ! आपसका मेल मिलाप बहुत अच्छा

होता है फूट से हमेशा काम बिगड़ता है तुम आपस में पूरा २ मेल जोल और एका रक्खो जिससे तुमको शिक्षा और सभ्यता में बहुत सहायता मिलेगी क्योंकि एककाम के पूरे करने पर जो दो आदमी भी एक होजाते हैं और वह काम चाहे कैसाही कठिन क्यों न हो पूरा होही जाता है और जबकि बहुत से लोग एक होजावें तो फिर क्या कहनाहै इन बातों से मेरा मतलब यह है कि तुम सब लिखने पढ़ने में हिल मिल कर ऐसी मिहनत करो कि तुमको शीघ्रही विद्या की प्राप्ति हो जावे पढ़ने में एक दूसरे की सहायता करो लिखने और हिसाब करने में भी यही बरताव रक्खो विशेष करके हिसाब करने में क्योंकि गणित विद्या ज़ियादातर मदद और मिहनत मांगती है उस में जितनी मिहनत और चर्चा वार्ता करोगी उतनीही तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी दूसरी अवश्य करनेकी बात यहभी है कि जो कोई तुममें से अपना पाठ या उसका अर्थ औरआशय भूल जावे तो उसको तुरत बतादो भूले हुए को बताने में आना कानी करना अधर्म है और भूलना सबके लिये है यदि आज तुम औरोंको न बताओगी तो कल तुम कुछ भूलो गी तो वे भी तुमको नहीं बता वें गी तुममें पहिली जड़ फूटकी इसी नहीं बताने से पड़ेगी जिसमें प्रथम तो सबसे बुरी होओगी दूसरे अपना नुकसान आपही करोगी मरोड़ भली नहीं है सबके साथ हिल मिल कर चलने में जो भलाई है वह कहने में नहीं आती मनुष्य को मनुष्य से काम पड़ही जाता है और तुमको तो बहुत दिनों तक पाठशालामें साथ रहना है जो तुम आपस में प्यार और मोह नहीं रक्खोगी तो कैसे बनेगी मेल नहीं रखने से तुम्हारी पढ़ाई में भी भंग पड़ेगा और इसके सिवाय ईर्षा आदि बुरी बातों का बीज तुम्हारे कोमल हृदय में जम आवे गा जिसके दुःख भावसे विद्या में तुम्हारा जी नहीं लगेगा और सब

करी कराई मिहनत बृथा जायेगी गुरु और मा बाप अलग तुमसे नाराज़ होंगे अब समझ लो कि फूट में कितनी हानि है सो तुम कदाचित उसको अंगीकार न करो और अभी से ही ऐसे प्रेम और प्यार का ढंग डालो कि जो दिन पै दिन बढ़ता रहै और उसमें किसी प्रकार का विघ्न न पड़ने पावे

नवां रतन

प्रत्येक वस्तुकी अंवेर सम्भाल और चातुर्य की शिक्षा

हरेक बस्तु के सम्भाल कर रखने को अम्वेरना कहते हैं जो कोई अपनी चीजों को सम्भाल कर रखता है उसको नुकसान भी कमहोता है और लोग उसकी चतुराई और तमीज़दारी की तारीफ भी करतेहैं उसकी चीजें भी ऐसी साफ और सुथरी होती हैं कि देखतेही चित्त प्रसन्न होजाता है यद्यपि यह बात प्रत्येक मनुष्य को अवश्य है परन्तु स्त्रियों को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि घरकी सर्ब बस्तुओं की सम्भाल और देखभाल उनके अधिकार में होती है सो तुम अपनी पुस्तक स्लेट दवात क़लम पोशाक वग़ैरह को अत्यन्त साफ और सम्भाल कर रक्खो मैली कुचीली और ख़राब मत होने दो इसमें भी तुम्हारे लिये बहुत से फायदे हैं इनमें से १ पुस्तक परही मिसाल दीजाती है कि जब तुम्हारी पुस्तक साबत और अच्छी रहेगी तो तुमको और पुस्तक लेनी नहीं पड़ेगी वही बरसों तक बहुत होगी बड़े लोगोंने कहाहै कि काग़ज़की उम्र हज़ार बरस की होती है परन्तु उसको सम्भाल कर रखना चाहिये हमने बहुधा विद्यार्थियों को देखा है कि वे पुस्तकको सम्भाल कर नहीं रखते और पढ़ने के समय ऐसी बुरी तरह से खोलते और मूंदते हैं कि जिससे उनके पत्र टूट जाते हैं और पढ़े पीछे किसी आले या कोने कुचाले में डाल देते हैं और वहां पड़ी २

खराब होती रहती हैं कभी ऐसा भी होता है कि चूहे उनको काट डालते हैं या धूलधमासे और तेल वगैरह खराब चीज़ों से ऐसी बिगड़जाती हैं कि उनके देखने से घिन होती है कोई २ विद्यार्थी किताबों में ऊलजलूल खत और कागज़ वगैरह रखदेते हैं जिनसे उनकी जिल्द उखड़ जाती है किसी २ को यह लत होती है कि किताबों पर वाही तबाही बातें लिखकर उनको बिगाड़ देते हैं इन बातों से पुस्तक बहुत जल्दी काम से जाती रहतीहै और बहुधा ऐसा भी होता है कि उनके मा बापको एक २ पुस्तक कई बेर मोल खरीदनी पड़ती है और जिनके मा बाप ग़रीब और नादार होते हैं और उनके पास दुबारे लेदेने का सरतन नहीं होता है तो वे अपने लड़का लड़कियों को इस बात के वास्ते पीटते हैं और फिर नहीं लेदेते जिससे महीनों तक उनका पढ़ना बन्दरहता है अब कहिये कि उनको पुस्तकोंके बिगाड़नेमें क्या मिला बल्किउन्होंने अपने कई प्रकारके नुकसान किये साथ पढ़नेवालों ने उनको ताने दिये अध्यापकने अलग बुरामाना और यह आदत उनकी हमेशे के लिये बिगड़ गई कि वे जैसे किताबको ख़राब कर डालते थे वैसेही और चीज़ों को भी ख़राब कर डालेंगे क्योंकि जो ऐब शुरू से पड़ जाता है वह आखीर तक नहीं जाता सो तुम ऐसी ख़राब आदत मत डालो बल्कि इसके बदले चतुराई सुघड़ता और सलीका सीखो जिससे तुम्हारी सब चीज़ों और कामों में रोनक होजावै अभी तो तुम्हारे पास केवल गिन्ती ही की चीज़ें हैं फिर जब तुम घरबार वाली हो जाओगी तो सैकड़ों चीज़े तुमकोही सौंपी जावेंगी अगर तुम हर चीज़को एक चतुराई और क्रम से रखने की आदत डालो गी तो उस समय यह आदत तुम्हारे बहुत काम आवेगी और अपने सारे घरकी वस्तुओं को एक करीने और सलीके से रख सकोगी

औरत की ज़ियादातर तारीफ़ चतुर और सुघड़ होने से ही होती है सिलाबिल्ली औरत को सब बुराकहते हैं और उसके घरवाले भी उस से नाराज़ रहते हैं जिसके घरके काम और असबाब सब सजे और सुथरे होते हैं उसका थोड़ासा असबाबही बहुत मालूम होता है देखनेवाला खयाल करता है कि इनके घर में बहुत कुछ दौलत होगी औरतों का सबसे पहिला धर्म यह है कि गहना कपड़ा और खाने पीने के बरतनों को ज़ियादातर साफ़ और सजे हुये रक्खे सो तुम हर दम इसका पूरा २ खयाल रक्खो और देखो जो कोई कपड़े की आबरू रखता है तो कपड़ा उसकी आबरू रखता है

तवारीख में लिखा है कि शाहजहां बादशाह की एक बेगम अबदुल रहीमखां खानखाना की पोती थी बड़ी सुघड़ और शहूरदार थी मगर बादशाह और बेगमों से बहुत कम चाहता था एकबेर बादशाहने सबबेगमों के बाग़ देखनेका बिचारकिया उससमय पेड़ोंके पत्ते झड़ गये थे और फूल फल सब उतर चुके थे उस तमीज़दार बेगम ने क्या काम किया कि कारीगरों को बुलवाकर सारे दरख्तों के फल फूल और पत्ते मोम से ऐसे बनवादिये कि देखने वालों को यह मालूम होता था कि यह असलीहै या नकली क्योंकि जिस दरख्त के जैसे फूल फल और पत्ते होते हैं कारीगरों ने वैसेही तैयार कर दिये थे बादशाह जब और बाग़ों को देखता हुआ उस बाग़में आया तो उसका दिल फूलकी तरह से खिलगया मगर अचम्भे से उस बाग़ को इस तरह देखता था कि जैसे कोई तमाशा इन्द्रजाल का देखरहा है इतने में बेगम ने महल से निकल कर सलाम किया बादशाह उसको देखतेही समझगया कि यह सारी बहार इसकी चतुराई का चमत्कार है फिर बेगम की बड़ी तारीफ़ की और उसका दरजा सब बेगमों से बढ़ा दिया

देखलो उस सुघड़ सुजान बेगम ने निदान अपनी चतुरता से ऐसा बड़ा पदपाया अत एव प्रत्येक स्त्री को विद्यासीखना काव्यकला और कारीगरी में प्रवीन होना अवश्य है क्योंकि विद्या से मनुष्यकी प्रकृति और की और होजाती है

दोहा

श्रवण नैन मुख नासिका सबके एकही ठोर।
कहिबो सुनबो देखबो चतुरन को कछु और १

गुरु विरजानन्द दण्डी
सम्पूर्ण पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक ......1056......
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र